Table of Contents प्रस्तावना
श्री निसारगदत्त महाराज कौन हैं ?
अनुवादक का नोट
1. ‘ मैं हूँ’ की भावना
52. खुश रहना और दूसरों को खुश करना ही सफलता का मूल मंत्र है।
2. शरीर के प्रति जुनून
3. जीवंत वर्तमान
53. इच्छाओं की पूर्ति से और अधिक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं
4. वास्तविक दुनिया मन की सीमाओं से परे है।
54. शरीर और मन इसके लक्षण हैं
5. जो जन्म लेता है , उसका मरना भी तय है।
6. ध्यान
55. सब कुछ त्याग दो , सब कुछ पा लो
7. मन
56. चेतना का उदय हुआ , संसार का उदय हुआ
8. आत्मा मन से परे है
57. मन से परे कोई दुख नहीं है
9. स्मृति की प्रतिक्रियाएँ
58. पूर्णता , सभी का भाग्य
10. साक्षी बनना
59. इच्छा और भय : स्व - केंद्रित अवस्थाएँ
11. जागरूकता और चेतना
60. वास्तविक तथ्य , कल्पनाएँ नहीं
12. व्यक्ति वास्तविकता नहीं है
61. पदार्थ स्वयं चेतना है।
13. परम सत्ता , मन और शरीर
62. सर्वोच्च ईश्वर में साक्षी प्रकट होता है
14. दिखावट और वास्तविकता
63. कर्तापन की धारणा बंधन है
15. The Jnani
64. जो भी आपको प्रसन्न करता है , वही आपको पीछे खींचता है।
16. इच्छाहीनता , सर्वोच्च आनंद
65. शांत मन ही काफी है
17. सर्वव्यापी
66. सुख की हर खोज दुखमय होती है
18. खुद को जानने के लिए , यह पता लगाएँ कि आप क्या हैं
67. अनुभव ही असली चीज नहीं है
68. चेतना के स्रोत की खोज करें
19. वास्तविकता वस्तुनिष्ठता में निहित है।
69. क्षणभंगुरता अवास्तविकता का प्रमाण है
20. सर्वोच्च सत्ता सभी से परे है।
70. ईश्वर समस्त इच्छाओं का अंत है और
21. मैं कौन हूँ ?

22. जीवन प्रेम है और प्रेम ही जीवन है।
71. आत्म - जागरूकता में आप सीखते हैं कि
23. भेदभाव से अलगाव उत्पन्न होता है
24. ईश्वर सर्व - कर्ता है , ज्ञानी न करने वाला है।
72. जो शुद्ध , अलंकृत और अनासक्त है , वही है
25. ‘ मैं हूँ’ को थामे रहो
26. व्यक्तित्व , एक बाधा

मैं वही हूँ

श्री निसारगदत्त महाराज के संवाद

जिसमें समस्त प्राणी निवास करते हैं और जो समस्त प्राणियों में निवास करता है, जो सभी को कृपा प्रदान करता है, ब्रह्मांड की परम आत्मा, असीम सत्ता - मैं वही हूँ।

Amritbindu Upanishad

जो सब कुछ में व्याप्त है, जिसे कोई भी पार नहीं कर सकता और जो हमारे चारों ओर फैले सार्वभौमिक अंतरिक्ष की तरह, भीतर और बाहर से सब कुछ पूरी तरह से भर देता है, वह सर्वोच्च अद्वैत ब्रह्म है - वही तुम हो।

Sankaracharya

स्वयं की खोज करने वाला ही खोजी कहलाता है।

एक सवाल को छोड़कर बाकी सभी सवाल छोड़ दें: ‘मैं कौन हूँ?’ आखिरकार, एकमात्र तथ्य जिसके बारे में आप निश्चित हैं, वह यह है कि आप हैं। ‘मैं हूँ’ निश्चित है। ‘मैं यह हूँ’ निश्चित नहीं है। वास्तविकता में आप क्या हैं, यह जानने के लिए संघर्ष करें।
खुद को जानने के लिए, आपको पहले यह पता लगाना होगा कि आप क्या नहीं हैं।

अपने आप में जो कुछ भी नहीं है, उसे खोजिए - शरीर, भावनाएँ, विचार, समय, स्थान, यह या वह - कुछ भी नहीं, चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त, जिसे आप अनुभव करते हैं, वह आप नहीं हो सकते। अनुभव करने की क्रिया ही यह दर्शाती है कि आप वह नहीं हैं जो आप अनुभव करते हैं।
आप मन के उस स्तर पर जितना स्पष्ट रूप से समझ पाएंगे कि आपका वर्णन केवल नकारात्मक शब्दों में ही किया जा सकता है, उतनी ही जल्दी आप अपनी खोज के अंत तक पहुंचेंगे और यह अहसास करेंगे कि आप असीम सत्ता हैं।

श्री निसर्गदत्ता महाराज

विषयसूची

प्रस्तावना
श्री निसारगदत्त महाराज कौन हैं?
अनुवादक का नोट
संपादक का नोट

1. ‘मैं हूँ’ की भावना 52. खुश रहना, खुशियाँ देना ही है
2. शरीर के प्रति जुनून - जीवन की लय
3. वर्तमान में जीना 53. इच्छाएँ पूरी होने पर और इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं
4. वास्तविक दुनिया मन से परे है। 54. शरीर और मन इसके लक्षण हैं।
5. जो जन्म लेता है, वह अज्ञानता के रूप में ही मरता है।
6. ध्यान 55. सब कुछ त्याग दो, सब कुछ पा लो
7. मन 56. चेतना का उदय, संसार का उदय
8. आत्मा मन से परे है 57. मन से परे कोई दुख नहीं है
9. स्मृति की प्रतिक्रियाएँ 58. पूर्णता, सभी का भाग्य
10. साक्षी भाव 59. इच्छा और भय: स्व-केंद्रित अवस्थाएँ
11. जागरूकता और चेतना 60. वास्तविक जीवन, काल्पनिक बातें नहीं
12. व्यक्ति वास्तविकता नहीं है 61. पदार्थ स्वयं चेतना है
13. परम सत्ता, मन और शरीर 62. परम सत्ता में साक्षी प्रकट होता है
14. दिखावट और वास्तविकता 63. कर्तापन की धारणा बंधन है
15. ज्ञानी 64. जो कुछ भी आपको प्रसन्न करता है, वही आपको पीछे खींचता है।
16. इच्छाहीनता, सर्वोच्च आनंद 65. शांत मन ही सब कुछ है
17. सर्वव्यापी 66. सुख की हर खोज दुखमय है
18. यह जानने के लिए कि आप क्या हैं, खोजें कि आप क्या हैं। 67. अनुभव ही वास्तविक चीज नहीं है।
68 नहीं हैं। चेतना के स्रोत की खोज करें।
19. वास्तविकता वस्तुनिष्ठता में निहित है। 69. क्षणभंगुरता अवास्तविकता का प्रमाण है।
20. सर्वोच्च सत्ता सभी से परे है। 70. ईश्वर सभी इच्छाओं का अंत है।
21. मैं कौन हूँ? ज्ञान
22. जीवन प्रेम है और प्रेम ही जीवन है। 71. आत्म-जागरूकता में आप सीखते हैं
23. भेदभाव से स्वयं में अलगाव उत्पन्न होता है।
24. ईश्वर सर्व-कर्ता है, ज्ञानी अकर्ता है। 72. जो शुद्ध, अलंकृत और अनासक्त है, वही है।
25. ‘मैं’ की वास्तविकता को थामे रहो
26. व्यक्तित्व, एक बाधा 73. मन की मृत्यु ही ज्ञान का जन्म है
27. अनादि से अनंत की शुरुआत होती है 74. सत्य यहीं और अभी है
28. सभी दुख इच्छाओं से उत्पन्न होते हैं। 75. शांति और मौन में ही विकास होता है।
29. जीना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। 76. यह जानना कि आप नहीं जानते, सत्य है।

30. आप अभी स्वतंत्र हैं (ज्ञान)।
31. ध्यान को कम मत समझो। 77. 'मैं' और 'मेरा' झूठे विचार हैं।
32. जीवन ही सर्वोच्च गुरु है। 78. समस्त ज्ञान अज्ञान है।
33. सब कुछ स्वतः घटित होता है 79. व्यक्ति, साक्षी और सर्वोच्च सत्ता
34. मन स्वयं ही बेचैनी है। 80. जागरूकता
35. सबसे बड़ा गुरु आपका अंतर्मन है। 81. भय का मूल कारण।
36. हत्या करने वाले को पीड़ा होती है, मारे गए व्यक्ति को नहीं। 82. पूर्णता यहीं और अभी मौजूद है।
37. दर्द और सुख से परे परमानंद है 83. सच्चा गुरु
38. आध्यात्मिक अभ्यास इच्छाशक्ति का अभिकथन और पुनः- 84. आपका लक्ष्य ही आपका गुरु है।
85. ‘मैं हूँ’: समस्त अनुभवों का आधार
39. स्वयं से किसी चीज का अस्तित्व नहीं है। 86. अज्ञात ही वास्तविकता का घर है।
40. केवल आत्मा ही वास्तविक है। 87. मन को शांत रखो और तुम सफल हो जाओगे।
41. साक्षी भाव विकसित करें
42. वास्तविकता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। 88. मन द्वारा प्राप्त ज्ञान सत्य नहीं है।
43. अज्ञान को पहचाना जा सकता है, ज्ञान को नहीं।
44. 'मैं हूँ' सत्य है, बाकी सब अनुमान है। 89. आध्यात्मिक जीवन में प्रगति
45. जो आता है और जाता है उसका कोई अस्तित्व नहीं है। 90. अपने आप को समर्पित हो जाओ।
46. अस्तित्व की जागरूकता ही परमानंद है। 91. सुख और खुशी।
47. अपने मन पर नज़र रखें 92. 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से आगे बढ़ें
48. जागरूकता मुफ्त है 93. मनुष्य कर्ता नहीं है
49. मन असुरक्षा का कारण बनता है। 94. आप स्थान और समय से परे हैं।
50. आत्म-जागरूकता साक्षी है 95. जीवन को जैसा है वैसा स्वीकार करें
51. दर्द और सुख के प्रति उदासीन रहें 96. यादों और अपेक्षाओं को त्याग दें
97. मन और संसार अलग-अलग नहीं हैं
98. आत्म-पहचान से मुक्ति
99. जिसे अनुभव किया जा रहा है, वह स्वयं अनुभवकर्ता नहीं हो सकता।
100. समझ स्वतंत्रता की ओर ले जाती है
101. ज्ञानी न तो पकड़ते हैं और न ही पकड़ते हैं

परिशिष्ट-1: श्री निसारगदत्त महाराज कौन हैं?
Appendix-2: Navnath Sampradaya

प्रस्तावना
श्री निसर्गदत्ता महाराज द्वारा कहे गए शब्दों की उदात्तता, उनकी स्पष्टता और सर्वोच्च सत्ता के प्रति उनके सहज दृष्टिकोण ने इस पुस्तक को पहले ही अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्य बना दिया है। वास्तव में, कई लोग इसे आध्यात्मिक शिक्षा की एकमात्र ऐसी पुस्तक मानते हैं जिसका अध्ययन करना वास्तव में सार्थक है।
अनेक धर्म और दर्शनशास्त्र प्रणालियाँ हैं जो मानव जीवन को अर्थपूर्ण बनाने का दावा करती हैं। परन्तु उनमें कुछ अंतर्निहित सीमाएँ हैं। वे

अपने पारंपरिक विश्वासों और विचारधाराओं, चाहे वे धार्मिक हों या दार्शनिक, को आकर्षक शब्दों में व्यक्त करते हैं। परन्तु अनुयायी इन शब्दों के सीमित अर्थ और प्रयोज्यता को शीघ्र ही जान लेते हैं। वे निराश हो जाते हैं और इन प्रणालियों को त्यागने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों को तब त्याग दिया जाता है जब बहुत सारे विरोधाभासी अनुभवजन्य आँकड़े उन पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं।
जब आध्यात्मिक व्याख्या की कोई प्रणाली अविश्वासनीय और तर्कसंगत रूप से उचित न पाई जाती है, तो अनेक लोग किसी दूसरी प्रणाली को अपना लेते हैं। परन्तु कुछ समय बाद उन्हें उस दूसरी प्रणाली में भी सीमाएँ और विरोधाभास दिखाई देने लगते हैं। स्वीकृति और अस्वीकृति की इस निरर्थक खोज में उनके लिए केवल संशयवाद और अज्ञेयवाद ही शेष रह जाता है, जिससे जीवन का एक निरर्थक मार्ग निकल आता है, जो केवल भौतिक वस्तुओं के उपभोग में लीन रहता है। परन्तु कभी-कभी, यद्यपि बहुत कम, संशयवाद एक मूलभूत वास्तविकता की अंतर्ज्ञान को जन्म देता है, जो शब्दों, धर्मों या दार्शनिक प्रणालियों से कहीं अधिक मौलिक होती है। विचित्रतः, यह संशयवाद का एक सकारात्मक पहलू है। ऐसी ही संशयवादी अवस्था में, परन्तु मूलभूत वास्तविकता की अंतर्ज्ञान के साथ, मैंने श्री निसर्गदत्ता महाराज की पुस्तक 'मैं वही हूँ' पढ़ी। उनके शब्दों की पूर्णता और अचूक सत्यता ने मुझे तुरंत झकझोर दिया। हालांकि शब्दों की प्रकृति ही सीमित होती है, फिर भी मुझे महाराज के वचन पारदर्शी, पॉलिश की हुई खिड़कियों की तरह लगे।
आध्यात्मिक शिक्षाओं की कोई भी पुस्तक स्वयं गुरु की उपस्थिति का स्थान नहीं ले सकती। केवल गुरु द्वारा सीधे आपसे कहे गए शब्द ही पूरी तरह से स्पष्ट हो जाते हैं। गुरु की उपस्थिति में मन द्वारा खींची गई अंतिम सीमाएँ भी मिट जाती हैं। श्री निसर्गदत्ता महाराज वास्तव में ऐसे ही गुरु हैं। वे उपदेशक नहीं हैं, बल्कि साधक को ठीक वही संकेत प्रदान करते हैं जिनकी उसे आवश्यकता होती है। उनसे निकलने वाली वास्तविकता अविभाज्य और परम है। यह प्रामाणिक है। 'मैं वही हूँ' पुस्तक में उनके शब्दों की सत्यता का अनुभव करके और उससे प्रेरित होकर, पश्चिम के कई लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए महाराज के पास आए हैं।
महाराज की सत्य की व्याख्या ज्ञान योग/अद्वैत वेदांत से भिन्न नहीं है। परन्तु उनका अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। वे कहते हैं कि हमारे चारों ओर के अनेक रूप पाँच तत्वों से निर्मित हैं। वे क्षणभंगुर हैं और निरंतर परिवर्तनशील अवस्था में हैं। वे कारण-कार्य के नियम द्वारा शासित हैं। यह सब शरीर और मन पर भी लागू होता है, जो दोनों ही क्षणभंगुर हैं और जन्म-मृत्यु के अधीन हैं। हम जानते हैं कि केवल शारीरिक इंद्रियों और मन के माध्यम से ही संसार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कांट के मत के अनुसार, यह मानव ज्ञानी विषय का सहसंबंधी है, और इसलिए, हमारे ज्ञान के तरीके की मूलभूत संरचना इसी में निहित है। इसका अर्थ यह है कि समय, स्थान और कारण-कार्य 'वस्तुनिष्ठ' या बाह्य सत्ताएँ नहीं हैं, बल्कि मानसिक श्रेणियाँ हैं जिनमें सब कुछ समाहित है। सभी वस्तुओं का अस्तित्व और रूप मन पर निर्भर करता है। संज्ञान एक मानसिक उपज है। और मन से देखा जाने वाला संसार एक व्यक्तिपरक और निजी संसार है, जो स्वयं मन की बेचैनी के अनुसार निरंतर परिवर्तित होता रहता है।
सीमित श्रेणियों—इच्छा, आत्मनिष्ठा, द्वैत आदि—से व्याकुल मन के विपरीत, असीम ‘मैं हूँ’ की भावना सर्वोच्च स्थान रखती है। मैं केवल इस बात

को लेकर आश्वस्त हो सकता हूँ कि ‘मैं हूँ’; कार्तीय अर्थ में चिंतनशील ‘मैं हूँ’ के रूप में नहीं, बल्कि बिना किसी विशेषण के। महाराज बार-बार हमारा ध्यान इस मूलभूत तथ्य की ओर आकर्षित करते हैं ताकि हम अपने ‘मैं हूँ’ होने का अहसास कर सकें और इस प्रकार स्वयं द्वारा निर्मित सभी बंधनों से मुक्त हो सकें। वे कहते हैं: एकमात्र सत्य कथन ‘मैं हूँ’ है। बाकी सब मात्र अनुमान है। किसी भी प्रयास से आप ‘मैं हूँ’ को ‘मैं नहीं हूँ’ में नहीं बदल सकते।
देखो, वास्तविक अनुभवकर्ता मन नहीं, बल्कि मैं स्वयं हूँ, वह प्रकाश जिसमें सब कुछ प्रकट होता है। आत्मा समस्त अनुभवों का मूल तत्व है, वह चेतना जिसमें सब कुछ घटित होता है। चेतना का संपूर्ण क्षेत्र 'मैं हूँ' में एक धुंधली परत या एक कण के समान है। यह 'मैं हूँ' का अर्थ है चेतना के प्रति सचेत होना, स्वयं के प्रति सचेत होना। और यह अवर्णनीय है, क्योंकि इसमें कोई गुण नहीं हैं। यह केवल मेरा स्वयं होना है, और मेरा स्वयं होना ही सब कुछ है। जो कुछ भी विद्यमान है, वह मेरे स्वयं के रूप में विद्यमान है। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। कोई द्वैत नहीं है, इसलिए कोई पीड़ा नहीं है। कोई समस्या नहीं है। यह प्रेम का क्षेत्र है, जिसमें सब कुछ परिपूर्ण है। जो कुछ भी घटित होता है, वह सहज रूप से, बिना किसी इरादे के घटित होता है - जैसे पाचन क्रिया या बालों का बढ़ना। इसे समझो और मन की सीमाओं से मुक्त हो जाओ।
देखो, वह गहरी नींद जिसमें अस्तित्व का कोई बोध नहीं होता। फिर भी ‘मैं हूँ’ बना रहता है। और देखो, शाश्वत वर्तमान। स्मृति अतीत से वर्तमान में चीजों को लाती हुई प्रतीत होती है, लेकिन जो कुछ भी घटित होता है वह केवल वर्तमान में ही होता है। केवल कालविहीन वर्तमान में ही घटनाएँ स्वयं को प्रकट करती हैं। इस प्रकार, समय और कारण-कार्य संबंध वास्तविकता में लागू नहीं होते। मैं संसार, शरीर और मन से पूर्व हूँ। मैं वह क्षेत्र हूँ जिसमें वे प्रकट और लुप्त होते हैं। मैं उन सबका स्रोत हूँ, वह सार्वभौमिक शक्ति जिसके द्वारा संसार अपनी विस्मयकारी विविधता के साथ प्रकट होता है।
अपनी आदिम प्रकृति के बावजूद, ‘मैं हूँ’ की भावना सर्वोच्च नहीं है। यह परम सत्य नहीं है। ‘मैं हूँ’ की अनुभूति या स्वाद समय से परे नहीं है। पंच तत्वों का सार होने के कारण, यह एक प्रकार से संसार पर निर्भर है। यह शरीर से उत्पन्न होती है, जो बदले में तत्वों से युक्त भोजन द्वारा निर्मित होता है। शरीर के मरने पर यह उसी प्रकार लुप्त हो जाती है, जैसे अगरबत्ती के जलने पर चिंगारी बुझ जाती है। जब शुद्ध चेतना प्राप्त हो जाती है, तो ‘मैं हूँ’ की भी आवश्यकता नहीं रह जाती, जो केवल एक उपयोगी सूचक है, परम सत्य की ओर एक दिशासूचक है। तब ‘मैं हूँ’ की चेतना सहज रूप से समाप्त हो जाती है। जो विद्यमान है वह वह है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, जो शब्दों से परे है। यही वह ‘अवस्था’ है जो सबसे वास्तविक है, शुद्ध संभाव्यता की अवस्था है, जो हर चीज से पहले है। ‘मैं हूँ’ और ब्रह्मांड इसके मात्र प्रतिबिंब हैं। यही वह वास्तविकता है जिसे एक ज्ञानी ने अनुभव किया है।
सबसे अच्छा यही है कि आप ज्ञानी की स्तुति ध्यानपूर्वक सुनें—श्री निसर्गदत्त इसके जीवंत उदाहरण हैं—और उन पर विश्वास करें। इस प्रकार सुनने से आपको यह अहसास होगा कि उनका सत्य ही आपका सत्य है। वे आपको संसार और ‘मैं’ के स्वरूप को समझने में सहायता करते हैं। वे आपको शरीर और मन की क्रियाओं का गहन एकाग्रता से अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते हैं, यह

पहचानने के लिए कि आप इनमें से कोई भी नहीं हैं और इन्हें त्यागने के लिए कहते हैं। वे सुझाव देते हैं कि आप बार-बार ‘मैं’ की शरण में लौटें, जब तक कि यह आपका एकमात्र निवास स्थान न बन जाए, जिसके बाहर कुछ भी अस्तित्व में न हो; जब तक ‘मैं’ की सीमा के रूप में अहंकार विलीन न हो जाए। तब सर्वोच्च अनुभूति सहजता से प्राप्त होगी।
ज्ञानी महाराज के उन शब्दों पर ध्यान दें, जो सभी अवधारणाओं और रूढ़ियों से परे हैं। महाराज कहते हैं: “जब तक व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर लेता, आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, स्वयं से परे नहीं हो जाता, तब तक ये सभी मनगढ़ंत कहानियां और अवधारणाएं व्यर्थ हैं।” जी हां, ये अवधारणाएं हैं, यहां तक कि ‘मैं हूं’ भी एक अवधारणा है, लेकिन निश्चित रूप से इनसे अधिक अनमोल कोई अवधारणा नहीं है। साधक को इन्हें अत्यंत गंभीरता से लेना चाहिए, क्योंकि ये सर्वोच्च वास्तविकता को दर्शाती हैं। सभी अवधारणाओं को त्यागने के लिए इससे बेहतर कोई अवधारणा उपलब्ध नहीं है। मैं संपादक सुधाकर एस. दीक्षित का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे 'आई एम दैट' के इस नए संस्करण की प्रस्तावना लिखने के लिए आमंत्रित किया और इस प्रकार मुझे श्री निसर्गदत्ता महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर दिया, जिन्होंने सर्वोच्च ज्ञान को सरलतम, स्पष्ट और सबसे प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया है।
डौवे टिएमर्समा
दार्शनिक संकाय
इरास्मस विश्वविद्यालय
रॉटरडैम, हॉलैंड
जून, 1981

निसर्गदत्ता महाराज कौन हैं?
जब उनसे उनकी जन्मतिथि के बारे में पूछा गया तो गुरु ने बड़े ही सरल शब्दों में उत्तर दिया कि उनका जन्म कभी हुआ ही नहीं!
श्री निसर्गदत्ता महाराज की जीवनी लिखना एक कठिन और निरर्थक कार्य है। क्योंकि न केवल उनकी जन्मतिथि ज्ञात नहीं है, बल्कि उनके प्रारंभिक जीवन से संबंधित कोई भी पुष्ट तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। हालांकि, उनके कुछ बुजुर्ग रिश्तेदार और मित्र बताते हैं कि उनका जन्म मार्च 1897 में पूर्णिमा के दिन हुआ था, जो हनुमान जयंती के त्योहार के साथ मेल खाता था। इस दिन हिंदू रामायण के वानर देवता हनुमान जी (जिन्हें मारुति भी कहा जाता है) को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इसी शुभ दिन से उनके जन्म को जोड़ने के लिए उनके माता-पिता ने उनका नाम मारुति रखा था।
उनके बचपन और युवावस्था के बारे में उपलब्ध जानकारी अधूरी और बिखरी हुई है। हमें पता चलता है कि उनके पिता, शिवरामपंत, एक गरीब व्यक्ति थे, जिन्होंने कुछ समय तक बंबई में घरेलू नौकर के रूप में काम किया और बाद में महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले के भीतरी इलाकों में स्थित एक छोटे से गाँव कंदलगाँव में एक छोटे किसान के रूप में अपना जीवन यापन किया। मारुति लगभग बिना शिक्षा के ही पले-बढ़े। बचपन में वे अपने पिता के साथ उन कामों में मदद करते थे जो उनके बस में होते थे - मवेशी चराना, बैल चलाना, खेतों में काम करना और छोटे-मोटे काम करना। उनके सुख और श्रम दोनों ही साधारण थे, लेकिन उनमें जिज्ञासा कूट-कूटकर भरी थी, जो हर तरह के सवालों से भरी रहती थी।

उनके पिता के विष्णु हरिभाऊ गोरे नाम के एक ब्राह्मण मित्र थे, जो एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और ग्रामीण रीति-रिवाजों से अच्छी तरह शिक्षित थे। गोरे अक्सर धार्मिक विषयों पर चर्चा करते थे और मारुति ध्यान से उनकी बातें सुनता था और इन विषयों पर जितना कोई सोच भी नहीं सकता था, उससे कहीं अधिक गहराई से विचार करता था। गोरे उनके लिए आदर्श व्यक्ति थे - गंभीर, दयालु और बुद्धिमान।
जब मारुति अठारह वर्ष के हुए, तब उनके पिता का देहांत हो गया। वे अपने पीछे विधवा पत्नी, चार पुत्र और दो पुत्रियाँ छोड़ गए। पिता की मृत्यु के बाद छोटे से खेत से होने वाली मामूली आमदनी और भी कम हो गई और इतने सारे लोगों का पेट भरने के लिए पर्याप्त नहीं थी। मारुति के बड़े भाई काम की तलाश में गाँव छोड़कर बंबई चले गए और मारुति भी कुछ समय बाद उनके पीछे-पीछे चले गए। कहा जाता है कि बंबई में उन्होंने कुछ महीनों तक एक दफ्तर में कम वेतन पर कनिष्ठ क्लर्क के रूप में काम किया, लेकिन असंतुष्ट होकर नौकरी छोड़ दी। फिर उन्होंने कपड़े-कपड़े बेचने का छोटा-मोटा व्यापार शुरू किया और बच्चों के कपड़े, तंबाकू और हाथ से बनी देसी सिगरेट बेचने की दुकान खोली। कहा जाता है कि समय के साथ उनका व्यापार फलता-फूलता गया और उन्हें कुछ आर्थिक स्थिरता मिली। इसी दौरान उनका विवाह हुआ और उनका एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं।
बचपन, जवानी, शादी, संतानोत्पत्ति – मारुति ने अधेड़ उम्र तक एक आम आदमी की तरह नीरस और घटनाहीन जीवन जिया, उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं था कि आगे चलकर वे संत बनेंगे। इस दौरान उनके मित्रों में यशवंतराव बागकर भी थे, जो नवनाथ संप्रदाय के आध्यात्मिक गुरु श्री सिद्धारमेश्वर महाराज के भक्त थे। एक शाम बागकर मारुति को अपने गुरु के पास ले गए और वह शाम उनके जीवन का निर्णायक मोड़ साबित हुई। गुरु ने उन्हें एक मंत्र और ध्यान के निर्देश दिए। साधना के शुरुआती दौर में ही उन्हें दिव्य दर्शन होने लगे और कभी-कभी वे समाधि में भी चले जाते थे। मानो उनके भीतर कुछ विस्फोट हुआ हो, जिससे एक ब्रह्मांडीय चेतना का जन्म हुआ, शाश्वत जीवन का अहसास हुआ। मारुति, एक साधारण दुकानदार, की पहचान मिट गई और श्री निसर्गदत्त का प्रकाशमान व्यक्तित्व प्रकट हुआ।
अधिकांश लोग आत्म-चेतना के संसार में जीते हैं और इसे छोड़ने की इच्छा या शक्ति उनमें नहीं होती। वे केवल अपने लिए जीते हैं; उनका सारा प्रयास आत्म-संतुष्टि और आत्म-गौरव की प्राप्ति की ओर निर्देशित होता है। परन्तु कुछ ऐसे द्रष्टा, शिक्षक और ज्ञानदाता भी हैं जो एक ही संसार में रहते हुए भी, साथ ही साथ एक दूसरे संसार में भी विद्यमान होते हैं—ब्रह्मांडीय चेतना का संसार, जो अनंत ज्ञान से प्रकाशित होता है। अपने ज्ञानोदय के अनुभव के बाद श्री निसर्गदत्ता महाराज ने ऐसा ही दोहरा जीवन जीना शुरू किया। उन्होंने अपनी दुकान चलाई, परन्तु लाभ-प्रेरित व्यापारी बनना छोड़ दिया। बाद में, परिवार और व्यवसाय को त्यागकर वे भिक्षु बन गए, भारतीय धार्मिक परिदृश्य की विशालता और विविधता के तीर्थयात्री बन गए। वे नंगे पैर हिमालय की ओर चल पड़े जहाँ उन्होंने अपने शेष वर्ष शाश्वत जीवन की खोज में व्यतीत करने की योजना बनाई थी। परन्तु वे शीघ्र ही अपने कदम पीछे हटाकर घर लौट आए, क्योंकि उन्हें ऐसी खोज की निरर्थकता समझ आ गई थी। उन्होंने अनुभव किया कि शाश्वत जीवन की खोज करने की आवश्यकता नहीं है; वह उन्हें पहले ही प्राप्त हो चुका था। 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से परे जाकर, उन्होंने एक ऐसी आनंदमय, शांत और गौरवशाली मानसिक अवस्था प्राप्त कर ली थी

कि उसके सामने सब कुछ व्यर्थ प्रतीत होता था। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लिया था।
गुरुजी अशिक्षित होते हुए भी, उनकी वाणी असाधारण रूप से ज्ञानवर्धक होती है। गरीबी में जन्मे और पले-बढ़े होने के बावजूद, वे सबसे धनी हैं, क्योंकि उनके पास शाश्वत ज्ञान का असीम भंडार है, जिसके सामने बड़े-बड़े खजाने भी तुच्छ प्रतीत होते हैं। वे दयालु और कोमल हृदय के हैं, हास्यबोध से परिपूर्ण हैं, निडर और सत्यनिष्ठ हैं - जो भी उनके पास आता है, वे उसे प्रेरित करते हैं, मार्गदर्शन करते हैं और सहारा देते हैं।
ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखने का कोई भी प्रयास व्यर्थ और निरर्थक है। क्योंकि उनका न तो कोई अतीत है और न ही कोई भविष्य; वे तो जीवंत वर्तमान हैं— शाश्वत और अपरिवर्तनीय। वे वह आत्मा हैं जो सर्वस्व में समाहित हो गई है।

अनुवादक का नोट

कुछ साल पहले मेरी मुलाकात श्री निसर्गदत्ता महाराज से हुई थी और मैं उनके सहज सरल रूप और व्यवहार तथा अपने अनुभव को व्यक्त करने में उनकी गहरी और सच्ची लगन से बहुत प्रभावित हुआ था।
मुंबई की तंग गलियों में स्थित उनका छोटा सा मकान भले ही साधारण और मुश्किल से मिलने वाला हो, फिर भी कई लोग वहाँ पहुँच जाते हैं। उनमें से अधिकतर भारतीय होते हैं, जो अपनी मातृभाषा में खुलकर बातचीत करते हैं, लेकिन कई विदेशी भी होते हैं जिन्हें अनुवादक की आवश्यकता होती है। जब भी मैं वहाँ होता, यह काम मुझे ही करना पड़ता था। पूछे गए कई प्रश्न और दिए गए उत्तर इतने रोचक और महत्वपूर्ण होते थे कि एक टेप रिकॉर्डर मंगवाना पड़ता था। अधिकतर टेप सामान्य मराठी-अंग्रेज़ी अनुवाद में होते थे, लेकिन कुछ टेप कई भारतीय और यूरोपीय भाषाओं के मिश्रण होते थे। बाद में, प्रत्येक टेप को समझा जाता और अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जाता था।
शब्दशः अनुवाद करना और साथ ही उबाऊ पुनरावृत्तियों और दोहरावों से बचना आसान नहीं था। आशा है कि टेप रिकॉर्डिंग का यह अनुवाद इस स्पष्टवादी, उदार और कई मायनों में असाधारण व्यक्ति के प्रभाव को कम नहीं करेगा।
इन वार्ताओं का एक मराठी संस्करण, जिसकी पुष्टि स्वयं श्री निसर्गदत्ता महाराज ने की है, अलग से प्रकाशित किया गया है।
मौरिस फ्राइडमैन
अनुवादक
बंबई
16 अक्टूबर, 1973

संपादक का नोट
'आई एम दैट' का यह वर्तमान संस्करण, पहले के संस्करणों में दो खंडों में प्रकाशित 101 प्रवचनों का संशोधित और पुनः संपादित संस्करण है। इसमें न केवल विषयवस्तु को अधिक पठनीय फ़ॉन्ट और अध्याय शीर्षकों के साथ पुनः व्यवस्थित किया गया है, बल्कि श्री निसर्गदत्ता महाराज के नए चित्र भी शामिल किए गए हैं और परिशिष्टों में अब तक अप्रकाशित कुछ बहुमूल्य सामग्री भी शामिल है।

मैं पाठकों का विशेष ध्यान ‘निसर्ग योग’ नामक लेख की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, जिसमें मेरे आदरणीय मित्र, स्वर्गीय मौरिस फ्राइडमैन ने महाराज की शिक्षाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। जैसा कि मौरिस ने कहा है, सादगी और विनम्रता उनकी शिक्षाओं के मूल तत्व हैं। गुरु किसी बौद्धिक अवधारणा या सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं करते। वे साधकों के समक्ष कोई पूर्व-शर्त नहीं रखते और उन्हें यथावत स्वीकार करते हैं। वास्तव में, श्री निसर्गदत्ता महाराज निंदा और निंदा से पूरी तरह मुक्त हैं; पापी और संत केवल विचारों का आदान-प्रदान कर रहे हैं; संत ने पाप किया है, पापी पवित्र हो सकता है। समय ही उन्हें अलग करता है; समय ही उन्हें एक साथ लाता है। गुरु मूल्यांकन नहीं करते; उनका एकमात्र सरोकार ‘दुख और दुख के निवारण’ से है। वे अपने व्यक्तिगत और स्थायी अनुभव से जानते हैं कि दुख की जड़ें मन में हैं और मन को ही उसकी विकृत और विनाशकारी आदतों से मुक्त करना आवश्यक है। इनमें से स्वयं को उसकी कल्पनाओं से जोड़ना सबसे घातक है। श्री निसर्गदत्ता महाराज उपदेश और उदाहरण द्वारा एक सरल उपाय दिखाते हैं, जो तर्कहीन होते हुए भी अनुभवजन्य रूप से सही है। समझने पर यह कारगर सिद्ध होता है।
'आई एम दैट' का संशोधन और संपादन मेरे लिए अंतर्मन की एक तीर्थयात्रा रही है—जो एक साथ उदात्त और ज्ञानवर्धक है। मैंने अपना काम पूरी निष्ठा और लगन से किया है। मैंने प्रत्येक प्रश्नकर्ता के प्रश्न को अपना प्रश्न माना है और गुरु के उत्तरों को अपने सभी ज्ञान से रहित मन से आत्मसात किया है। यद्यपि, इस प्रक्रिया में, जिसे दो स्वरों वाला ध्यान कहा जा सकता है, संभव है कि कुछ स्थानों पर मैं वाक्य रचना और विराम चिह्नों के प्रति संपादक से अपेक्षित पूर्ण सावधानी बरतने में चूक गया हूँ। यदि कोई चूक हो तो उसके लिए मैं पाठक से क्षमा चाहता हूँ।
समापन से पहले, मैं नीदरलैंड के रॉटेंडम स्थित विश्वविद्यालय के इरास्मस दर्शनशास्त्र संकाय के प्रोफेसर डोवे टिमर्समा को इस संस्करण के लिए नई प्रस्तावना लिखने हेतु हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूँ। उन्होंने मेरी विनती को तुरंत स्वीकार कर लिया, जिससे मैं और भी अधिक आभारी महसूस करता हूँ।
Sudhakar S. Dikshit
संपादक
बॉम्बे,
जुलाई 1981

1. ‘मैं हूँ’ की भावना

प्रश्नकर्ता: यह तो रोजमर्रा का अनुभव है कि जागने पर दुनिया अचानक प्रकट हो जाती है। यह कहाँ से आती है?
महाराज: किसी भी चीज़ के अस्तित्व में आने से पहले, उसका कोई न कोई अस्तित्व होना चाहिए। हर प्रकट होना और लुप्त होना किसी अपरिवर्तनीय पृष्ठभूमि के संदर्भ में परिवर्तन को दर्शाता है।
प्रश्न: जागने से पहले मैं बेहोश था।
एम: किस अर्थ में? भूल जाना, या अनुभव न करना? क्या अचेतन अवस्था में भी अनुभव नहीं होता? क्या बिना जाने भी अस्तित्व संभव है? स्मृति का लोप: क्या यह अस्तित्वहीनता का प्रमाण है?

क्या आप अपने अस्तित्वहीन होने को एक वास्तविक अनुभव के रूप में वैध रूप से बता सकते हैं? आप यह भी नहीं कह सकते कि आपका मन अस्तित्व में नहीं था। क्या आपको पुकारे जाने पर नींद नहीं आई? और जागने पर, क्या सबसे पहले 'मैं हूँ' का बोध नहीं आया? नींद या बेहोशी के दौरान भी कोई न कोई मूल चेतना विद्यमान होनी चाहिए। जागने पर अनुभव होता है: 'मैं हूँ - शरीर - संसार में।' यह क्रमिक रूप से उत्पन्न होता प्रतीत हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह सब एक साथ होता है, संसार में शरीर होने का एक ही विचार। क्या किसी के अस्तित्व के बिना 'मैं हूँ' का बोध हो सकता है?
प्रश्न: मैं हमेशा अपनी यादों और आदतों के साथ एक व्यक्ति के रूप में मौजूद रहता हूँ। मैं अपने अलावा किसी और 'मैं' को नहीं जानता।
एम: शायद कोई चीज़ आपको जानने से रोक रही हो? जब आपको कोई ऐसी बात पता न हो जो दूसरों को पता हो, तो आप क्या करते हैं?
प्रश्न: मैं उनके निर्देशानुसार उनके ज्ञान के स्रोत की खोज करता हूँ। एम: क्या आपके लिए यह जानना ज़रूरी नहीं है कि आप महज़ एक शरीर हैं या कुछ और? या शायद कुछ भी नहीं? क्या आपको यह नहीं दिखता कि आपकी सारी समस्याएँ आपके शरीर की समस्याएँ हैं - भोजन, वस्त्र, आश्रय, परिवार, मित्र, नाम, प्रसिद्धि, सुरक्षा, जीवन-यापन - ये सब उस क्षण अपना अर्थ खो देते हैं जब आपको एहसास होता है कि आप महज़ एक शरीर नहीं हैं।
प्रश्न: यह जानने से क्या लाभ है कि मैं शरीर नहीं हूँ?
एम: यह कहना भी पूरी तरह सच नहीं है कि आप शरीर नहीं हैं। एक तरह से आप सभी शरीर, हृदय, मन और उससे कहीं अधिक हैं। 'मैं हूँ' की भावना में गहराई से उतरें और आपको यह मिल जाएगा। आप किसी खोई हुई या भूली हुई चीज़ को कैसे ढूंढते हैं? आप उसे तब तक अपने मन में रखते हैं जब तक आपको वह याद न आ जाए। 'मैं हूँ' की भावना सबसे पहले उभरती है। खुद से पूछें कि यह कहाँ से आती है, या बस इसे चुपचाप देखें। जब मन बिना हिले-डुले 'मैं हूँ' में स्थिर रहता है, तो आप एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करते हैं जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, लेकिन अनुभव किया जा सकता है। आपको बस बार-बार कोशिश करनी है। आखिरकार, 'मैं हूँ' की भावना हमेशा आपके साथ है, बस आपने इससे तरह-तरह की चीजें जोड़ दी हैं - शरीर, भावनाएँ, विचार, कल्पनाएँ, संपत्ति आदि। ये सभी आत्म-पहचान भ्रामक हैं। इनके कारण आप खुद को वह समझते हैं जो आप नहीं हैं। प्रश्न: तो फिर मैं क्या हूँ?
एम: यह जानना ही काफी है कि आप क्या नहीं हैं। आपको यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि आप क्या हैं। जब तक ज्ञान का अर्थ पूर्व-ज्ञात, प्रत्यक्ष या अवधारणात्मक तथ्यों के आधार पर वर्णन करना है, तब तक आत्म-ज्ञान जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, क्योंकि आप जो हैं उसका वर्णन पूर्ण निषेध के अलावा किसी और रूप में नहीं किया जा सकता। आप केवल इतना ही कह सकते हैं: 'मैं यह नहीं हूँ, मैं वह नहीं हूँ'। आप अर्थपूर्ण ढंग से यह नहीं कह सकते कि 'मैं यही हूँ'। इसका कोई अर्थ नहीं है। जिसे आप 'यह' या 'वह' कह सकते हैं, वह आप स्वयं नहीं हो सकते। निश्चित रूप से, आप 'कुछ और' नहीं हो सकते। आप कुछ भी प्रत्यक्ष या कल्पनीय नहीं हैं। फिर भी, आपके बिना न तो बोध हो सकता है और न ही कल्पना। आप हृदय की अनुभूति, मन के चिंतन, शरीर की क्रिया को देखते हैं; बोध की क्रिया ही यह दर्शाती है कि आप वह नहीं हैं जो आप बोध करते हैं। क्या आपके बिना बोध, अनुभव हो सकता है? एक अनुभव का 'संबंध' होना आवश्यक है। किसी को आकर उसे अपना घोषित करना होगा। अनुभवकर्ता के बिना अनुभव

वास्तविक नहीं होता। अनुभवकर्ता ही अनुभव को वास्तविकता प्रदान करता है। जिस अनुभव को आप प्राप्त नहीं कर सकते, उसका आपके लिए क्या महत्व है? प्रश्न: अनुभवकर्ता होने का बोध, 'मैं हूं' का बोध, क्या यह भी एक अनुभव नहीं है?
एम: स्पष्ट है कि प्रत्येक अनुभव एक अनुभव है। और प्रत्येक अनुभव में उसका अनुभवकर्ता निहित होता है। स्मृति निरंतरता का भ्रम पैदा करती है। वास्तव में, प्रत्येक अनुभव का अपना अनुभवकर्ता होता है और पहचान की भावना सभी अनुभवकर्ता-अनुभव संबंधों के मूल में निहित एक सामान्य कारक के कारण होती है। पहचान और निरंतरता एक ही बात नहीं हैं। जैसे प्रत्येक फूल का अपना रंग होता है, लेकिन सभी रंग एक ही प्रकाश के कारण उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अनेक अनुभव अविभाजित और निराकार चेतना में प्रकट होते हैं, स्मृति में प्रत्येक अलग-अलग, सार में एक समान। यही सार सभी अनुभवों का मूल, आधार, कालातीत और स्थानहीन 'संभावना' है।
प्रश्न: मैं इसे कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?
एम: आपको इसे पाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि आप ही यह हैं। यह आप तक स्वयं पहुँच जाएगा, बस आपको मौका दीजिए। अवास्तविक से अपना लगाव छोड़ दीजिए और वास्तविकता सहजता से अपना स्थान ले लेगी। अपने आप को यह या वह होने या करने की कल्पना करना बंद कर दीजिए और आपको यह अहसास होगा कि आप ही सब कुछ का स्रोत और केंद्र हैं। इसके साथ ही वह महान प्रेम उत्पन्न होगा जो न तो पसंद है, न ही लगाव, बल्कि एक ऐसी शक्ति है जो हर चीज को प्रेम के योग्य और प्यारा बना देती है।

2. शरीर के प्रति जुनून

प्रश्नकर्ता: महाराज, आप मेरे सामने बैठे हैं और मैं आपके चरणों में उपस्थित हूँ। हम दोनों में मूलभूत अंतर क्या है?
महाराज: कोई मूलभूत अंतर नहीं है।
प्रश्न: फिर भी कुछ वास्तविक अंतर अवश्य होना चाहिए, मैं आपके पास आता हूँ, आप मेरे पास नहीं आते।
एम: क्योंकि आप मतभेदों की कल्पना करते हैं, इसलिए आप 'श्रेष्ठ' लोगों की तलाश में इधर-उधर भटकते हैं।
प्रश्न: आप भी श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। आप सत्य को जानने का दावा करते हैं, जबकि मैं नहीं।
एम: क्या मैंने तुम्हें कभी बताया है कि तुम नहीं जानते और इसलिए हीन हो? जिन्होंने ये भेद गढ़े हैं, वे इन्हें साबित करें। मैं यह दावा नहीं करता कि मुझे वो सब पता है जो तुम्हें नहीं पता। वास्तव में, मैं तुमसे कहीं कम जानता हूँ।
प्रश्न: आपके शब्द ज्ञानवर्धक हैं, आपका व्यवहार नेक है, आपकी कृपा सर्वशक्तिशाली है।
एम: मुझे इन सब बातों के बारे में कुछ नहीं पता और मुझे तुममें और मुझमें कोई फर्क नहीं दिखता। मेरा जीवन भी तुम्हारी तरह घटनाओं का एक सिलसिला है। फर्क सिर्फ इतना है कि मैं इन सब से अलग हूँ और क्षणिक दृश्यों को क्षणिक ही देखता हूँ, जबकि तुम चीजों से जुड़े रहते हो और उनके साथ आगे बढ़ते रहते हो।
प्रश्न: आपको इतना भावहीन किसने बनाया?

एम: कुछ खास नहीं। बस यूं ही हो गया कि मुझे अपने गुरु पर भरोसा था। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं अपने आप के सिवा कुछ नहीं हूं और मैंने उनकी बात मान ली। उन पर भरोसा करके मैंने वैसा ही व्यवहार किया और जो मैं नहीं था, जो मेरा नहीं था, उसकी परवाह करना छोड़ दिया।
प्रश्न: आप अपने शिक्षक पर पूरी तरह से भरोसा करने में भाग्यशाली क्यों थे, जबकि हमारा भरोसा नाममात्र का और मौखिक ही होता है?
एम: कौन कह सकता है? बस हो गया। चीज़ें बिना कारण और वजह के होती हैं, और आख़िरकार, इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि कौन क्या है? मेरे बारे में आपकी अच्छी राय सिर्फ़ आपकी राय है। आप इसे कभी भी बदल सकते हैं। राय को, चाहे वो आपकी अपनी ही क्यों न हो, महत्व क्यों देना?
प्रश्न: फिर भी, आप अलग हैं। आपका मन हमेशा शांत और प्रसन्न प्रतीत होता है। और आपके आसपास चमत्कार घटित होते रहते हैं।
एम: मुझे चमत्कारों के बारे में कुछ नहीं पता, और मैं सोचता हूँ कि क्या प्रकृति अपने नियमों में अपवादों को स्वीकार करती है, जब तक कि हम यह न मान लें कि सब कुछ चमत्कार है। जहाँ तक मेरे मन की बात है, ऐसा कुछ नहीं है। चेतना है जिसमें सब कुछ घटित होता है। यह बिल्कुल स्पष्ट है और हर किसी के अनुभव में है। आप बस ध्यान से नहीं देखते। ध्यान से देखें, और वही देखें जो मैं देखता हूँ।
प्रश्न: आपको क्या दिखाई देता है?
एम: मैं देख सकता हूँ कि आप भी अभी और यहीं देख सकते हैं, लेकिन आपका ध्यान गलत जगह केंद्रित है। आप स्वयं पर ध्यान नहीं देते। आपका मन केवल वस्तुओं, लोगों और विचारों में लगा रहता है, कभी स्वयं पर नहीं। स्वयं पर ध्यान केंद्रित करें, अपने अस्तित्व के प्रति सजग हों। देखें कि आप कैसे कार्य करते हैं, अपने कार्यों के उद्देश्यों और परिणामों पर गौर करें। अनजाने में आपने अपने चारों ओर जो कारागार बना लिया है, उसका अध्ययन करें। यह जानकर कि आप क्या नहीं हैं, आप स्वयं को जान पाएंगे। स्वयं तक पहुँचने का मार्ग अस्वीकृति और तिरस्कार से होकर गुजरता है। एक बात निश्चित है: वास्तविकता काल्पनिक नहीं है, यह मन की उपज नहीं है। यहाँ तक कि 'मैं हूँ' की भावना भी निरंतर नहीं है, हालाँकि यह एक उपयोगी संकेत है; यह दिखाता है कि कहाँ खोजना है, लेकिन क्या खोजना है यह नहीं। बस इस पर गौर करें। एक बार जब आप आश्वस्त हो जाते हैं कि आप अपने बारे में 'मैं हूँ' के अलावा कुछ भी सत्यपूर्वक नहीं कह सकते, और जिस पर उंगली उठाई जा सकती है, वह आपका स्वयं नहीं हो सकता, तो 'मैं हूँ' की आवश्यकता समाप्त हो जाती है - आप अब इस बात को शब्दों में व्यक्त करने के लिए उत्सुक नहीं रहते कि आप क्या हैं। आपको बस स्वयं को परिभाषित करने की प्रवृत्ति से छुटकारा पाना है। सभी परिभाषाएँ केवल आपके शरीर और उसकी अभिव्यक्तियों पर लागू होती हैं। एक बार शरीर के प्रति यह आसक्ति दूर हो जाए, तो आप सहजता और बिना किसी प्रयास के अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आएंगे। हम दोनों में केवल यही अंतर है कि मैं अपनी स्वाभाविक अवस्था से अवगत हूँ, जबकि आप असमंजस में हैं। जैसे सोने से बने आभूषणों में सोने की धूल से कोई लाभ नहीं होता, सिवाय तब जब मन ऐसा मान ले, वैसे ही हम एक ही अस्तित्व के हैं - हम केवल दिखावे में भिन्न हैं। हम इसे लगन से, खोजबीन से, प्रतिदिन और हर घंटे प्रश्न पूछकर, इस खोज में अपना जीवन समर्पित करके ही प्राप्त कर सकते हैं।

3. जीवंत वर्तमान

प्रश्नकर्ता: जैसा कि मैं देख सकता हूँ, मेरे शरीर में या मेरे वास्तविक अस्तित्व में कोई खामी नहीं है। ये दोनों मेरे वश में नहीं हैं और इन्हें सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो गड़बड़ हुई है वह है मेरा 'आंतरिक शरीर', चाहे इसे मन कह लें, चेतना कह लें, अंतःकरण कह लें, जो भी नाम हो। महाराज: आपको अपने दिमाग में क्या खराबी लगती है?
प्रश्न: यह बेचैन है, सुख की लालसा रखता है और दुख से डरता है।
एम: सुख की खोज करने और दुख से बचने में क्या बुराई है? सुख और दुख के किनारों के बीच जीवन की नदी बहती है। समस्या तभी पैदा होती है जब मन जीवन के साथ बहना बंद कर देता है और किनारों पर अटक जाता है। जीवन के साथ बहने का मेरा अर्थ है स्वीकार करना - जो आता है उसे आने दो और जो जाता है उसे जाने दो। इच्छा मत करो, डरो मत, जो घटित हो रहा है उसे देखो, क्योंकि तुम वह नहीं हो जो घटित होता है, तुम वह हो जिसके साथ घटित होता है। अंततः तुम देखने वाले भी नहीं हो। तुम वह परम संभाव्यता हो जिसकी सर्वव्यापी चेतना अभिव्यक्ति है।
प्रश्न: फिर भी, शरीर और आत्मा के बीच विचारों और भावनाओं का एक बादल छाया रहता है, जो न तो शरीर की सेवा करता है और न ही आत्मा की। ये विचार और भावनाएँ क्षणभंगुर, अस्थिर और अर्थहीन हैं, मात्र मानसिक धूल हैं जो अंधा कर देती हैं और गला घोंट देती हैं, फिर भी वे मौजूद हैं, अस्पष्टता पैदा करती हैं और विनाश करती हैं।
एम: बेशक, किसी घटना की स्मृति स्वयं घटना का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। न ही उसकी प्रत्याशा। वर्तमान घटना में कुछ असाधारण, कुछ अनूठापन होता है, जो पिछली या आने वाली घटनाओं में नहीं होता। उसमें एक जीवंतता होती है, एक वास्तविकता होती है; वह मानो प्रकाशित हो रही हो। उसमें वास्तविकता की छाप होती है, जो अतीत और भविष्य में नहीं होती।
प्रश्न: वर्तमान को वह 'वास्तविकता की छाप' किस चीज से मिलती है?
एम: वर्तमान घटना में ऐसा कुछ भी खास नहीं है जो इसे अतीत और भविष्य से अलग बनाता हो। एक पल के लिए अतीत वास्तविक था और भविष्य भी वैसा ही हो जाएगा। वर्तमान को इतना अलग क्या बनाता है? ज़ाहिर है, मेरी उपस्थिति। मैं वास्तविक हूँ क्योंकि मैं हमेशा वर्तमान में, अभी में हूँ, और जो कुछ भी अभी मेरे साथ है, वह मेरी वास्तविकता का हिस्सा है। अतीत स्मृति में है, भविष्य कल्पना में। वर्तमान घटना में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इसे वास्तविक बनाता हो। यह कोई साधारण, नियमित घटना हो सकती है, जैसे घड़ी की टिक-टिक। भले ही हम जानते हैं कि लगातार बजने वाली घंटियाँ एक जैसी होती हैं, फिर भी वर्तमान की टिक-टिक पिछली और अगली टिक-टिक से बिल्कुल अलग है - चाहे वह याद की गई हो या अपेक्षित हो। अभी में केंद्रित कोई भी चीज़ मेरे साथ है, क्योंकि मैं हमेशा उपस्थित हूँ; यह मेरी अपनी वास्तविकता है जिसे मैं वर्तमान घटना में समाहित करता हूँ।
प्रश्न: लेकिन हम याद की गई चीजों से ऐसे निपटते हैं जैसे वे वास्तविक हों। एम: हम यादों पर तभी ध्यान देते हैं जब वे वर्तमान में आती हैं। भूली हुई चीज़ को तब तक नहीं गिना जाता जब तक उसे याद न दिलाया जाए - जिसका अर्थ है, उसे वर्तमान में लाना।
प्रश्न: हाँ, मैं देख सकता हूँ कि वर्तमान में कोई अज्ञात कारक मौजूद है जो क्षणिक वास्तविकता को क्षणिक यथार्थता प्रदान करता है।

एम: आपको इसे अज्ञात कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप इसे निरंतर क्रियाशील देखते हैं। आपके जन्म से लेकर अब तक, क्या इसमें कभी कोई परिवर्तन आया है? चीजें और विचार तो निरंतर बदलते रहे हैं। लेकिन यह अहसास कि वर्तमान में जो है वही वास्तविक है, स्वप्न में भी कभी नहीं बदला है। प्रश्न: गहरी नींद में वर्तमान वास्तविकता का कोई अनुभव नहीं होता है। एम: गहरी नींद में जो खालीपन महसूस होता है, वह पूरी तरह से विशिष्ट यादों की कमी के कारण होता है। लेकिन एक सामान्य सुखद अनुभूति बनी रहती है। 'मैं गहरी नींद में था' और 'मैं अनुपस्थित था' कहने में अंतर होता है।
प्रश्न: हम अपने शुरुआती प्रश्न को दोहराते हैं: जीवन के स्रोत और जीवन की अभिव्यक्ति (जो शरीर है) के बीच मन और उसकी निरंतर परिवर्तनशील अवस्थाएँ हैं। मानसिक अवस्थाओं का प्रवाह अंतहीन, अर्थहीन और पीड़ादायक है। पीड़ा एक स्थिर कारक है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह दो पीड़ादायक अवस्थाओं के बीच का अंतराल मात्र है। इच्छा और भय जीवन के ताने-बाने हैं, और दोनों पीड़ा से बने हैं। हमारा प्रश्न यह है: क्या सुखी मन संभव है?
एम: इच्छा सुख की स्मृति है और भय दुख की स्मृति। दोनों मन को बेचैन कर देते हैं। सुख के क्षण दुख की धारा में मात्र अंतराल होते हैं। ऐसे में मन कैसे प्रसन्न रह सकता है?
प्रश्न: यह तब सच होता है जब हम सुख की कामना करते हैं या दुख की आशंका रखते हैं। लेकिन अप्रत्याशित, अनपेक्षित आनंद के क्षण भी होते हैं। शुद्ध आनंद, इच्छा से रहित - अनचाहा, अयोग्य, ईश्वर प्रदत्त।
एम: फिर भी, दर्द की पृष्ठभूमि में ही खुशी, खुशी होती है।
प्रश्न: क्या दर्द एक ब्रह्मांडीय तथ्य है, या विशुद्ध रूप से मानसिक? एम: ब्रह्मांड पूर्ण है और जहाँ पूर्णता है, जहाँ किसी चीज की कमी नहीं है, वहाँ पीड़ा क्या दे सकती है?
प्रश्न: ब्रह्मांड समग्र रूप से पूर्ण हो सकता है, लेकिन विवरणों में अपूर्ण हो सकता है।
एम: संपूर्ण के संदर्भ में देखा गया एक अंश भी पूर्ण होता है। केवल पृथक रूप से देखे जाने पर ही वह अपूर्ण हो जाता है और इस प्रकार पीड़ा का कारण बनता है। अलगाव किस कारण से होता है?
प्रश्न: बेशक, यह मन की सीमाओं के कारण है। मन किसी चीज को उसके अंशों में विभाजित करके ही देख पाता है, इसलिए वह संपूर्ण को नहीं देख पाता।
एम: ठीक है। मन, अपने स्वभाव से ही, विभाजन और विरोध करता है। क्या कोई ऐसा दूसरा मन हो सकता है, जो एकता और सामंजस्य स्थापित करे, जो अंश में संपूर्ण को देखे और अंश को संपूर्ण से पूर्णतः संबंधित समझे?
प्रश्न: दूसरा मन—उसे कहाँ ढूँढना चाहिए?
एम: सीमित, विभाजित और विरोधी मन से परे जाने में। उस मानसिक प्रक्रिया को समाप्त करने में जैसा कि हम जानते हैं। जब यह समाप्त होता है, तब उस मन का जन्म होता है।
प्रश्न: क्या उस स्थिति में सुख और दुःख की समस्या का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है?
एम: जैसा हम उन्हें जानते हैं, वैसा नहीं, न ही वांछनीय या घृणित। बल्कि यह प्रेम की अभिव्यक्ति और उसमें आने वाली बाधाओं का प्रश्न बन जाता है। समावेशी मन ही प्रेम की क्रिया है, जो परिस्थितियों से संघर्ष करता है, प्रारंभ में निराश होता है, लेकिन अंततः विजयी होता है।
प्रश्न: क्या आत्मा और शरीर के बीच प्रेम ही सेतु का काम करता है?

एम: और क्या? मन खाई का सृजन करता है, हृदय उसे पार करता है।

4. वास्तविक दुनिया मन की सीमाओं से परे है।

प्रश्नकर्ता: कई बार यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या ब्रह्मांड कारण-कार्य के नियम के अधीन है, या यह इस नियम से परे अस्तित्व में है और कार्य करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका मत है कि यह अकारण है, कि सब कुछ, चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, अकारण है, जिसका उद्भव और विलोपन किसी ज्ञात कारण के नहीं होता।
महाराज: कारणता का अर्थ है समय और स्थान के अनुसार घटनाओं का क्रम, चाहे स्थान भौतिक हो या मानसिक। समय, स्थान और कारणता मानसिक श्रेणियाँ हैं, जो मन के साथ उत्पन्न और समाप्त होती हैं।
प्रश्न: जब तक मन सक्रिय रहता है, कारण-कार्य संबंध एक वैध नियम है।
एम: हर मानसिक चीज़ की तरह, तथाकथित कारण-कार्य का नियम भी विरोधाभासी है। अस्तित्व में किसी भी वस्तु का कोई विशिष्ट कारण नहीं है; संपूर्ण ब्रह्मांड सबसे छोटी वस्तु के अस्तित्व में भी योगदान देता है; ब्रह्मांड के बिना कोई भी वस्तु वैसी नहीं हो सकती जैसी वह है। जब हर चीज़ का स्रोत और आधार ही हर चीज़ का एकमात्र कारण है, तो कारण-कार्य को सार्वभौमिक नियम कहना गलत है। ब्रह्मांड अपनी विषयवस्तु से बंधा नहीं है, क्योंकि इसकी संभावनाएं अनंत हैं; इसके अलावा, यह एक ऐसे सिद्धांत की अभिव्यक्ति है जो मौलिक रूप से पूर्णतः स्वतंत्र है।
प्रश्न: जी हाँ, यह स्पष्ट है कि अंततः किसी एक चीज़ को दूसरी चीज़ का एकमात्र कारण कहना सरासर गलत है। फिर भी, वास्तविक जीवन में हम हमेशा किसी परिणाम की प्राप्ति के उद्देश्य से ही क्रिया प्रारंभ करते हैं।
एम: जी हां, अज्ञानता के कारण इस तरह की बहुत सी गतिविधियां हो रही हैं। अगर लोगों को यह पता होता कि जब तक पूरा ब्रह्मांड किसी चीज को घटित नहीं करता, तब तक वह घटित नहीं हो सकती, तो वे कम ऊर्जा खर्च करके कहीं अधिक हासिल कर सकते थे।
प्रश्न: यदि सब कुछ कारणों की समग्रता की अभिव्यक्ति है, तो हम किसी उपलब्धि की दिशा में उद्देश्यपूर्ण कार्रवाई की बात कैसे कर सकते हैं? एम: उपलब्धि की प्रबल इच्छा भी संपूर्ण ब्रह्मांड की अभिव्यक्ति है। यह मात्र दर्शाती है कि किसी विशेष बिंदु पर ऊर्जा की क्षमता बढ़ गई है। समय का भ्रम ही कारण-कार्य संबंध की बात करने पर मजबूर करता है। जब अतीत और भविष्य को शाश्वत वर्तमान में एक समान प्रतिरूप के भागों के रूप में देखा जाता है, तो कारण-कार्य का सिद्धांत अपनी वैधता खो देता है और रचनात्मक स्वतंत्रता उसका स्थान ले लेती है।
प्रश्न: फिर भी, मुझे यह समझ में नहीं आता कि बिना किसी कारण के कोई चीज कैसे अस्तित्व में आ सकती है।
एम: जब मैं कहता हूँ कि कोई चीज़ बिना कारण के है, तो मेरा मतलब है कि वह किसी विशेष कारण के बिना भी हो सकती है। आपकी माँ का आपको जन्म देना आवश्यक था; लेकिन सूर्य और पृथ्वी के बिना आपका जन्म संभव नहीं था। यहाँ तक कि ये भी आपके जन्म की इच्छा के बिना आपके जन्म का कारण नहीं बन सकते थे। इच्छा ही जन्म देती है, नाम और रूप देती है। जो वांछनीय है, उसकी कल्पना की जाती है, उसे चाहा जाता है और वह मूर्त या बोधगम्य रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार वह संसार बनता है जिसमें हम रहते हैं, हमारा व्यक्तिगत संसार।

वास्तविक संसार मन की समझ से परे है; हम इसे अपनी इच्छाओं के जाल से देखते हैं, जो सुख और दुख, सही और गलत, आंतरिक और बाह्य में विभाजित है। ब्रह्मांड को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने के लिए, आपको इस जाल से बाहर निकलना होगा। ऐसा करना कठिन नहीं है, क्योंकि जाल में बहुत से छेद हैं। प्रश्न: छेदों से आपका क्या तात्पर्य है? और उन्हें कैसे खोजा जा सकता है? एम: इस जाल और इसमें मौजूद अनेक विरोधाभासों को देखो। तुम हर कदम पर कुछ करते हो और फिर उसे बिगाड़ देते हो। तुम शांति, प्रेम, सुख चाहते हो, लेकिन मेहनत करके पीड़ा, घृणा और युद्ध पैदा करते हो। तुम दीर्घायु चाहते हो, लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा खाते हो; तुम मित्रता चाहते हो, लेकिन शोषण करते हो। अपने जाल को ऐसे ही विरोधाभासों से बना हुआ देखो और उन्हें दूर करो— सिर्फ़ उन्हें देखने मात्र से ही वे दूर हो जाएँगे।
प्रश्न: चूंकि मेरे द्वारा विरोधाभास को देखने से वह घटित होता है, तो क्या मेरे देखने और उसके घटित होने के बीच कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है?
एम: कारणता, अवधारणा के रूप में भी, अराजकता पर लागू नहीं होती।
प्रश्न: इच्छा किस हद तक एक कारण कारक है?
एम: अनेकों में से एक। हर चीज़ के अनगिनत कारण होते हैं। लेकिन समस्त अस्तित्व का स्रोत अनंत संभावना, परम वास्तविकता है, जो आप में विद्यमान है और जो हर अनुभव पर अपनी शक्ति, प्रकाश और प्रेम बरसाती है। परन्तु, यह स्रोत स्वयं कारण नहीं है और कोई कारण स्रोत नहीं होता। इसीलिए मैं कहता हूँ कि सब कुछ अकारण है। आप किसी घटना के घटित होने का कारण जानने का प्रयास कर सकते हैं, लेकिन आप यह नहीं जान सकते कि वह घटना जैसी है वैसी क्यों है। कोई घटना जैसी है वैसी इसलिए है क्योंकि ब्रह्मांड जैसा है वैसा ही है।

5. जो जन्म लेता है, उसका मरना भी तय है।

प्रश्नकर्ता: क्या साक्षी-चेतना स्थायी होती है या नहीं?
महाराज: यह स्थायी नहीं है। ज्ञाता, ज्ञाता के साथ उदय और अस्त होता है।
जिसमें ज्ञाता और ज्ञाता दोनों उदय और अस्त होते हैं, वह काल से परे है।
स्थायी या शाश्वत शब्द इस पर लागू नहीं होते।
प्रश्न: नींद में न तो ज्ञात होता है, न ही ज्ञाता। शरीर को संवेदनशील और ग्रहणशील कौन बनाए रखता है?
एम: आप यह तो नहीं कह सकते कि ज्ञाता अनुपस्थित था। वस्तुओं और विचारों का अनुभव नहीं था, बस इतना ही। लेकिन अनुभव का अभाव भी एक प्रकार का अनुभव है। यह ऐसा ही है जैसे किसी अंधेरे कमरे में प्रवेश करके कहना: 'मुझे कुछ दिखाई नहीं देता'। जन्म से अंधा व्यक्ति अंधेरे का अर्थ नहीं जानता। इसी प्रकार, केवल ज्ञाता ही जानता है कि वह नहीं जानता। नींद तो बस स्मृति का एक क्षणिक अवरोध है। जीवन चलता रहता है।
प्रश्न: मृत्यु क्या है?
एम: यह किसी विशेष शरीर की जीवन प्रक्रिया में होने वाला परिवर्तन है। एकीकरण समाप्त होता है और विघटन शुरू हो जाता है।
प्रश्न: लेकिन ज्ञाता का क्या होगा? क्या शरीर के लुप्त होने के साथ ज्ञाता भी लुप्त हो जाता है?
एम: जिस प्रकार शरीर का ज्ञाता जन्म के समय प्रकट होता है, उसी प्रकार मृत्यु के समय वह विलीन हो जाता है।

प्रश्न: और कुछ भी शेष नहीं रहता?
एम: जीवन बना रहता है। चेतना को अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक वाहन और एक साधन की आवश्यकता होती है। जब जीवन एक और शरीर उत्पन्न करता है, तो एक और ज्ञाता अस्तित्व में आता है।
प्रश्न: क्या क्रमिक शरीर-ज्ञानियों या शरीर-मन के बीच कोई कारण-कार्य संबंध है?
एम: जी हाँ, एक ऐसी चीज़ है जिसे स्मृति शरीर या कारण शरीर कहा जा सकता है, जो सभी विचारों, इच्छाओं और कार्यों का रिकॉर्ड है। यह छवियों के एक बादल की तरह है जो आपस में जुड़े हुए हैं। प्रश्न: यह पृथक अस्तित्व की भावना क्या है?
एम: यह एक ही वास्तविकता का एक अलग शरीर में प्रतिबिंब है। इस प्रतिबिंब में असीम और असीम आपस में भ्रमित हो जाते हैं और उन्हें एक ही मान लिया जाता है। इस भ्रम को दूर करना ही योग का उद्देश्य है।
प्रश्न: क्या मृत्यु इस भ्रम को दूर नहीं कर देती?
एम: मृत्यु में केवल शरीर मरता है। जीवन नहीं मरता, चेतना नहीं मरती, वास्तविकता नहीं मरती। और मृत्यु के बाद जीवन उतना जीवंत कभी नहीं होता जितना मृत्यु के बाद होता है।
प्रश्न: लेकिन क्या किसी का पुनर्जन्म होता है?
एम: जो जन्म लेता है, उसका मरना तय है। केवल अजन्मा ही अमर है। वह क्या है जो कभी सोता नहीं और कभी जागता नहीं, और जिसकी धुंधली परछाई हमारी 'मैं' की भावना है?
प्रश्न: मुझे यह जानकारी कैसे मिलेगी?
एम: आप किसी भी चीज़ को कैसे खोजते हैं? उसमें अपना मन और हृदय लगाकर। रुचि होनी चाहिए और निरंतर स्मरण करना चाहिए। जो याद रखना ज़रूरी है उसे याद रखना ही सफलता का रहस्य है। लगन से ही आप उस तक पहुँच सकते हैं।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि केवल जानने की इच्छा रखना ही काफी है? निश्चित रूप से, योग्यता और अवसर दोनों की आवश्यकता होती है।
एम: ये सब लगन से हासिल होंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात है विरोधाभासों से मुक्त होना: लक्ष्य और मार्ग अलग-अलग स्तर पर नहीं होने चाहिए; जीवन और प्रकाश में कोई कलह नहीं होनी चाहिए; व्यवहार से आस्था का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। इसे ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, संपूर्णता कहिए; आपको पीछे नहीं हटना चाहिए, उलट-पुलट नहीं करनी चाहिए, जीती हुई ज़मीन को नहीं छोड़ना चाहिए। दृढ़ संकल्प और ईमानदारी से प्रयास आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचाएगा।
प्रश्न: दृढ़ता और ईमानदारी तो वरदान हैं, निश्चित रूप से! मुझमें तो इनका जरा सा भी अंश नहीं है।
एम: सब कुछ धीरे-धीरे मिलता जाएगा। पहले पहला कदम उठाओ। सभी आशीर्वाद भीतर से आते हैं। अपने भीतर झाँको। 'मैं हूँ' तुम्हें पता है। जितना समय तुम्हारे पास हो, उसके साथ रहो, जब तक कि तुम स्वतः ही उसमें वापस न लौट जाओ। इससे सरल और आसान कोई तरीका नहीं है।

6. ध्यान

प्रश्नकर्ता: सभी शिक्षक ध्यान करने की सलाह देते हैं। ध्यान का उद्देश्य क्या है?

महाराज: हम बाहरी जगत की इंद्रियों और कर्मों को तो जानते हैं, लेकिन अपने आंतरिक जगत के विचारों और भावनाओं के बारे में बहुत कम जानते हैं। ध्यान का प्राथमिक उद्देश्य अपने आंतरिक जीवन के प्रति सजग होना और उससे परिचित होना है। इसका अंतिम उद्देश्य जीवन और चेतना के स्रोत तक पहुंचना है। ध्यान का अभ्यास हमारे चरित्र पर गहरा प्रभाव डालता है। हम उस चीज़ के गुलाम होते हैं जिसे हम नहीं जानते; जिसे हम जानते हैं, उस पर हमारा अधिकार होता है। अपने भीतर किसी भी दोष या कमजोरी को खोजकर, उसके कारणों और कार्यप्रणाली को समझकर, हम उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं; अचेतन मन चेतन मन में आने पर विलीन हो जाता है। अचेतन मन के विलीन होने से ऊर्जा मुक्त होती है; मन संतुष्ट और शांत हो जाता है।
प्रश्न: शांत मन का क्या लाभ है?
एम: जब मन शांत होता है, तब हम स्वयं को शुद्ध साक्षी के रूप में जान पाते हैं। हम अनुभव और उसके अनुभवकर्ता से अलग होकर शुद्ध चेतना में खड़े हो जाते हैं, जो इन दोनों के बीच और परे है। आत्म-पहचान पर आधारित, स्वयं को कुछ समझने पर आधारित व्यक्तित्व, जैसे 'मैं यह हूँ, मैं वह हूँ', बना रहता है, लेकिन केवल वस्तुनिष्ठ जगत के एक भाग के रूप में। साक्षी के साथ उसका बोध टूट जाता है।
प्रश्न: जैसा कि मैं समझता हूँ, मैं अनेक स्तरों पर जीवन व्यतीत करता हूँ और प्रत्येक स्तर पर जीवन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। आत्मा स्वभाव से ही हर चीज़ में आनंदित होती है और उसकी ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित होती है। क्या ध्यान का उद्देश्य उच्च स्तरों पर ऊर्जा को अवरुद्ध करना या उन्हें वापस ऊपर की ओर धकेलना नहीं है, ताकि उच्च स्तर भी फल-फूल सकें? एम: यह स्तरों का मामला उतना नहीं है जितना गुणों का। ध्यान एक सात्विक क्रिया है और इसका उद्देश्य तमस (जड़ता) और रजस (गतिशीलता) का पूर्ण उन्मूलन करना है। शुद्ध सत्व (सामंजस्य) आलस्य और बेचैनी से पूर्ण मुक्ति है।
प्रश्न: सत्व को कैसे मजबूत और शुद्ध किया जाए?
एम: सत्व सदा शुद्ध और बलवान होता है। यह सूर्य के समान है। यह बादलों और धूल से ढका हुआ प्रतीत हो सकता है, लेकिन केवल देखने वाले के दृष्टिकोण से। सूर्य से नहीं, बल्कि आवरण के कारणों से निपटें।
प्रश्न: सत्व का क्या उपयोग है?
एम: सत्य, अच्छाई, सामंजस्य, सौंदर्य का क्या उपयोग है? वे स्वयं ही लक्ष्य हैं। वे सहजता से और बिना किसी प्रयास के प्रकट होते हैं, जब चीजों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है, उनमें हस्तक्षेप नहीं किया जाता, उन्हें अस्वीकार नहीं किया जाता, न ही उनकी चाहत की जाती है, न ही उनकी अवधारणा बनाई जाती है, बल्कि उन्हें पूर्ण जागरूकता के साथ अनुभव किया जाता है। ऐसी जागरूकता ही सत्व है। यह वस्तुओं और लोगों का उपयोग नहीं करती, बल्कि उन्हें पूर्ण बनाती है।
प्रश्न: चूंकि मैं सत्व को सुधार नहीं सकता, तो क्या मुझे केवल तमस और रजस से ही निपटना चाहिए? मैं उनसे कैसे निपट सकता हूँ?
एम: अपने भीतर और अपने ऊपर उनके प्रभाव को देखकर। उनके कार्य करने के तरीके के प्रति सचेत रहें, अपने विचारों, शब्दों और कर्मों में उनकी अभिव्यक्ति को देखें, और धीरे-धीरे आप पर उनकी पकड़ कम होती जाएगी और सत्व का निर्मल प्रकाश प्रकट होगा। यह न तो कठिन है और न ही लंबी प्रक्रिया; सफलता की एकमात्र शर्त है लगन।

7. मन
प्रश्नकर्ता: कुछ अत्यंत ज्ञानवान व्यक्तियों द्वारा लिखी गई कुछ अत्यंत रोचक पुस्तकें हैं, जिनमें संसार की मायावी प्रकृति का खंडन किया गया है (यद्यपि उसकी क्षणभंगुरता का नहीं)। उनके अनुसार, निम्नतम से उच्चतम तक प्राणियों का एक क्रम है; प्रत्येक स्तर पर जीव की जटिलता चेतना की गहराई, व्यापकता और तीव्रता को दर्शाती है, बिना किसी प्रत्यक्ष या ज्ञात परिणति के। एक सर्वोच्च नियम सर्वत्र लागू होता है: चेतना के विकास और संवर्धन तथा उसकी अनंत संभावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए रूपों का विकास।
महाराज: यह सच हो भी सकता है और नहीं भी। अगर सच है भी, तो यह केवल मन के दृष्टिकोण से ही सच है, लेकिन वास्तव में संपूर्ण ब्रह्मांड (महाकाश) केवल चेतना (चिदाकाश) में विद्यमान है, जबकि मैं परम (परमकाश) में विराजमान हूँ। शुद्ध अस्तित्व में चेतना उत्पन्न होती है; चेतना में ही संसार प्रकट होता है और विलीन हो जाता है। जो कुछ भी है, वह मैं हूँ, जो कुछ भी है, वह मेरा है। सभी आरंभों से पहले, सभी अंतों के बाद - मैं हूँ। सब कुछ मुझमें, उस 'मैं हूँ' में विद्यमान है, जो प्रत्येक जीव में प्रकाशमान है। मेरे बिना अस्तित्वहीनता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो कुछ भी घटित होता है, मुझे उसका साक्षी बनना ही होता है।
प्रश्न: आप दुनिया के सामने अपने अस्तित्व को क्यों नकारते हैं?
एम: मैं दुनिया को नकारता नहीं हूँ। मैं इसे चेतना में प्रकट होते हुए देखता हूँ, जो अज्ञात की विशालता में ज्ञात की समग्रता है।
जो शुरू होता है और खत्म होता है, वह महज़ एक आभास है। दुनिया को आभास तो दिया जा सकता है, लेकिन उसका अस्तित्व नहीं है। यह आभास समय के किसी पैमाने पर बहुत लंबे समय तक टिक सकता है, और दूसरे पैमाने पर बहुत कम समय तक, लेकिन अंततः इसका अंत एक ही होता है। जो कुछ भी समयबद्ध है, वह क्षणिक है और उसका कोई अस्तित्व नहीं है।
प्रश्न: आप निश्चित रूप से अपने आस-पास की वास्तविक दुनिया को देखते होंगे। आप तो बिल्कुल सामान्य व्यवहार करते प्रतीत होते हैं!
एम: आपको ऐसा ही लगता है। आपके मामले में जो चीज़ चेतना के पूरे क्षेत्र को घेर लेती है, वह मेरे लिए एक मात्र कण है। दुनिया बस एक पल के लिए ही रहती है। यह आपकी स्मृति है जो आपको यह सोचने पर मजबूर करती है कि दुनिया निरंतर बनी रहती है। मैं स्वयं स्मृति के सहारे नहीं जीता। मैं दुनिया को वैसे ही देखता हूँ जैसी वह है, चेतना में एक क्षणिक उपस्थिति।
प्रश्न: आपकी चेतना में?
एम: 'मैं' और 'मेरा' की सारी धारणा, यहाँ तक कि 'मैं हूँ' की भी, चेतना में ही निहित है।
प्रश्न: तो क्या आपका ‘परमकाश’ (परम सत्ता) अचेतन है?
एम: अचेतनता का विचार केवल चेतनता में ही विद्यमान होता है।
प्रश्न: तो फिर, आपको कैसे पता चलता है कि आप सर्वोच्च अवस्था में हैं? एम: क्योंकि मैं इसमें हूं। यही एकमात्र स्वाभाविक अवस्था है।
प्रश्न: क्या आप इसका वर्णन कर सकते हैं?
एम: केवल निषेध द्वारा, अकारण, स्वतंत्र, असंबंधित, अविभाजित, असंबद्ध, अविचल, निर्विवाद, प्रयास से अप्राप्य होने के कारण। प्रत्येक सकारात्मक परिभाषा स्मृति से उत्पन्न होती है और इसलिए अनुपयोगी है। फिर भी मेरी

अवस्था सर्वोच्च रूप से वास्तविक है और इसलिए संभव, प्राप्य और प्राप्त करने योग्य है।
प्रश्न: क्या आप कालजयी रूप से एक अमूर्त अवधारणा में लीन नहीं हैं? एम: अमूर्तता मानसिक और शाब्दिक होती है और नींद या बेहोशी में लुप्त हो जाती है; यह समय के साथ पुनः प्रकट होती है; मैं वर्तमान क्षण में, कालविहीन रूप से अपनी ही अवस्था (स्वरूप) में विद्यमान हूँ। अतीत और भविष्य केवल मन में हैं - मैं वर्तमान में हूँ।
प्रश्न: दुनिया भी अब वैसी ही है।
एम: कौन सी दुनिया?
प्रश्न: हमारे आसपास की दुनिया।
एम: ये तुम्हारी दुनिया है, मेरी नहीं। तुम मेरे बारे में क्या जानते हो, जब मेरी बातचीत भी तुम्हारी ही दुनिया में होती है? तुम्हारे पास ये मानने का कोई कारण नहीं है कि मेरी दुनिया तुम्हारी दुनिया जैसी है। मेरी दुनिया वास्तविक है, सच्ची है, जैसी तुम समझते हो, जबकि तुम्हारी दुनिया तुम्हारे मन की स्थिति के अनुसार प्रकट और लुप्त होती रहती है। तुम्हारी दुनिया कुछ पराई है, और तुम उससे डरते हो। मेरी दुनिया मैं खुद हूँ। मैं अपने घर में हूँ।
प्रश्न: यदि आप ही संसार हैं, तो आप इसके प्रति सचेत कैसे हो सकते हैं? क्या चेतना का विषय उसके लक्ष्य से भिन्न नहीं होता?
एम: चेतना और संसार एक साथ प्रकट और लुप्त होते हैं, इसलिए वे एक ही अवस्था के दो पहलू हैं।
प्रश्न: मैं नींद में नहीं हूँ, और दुनिया चलती रहती है।
एम: आपको कैसे पता?
प्रश्न: जागने पर मुझे पता चलता है। मेरी स्मृति मुझे बताती है।
एम: स्मृति मन में होती है। नींद में भी मन सक्रिय रहता है।
प्रश्न: यह आंशिक रूप से स्थगित है।
एम: लेकिन इससे दुनिया के प्रति उसका नजरिया नहीं बदलता। जब तक मन है, तब तक शरीर और दुनिया भी है। आपकी दुनिया मन द्वारा निर्मित है, व्यक्तिपरक है, मन के भीतर समाहित है, खंडित है, क्षणिक है, व्यक्तिगत है, और स्मृति के धागे से टिकी हुई है।
प्रश्न: तो क्या आपका भी ऐसा ही है?
एम: ओह नहीं। मैं वास्तविकता की दुनिया में रहती हूँ, जबकि तुम्हारी कल्पना की दुनिया है। तुम्हारी दुनिया निजी, एकांत, अविभाज्य, पूरी तरह से तुम्हारी अपनी है। कोई उसमें प्रवेश नहीं कर सकता, कोई तुम्हारी तरह नहीं देख सकता, तुम्हारी तरह नहीं सुन सकता, तुम्हारी भावनाओं को महसूस नहीं कर सकता और तुम्हारे जैसे विचार नहीं सोच सकता। तुम्हारी दुनिया में तुम सचमुच अकेले हो, अपने निरंतर बदलते सपने में घिरे हुए, जिसे तुम जीवन का हिस्सा मानते हो। मेरी दुनिया खुली दुनिया है, सबके लिए समान, सबके लिए सुलभ। मेरी दुनिया में समुदाय है, अंतर्दृष्टि है, प्रेम है, वास्तविक गुण है; व्यक्ति ही संपूर्ण है, संपूर्णता व्यक्ति में ही समाहित है। सब एक हैं और एक ही सब है।
प्रश्न: क्या आपकी दुनिया भी मेरी तरह चीजों और लोगों से भरी हुई है?
एम: नहीं, यह पूरी तरह से मेरे बारे में है।
प्रश्न: लेकिन क्या आप भी हमारी तरह देख और सुन पाते हैं?

एम: हाँ, मुझे लगता है कि मैं सुनता, देखता, बोलता और काम करता हूँ, लेकिन मेरे लिए यह सब बस होता है, जैसे आपके लिए पाचन या पसीना आना होता है। शरीर-मन की मशीन इसे संभालती है, लेकिन मुझे इससे अलग रखती है। जैसे आपको बाल बढ़ने की चिंता नहीं होती, वैसे ही मुझे शब्दों और कार्यों की चिंता नहीं होती। ये सब बस होते रहते हैं और मुझे इनसे कोई लेना-देना नहीं होता, क्योंकि मेरी दुनिया में कभी कुछ गलत नहीं होता।

8. आत्मा मन से परे है

प्रश्नकर्ता: बचपन में मुझे अक्सर परमानंद की अवस्था का अनुभव होता था; बाद में ये अवस्थाएँ समाप्त हो गईं, लेकिन भारत आने के बाद से ये फिर से प्रकट होने लगी हैं, विशेष रूप से आपसे मिलने के बाद। फिर भी, ये अवस्थाएँ, चाहे कितनी भी अद्भुत क्यों न हों, स्थायी नहीं होतीं। ये आती-जाती रहती हैं और पता नहीं कब वापस आएंगी।
महाराज: जो मन स्वयं स्थिर नहीं है, उसमें कोई चीज कैसे स्थिर रह सकती है? प्रश्न: मैं अपने मन को स्थिर कैसे कर सकता हूँ?
एम: एक अस्थिर मन स्वयं को स्थिर कैसे कर सकता है? बेशक नहीं। मन का स्वभाव ही भटकना है। आप केवल इतना ही कर सकते हैं कि चेतना का केंद्र मन से परे स्थानांतरित करें।
प्रश्न: यह कैसे किया जाता है?
एम: 'मैं हूं' के विचार को छोड़कर सभी विचारों को अस्वीकार करें। शुरुआत में मन विद्रोह करेगा, लेकिन धैर्य और दृढ़ता से वह शांत हो जाएगा। एक बार शांत हो जाने पर, चीजें स्वतः ही और स्वाभाविक रूप से घटित होने लगेंगी, बिना आपके किसी हस्तक्षेप के।
प्रश्न: क्या मैं अपने मन के साथ होने वाले इस लंबे संघर्ष से बच सकता हूँ? एम: हाँ, आप कर सकते हैं। बस अपने जीवन को वैसे ही जिएं जैसे वह आता है, लेकिन सतर्कता और सावधानी से, हर चीज को वैसे ही होने दें जैसे वह घटित होती है, स्वाभाविक चीजों को स्वाभाविक तरीके से करें, दुख और सुख का अनुभव करें - जैसा जीवन लाता है। यह भी एक तरीका है।
प्रश्न: अच्छा, तो फिर मैं शादी कर सकता हूँ, बच्चे पैदा कर सकता हूँ, व्यवसाय चला सकता हूँ... खुश रह सकता हूँ।
एम: बिल्कुल। आप खुश हों या न हों, इसे सहजता से लें।
प्रश्न: फिर भी मैं खुशी चाहता हूँ।
एम: सच्ची खुशी उन चीजों में नहीं मिल सकती जो बदलती और नष्ट हो जाती हैं।
सुख और दुख का निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है। खुशी स्वयं से आती है और केवल स्वयं में ही पाई जा सकती है। अपने वास्तविक स्वरूप को खोजो, बाकी सब कुछ अपने आप मिल जाएगा।
प्रश्न: यदि मेरा वास्तविक स्वरूप शांति और प्रेम है, तो यह इतना बेचैन क्यों है?
एम: आपका वास्तविक अस्तित्व बेचैन नहीं है, बल्कि मन में उसका प्रतिबिंब बेचैन दिखाई देता है क्योंकि मन बेचैन है। यह ठीक वैसे ही है जैसे हवा से हिलते पानी में चंद्रमा का प्रतिबिंब। इच्छा की हवा मन को झकझोर देती है और 'मैं', जो मन में आत्मा का प्रतिबिंब मात्र है, परिवर्तनशील प्रतीत होता है। लेकिन गति, बेचैनी, सुख और दुख के ये सभी विचार मन में ही हैं। आत्मा मन से परे है, सजीव है, पर उदासीन है।

प्रश्न: वहां कैसे पहुंचा जाए?
एम: आप स्वयं हैं, यहीं और अभी। मन को अकेला छोड़ दें, जागरूक और उदासीन खड़े रहें और आप महसूस करेंगे कि सतर्क लेकिन अनासक्त होकर, घटनाओं को आते- जाते देखना, आपके वास्तविक स्वभाव का एक पहलू है।
प्रश्न: अन्य पहलू क्या हैं?
एम: इसके पहलू अनंत हैं। एक को समझ लो, सब समझ आ जाएगा।
प्रश्न: मुझे कुछ ऐसा बताएं जिससे मुझे मदद मिल सके।
एम: आपको सबसे अच्छी तरह पता है कि आपको क्या चाहिए!
प्रश्न: मैं बेचैन हूँ। मुझे शांति कैसे मिल सकती है?
एम: आपको शांति की आवश्यकता किसलिए है?
प्रश्न: खुश रहना।
एम: क्या अब आप खुश नहीं हैं?
प्रश्न: नहीं, मैं नहीं हूँ।
एम: आपको किस बात से दुख होता है?
प्रश्न: मेरे पास वह है जो मैं नहीं चाहता, और मैं वह चाहता हूँ जो मेरे पास नहीं है।
एम: आप इसे उलट क्यों नहीं देते: जो आपके पास है उसकी चाह रखें और जो आपके पास नहीं है उसकी परवाह न करें?
प्रश्न: मुझे सुखद चीजें चाहिए और कष्टदायक चीजें नहीं चाहिए।
एम: आपको कैसे पता चलता है कि क्या सुखद है और क्या नहीं?
प्रश्न: बेशक, पूर्व अनुभव के आधार पर।
एम: स्मृति के मार्गदर्शन में आप सुखद चीजों का पीछा करते रहे हैं और अप्रिय चीजों से दूर भागते रहे हैं। क्या आप सफल हुए हैं?
प्रश्न: नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया है। सुख क्षणिक होता है। दर्द फिर से शुरू हो जाता है।
एम: कौन सा दर्द?
प्रश्न: सुख की इच्छा और पीड़ा का भय, दोनों ही कष्ट की अवस्थाएँ हैं। क्या विशुद्ध सुख की कोई अवस्था भी हो सकती है?
एम: हर सुख, चाहे शारीरिक हो या मानसिक, के लिए एक साधन की आवश्यकता होती है। शारीरिक और मानसिक दोनों साधन भौतिक होते हैं, वे थक जाते हैं और घिस जाते हैं। उनसे मिलने वाला सुख स्वाभाविक रूप से तीव्रता और अवधि में सीमित होता है। पीड़ा ही आपके सभी सुखों की पृष्ठभूमि है। आप उन्हें इसलिए चाहते हैं क्योंकि आप पीड़ा सहते हैं। दूसरी ओर, सुख की खोज ही पीड़ा का कारण है। यह एक दुष्चक्र है।
प्रश्न: मुझे अपनी उलझन का कारण तो समझ में आ रहा है, लेकिन इससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं दिख रहा।
एम: इस प्रक्रिया की जांच ही रास्ता दिखाती है। आखिरकार, आपकी उलझन तो सिर्फ आपके दिमाग में है, जिसने अब तक कभी उलझन के खिलाफ विद्रोह नहीं किया और न ही उस पर काबू पाया। इसने तो सिर्फ दर्द के खिलाफ विद्रोह किया है। प्रश्न: तो, मेरे पास भ्रमित रहने के अलावा और कोई चारा नहीं है?
एम: सतर्क रहें। सवाल करें, अवलोकन करें, जांच-पड़ताल करें, भ्रम के बारे में जितना हो सके उतना सीखें, यह कैसे काम करता है, यह आप पर और दूसरों पर क्या प्रभाव डालता है। भ्रम को स्पष्ट रूप से समझने से आप भ्रम से मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न: जब मैं अपने भीतर झांकता हूँ, तो मुझे सबसे प्रबल इच्छा एक स्मारक बनाने की, कुछ ऐसा निर्माण करने की मिलती है जो मेरे बाद भी कायम रहे। यहाँ तक कि जब मैं घर, पत्नी और बच्चे के बारे में सोचता हूँ, तो इसका कारण यही है कि यह मेरे अस्तित्व का एक स्थायी, ठोस प्रमाण है।
एम: ठीक है, अपना एक स्मारक बनाइए। आप इसे कैसे बनाने का प्रस्ताव रखते हैं?
प्रश्न: इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता कि मैं क्या बनाता हूं, जब तक कि वह स्थायी हो।
एम: आप स्वयं देख सकते हैं कि कुछ भी स्थायी नहीं है। सब कुछ घिस जाता है, टूट जाता है, घुल जाता है। जिस ज़मीन पर आप इमारत बनाते हैं, वह भी ढह जाती है। आप ऐसी कौन सी इमारत बना सकते हैं जो इन सबसे भी अधिक समय तक टिकी रहे? प्रश्न: बौद्धिक और मौखिक रूप से, मैं इस बात से अवगत हूँ कि सब कुछ क्षणभंगुर है। फिर भी, किसी न किसी तरह मेरा हृदय स्थायित्व चाहता है। मैं कुछ ऐसा बनाना चाहता हूँ जो स्थायी हो।
एम: तो फिर आपको इसे किसी टिकाऊ चीज़ से बनाना होगा। आपके पास ऐसा क्या है जो टिकाऊ है? न तो आपका शरीर और न ही आपका मन टिकाऊ है। आपको कहीं और देखना होगा।
प्रश्न: मुझे स्थायित्व की बहुत इच्छा है, लेकिन मुझे यह कहीं नहीं मिलता। एम: क्या आप स्वयं स्थायी नहीं हैं?
प्रश्न: मेरा जन्म हुआ है, मेरी मृत्यु होगी।
एम: क्या आप सचमुच कह सकते हैं कि जन्म से पहले आपका अस्तित्व नहीं था और क्या मृत्यु के बाद आप कह सकते हैं: 'अब मैं नहीं रहा'? आप अपने अनुभव से यह नहीं कह सकते कि आपका अस्तित्व नहीं है। आप केवल इतना कह सकते हैं, 'मैं हूँ'। दूसरे भी आपको यह नहीं कह सकते कि 'आप नहीं रहे'।
प्रश्न: नींद में 'मैं हूं' जैसी कोई चीज नहीं होती।
एम: ऐसे व्यापक बयान देने से पहले, अपनी जागृत अवस्था का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें। आप जल्द ही पाएंगे कि इसमें कई कमियां हैं, जब मस्तिष्क बिल्कुल खाली हो जाता है। ध्यान दें कि पूरी तरह जागृत अवस्था में भी आपको कितना कम याद रहता है। आपको बस याद नहीं रहता। स्मृति में कमी का मतलब यह नहीं है कि चेतना में भी कमी है।
प्रश्न: क्या मैं अपनी गहरी नींद की अवस्था को याद कर सकता हूँ?
एम: बिल्कुल! जागते समय होने वाली अनमनेपन की अवधियों को समाप्त करके आप धीरे-धीरे उस लंबे अंतराल को भी समाप्त कर देंगे, जिसे आप नींद कहते हैं।
आपको इस बात का एहसास होगा कि आप सो रहे हैं।
प्रश्न: फिर भी, स्थायित्व की समस्या, अस्तित्व की निरंतरता की समस्या का समाधान नहीं हुआ है।
एम: स्थायित्व तो बस एक विचार है, जो समय की क्रिया से उत्पन्न होता है।
समय भी स्मृति पर निर्भर करता है। स्थायित्व से आपका तात्पर्य अनंत काल तक अचूक स्मृति से है। आप मन को अमर बनाना चाहते हैं, जो संभव नहीं है। प्रश्न: तो फिर शाश्वत क्या है?
एम: जो समय के साथ नहीं बदलता। आप किसी क्षणभंगुर वस्तु को अमर नहीं बना सकते - केवल अपरिवर्तनीय ही शाश्वत है।
प्रश्न: मैं आपकी बात का सामान्य अर्थ समझ गया हूँ। मुझे और ज्ञान की लालसा नहीं है। मुझे बस शांति चाहिए।
एम: आप जो चाहें, मांगने पर आपको मनचाही शांति मिल सकती है।

प्रश्न: मैं पूछ रहा हूँ।
एम: आपको पूरे मन से प्रार्थना करनी चाहिए और एक एकीकृत जीवन जीना चाहिए।
प्रश्न: कैसे?
एम: अपने मन को अशांत करने वाली हर चीज से खुद को अलग कर लो। मन की शांति भंग करने वाली हर चीज का त्याग कर दो। अगर तुम्हें शांति चाहिए, तो उसे अर्जित करो।
प्रश्न: निःसंदेह, शांति का अधिकार सभी को है।
एम: इसके हकदार केवल वही लोग हैं जो इसे भंग नहीं करते।
प्रश्न: मैं किस प्रकार से शांति भंग करता हूँ?

एम: अपनी इच्छाओं और भय का गुलाम बनकर।
प्रश्न: क्या तब भी जब वे उचित हों?
एम: अज्ञान या अनजाने में उत्पन्न भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ कभी उचित नहीं होतीं। शांत मन और निर्मल हृदय की तलाश करें। आपको बस इतना करना है कि चुपचाप सतर्क रहें और अपने वास्तविक स्वरूप की खोज करते रहें। शांति का यही एकमात्र मार्ग है।

9. स्मृति की प्रतिक्रियाएँ

प्रश्नकर्ता: कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्मांड की रचना हुई है। कुछ अन्य कहते हैं कि यह शाश्वत रूप से विद्यमान है और निरंतर रूपांतरित होता रहता है। कुछ कहते हैं कि यह शाश्वत नियमों के अधीन है। कुछ तो कारण-कार्य संबंध को भी नकारते हैं। कुछ कहते हैं कि संसार वास्तविक है। अन्य कहते हैं कि इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।
महाराज: आप किस दुनिया के बारे में पूछ रहे हैं?
प्रश्न: बेशक, मेरी धारणाओं की दुनिया।
एम: आप जिस दुनिया को देख सकते हैं, वह वास्तव में बहुत छोटी दुनिया है। और यह पूरी तरह से निजी है। इसे एक सपना समझिए और बात यहीं खत्म कीजिए।
प्रश्न: मैं इसे सपना कैसे मान सकता हूँ? सपना तो कभी टिकता नहीं है।
एम: आपकी अपनी दुनिया कब तक टिकेगी?
प्रश्न: आखिरकार, मेरी छोटी सी दुनिया तो संपूर्ण दुनिया का ही एक हिस्सा है।
एम: क्या संपूर्ण संसार की अवधारणा आपके निजी संसार का ही एक हिस्सा नहीं है? ब्रह्मांड आपको यह बताने नहीं आता कि आप उसका हिस्सा हैं। यह आप ही हैं जिसने अपने आप को एक हिस्से के रूप में समाहित करने के लिए एक समग्रता का निर्माण किया है। वास्तव में, आप केवल अपने निजी संसार को ही जानते हैं, चाहे आपने उसे अपनी कल्पनाओं और अपेक्षाओं से कितना भी सजाया-संवारा हो। प्रश्न: निश्चित रूप से, धारणा कल्पना नहीं है!
एम: और क्या? बोध ही पहचान है, है ना? किसी पूरी तरह अपरिचित चीज़ को महसूस तो किया जा सकता है, लेकिन उसका बोध नहीं किया जा सकता। बोध में स्मृति शामिल होती है।
प्रश्न: ठीक है, लेकिन स्मृति इसे भ्रम नहीं बना देती।
एम: बोध, कल्पना, अपेक्षा, पूर्वानुमान, भ्रम—ये सभी स्मृति पर आधारित हैं। इनके बीच शायद ही कोई सीमा रेखा हो। ये सब आपस में विलीन हो जाते हैं।
ये सभी स्मृति की प्रतिक्रियाएँ हैं।

प्रश्न: फिर भी, मेरी दुनिया की वास्तविकता को साबित करने के लिए स्मृति मौजूद है।
एम: आपको कितना याद है? पिछले महीने की 30 तारीख को आप क्या सोच रहे थे, क्या कह रहे थे और क्या कर रहे थे, उसे याद करके लिखने की कोशिश करें।
प्रश्न: जी हां, एक रिक्त स्थान है।
एम: यह इतना बुरा नहीं है। आपको बहुत कुछ याद रहता है - अवचेतन स्मृति आपके आस-पास की दुनिया को इतना परिचित बना देती है।
प्रश्न: मैंने स्वीकार किया है कि जिस दुनिया में मैं रहता हूँ वह व्यक्तिपरक और पक्षपातपूर्ण है। आपका क्या कहना है? आप किस तरह की दुनिया में रहते हैं?
एम: मेरी दुनिया बिल्कुल तुम्हारी दुनिया जैसी है। मैं देखता हूँ, सुनता हूँ, महसूस करता हूँ, सोचता हूँ, बोलता हूँ और अपनी समझ के अनुसार काम करता हूँ, ठीक तुम्हारी तरह। लेकिन तुम्हारे लिए यह सब कुछ है, मेरे लिए कुछ भी नहीं। दुनिया को अपना हिस्सा मानते हुए, मैं इस पर उतना ही ध्यान देता हूँ जितना तुम खाए हुए भोजन पर देते हो। खाना बनते और खाते समय, भोजन तुमसे अलग होता है और तुम्हारा ध्यान उस पर होता है; निगलने के बाद, तुम उसके प्रति पूरी तरह बेखबर हो जाते हो। मैंने दुनिया को खा लिया है और मुझे अब इसके बारे में सोचने की ज़रूरत नहीं है।
प्रश्न: क्या इससे आप पूरी तरह से गैरजिम्मेदार नहीं हो जाते?
एम: मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? मैं उस चीज़ को कैसे चोट पहुँचा सकता हूँ जो मुझसे एक है? इसके विपरीत, दुनिया के बारे में सोचे बिना, मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह दुनिया के लिए ही लाभदायक होता है। जैसे शरीर अचेतन रूप से स्वयं को ठीक कर लेता है, वैसे ही मैं भी निरंतर दुनिया को सुधारने में लगा रहता हूँ।
प्रश्न: फिर भी, क्या आप विश्व की अपार पीड़ा से अवगत हैं?
एम: बिल्कुल, मैं तुमसे कहीं ज्यादा हूँ।
प्रश्न: तो फिर आप क्या करते हैं?
एम: मैं इसे ईश्वर की दृष्टि से देखता हूं और पाता हूं कि सब कुछ ठीक है। प्रश्न: आप कैसे कह सकते हैं कि सब कुछ ठीक है? युद्धों, शोषण, नागरिक और राज्य के बीच क्रूर संघर्ष को देखिए।
एम: ये सभी दुख मनुष्य द्वारा निर्मित हैं और इन्हें समाप्त करना मनुष्य के वश में है। ईश्वर मनुष्य को उसके कर्मों के फल दिखाकर और संतुलन बहाल करने की मांग करके उसकी सहायता करता है। कर्म ही वह नियम है जो धर्म की ओर ले जाता है; यह ईश्वर का उपचार करने वाला हाथ है।

10. साक्षी बनना

प्रश्नकर्ता: मेरी बहुत सारी इच्छाएँ हैं और मैं उन्हें पूरा करना चाहता हूँ। मैं अपनी इच्छाएँ कैसे पूरी कर सकता हूँ?
महाराज: क्या आप अपनी इच्छाओं को पूरा करने के योग्य हैं? किसी न किसी रूप में आपको अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मेहनत करनी होगी। ऊर्जा लगाइए और परिणाम की प्रतीक्षा कीजिए।
प्रश्न: मुझे ऊर्जा कहाँ से मिलेगी?
एम: इच्छा स्वयं ऊर्जा है।
प्रश्न: तो फिर हर इच्छा पूरी क्यों नहीं होती?

एम: शायद यह उतना मजबूत और टिकाऊ नहीं था।
प्रश्न: हाँ, यही मेरी समस्या है। मुझे चीज़ें चाहिए, लेकिन जब काम करने की बात आती है तो मैं आलसी हो जाता हूँ।
एम: जब आपकी इच्छा स्पष्ट और प्रबल न हो, तो वह साकार नहीं हो सकती। इसके अलावा, यदि आपकी इच्छाएँ व्यक्तिगत हैं, केवल आपके अपने आनंद के लिए हैं, तो आप उन्हें जो ऊर्जा देते हैं वह स्वाभाविक रूप से सीमित होती है; यह आपके पास मौजूद ऊर्जा से अधिक नहीं हो सकती।
प्रश्न: फिर भी, अक्सर आम लोग अपनी इच्छाओं को प्राप्त कर लेते हैं।
एम: बहुत लंबे समय से इसकी चाहत रखने के बावजूद भी, उनकी उपलब्धियां सीमित हैं।
प्रश्न: और निस्वार्थ इच्छाओं के बारे में क्या?
एम: जब आप जनहित की कामना करते हैं, तो पूरी दुनिया आपके साथ मिलकर कामना करती है। मानवता की इच्छा को अपनी इच्छा बना लें और उसके लिए काम करें। इसमें आप कभी असफल नहीं होंगे।
प्रश्न: मानवता ईश्वर की रचना है, मेरी नहीं। मैं तो केवल अपने बारे में सोचता हूँ। क्या मुझे अपनी जायज़ इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार नहीं है? इनसे किसी को कोई हानि नहीं होगी। मेरी इच्छाएँ जायज़ हैं। ये उचित इच्छाएँ हैं, तो फिर ये पूरी क्यों नहीं होतीं?
एम: इच्छाएँ परिस्थितियों के अनुसार सही या गलत होती हैं; यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप उन्हें किस नजरिए से देखते हैं। सही और गलत के बीच अंतर करना केवल व्यक्ति विशेष के लिए ही मायने रखता है।
प्रश्न: इस प्रकार का भेद करने के लिए दिशानिर्देश क्या हैं? मुझे कैसे पता चलेगा कि मेरी कौन सी इच्छाएँ सही हैं और कौन सी गलत?
एम: आपके मामले में, दुख की ओर ले जाने वाली इच्छाएँ गलत हैं और सुख की ओर ले जाने वाली इच्छाएँ सही हैं। लेकिन आपको दूसरों को नहीं भूलना चाहिए। उनके सुख-दुख भी मायने रखते हैं।
प्रश्न: परिणाम तो भविष्य में आएंगे। मुझे कैसे पता चलेगा कि वे क्या होंगे?
एम: अपने दिमाग का इस्तेमाल करो। याद रखो। गौर करो। तुम दूसरों से अलग नहीं हो। उनके ज़्यादातर अनुभव तुम्हारे लिए भी मायने रखते हैं। स्पष्ट और गहराई से सोचो, अपनी इच्छाओं की पूरी संरचना और उनके परिणामों को समझो। ये तुम्हारी मानसिक और भावनात्मक संरचना का अहम हिस्सा हैं और तुम्हारे कार्यों को गहराई से प्रभावित करते हैं। याद रखो, जिसे तुम नहीं जानते उसे छोड़ नहीं सकते। खुद से आगे बढ़ने के लिए, तुम्हें खुद को जानना होगा। प्रश्न: स्वयं को जानने का क्या अर्थ है? स्वयं को जानने से मुझे वास्तव में क्या पता चलता है?
एम: वो सब कुछ जो तुम नहीं हो।
प्रश्न: और मैं जो हूं, वह नहीं?
एम: आप जो हैं, वही तो आप पहले से ही हैं। यह जानकर कि आप क्या नहीं हैं, आप उससे मुक्त हो जाते हैं और अपनी स्वाभाविक अवस्था में बने रहते हैं। यह सब कुछ सहजता और बिना किसी प्रयास के होता है।
प्रश्न: और मुझे क्या पता चलता है?
एम: आपको पता चलता है कि खोजने जैसा कुछ है ही नहीं। आप जो हैं वही हैं, बस इतना ही।
प्रश्न: मुझे समझ नहीं आया!

एम: यह आपकी वह निश्चित धारणा है कि आपको कुछ न कुछ होना ही चाहिए, जो आपको अंधा कर देती है।
प्रश्न: मैं इस विचार से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ?
एम: यदि आप मुझ पर विश्वास करते हैं, तो मेरी इस बात पर यकीन कीजिए कि आप वह शुद्ध चेतना हैं जो चेतना और उसके अनंत सार को प्रकाशित करती है। इसे समझें और उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करें। यदि आप मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो अपने भीतर झाँकें और यह प्रश्न करें कि 'मैं क्या हूँ?' या फिर अपने मन को 'मैं हूँ' पर केंद्रित करें, जो कि शुद्ध और सरल अस्तित्व है। प्रश्न: मेरा आप पर विश्वास किस बात पर निर्भर करता है?
एम: दूसरों के दिलों को समझने की आपकी अंतर्दृष्टि के बारे में। अगर आप मेरे दिल में नहीं देख सकते, तो अपने दिल में देख लीजिए।
प्रश्न: मैं इनमें से कुछ भी नहीं कर सकता।
एम: सुव्यवस्थित और सार्थक जीवन जीकर स्वयं को शुद्ध करें। अपने विचारों, भावनाओं, शब्दों और कार्यों पर ध्यान रखें। इससे आपकी दृष्टि स्पष्ट होगी।
प्रश्न: क्या मुझे पहले सब कुछ त्याग कर बेघर जीवन नहीं जीना चाहिए?
एम: आप त्याग नहीं कर सकते। आप अपना घर छोड़ सकते हैं और अपने परिवार को परेशान कर सकते हैं, लेकिन आसक्ति मन में होती है और जब तक आप अपने मन को अच्छी तरह से नहीं जान लेते, तब तक वह आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। सबसे पहले, स्वयं को जानो, बाकी सब अपने आप आ जाएगा।
प्रश्न: लेकिन आपने तो मुझे पहले ही बता दिया है कि मैं ही परम सत्य हूँ। क्या यह आत्मज्ञान नहीं है?
एम: बेशक आप ही परम सत्य हैं! लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? रेत का हर कण ईश्वर है; इसे जानना महत्वपूर्ण है, लेकिन यह तो बस शुरुआत है।
प्रश्न: आपने मुझे बताया कि मैं परम सत्य हूँ। मैं आपकी बात मानता हूँ। अब मुझे आगे क्या करना चाहिए? उत्तर: मैंने आपको पहले ही बता दिया है। अपने आप में जो कुछ भी नहीं है, उसे खोजो। शरीर, भावनाएँ, विचार, कल्पनाएँ, समय, स्थान, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व, यह या वह - कोई भी ठोस या अमूर्त चीज़ जिसे आप बता सकें, वह आप नहीं हैं। केवल शब्दों से कहना पर्याप्त नहीं होगा
- आप एक ही सूत्र को बार-बार दोहराते रहेंगे, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकलेगा। आपको पल-पल स्वयं को - विशेषकर अपने मन को - निरंतर देखना होगा, कुछ भी न चूकना होगा। यह साक्षी भाव स्वयं को गैर-स्वयं से अलग करने के लिए आवश्यक है।
प्रश्न: साक्षी भाव रखना—क्या यही मेरा वास्तविक स्वभाव नहीं है?
एम: किसी चीज को देखने के लिए, कुछ और भी होना चाहिए। हम अभी भी द्वैत में हैं!
प्रश्न: साक्षी को देखने के बारे में क्या? जागरूकता की जागरूकता के बारे में क्या?
एम: शब्दों को जोड़कर काम चलाने से कुछ हासिल नहीं होगा। अपने भीतर झांको और जानो कि तुम क्या नहीं हो। बाकी सब मायने रखता है।

11. जागरूकता और चेतना

प्रश्नकर्ता: सोते समय आप क्या करते हैं?
महाराज: मुझे पता है कि मैं सो रहा हूँ।

प्रश्न: क्या नींद अचेतन अवस्था नहीं है?
एम: हां, मुझे पता है कि मैं बेहोश हूं।
प्रश्न: और जागते समय, या सपने देखते समय?
एम: मुझे इस बात का एहसास है कि मैं जाग रहा हूं या सपना देख रहा हूं। प्रश्न: मुझे आपकी बात समझ नहीं आई। आपका मतलब क्या है? मैं अपनी बात स्पष्ट कर दूं: सोने से मेरा तात्पर्य अचेतन अवस्था से है, जागने से मेरा तात्पर्य सचेत अवस्था से है, और सपने देखने से मेरा तात्पर्य अपने मन के प्रति सचेत होने से है, लेकिन आसपास के वातावरण के प्रति नहीं।
एम: खैर, मेरे साथ भी लगभग ऐसा ही है, फिर भी कुछ अंतर प्रतीत होता है। हर अवस्था में आप बाकी दो अवस्थाओं को भूल जाते हैं, जबकि मेरे लिए, अस्तित्व की केवल एक ही अवस्था है, जिसमें जागृति, स्वप्न और नींद की तीनों मानसिक अवस्थाएँ शामिल हैं और उनसे परे भी हैं।
प्रश्न: क्या आपको दुनिया में कोई दिशा और उद्देश्य दिखाई देता है?
एम: दुनिया मेरी कल्पना का प्रतिबिंब मात्र है। मैं जो चाहूँ देख सकता हूँ। लेकिन मुझे सृजन, विकास और विनाश के नियम क्यों गढ़ने चाहिए? मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है और न ही दुनिया को मानसिक छवि में कैद करने की मेरी कोई इच्छा है।
प्रश्न: नींद की बात करें तो, क्या आपको सपने आते हैं?
एम: बिल्कुल।
प्रश्न: आपके सपने क्या हैं?
एम: जागृत अवस्था की प्रतिध्वनियाँ।
प्रश्न: और आपकी गहरी नींद कैसी है?
एम: मस्तिष्क की चेतना निलंबित हो जाती है।
प्रश्न: क्या तब आप बेहोश हो जाते हैं?
एम: मैं अपने आसपास की चीजों से अनजान हूं - हां।
प्रश्न: क्या पूरी तरह से बेहोश नहीं थे?
एम: मुझे इस बात का एहसास है कि मैं बेहोश हूँ।
प्रश्न: आपने 'जागरूक' और 'सचेत' शब्दों का प्रयोग किया है। क्या ये दोनों एक ही अर्थ वाले शब्द नहीं हैं?
एम: जागरूकता आदिम है; यह मूल अवस्था है, अनादि, अनंत, अकारण, अनाधारित, अंशहीन, परिवर्तनशील। चेतना संपर्क में है, एक सतह पर प्रतिबिंब है, द्वैत की अवस्था है। जागरूकता के बिना चेतना नहीं हो सकती, लेकिन चेतना के बिना जागरूकता हो सकती है, जैसे गहरी नींद में। जागरूकता निरपेक्ष है, चेतना अपने विषयवस्तु के सापेक्ष है; चेतना हमेशा किसी न किसी चीज से संबंधित होती है। चेतना आंशिक और परिवर्तनशील है, जागरूकता निरपेक्ष, अपरिवर्तनीय, शांत और मौन है। और यह प्रत्येक अनुभव का सामान्य आधार है। प्रश्न: चेतना से परे जाकर जागरूकता की अवस्था तक कैसे पहुंचा जा सकता है? एम: चूंकि जागरूकता ही चेतना को संभव बनाती है, इसलिए चेतना की प्रत्येक अवस्था में जागरूकता विद्यमान होती है। अतः सचेत होने की चेतना स्वयं ही जागरूकता की एक गति है। अपनी चेतना की धारा में रुचि आपको जागरूकता तक ले जाती है। यह कोई नई अवस्था नहीं है। इसे तुरंत मूल, मूलभूत अस्तित्व के रूप में पहचाना जाता है, जो स्वयं जीवन है, और साथ ही प्रेम और आनंद भी है। प्रश्न: चूंकि वास्तविकता हर समय हमारे साथ रहती है, तो आत्म-साक्षात्कार में क्या शामिल है?

एम: आत्मज्ञान अज्ञान का ठीक विपरीत है। संसार को वास्तविक और स्वयं को अवास्तविक मानना अज्ञान है। यही दुख का कारण है। स्वयं को एकमात्र वास्तविकता और बाकी सब कुछ क्षणभंगुर मानना ही स्वतंत्रता, शांति और आनंद है। यह सब बहुत सरल है। चीजों को काल्पनिक रूप से देखने के बजाय, उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में देखना सीखें। यह दर्पण को साफ करने जैसा है। वही दर्पण जो आपको संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में दिखाता है, वही आपको आपका चेहरा भी दिखाएगा। 'मैं हूँ' का विचार एक पॉलिश करने वाले कपड़े की तरह है। इसका प्रयोग करें।

12. व्यक्ति वास्तविकता नहीं है

प्रश्नकर्ता: कृपया हमें बताएं कि आपको यह कैसे पता चला।
महाराज: मैं 34 वर्ष की आयु में अपने गुरु से मिला और 37 वर्ष की आयु तक मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया।
प्रश्न: क्या हुआ? क्या बदलाव आया?
एम: सुख और दुख का मुझ पर से प्रभाव समाप्त हो गया। मैं इच्छा और भय से मुक्त हो गया। मैंने स्वयं को परिपूर्ण पाया, मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं थी। मैंने देखा कि शुद्ध चेतना के सागर में, सार्वभौमिक चेतना की सतह पर, भौतिक जगत की असंख्य लहरें अनादि और अनंत रूप से उठती और विलीन होती हैं। चेतना के रूप में, वे सब मैं ही हूँ। घटनाओं के रूप में, वे सब मेरी हैं। एक रहस्यमयी शक्ति है जो उनकी देखभाल करती है। वह शक्ति चेतना है, आत्मा है, जीवन है, ईश्वर है, आप उसे जो भी नाम दें। यह सभी चीजों का आधार है, परम सहारा है, ठीक वैसे ही जैसे सोना सभी सोने के आभूषणों का आधार होता है। और यह हमारा कितना गहरा जुड़ाव है! आभूषण से नाम और आकार को हटा दें तो सोना स्पष्ट हो जाता है। नाम और रूप से, और उनसे उत्पन्न होने वाली इच्छाओं और भय से मुक्त हो जाएं, तो फिर क्या शेष रहता है?
प्रश्न: शून्यता।
एम: हाँ, शून्य तो रहता है। लेकिन वह शून्य पूर्णतः भरा हुआ है। यह शाश्वत संभावना है, जैसे चेतना शाश्वत वास्तविकता है।
प्रश्न: संभाव्यता से आपका तात्पर्य भविष्य से है?
एम: अतीत, वर्तमान और भविष्य - ये सब मौजूद हैं। और अनंत रूप से और भी बहुत कुछ।
प्रश्न: लेकिन चूंकि शून्य, शून्य ही है, इसलिए यह हमारे लिए बहुत कम उपयोगी है।
एम: आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? निरंतरता में खलल डाले बिना पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? मृत्यु के बिना नवीनीकरण कैसे संभव है? नींद का अंधकार भी ताजगी और स्फूर्ति प्रदान करता है। मृत्यु के बिना हम शाश्वत वृद्धावस्था में फंसे रह जाते।
प्रश्न: क्या अमरता जैसी कोई चीज नहीं होती?
एम: जब जीवन और मृत्यु को एक दूसरे के लिए आवश्यक, एक ही सत्ता के दो पहलुओं के रूप में देखा जाता है, तो वही अमरता है। आरंभ में अंत और अंत में आरंभ देखना शाश्वतता का संकेत है। निश्चित रूप से, अमरता निरंतरता नहीं है। केवल परिवर्तन की प्रक्रिया ही चलती रहती है। कुछ भी स्थायी नहीं है। प्रश्न: क्या जागरूकता लंबे समय तक बनी रहती है?

एम: जागरूकता समय की अवधारणा नहीं है। समय केवल चेतना में विद्यमान है। चेतना से परे समय और स्थान कहाँ हैं?
प्रश्न: आपकी चेतना के क्षेत्र में आपका शरीर भी समाहित है।
एम: बिल्कुल। लेकिन 'मेरा शरीर', अन्य शरीरों से अलग, यह विचार मेरे मन में नहीं है। मेरे लिए यह 'एक शरीर' है, 'मेरा शरीर' नहीं, 'एक मन' है, 'मेरा मन' नहीं। मन शरीर का ध्यान बखूबी रखता है, मुझे उसमें दखल देने की जरूरत नहीं है। जो होना चाहिए, वह अपने आप सामान्य और स्वाभाविक तरीके से हो रहा है। आप शायद अपनी शारीरिक क्रियाओं के प्रति पूरी तरह सचेत न हों, लेकिन जब बात विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और भय की आती है, तो आप अत्यधिक सचेत हो जाते हैं। मेरे लिए ये भी काफी हद तक अचेतन हैं। मैं खुद को लोगों से बात करते हुए या काम करते हुए पाता हूँ, वो भी काफी हद तक सही और उचित तरीके से, बिना ज्यादा सचेत हुए। ऐसा लगता है मानो मैं अपना शारीरिक, जागृत जीवन स्वचालित रूप से जी रहा हूँ, सहज और सटीक प्रतिक्रिया दे रहा हूँ।
प्रश्न: क्या यह सहज प्रतिक्रिया अहसास के परिणामस्वरूप आती है, या प्रशिक्षण के द्वारा?
एम: दोनों। अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण आपको एक स्वच्छ और व्यवस्थित जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है, जो सत्य की खोज और लोगों की सहायता करने में लगा रहता है, और आत्मज्ञान महान सद्गुणों को सहज और स्वाभाविक बना देता है, क्योंकि यह इच्छाओं, भय और गलत विचारों के रूप में आने वाली बाधाओं को हमेशा के लिए दूर कर देता है।
प्रश्न: क्या अब आपके मन में कोई इच्छाएं और भय नहीं रह गए हैं?
एम: मेरा भाग्य एक साधारण व्यक्ति, एक आम आदमी, एक मामूली व्यापारी के रूप में जन्म लेना लिखा था, जिसकी औपचारिक शिक्षा बहुत कम थी। मेरा जीवन आम लोगों जैसा था, आम इच्छाओं और भयों से भरा हुआ। जब मैंने अपने गुरु पर विश्वास और उनके वचनों का पालन करते हुए अपने वास्तविक स्वरूप को जाना, तो मैंने अपने मानवीय स्वभाव को उसके हाल पर छोड़ दिया, जब तक कि उसका भाग्य समाप्त न हो जाए। कभी-कभी मन में कोई पुरानी प्रतिक्रिया, चाहे भावनात्मक हो या मानसिक, उत्पन्न होती है, लेकिन उसे तुरंत पहचान कर त्याग दिया जाता है। आखिरकार, जब तक कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है, तब तक वह उसकी विलक्षणताओं और आदतों से अवगत रहता है।
प्रश्न: क्या आपको मृत्यु से डर नहीं लगता?
एम: मैं तो पहले ही मर चुका हूँ।
प्रश्न: किस अर्थ में?
एम: मैं दोहरी मौत मर चुका हूँ। मैं न केवल अपने शरीर से मर चुका हूँ, बल्कि अपने दिमाग से भी मर चुका हूँ।
प्रश्न: आप तो बिलकुल भी मृत नहीं लग रहे हैं!
एम: यही तो तुम कहते हो! लगता है तुम मेरे राज्य को मुझसे भी बेहतर जानते हो!
प्रश्न: क्षमा करें। लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा है। आप कहते हैं कि आप शरीरहीन और बुद्धिहीन हैं, जबकि मुझे आप पूरी तरह से जीवित और वाक्पटु दिखाई देते हैं।
एम: आपके मस्तिष्क और शरीर में हर समय एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया चल रही है, क्या आप इसके प्रति सचेत हैं? बिलकुल नहीं। फिर भी, किसी बाहरी व्यक्ति को सब कुछ बुद्धिमानी और उद्देश्यपूर्ण ढंग से होता हुआ प्रतीत होता है। यह

स्वीकार क्यों न करें कि किसी का संपूर्ण निजी जीवन चेतना की सीमा से काफी नीचे डूब सकता है और फिर भी समझदारी और सुचारू रूप से चलता रहता है? प्रश्न: क्या यह सामान्य है?
एम: सामान्य क्या है? क्या आपका जीवन—इच्छाओं और भय से ग्रस्त, कलह और संघर्ष से भरा, अर्थहीन और आनंदहीन—सामान्य है? क्या अपने शरीर के प्रति अत्यधिक सचेत रहना सामान्य है? क्या भावनाओं से विक्षिप्त होना, विचारों से व्याकुल होना सामान्य है? एक स्वस्थ शरीर, एक स्वस्थ मन अपने स्वामी द्वारा लगभग अनदेखे ही रहते हैं; केवल कभी-कभी, दर्द या पीड़ा के माध्यम से ही वे ध्यान और अंतर्दृष्टि की मांग करते हैं। यही बात संपूर्ण व्यक्तिगत जीवन पर क्यों न लागू की जाए? व्यक्ति बिना किसी चीज को जागरूकता के केंद्र में लाए, जो कुछ भी घटित होता है, उसके प्रति अच्छी और पूर्ण प्रतिक्रिया देते हुए सही ढंग से कार्य कर सकता है। जब आत्म-नियंत्रण स्वाभाविक हो जाता है, तो जागरूकता का ध्यान अस्तित्व और कर्म के गहरे स्तरों पर केंद्रित हो जाता है।
प्रश्न: क्या आप रोबोट नहीं बन जाएंगे?
एम: जो चीज़ें आदत बन चुकी हैं और बार-बार दोहराई जा रही हैं, उन्हें स्वचालित बनाने में क्या बुराई है? वे तो वैसे भी स्वचालित ही होती हैं। लेकिन जब उनमें अव्यवस्था भी हो, तो वे पीड़ा और कष्ट का कारण बनती हैं और ध्यान देने की आवश्यकता होती है। स्वच्छ और सुव्यवस्थित जीवन का पूरा उद्देश्य मनुष्य को अव्यवस्था के बंधन और दुख के बोझ से मुक्त करना है। प्रश्न: आप कंप्यूटरीकृत जीवन के पक्षधर प्रतीत होते हैं।
एम: समस्याओं से मुक्त जीवन में क्या बुराई है? व्यक्तित्व तो बस वास्तविकता का प्रतिबिंब है। यह प्रतिबिंब स्वाभाविक रूप से, स्वतः ही मूल स्वरूप के अनुरूप क्यों न हो? क्या व्यक्ति को अपनी कोई योजना बनानी चाहिए? जिस जीवन की वह अभिव्यक्ति है, वही उसका मार्गदर्शन करेगा। जब आप यह समझ जाते हैं कि व्यक्ति केवल वास्तविकता की छाया है, स्वयं वास्तविकता नहीं, तो आप चिंता करना छोड़ देते हैं। आप अपने भीतर से मार्गदर्शन स्वीकार कर लेते हैं और जीवन एक अज्ञात यात्रा बन जाता है।

13. परम सत्ता, मन और शरीर

प्रश्नकर्ता: आपने जो बताया उससे ऐसा प्रतीत होता है कि आप अपने परिवेश के प्रति पूरी तरह सचेत नहीं हैं। आप हमें अत्यंत सतर्क और सक्रिय प्रतीत होते हैं। हम यह बिल्कुल नहीं मान सकते कि आप किसी सम्मोहन जैसी अवस्था में हैं, जिसमें स्मृति मिट जाती है। इसके विपरीत, आपकी स्मृति उत्कृष्ट प्रतीत होती है। आपके इस कथन का क्या अर्थ है कि आपके लिए संसार और उसमें समाहित सब कुछ अस्तित्वहीन है?
महाराज: यह सब एकाग्रता का मामला है। आपका मन संसार में केंद्रित है, मेरा मन वास्तविकता में। यह दिन के उजाले में चंद्रमा की तरह है - जब सूर्य चमकता है, तो चंद्रमा मुश्किल से दिखाई देता है। या, अपने भोजन को ग्रहण करने के तरीके पर ध्यान दें। जब तक वह आपके मुंह में रहता है, आप उसके प्रति सचेत रहते हैं; एक बार निगल लेने के बाद, उसका कोई महत्व नहीं रह जाता। भोजन के निकलने तक उसे लगातार मन में रखना कष्टदायक होगा। मन को सामान्यतः शांत रहना चाहिए - निरंतर सक्रियता अस्वस्थ अवस्था है।

ब्रह्मांड स्वतः चलता है - यह मैं जानता हूँ। मुझे और क्या जानने की आवश्यकता है?
प्रश्न: तो एक ज्ञानी को तभी पता चलता है कि वह क्या कर रहा है जब वह उस पर ध्यान केंद्रित करता है; अन्यथा वह बिना किसी चिंता के बस कार्य करता रहता है।
एम: आम आदमी अपने शरीर के प्रति सचेत नहीं होता। वह अपनी संवेदनाओं, भावनाओं और विचारों के प्रति सचेत होता है। यहाँ तक कि अनासक्ति की अवस्था आने पर ये भी चेतना के केंद्र से दूर हो जाते हैं और सहजता से घटित होने लगते हैं।
प्रश्न: तो फिर चेतना के केंद्र में क्या है?
एम: वह जिसे नाम और रूप नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह गुणहीन और चेतना से परे है। आप कह सकते हैं कि यह चेतना का एक बिंदु है, जो चेतना से परे है। जैसे कागज में छेद कागज का होता है, फिर भी कागज का नहीं होता, वैसे ही चेतना के केंद्र में स्थित सर्वोच्च अवस्था चेतना से परे है। यह मानो मन में एक छिद्र है जिससे मन प्रकाश से भर जाता है। यह छिद्र स्वयं प्रकाश नहीं है। यह मात्र एक छिद्र है।
प्रश्न: रिक्ति का अर्थ है शून्य, अनुपस्थिति।
एम: बिलकुल सही। मन के दृष्टिकोण से, यह जागरूकता के प्रकाश के लिए मानसिक क्षेत्र में प्रवेश करने का एक द्वार मात्र है। स्वयं में, इस प्रकाश की तुलना केवल शुद्ध जागरूकता के एक ठोस, सघन, चट्टानी, समरूप और अपरिवर्तनीय पिंड से की जा सकती है, जो नाम और आकार के मानसिक अभिधारणाओं से मुक्त है। प्रश्न: क्या मानसिक क्षेत्र और परमलोक के बीच कोई संबंध है?
एम: परम सत्ता मन को अस्तित्व प्रदान करती है। मन शरीर को अस्तित्व प्रदान करता है।
प्रश्न: और इसके आगे क्या है?
एम: एक उदाहरण लीजिए। एक पूजनीय योगी, दीर्घायु कला के उस्ताद, जिनकी आयु स्वयं 1000 वर्ष से अधिक है, मुझे अपनी कला सिखाने आते हैं। मैं उनके कार्यों का पूर्ण सम्मान करता हूँ और उनकी उपलब्धियों की दिल से प्रशंसा करता हूँ, फिर भी मैं उनसे केवल यही कह सकता हूँ: मेरे लिए दीर्घायु का क्या उपयोग है? मैं समय से परे हूँ। जीवन चाहे कितना भी लंबा क्यों न हो, वह एक क्षण और एक सपना मात्र है। उसी प्रकार मैं सभी गुणों से परे हूँ। वे मेरे प्रकाश में प्रकट और लुप्त होते हैं, लेकिन मेरा वर्णन नहीं कर सकते। ब्रह्मांड नामों और रूपों से बना है, जो गुणों और उनके अंतरों पर आधारित है, जबकि मैं उससे परे हूँ। संसार मेरे होने के कारण है, लेकिन मैं संसार नहीं हूँ।
प्रश्न: लेकिन आप तो दुनिया में ही रह रहे हैं!
एम: बिल्कुल सही कहा आपने! मैं जानती हूँ कि एक संसार है, जिसमें यह शरीर और यह मन शामिल हैं, लेकिन मैं इन्हें अन्य मनों और शरीरों से अधिक "अपना" नहीं मानती। वे समय और स्थान में विद्यमान हैं, लेकिन मैं समय और स्थान से परे हूँ।
प्रश्न: लेकिन चूंकि सब कुछ आपके प्रकाश से ही अस्तित्व में है, तो क्या आप ही संसार के निर्माता नहीं हैं?
मैं न तो वस्तुओं की संभाव्यता हूँ, न ही उनकी साकारता, और न ही उनकी वास्तविकता। मेरे प्रकाश में वे सूर्य की किरण में नाचते धूल के कणों की तरह आते-जाते हैं। प्रकाश उन कणों को प्रकाशित करता है, लेकिन उन पर निर्भर

नहीं करता। न ही यह कहा जा सकता है कि प्रकाश उन्हें उत्पन्न करता है। यहाँ तक कि यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रकाश उन्हें जानता है।
प्रश्न: मैं आपसे एक प्रश्न पूछ रहा हूँ और आप उसका उत्तर दे रहे हैं। क्या आप प्रश्न और उत्तर दोनों के प्रति सचेत हैं?
एम: असल में मैं न तो सुन रहा हूँ और न ही जवाब दे रहा हूँ। घटनाओं की दुनिया में सवाल उठता है और जवाब मिलता है। मेरे साथ कुछ नहीं होता। सब कुछ बस होता रहता है।
प्रश्न: और आप गवाह हैं?
एम: साक्षी का क्या अर्थ है? मात्र जानकारी। बारिश हुई और अब बारिश रुक गई है। मैं भीगा नहीं। मुझे पता है कि बारिश हुई, लेकिन मुझ पर इसका कोई असर नहीं हुआ। मैंने बस बारिश देखी।
प्रश्न: पूर्णतः आत्मज्ञानी व्यक्ति, जो सहज रूप से सर्वोच्च अवस्था में विद्यमान होता है, खाता-पीता आदि प्रतीत होता है। क्या वह इस बात से अवगत होता है या नहीं?
एम: जिसमें चेतना उत्पन्न होती है, वह सार्वभौमिक चेतना या मन, हम चेतना का आकाश कहते हैं। चेतना के सभी विषय मिलकर ब्रह्मांड बनाते हैं। इन दोनों से परे, इन दोनों का आधार, सर्वोच्च अवस्था है, पूर्ण स्थिरता और मौन की अवस्था। जो भी वहां जाता है, वह विलीन हो जाता है। यह शब्दों या मन से अप्राप्य है। आप इसे ईश्वर, परब्रह्म या परम वास्तविकता कह सकते हैं, लेकिन ये सभी नाम मन द्वारा दिए गए हैं। यह नामहीन, सारहीन, सहज और स्वाभाविक अवस्था है, जो अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे है।
प्रश्न: लेकिन क्या व्यक्ति होश में रहता है?
एम: जिस प्रकार ब्रह्मांड मन का शरीर है, उसी प्रकार चेतना परम सत्ता का शरीर है। यह स्वयं सचेत नहीं है, परन्तु चेतना को जन्म देती है।
प्रश्न: मेरे दैनिक कार्यों में बहुत कुछ आदत से, स्वतः ही हो जाता है। मुझे सामान्य उद्देश्य तो पता होता है, लेकिन प्रत्येक गतिविधि की बारीकी से जानकारी नहीं होती। जैसे-जैसे मेरी चेतना विस्तृत और गहन होती जाती है, बारीकियाँ धुंधली होती जाती हैं, जिससे मुझे सामान्य प्रवृत्तियों पर ध्यान केंद्रित करने की स्वतंत्रता मिलती है। क्या यही स्थिति किसी ज्ञानी के साथ नहीं होती, बल्कि उससे भी अधिक?
एम: चेतना के स्तर पर - हाँ। सर्वोच्च अवस्था में नहीं। यह अवस्था पूर्णतः एक और अविभाज्य है, वास्तविकता का एक ठोस खंड है। इसे जानने का एकमात्र तरीका इसमें समाहित होना है। मन इसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसे अनुभव करने के लिए इंद्रियों की आवश्यकता नहीं होती; इसे जानने के लिए मन की आवश्यकता नहीं होती।
प्रश्न: क्या ईश्वर इसी प्रकार संसार का संचालन करता है?
एम: भगवान दुनिया नहीं चला रहे हैं।
प्रश्न: तो फिर इसे कौन कर रहा है?
एम: कोई नहीं। सब कुछ अपने आप होता है। आप प्रश्न पूछते हैं और आप ही उत्तर देते हैं। और प्रश्न पूछते ही आपको उत्तर पता होता है। सब कुछ चेतना का खेल है। सभी विभाजन भ्रामक हैं। आप केवल असत्य को ही जान सकते हैं। सत्य तो आपको स्वयं ही होना होगा।
प्रश्न: प्रत्यक्षदर्शी चेतना और साक्षी देने वाली चेतना होती है। क्या दूसरी चेतना सर्वोच्च है?

एम: ये दो हैं - व्यक्ति और साक्षी, प्रेक्षक। जब आप इन्हें एक के रूप में देखते हैं और इससे परे जाते हैं, तो आप सर्वोच्च अवस्था में होते हैं। यह प्रत्यक्ष नहीं है, क्योंकि यही वह है जो बोध को संभव बनाता है। यह अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे है। यह न तो दर्पण है और न ही दर्पण में दिखने वाली छवि। यह वही है जो है - शाश्वत वास्तविकता, अविश्वसनीय रूप से कठोर और ठोस।
प्रश्न: ज्ञानी – क्या वह साक्षी है या सर्वोच्च सत्ता?
एम: वह बेशक सर्वोच्च हैं, लेकिन उन्हें सार्वभौमिक साक्षी के रूप में भी देखा जा सकता है।
प्रश्न: लेकिन वह फिर भी एक इंसान ही रहता है?
एम: जब आप स्वयं को एक व्यक्ति मानते हैं, तो आपको हर जगह व्यक्ति ही दिखाई देते हैं। वास्तविकता में कोई व्यक्ति नहीं होता, केवल स्मृतियों और आदतों के सूत्र होते हैं। बोध के क्षण में व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। पहचान बनी रहती है, लेकिन पहचान एक व्यक्ति नहीं है, यह स्वयं वास्तविकता में अंतर्निहित है। व्यक्ति का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता; यह साक्षी के मन में, 'मैं हूँ' के मन में, एक प्रतिबिंब है, जो स्वयं अस्तित्व का एक रूप है।
प्रश्न: क्या सर्वोच्च सत्ता चेतन है?
एम: न तो सचेत रूप से और न ही अचेतन रूप से, मैं आपको अपने अनुभव से बता रहा हूँ।
प्रश्न:प्रज्ञानं ब्रह्मा। यह प्राज्ञ क्या है?
एम: यह स्वयं जीवन का अचेतन ज्ञान है।
प्रश्न: क्या यह जीवन शक्ति है, जीवन की ऊर्जा है, जीवंतता है?
एम: ऊर्जा सर्वोपरि है। क्योंकि सब कुछ ऊर्जा का ही एक रूप है। चेतना जागृत अवस्था में सबसे अधिक विभेदित होती है। स्वप्न में कम। और नींद में उससे भी कम। चौथी अवस्था में समरूप। उससे परे अवर्णनीय, एकात्मक वास्तविकता है, ज्ञानी का निवास स्थान।
प्रश्न: मेरे हाथ में चोट लग गई थी। वह ठीक हो गई। किस शक्ति से वह ठीक हुई? एम: जीवन की शक्ति से।
प्रश्न: वह शक्ति क्या है?
एम: यह चेतना है। सब कुछ चेतन है।
प्रश्न: चेतना का स्रोत क्या है?
एम: चेतना ही हर चीज का स्रोत है।
प्रश्न: क्या चेतना के बिना जीवन संभव है?
एम: नहीं, न ही जीवन के बिना चेतना। वे दोनों एक ही हैं। लेकिन वास्तव में केवल परम सत्ता ही विद्यमान है। बाकी सब नाम और रूप का मामला है। और जब तक आप इस विचार से चिपके रहेंगे कि केवल नाम और रूप वाली ही सत्ता विद्यमान है, तब तक परम सत्ता आपको अस्तित्वहीन प्रतीत होगी। जब आप यह समझ जाएंगे कि नाम और रूप खोखले आवरण हैं जिनमें कोई सार नहीं है, और जो वास्तविक है वह नामहीन और रूपहीन है, जीवन की शुद्ध ऊर्जा और चेतना का प्रकाश है, तब आप शांति में लीन हो जाएंगे - वास्तविकता के गहन मौन में डूब जाएंगे। प्रश्न: यदि समय और स्थान मात्र भ्रम हैं और आप इनसे परे हैं, तो कृपया मुझे न्यूयॉर्क का मौसम बताइए। क्या वहाँ गर्मी है या बारिश?
एम: मैं आपको कैसे बताऊँ? ऐसी चीज़ों के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। या फिर, न्यूयॉर्क की यात्रा ही काफी है। मुझे पूरा यकीन है कि

मैं समय और स्थान से परे हूँ, फिर भी अपनी इच्छा से किसी समय और स्थान पर स्वयं को स्थापित करने में असमर्थ हूँ। मेरी इसमें कोई रुचि नहीं है; मुझे विशेष योग प्रशिक्षण लेने में कोई लाभ नहीं दिखता। मैंने न्यूयॉर्क के बारे में बस सुना है। मेरे लिए यह सिर्फ एक शब्द है। मुझे इस शब्द से अधिक जानने की क्या आवश्यकता है? हर परमाणु एक ब्रह्मांड हो सकता है, उतना ही जटिल जितना हमारा। क्या मुझे उन सभी को जानना आवश्यक है? मैं जान सकता हूँ
- यदि मैं अभ्यास करूँ।
प्रश्न: न्यूयॉर्क के मौसम के बारे में प्रश्न पूछने में मुझसे क्या गलती हुई?
एम: संसार और मन, अस्तित्व की अवस्थाएँ हैं। परम सत्ता कोई अवस्था नहीं है। यह सभी अवस्थाओं में व्याप्त है, परन्तु यह किसी और की अवस्था नहीं है। यह पूर्णतः अकारण, स्वतंत्र, अपने आप में पूर्ण, समय और स्थान, मन और पदार्थ से परे है।
प्रश्न: आप इसे किस संकेत से पहचानते हैं?
एम: यही तो बात है कि यह कोई निशान नहीं छोड़ता। इसे पहचानने का कोई ज़रिया नहीं है। इसे सीधे देखना होगा, संकेतों और तरीकों की खोज को त्यागकर। जब सभी नाम और रूप त्याग दिए जाते हैं, तो वास्तविकता आपके सामने होती है।
आपको उसे खोजने की ज़रूरत नहीं है। बहुलता और विविधता केवल मन का खेल है। वास्तविकता एक है।
प्रश्न: यदि वास्तविकता कोई प्रमाण नहीं छोड़ती, तो उसके बारे में बात करने का कोई मतलब नहीं है।
एम: हाँ, यह सच है। इसे नकारा नहीं जा सकता। यह गहरा और अंधकारमय है, रहस्य से भी बड़ा रहस्य है। लेकिन यह है, जबकि बाकी सब कुछ बस घटित होता रहता है। प्रश्न: क्या यह अज्ञात है?
एम: यह ज्ञात और अज्ञात दोनों से परे है। लेकिन मैं इसे अज्ञात की बजाय ज्ञात कहना पसंद करूंगा। क्योंकि जब भी कुछ ज्ञात होता है, तो वह वास्तविकता ही होती है जिसे जाना जाता है।
प्रश्न: क्या मौन वास्तविकता का एक गुण है?
एम: यह भी मन का ही हिस्सा है। सभी अवस्थाएँ और परिस्थितियाँ मन की ही होती हैं।
प्रश्न: समाधि का स्थान क्या है?
एम: अपनी चेतना का उपयोग न करना ही समाधि है। आप बस अपने मन को अकेला छोड़ देते हैं। आप कुछ भी नहीं चाहते, न अपने शरीर से और न ही अपने मन से।

14. दिखावट और वास्तविकता

प्रश्नकर्ता: आप बार-बार कह रहे हैं कि घटनाएँ कारणहीन होती हैं, कोई भी चीज़ बस घटित हो जाती है और उसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता। निश्चित रूप से हर चीज़ का कोई न कोई कारण होता है, या अनेक कारण होते हैं। मैं चीज़ों की कारणहीनता को कैसे समझूँ?
महाराज: सर्वोच्च दृष्टिकोण से देखा जाए तो संसार का कोई कारण नहीं है। प्रश्न: लेकिन आपका अपना अनुभव क्या है?
एम: सब कुछ अकारण है। संसार का कोई कारण नहीं है।
प्रश्न: मैं संसार की रचना के कारणों के बारे में नहीं पूछ रहा हूँ। संसार की रचना किसने देखी है? हो सकता है कि इसका कोई आरंभ ही न हो, यह शाश्वत रूप

से विद्यमान हो। लेकिन मैं संसार की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि संसार किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इसमें अनेक वस्तुएँ समाहित हैं। निश्चय ही, प्रत्येक का कोई न कोई कारण अवश्य होगा, या अनेक कारण होंगे। एम: एक बार जब आप अपने लिए समय और स्थान में, कारण-कार्य संबंधों द्वारा संचालित एक दुनिया बना लेते हैं, तो आप हर चीज के कारणों की खोज करने और उन्हें पाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। आप प्रश्न पूछते हैं और उत्तर थोपते हैं।
प्रश्न: मेरा प्रश्न बहुत सरल है: मैं हर प्रकार की वस्तु देखता हूँ और समझता हूँ कि प्रत्येक का कोई न कोई कारण अवश्य होता है, या अनेक कारण होते हैं। आप कहते हैं कि आपके दृष्टिकोण से वे अकारण हैं। परन्तु आपके अनुसार किसी भी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है, इसलिए कारण-कार्य का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी आप वस्तुओं के अस्तित्व को तो स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके कारण-कार्य को नकारते हैं। यही बात मेरी समझ से परे है। जब आप वस्तुओं के अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं, तो उनके कारणों को क्यों नकारते हैं? एम: मैं केवल चेतना देखता हूँ, और सब कुछ चेतना ही जानता हूँ, जैसे आप सिनेमा स्क्रीन पर दिखने वाली तस्वीर को केवल प्रकाश ही जानते हैं। प्रश्न: फिर भी, प्रकाश की गति का एक कारण होता है।
एम: प्रकाश बिल्कुल भी नहीं हिलता। आप अच्छी तरह जानते हैं कि गति भ्रामक है, फिल्म में अवरोधों और रंगों का एक क्रम है। जो गतिमान है वह फिल्म है - जो कि मन है।
प्रश्न: इससे यह नहीं साबित होता कि फिल्म कारणहीन है। फिल्म तो है ही, साथ ही कलाकार, तकनीशियन, निर्देशक, निर्माता और विभिन्न निर्माता भी मौजूद हैं। दुनिया कारण-कार्य के नियम से संचालित होती है। सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है।
एम: बेशक, सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है। इसलिए हर चीज़ के अनगिनत कारण हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड छोटी से छोटी चीज़ में योगदान देता है। कोई चीज़ जैसी है वैसी इसलिए है क्योंकि संसार जैसा है वैसा ही है। देखिए, आप सोने के आभूषणों का व्यापार करते हैं और मैं भी सोने का। अलग-अलग आभूषणों के बीच कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है। जब आप किसी आभूषण को पिघलाकर दूसरा बनाते हैं, तब भी दोनों के बीच कोई कारण-कार्य संबंध नहीं होता। दोनों में समान तत्व सोना है। लेकिन आप यह नहीं कह सकते कि सोना कारण है। इसे कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह स्वयं किसी चीज़ का कारण नहीं बनता। यह मन में 'मैं हूँ' के रूप में, आभूषण के विशेष नाम और आकार के रूप में प्रतिबिंबित होता है। फिर भी सब कुछ सोना ही है। इसी प्रकार वास्तविकता हर चीज़ को संभव बनाती है, फिर भी किसी चीज़ को उसका नाम और आकार देने वाली कोई भी चीज़ वास्तविकता से नहीं आती।
लेकिन कारण-कार्य संबंध को लेकर इतनी चिंता क्यों? जब चीजें स्वयं क्षणभंगुर हैं, तो कारणों का क्या महत्व है? जो आता है उसे आने दो और जो जाता है उसे जाने दो—चीजों को पकड़कर उनके कारणों की खोज क्यों करनी? प्रश्न: सापेक्षिक दृष्टिकोण से, हर चीज का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। एम: आपके लिए सापेक्ष दृष्टिकोण का क्या उपयोग है? आप निरपेक्ष दृष्टिकोण से देख सकते हैं - तो सापेक्ष दृष्टिकोण पर वापस क्यों जाना? क्या आप निरपेक्ष से डरते हैं?
प्रश्न: मुझे डर लग रहा है। मुझे अपने तथाकथित पूर्ण विश्वासों के सहारे सो जाने का डर है। एक सम्मानजनक जीवन जीने के लिए पूर्ण सत्य सहायक नहीं

होते। जब आपको कमीज़ चाहिए होती है, तो आप कपड़ा खरीदते हैं, दर्जी को बुलाते हैं, इत्यादि।
एम: यह सब बातें अज्ञानता दर्शाती हैं।
प्रश्न: और ज्ञाता का क्या दृष्टिकोण है?
एम: केवल प्रकाश है और प्रकाश ही सब कुछ है। बाकी सब कुछ प्रकाश से बनी एक तस्वीर मात्र है। तस्वीर प्रकाश में है और प्रकाश तस्वीर में है। जीवन और मृत्यु, स्वयं और अनकही बातें - इन सभी विचारों को त्याग दो। ये तुम्हारे किसी काम के नहीं हैं।
प्रश्न: आप किस दृष्टिकोण से कारणता का खंडन करते हैं? सापेक्ष दृष्टिकोण से - ब्रह्मांड ही हर चीज का कारण है। निरपेक्ष दृष्टिकोण से - कुछ भी नहीं है।
एम: आप किस राज्य से पूछ रहे हैं?
प्रश्न: दैनिक जागृत अवस्था से, जिसमें ये सभी चर्चाएँ होती हैं।
एम: जागृत अवस्था में ये सभी समस्याएं उत्पन्न होती हैं, क्योंकि यही इसकी प्रकृति है। लेकिन, आप हमेशा उस अवस्था में नहीं रहते। ऐसी अवस्था में आप क्या भला कर सकते हैं जिसमें आप गिरते हैं और जिससे आप असहाय होकर निकलते हैं? यह जानना कि चीजें कारण-कार्य संबंध से जुड़ी हैं - भले ही जागृत अवस्था में वे दिखाई दें - आपको किस प्रकार सहायक होता है?
प्रश्न: संसार और जागृत अवस्था एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ समाप्त होते हैं।
एम: जब मन बिल्कुल शांत, स्थिर हो जाता है, तो जागृत अवस्था समाप्त हो जाती है।
प्रश्न: ईश्वर, ब्रह्मांड, संपूर्ण, निरपेक्ष, सर्वोच्च जैसे शब्द हवा में गूंज मात्र हैं, क्योंकि उन पर कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।
एम: आप ऐसे सवाल उठा रहे हैं जिनका जवाब सिर्फ आप ही दे सकते हैं।
प्रश्न: मुझे इस तरह से नज़रअंदाज़ मत करो! तुम तो सर्वव्यापी, ब्रह्मांडीय और ऐसी काल्पनिक चीज़ों के बारे में बोलने में बहुत जल्दी करते हो! वे आकर तुम्हें अपनी ओर से बोलने से नहीं रोक सकते। मुझे ये गैरजिम्मेदाराना सामान्यीकरण बिल्कुल पसंद नहीं! और तुम तो इन्हें व्यक्तिगत रूप देने में बहुत माहिर हो। कारण-कार्य संबंध के बिना कोई व्यवस्था नहीं होगी; न ही कोई सार्थक क्रिया संभव होगी।
एम: क्या आप प्रत्येक घटना के सभी कारणों को जानना चाहते हैं? क्या यह संभव है?
प्रश्न: मुझे पता है कि यह संभव नहीं है! मैं बस इतना जानना चाहता हूँ कि क्या हर चीज़ के कोई कारण होते हैं और क्या उन कारणों को प्रभावित किया जा सकता है, जिससे घटनाओं पर असर पड़ता है?
एम: घटनाओं को प्रभावित करने के लिए, आपको उनके कारणों को जानने की आवश्यकता नहीं है। यह तो बहुत ही घुमावदार तरीका है! क्या आप ही हर घटना का स्रोत और अंत नहीं हैं? इसे स्रोत पर ही नियंत्रित करें।
प्रश्न: मैं हर सुबह अखबार उठाता हूँ और यह देखकर व्याकुल हो जाता हूँ कि दुनिया के दुख - गरीबी, नफरत और युद्ध - लगातार बढ़ते जा रहे हैं। मेरे प्रश्न दुख के वास्तविक स्वरूप, उसके कारण और उसके निवारण से संबंधित हैं। यह कहकर मेरी बात को खारिज न करें कि यह बौद्ध धर्म है! मुझे किसी विशेष श्रेणी में न रखें। आपका कारणहीनता पर जोर देना दुनिया के कभी बदलने की सारी उम्मीदें खत्म कर देता है।

एम: तुम भ्रमित हो, क्योंकि तुम मानते हो कि तुम संसार में हो, संसार तुममें नहीं। पहले कौन आया - तुम या तुम्हारे माता-पिता? तुम कल्पना करते हो कि तुम्हारा जन्म किसी खास समय और स्थान पर हुआ था, कि तुम्हारे पिता और माता हैं, शरीर है और नाम है। यही तुम्हारा पाप और विपत्ति है! निश्चय ही तुम प्रयास कर सकते हो, अपने संसार को बदल सकते हो। हर हाल में प्रयास करो। तुम्हें कौन रोक रहा है? मैंने तुम्हें कभी हतोत्साहित नहीं किया। कारण हो या न हो, तुमने इस संसार को बनाया है और तुम इसे बदल सकते हो।
प्रश्न: एक कारणहीन दुनिया पूरी तरह से मेरे नियंत्रण से बाहर है।
एम: इसके विपरीत, एक ऐसी दुनिया जिसमें आप ही एकमात्र स्रोत और आधार हैं, उसे बदलने की शक्ति पूरी तरह से आपके पास है। जो कुछ भी सृजित होता है, उसे हमेशा विघटित और पुनः सृजित किया जा सकता है। सब कुछ आपकी इच्छा के अनुसार होगा, बशर्ते आप वास्तव में ऐसा चाहें।
प्रश्न: मैं बस इतना जानना चाहता हूं कि दुनिया के दुखों से कैसे निपटा जाए।
एम: तुमने इन्हें अपनी इच्छाओं और भय से बनाया है, तुम इनसे निपटते हो। ये सब तुम्हारे अपने अस्तित्व को भूल जाने के कारण है। स्क्रीन पर दिख रही तस्वीर को वास्तविकता देकर तुम उसके पात्रों से प्रेम करते हो, उनके लिए दुख सहते हो और उन्हें बचाने की कोशिश करते हो। ऐसा बिल्कुल नहीं है। तुम्हें शुरुआत खुद से करनी होगी। इसके अलावा कोई और रास्ता नहीं है। काम, बेशक। काम करने में कोई बुराई नहीं है।
प्रश्न: आपका ब्रह्मांड हर संभव अनुभव को समाहित करता प्रतीत होता है। व्यक्ति इसमें एक रेखा खींचता है और सुखद एवं अप्रिय अवस्थाओं का अनुभव करता है। इससे जिज्ञासा और खोज की भावना उत्पन्न होती है, जो दृष्टिकोण को व्यापक बनाती है और व्यक्ति को अपने संकीर्ण, स्वयं-निर्मित, सीमित और स्वार्थी संसार से बाहर निकलने में सक्षम बनाती है। समय के साथ यह व्यक्तिगत संसार बदल सकता है। ब्रह्मांड शाश्वत और परिपूर्ण है।
एम: दिखावे को वास्तविकता मान लेना घोर पाप है और समस्त विपत्तियों का कारण है। आप सर्वव्यापी, शाश्वत और असीम सृजनशील चेतना हैं। बाकी सब क्षणिक और अस्थायी है। अपने स्वरूप को मत भूलिए। इस बीच, जी भर कर काम कीजिए। काम और ज्ञान साथ-साथ चलने चाहिए।
प्रश्न: मुझे ऐसा लगता है कि मेरा आध्यात्मिक विकास मेरे बस में नहीं है। अपनी योजनाएँ बनाना और उन्हें पूरा करना व्यर्थ है। मैं बस अपने ही चक्करों में उलझा रहता हूँ। जब ईश्वर को फल पका हुआ लगता है, तभी वह उसे तोड़कर खा लेते हैं। जो फल उन्हें कच्चा लगता है, वह इस दुनिया के पेड़ पर अगले दिन के लिए रह जाता है।
एम: तुम्हें लगता है कि भगवान तुम्हें जानते हैं? वो तो इस दुनिया को भी नहीं जानते।
प्रश्न: आपका ईश्वर अलग है। मेरा ईश्वर अलग है। मेरा ईश्वर दयालु है। वह हमारे साथ-साथ कष्ट सहता है।
एम: तुम एक को बचाने के लिए प्रार्थना करते हो, जबकि हजारों लोग मर जाते हैं। और अगर सभी मरना बंद कर दें, तो धरती पर जगह ही नहीं बचेगी।
प्रश्न: मुझे मृत्यु से भय नहीं है। मेरी चिंता तो दुःख और पीड़ा से है।
मेरे ईश्वर सरल और असहाय हैं। उनमें हमें बुद्धिमान बनाने की शक्ति नहीं है। वे केवल खड़े होकर प्रतीक्षा कर सकते हैं।

एम: यदि आप और आपका ईश्वर दोनों असहाय हैं, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि संसार आकस्मिक है? और यदि ऐसा है, तो आप केवल इससे परे जा सकते हैं।
15. The Jnani
प्रश्नकर्ता: ईश्वर की शक्ति के बिना कुछ भी संभव नहीं है। उनके बिना तो आप भी यहां बैठकर हमसे बात नहीं कर रहे होते।
महाराज: यह सब उन्हीं की देन है, निःसंदेह। मुझे इससे क्या लेना-देना, क्योंकि मुझे कुछ नहीं चाहिए? ईश्वर मुझे क्या दे सकते हैं, या मुझसे क्या ले सकते हैं? जो मेरा है, वह मेरा ही है, तब भी जब ईश्वर नहीं थे। बेशक, यह बहुत ही नन्हा सा है, एक कण मात्र – 'मैं हूँ' का बोध, अस्तित्व का अहसास। यह मेरा अपना स्थान है, किसी ने मुझे नहीं दिया। धरती मेरी है; इस पर जो कुछ उगता है, वह ईश्वर का है।
प्रश्न: क्या ईश्वर ने आपसे पृथ्वी किराए पर ली है?
एम: भगवान मेरे भक्त हैं और उन्होंने यह सब मेरे लिए किया।
प्रश्न: क्या आपके अलावा कोई ईश्वर नहीं है?
एम: ऐसा कैसे हो सकता है? 'मैं हूँ' मूल है, ईश्वर वृक्ष है। मुझे किसकी पूजा करनी चाहिए, और किसलिए?
प्रश्न: क्या आप भक्त हैं या भक्ति के पात्र?
एम: मैं इनमें से कोई नहीं हूँ, मैं तो स्वयं भक्ति हूँ।
प्रश्न: दुनिया में पर्याप्त भक्ति नहीं है।
एम: आप हमेशा दुनिया के सुधार के पीछे पड़े रहते हैं। क्या आपको सच में लगता है कि दुनिया आपके उद्धार का इंतजार कर रही है?
प्रश्न: मैं दुनिया के लिए कितना कुछ कर सकता हूँ, यह मुझे नहीं पता। मैं बस कोशिश कर सकता हूँ। क्या आप मुझसे कुछ और करवाना चाहते हैं?
एम: तुम्हारे बिना क्या दुनिया है? तुम दुनिया के बारे में सब कुछ जानते हो, पर अपने बारे में कुछ नहीं। तुम खुद ही अपने काम के औजार हो, तुम्हारे पास कोई और औजार नहीं है। काम के बारे में सोचने से पहले अपने औजारों का ध्यान क्यों नहीं रखते?
प्रश्न: मैं इंतजार कर सकता हूँ, जबकि दुनिया नहीं कर सकती।
एम: पूछताछ न करके आप दुनिया को इंतजार करवा रहे हैं।
प्रश्न: किस बात का इंतजार?
एम: किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जो इसे बचा सके।
प्रश्न: ईश्वर ही संसार का स्वामी है, ईश्वर ही इसे बचाएगा।
एम: यही तो तुम कह रहे हो! क्या भगवान आकर तुमसे यह कह गए कि यह दुनिया उनकी रचना और उनकी चिंता है, तुम्हारी नहीं?
प्रश्न: यह मेरी एकमात्र चिंता क्यों होनी चाहिए?
एम: सोचो। जिस दुनिया में तुम रहते हो, उसके बारे में और कौन जानता है? प्रश्न: आप जानते हैं। सब जानते हैं।
एम: क्या आपकी दुनिया के बाहर से कोई आपको बताने आया था? मैं और बाकी सब आपकी दुनिया में आते-जाते रहते हैं। हम सब आपकी दया पर निर्भर हैं। प्रश्न: यह इतना बुरा नहीं हो सकता! मैं आपकी दुनिया में वैसे ही मौजूद हूं जैसे आप मेरी दुनिया में मौजूद हैं।
एम: तुम्हें मेरी दुनिया का कोई सबूत नहीं है। तुम पूरी तरह से अपनी ही बनाई दुनिया में डूबे हुए हो।
प्रश्न: मैं समझ गया। बिल्कुल, लेकिन क्या यह निराशाजनक है?

एम: आपकी दुनिया की कैद में एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होता है जो आपको बताता है कि पीड़ादायक विरोधाभासों की यह दुनिया, जिसे आपने खुद बनाया है, न तो निरंतर है और न ही स्थायी, बल्कि एक गलतफहमी पर आधारित है। वह आपसे विनती करता है कि आप उसी रास्ते से इससे बाहर निकलें जिससे आप इसमें फंसे थे। आप इसमें इसलिए फंसे क्योंकि आप यह भूल गए थे कि आप कौन हैं और आप इससे इसलिए बाहर निकलेंगे क्योंकि आप खुद को वैसे ही जान लेंगे जैसे आप हैं।
प्रश्न: यह दुनिया को किस प्रकार प्रभावित करता है?
एम: जब आप संसार के बंधनों से मुक्त होते हैं, तभी आप इसके बारे में कुछ कर सकते हैं। जब तक आप इसके कैदी हैं, तब तक आप इसे बदलने में असमर्थ हैं। इसके विपरीत, आप जो कुछ भी करेंगे, उससे स्थिति और बिगड़ जाएगी।
प्रश्न: धार्मिकता मुझे मुक्त कर देगी।
एम: नेकी से बेशक आप और आपकी दुनिया आरामदायक, यहाँ तक कि खुशहाल भी हो जाएगी। लेकिन इसका क्या फायदा? इसमें कोई वास्तविकता नहीं है। यह टिक नहीं सकती।
प्रश्न: भगवान मदद करेंगे।
एम: आपकी मदद करने के लिए ईश्वर को आपके अस्तित्व का ज्ञान होना चाहिए। लेकिन आप और आपकी दुनिया स्वप्न की अवस्था में हैं। स्वप्न में आप पीड़ा झेल सकते हैं। कोई नहीं जानता कि वे पीड़ाएँ क्या हैं, और कोई आपकी मदद नहीं कर सकता।
प्रश्न: तो क्या मेरे सारे प्रश्न, मेरी खोज और मेरा अध्ययन व्यर्थ हो गए? एम: ये तो बस उस व्यक्ति की हलचलें हैं जो नींद से ऊब चुका है। ये जागृति के कारण नहीं, बल्कि उसके शुरुआती संकेत हैं। लेकिन, आपको ऐसे व्यर्थ प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनके उत्तर आपको पहले से ही पता हैं।
प्रश्न: मुझे सही उत्तर कैसे मिलेगा?
एम: एक सच्चा प्रश्न पूछकर—बिना शब्दों के, बल्कि अपने सिद्धांतों के अनुसार जीने का साहस दिखाकर। सत्य के लिए मरने को तैयार व्यक्ति को सत्य प्राप्त होगा।
प्रश्न: एक और प्रश्न। एक व्यक्ति है। एक व्यक्ति का ज्ञाता है। एक साक्षी है। क्या ज्ञाता और साक्षी एक ही हैं, या वे अलग-अलग अवस्थाएँ हैं? प्रश्न: ज्ञाता और साक्षी दो हैं या एक? जब ज्ञाता को ज्ञात से अलग माना जाता है, तो साक्षी अकेला रह जाता है। जब ज्ञाता और ज्ञाता को एक माना जाता है, तो साक्षी उनमें विलीन हो जाता है।
प्रश्न: ज्ञानी कौन है? साक्षी या सर्वोच्च सत्ता?
एम: ज्ञानी सर्वोच्च भी है और साक्षी भी। वह सत्ता भी है और चेतना भी। चेतना के संबंध में वह चेतना है। ब्रह्मांड के संबंध में वह शुद्ध सत्ता है।
प्रश्न: और उस व्यक्ति के बारे में क्या? पहले क्या आता है, व्यक्ति या जानने वाला?
एम: व्यक्ति एक बहुत छोटी सी चीज है। वास्तव में यह एक मिश्रित इकाई है, इसे अपने आप में विद्यमान नहीं कहा जा सकता। अगोचर होने पर, यह अस्तित्वहीन हो जाता है। यह मन की छाया मात्र है, स्मृतियों का कुल योग है। शुद्ध अस्तित्व मन के दर्पण में ज्ञान के रूप में प्रतिबिंबित होता है। जो ज्ञात होता है, वह स्मृति और आदत के आधार पर व्यक्ति का रूप ले लेता है। यह मात्र एक छाया है, या ज्ञाता का मन के पर्दे पर प्रक्षेपण है।
प्रश्न: दर्पण तो है, प्रतिबिंब भी है। लेकिन सूर्य कहाँ है?

एम: सर्वोच्च सूर्य है।
प्रश्न: यह सचेत होना चाहिए।
एम: यह न तो चेतन है और न ही अचेतन। इसे चेतन या अचेतन के संदर्भ में मत सोचो। यह जीवन है, जिसमें दोनों समाहित हैं और दोनों से परे भी है।
प्रश्न: जीवन इतना बुद्धिमान है। यह अचेतन कैसे हो सकता है?
एम: आप स्मृति में कमी आने पर अचेतन मन की बात करते हैं। वास्तव में, केवल चेतना ही है। समस्त जीवन चेतन है, समस्त चेतना सजीव है।
प्रश्न: क्या पत्थर भी?
एम: पत्थर भी सजीव और सचेत होते हैं।
प्रश्न: मेरी चिंता यह है कि मैं उन चीजों के अस्तित्व को नकारने की प्रवृत्ति रखता हूं जिनकी मैं कल्पना नहीं कर सकता।
एम: बेहतर होगा कि आप अपनी कल्पनाओं के अस्तित्व को ही नकार दें। जो कल्पना की गई है, वही अवास्तविक है। क्यू: क्या हर कल्पनीय चीज़ अवास्तविक है? एम: यादों पर आधारित कल्पना अवास्तविक होती है। भविष्य पूरी तरह से अवास्तविक नहीं होता।
प्रश्न: भविष्य का कौन सा हिस्सा वास्तविक है और कौन सा नहीं?
एम: अप्रत्याशित और अनपेक्षित ही वास्तविक है।

16. इच्छाहीनता, सर्वोच्च आनंद

प्रश्नकर्ता: मैंने कई ज्ञानी व्यक्तियों से मुलाकात की है, लेकिन कभी किसी मुक्त पुरुष से नहीं। क्या आपने कभी किसी मुक्त पुरुष को देखा है, या मुक्ति का अर्थ अन्य बातों के साथ-साथ शरीर का त्याग भी है?
महाराज: बोध और मुक्ति से आपका क्या तात्पर्य है?
प्रश्न: आत्मज्ञान से मेरा तात्पर्य शांति, अच्छाई और सौंदर्य के उस अद्भुत अनुभव से है, जब संसार अर्थपूर्ण प्रतीत होता है और पदार्थ एवं सार दोनों की सर्वव्यापी एकता का अनुभव होता है। यद्यपि ऐसा अनुभव क्षणभंगुर होता है, पर इसे भुलाया नहीं जा सकता। यह स्मृति और लालसा दोनों के रूप में मन में चमकता रहता है। मैं इस विषय को भलीभांति जानती हूँ, क्योंकि मैंने ऐसे अनुभव स्वयं किए हैं।
मुक्ति से मेरा तात्पर्य उस अद्भुत अवस्था में स्थायी रूप से बने रहना है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या मुक्ति शरीर के अस्तित्व के अनुकूल है? एम: शरीर में क्या खराबी है?
प्रश्न: शरीर बहुत कमजोर और अल्पकालिक है। यह आवश्यकताएँ और लालसाएँ उत्पन्न करता है। यह व्यक्ति को बुरी तरह सीमित कर देता है।
एम: तो क्या हुआ? शारीरिक अभिव्यक्तियाँ सीमित ही रहने दो। लेकिन मुक्ति स्वयं की झूठी और स्व-निर्मित धारणाओं से होती है; यह किसी विशेष अनुभव में निहित नहीं है, चाहे वह कितना भी गौरवशाली क्यों न हो।
प्रश्न: क्या यह हमेशा के लिए रहता है?
एम: सभी अनुभव समयबद्ध होते हैं। जिसका आरंभ होता है, उसका अंत अवश्य होता है।
प्रश्न: तो क्या मेरे अर्थ में मुक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है?
एम: इसके विपरीत, व्यक्ति हमेशा स्वतंत्र होता है। आप सचेत भी हैं और सचेत होने के लिए स्वतंत्र भी। कोई आपसे यह स्वतंत्रता नहीं छीन सकता। क्या आपने कभी स्वयं को अस्तित्वहीन या अचेतन अवस्था में अनुभव किया है?

प्रश्न: मुझे शायद याद न हो, लेकिन इससे यह साबित नहीं होता कि मैं कभी-कभी बेहोश नहीं होता।
एम: क्यों न हम अनुभव से हटकर अनुभवकर्ता की ओर मुड़ें और उस एकमात्र सत्य कथन के पूर्ण महत्व को समझें जो आप कह सकते हैं: 'मैं हूं'?
प्रश्न: यह कैसे किया जाता है?
एम: यहाँ कोई 'कैसे' नहीं है। बस 'मैं हूँ' की भावना को ध्यान में रखें, उसमें विलीन हो जाएँ, जब तक कि आपका मन और भावना एक न हो जाएँ। बार-बार प्रयास करने से आप ध्यान और स्नेह के सही संतुलन को पा लेंगे और आपका मन 'मैं हूँ' की विचार-भावना में दृढ़ता से स्थापित हो जाएगा। आप जो भी सोचें, कहें या करें, यह अपरिवर्तनीय और स्नेही अस्तित्व की भावना मन की पृष्ठभूमि में हमेशा बनी रहती है।
प्रश्न: और आप इसे मुक्ति कहते हैं?
एम: मैं इसे सामान्य मानता हूँ। सहजता और प्रसन्नता से जीने, जानने और कार्य करने में क्या बुराई है? शरीर के तुरंत नष्ट होने की उम्मीद करना इतना असामान्य क्यों समझा जाए? शरीर में ऐसी क्या खराबी है कि उसे मर जाना चाहिए? अपने शरीर के प्रति अपना दृष्टिकोण सुधारें और उसे अकेला छोड़ दें। उसे लाड़-प्यार न करें, उसे यातना न दें। बस उसे चलने दें, ज़्यादातर समय सचेत ध्यान की सीमा से नीचे।
प्रश्न: मेरे उन शानदार अनुभवों की यादें मुझे सताती रहती हैं। मैं उन्हें वापस पाना चाहता हूँ।
एम: क्योंकि तुम उन्हें वापस पाना चाहते हो, इसलिए तुम उन्हें पा नहीं सकते। किसी भी चीज़ की लालसा सभी गहन अनुभवों को अवरुद्ध कर देती है। जिस मन को ठीक-ठीक पता हो कि उसे क्या चाहिए, उसके लिए कुछ भी मूल्यवान नहीं हो सकता। क्योंकि मन जो कुछ भी कल्पना कर सकता है और चाहता है, उसका कोई खास मूल्य नहीं होता।
प्रश्न: तो फिर चाहने लायक क्या है?
एम: सर्वश्रेष्ठ चाहो। सर्वोच्च सुख, सर्वोच्च स्वतंत्रता। इच्छाहीनता ही सर्वोच्च आनंद है।
प्रश्न: इच्छाओं से मुक्ति वह स्वतंत्रता नहीं है जो मैं चाहता हूँ। मैं अपनी इच्छाओं को पूरा करने की स्वतंत्रता चाहता हूँ।
एम: आप अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए स्वतंत्र हैं। वास्तव में, आप इसके अलावा और कुछ नहीं कर रहे हैं।
प्रश्न: मैं कोशिश करता हूँ, लेकिन कुछ बाधाएँ हैं जिनसे मुझे निराशा होती है।
एम: उन पर विजय प्राप्त करो।
प्रश्न: मैं नहीं कर सकता, मैं बहुत कमजोर हूँ।
एम: आपको क्या चीज़ कमज़ोर बनाती है? कमज़ोरी क्या है? दूसरे अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं, आप क्यों नहीं?
प्रश्न: मुझमें ऊर्जा की कमी हो रही होगी।
एम: आपकी ऊर्जा कहाँ गई? वो कहाँ चली गई? क्या आपने उसे इतनी सारी परस्पर विरोधी इच्छाओं और लक्ष्यों में बिखेर नहीं दिया? आपके पास ऊर्जा का असीमित भंडार तो नहीं है।
प्रश्न: क्यों नहीं?
एम: आपके लक्ष्य छोटे और मामूली हैं। इनमें और अधिक की आवश्यकता नहीं है। केवल ईश्वर की शक्ति अनंत है - क्योंकि वह अपने लिए कुछ नहीं चाहता। उन्हीं

की तरह बनो और तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी। आपके लक्ष्य जितने ऊँचे और इच्छाएँ जितनी विशाल होंगी, उन्हें पूरा करने के लिए आपके पास उतनी ही अधिक शक्ति होगी। सभी का भला चाहो और ब्रह्मांड तुम्हारे साथ काम करेगा। लेकिन यदि तुम स्वयं सुख चाहते हो, तो तुम्हें उसे कठिन परिश्रम से अर्जित करना होगा। इच्छा करने से पहले, उसके योग्य बनो।
प्रश्न: मैं दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र और शिक्षा का अध्ययन कर रहा हूँ। मेरा मानना है कि आत्म-साक्षात्कार का सपना देखने से पहले मुझे और अधिक मानसिक विकास की आवश्यकता है। क्या मैं सही राह पर हूँ?
एम: जीविका कमाने के लिए कुछ विशेष ज्ञान आवश्यक है। सामान्य ज्ञान से बुद्धि का विकास होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन यदि आप अपना पूरा जीवन ज्ञान संचय में व्यतीत करेंगे, तो आप अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी कर लेंगे। बुद्धि से परे जाने के लिए, एक सुसज्जित बुद्धि की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: तो फिर क्या आवश्यक है?
एम: अपने दिमाग पर भरोसा न करो, और उससे आगे बढ़ो।
प्रश्न: मन से परे मुझे क्या मिलेगा?
एम: होने, जानने और प्रेम करने का प्रत्यक्ष अनुभव।
प्रश्न: मन से परे कैसे पहुंचा जा सकता है?
एम: अनेक आरंभिक बिंदु हैं—वे सभी एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। आप निस्वार्थ कर्म से शुरुआत कर सकते हैं, कर्मों के फल का त्याग कर सकते हैं; फिर आप चिंतन का त्याग कर अंत में सभी इच्छाओं का त्याग कर सकते हैं। यहाँ त्याग ही क्रियाशील कारक है। या फिर, आप अपनी किसी भी इच्छा, विचार या कर्म की परवाह न करके, केवल 'मैं हूँ' के विचार और भाव में स्थिर रह सकते हैं, अपने मन में 'मैं हूँ' को दृढ़ता से केंद्रित कर सकते हैं। आपको हर प्रकार के अनुभव प्राप्त हो सकते हैं—इस ज्ञान में अविचलित रहें कि जो कुछ भी प्रत्यक्ष है वह क्षणभंगुर है, और केवल 'मैं हूँ' ही शाश्वत है।
प्रश्न: मैं अपना पूरा जीवन ऐसी गतिविधियों में नहीं लगा सकता। मुझे अपने कर्तव्यों का भी पालन करना है।
एम: आप अपने कर्तव्यों का निर्वाह करें। ऐसा कार्य जिसमें आप भावनात्मक रूप से संलग्न न हों, जो लाभकारी हो और जिससे कोई कष्ट न हो, वह आपको बाध्य नहीं करेगा। आप अनेक दिशाओं में लगे रह सकते हैं और पूरे उत्साह से काम कर सकते हैं, फिर भी आंतरिक रूप से स्वतंत्र और शांत रहें, आपका मन दर्पण की तरह हर चीज को प्रतिबिंबित करे और प्रभावित न हो।
प्रश्न: क्या ऐसी स्थिति साकार हो सकती है?
एम: अगर ऐसा न होता तो मैं इसके बारे में बात ही नहीं करता। मुझे कल्पनाओं में क्यों उलझना चाहिए?
प्रश्न: हर कोई धर्मग्रंथों का हवाला देता है।
एम: जो लोग केवल शास्त्रों को जानते हैं, वे कुछ नहीं जानते। जानना ही जीवन है। मैं जो कह रहा हूँ, वह मुझे ज्ञात है; यह मैंने न तो पढ़कर कहा है और न ही सुनी-सुनाई बातों से।
प्रश्न: मैं एक प्रोफेसर के मार्गदर्शन में संस्कृत का अध्ययन कर रहा हूँ, लेकिन वास्तव में मैं केवल शास्त्रों का ही अध्ययन कर रहा हूँ। मैं आत्मज्ञान की खोज में हूँ और इसके लिए आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त करने आया हूँ। कृपया मुझे बताएं कि मुझे क्या करना चाहिए?
एम: जब आपने धर्मग्रंथ पढ़ लिए हैं, तो आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?

प्रश्न: शास्त्रों में सामान्य दिशा-निर्देश दिए गए हैं, लेकिन व्यक्ति को व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
एम: आपका स्वयं का स्वरूप ही आपका परम गुरु है। बाहरी गुरु मात्र एक पड़ाव हैं। आपका आंतरिक गुरु ही आपको लक्ष्य तक ले जाएगा, क्योंकि वही लक्ष्य है।
प्रश्न: आंतरिक गुरु तक आसानी से नहीं पहुंचा जा सकता।
एम: चूंकि वह आप में और आपके साथ है, इसलिए समस्या गंभीर नहीं हो सकती। अपने भीतर देखो, और तुम उसे पा लोगे।
प्रश्न: जब मैं अपने भीतर झांकता हूँ, तो मुझे संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ, विचार और भावनाएँ, इच्छाएँ और भय, यादें और अपेक्षाएँ दिखाई देती हैं। मैं इस वृत्तांत में डूबा रहता हूँ और मुझे इसके अलावा कुछ और दिखाई नहीं देता।
एम: जो इन सब को और शून्य को भी देखता है, वही आंतरिक गुरु है। वही एकमात्र है, बाकी सब तो केवल प्रतीत होता है। वही तुम्हारा स्वयं का स्वरूप है, तुम्हारी आशा और मुक्ति का आश्वासन है; उसे खोजो और उससे जुड़े रहो, तुम उद्धार पाओगे और सुरक्षित रहोगे।
प्रश्न: मैं आपकी बात पर विश्वास करता हूँ, लेकिन जब इस आंतरिक स्व को वास्तव में खोजने की बात आती है, तो मुझे लगता है कि यह मेरे बस से बाहर है। एम: 'यह मेरी समझ से परे है', यह विचार कहाँ से आता है?
प्रश्न: मन में।
एम: और मन को कौन जानता है?
प्रश्न: मन का साक्षी मन को जानता है।
एम: क्या कभी कोई आपके पास आकर यह बोला है: 'मैं आपके मन का साक्षी हूं'? प्रश्न: बिलकुल नहीं। वह तो बस मन में एक और विचार ही होता।
एम: तो फिर गवाह कौन है?
प्रश्न: मैं हूँ।
एम: तो, आप गवाह को जानते हैं क्योंकि आप स्वयं गवाह हैं। आपको गवाह को अपने सामने देखने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ भी, अस्तित्व ही ज्ञान है। प्रश्न: जी हाँ, मैं देखता हूँ कि मैं साक्षी हूँ, स्वयं चेतना हूँ। लेकिन इससे मुझे क्या लाभ होता है?
एम: क्या सवाल है! आप किस तरह के लाभ की उम्मीद करते हैं? खुद को जानना ही क्या काफी नहीं है?
प्रश्न: आत्मज्ञान के क्या उपयोग हैं?
एम: यह आपको यह समझने में मदद करता है कि आप क्या नहीं हैं और आपको झूठे विचारों, इच्छाओं और कार्यों से मुक्त रखता है।
प्रश्न: यदि मैं ही एकमात्र गवाह हूँ, तो सही और गलत का क्या महत्व है? एम: जो आपको स्वयं को जानने में मदद करता है, वह सही है। जो आपको स्वयं को जानने से रोकता है, वह गलत है। अपने वास्तविक स्वरूप को जानना आनंद है, उसे भूलना दुख है।
प्रश्न: क्या साक्षी-चेतना ही वास्तविक आत्मा है?
एम: यह मन (बुद्धि) में यथार्थ का प्रतिबिंब है। यथार्थ उससे परे है। साक्षी वह द्वार है जिसके माध्यम से आप उससे परे प्रवेश करते हैं।
प्रश्न: ध्यान का उद्देश्य क्या है?
एम: असत्य को असत्य के रूप में देखना ही ध्यान है। यह निरंतर चलता रहना चाहिए।

प्रश्न: हमें नियमित रूप से ध्यान करने के लिए कहा जाता है।
एम: सत्य और असत्य के बीच विवेक का सचेत दैनिक अभ्यास और असत्य का त्याग ही ध्यान है। शुरुआत में ध्यान के अनेक प्रकार होते हैं, लेकिन अंततः वे सभी एक में विलीन हो जाते हैं।
प्रश्न: कृपया मुझे बताएं कि आत्म-साक्षात्कार का सबसे छोटा मार्ग कौन सा है।
एम: कोई भी रास्ता छोटा या लंबा नहीं होता, बस कुछ लोग अधिक गंभीर होते हैं और कुछ कम। मैं अपने बारे में बता सकता हूँ। मैं एक साधारण व्यक्ति था, लेकिन मुझे अपने गुरु पर पूरा भरोसा था। उन्होंने जो भी करने को कहा, मैंने किया। उन्होंने मुझे 'मैं' पर ध्यान केंद्रित करने को कहा - मैंने किया। उन्होंने मुझे बताया कि मैं सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चीजों से परे हूँ - मैंने विश्वास किया। मैंने उन्हें अपना हृदय और आत्मा, अपना पूरा ध्यान और अपना सारा खाली समय दे दिया (मुझे अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए काम करना पड़ता था)। आस्था और लगन से किए गए प्रयास के फलस्वरूप, मैंने तीन वर्षों के भीतर अपने आत्म-स्वरूप को जान लिया।
आप अपनी सुविधानुसार कोई भी तरीका चुन सकते हैं; आपकी लगन ही प्रगति की गति निर्धारित करेगी।
प्रश्न: मेरे लिए कोई संकेत नहीं?
एम: 'मैं हूं' की चेतना में स्वयं को दृढ़ता से स्थापित करें। यही समस्त प्रयासों का आरंभ और अंत है।

17. सर्वव्यापी

प्रश्नकर्ता: मन की सर्वोच्च शक्तियाँ समझ, बुद्धि और अंतर्दृष्टि हैं। मनुष्य के तीन शरीर होते हैं - भौतिक, मानसिक और कारण (प्राण, मन, कारण)। भौतिक शरीर उसके अस्तित्व को दर्शाता है; मानसिक शरीर उसके ज्ञान को और कारण शरीर उसकी आनंदमय रचनात्मकता को। बेशक, ये सभी चेतना के रूप हैं। लेकिन ये अलग-अलग प्रतीत होते हैं, जिनमें अपने-अपने गुण होते हैं। बुद्धि मन में ज्ञान की शक्ति का प्रतिबिंब है। यही वह शक्ति है जो मन को ज्ञानी बनाती है। बुद्धि जितनी प्रखर होगी, ज्ञान उतना ही व्यापक, गहरा और सच्चा होगा। वस्तुओं को जानना, लोगों को जानना और स्वयं को जानना, ये सभी बुद्धि के कार्य हैं: अंतिम सबसे महत्वपूर्ण है और इसमें पूर्व दो शामिल हैं। स्वयं को और संसार को गलत समझना झूठे विचारों और इच्छाओं को जन्म देता है, जो फिर से बंधन की ओर ले जाते हैं। भ्रम के बंधन से मुक्ति के लिए स्वयं की सही समझ आवश्यक है। मैं यह सब सिद्धांत में समझता हूँ, लेकिन जब अभ्यास की बात आती है, तो मैं पाता हूँ कि मैं परिस्थितियों और लोगों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं में बुरी तरह विफल हो जाता हूँ और अपनी अनुचित प्रतिक्रियाओं से मैं अपने बंधन को और बढ़ा देता हूँ। मेरी सुस्त और धीमी बुद्धि के लिए जीवन बहुत तेज़ गति से चल रहा है। मैं समझता तो हूँ, लेकिन बहुत देर हो चुकी है, जब पुरानी गलतियाँ पहले ही दोहराई जा चुकी हैं। महाराज: तो फिर आपकी समस्या क्या है?
प्रश्न: मुझे जीवन के प्रति एक ऐसी प्रतिक्रिया चाहिए जो न केवल बुद्धिमान हो, बल्कि अत्यंत त्वरित भी हो। त्वरित प्रतिक्रिया तभी संभव है जब वह पूर्णतः सहज हो। मैं ऐसी सहजता कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?

एम: दर्पण सूर्य को आकर्षित करने के लिए कुछ नहीं कर सकता। यह केवल अपनी चमक बरकरार रख सकता है। जैसे ही मन तैयार होता है, सूर्य की रोशनी इसमें दिखाई देती है।
प्रश्न: यह प्रकाश आत्मा का है या मन का?
एम: दोनों। यह अपने आप में अकारण और अपरिवर्तनीय है, और मन द्वारा रंगित है, क्योंकि यह गतिमान और परिवर्तित होता रहता है। यह सिनेमा की तरह है। प्रकाश फिल्म में नहीं होता, बल्कि फिल्म प्रकाश को रंग देती है और उसे रोककर उसे गतिमान प्रतीत कराती है।
प्रश्न: क्या अब आप एकदम सही स्थिति में हैं?
एम: पूर्णता मन की एक अवस्था है, जब वह शुद्ध होता है। मैं मन से परे हूँ, चाहे वह किसी भी अवस्था में हो, शुद्ध हो या अशुद्ध। जागरूकता मेरा स्वभाव है; अंततः मैं अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे हूँ।
प्रश्न: क्या ध्यान लगाने से मुझे आपकी बताई गई अवस्था तक पहुँचने में मदद मिलेगी?
एम: ध्यान आपको अपने बंधनों को खोजने, उन्हें ढीला करने, उन्हें खोलने और अपनी सीमाओं को पार करने में मदद करेगा। जब आप किसी भी चीज़ से लगाव मुक्त हो जाते हैं, तो आपने अपना काम कर लिया होता है। बाकी सब कुछ अपने आप हो जाता है।
प्रश्न: किसके द्वारा?
एम: उसी शक्ति से जिसने आपको यहाँ तक पहुँचाया, जिसने आपके हृदय में सत्य की इच्छा और आपके मन में उसकी खोज की प्रेरणा जगाई। वही शक्ति आपको जीवित रखती है। आप इसे जीवन या परम सत्ता कह सकते हैं।
प्रश्न: वही शक्ति समय आने पर मुझे मार डालती है।
एम: क्या आप अपने जन्म के समय उपस्थित नहीं थे? क्या आप अपनी मृत्यु के समय उपस्थित नहीं होंगे? उस ईश्वर को खोजें जो सदा उपस्थित रहता है और आपकी सहज और पूर्ण प्रतिक्रिया की समस्या हल हो जाएगी।
प्रश्न: शाश्वत का अहसास और निरंतर परिवर्तनशील क्षणिक घटनाओं के प्रति सहज और पर्याप्त प्रतिक्रिया, ये दो अलग-अलग प्रश्न हैं। आप इन्हें एक ही प्रश्न में समेटते प्रतीत होते हैं। ऐसा करने के पीछे आपका क्या कारण है? एम: शाश्वत को अनुभव करना ही शाश्वत, संपूर्ण, ब्रह्मांड और उसमें समाहित सभी तत्वों का साकार रूप धारण करना है। प्रत्येक घटना संपूर्ण का प्रभाव और अभिव्यक्ति है तथा संपूर्ण के साथ मूलभूत सामंजस्य में है। संपूर्ण की सभी प्रतिक्रिया सही, सहज और तात्कालिक होनी चाहिए।
यदि यह सही है, तो ऐसा होना ही चाहिए। विलंबित प्रतिक्रिया गलत प्रतिक्रिया होती है। विचार, भावना और क्रिया एकरूप और समवर्ती होनी चाहिए, ठीक उसी परिस्थिति के अनुरूप जिसमें इनकी आवश्यकता होती है। प्रश्न: यह कैसे आता है?
एम: मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है। उसे ढूंढो जो तुम्हारे जन्म के समय मौजूद था और तुम्हारी मृत्यु का साक्षी होगा।
प्रश्न: मेरे पिता और माता?
एम: जी हाँ, आपके माता-पिता, जिनसे आप आए हैं। किसी समस्या का हल निकालने के लिए, आपको उसकी जड़ तक जाना होगा। समस्या का सही समाधान तभी मिल सकता है जब उसे गहन जांच-पड़ताल और निष्पक्षता के सार्वभौमिक विलायकों में विलीन कर दिया जाए।

18. खुद को जानने के लिए, यह पता लगाएं कि आप क्या नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता: ब्रह्मांड को पदार्थ, मन और आत्मा से मिलकर बना बताने का आपका तरीका कई तरीकों में से एक है। ब्रह्मांड के अनुरूप होने की अपेक्षा अन्य कई प्रतिरूपों से भी की जाती है, और यह जानना मुश्किल हो जाता है कि कौन सा प्रतिरूप सत्य है और कौन सा असत्य। अंततः संदेह होने लगता है कि सभी प्रतिरूप केवल शाब्दिक हैं और कोई भी प्रतिरूप वास्तविकता को समाहित नहीं कर सकता। आपके अनुसार, वास्तविकता तीन विस्तारों से बनी है: पदार्थ-ऊर्जा का विस्तार (महादकाश), चेतना का विस्तार (चिदकाश) और शुद्ध आत्मा का विस्तार (परमकाश)। पहला वह है जिसमें गति और जड़ता दोनों हैं। जिसे हम अनुभव करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि हम अनुभव करते हैं - हम सचेत हैं और सचेत होने के प्रति भी सजग हैं। इस प्रकार, हमारे पास दो हैं: पदार्थ-ऊर्जा और चेतना। पदार्थ अंतरिक्ष में प्रतीत होता है जबकि ऊर्जा हमेशा समय में होती है, परिवर्तन से जुड़ी होती है और परिवर्तन की दर से मापी जाती है। चेतना किसी प्रकार यहाँ और अभी, समय और स्थान के एक बिंदु पर प्रतीत होती है। लेकिन आप यह सुझाव देना चाहते हैं कि चेतना भी सार्वभौमिक है - जो इसे कालातीत, स्थानहीन और अवैयक्तिक बनाती है। मैं किसी तरह यह समझ सकता हूँ कि काल और स्थान से परे तथा वर्तमान क्षण के बीच कोई विरोधाभास नहीं है, लेकिन निराकार चेतना मेरी समझ से परे है। मेरे लिए चेतना हमेशा केंद्रित, केंद्रित, वैयक्तिक, एक व्यक्ति होती है। आप शायद यह कहना चाहते हैं कि बिना बोधकर्ता के बोध हो सकता है, बिना बोधकर्ता के ज्ञान हो सकता है, बिना प्रेमी के प्रेम हो सकता है, बिना कर्ता के कर्म हो सकता है। मुझे लगता है कि ज्ञान, बोधकर्ता और ज्ञेय की त्रिमूर्ति जीवन की हर गतिविधि में देखी जा सकती है। चेतना का अर्थ है एक चेतन प्राणी, चेतना का विषय और चेतन होने का तथ्य। जो चेतन है उसे मैं व्यक्ति कहता हूँ। एक व्यक्ति संसार में रहता है, उसका एक हिस्सा है, उसे प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है। महाराज: आप यह पता क्यों नहीं लगाते कि दुनिया और व्यक्ति कितने वास्तविक हैं?
प्रश्न: ओह, नहीं! मुझे पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही काफी है कि वह व्यक्ति उस दुनिया से कम वास्तविक न हो जिसमें वह विद्यमान है।
एम: तो फिर सवाल क्या है?
प्रश्न: क्या व्यक्ति वास्तविक हैं और सार्वभौमिक अवधारणात्मक हैं, या क्या सार्वभौमिक वास्तविक हैं और व्यक्ति काल्पनिक हैं?
एम: दोनों ही वास्तविक नहीं हैं।
प्रश्न: निश्चित रूप से, मैं आपके उत्तर का हकदार हूं और मैं एक व्यक्ति हूं।
एम: सोते समय नहीं।
प्रश्न: जलमग्न होना अनुपस्थिति नहीं है। सोते हुए भी, मैं अनुपस्थित ही हूँ।
एम: एक इंसान होने के लिए आत्म-जागरूक होना जरूरी है। क्या आप हमेशा ऐसे ही रहते हैं?
प्रश्न: जब मैं सो रहा होता हूँ, तब तो बिल्कुल नहीं, न ही जब मैं बेहोश होता हूँ या नशे में होता हूँ।
एम: क्या आप जागते समय लगातार आत्म-सचेत रहते हैं?

प्रश्न: नहीं, कभी-कभी मैं अन्यमनस्क हो जाता हूँ, या बस तल्लीन हो जाता हूँ।
एम: क्या आप आत्म-चेतना के अंतराल के दौरान एक व्यक्ति होते हैं? प्रश्न: बिल्कुल, मैं हर समय वही व्यक्ति हूं। मुझे याद है कि मैं कल और बीते साल कैसा था - निश्चित रूप से, मैं वही व्यक्ति हूं।
एम: तो, इंसान होने के लिए आपको स्मृति की आवश्यकता होती है?
प्रश्न: बिल्कुल।
एम: और बिना स्मृति के, तुम क्या हो?
प्रश्न: अपूर्ण स्मृति अपूर्ण व्यक्तित्व का सूचक है। स्मृति के बिना मेरा अस्तित्व ही नहीं हो सकता।
एम: बेशक आप बिना स्मृति के भी जीवित रह सकते हैं। आप ऐसा करते हैं - नींद में।
प्रश्न: केवल जीवित रहने के अर्थ में। एक व्यक्ति के रूप में नहीं।
एम: चूंकि आप यह स्वीकार करते हैं कि एक व्यक्ति के रूप में आपका अस्तित्व केवल क्षणिक है, तो क्या आप मुझे बता सकते हैं कि एक व्यक्ति के रूप में स्वयं का अनुभव करने के बीच के अंतरालों में आप क्या होते हैं?
प्रश्न: मैं हूं, लेकिन एक व्यक्ति के रूप में नहीं। चूंकि मैं अंतरालों में स्वयं के प्रति सचेत नहीं हूं, इसलिए मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मैं मौजूद हूं, लेकिन एक व्यक्ति के रूप में नहीं।
एम: क्या हम इसे अवैयक्तिक अस्तित्व कहेंगे?
प्रश्न: मैं इसे एक प्रकार का अचेतन अस्तित्व कहूंगा; मैं हूं, लेकिन मुझे यह नहीं पता कि मैं हूं।
एम: आपने अभी कहा: 'मैं हूं, लेकिन मुझे नहीं पता कि मैं हूं'। क्या आप यही बात अपनी अचेतन अवस्था के बारे में कह सकते हैं?
प्रश्न: नहीं, मैं नहीं कर सकता।
एम: आप इसे केवल भूतकाल में ही बता सकते हैं: 'मुझे पता नहीं था। मैं बेहोश था', यानी मुझे याद नहीं था।
प्रश्न: बेहोशी की हालत में मुझे क्या-क्या याद था और कैसे याद रहा?
एम: क्या आप सचमुच बेहोश थे, या आपको बस याद नहीं है?
प्रश्न: मुझे यह कैसे पता चलेगा?
एम: सोचो। क्या तुम्हें कल का हर पल याद है?
प्रश्न: बिलकुल नहीं।
एम: क्या आप उस समय बेहोश थे?
प्रश्न: बिलकुल नहीं।
एम: तो, आप होश में हैं फिर भी आपको याद नहीं है?
प्रश्न: हाँ।
एम: हो सकता है कि आप नींद में होश में थे और आपको याद नहीं है।
प्रश्न: नहीं, मैं होश में नहीं था। मैं सो रहा था। मैंने एक होश में रहने वाले व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं किया।
एम: फिर से, आपको कैसे पता चला?
प्रश्न: मुझे ऐसा उन लोगों ने बताया जिन्होंने मुझे सोते हुए देखा था। एम: वे बस इतना ही बता सकते हैं कि उन्होंने आपको आंखें बंद करके शांति से लेटे हुए और नियमित रूप से सांस लेते हुए देखा। वे यह पता नहीं लगा सके कि आप होश में थे या नहीं। आपका एकमात्र सबूत आपकी अपनी याददाश्त है। और वह भी एक बहुत ही अनिश्चित सबूत!

प्रश्न: जी हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि अपनी शर्तों के अनुसार मैं केवल जागते समय ही एक व्यक्ति हूँ। जागने के बाद मैं क्या होता हूँ, यह मुझे नहीं पता।
एम: कम से कम आपको यह तो पता है कि आपको नहीं पता! चूंकि आप जागने के घंटों के बीच के अंतरालों में अचेतन होने का नाटक करते हैं, तो उन अंतरालों को छोड़ दें। आइए केवल जागने के घंटों पर ही विचार करें।
प्रश्न: मैं अपने सपनों में भी वही व्यक्ति होता हूँ।
एम: सहमत हूँ। आइए, जागृत अवस्था और स्वप्न अवस्था को एक साथ देखें। अंतर केवल निरंतरता का है। यदि आपके सपने लगातार आते रहें, रात-दर-रात वही परिवेश और वही लोग दोहराते रहें, तो आप यह पहचान नहीं पाएंगे कि कौन सी जागृत अवस्था है और कौन सा स्वप्न। अब से, जब हम जागृत अवस्था की बात करेंगे, तो उसमें स्वप्न अवस्था को भी शामिल करेंगे।
प्रश्न: सहमत हूँ। मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो दुनिया के साथ सचेत संबंध में है।
एम: क्या दुनिया और उसके साथ सचेत संबंध आपके व्यक्तित्व के लिए आवश्यक हैं?
प्रश्न: गुफा में डूबे रहने पर भी मैं एक इंसान ही रहता हूँ।
एम: इसका तात्पर्य एक शरीर और एक गुफा से है। और एक ऐसी दुनिया से जिसमें वे विद्यमान हो सकते हैं।
प्रश्न: जी हाँ। मैं समझ सकता हूँ। संसार और संसार की चेतना एक व्यक्ति के रूप में मेरे अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं।
एम: इससे व्यक्ति दुनिया का अभिन्न अंग बन जाता है, या इसके विपरीत। दोनों एक हैं।
प्रश्न: चेतना अपने आप में एक इकाई है। व्यक्ति और संसार चेतना में ही प्रकट होते हैं।
एम: आपने कहा: प्रकट होना। क्या आप इसमें 'गायब होना' भी जोड़ सकते हैं? प्रश्न: नहीं, मैं ऐसा नहीं कह सकता। मैं केवल अपने और अपने संसार के स्वरूप से ही अवगत हो सकता हूँ। एक व्यक्ति के रूप में, मैं यह नहीं कह सकता: 'संसार नहीं है'। संसार के बिना मैं यह कहने के लिए अस्तित्व में ही नहीं होता। क्योंकि संसार है, इसलिए मैं यह कहने के लिए अस्तित्व में हूँ: 'संसार है'।
एम: शायद बात इसके उलट हो। तुम्हारी वजह से ही यह दुनिया है।
प्रश्न: मुझे तो ऐसा कथन अर्थहीन प्रतीत होता है।
एम: जांच करने पर इसका अर्थहीन होना शायद दूर हो जाए।
प्रश्न: हम शुरुआत कहाँ से करें?
एम: मैं इतना ही जानता हूँ कि जो भी किसी पर निर्भर करता है, वह वास्तविक नहीं होता। वास्तविक तो पूरी तरह स्वतंत्र होता है। चूंकि व्यक्ति का अस्तित्व संसार के अस्तित्व पर निर्भर करता है और संसार द्वारा ही परिभाषित और सीमित होता है, इसलिए वह वास्तविक नहीं हो सकता।
प्रश्न: यह सपना तो नहीं हो सकता, निश्चित रूप से।
एम: सपने का भी अस्तित्व होता है, जब उसे समझा और अनुभव किया जाता है। आप जो भी सोचते और महसूस करते हैं, उसका अस्तित्व होता है। लेकिन हो सकता है कि वह वैसा न हो जैसा आप उसे समझते हैं। जिसे आप व्यक्ति समझते हैं, वह कुछ और ही हो सकता है।
प्रश्न: मैं वही हूँ जो मैं स्वयं को जानता हूँ।

एम: आप यह बिल्कुल नहीं कह सकते कि आप वही हैं जो आप खुद को समझते हैं! आपके अपने बारे में विचार दिन-प्रतिदिन और पल-पल बदलते रहते हैं। आपकी आत्म-छवि ही सबसे अधिक परिवर्तनशील है। यह अत्यंत संवेदनशील है, हर किसी के प्रभाव में। किसी प्रियजन की मृत्यु, नौकरी छूटना, अपमान, और आपकी स्वयं की छवि, जिसे आप अपना व्यक्तित्व कहते हैं, पूरी तरह बदल जाती है। यह जानने के लिए कि आप क्या हैं, आपको पहले यह जानना होगा कि आप क्या नहीं हैं। और यह जानने के लिए कि आप क्या नहीं हैं, आपको स्वयं को ध्यान से देखना होगा, उन सभी चीजों को नकारना होगा जो इस मूलभूत तथ्य से मेल नहीं खातीं: 'मैं हूं'। ये विचार कि मैं एक निश्चित स्थान पर, एक निश्चित समय पर, अपने माता-पिता से पैदा हुआ हूं और अब मैं फलां-फलां हूं, यहां रहता हूं, विवाहित हूं, पिता हूं, यहां कार्यरत हूं, इत्यादि, 'मैं हूं' की भावना में अंतर्निहित नहीं हैं। हमारा सामान्य दृष्टिकोण 'मैं यह हूं' का होता है। 'मैं' को 'यह' या 'वह' से लगातार और दृढ़तापूर्वक अलग करें, और यह महसूस करने का प्रयास करें कि 'यह' या 'वह' हुए बिना, केवल होने का क्या अर्थ है। हमारी सभी आदतें इसके विपरीत हैं और उनसे लड़ना कभी-कभी लंबा और कठिन होता है, लेकिन स्पष्ट समझ बहुत सहायक होती है। आप जितना स्पष्ट रूप से यह समझ लेंगे कि मन के स्तर पर आपका वर्णन केवल नकारात्मक शब्दों में ही किया जा सकता है, उतनी ही जल्दी आप अपनी खोज के अंत तक पहुँचेंगे और अपने असीम अस्तित्व को जान लेंगे।

19. वास्तविकता वस्तुनिष्ठता में निहित है।

प्रश्नकर्ता: मैं एक चित्रकार हूँ और चित्र बनाकर अपनी आजीविका कमाता हूँ। क्या आध्यात्मिक दृष्टि से इसका कोई महत्व है?
महाराज: जब आप चित्रकारी करते हैं तो आप क्या सोचते हैं?
प्रश्न: जब मैं पेंटिंग करता हूँ, तो वहाँ केवल पेंटिंग और मैं ही होते हैं।
एम: तुम वहां क्या कर रहे हो?
प्रश्न: मैं चित्रकारी करता हूँ।
एम: नहीं, आप नहीं देखते। आप पेंटिंग होते हुए देखते हैं। आप सिर्फ देख रहे होते हैं, बाकी सब अपने आप होता है।
प्रश्न: क्या यह चित्र स्वयं ही बन रहा है? या फिर, क्या कोई गहरा 'मैं' है, या कोई ईश्वर है जो इसे बना रहा है?
एम: चेतना स्वयं ही सबसे बड़ी चित्रकार है। संपूर्ण संसार एक चित्र है। प्रश्न: दुनिया का चित्र किसने बनाया?
एम: चित्रकार तस्वीर में है।
प्रश्न: चित्र चित्रकार के मन में है और चित्रकार चित्र में है, जो चित्रकार के मन में है, और चित्रकार स्वयं चित्र में है! क्या अवस्थाओं और आयामों की यह अनंतता बेतुकी नहीं है? जैसे ही हम मन में चित्र की बात करते हैं, जो स्वयं चित्र में है, हम गवाहों के एक अंतहीन क्रम में पहुँच जाते हैं, जहाँ उच्चतर गवाह निम्नतर को देखता है। यह दो दर्पणों के बीच खड़े होकर भीड़ को देखकर आश्चर्यचकित होने जैसा है!
एम: बिलकुल सही, वहाँ सिर्फ़ आप और दोहरा दर्पण हैं। इन दोनों के बीच, आपके रूप और नाम अनगिनत हैं।
प्रश्न: आप दुनिया को किस नजरिए से देखते हैं?

एम: मैं एक चित्रकार को चित्र बनाते हुए देखता हूँ। चित्र को मैं संसार कहता हूँ, चित्रकार को मैं ईश्वर कहता हूँ। मैं न तो सृजन करता हूँ, न ही मेरा सृजन हुआ है। मैं सब कुछ समाहित करता हूँ, मुझे कोई समाहित नहीं कर सकता।
प्रश्न: जब मैं कोई पेड़, चेहरा या सूर्यास्त देखता हूँ, तो तस्वीर एकदम स्पष्ट होती है। लेकिन जब मैं आँखें बंद करता हूँ, तो छवि धुंधली और अस्पष्ट हो जाती है। यदि तस्वीर मेरे मन द्वारा ही बनती है, तो मुझे एक सुंदर फूल को देखने के लिए आँखें खोलने की क्या आवश्यकता है, जबकि आँखें बंद करने पर वह धुंधला ही दिखाई देता है?
एम: ऐसा इसलिए है क्योंकि आपकी बाहरी दृष्टि आपकी आंतरिक दृष्टि से बेहतर है। आपका मन पूरी तरह से बाहरी दुनिया की ओर उन्मुख है। जैसे-जैसे आप अपने मानसिक जगत को देखना सीखेंगे, आप पाएंगे कि यह शरीर द्वारा प्रदान की जाने वाली दुनिया से भी अधिक रंगीन और परिपूर्ण है। बेशक, इसके लिए आपको कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। लेकिन बहस क्यों करें? आप कल्पना करते हैं कि चित्र उसी चित्रकार द्वारा बनाया गया होगा जिसने वास्तव में इसे चित्रित किया है। आप हर समय उत्पत्ति और कारणों की खोज करते रहते हैं। कार्य-कारण केवल मन में ही निहित है; स्मृति निरंतरता का भ्रम पैदा करती है और पुनरावृत्ति कार्य-कारण का विचार उत्पन्न करती है। जब चीजें बार-बार एक साथ घटित होती हैं, तो हम उनके बीच एक कार्य-कारण संबंध देखने लगते हैं। यह एक मानसिक आदत का निर्माण करता है, लेकिन आदत कोई आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: आपने अभी कहा कि दुनिया भगवान द्वारा बनाई गई है।
एम: याद रखें कि भाषा मन का एक उपकरण है; यह मन द्वारा, मन के लिए बनाई गई है। एक बार जब आप किसी कारण को स्वीकार कर लेते हैं, तो ईश्वर ही परम कारण होता है और संसार उसका परिणाम। वे भिन्न हैं, परन्तु पृथक नहीं।
प्रश्न: लोग ईश्वर को देखने की बात करते हैं।
एम: जब आप संसार को देखते हैं, तो आप ईश्वर को देखते हैं। संसार से अलग होकर ईश्वर को देखना संभव नहीं है। संसार से परे ईश्वर को देखना ही ईश्वर होना है। जिस प्रकाश से आप संसार को देखते हैं, जो कि ईश्वर है, वह एक छोटी सी चिंगारी है: 'मैं हूँ', जो देखने में तो बहुत छोटी लगती है, फिर भी जानने और प्रेम करने के प्रत्येक कार्य में प्रथम और अंतिम है।
प्रश्न: क्या ईश्वर को देखने के लिए संसार को देखना आवश्यक है?
एम: और कैसे? न दुनिया, न भगवान?
प्रश्न: क्या शेष रहता है?
एम: आप शुद्ध स्वरूप में बने रहते हैं।
प्रश्न: और संसार तथा ईश्वर का क्या होगा?
M: Pure being (avyakta).
प्रश्न: क्या यह परमकाश (ग्रेट एक्सपेंस) के समान है?
एम: आप इसे ऐसा कह सकते हैं। शब्दों का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वे उस तक नहीं पहुँचते। वे पूरी तरह से नकार कर वापस लौट जाते हैं।
प्रश्न: मैं दुनिया को ईश्वर के रूप में कैसे देख सकता हूँ? दुनिया को ईश्वर के रूप में देखने का क्या अर्थ है?
एम: यह एक अंधेरे कमरे में प्रवेश करने जैसा है। आपको कुछ दिखाई नहीं देता — आप छू सकते हैं, लेकिन देख नहीं सकते—न रंग, न आकृतियाँ। खिड़की खुलती है और कमरा प्रकाश से भर जाता है। रंग और आकृतियाँ अस्तित्व में आ जाती हैं। खिड़की प्रकाश देने वाली है, लेकिन उसका स्रोत नहीं। सूर्य ही स्रोत

है। इसी प्रकार, पदार्थ उस अंधेरे कमरे के समान है; चेतना—खिड़की—जो पदार्थ को संवेदनाओं और बोधों से भर देती है, और परम सत्ता सूर्य है, जो पदार्थ और प्रकाश दोनों का स्रोत है। खिड़की बंद हो या खुली, सूर्य हर समय चमकता रहता है। इससे कमरे में बहुत फर्क पड़ता है, लेकिन सूर्य पर कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर भी यह सब उस छोटी सी चीज के आगे गौण है जो 'मैं हूँ' है। 'मैं हूँ' के बिना कुछ भी नहीं है। सारा ज्ञान 'मैं हूँ' के बारे में है। इस 'मैं हूँ' के बारे में गलत धारणाएँ बंधन की ओर ले जाती हैं, सही ज्ञान स्वतंत्रता और सुख की ओर ले जाता है।
प्रश्न: क्या 'मैं हूँ' और 'वहाँ है' एक ही अर्थ रखते हैं?
एम: 'मैं हूँ' आंतरिकता को दर्शाता है, 'वहाँ है' बाह्यता को। दोनों ही अस्तित्व की भावना पर आधारित हैं।
प्रश्न: क्या यह अस्तित्व के अनुभव के समान है?
एम: अस्तित्व का अर्थ है कुछ होना, कोई वस्तु होना, कोई भावना होना, कोई विचार होना, कोई कल्पना होना। सभी अस्तित्व विशिष्ट होते हैं। केवल होना ही सार्वभौमिक है, इस अर्थ में कि प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी के साथ संगत है। अस्तित्व आपस में टकराते हैं, होना कभी नहीं। अस्तित्व का अर्थ है बनना, परिवर्तन, जन्म और मृत्यु और फिर से जन्म, जबकि होने में मौन शांति होती है।
प्रश्न: यदि मैंने ही दुनिया बनाई है, तो मैंने इसे बुरा क्यों बनाया है? एम: हर कोई अपनी-अपनी दुनिया में रहता है। सभी दुनियाएँ एक समान रूप से अच्छी या बुरी नहीं होतीं।
प्रश्न: अंतर किस बात से निर्धारित होता है?
एम: मन ही दुनिया को अपने नजरिए से देखता है, उसे अपने रंग में रंग देता है। जब आप किसी पुरुष से मिलती हैं, तो वह अजनबी होता है। जब आप उससे शादी करती हैं, तो वह आपका ही रूप बन जाता है। जब आप उससे झगड़ा करती हैं, तो वह आपका दुश्मन बन जाता है। आपके मन का नजरिया ही तय करता है कि वह आपके लिए क्या है।
प्रश्न: मुझे यह समझ में आता है कि मेरी दुनिया व्यक्तिपरक है। क्या इससे यह भ्रामक भी हो जाती है?
एम: जब तक यह व्यक्तिपरक है, तब तक यह भ्रामक है, और केवल उसी हद तक। वास्तविकता वस्तुनिष्ठता में निहित है।
प्रश्न: वस्तुनिष्ठता का क्या अर्थ है? आपने कहा कि दुनिया व्यक्तिपरक है और अब आप वस्तुनिष्ठता की बात कर रहे हैं। क्या सब कुछ व्यक्तिपरक नहीं है?
एम: सब कुछ व्यक्तिपरक है, लेकिन वास्तविकता वस्तुनिष्ठ है।
प्रश्न: किस अर्थ में?
एम: यह यादों और अपेक्षाओं, इच्छाओं और भय, पसंद और नापसंद पर निर्भर नहीं करता। सब कुछ जैसा है वैसा ही देखा जाता है।
प्रश्न: क्या आप इसे चौथी अवस्था (तुरिया) कहते हैं?
एम: आप इसे जो चाहें कह लें। यह ठोस, स्थिर, अपरिवर्तनीय, अनादि और अनंत है, सदा नया, सदा ताजा है।
प्रश्न: वहां कैसे पहुंचा जा सकता है?
एम: इच्छाहीनता और निर्भीकता आपको वहां ले जाएगी।

20. सर्वोच्च सत्ता सभी से परे है।

प्रश्नकर्ता: आप कहते हैं कि वास्तविकता एक है। एकत्व, एकरूपता, व्यक्ति का गुण है। तो क्या वास्तविकता एक व्यक्ति है, जिसका शरीर ब्रह्मांड है? महाराज: आप जो कुछ भी कहेंगे, वह सत्य और असत्य दोनों होगा। शब्द मन से परे नहीं जा सकते।
प्रश्न: मैं बस समझने की कोशिश कर रहा हूँ। आप हमें व्यक्ति, आत्मा और परम सत्ता के बारे में बता रहे हैं (व्यक्ति, व्यक्त, अव्यक्त)। शुद्ध चेतना (प्रज्ञा) का प्रकाश, जो आत्मा (जीवात्मा) में 'मैं हूँ' के रूप में केंद्रित है, चेतना (चेतना) के रूप में मन (अंतःकरण) को प्रकाशित करता है और प्राण (प्राण) के रूप में शरीर (देह) को शक्ति प्रदान करता है। शब्दों के लिहाज से तो यह सब ठीक है। लेकिन जब अपने भीतर व्यक्ति को आत्मा से और आत्मा को परम सत्ता से अलग करने की बात आती है, तो मैं उलझन में पड़ जाता हूँ।
एम: व्यक्ति कभी कर्ता नहीं होता। आप किसी व्यक्ति को देख सकते हैं, लेकिन आप वह व्यक्ति नहीं हैं। आप हमेशा परम सत्ता हैं जो किसी निश्चित समय और स्थान पर साक्षी के रूप में प्रकट होती है, जो परम सत्ता की शुद्ध चेतना और व्यक्ति की विविध चेतना के बीच एक सेतु का काम करती है।
प्रश्न: जब मैं खुद को देखता हूं, तो मुझे लगता है कि मैं कई ऐसे व्यक्ति हूं जो शरीर के उपयोग के लिए आपस में लड़ रहे हैं।
एम: वे मन की विभिन्न प्रवृत्तियों (संस्कारों) के अनुरूप हैं।
प्रश्न: क्या मैं उनके बीच सुलह करा सकता हूँ?
एम: आप ऐसा कैसे कर सकते हैं? वे तो बिल्कुल विरोधाभासी हैं! उन्हें वैसे ही देखें जैसे वे हैं - केवल विचारों और भावनाओं की आदतें, यादों और इच्छाओं का समूह।
प्रश्न: फिर भी वे सभी कहते हैं 'मैं हूं'।
एम: ऐसा सिर्फ इसलिए होता है क्योंकि आप खुद को उनसे जोड़ लेते हैं। जब आपको यह एहसास हो जाता है कि आपके सामने जो कुछ भी प्रकट होता है, वह आप खुद नहीं हो सकते, और न ही 'मैं हूँ' कह सकते हैं, तब आप अपने सभी 'व्यक्तित्वों' और उनकी मांगों से मुक्त हो जाते हैं। 'मैं हूँ' का भाव आपका अपना है। आप इसे छोड़ नहीं सकते, लेकिन आप इसे किसी भी चीज़ में समाहित कर सकते हैं, जैसे: मैं युवा हूँ, मैं धनी हूँ, आदि। लेकिन इस तरह की आत्म-पहचान स्पष्ट रूप से झूठी है और बंधन का कारण है।
प्रश्न: अब मैं समझ गया हूँ कि मैं स्वयं व्यक्ति नहीं हूँ, बल्कि वह हूँ जो व्यक्ति में प्रतिबिंबित होकर उसे अस्तित्व का बोध कराता है। अब, परम सत्ता के बारे में क्या? मैं स्वयं को परम सत्ता के रूप में किस प्रकार जानता हूँ?
एम: चेतना का स्रोत चेतना में कोई वस्तु नहीं हो सकता। स्रोत को जानना ही स्रोत होना है। जब आप यह अहसास करते हैं कि आप व्यक्ति नहीं, बल्कि शुद्ध और शांत साक्षी हैं, और वह निर्भीक जागरूकता ही आपका अस्तित्व है, तब आप ही वह अस्तित्व हैं। यही स्रोत है, यही असीम संभावना है।
प्रश्न: क्या अनेक स्रोत हैं या एक ही स्रोत सभी जानकारी प्रदान करता है? एम: यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे किस दृष्टिकोण से देखते हैं। दुनिया में वस्तुएँ अनेक हैं, लेकिन उन्हें देखने वाली आँख एक ही है। उच्च वस्तु निम्न वस्तु को एक के रूप में और निम्न वस्तु उच्च वस्तु को अनेक के रूप में दिखाई देती है।

प्रश्न: क्या आकृतियाँ और नाम सभी एक ही ईश्वर के हैं?
एम: फिर से, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे किस नजरिए से देखते हैं। शाब्दिक स्तर पर सब कुछ सापेक्ष है। निरपेक्ष चीजों का अनुभव करना चाहिए, उन पर चर्चा नहीं करनी चाहिए।
प्रश्न: परम सत्ता का अनुभव कैसे किया जाता है?
एम: यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे पहचान कर स्मृति में संजोया जा सके। यह वर्तमान में और भावना में निहित है। इसका संबंध 'क्या' से अधिक 'कैसे' से है। यह गुण में, मूल्य में निहित है; हर चीज का स्रोत होने के नाते, यह हर चीज में मौजूद है।
प्रश्न: यदि यह स्रोत है, तो यह स्वयं को क्यों और कैसे प्रकट करता है? एम: यह चेतना को जन्म देता है। बाकी सब कुछ चेतना में ही समाहित है। प्रश्न: चेतना के इतने सारे केंद्र क्यों हैं?
एम: वस्तुनिष्ठ ब्रह्मांड (महादकाश) निरंतर गतिमान है, असंख्य रूपों का निर्माण और विलीन होना। जब भी किसी रूप में प्राण का संचार होता है, चेतना पदार्थ में चेतना के प्रतिबिंब द्वारा प्रकट होती है।
प्रश्न: इससे सर्वोच्च न्यायालय पर क्या प्रभाव पड़ता है?
एम: इसे क्या प्रभावित कर सकता है और कैसे? स्रोत पर नदी के उतार-चढ़ाव का कोई असर नहीं पड़ता, न ही धातु पर आभूषण के आकार का। क्या स्क्रीन पर दिख रही तस्वीर से प्रकाश प्रभावित होता है? परम सत्ता ही सब कुछ संभव बनाती है, बस यही बात है।
प्रश्न: ऐसा कैसे होता है कि कुछ चीजें घटित होती हैं और कुछ नहीं?
एम: कारणों की खोज करना मन का एक शौक है। कारण और परिणाम का कोई द्वैत नहीं है। हर चीज स्वयं अपना कारण है।
प्रश्न: तो फिर कोई उद्देश्यपूर्ण कार्रवाई संभव नहीं है?
एम: मैं बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि चेतना में सब कुछ समाहित है। चेतना में सब कुछ संभव है। आप चाहें तो अपने संसार में कारण पा सकते हैं। कोई दूसरा व्यक्ति केवल एक ही कारण से संतुष्ट हो सकता है - ईश्वर की इच्छा से। मूल कारण एक ही है: 'मैं हूँ' की भावना।
प्रश्न: स्वयं (व्यक्त) और परम सत्ता (अव्यक्त) के बीच क्या संबंध है?
एम: स्वयं के दृष्टिकोण से संसार ज्ञात है, परम सत्ता अज्ञात। अज्ञात से ज्ञात की उत्पत्ति होती है, फिर भी वह अज्ञात ही रहता है। ज्ञात अनंत है, परन्तु अज्ञात अनंतों का अनंत है। जैसे प्रकाश की किरण धूल के कणों द्वारा अवरुद्ध हुए बिना दिखाई नहीं देती, वैसे ही परम सत्ता सब कुछ ज्ञात कराती है, जबकि स्वयं अज्ञात बनी रहती है।
प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि अज्ञात तक पहुंचना असंभव है?
एम: ओह, नहीं। परम सत्ता तक पहुँचना सबसे आसान है; वह तो आपका अस्तित्व ही है। बस इतना ही काफी है कि आप परम सत्ता के अलावा किसी और चीज के बारे में सोचना और इच्छा करना बंद कर दें।
प्रश्न: और यदि मैं कुछ भी न चाहूँ, यहाँ तक कि परम सत्ता भी न चाहूँ?
एम: तो फिर या तो तुम मरे हुए के समान हो, या फिर तुम सर्वोच्च हो।
प्रश्न: दुनिया इच्छाओं से भरी पड़ी है: हर कोई कुछ न कुछ चाहता है। इच्छा करने वाला कौन है? व्यक्ति या स्वयं?
एम: स्वयं। सभी इच्छाएँ, पवित्र और अपवित्र, स्वयं से उत्पन्न होती हैं; वे सभी 'मैं हूँ' की भावना से जुड़ी होती हैं।

प्रश्न: मैं आत्मा से उत्पन्न होने वाली पवित्र इच्छाओं (सत्यकाम) को समझ सकता हूँ। यह आत्मा के सद्धितानंद (अस्तित्व - जागरूकता - सुख) के आनंदमय पहलू की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन अपवित्र इच्छाएँ क्यों?
एम: सभी इच्छाओं का उद्देश्य सुख प्राप्त करना होता है। उनका स्वरूप और गुणवत्ता अंतःकरण पर निर्भर करती है। जहाँ जड़ता (तमस) प्रबल होती है, वहाँ विकृतियाँ पाई जाती हैं। ऊर्जा (राजस) से वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। स्पष्टता (सत्व) से इच्छा का मूल भाव सद्भावना, करुणा और स्वयं प्रसन्न होने की बजाय दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा होती है। परन्तु परमेश्वर सर्वथा सर्वोपरि है, फिर भी उसकी असीम पारगम्यता के कारण सभी तर्कसंगत इच्छाएँ पूर्ण हो सकती हैं।
प्रश्न: कौन सी इच्छाएँ तर्कसंगत हैं?
एम: वे इच्छाएँ जो अपने विषय या वस्तु को नष्ट कर देती हैं, या संतुष्टि मिलने पर भी शांत नहीं होतीं, आत्म-विरोधी होती हैं और कभी पूर्ण नहीं हो सकतीं। केवल प्रेम, सद्भावना और करुणा से प्रेरित इच्छाएँ ही विषय और वस्तु दोनों के लिए लाभकारी होती हैं और पूर्णतः संतुष्ट हो सकती हैं। प्रश्न: सभी इच्छाएँ कष्टदायी होती हैं, चाहे वे पवित्र हों या अपवित्र। एम: ये दोनों एक समान नहीं हैं और दर्द भी एक समान नहीं है। जुनून पीड़ादायी होता है, करुणा कभी नहीं। संपूर्ण ब्रह्मांड करुणा से उत्पन्न इच्छा को पूरा करने का प्रयास करता है।
प्रश्न: क्या परम सत्ता स्वयं को जानती है? क्या निराकार सत्ता चेतन है? एम: सभी का स्रोत ही सब कुछ धारण करता है। उससे जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह बीज रूप में पहले से ही मौजूद होता है। और जिस प्रकार एक बीज असंख्य बीजों में से अंतिम होता है और उसमें अनगिनत वनों का अनुभव और वादा समाहित होता है, उसी प्रकार अज्ञात में वह सब कुछ समाहित है जो था, हो सकता था और जो होगा। संपूर्ण विकास का क्षेत्र खुला और सुलभ है; अतीत और भविष्य शाश्वत वर्तमान में सह-अस्तित्व में हैं।
प्रश्न: क्या आप परम अज्ञात में रह रहे हैं?
एम: और कहाँ?
प्रश्न: आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?
एम: मेरे मन में कभी कोई इच्छा नहीं उठती।
प्रश्न: क्या तब आप बेहोश हो जाते हैं?
एम: बिलकुल नहीं! मैं पूरी तरह से सचेत हूँ, लेकिन चूंकि मेरे मन में कोई इच्छा या भय नहीं आता, इसलिए पूर्ण शांति है।
प्रश्न: इस खामोशी को कौन जानता है?
एम: मौन स्वयं को जानता है। यह शांत मन का मौन है, जब जुनून और इच्छाएं शांत हो जाती हैं।
प्रश्न: क्या आपको कभी-कभार इच्छाएं महसूस होती हैं?
एम: इच्छाएँ तो बस मन की लहरें होती हैं। लहर को देखते ही पहचान लिया जाता है। इच्छा तो बस अनेकों चीजों में से एक है। मुझे इसे पूरा करने की कोई तीव्र इच्छा नहीं होती, इस पर कोई कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है। इच्छा से मुक्ति का अर्थ यही है: संतुष्टि की बाध्यता का अभाव।
प्रश्न: इच्छाएँ उत्पन्न क्यों होती हैं?
एम: क्योंकि आप यह कल्पना करते हैं कि आपका जन्म हुआ है, और यदि आप अपने शरीर का ध्यान नहीं रखेंगे तो आपकी मृत्यु हो जाएगी। शारीरिक अस्तित्व की लालसा ही परेशानी की जड़ है।

प्रश्न: फिर भी, इतने सारे जीव शरीर धारण कर लेते हैं। यह निश्चित रूप से निर्णय की त्रुटि नहीं हो सकती। इसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होगा। वह क्या हो सकता है?
एम: स्वयं को जानने के लिए आत्मा को अपने विपरीत स्वरूप—अनात्मा—का सामना करना पड़ता है। इच्छा से अनुभव प्राप्त होता है। अनुभव से विवेक, वैराग्य, आत्मज्ञान—मुक्ति प्राप्त होती है। और अंततः मुक्ति क्या है? यह जानना कि आप जन्म और मृत्यु से परे हैं। अपने स्वरूप को भूलकर और स्वयं को नश्वर प्राणी मानकर आपने अपने लिए इतनी मुसीबत खड़ी कर ली है कि आपको बुरे सपने से जागने की तरह जागना पड़ा है।
जिज्ञासा आपको जागृत भी करती है। आपको दुख की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है; सुख की खोज करना बेहतर है, क्योंकि इससे मन में सामंजस्य और शांति आती है।
प्रश्न: परम अनुभवकर्ता वास्तव में कौन है - आत्मा या अज्ञात?
एम: स्वयं, बिल्कुल।
प्रश्न: तो फिर परम अज्ञात की अवधारणा को क्यों प्रस्तुत किया गया?
एम: स्वयं को समझाने के लिए।
प्रश्न: लेकिन क्या आत्मा से परे भी कुछ है?
एम: आत्मा के परे कुछ भी नहीं है। सब एक है और सब 'मैं हूँ' में समाहित है। जाग्रत और स्वप्न अवस्था में यह व्यक्ति है। गहरी नींद और तुरिया अवस्था में यह आत्मा है। तुरिया की सजगता से परे परम सत्ता की महान, मौन शांति स्थित है। वास्तव में, सार में सब एक है और रूप में संबंधित है। अज्ञान में देखने वाला देखा जाने वाला बन जाता है और ज्ञान में वह देखने वाला बन जाता है।
लेकिन सर्वोच्च सत्ता की चिंता क्यों करें? जानने वालों को जानो, सब कुछ ज्ञात हो जाएगा।

21. मैं कौन हूँ?

प्रश्नकर्ता: हमें ईश्वर या पूर्ण पुरुष के रूप में साकार वास्तविकता की पूजा करने की सलाह दी जाती है। हमें परम सत्ता की पूजा करने का प्रयास न करने के लिए कहा जाता है, क्योंकि मस्तिष्क-केंद्रित चेतना के लिए यह अत्यंत कठिन है।
महाराज: सत्य सरल है और सबके लिए सुलभ है। इसे जटिल क्यों बनाते हो? सत्य प्रेममय और प्रेम करने योग्य है। यह सबको समाहित करता है, सबको स्वीकार करता है, सबको पवित्र करता है। असत्य ही कठिन और कष्ट का स्रोत है। यह हमेशा कुछ न कुछ चाहता है, अपेक्षा करता है, मांगता है। झूठा होने के कारण यह खोखला है, हमेशा पुष्टि और आश्वासन की तलाश में रहता है। यह पूछताछ से डरता है और उससे बचता है। यह किसी भी सहारे से जुड़ जाता है, चाहे वह कितना भी कमजोर और क्षणिक क्यों न हो। जो कुछ भी इसे मिलता है, यह उसे खो देता है और और अधिक मांगता है। इसलिए अंतरात्मा पर विश्वास मत करो। जो कुछ भी तुम देख सकते हो, महसूस कर सकते हो या सोच सकते हो, वह वैसा नहीं है। यहां तक कि पाप और पुण्य, गुण और दोष भी वैसे नहीं हैं जैसे वे दिखाई देते हैं। आमतौर पर अच्छा और बुरा रीति-रिवाजों और परंपराओं का विषय होता है और शब्दों के प्रयोग के अनुसार उनका त्याग या स्वागत किया जाता है।
प्रश्न: क्या अच्छी और बुरी इच्छाएँ, उच्च और निम्न इच्छाएँ नहीं होतीं?

एम: सभी इच्छाएँ बुरी होती हैं, लेकिन कुछ दूसरों से भी बदतर होती हैं। किसी भी इच्छा का पीछा करो, वह हमेशा तुम्हें मुसीबत में डालेगी।
प्रश्न: क्या इच्छा से मुक्त होने की इच्छा भी?
एम: इच्छा क्यों करें? इच्छा से मुक्ति की कामना करने से मुक्ति नहीं मिलेगी। कोई भी चीज आपको मुक्त नहीं कर सकती, क्योंकि आप स्वयं स्वतंत्र हैं। बस स्वयं को इच्छा रहित स्पष्टता से देखें, यही पर्याप्त है। प्रश्न: स्वयं को जानने में समय लगता है।
एम: समय आपकी मदद कैसे कर सकता है? समय क्षणों का एक सिलसिला है; हर क्षण कहीं से प्रकट होता है और कहीं विलीन हो जाता है, फिर कभी प्रकट नहीं होता। इतनी क्षणभंगुर चीज़ पर आप कैसे कुछ बना सकते हैं?
प्रश्न: स्थायी क्या है?
एम: स्थायी चीज़ों के लिए खुद पर भरोसा रखो। अपने भीतर गहराई से उतरो और अपने अंदर की वास्तविकता को खोजो।
प्रश्न: मैं खुद को कैसे ढूंढूं?
एम: जो कुछ भी होता है, वह तुम्हारे साथ ही घटित होता है। तुम जो कुछ भी करते हो, उसे करने वाला तुम ही हो। अपने अस्तित्व के सार को खोजो। प्रश्न: मैं और क्या बन सकता हूँ?
एम: पता लगाओ। भले ही मैं तुमसे कह दूं कि तुम साक्षी हो, मौन दर्शक हो, इसका तुम्हारे लिए कोई अर्थ नहीं होगा, जब तक तुम अपने अस्तित्व का मार्ग नहीं खोज लेते।
प्रश्न: मेरा सवाल यह है: अपने वास्तविक स्वरूप तक पहुंचने का मार्ग कैसे खोजा जाए?
एम: 'मैं कौन हूँ?' को छोड़कर बाकी सभी सवालों को छोड़ दो। आखिरकार, जिस एकमात्र तथ्य के बारे में तुम निश्चित हो, वह यह है कि तुम हो। 'मैं हूँ' निश्चित है। 'मैं यह हूँ' निश्चित नहीं है। वास्तविकता में तुम क्या हो, यह जानने के लिए संघर्ष करो।
प्रश्न: मैं पिछले 60 वर्षों से इसके अलावा और कुछ नहीं कर रहा हूँ।
एम: प्रयास करने में क्या बुराई है? परिणामों की तलाश क्यों करें? प्रयास करना ही तो आपका वास्तविक स्वभाव है।
प्रश्न: प्रयास करना कष्टदायी होता है।
एम: आप परिणाम की चाहत रखकर ही ऐसा करते हैं। बिना चाहत रखे प्रयास करो, बिना लोभ के संघर्ष करो।
प्रश्न: भगवान ने मुझे ऐसा क्यों बनाया है?
एम: आप किस ईश्वर की बात कर रहे हैं? ईश्वर क्या है? क्या वह वही प्रकाश नहीं है जिससे आप यह प्रश्न पूछते हैं? 'मैं हूँ' स्वयं ईश्वर है। खोज ही ईश्वर है। खोज में आप पाते हैं कि आप न तो शरीर हैं और न ही मन, और आपमें जो आत्मप्रेम है, वह सभी में व्याप्त आत्म के लिए है। दोनों एक हैं। आपमें और मुझमें जो चेतना है, देखने में दो लगती हैं, लेकिन वास्तव में एक हैं, दोनों एकता की खोज करती हैं और यही प्रेम है।
प्रश्न: मुझे वह प्यार कैसे मिलेगा?
एम: अब आपको क्या प्रिय है? 'मैं'। अपना हृदय और मन इसमें लगा दीजिए, और कुछ मत सोचिए। जब यह सहज और स्वाभाविक हो, तो यही सर्वोच्च अवस्था है। इसमें प्रेम ही प्रेमी और प्रेमिका है।
प्रश्न: हर कोई जीना चाहता है, अस्तित्व में रहना चाहता है। क्या यह आत्मप्रेम नहीं है?

एम: सभी इच्छाओं का स्रोत आत्मा में ही निहित होता है। यह सब सही इच्छा का चुनाव करने का मामला है।
प्रश्न: सही और गलत का निर्धारण आदत और रीति-रिवाज के अनुसार होता है।
समाज के अनुसार मानदंड भी भिन्न होते हैं।
एम: सभी पारंपरिक मानदंडों को त्याग दो। उन्हें पाखंडियों के लिए छोड़ दो।
केवल वही अच्छा है जो तुम्हें इच्छा, भय और गलत विचारों से मुक्ति दिलाता है। जब तक तुम पाप और पुण्य के बारे में सोचते रहोगे, तुम्हें शांति नहीं मिलेगी।
प्रश्न: मैं मानता हूँ कि पाप और पुण्य सामाजिक मानदंड हैं। लेकिन आध्यात्मिक पाप और पुण्य भी हो सकते हैं। आध्यात्मिक से मेरा तात्पर्य परम सत्य से है। क्या परम पाप या परम पुण्य जैसी कोई चीज़ होती है?
एम: पाप और पुण्य का संबंध केवल व्यक्ति से है। पापी या पुण्य के बिना पाप या पुण्य क्या है? परम स्तर पर कोई व्यक्ति नहीं होता; शुद्ध चेतना का सागर न तो पुण्य है और न ही पापी। पाप और पुण्य हमेशा सापेक्षिक होते हैं। प्रश्न: क्या मैं इस तरह की अनावश्यक धारणाओं से छुटकारा पा सकता हूँ? एम: जब तक आप खुद को एक व्यक्ति समझते रहेंगे, तब तक नहीं।
प्रश्न: मुझे किस संकेत से पता चलेगा कि मैं पाप और पुण्य से परे हूँ?
एम: सभी इच्छाओं और भय से मुक्त होकर, व्यक्ति होने के विचार से ही मुक्त होकर। 'मैं पापी हूँ', 'मैं पापी नहीं हूँ' जैसे विचारों को पोषित करना पाप है। स्वयं को किसी विशेष से जोड़ना ही पाप है। निराकार ही वास्तविक है, जबकि साकार प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है। 'मैं हूँ' निराकार सत्ता है। 'मैं यह हूँ' व्यक्ति है। व्यक्ति सापेक्ष है और शुद्ध सत्ता मौलिक है। प्रश्न: निःसंदेह शुद्ध सत्ता अचेतन नहीं है, न ही वह विवेकहीन है। वह पाप और पुण्य से परे कैसे हो सकती है? कृपया हमें बताइए, क्या उसमें बुद्धि है या नहीं?
एम: ये सभी प्रश्न आपके स्वयं को एक व्यक्ति मानने की धारणा से उत्पन्न होते हैं। व्यक्तिगत दायरे से परे जाकर देखें।
प्रश्न: जब आप मुझसे कहते हैं कि मैं एक व्यक्ति होना बंद कर दूं, तो आपका वास्तव में क्या मतलब है?
एम: मैं आपसे यह नहीं कह रहा कि आप अस्तित्वहीन हो जाएं—यह संभव नहीं है। मैं आपसे बस इतना कह रहा हूं कि आप यह सोचना बंद कर दें कि आपका जन्म हुआ है, आपके माता-पिता हैं, आप एक शरीर हैं, आपकी मृत्यु होगी इत्यादि। बस कोशिश कीजिए, एक शुरुआत कीजिए—यह उतना कठिन नहीं है जितना आप सोचते हैं। प्रश्न: स्वयं को सजीव समझना अवैयक्तिकता का पाप है।
एम: फिर वही व्यक्तिगत दृष्टिकोण! आप अपने पाप और पुण्य के विचारों से निराकार को दूषित करने पर क्यों तुले हैं? यह बात बिल्कुल लागू नहीं होती।
निराकार को अच्छे और बुरे के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। यह अस्तित्व है - ज्ञान है - प्रेम है - सब कुछ पूर्ण है। इसमें पाप की गुंजाइश कहाँ है? और पुण्य तो पाप का विपरीत है।
प्रश्न: हम दैवीय सद्गुण की बात करते हैं।
एम: सच्चा सद्गुण दैवीय स्वभाव (स्वरूप) है। आप वास्तव में जो हैं, वही आपका सद्गुण है। लेकिन जिस पाप को आप सद्गुण कहते हैं, उसका विपरीत तो केवल भय से उत्पन्न आज्ञापालन है।
प्रश्न: तो फिर अच्छा बनने के लिए इतना प्रयास क्यों?

एम: यह आपको निरंतर गतिमान रखता है। आप तब तक चलते रहते हैं जब तक आपको ईश्वर नहीं मिल जाता। फिर ईश्वर आपको अपने भीतर समाहित कर लेता है और आपको अपने जैसा बना देता है।
प्रश्न: एक ही क्रिया को एक समय स्वाभाविक माना जाता है और दूसरे समय पाप।
ऐसा क्या है जो इसे पाप बनाता है?
एम: अपनी समझ के विरुद्ध जो भी कार्य करोगे वह पाप है।
प्रश्न: ज्ञान स्मृति पर निर्भर करता है।
एम: स्वयं को याद रखना पुण्य है, स्वयं को भूलना पाप है। यह सब आत्मा और पदार्थ के बीच के मानसिक या मनोवैज्ञानिक संबंध पर निर्भर करता है। हम इस संबंध को अंतःकरण कह सकते हैं। जब मन अपरिपक्व, अविकसित और आदिम अवस्था में होता है, तो वह स्थूल भ्रमों के अधीन होता है। जैसे-जैसे इसका विस्तार और संवेदनशीलता बढ़ती है, यह शुद्ध पदार्थ और शुद्ध आत्मा के बीच एक परिपूर्ण कड़ी बन जाता है और पदार्थ को अर्थ तथा आत्मा को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।
भौतिक जगत (महाकाश) और आध्यात्मिक जगत (परमाकाश) हैं। इनके बीच चिदाकाश स्थित है, जो प्रेमकाश भी है। यह ज्ञानपूर्ण प्रेम ही है जो इन दोनों को एक बनाता है।
प्रश्न: कुछ लोग मूर्ख होते हैं, कुछ बुद्धिमान। अंतर उनकी मानसिकता में होता है। परिपक्व लोगों को अधिक अनुभव प्राप्त होता है। जैसे एक बच्चा खाने-पीने, सोने और खेलने से बढ़ता है, वैसे ही मनुष्य की मानसिकता उसके विचारों, भावनाओं और कार्यों से आकार लेती है, जब तक कि वह आत्मा और शरीर के बीच सेतु का काम करने के लिए पर्याप्त रूप से परिपूर्ण न हो जाए। जैसे एक पुल दो किनारों के बीच यातायात को सुगम बनाता है, वैसे ही मानसिकता स्रोत और उसकी अभिव्यक्ति को जोड़ती है।
एम: इसे प्यार कहो। यह पुल प्यार है।
प्रश्न: अंततः सब कुछ अनुभव ही है। हम जो कुछ भी सोचते हैं, महसूस करते हैं, करते हैं, वह अनुभव ही है। इसके पीछे अनुभवकर्ता होता है। अतः हम जो कुछ भी जानते हैं, वह इन दो तत्वों, अनुभवकर्ता और अनुभव, से मिलकर बना है। परन्तु वास्तव में ये दोनों एक ही हैं – अनुभवकर्ता ही अनुभव है। फिर भी, अनुभवकर्ता अनुभव को बाह्य मानता है। ठीक इसी प्रकार आत्मा और शरीर एक ही हैं; वे केवल दो के रूप में प्रकट होते हैं।
एम: आत्मा के आगे कोई दूसरा नहीं है।
प्रश्न: तो फिर दूसरा किसके सामने प्रकट होता है? मुझे लगता है कि द्वैत मन की अपूर्णता के कारण उत्पन्न एक भ्रम है। जब मन परिपूर्ण हो जाता है, तब द्वैत का कोई आभास नहीं होता।
एम: आपने सही कहा।
प्रश्न: फिर भी मुझे अपना बहुत ही सरल प्रश्न दोहराना होगा: पाप और पुण्य के बीच अंतर कौन करता है?
एम: जिसके पास शरीर है, वह शरीर से पाप करता है, जिसके पास मन है, वह मन से पाप करता है।
प्रश्न: क्या यह मात्र मन और शरीर का होना पाप करने के लिए बाध्य करता है? इसके मूल में कोई तीसरा कारक अवश्य है। मैं बार-बार पाप और पुण्य के इस प्रश्न पर लौटता हूँ, क्योंकि आजकल के युवा कहते हैं कि पाप जैसी कोई चीज नहीं होती, किसी को संकोच करने की आवश्यकता नहीं है और क्षणिक इच्छा का सहजता से पालन करना चाहिए। वे न तो परंपरा को मानते हैं और न ही सत्ता को,

और केवल ठोस और ईमानदार विचारों से ही प्रभावित होते हैं। यदि वे कुछ कार्यों से परहेज करते हैं, तो यह दृढ़ विश्वास के कारण नहीं बल्कि पुलिस के भय से होता है। निस्संदेह उनकी बातों में कुछ सच्चाई है, क्योंकि हम देख सकते हैं कि हमारे मूल्य स्थान और समय के साथ कैसे बदलते हैं। उदाहरण के लिए - युद्ध में हत्या करना आज एक महान पुण्य है और अगली शताब्दी में इसे एक जघन्य अपराध माना जा सकता है।
एम: जो मनुष्य पृथ्वी के साथ चलता है, उसे दिन-रात का अनुभव अवश्य होता है। जो सूर्य के साथ रहता है, उसे अंधकार का अनुभव नहीं होता। मेरी दुनिया तुम्हारी दुनिया नहीं है। मेरी दृष्टि में, तुम सब एक रंगमंच पर अभिनय कर रहे हो। तुम्हारे आने-जाने में कोई वास्तविकता नहीं है। और तुम्हारी समस्याएँ तो बिलकुल अवास्तविक हैं!
प्रश्न: हम नींद में चलने की समस्या से ग्रस्त हो सकते हैं, या हमें बुरे सपने आते हैं। क्या आप इसके लिए कुछ नहीं कर सकते?
एम: मैं यही कर रहा हूँ: मैं तुम्हारी स्वप्न जैसी अवस्था में इसलिए प्रवेश किया ताकि तुम्हें बता सकूँ - "खुद को और दूसरों को चोट पहुँचाना बंद करो, कष्ट सहना बंद करो, जाग जाओ"।
प्रश्न: तो फिर हम जाग क्यों नहीं जाते?
एम: तुम ज़रूर करोगे। मैं हार नहीं मानूंगा। इसमें थोड़ा समय लग सकता है। जब तुम अपने सपने पर सवाल उठाना शुरू करोगे, तब जागृति दूर नहीं होगी।

22. जीवन प्रेम है और प्रेम ही जीवन है।

प्रश्नकर्ता: क्या योग का अभ्यास हमेशा सचेत रूप से किया जाता है? या, क्या यह पूरी तरह से अचेतन अवस्था में, जागरूकता की सीमा से नीचे भी हो सकता है? महाराज: योग का अभ्यास शुरू करने वालों के लिए अक्सर सोच-समझकर और दृढ़ संकल्प के साथ किया जाता है। लेकिन जो लोग वर्षों से ईमानदारी से अभ्यास कर रहे हैं, वे सचेत हों या न हों, हर समय आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य में लीन रहते हैं। अचेतन साधना सबसे अधिक प्रभावी होती है, क्योंकि यह सहज और स्थिर होती है।
प्रश्न: उस व्यक्ति की क्या स्थिति है जो कुछ समय तक योग का निष्ठापूर्वक अध्ययन करता रहा, फिर निराश होकर उसने सभी प्रयास छोड़ दिए?
एम: मनुष्य जो करता हुआ दिखाई देता है, या नहीं करता हुआ दिखाई देता है, वह अक्सर भ्रामक होता है। उसकी स्पष्ट सुस्ती शायद शक्ति संचय का ही एक रूप हो। हमारे व्यवहार के कारण बहुत सूक्ष्म होते हैं। हमें न तो जल्दी निंदा करनी चाहिए और न ही प्रशंसा। याद रखें कि योग आंतरिक आत्मा (व्यक्त) का बाहरी आत्मा (व्यक्ति) पर किया गया कार्य है। बाहरी जो कुछ भी करता है, वह केवल आंतरिक आत्मा की प्रतिक्रिया मात्र है।
प्रश्न: फिर भी बाहरी भाग मददगार होता है।
एम: यह कितना और किस प्रकार से सहायक हो सकता है? शरीर पर इसका कुछ नियंत्रण होता है और यह शरीर की मुद्रा और श्वास-प्रक्रिया में सुधार कर सकता है। मन के विचारों और भावनाओं पर इसका बहुत कम नियंत्रण होता है, क्योंकि मन स्वयं ही मन है। भीतरी शक्ति ही बाह्य शक्ति को नियंत्रित कर सकती है। बाह्य शक्ति के लिए आज्ञा का पालन करना ही बुद्धिमानी होगी।

प्रश्न: यदि मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए अंततः आंतरिक तत्व ही जिम्मेदार हैं, तो बाहरी तत्वों को इतना अधिक प्रोत्साहित और प्रेरित क्यों किया जाता है?
एम: बाहरी शक्ति शांत रहकर और इच्छा एवं भय से मुक्त रहकर सहायता कर सकती है। आपने ध्यान दिया होगा कि बाहरी शक्ति को दी जाने वाली सभी सलाहें निषेध के रूप में होती हैं: मत करो, रुको, परहेज करो, त्याग दो, छोड़ दो, बलिदान करो, आत्मसमर्पण करो, असत्य को असत्य मानो। यहाँ तक कि वास्तविकता का जो थोड़ा-बहुत वर्णन दिया जाता है, वह भी इनकार के माध्यम से होता है - 'यह नहीं, यह नहीं' (नेति, नेति)। सभी सकारात्मक तत्व आंतरिक आत्मा से संबंधित हैं, जैसे सभी निरपेक्ष तत्व - वास्तविकता से।
प्रश्न: वास्तविक अनुभव में हम आंतरिक और बाहरी के बीच अंतर कैसे कर सकते हैं?
एम: आंतरिक ही प्रेरणा का स्रोत है, बाहरी स्मृति से प्रेरित होता है। स्रोत का पता नहीं लगाया जा सकता, जबकि सभी स्मृतियाँ कहीं न कहीं से शुरू होती हैं। इस प्रकार बाहरी हमेशा निश्चित होता है, जबकि आंतरिक को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। छात्रों की गलती यह है कि वे आंतरिक को ऐसी वस्तु समझते हैं जिसे पकड़ा जा सकता है, और यह भूल जाते हैं कि सभी प्रत्यक्ष अनुभव क्षणभंगुर हैं और इसलिए अवास्तविक हैं। केवल वही वास्तविक है जो अनुभूति को संभव बनाता है, चाहे आप इसे जीवन कहें या ब्रह्म, या जो भी आप चाहें।
प्रश्न: क्या जीवन को अपनी आत्मअभिव्यक्ति के लिए शरीर की आवश्यकता होती है?
एम: शरीर जीना चाहता है। जीवन को शरीर की आवश्यकता नहीं होती; बल्कि शरीर को जीवन की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: क्या जीवन जानबूझकर ऐसा करता है?
एम: क्या प्रेम जानबूझकर किया जाता है? हाँ और ना। जीवन प्रेम है और प्रेम जीवन है। शरीर को कौन बांधे रखता है, सिवाय प्रेम के? इच्छा क्या है, सिवाय आत्मप्रेम के? भय क्या है, सिवाय रक्षा करने की प्रेरणा के? और ज्ञान क्या है, सिवाय सत्य के प्रेम के? साधन और रूप भले ही गलत हों, लेकिन इसके पीछे का उद्देश्य हमेशा प्रेम ही होता है - अपने आप से प्रेम। मेरा और मेरा भले ही छोटा हो, या विशाल होकर ब्रह्मांड को अपने में समाहित कर ले, प्रेम बना रहता है।
प्रश्न: भारत में ईश्वर के नाम का बार-बार जाप करना बहुत आम है। क्या इसमें कोई पुण्य है?
एम: जब आप किसी वस्तु या व्यक्ति का नाम जानते हैं, तो आप उसे आसानी से पा सकते हैं। ईश्वर को उनके नाम से पुकारने से आप उन्हें अपने पास बुलाते हैं।
प्रश्न: वह किस रूप में प्रकट होते हैं?
एम: आपकी अपेक्षाओं के अनुसार। अगर आप दुर्भाग्यशाली हैं और कोई संत आपको सौभाग्य का मंत्र दे दे और आप उसे श्रद्धा और भक्ति से दोहराते रहें, तो आपका दुर्भाग्य अवश्य दूर हो जाएगा। अटूट विश्वास भाग्य से अधिक शक्तिशाली होता है। भाग्य अनेक कारणों का परिणाम है, जिनमें से अधिकतर आकस्मिक होते हैं, इसलिए यह अनिश्चित होता है। आत्मविश्वास और आशा इसे आसानी से जीत लेंगे।
प्रश्न: जब कोई मंत्र बोला जाता है, तो वास्तव में क्या होता है?

एम: मंत्र की ध्वनि उस आकृति का निर्माण करती है जो आत्मा को समाहित करती है। आत्मा किसी भी आकृति को धारण कर सकती है और उसके माध्यम से कार्य कर सकती है। अंततः, आत्मा स्वयं को क्रिया के रूप में व्यक्त कर रही है और मंत्र मूलतः क्रियाशील ऊर्जा है। यह आप पर और आपके परिवेश पर प्रभाव डालती है।
प्रश्न: यह मंत्र पारंपरिक है। क्या यह आवश्यक है?
एम: अनादिकाल से कुछ शब्दों और उनसे जुड़ी ऊर्जाओं के बीच एक संबंध स्थापित हुआ है, जिसे अनगिनत बार दोहराने से और भी मजबूत किया गया है। यह एक सड़क की तरह है जिस पर चलना होता है। यह एक आसान रास्ता है - बस विश्वास की जरूरत है। आप सड़क पर भरोसा करते हैं कि वह आपको आपकी मंजिल तक ले जाएगी।
प्रश्न: यूरोप में कुछ ध्यान संबंधी संप्रदायों को छोड़कर मंत्रोच्चार की कोई परंपरा नहीं है। एक आधुनिक पश्चिमी युवा के लिए इसका क्या उपयोग है? एम: कोई नहीं, जब तक कि वह अत्यधिक आकर्षित न हो। उसके लिए सही प्रक्रिया यह है कि वह इस विचार का पालन करे कि वह समस्त ज्ञान का आधार है, इंद्रियों और मन में घटित होने वाली हर चीज की अपरिवर्तनीय और शाश्वत चेतना है। यदि वह इसे हर समय सचेत और जागरूक रहते हुए ध्यान में रखे, तो वह अचेतनता की सीमाओं को तोड़कर शुद्ध जीवन, प्रकाश और प्रेम में प्रवेश कर जाएगा। 'मैं केवल साक्षी हूं' का विचार शरीर और मन को शुद्ध करेगा और ज्ञान की आंख खोल देगा। तब मनुष्य भ्रम से परे चला जाता है और उसका हृदय सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। जैसे बर्फ पानी में और पानी भाप में बदल जाता है, और भाप हवा में घुल कर अंतरिक्ष में विलीन हो जाती है, वैसे ही शरीर शुद्ध चेतना (चिदाकाश) में विलीन हो जाता है, फिर शुद्ध अस्तित्व (परमकाश) में, जो अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे है।
प्रश्न: आत्मज्ञानी व्यक्ति खाता-पीता और सोता है। उसे ऐसा करने के लिए क्या प्रेरित करता है?
एम: जिस शक्ति से ब्रह्मांड चलता है, वही शक्ति उसे भी चलाती है।
प्रश्न: सभी एक ही शक्ति से प्रेरित होते हैं: अंतर क्या है?
एम: बस इतना ही: ज्ञानी व्यक्ति वह सब जानता है जो दूसरे केवल सुनते हैं, अनुभव नहीं करते। बौद्धिक रूप से वे आश्वस्त प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु कर्म में वे अपनी बंधनशीलता प्रकट करते हैं, जबकि ज्ञानी व्यक्ति सदा सत्य होता है।
प्रश्न: सब लोग कहते हैं 'मैं हूं'। आत्मज्ञानी भी कहते हैं 'मैं हूं'। अंतर कहां है?
एम: अंतर 'मैं हूँ' शब्दों के अर्थ में है। आत्मज्ञानी व्यक्ति के लिए 'मैं संसार हूँ, संसार मेरा है' का अनुभव सर्वथा मान्य है - वह सभी जीवित प्राणियों के साथ समग्र रूप से और एकता में सोचता, महसूस करता और कार्य करता है। हो सकता है कि उसे आत्मज्ञान के सिद्धांत और अभ्यास का ज्ञान न हो, और वह धार्मिक और आध्यात्मिक धारणाओं से मुक्त होकर पैदा हुआ हो। लेकिन उसकी समझ और करुणा में जरा भी कमी नहीं होगी।
प्रश्न: मान लीजिए मुझे कोई भिखारी नग्न और भूखा मिले और मैं उससे पूछूं, 'तुम कौन हो?' वह उत्तर दे सकता है, 'मैं परम आत्मा हूं।' मैं कहूंगा, 'अच्छा, तुम परम आत्मा हो, अपनी वर्तमान स्थिति बदल लो।' वह क्या करेगा?
एम: वह आपसे पूछेगा: 'कौन सी स्थिति? उसमें क्या बदलाव की जरूरत है? मुझमें क्या कमी है?'

प्रश्न: उसे ऐसा उत्तर क्यों देना चाहिए?

एम: क्योंकि अब वह दिखावे से बंधा नहीं है, इसलिए वह खुद को नाम और आकार से नहीं जोड़ता। वह स्मृति का उपयोग करता है, लेकिन स्मृति उसका उपयोग नहीं कर सकती।
प्रश्न: क्या सारा ज्ञान स्मृति पर आधारित नहीं होता?
एम: निम्न स्तर का ज्ञान - हाँ। उच्चतर ज्ञान, वास्तविकता का ज्ञान, मनुष्य के सच्चे स्वभाव में अंतर्निहित है।
प्रश्न: क्या मैं यह कह सकता हूँ कि मैं वह नहीं हूँ जिसके प्रति मैं सचेत हूँ, और न ही मैं स्वयं चेतना हूँ?
एम: जब तक आप एक साधक हैं, तब तक इस विचार से जुड़े रहना बेहतर है कि आप शुद्ध चेतना हैं, जो सभी प्रकार की भावनाओं से मुक्त है। चेतना से परे जाना ही सर्वोच्च अवस्था है।
प्रश्न: आत्मज्ञान की इच्छा, क्या यह चेतना में उत्पन्न होती है या उससे परे?
एम: बिल्कुल, चेतना में। सभी इच्छाएँ स्मृति से उत्पन्न होती हैं और चेतना के दायरे में आती हैं। जो इससे परे है, वह सभी प्रयासों से मुक्त है। चेतना से परे जाने की इच्छा भी चेतना में ही निहित है।
प्रश्न: क्या चेतना पर परलोक का कोई निशान या छाप मौजूद है?
एम: नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।
प्रश्न: तो फिर इन दोनों के बीच क्या संबंध है? दो ऐसी अवस्थाओं के बीच संबंध कैसे स्थापित किया जा सकता है जिनमें कोई समानता नहीं है? क्या शुद्ध चेतना ही इन दोनों के बीच की कड़ी नहीं है?
एम: शुद्ध जागरूकता भी चेतना का ही एक रूप है।
प्रश्न: तो फिर उससे परे क्या है? शून्यता?
एम: शून्यता फिर से केवल चेतना को संदर्भित करती है। परिपूर्णता और शून्यता सापेक्षिक शब्द हैं। यथार्थ वास्तव में परे है - चेतना के संबंध में नहीं, बल्कि सभी प्रकार के संबंधों से परे। कठिनाई 'अवस्था' शब्द के साथ आती है। यथार्थ किसी और चीज़ की अवस्था नहीं है - यह मन, चेतना या मनोभाव की अवस्था नहीं है - न ही यह ऐसी कोई चीज़ है जिसका आरंभ और अंत हो, अस्तित्व और निरुत्सात्व हो। इसमें सभी विपरीत तत्व समाहित हैं - लेकिन यह विपरीत तत्वों के खेल में नहीं है। आपको इसे किसी संक्रमण का अंत नहीं समझना चाहिए। यह स्वयं है, चेतना के अस्तित्वहीन होने के बाद। तब 'मैं मनुष्य हूँ' या 'मैं ईश्वर हूँ' जैसे शब्दों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसे केवल मौन और अंधकार में ही सुना और देखा जा सकता है।

23. भेदभाव से अलगाव उत्पन्न होता है

महाराज: तुम सब भीग गए हो क्योंकि यहाँ बहुत तेज़ बारिश हो रही है। मेरी दुनिया में तो हमेशा सुहाना मौसम रहता है। वहाँ न रात होती है, न दिन, न गर्मी, न सर्दी। वहाँ मुझे कोई चिंता नहीं होती, न पछतावा। मेरा मन विचारों से मुक्त है, क्योंकि वहाँ ऐसी कोई इच्छा नहीं है जिसके लिए मुझे वश में होना पड़े।
प्रश्नकर्ता: क्या दो दुनियाएँ हैं?

एम: तुम्हारी दुनिया क्षणभंगुर और परिवर्तनशील है। मेरी दुनिया परिपूर्ण और अटल है। तुम मुझे अपनी दुनिया के बारे में जो कुछ भी पसंद हो, बता सकते हो - मैं ध्यान से, बल्कि रुचि से सुनूंगा, लेकिन एक पल के लिए भी यह नहीं भूलूंगा कि तुम्हारी दुनिया वास्तविक नहीं है, तुम सपना देख रहे हो। प्रश्न: आपकी दुनिया मेरी दुनिया से किस प्रकार भिन्न है?
एम: मेरी दुनिया की कोई ऐसी विशेषता नहीं है जिससे इसकी पहचान की जा सके। आप इसके बारे में कुछ नहीं कह सकते। मैं ही मेरी दुनिया हूँ। मेरी दुनिया मैं ही हूँ। यह पूर्ण और परिपूर्ण है। हर छाप मिट जाती है, हर अनुभव - अस्वीकार कर दिया जाता है। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है, यहाँ तक कि खुद की भी नहीं, क्योंकि मैं खुद को खो नहीं सकता।
प्रश्न: क्या भगवान भी नहीं?
एम: ये सभी विचार और भेद आपकी दुनिया में मौजूद हैं; मेरी दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है। मेरी दुनिया एक ही है और बहुत सरल है।
प्रश्न: वहां कुछ नहीं होता?
एम: तुम्हारी दुनिया में जो कुछ भी होता है, केवल वहीं उसकी वैधता होती है और उसी से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। मेरी दुनिया में कुछ नहीं होता। प्रश्न: आपके द्वारा अपने स्वयं के संसार का अनुभव करना ही इस बात का संकेत है कि सभी अनुभवों में द्वैत अंतर्निहित है।
एम: मौखिक रूप से - हाँ। लेकिन आपके शब्द मुझ तक नहीं पहुँचते। मेरी दुनिया एक गैर-मौखिक दुनिया है। आपकी दुनिया में अनकही बातों का कोई अस्तित्व नहीं है। मेरी दुनिया में - शब्दों और उनके भावों का कोई अस्तित्व नहीं है। आपकी दुनिया में कुछ भी स्थिर नहीं है, मेरी दुनिया में - कुछ भी नहीं बदलता। मेरी दुनिया वास्तविक है, जबकि आपकी दुनिया सपनों से बनी है। प्रश्न: फिर भी हम बात कर रहे हैं।
एम: ये बातें तुम्हारी दुनिया में हो रही हैं। मेरी दुनिया में तो शाश्वत शांति है। मेरी शांति गीत गाती है, मेरा खालीपन भरा है, मुझे किसी चीज की कमी नहीं है। जब तक तुम मेरी दुनिया में नहीं आओगे, तब तक तुम उसे जान नहीं पाओगे।
प्रश्न: ऐसा लगता है मानो आप अकेले ही अपनी दुनिया में हैं।
एम: जब शब्द ही लागू नहीं होते, तो आप अकेले या अकेले न होने की बात कैसे कह सकते हैं? बेशक, मैं अकेला हूँ क्योंकि मैं ही सब कुछ हूँ।
प्रश्न: क्या आप कभी हमारी दुनिया में आएंगे?
एम: मेरे पास क्या आ रहा है और क्या जा रहा है? ये भी शब्द ही हैं। मैं हूँ। मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा?
प्रश्न: आपकी दुनिया मेरे किस काम की है?
एम: आपको अपनी दुनिया पर और गहराई से विचार करना चाहिए, उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करना चाहिए और अचानक एक दिन आप खुद को मेरी दुनिया में पाएंगे। प्रश्न: इससे हमें क्या लाभ होगा?
एम: आपको कुछ भी हासिल नहीं होता। आप वह छोड़ देते हैं जो आपका नहीं है और वह पाते हैं जो आपने कभी खोया ही नहीं - आपका अपना अस्तित्व।
प्रश्न: आपकी दुनिया का शासक कौन है?
एम: यहाँ न तो शासक है और न ही शासित। यहाँ किसी प्रकार का द्वैत नहीं है। आप केवल अपने विचार थोप रहे हैं। आपके शास्त्रों और आपके देवताओं का यहाँ कोई महत्व नहीं है।

प्रश्न: फिर भी आपका एक नाम और आकार है, आप चेतना और गतिविधि प्रदर्शित करते हैं।
एम: तुम्हारी दुनिया में मैं ऐसा दिखता हूँ। मेरी दुनिया में मेरा अस्तित्व मात्र है। और कुछ नहीं। तुम लोग अधिकार, मात्रा और गुणवत्ता के अपने विचारों से समृद्ध हो। मैं विचारों से पूरी तरह रहित हूँ।
प्रश्न: मेरी दुनिया में अशांति, पीड़ा और निराशा छाई हुई है। ऐसा लगता है कि आप किसी गुप्त आय पर जीवन यापन कर रहे हैं, जबकि मुझे जीविका चलाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।
एम: जैसा चाहो वैसा करो। तुम अपनी दुनिया छोड़कर मेरी दुनिया में आने के लिए स्वतंत्र हो।
प्रश्न: यह मार्ग कैसे पार किया जाता है?
एम: अपने संसार को वैसे ही देखो जैसा वह है, न कि जैसा तुम उसे समझते हो।
भेदभाव से वैराग्य उत्पन्न होगा; वैराग्य से सही कर्म सुनिश्चित होगा; सही कर्म से तुम्हारे वास्तविक स्वरूप तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होगा। कर्म ही निष्ठा का प्रमाण है। जो भी कहा जाए, उसे लगन और निष्ठा से करो, समस्त बाधाएँ दूर हो जाएँगी।
प्रश्न: क्या आप खुश हैं?
एम: तुम्हारी दुनिया में तो मैं बहुत दुखी हो जाऊँगी। जागना, खाना, बात करना, फिर सो जाना—कितनी झंझट!
प्रश्न: तो आप जीना भी नहीं चाहते?
एम: जीना, मरना—ये कितने अर्थहीन शब्द हैं! जब तुम मुझे जीवित देखते हो, तो मैं मृत होता हूँ। जब तुम मुझे मृत समझते हो, तो मैं जीवित होता हूँ। तुम कितने उलझे हुए हो!
प्रश्न: आप कितने उदासीन हैं? हमारे संसार के सारे दुख आपके लिए कुछ भी नहीं हैं।
एम: मैं आपकी परेशानियों से पूरी तरह अवगत हूं।
प्रश्न: तो फिर आप उनके बारे में क्या कर रहे हैं?
एम: मुझे कुछ भी करवाने की ज़रूरत नहीं है। वे आते-जाते रहते हैं। प्रश्न: क्या वे आपके द्वारा उन्हें ध्यान देने के कार्य से ही प्रभावित होते हैं?
एम: जी हाँ। कठिनाई शारीरिक, भावनात्मक या मानसिक हो सकती है; लेकिन यह हमेशा व्यक्तिगत होती है। बड़े पैमाने पर होने वाली आपदाएँ अनगिनत व्यक्तिगत नियतियों का योग होती हैं और उन्हें सुलझने में समय लगता है। लेकिन मृत्यु कभी आपदा नहीं होती।
प्रश्न: क्या किसी पुरुष की हत्या होने पर भी ऐसा ही होता है?
एम: विपत्ति तो हत्यारे की है।
प्रश्न: फिर भी, ऐसा लगता है कि दो ही दुनियाएँ हैं, मेरी और तुम्हारी।
एम: मेरा तो वास्तविक है, तुम्हारा तो मन का है।
प्रश्न: एक चट्टान, उसमें एक छेद और उस छेद में एक मेंढक की कल्पना कीजिए। मेंढक अपना जीवन पूर्ण आनंद में, बिना किसी चिंता या परेशानी के बिता सकता है। चट्टान के बाहर दुनिया चलती रहती है। अगर छेद में बैठे मेंढक को बाहरी दुनिया के बारे में बताया जाए, तो वह कहेगा: 'ऐसी कोई दुनिया नहीं है। मेरी दुनिया शांति और आनंद से भरी है। आपकी दुनिया तो बस शब्दों का ढाँचा है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है।' यही बात आपके साथ भी है। जब आप हमसे कहते हैं कि हमारी दुनिया का कोई अस्तित्व ही नहीं है, तो चर्चा के लिए कोई आधार ही

नहीं बचता। या, एक और उदाहरण लीजिए। मैं डॉक्टर के पास जाता हूँ और पेट दर्द की शिकायत करता हूँ। वह मेरी जाँच करता है और कहता है: 'आप ठीक हैं।' 'लेकिन दर्द तो है,' मैं कहता हूँ। 'आपका दर्द मानसिक है,' वह कहता है। मैं कहता हूँ, 'यह जानना कि मेरा दर्द मानसिक है, इससे मुझे कोई फायदा नहीं है। आप डॉक्टर हैं, मेरा दर्द ठीक कीजिए। अगर आप मुझे ठीक नहीं कर सकते, तो आप मेरे डॉक्टर नहीं हैं।'
एम: बिलकुल सही।
प्रश्न: आपने रेलमार्ग तो बना लिया है, लेकिन पुल न होने के कारण कोई ट्रेन नहीं गुजर सकती। पुल का निर्माण कीजिए।
एम: पुल की कोई आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: आपकी दुनिया और मेरी दुनिया के बीच कोई न कोई संबंध जरूर होगा।
एम: वास्तविक दुनिया और काल्पनिक दुनिया के बीच किसी संबंध की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसा कोई संबंध हो ही नहीं सकता।
प्रश्न: तो अब हमें क्या करना चाहिए?
एम: अपनी दुनिया की पड़ताल करो, उस पर अपना दिमाग लगाओ, उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करो, उससे जुड़े हर विचार की बारीकी से जांच करो; इतना ही काफी होगा।
प्रश्न: दुनिया इतनी विशाल है कि उसकी पड़ताल करना असंभव है। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं ही दुनिया हूँ, दुनिया मुझे परेशान करती है और मैं दुनिया को परेशान करता हूँ।
एम: मेरा अनुभव यह है कि सब कुछ आनंदमय है। परन्तु आनंद की इच्छा दुख का कारण बनती है। इस प्रकार आनंद ही दुख का बीज है। दुख का संपूर्ण संसार इच्छा से ही उत्पन्न होता है। सुख की इच्छा का त्याग कर दो, तो तुम्हें यह भी पता नहीं चलेगा कि दुख क्या होता है।
प्रश्न: सुख दुख का जनक क्यों होता है?

एम: क्योंकि सुख की खातिर तुम अनेक पाप कर रहे हो। और पाप का फल दुख और मृत्यु है।
प्रश्न: आप कहते हैं कि संसार हमारे लिए किसी काम का नहीं है—केवल एक कष्ट है। मुझे ऐसा नहीं लगता। ईश्वर इतने मूर्ख नहीं हैं। मुझे तो संसार एक विशाल उद्यम प्रतीत होता है, जिसका उद्देश्य संभाव्यता को वास्तविकता में बदलना, पदार्थ को जीवन में ढालना और अचेतन मन को पूर्ण चेतना में लाना है। परम सत्य को जानने के लिए हमें विपरीतताओं का अनुभव आवश्यक है। जैसे मंदिर बनाने के लिए पत्थर और गारा, लकड़ी और लोहा, काँच और टाइलें चाहिए होती हैं, वैसे ही किसी व्यक्ति को दिव्य ऋषि, जीवन और मृत्यु का स्वामी बनाने के लिए हर प्रकार के अनुभव की सामग्री आवश्यक होती है। जैसे एक स्त्री बाज़ार जाती है, हर प्रकार की वस्तुएँ खरीदती है, घर आती है, खाना बनाती है, पकाती है और अपने पति को खिलाती है, वैसे ही हम जीवन की अग्नि में स्वयं को तपाते हैं और अपने ईश्वर को भोजन कराते हैं।
एम: अच्छा, अगर आपको ऐसा लगता है, तो उस पर अमल कीजिए। अपने ईश्वर की स्तुति कीजिए, अवश्य कीजिए।
प्रश्न: एक बच्चा स्कूल जाता है और बहुत सी चीजें सीखता है, जो आगे चलकर उसके किसी काम की नहीं होतीं। लेकिन सीखने की प्रक्रिया में उसका विकास होता है। इसी तरह हम भी अनगिनत अनुभवों से गुजरते हैं और उन्हें भूल जाते हैं, लेकिन इस बीच हम निरंतर विकसित होते रहते हैं। और ज्ञानी क्या है,

सिवाय उस व्यक्ति के जिसके पास वास्तविकता को समझने की अद्भुत प्रतिभा है! यह संसार संयोगवश नहीं हो सकता। इसका एक अर्थ है, इसके पीछे कोई योजना अवश्य होगी। मेरे ईश्वर की एक योजना है।
एम: यदि संसार ही झूठा है, तो योजना और उसका निर्माता भी झूठे हैं। प्रश्न: आप फिर से दुनिया को नकार रहे हैं। हमारे बीच कोई संबंध नहीं है। एम: पुल की कोई ज़रूरत नहीं है। आपकी गलती इस धारणा में है कि आपका जन्म हुआ है। आपका न तो कभी जन्म हुआ और न ही कभी मृत्यु होगी, लेकिन आप मानते हैं कि आपका जन्म एक निश्चित तिथि और स्थान पर हुआ था और एक विशेष शरीर आपका अपना है।
प्रश्न: दुनिया जैसी है, मैं जैसा हूँ। ये तथ्य हैं।
एम: तुम अपनी देखभाल करने से पहले दुनिया की चिंता क्यों करते हो? तुम दुनिया को बचाना चाहते हो, है ना? क्या तुम खुद को बचाने से पहले दुनिया को बचा सकते हो? और बचाए जाने का क्या मतलब है? किससे बचाए जाना? भ्रम से।
मुक्ति का अर्थ है चीजों को उनके वास्तविक रूप में देखना। मैं सचमुच खुद को किसी से या किसी भी चीज से जुड़ा हुआ नहीं देखता। यहाँ तक कि अपने आप से भी नहीं, चाहे वह स्वयं कुछ भी हो। मैं हमेशा के लिए अपरिभाषित रहता हूँ। मैं भीतर और परे, अंतरंग और अगम्य हूँ।
प्रश्न: आपको यह विचार कैसे आया?
एम: अपने गुरु पर मेरे भरोसे के कारण। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम ही हो' और मुझे उन पर कोई संदेह नहीं हुआ। मैं बस इस बात पर विचार कर रहा था, जब तक कि मुझे यह अहसास नहीं हुआ कि यह बिल्कुल सच है।
प्रश्न: बार-बार दोहराने से विश्वास स्थापित होता है?
एम: आत्मसाक्षात्कार के द्वारा। मैंने पाया कि मैं पूर्णतः सचेत और प्रसन्न हूँ और केवल गलती से ही मैंने यह सोचा था कि मेरा अस्तित्व-चेतना- आनंद शरीर और शरीरों के संसार का ऋणी है।
प्रश्न: आप विद्वान नहीं हैं। आपने ज़्यादा पढ़ा नहीं है और जो कुछ पढ़ा या सुना है, शायद उसमें विरोधाभास नहीं था। मैं काफ़ी पढ़ा-लिखा हूँ और बहुत कुछ पढ़ चुका हूँ, और मैंने पाया है कि किताबें और शिक्षक एक-दूसरे का घोर खंडन करते हैं। इसलिए मैं जो कुछ भी पढ़ता या सुनता हूँ, उसे संदेह की दृष्टि से ग्रहण करता हूँ। 'हो सकता है ऐसा हो, हो सकता है ऐसा न हो' मेरी पहली प्रतिक्रिया होती है। और क्योंकि मेरा मन सत्य और असत्य का निर्णय नहीं कर पाता, मैं अपने संदेहों में ही उलझा रह जाता हूँ। योग में संदेहशील मन को बहुत नुकसान होता है।
एम: यह सुनकर मुझे खुशी हुई; लेकिन मेरे गुरु ने भी मुझे हर चीज़ पर, पूरी तरह से संदेह करना सिखाया था। उन्होंने कहा था: 'अपने आप के सिवा किसी भी चीज़ के अस्तित्व को नकार दो।' इच्छा के कारण ही तुमने इस संसार को इसके सुख-दुखों के साथ बनाया है।
प्रश्न: क्या यह दर्दनाक भी होना चाहिए?
एम: और क्या? सुख का मूल स्वभाव ही सीमित और क्षणभंगुर होता है। पीड़ा से इच्छा का जन्म होता है, पीड़ा में ही उसकी पूर्ति की खोज होती है, और अंत में वह कुंठा और हताशा की पीड़ा में समाप्त होती है। पीड़ा ही सुख की पृष्ठभूमि है, सुख की हर खोज पीड़ा से ही जन्म लेती है और पीड़ा में ही समाप्त होती है।

प्रश्न: आपकी कही हर बात मुझे स्पष्ट है। लेकिन जब कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी आती है, तो मेरा मन सुस्त और निष्क्रिय हो जाता है, या बेचैनी से राहत की तलाश करता है।
एम: इससे क्या फर्क पड़ता है? सुस्त या बेचैन मन होता है, आप नहीं। देखिए, इस कमरे में हर तरह की चीजें होती रहती हैं। क्या मैं उन्हें घटित करवाता हूँ? वे तो बस घटित हो जाती हैं। आपके साथ भी ऐसा ही है – नियति का चक्र चलता रहता है और जो होना तय है, वही होता है। आप घटनाओं का रुख नहीं बदल सकते, लेकिन आप अपना दृष्टिकोण बदल सकते हैं और जो वास्तव में मायने रखता है, वह है दृष्टिकोण, न कि घटना। संसार इच्छाओं और भय का घर है। इसमें आपको शांति नहीं मिल सकती। शांति के लिए आपको संसार से परे जाना होगा। संसार का मूल कारण आत्म-प्रेम है। इसी के कारण हम सुख की तलाश करते हैं और दुख से बचते हैं। आत्म-प्रेम को आत्मा के प्रेम से बदल दीजिए, तो तस्वीर बदल जाएगी। सृष्टिकर्ता ब्रह्म सभी इच्छाओं का सार है। संसार उनकी पूर्ति का साधन है। आत्माएं अपनी इच्छा के अनुसार सुख प्राप्त करती हैं और उसके लिए आंसुओं से कीमत चुकाती हैं। समय सब हिसाब बराबर कर देता है। संतुलन का नियम सर्वोपरि है।
प्रश्न: सुपरमैन बनने के लिए पहले एक सच्चा इंसान होना ज़रूरी है। पुरुषत्व असंख्य अनुभवों का फल है: इच्छा ही अनुभव की ओर प्रेरित करती है। इसलिए, अपने समय और स्तर पर इच्छा जायज़ है।
एम: एक तरह से ये सब सच है। लेकिन एक दिन ऐसा आता है जब आप काफी कुछ इकट्ठा कर लेते हैं और आपको निर्माण शुरू करना पड़ता है। तब छँटाई और त्याग (विवेक-वैराग्य) बिल्कुल आवश्यक हो जाता है। हर चीज़ की बारीकी से जाँच-पड़ताल करनी चाहिए और अनावश्यक चीज़ों को निर्दयता से नष्ट कर देना चाहिए। मेरा विश्वास कीजिए, विनाश कभी भी अधिक नहीं हो सकता। क्योंकि वास्तव में किसी भी चीज़ का कोई मूल्य नहीं है। बस, पूरी तरह से उदासीन रहें - यही एकमात्र उपाय है।

24. ईश्वर सर्व-कर्ता है, ज्ञानी न करने वाला है।

प्रश्नकर्ता: कुछ महात्मा (प्रबुद्ध प्राणी) मानते हैं कि संसार न तो कोई संयोग है और न ही ईश्वर का कोई खेल, बल्कि यह एक महान कार्ययोजना का परिणाम और अभिव्यक्ति है जिसका उद्देश्य समस्त ब्रह्मांड में चेतना को जागृत और विकसित करना है। निर्जीवता से सजीवता की ओर, अचेतनता से चेतनता की ओर, मंदबुद्धि से प्रखर बुद्धि की ओर, भ्रम से स्पष्टता की ओर—यही वह दिशा है जिसमें संसार निरंतर और निर्दयी रूप से अग्रसर है। निःसंदेह, विश्राम और अंधकार के क्षण भी आते हैं, जब ब्रह्मांड सुप्त प्रतीत होता है, परन्तु विश्राम का अंत होता है और चेतना पर कार्य पुनः आरंभ हो जाता है। हमारे दृष्टिकोण से संसार आँसुओं की घाटी है, एक ऐसी जगह जिससे यथाशीघ्र और हर संभव तरीके से पलायन करना चाहिए। प्रबुद्ध प्राणियों के लिए संसार अच्छा है और यह एक उत्तम उद्देश्य की पूर्ति करता है। वे इस बात से इनकार नहीं करते कि संसार एक मानसिक संरचना है और अंततः सब एक है, परन्तु वे देखते और कहते हैं कि इस संरचना का अर्थ है और यह एक अत्यंत वांछनीय उद्देश्य की पूर्ति करती है। जिसे हम ईश्वर की इच्छा कहते हैं, वह किसी चंचल देवता की मनमौजी सनक नहीं है, बल्कि प्रेम, ज्ञान और शक्ति में वृद्धि करने, जीवन और

चेतना की अनंत संभावनाओं को साकार करने की परम आवश्यकता की अभिव्यक्ति है।
जिस प्रकार एक माली एक छोटे से बीज से फूलों को उगाकर उन्हें भव्यता तक पहुंचाता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपने बगीचे में अन्य प्राणियों के साथ-साथ ऐसे मनुष्यों को विकसित करते हैं जो उन्हें जानते हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उनके साथ मिलकर काम करते हैं।
जब ईश्वर विश्राम करते हैं (प्रलय), तो जिनका विकास पूर्ण नहीं हुआ होता, वे कुछ समय के लिए अचेतन हो जाते हैं, जबकि पूर्ण आत्माएँ, जो चेतना के सभी रूपों और विषयों से परे जा चुकी होती हैं, सर्वव्यापी मौन के प्रति सजग रहती हैं। जब नए ब्रह्मांड के उद्भव का समय आता है, तो सोए हुए लोग जाग उठते हैं और उनका कार्य प्रारंभ होता है। अधिक उन्नत आत्माएँ पहले जागती हैं और कम उन्नत आत्माओं के लिए आधार तैयार करती हैं—जो इस प्रकार अपने आगे के विकास के लिए उपयुक्त व्यवहार के रूप और प्रतिरूप पाते हैं। कहानी कुछ इस तरह चलती है। आपके उपदेश से अंतर यह है कि आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि संसार अच्छा नहीं है और इससे दूर रहना चाहिए। जबकि लोग कहते हैं कि संसार के प्रति अरुचि एक क्षणिक अवस्था है, आवश्यक है, फिर भी अस्थायी है, और जल्द ही इसकी जगह सर्वव्यापी प्रेम और ईश्वर के साथ काम करने की दृढ़ इच्छाशक्ति ले लेती है।
महाराज: आप जो कुछ भी कहते हैं, वह प्रवृत्ति मार्ग के लिए सही है। निवृत्ति मार्ग के लिए स्वयं को शून्य करना आवश्यक है। मैं वहां खड़ा होता हूं जहां कुछ भी नहीं है; वहां शब्द नहीं पहुंचते, न ही विचार। मन के लिए वहां सब कुछ अंधकार और मौन है। तब चेतना जागृत होती है और चिदाकाश मन को जगाती है, जो स्मृति और कल्पना से निर्मित महादाकाश को प्रस्तुत करता है। एक बार जब संसार अस्तित्व में आ जाता है, तो आप जो कुछ भी कहते हैं, वह सत्य हो सकता है। लक्ष्यों की कल्पना करना, उनकी ओर प्रयास करना, साधन और मार्ग खोजना, दूरदृष्टि, ऊर्जा और साहस प्रदर्शित करना मन का स्वभाव है। ये दिव्य गुण हैं और मैं इनका खंडन नहीं करता। लेकिन मैं वहां खड़ा होता हूं जहां कोई भेद नहीं है, जहां वस्तुएं नहीं हैं, न ही उन्हें बनाने वाले मन हैं। वहां मैं अपने घर में होता हूं। जो कुछ भी होता है, वह मुझे प्रभावित नहीं करता - वस्तुएं वस्तुओं को प्रभावित करती हैं, बस इतना ही। स्मृति और अपेक्षा से मुक्त, मैं तरोताजा, निर्दोष और पूर्ण मन से होता हूं। मन महाकर्ता है और उसे विश्राम की आवश्यकता होती है। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है, मैं निर्भय हूँ। डरने की क्या बात? कोई विच्छेद नहीं है, हम अलग-अलग आत्माएँ नहीं हैं। केवल एक ही आत्मा है, परम वास्तविकता, जिसमें साकार और निराकार एक हैं।
प्रश्न: मैं बस इतना चाहता हूं कि मैं दुनिया की मदद कर सकूं।
एम: कौन कहता है कि आप मदद नहीं कर सकते? आपने मदद का मतलब और ज़रूरतें खुद तय कर ली हैं और खुद को इस दुविधा में फंसा लिया है कि आपको क्या करना चाहिए और आप क्या कर सकते हैं, ज़रूरत और क्षमता के बीच।
प्रश्न: लेकिन हम ऐसा क्यों करते हैं?
एम: आपका मन एक संरचना बनाता है और आप स्वयं को उससे जोड़ लेते हैं। इच्छा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह मन को अपनी पूर्ति के लिए एक संसार रचने के लिए प्रेरित करती है। एक छोटी सी इच्छा भी कर्मों की एक लंबी श्रृंखला को जन्म दे सकती है; प्रबल इच्छा का क्या? इच्छा एक ब्रह्मांड का निर्माण कर सकती है; उसकी शक्तियाँ चमत्कारिक हैं। जैसे एक छोटी सी माचिस की तीली एक विशाल

जंगल में आग लगा सकती है, वैसे ही इच्छा सृजन की अग्नि प्रज्वलित करती है। सृष्टि का मूल उद्देश्य ही इच्छा की पूर्ति है। इच्छा उदात्त या नीच हो सकती है, आकाश तटस्थ है - इसे अपनी इच्छानुसार भरा जा सकता है: आपको अपनी इच्छाओं के प्रति बहुत सावधान रहना चाहिए। और जिन लोगों की आप सहायता करना चाहते हैं, वे अपनी-अपनी इच्छाओं के कारण अपने-अपने संसार में हैं; उनकी सहायता करने का एकमात्र तरीका उनकी इच्छाओं के माध्यम से ही है। आप उन्हें केवल सही इच्छाएँ रखना सिखा सकते हैं ताकि वे उनसे ऊपर उठ सकें और इच्छाओं के संसार, सुख-दुख के निवासों को बनाने और पुनर्स्थापित करने की लालसा से मुक्त हो सकें।
प्रश्न: एक दिन तो अवश्य आएगा जब यह सिलसिला समाप्त हो जाएगा; एक व्यक्ति की मृत्यु अवश्य होगी, एक ब्रह्मांड का अंत अवश्य होगा।
एम: जैसे सोता हुआ व्यक्ति सब कुछ भूलकर अगले दिन जागता है, या मरकर दूसरे जीवन में प्रवेश करता है, वैसे ही इच्छा और भय के संसार विलीन होकर लुप्त हो जाते हैं। परन्तु सर्वव्यापी साक्षी, परम आत्मा कभी सोती नहीं और कभी मरती नहीं। महान हृदय शाश्वत रूप से धड़कता है और प्रत्येक धड़कन के साथ एक नया ब्रह्मांड अस्तित्व में आता है।
प्रश्न: क्या वह होश में है?
एम: वह मन की कल्पना से परे है। वह अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे है। वह हर चीज का हां और ना है, भीतर और परे, सृजन और विनाश, अकल्पनीय वास्तविकता। प्रश्न: ईश्वर और महात्मा गांधी एक हैं या दो?
एम: वे एक ही हैं।
प्रश्न: कुछ तो अंतर होना ही चाहिए।
एम: ईश्वर सर्व-कर्ता है, ज्ञानी निरक्षर है। ईश्वर स्वयं नहीं कहता: 'मैं सब कुछ कर रहा हूँ।' उसके लिए सब कुछ अपने स्वभाव से घटित होता है। ज्ञानी के लिए सब कुछ ईश्वर द्वारा किया जाता है। वह ईश्वर और प्रकृति में कोई भेद नहीं देखता। ईश्वर और ज्ञानी दोनों स्वयं को गतिशील का अचल केंद्र, क्षणिक का शाश्वत साक्षी जानते हैं। केंद्र शून्य का बिंदु है और साक्षी शुद्ध चेतना का बिंदु; वे स्वयं को कुछ भी नहीं जानते, इसलिए कोई भी उनका विरोध नहीं कर सकता।
प्रश्न: आपके व्यक्तिगत अनुभव में यह कैसा दिखता और महसूस होता है?
एम: मैं कुछ भी नहीं होते हुए भी सब कुछ हूँ। सब कुछ मैं हूँ, सब कुछ मेरा है। जैसे मेरे शरीर में हलचल का ख्याल आते ही वह हिलने लगता है, वैसे ही चीजें मेरे ख्याल आते ही घटित होने लगती हैं। ध्यान रहे, मैं कुछ नहीं करता। मैं बस उन्हें घटित होते हुए देखता हूँ।
प्रश्न: क्या चीजें आपकी इच्छा के अनुसार होती हैं, या आप चाहते हैं कि वे जैसी हों वैसी ही हों?
एम: दोनों। मैं स्वीकार करता हूँ और मुझे स्वीकार किया जाता है। मैं सब कुछ हूँ और सब कुछ मैं हूँ। संसार होते हुए भी मैं संसार से नहीं डरता। सब कुछ होते हुए मुझे किस बात का डर है? जल जल से नहीं डरता, न ही अग्नि अग्नि से। और मैं भी नहीं डरता क्योंकि मैं कुछ भी नहीं हूँ जो भय का अनुभव कर सके या खतरे में पड़ सके। मेरा कोई आकार नहीं है, न ही कोई नाम। नाम और आकार से लगाव ही भय उत्पन्न करता है। मैं किसी से जुड़ा हुआ नहीं हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ, और कुछ भी नहीं किसी चीज से नहीं डरता। इसके विपरीत, सब कुछ शून्य से डरता है, क्योंकि जब कोई चीज शून्य को छूती है, तो वह शून्य हो

जाती है। यह एक अथाह कुएँ के समान है, जो कुछ भी उसमें गिरता है, वह गायब हो जाता है।
प्रश्न: क्या ईश्वर एक व्यक्ति नहीं है?
एम: जब तक आप स्वयं को एक व्यक्ति मानते हैं, तब तक वह भी एक व्यक्ति है। जब आप सर्वस्व हैं, तब आप उसे भी सर्वस्व के रूप में देखते हैं।
प्रश्न: क्या मैं अपना दृष्टिकोण बदलकर तथ्यों को बदल सकता हूँ?
एम: मनोवृत्ति ही वास्तविकता है। क्रोध को ही लीजिए। मैं क्रोधित होकर कमरे में इधर-उधर चक्कर लगा सकता हूँ; लेकिन साथ ही साथ मैं यह भी जानता हूँ कि मैं क्या हूँ, ज्ञान और प्रेम का केंद्र, शुद्ध अस्तित्व का एक कण। सब कुछ शांत हो जाता है और मन मौन में विलीन हो जाता है।
प्रश्न: फिर भी, आप कभी-कभी गुस्सा हो जाते हैं।
एम: मुझे किससे और किसलिए क्रोधित होना चाहिए? क्रोध आया और स्वयं को याद करते ही शांत हो गया। यह सब गुणों का खेल है। जब मैं स्वयं को उनसे जोड़ता हूँ, तो मैं उनका दास बन जाता हूँ। जब मैं उनसे अलग रहता हूँ, तो मैं उनका स्वामी बन जाता हूँ।
प्रश्न: क्या आप अपने दृष्टिकोण से दुनिया को प्रभावित कर सकते हैं? दुनिया से खुद को अलग करके आप उसकी मदद करने की सारी उम्मीद खो देते हैं। एम: यह कैसे हो सकता है? मैं तो स्वयं ही सब कुछ हूँ—क्या मैं स्वयं की सहायता नहीं कर सकता? मैं स्वयं को किसी विशेष व्यक्ति से नहीं जोड़ता, क्योंकि मैं ही सब कुछ हूँ—विशेष भी और सार्वभौमिक भी।
प्रश्न: क्या आप मेरी, यानी उस विशेष व्यक्ति की मदद कर सकते हैं?
एम: लेकिन मैं हमेशा भीतर से तुम्हारी मदद करता हूँ। मेरा और तुम्हारा स्वरूप एक ही है। मैं यह जानता हूँ, पर तुम नहीं। यही सारा अंतर है—और यह हमेशा नहीं टिक सकता।
प्रश्न: और आप पूरी दुनिया की मदद कैसे करते हैं?
एम: गांधी जी का निधन हो चुका है, फिर भी उनका विचार पृथ्वी पर व्याप्त है। ज्ञानी का विचार मानवता में व्याप्त है और निरंतर कल्याण के लिए कार्य करता है। गुमनाम होने के कारण, भीतर से आने वाला यह विचार अधिक शक्तिशाली और प्रेरक होता है। इसी प्रकार संसार का विकास होता है - भीतर का भाव बाह्य को सहायता और आशीर्वाद प्रदान करता है। जब ज्ञानी का निधन होता है, तो वे उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं जैसे नदी सागर में विलीन होने पर विलीन हो जाती है, नाम, रूप, सब कुछ मिट जाता है, परन्तु जल बना रहता है और सागर में विलीन हो जाता है। जब ज्ञानी सार्वभौमिक मन में विलीन हो जाते हैं, तो उनकी समस्त अच्छाई और ज्ञान मानवता की विरासत बन जाते हैं और प्रत्येक मनुष्य का उत्थान करते हैं।
प्रश्न: हम अपने व्यक्तित्व से जुड़े हुए हैं। हम अपनी विशिष्टता, दूसरों से अलग होने को बहुत महत्व देते हैं। आप इन दोनों को ही बेकार बता रहे हैं। आपका अप्रकट स्वरूप हमारे लिए किस काम का है?
एम: अप्रकट, प्रकट, व्यक्तित्व, निर्गुण, सगुण, व्यक्त, व्यक्ति; ये सब मात्र शब्द, दृष्टिकोण और मानसिक मनोवृत्तियाँ हैं। इनमें कोई वास्तविकता नहीं है। वास्तविक अनुभव मौन में ही होता है। आप व्यक्तित्व से चिपके रहते हैं—पर आप स्वयं को तभी सचेत करते हैं जब आप संकट में होते हैं—जब आप संकट में नहीं होते तो आप अपने बारे में नहीं सोचते।
प्रश्न: आपने मुझे अप्रकट के उपयोगों के बारे में नहीं बताया।

एम: निश्चित रूप से, जागने के लिए सोना आवश्यक है। जीने के लिए मरना आवश्यक है, नया रूप लेने के लिए विलीन होना आवश्यक है। निर्माण के लिए विनाश करना आवश्यक है, सृजन से पहले विनाश करना आवश्यक है। परम सत्ता सर्वव्यापी विलायक है, यह हर पात्र को नष्ट कर देती है, हर बाधा को जला देती है। हर चीज के पूर्ण अस्वीकरण के बिना, वस्तुओं का अत्याचार पूर्ण हो जाएगा। परम सत्ता महान सामंजस्य स्थापित करने वाली है, परम और परिपूर्ण संतुलन की गारंटी है - स्वतंत्रता में जीवन की। यह आपको विलीन कर देती है और इस प्रकार आपके वास्तविक अस्तित्व को पुनः स्थापित करती है।
प्रश्न: अपने स्तर पर तो यह सब ठीक है। लेकिन दैनिक जीवन में यह कैसे काम करता है?
एम: दैनिक जीवन कर्म का जीवन है। चाहे आपको पसंद हो या न हो, आपको कार्य करना ही होगा। आप अपने स्वार्थ के लिए जो कुछ भी करते हैं, वह संचित होकर विस्फोटक रूप ले लेता है; एक दिन वह फूट पड़ता है और आपको तथा आपके संसार को तहस-नहस कर देता है। जब आप स्वयं को यह कहकर धोखा देते हैं कि आप सभी के भले के लिए काम कर रहे हैं, तो स्थिति और बिगड़ जाती है, क्योंकि आपको दूसरों के भले के बारे में अपने स्वयं के विचारों से निर्देशित नहीं होना चाहिए। जो व्यक्ति यह दावा करता है कि वह जानता है कि दूसरों का भला क्या है, वह खतरनाक है।
प्रश्न: फिर काम कैसे किया जाए?
एम: न तो अपने लिए, न ही दूसरों के लिए, बल्कि काम के स्वयं के लिए। सार्थक कार्य का उद्देश्य और अर्थ स्वयं ही होता है। किसी भी चीज़ को किसी और चीज़ का साधन न बनाएं। बंधन न बनाएं। ईश्वर किसी वस्तु को दूसरी वस्तु की सेवा के लिए नहीं बनाता। प्रत्येक वस्तु अपने आप में सार्थक है। क्योंकि वह अपने लिए बनी है, इसलिए वह हस्तक्षेप नहीं करती। आप वस्तुओं और लोगों का उपयोग उनके उद्देश्य से नहीं कर रहे हैं और आप संसार और स्वयं को नुकसान पहुंचा रहे हैं।
प्रश्न: आप कहते हैं कि हमारा वास्तविक अस्तित्व हर समय हमारे साथ रहता है। फिर हम इसे कैसे नहीं देख पाते?
एम: जी हाँ, आप सदा ही परमपिता हैं। परन्तु आपका ध्यान भौतिक और मानसिक वस्तुओं पर टिका रहता है। जब आपका ध्यान किसी वस्तु से हटकर दूसरी वस्तु पर न लगा हो, उस अंतराल में आप शुद्ध स्वरूप में होते हैं। जब विवेक और वैराग्य के अभ्यास से आप इंद्रियों और मन की अवस्थाओं से विमुख हो जाते हैं, तब शुद्ध स्वरूप स्वाभाविक अवस्था के रूप में प्रकट होता है। प्रश्न: इस अलगाव की भावना को कैसे समाप्त किया जा सकता है?
एम: मन को 'मैं हूँ' पर, अस्तित्व की भावना पर केंद्रित करने से, 'मैं अमुक हूँ' की भावना विलीन हो जाती है; 'मैं केवल साक्षी हूँ' की भावना शेष रह जाती है और वह भी 'मैं सर्वस्व हूँ' में विलीन हो जाती है। तब सर्वस्व एक बन जाता है और वह एक - आप स्वयं, मुझसे अलग नहीं। एक अलग 'मैं' के विचार को त्याग दें और 'किसका अनुभव?' का प्रश्न ही नहीं उठेगा।
प्रश्न: आप अपने अनुभव के आधार पर बोल रहे हैं। मैं इसे अपना अनुभव कैसे बना सकता हूँ?
एम: आप मेरे अनुभव को अपने अनुभव से अलग बताते हैं, क्योंकि आपको लगता है कि हम अलग हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। गहराई से देखें तो मेरा अनुभव ही आपका अनुभव है। अपने भीतर गहराई से झांकिए, आपको यह आसानी से मिल जाएगा। 'मैं हूं' की दिशा में आगे बढ़िए।

25. ‘मैं हूँ’ को थामे रहो
प्रश्नकर्ता: क्या आप कभी खुश या दुखी होते हैं? क्या आप सुख और दुःख को जानते हैं?
महाराज: आप इन्हें जो चाहें कह लें। मेरे लिए ये केवल मन की अवस्थाएँ हैं, और मैं मन नहीं हूँ।
प्रश्न: क्या प्रेम मन की एक अवस्था है?
एम: फिर से, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप प्रेम से क्या समझते हैं। इच्छा तो निश्चित रूप से मन की एक अवस्था है। लेकिन एकता की अनुभूति मन से परे है। मेरे लिए, कुछ भी अपने आप में विद्यमान नहीं है। सब कुछ आत्मा है, सब कुछ मैं ही हूँ। स्वयं को हर किसी में और हर किसी को स्वयं में देखना ही निश्चित रूप से प्रेम है।
प्रश्न: जब मैं कोई मनभावन चीज देखता हूँ, तो मुझे वह चाहिए होती है। वास्तव में उसे कौन चाहता है? स्वयं या मन?
एम: सवाल गलत तरीके से पूछा गया है। कोई 'कौन' नहीं है। इच्छा, भय, क्रोध है, और मन कहता है - यह मैं हूँ, यह मेरा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे 'मैं' या 'मेरा' कहा जा सके। इच्छा मन की एक अवस्था है, जिसे मन ही महसूस करता है और नाम देता है। मन के महसूस करने और नाम देने के बिना इच्छा कहाँ है? प्रश्न: लेकिन क्या बिना नामकरण के भी किसी चीज को अनुभव करना संभव है? एम: बिल्कुल। नामकरण मन से परे नहीं जा सकता, जबकि अनुभूति स्वयं चेतना है। प्रश्न: किसी की मृत्यु होने पर वास्तव में क्या होता है?
एम: कुछ नहीं होता। कुछ शून्य हो जाता है। कुछ नहीं था, कुछ नहीं रहता। प्रश्न: जीवित और मृत में निश्चित रूप से अंतर होता है। आप जीवित को मृत और मृत को जीवित बता रहे हैं।
एम: एक व्यक्ति की मृत्यु पर आप इतना परेशान क्यों होते हैं, जबकि प्रतिदिन मरने वाले लाखों लोगों की आपको कोई परवाह नहीं? संपूर्ण ब्रह्मांड हर क्षण सिकुड़ और फैल रहा है - क्या मुझे उन पर रोना चाहिए? एक बात मुझे बिल्कुल स्पष्ट है: जो कुछ भी है, वह चेतना में जीवित है, गतिमान है और उसका अस्तित्व चेतना में है, और मैं उस चेतना में और उससे परे भी हूं। मैं उसमें साक्षी के रूप में हूं। मैं उससे परे अस्तित्व के रूप में हूं।
प्रश्न: जब आपका बच्चा बीमार होता है, तो निश्चित रूप से आपको चिंता होती है, है ना?
एम: मैं घबराता नहीं। मैं बस ज़रूरी काम करता हूँ। मुझे भविष्य की चिंता नहीं होती। हर परिस्थिति में सही प्रतिक्रिया देना मेरी प्रकृति में है। मैं यह सोचने में समय नहीं लगाता कि क्या करना है। मैं काम करता हूँ और आगे बढ़ जाता हूँ। परिणाम मुझे प्रभावित नहीं करते। मुझे इस बात की भी परवाह नहीं कि वे अच्छे हैं या बुरे। जो भी हो, सो है - अगर वे मेरे पास वापस आते हैं, तो मैं उनसे नए सिरे से निपटता हूँ। या यूँ कहूँ कि संयोगवश मैं उनसे नए सिरे से निपट लेता हूँ। मेरे किसी भी काम में कोई उद्देश्य नहीं होता। चीज़ें अपने आप घटित होती हैं - इसलिए नहीं कि मैं उन्हें घटित करता हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं हूँ, इसलिए वे घटित होती हैं। वास्तव में कुछ भी नहीं घटित होता। जब मन अशांत होता है, तो वह शिव को नचाता है, जैसे झील का अशांत जल चंद्रमा को नचाता है। यह सब भ्रम है, गलत विचारों के कारण।

प्रश्न: आप निश्चित रूप से कई बातों से अवगत हैं और उनके स्वभाव के अनुसार व्यवहार करते हैं। आप बच्चे के साथ बच्चे जैसा और वयस्क के साथ वयस्क जैसा व्यवहार करते हैं।
एम: जिस प्रकार नमक का स्वाद विशाल महासागर में व्याप्त होता है और समुद्र के पानी की हर एक बूंद में वही स्वाद होता है, उसी प्रकार प्रत्येक अनुभव मुझे वास्तविकता का स्पर्श देता है, मेरे अपने अस्तित्व की सदा ताज़ा अनुभूति प्रदान करता है।
प्रश्न: क्या मैं आपकी दुनिया में उसी तरह मौजूद हूं, जैसे आप मेरी दुनिया में मौजूद हैं?
एम: बिल्कुल, आप हैं और मैं हूँ। लेकिन केवल चेतना के बिंदुओं के रूप में; चेतना के बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं है। इसे अच्छी तरह समझना होगा: दुनिया चेतना के धागे पर टिकी है; चेतना के बिना दुनिया नहीं।
प्रश्न: चेतना में अनेक बिंदु होते हैं; क्या उतने ही संसार भी होते हैं? एम: सपने का उदाहरण लीजिए। एक अस्पताल में कई मरीज़ हो सकते हैं, सभी सो रहे हों, सभी सपने देख रहे हों, हर कोई अपने निजी, एकांत सपने देख रहा हो, जिनमें आपस में कोई संबंध न हो, कोई भावना न हो, और उनमें केवल एक ही बात समान हो - बीमारी। इसी प्रकार, हम अपनी कल्पना में वास्तविक दुनिया के सामान्य अनुभवों से खुद को अलग कर लेते हैं और व्यक्तिगत इच्छाओं, भय, छवियों, विचारों और अवधारणाओं के एक बादल में खुद को बंद कर लेते हैं। प्रश्न: यह तो मैं समझ सकता हूँ। लेकिन व्यक्तिगत दुनियाओं में इतनी अधिक विविधता का कारण क्या हो सकता है?
एम: विविधता उतनी अधिक नहीं है। सभी सपने एक साझा दुनिया पर आरोपित हैं। कुछ हद तक वे एक दूसरे को आकार देते हैं और प्रभावित करते हैं। इन सबके बावजूद मूलभूत एकता बनी रहती है। इन सब की जड़ में आत्म-विस्मृति है; यह न जानना कि मैं कौन हूँ।
प्रश्न: भूलने के लिए जानना आवश्यक है। क्या मैं भूलने से पहले जानता था कि मैं कौन हूँ?
एम: बिलकुल। आत्म-विस्मृति आत्म-ज्ञान का अंतर्निहित हिस्सा है। चेतन और अचेतन एक ही जीवन के दो पहलू हैं। वे साथ-साथ विद्यमान हैं। संसार को जानने के लिए स्वयं को भूलना पड़ता है - स्वयं को जानने के लिए संसार को भूलना पड़ता है। आख़िर संसार है क्या? स्मृतियों का संग्रह। एक ही चीज़ से जुड़े रहो, जो मायने रखती है, 'मैं हूँ' को थामे रहो और बाकी सब कुछ छोड़ दो। यही साधना है। आत्म-साक्षात्कार में न कुछ पकड़ने के लिए है और न कुछ भूलने के लिए। सब कुछ ज्ञात है, कुछ भी याद नहीं रहता।
प्रश्न: आत्मविस्मृति का कारण क्या है?
एम: कोई कारण नहीं है, क्योंकि विस्मरण जैसी कोई चीज नहीं है। मानसिक अवस्थाएँ एक के बाद एक आती हैं और प्रत्येक पिछली अवस्था को मिटा देती है। आत्म-स्मरण एक मानसिक अवस्था है और आत्म-विस्मृति दूसरी। ये दिन-रात की तरह बारी-बारी से आती हैं। वास्तविकता इन दोनों से परे है।
प्रश्न: भूलने और न जानने में अवश्य ही अंतर होता है। न जानने के लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं होती। भूलने के लिए पूर्व ज्ञान और भूलने की प्रवृत्ति या क्षमता आवश्यक होती है। मैं मानता हूँ कि मैं न जानने के कारण की पड़ताल नहीं कर सकता, लेकिन भूलने का कोई न कोई आधार तो अवश्य होता है।

एम: न जानने जैसी कोई बात नहीं होती। केवल भूल जाना होता है। भूलने में क्या बुराई है? भूलना उतना ही आसान है जितना याद रखना।
प्रश्न: क्या स्वयं को भूल जाना एक विपत्ति नहीं है?
एम: खुद को लगातार याद करते रहना उतना ही बुरा है। भूलने और न भूलने से परे एक अवस्था होती है - प्राकृतिक अवस्था। याद रखना, भूलना - ये सब मन की अवस्थाएँ हैं, विचार से बंधी हुई, शब्दों से बंधी हुई। उदाहरण के लिए, जन्म लेने की बात ही ले लीजिए। मुझे बताया जाता है कि मेरा जन्म हुआ। मुझे याद नहीं। मुझे बताया जाता है कि मैं मरूँगा, मुझे इसकी उम्मीद नहीं है। आप कहते हैं कि मैं भूल गया हूँ, या मुझमें कल्पना की कमी है। लेकिन मैं उस चीज़ को याद नहीं रख सकता जो कभी हुई ही नहीं, न ही उस चीज़ की उम्मीद कर सकता हूँ जो स्पष्ट रूप से असंभव है। शरीर जन्म लेते हैं और शरीर मरते हैं, लेकिन इससे मुझे क्या लेना-देना? शरीर चेतना में आते-जाते रहते हैं और चेतना की जड़ें मुझमें ही हैं। मैं जीवन हूँ और मेरा मन और शरीर मेरे हैं। प्रश्न: आप कहते हैं कि संसार की जड़ में आत्म-विस्मृति है। भूलने के लिए मुझे याद रखना होगा। मैं क्या भूल गया? मैं यह नहीं भूला हूँ कि मैं हूँ।
एम: यह 'मैं हूं' भी शायद भ्रम का ही एक हिस्सा हो सकता है।
प्र. यह कैसे हो सकता है? आप मुझे यह साबित नहीं कर सकते कि मैं नहीं हूँ।
यहाँ तक कि जब मुझे पूरा यकीन हो कि मैं नहीं हूँ, तब भी मैं हूँ।
एम: वास्तविकता को न तो सिद्ध किया जा सकता है और न ही असिद्ध। मन के भीतर तो नहीं, मन के बाहर भी इसकी आवश्यकता नहीं। वास्तविक जगत में 'वास्तविक क्या है?' का प्रश्न ही नहीं उठता। सगुण और निर्गुण में कोई अंतर नहीं है।
प्रश्न: उस स्थिति में सब कुछ वास्तविक है।
एम: मैं ही सब कुछ हूँ। मेरे रूप में ही सब कुछ वास्तविक है। मेरे बिना कुछ भी वास्तविक नहीं है।
प्रश्न: मुझे ऐसा नहीं लगता कि दुनिया किसी गलती का परिणाम है।
एम: आप पूरी जांच के बाद ही ऐसा कह सकते हैं, उससे पहले नहीं। बेशक, जब आप सभी अवास्तविक चीजों को पहचान कर त्याग देते हैं, तो जो बचता है वह वास्तविक होता है।
प्रश्न: क्या कुछ बचा है?
एम: असलियत तो यही है। लेकिन शब्दों से गुमराह मत होइए!
प्रश्न: अनादि काल से, अनगिनत जन्मों के दौरान, मैं अपने संसार का निर्माण, सुधार और सौंदर्यीकरण करता रहा हूँ। यह न तो परिपूर्ण है, न ही अवास्तविक।
यह एक प्रक्रिया है।
एम: आप गलत हैं। दुनिया का अस्तित्व आपसे अलग नहीं है। हर पल यह आपका ही प्रतिबिंब है। आप ही इसे बनाते हैं, आप ही इसे नष्ट करते हैं।
प्रश्न: और इसे बेहतर बनाकर दोबारा बनाएं।
एम: इसे सुधारने के लिए, आपको इसे गलत साबित करना होगा। जीने के लिए मरना पड़ता है। मृत्यु के सिवा कोई पुनर्जन्म नहीं है।
प्रश्न: आपका ब्रह्मांड शायद परिपूर्ण हो। मेरा व्यक्तिगत ब्रह्मांड बेहतर हो रहा है।
एम: आपका व्यक्तिगत ब्रह्मांड अपने आप में अस्तित्व में नहीं है। यह केवल वास्तविकता का एक सीमित और विकृत दृष्टिकोण है। ब्रह्मांड में सुधार की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आपके देखने के तरीके में सुधार की आवश्यकता है। प्रश्न: आप इसे कैसे देखते हैं?

एम: यह एक ऐसा मंच है जिस पर एक विश्व नाटक खेला जा रहा है। प्रदर्शन की गुणवत्ता ही मायने रखती है; अभिनेता क्या कहते और करते हैं, यह मायने नहीं रखता, बल्कि वे कैसे कहते और करते हैं, यह मायने रखता है।
प्रश्न: मुझे यह लीला (खेल) का विचार पसंद नहीं है; मैं दुनिया की तुलना एक ऐसे कार्यस्थल से करना चाहूंगा जिसमें हम निर्माता हैं।
एम: आप इसे कुछ ज़्यादा ही गंभीरता से लेते हैं। खेलने में क्या बुराई है? आपका उद्देश्य तभी तक है जब तक आप पूर्ण नहीं हो जाते; तब तक पूर्णता, परिपूर्णता ही उद्देश्य है। लेकिन जब आप स्वयं में पूर्ण हो जाते हैं, भीतर और बाहर से पूरी तरह एकीकृत हो जाते हैं, तब आप ब्रह्मांड का आनंद लेते हैं; आप इसके लिए मेहनत नहीं करते। जो लोग एकीकृत नहीं हैं, उन्हें आप मेहनत करते हुए लग सकते हैं, लेकिन यह उनका भ्रम है। खिलाड़ी बहुत मेहनत करते हुए प्रतीत होते हैं: फिर भी उनका एकमात्र उद्देश्य खेलना और प्रदर्शन करना होता है।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि भगवान केवल आनंद ले रहे हैं, कि वे निरर्थक कार्यों में लगे हुए हैं?
एम: ईश्वर न केवल सत्य और अच्छे हैं, बल्कि सुंदर भी हैं (सत्यम-शिवम-सुंदरम)। वे सौंदर्य की रचना करते हैं - स्वयं के आनंद के लिए।
प्रश्न: तो फिर सुंदरता ही उनका उद्देश्य है!
एम: आप उद्देश्य का ज़िक्र क्यों करते हैं? उद्देश्य गति, परिवर्तन और अपूर्णता की भावना को दर्शाता है। ईश्वर सौंदर्य का लक्ष्य नहीं रखते—वे जो कुछ भी करते हैं, सुंदर होते हैं। क्या आप कहेंगे कि कोई फूल सुंदर बनने की कोशिश कर रहा है? वह तो अपने स्वभाव से ही सुंदर होता है। उसी प्रकार, ईश्वर स्वयं पूर्णता हैं, पूर्णता का प्रयास नहीं।
प्रश्न: उद्देश्य सौंदर्य में ही पूर्ण हो जाता है।
एम: सुंदरता क्या है? जो भी आनंदमय अनुभूति से देखा जाए, वही सुंदर है।
आनंद ही सुंदरता का सार है।
प्रश्न: आप सत-चित-आनंद की बात करते हैं। मेरा होना तो स्पष्ट है। मेरा ज्ञान होना भी स्पष्ट है। लेकिन मेरा सुखी होना बिल्कुल स्पष्ट नहीं है। मेरा सुख कहाँ चला गया?
एम: अपने अस्तित्व के प्रति पूर्णतः सजग रहें और आप सचेतन रूप से परमानंद की अवस्था में पहुँच जाएँगे। क्योंकि जब आप अपना ध्यान स्वयं से हटाकर उन चीजों पर केंद्रित करते हैं जो आप नहीं हैं, तो आप स्वस्थ होने की अनुभूति खो देते हैं।
प्रश्न: हमारे सामने दो मार्ग हैं - प्रयास का मार्ग (योग मार्ग) और सहजता का मार्ग (भोग मार्ग)। दोनों मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं - मुक्ति।
एम: आप भोग को मार्ग क्यों कहते हैं? सहजता से पूर्णता कैसे प्राप्त की जा सकती है?
प्रश्न: पूर्ण संन्यासी (योगी) को वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त होगा। पूर्ण आनंद लेने वाला (भोगी) भी उस तक पहुँच जाएगा।
एम: ऐसा कैसे हो सकता है? क्या ये विरोधाभासी नहीं हैं?
प्रश्न: ये दो विपरीत स्थितियाँ हैं। एक पूर्ण भोगी बनना एक पूर्ण योगी बनने से कहीं अधिक कठिन है। मैं एक विनम्र व्यक्ति हूँ और मूल्यों पर कोई राय नहीं दे सकता। आखिरकार, योगी और भोगी दोनों ही सुख की खोज में लगे रहते

हैं। योगी को स्थायी सुख चाहिए, जबकि भोगी क्षणिक सुख से संतुष्ट रहता है।
अक्सर भोगी योगी से अधिक प्रयास करता है।
एम: जब आपको खुशी पाने के लिए संघर्ष और मेहनत करनी पड़े, तो उस खुशी का क्या मूल्य है? सच्ची खुशी सहज और बिना किसी प्रयास के मिलती है।
प्रश्न: सभी प्राणी सुख की तलाश करते हैं। साधन अलग-अलग होते हैं। कुछ इसे भीतर से खोजते हैं, इसलिए योगी कहलाते हैं; कुछ इसे बाहर से खोजते हैं, इसलिए भोगी कहलाते हैं। फिर भी, उन्हें एक-दूसरे की आवश्यकता होती है। एम: सुख और दुख बारी-बारी से आते हैं। खुशी अटल है। जिसे आप खोजते और पाते हैं, वह असली चीज नहीं है। उसे खोजें जिसे आपने कभी खोया ही नहीं, उस अविभाज्य को खोजें।

26. व्यक्तित्व, एक बाधा
प्रश्नकर्ता: जैसा कि मैं देख सकता हूँ, संसार योग का एक विद्यालय है और जीवन स्वयं योग अभ्यास है। हर कोई पूर्णता के लिए प्रयासरत है और योग तो प्रयास ही है। तथाकथित 'आम' लोगों और उनके 'आम' जीवन में कुछ भी तिरस्कार योग्य नहीं है। वे योगी के समान ही परिश्रम करते हैं और कष्ट सहते हैं, केवल वे अपने वास्तविक उद्देश्य के प्रति सचेत नहीं होते।
महाराज: आपके यहाँ के आम लोग किस तरह से योगी हैं?
प्रश्न: उनका अंतिम लक्ष्य एक ही है। योगी त्याग से जो प्राप्त करता है, सामान्य व्यक्ति उसे अनुभव से प्राप्त करता है। भोग का मार्ग अचेतन होता है, इसलिए यह दोहराव वाला और लंबा होता है, जबकि योग का मार्ग सजग और गहन होता है, इसलिए यह अधिक तीव्र हो सकता है।
एम: शायद योग और भोग के चरण बारी-बारी से आते हैं। पहले भोगी, फिर योगी, फिर से भोगी, फिर से योगी।
प्रश्न: इसका उद्देश्य क्या हो सकता है?
एम: कमजोर इच्छाओं को आत्मनिरीक्षण और ध्यान से दूर किया जा सकता है, लेकिन मजबूत, गहरी जड़ों वाली इच्छाओं को पूरा किया जाना चाहिए और उनके फल, चाहे मीठे हों या कड़वे, चखे जाने चाहिए।
प्रश्न: तो फिर हमें योगियों को सम्मान क्यों देना चाहिए और भोगियों को कमतर क्यों आंकना चाहिए? सभी एक तरह से योगी ही हैं।
एम: मानवीय मूल्यों के पैमाने पर, जानबूझकर किया गया प्रयास प्रशंसनीय माना जाता है। वास्तव में, योगी और भोगी दोनों ही परिस्थितियों और अवसरों के अनुसार अपने स्वभाव का अनुसरण करते हैं। योगी का जीवन एक ही इच्छा से प्रेरित होता है - सत्य की खोज; भोगी अनेक स्वामियों की सेवा करता है। लेकिन भोगी योगी बन जाता है और योगी भोग के प्रकोप में फंस सकता है। अंतिम परिणाम एक ही होता है। प्रश्न: कहा जाता है कि बुद्ध ने कहा था कि यह जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ज्ञानोदय होता है, चेतना में पूर्ण परिवर्तन और रूपांतरण। इस खुशखबरी की तुलना रुई से भरे जहाज में एक चिंगारी से की जाती है; धीरे-धीरे लेकिन निरंतर, वह सारा रुई राख में बदल जाएगा। इसी प्रकार, ज्ञानोदय की खुशखबरी, देर-सवेर, एक परिवर्तन लाएगी।
एम: जी हाँ, पहले सुनना (श्रवण), फिर स्मरण (स्मरण), मनन (मानन) इत्यादि। हम इस विषय से परिचित हैं। समाचार सुनने वाला व्यक्ति योगी बन जाता है; जबकि बाकी लोग अपने भोग में लगे रहते हैं।
प्रश्न: लेकिन आप इस बात से सहमत हैं कि जीवन जीना - बस दुनिया का नीरस जीवन जीना, जन्म लेकर मरना और मृत्यु के बाद जन्म लेना - मनुष्य को उसकी विशाल

मात्रा के कारण ही आगे बढ़ाता है, ठीक उसी तरह जैसे नदी अपने द्वारा एकत्रित जल की विशाल मात्रा के कारण समुद्र तक अपना रास्ता खोज लेती है। एम: संसार के अस्तित्व से पहले चेतना थी। चेतना में ही इसका जन्म होता है, चेतना में ही यह विद्यमान रहती है और शुद्ध चेतना में विलीन हो जाती है। हर चीज की जड़ में 'मैं हूं' की भावना है। 'संसार है' वाली मनःस्थिति गौण है, क्योंकि अस्तित्व के लिए मुझे संसार की आवश्यकता नहीं है, संसार को मेरी आवश्यकता है।
प्रश्न: जीने की इच्छा एक बहुत बड़ी चीज है।
एम: जीने की तीव्र इच्छा से मुक्ति पाना उससे भी कहीं अधिक बड़ी बात है। प्रश्न: पत्थर की स्वतंत्रता?
एम: हाँ, पत्थर की स्वतंत्रता, और उससे भी कहीं अधिक। असीमित और सचेत स्वतंत्रता।
प्रश्न: क्या अनुभव प्राप्त करने के लिए व्यक्तित्व की आवश्यकता नहीं होती?
एम: अभी आप जिस स्थिति में हैं, उसमें व्यक्तित्व केवल एक बाधा है। शिशु के लिए शरीर से आत्म-पहचान अच्छी हो सकती है, लेकिन सच्चा विकास शरीर को मार्ग से हटाने पर निर्भर करता है। सामान्यतः, व्यक्ति को जीवन में जल्दी ही शरीर-आधारित इच्छाओं से ऊपर उठ जाना चाहिए। यहां तक कि भोगी, जो सुखों का त्याग नहीं करता, उसे भी उन सुखों की लालसा नहीं रखनी चाहिए जिनका उसने अनुभव किया है। आदत और बार-बार एक ही सुख को दोहराने की इच्छा योगी और भोगी दोनों को ही निराश करती है।
प्रश्न: आप व्यक्ति को महत्वहीन क्यों मानते रहते हैं? व्यक्तित्व हमारे अस्तित्व का मूल तत्व है। यह संपूर्ण परिदृश्य को समाहित करता है।
एम: जब तक आप यह नहीं समझ लेते कि यह महज़ एक आदत है, जो स्मृति पर आधारित है और इच्छा से प्रेरित है, तब तक आप खुद को एक इंसान समझते रहेंगे - जो जीवित है, महसूस करता है, सोचता है, सक्रिय है, निष्क्रिय है, प्रसन्न है या दुखी है। खुद से सवाल कीजिए, खुद से पूछिए, 'क्या ऐसा ही है?' 'मैं कौन हूँ?' 'इन सबके पीछे और परे क्या है?' और जल्द ही आपको अपनी गलती का एहसास हो जाएगा। और गलती का स्वभाव ही यही है कि जब उसका एहसास हो जाता है, तो वह खत्म हो जाती है।
प्रश्न: जीवन के योग को, जिसे हम निसार्ग योग कहते हैं, जीवन का योग कहा जा सकता है। यह मुझे ऋग्वेद में वर्णित आदि योग की याद दिलाता है, जिसे जीवन और मन के मिलन के रूप में वर्णित किया गया है।
एम: सचेतनता के साथ, सोच-समझकर जिया गया जीवन अपने आप में निसर्गा योग है। प्रश्न: जीवन और मन के विवाह का क्या अर्थ है?
एम: सहज जागरूकता में जीना, सहज जीवन की चेतना, अपने जीवन में पूरी तरह से रुचि रखना - यह सब इसमें निहित है।
प्रश्न: श्री रामकृष्ण परमहंस की पत्नी शारदा देवी अपने शिष्यों को अत्यधिक परिश्रम करने के लिए अक्सर डांटती थीं। वे शिष्यों की तुलना पेड़ पर लगे उन आमों से करती थीं जिन्हें पकने से पहले ही तोड़ लिया जाता है। वे कहती थीं, 'जल्दी क्यों? पूरी तरह पकने, रसीले और मीठे होने तक प्रतीक्षा करो।'
एम: वह कितनी सही थीं! ऐसे बहुत से लोग हैं जो सुबह को दोपहर समझ लेते हैं, क्षणिक अनुभव को पूर्ण ज्ञान मान लेते हैं और अहंकार के कारण थोड़ा-बहुत जो हासिल करते हैं उसे भी नष्ट कर देते हैं। विनम्रता और मौन साधक के लिए

आवश्यक हैं, चाहे वह कितना भी उन्नत क्यों न हो। केवल पूर्ण परिपक्व ज्ञानी ही स्वयं को पूर्ण सहजता का अनुभव करने दे सकता है।
प्रश्न: ऐसा प्रतीत होता है कि योग के कुछ ऐसे संप्रदाय हैं जहाँ ज्ञान प्राप्ति के बाद विद्यार्थी को 7, 12, 15 या यहाँ तक कि 25 वर्षों तक मौन रहना अनिवार्य होता है। यहाँ तक कि भगवान श्री रमण महर्षि ने भी शिक्षण प्रारंभ करने से पहले 20 वर्षों का मौन धारण किया था।
एम: जी हाँ, आंतरिक फल को पकना चाहिए। तब तक अनुशासन, जागरूकता में जीना जारी रखना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास अधिक से अधिक सूक्ष्म होता जाता है, जब तक कि वह पूरी तरह से निराकार न हो जाए।
प्रश्न: कृष्णमूर्ति भी जागरूकता में जीने की बात करते हैं।
एम: उनका लक्ष्य हमेशा 'परम लक्ष्य' ही होता है। जी हाँ, अंततः सभी योग आपके अधि योग में समाप्त होते हैं, चेतना (दुल्हन) और जीवन (दूल्हा) के विवाह में। चेतना और सद-चित परमानंद में मिलते हैं। परमानंद की प्राप्ति के लिए मिलन, संपर्क और द्वैत में एकता की पुष्टि आवश्यक है।
प्रश्न: बुद्ध ने भी कहा है कि निर्वाण की प्राप्ति के लिए जीवित प्राणियों के पास जाना आवश्यक है। चेतना को विकसित होने के लिए जीवन की आवश्यकता होती है।
एम: संसार स्वयं संपर्क है—चेतना में साकार हुए सभी संपर्कों का समग्र रूप। आत्मा पदार्थ को स्पर्श करती है और चेतना उत्पन्न होती है। ऐसी चेतना, जब स्मृति और अपेक्षा से दूषित हो जाती है, तो बंधन बन जाती है। शुद्ध अनुभव बंधन नहीं बनाता; इच्छा और भय के बीच फंसा अनुभव अशुद्ध होता है और कर्म उत्पन्न करता है।
प्रश्न: क्या एकता में सुख हो सकता है? क्या सभी सुखों में संपर्क अनिवार्य रूप से निहित नहीं होता, जिससे द्वैतवाद उत्पन्न होता है?
एम: जब तक द्वैत संघर्ष उत्पन्न न करे, उसमें कोई बुराई नहीं है। कलह रहित बहुलता और विविधता आनंददायी है। शुद्ध चेतना में प्रकाश है। गर्माहट के लिए संपर्क आवश्यक है। अस्तित्व की एकता से ऊपर प्रेम का मिलन है। प्रेम ही द्वैत का अर्थ और उद्देश्य है।
प्रश्न: मैं गोद लिया हुआ बच्चा हूँ। मैं अपने असली पिता को नहीं जानता। मेरी माँ का निधन मेरे जन्म के समय ही हो गया था। मेरी पालक माँ, जो निःसंतान थीं, को खुश करने के लिए मेरे पालक पिता ने मुझे गोद ले लिया - लगभग संयोगवश। वे एक साधारण व्यक्ति हैं - ट्रक मालिक और ड्राइवर। मेरी माँ घर का काम संभालती हैं। मेरी उम्र अब 24 वर्ष है। पिछले ढाई वर्षों से मैं यात्रा कर रहा हूँ, बेचैन हूँ, कुछ खोज रहा हूँ। मैं एक अच्छा जीवन, एक पवित्र जीवन जीना चाहता हूँ। मुझे क्या करना चाहिए?
एम: घर जाओ, अपने पिता का कारोबार संभालो, बुढ़ापे में अपने माता-पिता की देखभाल करो। उस लड़की से शादी करो जो तुम्हारा इंतज़ार कर रही है, वफ़ादार रहो, सरल रहो, विनम्र रहो। अपने सद्गुणों को छुपाओ, मौन जीवन जियो। पाँच इंद्रियाँ और तीन गुण योग के आठ चरण हैं। और 'मैं हूँ' महामंत्र है। इनसे तुम्हें वह सब कुछ सीखने को मिलेगा जो तुम्हें जानना ज़रूरी है। सचेत रहो, निरंतर जिज्ञासा रखो। बस इतना ही।
प्रश्न: यदि केवल जीवन जीना ही मुक्ति प्रदान करता है, तो सभी लोग मुक्त क्यों नहीं हो जाते?
एम: सभी मुक्त हो रहे हैं। मायने यह नहीं रखता कि आप क्या जीते हैं, बल्कि यह मायने रखता है कि आप कैसे जीते हैं। ज्ञानोदय का विचार अत्यंत

महत्वपूर्ण है। मात्र यह जानना कि ऐसी संभावना है, व्यक्ति के संपूर्ण दृष्टिकोण को बदल देता है। यह लकड़ी के बुरादे के ढेर में जलती हुई माचिस की तीली के समान है। सभी महान गुरुओं ने इसके अलावा कुछ नहीं किया। सत्य की एक चिंगारी झूठ के पहाड़ को जला सकती है। इसका विपरीत भी सत्य है; शरीर से आत्म-पहचान के बादल के पीछे सत्य का सूर्य छिपा रहता है।
प्रश्न: ज्ञानोदय की खुशखबरी फैलाना बहुत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। एम: इसका नाम सुनते ही ज्ञान प्राप्ति का वादा हो जाता है। गुरु से मिलना ही मुक्ति की गारंटी है। पूर्णता जीवनदायी और सृजनात्मक है।
प्रश्न: क्या एक आत्मज्ञानी व्यक्ति कभी सोचता है, 'मैं आत्मज्ञानी हूँ?' क्या वह लोगों द्वारा उसकी प्रशंसा किए जाने पर आश्चर्यचकित नहीं होता? क्या वह स्वयं को एक साधारण मनुष्य नहीं मानता?
एम: न साधारण, न असाधारण। बस गहन जागरूकता और स्नेह। वह स्वयं को बिना किसी आत्म-परिभाषा या आत्म-पहचान के देखता है। वह स्वयं को संसार से अलग नहीं मानता। वह स्वयं ही संसार है। वह पूरी तरह से आत्म-मुक्त है, ठीक वैसे ही जैसे कोई धनी व्यक्ति निरंतर अपना धन दान करता रहता है। वह धनी नहीं है, क्योंकि उसके पास कुछ नहीं है; वह गरीब भी नहीं है, क्योंकि वह उदारतापूर्वक दान करता है। वह बस संपत्तिहीन है। इसी प्रकार, आत्मज्ञानी व्यक्ति अहंकार रहित होता है; वह स्वयं को किसी भी चीज से जोड़ने की क्षमता खो चुका होता है। वह स्थानहीन, काल-स्थान से परे, संसार से परे है। वह शब्दों और विचारों से परे है।
प्रश्न: खैर, यह मेरे लिए एक गहरा रहस्य है। मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। एम: तुम ही अत्यंत जटिल, रहस्यमय और समझने में कठिन हो। तुम्हारे मुकाबले मैं तो सादगी की पराकाष्ठा हूँ: मैं वही हूँ जो है— भीतर और बाहर, मेरा और तुम्हारा, अच्छा और बुरा, इनमें कोई भेद नहीं है। संसार जैसा है, मैं वही हूँ; संसार मैं हूँ।
प्रश्न: ऐसा कैसे होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी दुनिया खुद बनाता है? एम: जब कई लोग सो रहे होते हैं, तो हर कोई अपना-अपना सपना देखता है। जागने पर ही अनेक सपनों का सवाल उठता है और तब खत्म हो जाता है जब उन सभी को सपने के रूप में, कल्पना के रूप में देखा जाता है।
प्रश्न: सपनों की भी एक बुनियाद होती है।
एम: स्मृति में। फिर भी, जो याद रहता है, वह महज़ एक और सपना ही होता है। झूठी स्मृति से झूठी स्मृति ही जन्म लेती है। स्मृति में अपने आप में कोई दोष नहीं है। झूठ तो उसकी विषयवस्तु में है। तथ्यों को याद रखो, मतों को भूल जाओ।
प्रश्न: तथ्य क्या है?
एम: वह जो शुद्ध चेतना में अनुभव किया जाता है, जो इच्छा से अप्रभावित होता है।

27. अनादि काल से अनंत काल तक आरंभ होता है

प्रश्नकर्ता: कुछ दिन पहले मैं आपसे विकास के दो मार्गों - त्याग और भोग (योग और भोग) के बारे में पूछ रहा था। इनमें अंतर उतना बड़ा नहीं है जितना दिखता है - योगी भोग के लिए त्याग करता है; भोगी त्याग के लिए भोग करता है।
योगी पहले त्याग करता है।

महाराज: तो क्या हुआ? योगी को उसका योग करने दो और भोगी को उसका भोग करने दो।
प्रश्न: मुझे भोग का मार्ग श्रेष्ठ लगता है। योगी उस कच्चे आम के समान है जिसे पेड़ से समय से पहले तोड़कर भूसे की टोकरी में पकने के लिए रख दिया जाता है। हवा और गर्मी से वंचित रहने के कारण वह पक तो जाता है, लेकिन उसका असली स्वाद और सुगंध खो जाती है। पेड़ पर लगा हुआ आम पूरी तरह से पककर, रंग और मिठास से भरपूर हो जाता है। हर तरह से आनंददायक। फिर भी किसी तरह योग को सारी प्रशंसा मिलती है और भोग को सारी निंदा। मेरी राय में, भोग दोनों में श्रेष्ठ है।
एम: आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?
प्रश्न: मैंने योगियों और उनके अथक परिश्रम को देखा है। ज्ञान प्राप्ति के बाद भी, उसमें कुछ कड़वाहट या कसैलापन सा होता है। वे अपना अधिकांश समय समाधि में व्यतीत करते प्रतीत होते हैं और जब वे बोलते हैं, तो केवल शास्त्रों का पाठ करते हैं। अपने सर्वोत्तम रूप में ऐसे ज्ञानी पुष्पों के समान होते हैं - परिपूर्ण, परन्तु छोटे-छोटे पुष्प, जो अपनी सुगंध सीमित दायरे में ही बिखेरते हैं। वहीं कुछ अन्य ज्ञानी वनों के समान होते हैं - समृद्ध, विविधतापूर्ण, विशाल, आश्चर्यों से परिपूर्ण, अपने आप में एक संसार। इस अंतर का कोई कारण अवश्य होगा।
एम: ठीक है, आपने सही कहा। आपके अनुसार एक व्यक्ति योग में पिछड़ गया, जबकि दूसरा भोग में फला-फूला।
प्रश्न: क्या ऐसा नहीं है? योगी जीवन से भयभीत होकर शांति की तलाश करता है, जबकि भोगी साहसी, उत्साही और प्रगतिशील होता है। योगी एक आदर्श से बंधा होता है, जबकि भोगी हमेशा अन्वेषण के लिए तत्पर रहता है।
एम: यह बहुत कुछ चाहने या थोड़े में संतुष्ट रहने का मामला है। योगी महत्वाकांक्षी होता है जबकि भोगी केवल साहसिक होता है। आपका भोगी अधिक समृद्ध और रोचक प्रतीत होता है, लेकिन वास्तविकता में ऐसा नहीं है। योगी चाकू की तेज धार की तरह संकीर्ण होता है। उसे ऐसा होना ही पड़ता है - गहराई से और सहजता से काटने के लिए, असत्य की अनेक परतों को अचूक रूप से भेदने के लिए। भोगी अनेक वेदियों की पूजा करता है; योगी केवल अपने सच्चे स्वरूप की सेवा करता है।
योगी और भोगी के बीच मतभेद करना व्यर्थ है। प्रवृत्ति (निकलने का मार्ग) निवृत्ति (वापस लौटने का मार्ग) से पहले आता है। निर्णय लेना और अंक देना हास्यास्पद है। सब कुछ परम पूर्णता की ओर ले जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि वास्तविकता के तीन पहलू हैं - सत्य, ज्ञान और आनंद; सत्य की खोज करने वाला योगी बनता है, ज्ञान की खोज करने वाला ज्ञानी बनता है; सुख की खोज करने वाला कर्मठ व्यक्ति बनता है।
प्रश्न: हमें अद्वैत के आनंद के बारे में बताया जाता है।
एम: ऐसा आनंद एक प्रकार की महान शांति है। सुख और दुख कर्मों के फल हैं - चाहे वे धर्मपरायण हों या अधर्मी।
प्रश्न: क्या चीज अंतर पैदा करती है?
एम: फर्क देने और लेने में है। दृष्टिकोण चाहे जो भी हो, अंत में सब एक हो जाता है।
प्रश्न: यदि लक्ष्य में कोई अंतर न हो, तो विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच भेदभाव क्यों किया जाए?

एम: हर किसी को अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करना चाहिए। अंततः उद्देश्य तो पूरा हो ही जाएगा। आपके सभी भेद और वर्गीकरण बिल्कुल सही हैं, लेकिन मेरे मामले में वे लागू नहीं होते। जैसे सपने का वर्णन विस्तृत और सटीक हो सकता है, भले ही उसका कोई आधार न हो, वैसे ही आपका यह तरीका भी केवल आपकी अपनी मान्यताओं पर आधारित है। आप एक विचार से शुरू करते हैं और उसी विचार को एक अलग रूप में प्रस्तुत करके समाप्त करते हैं।
प्रश्न: आप चीजों को किस नजरिए से देखते हैं?
एम: मेरे लिए एक और सब एक समान हैं। एक ही चेतना (चित) अस्तित्व (सत्) और आनंद (आनंद) के रूप में प्रकट होती है: गतिमान चित आनंद है; स्थिर चित अस्तित्व है।
प्रश्न: फिर भी आप गति और गतिहीनता के बीच अंतर कर रहे हैं।
एम: भेदहीनता मौन में बोलती है। शब्द भेदों को धारण करते हैं। अव्यक्त (निर्गुण) का कोई नाम नहीं है, सभी नाम प्रकट (सगुण) को संदर्भित करते हैं।
शब्दों से परे की बात को व्यक्त करने का प्रयास व्यर्थ है। चेतना (चिदानंद) आत्मा (पुरुष) है, चेतना पदार्थ (प्रकृति) है। अपूर्ण आत्मा पदार्थ है, पूर्ण पदार्थ आत्मा है। आदि में और अंत में, सब एक है।
सभी विभाजन मन (चित्त) में हैं; वास्तविकता (चित) में कोई विभाजन नहीं है।
गति और विश्राम मन की अवस्थाएँ हैं और इनके विपरीत भाव अवश्यंभावी हैं। स्वयं से कुछ भी गतिमान नहीं होता, कुछ भी विश्राम नहीं करता। मानसिक अवधारणाओं को पूर्ण अस्तित्व प्रदान करना घोर त्रुटि है। कोई भी वस्तु स्वयं से विद्यमान नहीं होती।
प्रश्न: ऐसा प्रतीत होता है कि आप विश्राम को सर्वोच्च राज्य से जोड़ते हैं?
एम: विश्राम मन की एक अवस्था (चिदारम्) है और विश्राम अस्तित्व की एक अवस्था (आत्मरम्) है। पहली अवस्था आती-जाती रहती है, जबकि सच्चा विश्राम कर्म का मूल तत्व है। दुर्भाग्यवश, भाषा एक मानसिक उपकरण है और केवल विपरीत अर्थों में ही काम करती है।
प्रश्न: एक गवाह के रूप में, आप काम कर रहे हैं या आराम कर रहे हैं?
एम: साक्षी बनना एक अनुभव है और विश्राम अनुभव से मुक्ति है।
प्रश्न: क्या वे एक साथ मौजूद नहीं रह सकते, जैसे समुद्र में लहरों का कोलाहल और गहरे समुद्र की शांति एक साथ मौजूद रहते हैं?
एम: मन से परे अनुभव जैसी कोई चीज नहीं है। अनुभव एक द्वैत अवस्था है। आप वास्तविकता को अनुभव के रूप में नहीं देख सकते। एक बार यह समझ आ जाए, तो आप अस्तित्व और विकास को अलग-अलग और विपरीत नहीं समझेंगे। वास्तव में वे एक ही हैं और अविभाज्य हैं, जैसे एक ही वृक्ष की जड़ें और शाखाएँ। दोनों का अस्तित्व केवल चेतना के प्रकाश में ही संभव है, जो फिर से 'मैं हूँ' की भावना के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। यही मूल सत्य है। यदि आप इसे नहीं समझते, तो आप सब कुछ खो देते हैं।
प्रश्न: क्या बोध केवल अनुभव का ही परिणाम है? महावाक्य का महान कथन (तत्- सत्) क्या मात्र एक चिंतन विधि है?
एम: जो कुछ बोला जाता है, वह केवल वाणी है। जो कुछ सोचा जाता है, वह केवल विचार है। वास्तविक अर्थ अवर्णनीय है, यद्यपि अनुभव किया जा सकता है। महावाक्य सत्य है, परन्तु आपके विचार असत्य हैं, क्योंकि सभी विचार (कल्पना) असत्य हैं।
प्रश्न: क्या 'मैं वही हूँ' की धारणा झूठी है?

एम: बिलकुल। दृढ़ विश्वास एक मानसिक अवस्था है। 'उस' में 'मैं हूँ' नहीं होता। 'मैं हूँ' की भावना जागृत होते ही 'वह' धुंधली हो जाती है, जैसे सूर्योदय के साथ तारे गायब हो जाते हैं। लेकिन जैसे सूर्य के साथ प्रकाश आता है, वैसे ही आत्मबोध के साथ आनंद (चिदानंद) आता है। आनंद का कारण 'मैं नहीं' में खोजा जाता है और यहीं से बंधन शुरू होता है।
प्रश्न: क्या आप अपने दैनिक जीवन में हमेशा अपनी वास्तविक स्थिति के प्रति सचेत रहते हैं?
एम: न चेतन, न अचेतन। मुझे दृढ़ विश्वासों की आवश्यकता नहीं है। मैं साहस के बल पर जीता हूँ। साहस ही मेरा सार है, जो जीवन के प्रति प्रेम है। मैं स्मृतियों और अपेक्षाओं से मुक्त हूँ, इस बात से बेपरवाह हूँ कि मैं क्या हूँ और क्या नहीं हूँ। मैं आत्म-वर्णन का आदी नहीं हूँ, सोहम और ब्रह्मास्मि ('मैं वही हूँ', 'मैं परम हूँ') मेरे लिए व्यर्थ हैं। मुझमें कुछ भी न होने और संसार को यथावत देखने का साहस है: कुछ भी नहीं। यह सुनने में सरल लगता है, बस एक बार आजमा कर देखिए!
प्रश्न: लेकिन आपको साहस किससे मिलता है?
एम: आपके विचार कितने विकृत हैं! क्या साहस देने की आवश्यकता है? आपके प्रश्न से ऐसा प्रतीत होता है कि चिंता सामान्य अवस्था है और साहस असामान्य। जबकि वास्तव में स्थिति इसके विपरीत है। चिंता और आशा दोनों कल्पना से उत्पन्न होती हैं - मैं इन दोनों से मुक्त हूँ। मैं एक साधारण प्राणी हूँ और मुझे किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: जब तक आप स्वयं को नहीं जानते, तब तक आपके अस्तित्व का क्या लाभ? आप जो हैं उससे प्रसन्न रहने के लिए, आपको यह जानना होगा कि आप क्या हैं।
एम: अस्तित्व ज्ञान के रूप में चमकता है, ज्ञान प्रेम में गर्माहट लिए होता है। सब एक ही है। तुम अलगाव की कल्पना करते हो और प्रश्नों से खुद को परेशान करते हो। परिभाषाओं में ज्यादा उलझने की जरूरत नहीं है। शुद्ध अस्तित्व का वर्णन नहीं किया जा सकता।
प्रश्न: जब तक कोई वस्तु जानने योग्य और आनंददायक न हो, तब तक वह मेरे लिए किसी काम की नहीं है। उसे सबसे पहले मेरे अनुभव का हिस्सा बनना होगा।
एम: आप वास्तविकता को अनुभव के स्तर तक गिरा रहे हैं। वास्तविकता अनुभव पर कैसे निर्भर हो सकती है, जबकि अनुभव स्वयं अनुभव का आधार है? वास्तविकता अनुभव के स्वरूप में निहित है, न कि उसके स्वभाव में। अनुभव तो अंततः मन की एक अवस्था है, जबकि अस्तित्व मन की अवस्था नहीं है।
प्रश्न: मैं फिर से उलझन में हूँ! क्या होना और जानना अलग-अलग चीजें हैं? एम: यह अलगाव एक आभास मात्र है। जिस प्रकार सपना सपने देखने वाले से अलग नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञान भी अस्तित्व से अलग नहीं होता। सपना ही सपने देखने वाला है, ज्ञान ही जानने वाला है; यह भेद केवल शाब्दिक है।
प्रश्न: अब मुझे समझ आ गया है कि सत् और चित एक ही हैं। लेकिन आनंद (परमानंद) का क्या? अस्तित्व और चेतना तो हमेशा साथ-साथ मौजूद रहते हैं, लेकिन आनंद कभी-कभार ही प्रकट होता है।
एम: शांत अवस्था ही आनंद है; अशांत अवस्था ही संसार के रूप में प्रकट होती है। अद्वैत में आनंद है; द्वैत में अनुभव। जो आता-जाता है, वही अनुभव है, जिसमें सुख और दुख का द्वैत होता है। आनंद को जाना नहीं जा सकता। व्यक्ति सदा आनंद में रहता है, पर कभी आनंदित नहीं हो सकता। आनंद कोई गुण नहीं है। प्रश्न: मेरा एक और प्रश्न है: कुछ योगी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन वह दूसरों के लिए किसी काम का नहीं होता। या तो वे जानते नहीं

हैं, या दूसरों के साथ साझा करने में सक्षम नहीं होते। जो लोग अपना ज्ञान साझा कर सकते हैं, वे दूसरों को दीक्षा देते हैं। अंतर कहाँ है?
एम: कोई अंतर नहीं है। आपका दृष्टिकोण गलत है। मदद करने वाला कोई और नहीं है। एक धनी व्यक्ति जब अपनी सारी संपत्ति अपने परिवार को दे देता है, तो उसके पास भिखारी को देने के लिए एक सिक्का भी नहीं बचता। ठीक वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति अपनी सारी शक्तियों और संपत्तियों से वंचित हो जाता है। उसके बारे में सचमुच कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह किसी की मदद नहीं कर सकता क्योंकि वह स्वयं सब कुछ है। वह गरीब भी है और उसकी गरीबी भी, चोर भी है और उसकी चोरी भी। जब वह अलग नहीं है तो उसे मददगार कैसे कहा जा सकता है? जो स्वयं को संसार से अलग समझता है, उसे संसार की सहायता करनी चाहिए।
प्रश्न: फिर भी, द्वैत है, दुख है, मदद की जरूरत है। इसे महज सपना बताकर खारिज करने से कुछ हासिल नहीं होता।
एम: सपने से जागने के अलावा और कोई उपाय नहीं है।
प्रश्न: एक जागृतिकर्ता की आवश्यकता है।
एम: सपने में फिर कौन है? जागृत करने वाला अंत की शुरुआत का प्रतीक है। कोई भी सपना शाश्वत नहीं होता।
प्रश्न: क्या तब भी जब वह अनादि हो?
एम: सब कुछ आपसे ही शुरू होता है। भला और क्या है जिसका कोई आरंभ नहीं है? प्रश्न: मैंने जन्म से ही शुरुआत की।
एम: आपको यही बताया गया है। क्या यह सच है? क्या आपने खुद को शुरुआत करते हुए देखा था?
प्रश्न: मैंने अभी-अभी शुरू किया है। बाकी सब मेरी याददाश्त है।
एम: बिलकुल सही। अनादि का अनंत काल तक अस्तित्व बना रहता है। उसी प्रकार, मैं भी अनंत काल तक देता रहता हूँ, क्योंकि मेरे पास कुछ नहीं है। कुछ न होना, कुछ न रखना, अपने लिए कुछ न बचाकर रखना ही सबसे बड़ा दान है, सबसे बड़ी उदारता है।
प्रश्न: क्या आत्म-चिंता का कोई अंश शेष नहीं रह जाता?
एम: बेशक मैं स्वार्थी हूँ, लेकिन स्वार्थ ही सब कुछ है। व्यवहार में यह अटूट और सार्वभौमिक सद्भावना का रूप धारण कर लेता है। आप इसे सर्वव्यापी, सर्व-मुक्तिदायी प्रेम कह सकते हैं। ऐसा प्रेम अत्यंत सक्रिय होता है - कर्म की भावना के बिना।

28. समस्त दुख इच्छा से उत्पन्न होता है

प्रश्नकर्ता: मैं एक दूर देश से आया हूँ। मुझे कुछ आंतरिक अनुभव हुए हैं और मैं उन्हें साझा करना चाहता हूँ। महाराज: अवश्य। क्या आप स्वयं को जानते हैं?
प्रश्न: मुझे पता है कि मैं शरीर नहीं हूँ। न ही मैं मन हूँ।
एम: आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?
प्रश्न: मुझे ऐसा महसूस नहीं होता कि मैं अपने शरीर में हूँ। ऐसा लगता है जैसे मैं हर जगह भटक रहा हूँ। जहाँ तक मन की बात है, मैं उसे अपनी मर्ज़ी से चालू और बंद कर सकता हूँ। इससे मुझे ऐसा लगता है कि मैं मन नहीं हूँ।
एम: जब आप स्वयं को दुनिया में हर जगह मौजूद महसूस करते हैं, तो क्या आप दुनिया से अलग रहते हैं? या, क्या आप ही दुनिया हैं?

प्रश्न: दोनों। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं न तो मन हूँ और न ही शरीर, बल्कि एक ही सर्वव्यापी आँख हूँ। जब मैं इस भावना में और गहराई से उतरता हूँ, तो मुझे पता चलता है कि मैं जो कुछ भी देखता हूँ, वही हूँ और संसार और मैं एक हो जाते हैं।
एम: बहुत अच्छा। आपकी इच्छाओं के बारे में क्या? क्या आपकी कोई इच्छाएं हैं?
प्रश्न: जी हां, वे आते हैं, संक्षिप्त और सतही।
एम: और आप उनके बारे में क्या करते हैं?
प्रश्न: मैं क्या करूँ? वे आते हैं, वे चले जाते हैं। मैं उन्हें देखता हूँ। कभी-कभी मुझे लगता है कि मेरा शरीर और मेरा मन उन्हें पूरा करने में लगे हुए हैं।
एम: किसकी इच्छाएं पूरी हो रही हैं?
प्रश्न: वे उस दुनिया का हिस्सा हैं जिसमें मैं रहता हूँ। वे ठीक वैसे ही मौजूद हैं जैसे पेड़ और बादल होते हैं।
एम: क्या वे किसी अपूर्णता का संकेत नहीं हैं?
प्रश्न: वे क्यों होने चाहिए? वे तो वैसे ही हैं जैसे हैं, और मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ। इच्छाओं के प्रकट होने और गायब होने से मुझ पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? बेशक, वे मन के स्वरूप और विषयवस्तु को प्रभावित करते हैं। एम: बहुत बढ़िया। आपका काम क्या है?
प्रश्न: मैं एक परिवीक्षा अधिकारी हूँ।
एम: इसका क्या मतलब है?
प्रश्न: किशोर अपराधियों को परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है और उनके व्यवहार पर नजर रखने और उन्हें प्रशिक्षण प्राप्त करने और काम ढूंढने में मदद करने के लिए विशेष अधिकारी तैनात किए जाते हैं।
एम: क्या आपको काम करना ही होगा?
प्रश्न: काम कौन करता है? काम तो बस होता रहता है।
एम: क्या आपको काम करने की जरूरत है?
प्रश्न: मुझे पैसों की ज़रूरत है। मुझे यह पसंद है, क्योंकि इससे मेरा सजीव प्राणियों से संपर्क होता है।
एम: आपको इनकी जरूरत किसलिए है?
प्रश्न: उन्हें मेरी आवश्यकता हो सकती है और यह उनकी नियति ही है जिसने मुझे यह काम करने के लिए प्रेरित किया है। आखिरकार, जीवन एक ही है।
एम: आप इस वर्तमान स्थिति तक कैसे पहुंचे?
प्रश्न: श्री रमण महर्षि की शिक्षाओं ने मुझे सही राह दिखाई। फिर मेरी मुलाकात डगलस हार्डिंग से हुई, जिन्होंने मुझे 'मैं कौन हूँ?' पर काम करने का तरीका दिखाकर मेरी मदद की।
एम: क्या यह अचानक हुआ या धीरे-धीरे?
प्रश्न: यह बिल्कुल अचानक हुआ। मानो कोई भूली हुई बात अचानक याद आ गई हो। या फिर जैसे अचानक कोई ज्ञान प्राप्त हो गया हो। मैंने कहा, 'कितना सरल है! कितना सरल है! मैं वह नहीं हूँ जो मैं खुद को समझता हूँ! मैं न तो अनुभव किया जाने वाला हूँ और न ही अनुभव करने वाला; मैं केवल अनुभव करने वाला हूँ।'
एम: न केवल अनुभव करना, बल्कि वह चीज जो इन सब को संभव बनाती है।
प्रश्न: प्रेम क्या है?

एम: जब भेद और अलगाव की भावना अनुपस्थित होती है, तो आप इसे प्रेम कह सकते हैं।
प्रश्न: पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम पर इतना जोर क्यों दिया जाता है? एम: क्योंकि इसमें खुशी का तत्व बहुत प्रमुख है।
प्रश्न: क्या यह बात सभी प्रकार के प्रेम में लागू नहीं होती?
एम: जरूरी नहीं। प्यार दर्द का कारण बन सकता है। तब आप उसे करुणा कहते हैं। प्रश्न: खुशी क्या है?
एम: आंतरिक और बाह्य के बीच सामंजस्य ही सुख है। वहीं, बाह्य कारणों से आत्म-पहचान दुख का कारण है।
प्रश्न: आत्म-पहचान कैसे होती है?
एम: आत्मा स्वभाव से केवल स्वयं को ही जानती है। अनुभव की कमी के कारण वह जो कुछ भी अनुभव करती है, उसे स्वयं ही मान लेती है। आघात से ग्रस्त होकर वह विवेक से देखना और वैराग्य से अकेले रहना सीख जाती है। जब उचित व्यवहार सामान्य हो जाता है, तो एक प्रबल आंतरिक प्रेरणा उसे अपने स्रोत की खोज करने के लिए प्रेरित करती है। शरीर रूपी दीपक प्रज्वलित हो जाता है और सब कुछ स्पष्ट और उज्ज्वल हो जाता है।
प्रश्न: दुख का वास्तविक कारण क्या है?
एम: सीमित स्वरूप से आत्म-पहचान (व्यक्तित्व)। संवेदनाएँ, चाहे कितनी भी तीव्र क्यों न हों, दुख का कारण नहीं बनतीं। गलत विचारों से ग्रस्त, 'मैं यह हूँ', 'मैं वह हूँ' जैसी सोच में डूबा हुआ मन ही हानि से भयभीत होता है, लाभ की लालसा रखता है और निराशा होने पर व्यथित होता है।
प्रश्न: मेरे एक दोस्त को रात-रात भर भयानक सपने आते थे। उसे सोने में बहुत डर लगता था। कुछ भी करने से उसकी मदद नहीं होती थी।
एम: सच्चे अच्छे लोगों (सत्संग) की संगति से उसे मदद मिलेगी।
प्रश्न: जीवन ही एक दुःस्वप्न है।
एम: नेक मित्रता (सत्संग) सभी शारीरिक और मानसिक बीमारियों का सर्वोच्च उपाय है।
प्रश्न: आम तौर पर ऐसी दोस्ती नहीं मिलती।
एम: अपने भीतर खोजो। तुम्हारा स्वयं का स्वरूप ही तुम्हारा सबसे अच्छा मित्र है।
प्रश्न: जीवन विरोधाभासों से इतना भरा क्यों है?
एम: यह मानसिक अहंकार को तोड़ने में सहायक होता है। हमें यह समझना होगा कि हम कितने गरीब और शक्तिहीन हैं। जब तक हम अपने बारे में बनी धारणाओं, अपने ज्ञान, अपनी क्षमताओं और अपने कार्यों के भ्रम में जीते रहेंगे, तब तक हम वास्तव में दयनीय स्थिति में रहेंगे। केवल पूर्ण आत्म-त्याग में ही हम अपने वास्तविक स्वरूप को खोज सकते हैं।
प्रश्न: आत्म-अस्वीकृति पर इतना जोर क्यों दिया जाता है?
एम: उतना ही जितना आत्म-साक्षात्कार पर। वास्तविक स्व को पाने से पहले झूठे स्व का त्याग करना आवश्यक है।
प्रश्न: जिस स्व को आप झूठा कहते हैं, वह मेरे लिए अत्यंत पीड़ादायक रूप से वास्तविक है। यही एकमात्र स्व है जिसे मैं जानता हूँ। जिसे आप वास्तविक स्व कहते हैं, वह महज़ एक अवधारणा है, बोलने का एक तरीका है, मन की उपज है, एक आकर्षक प्रेत है। मैं मानता हूँ कि मेरा दैनिक स्व सुंदर नहीं है, लेकिन यही मेरा एकमात्र स्व है। आप कहते हैं कि मेरा एक और स्व है। क्या आप उसे

देख पाते हैं - क्या वह आपके लिए एक वास्तविकता है, या आप चाहते हैं कि मैं उस बात पर विश्वास करूँ जो आप स्वयं नहीं देख पाते?
एम: जल्दबाजी में निष्कर्ष मत निकालो। ठोस का वास्तविक होना जरूरी नहीं, और काल्पनिक का असत्य होना जरूरी नहीं। संवेदनाओं पर आधारित और स्मृति द्वारा निर्मित धारणाएँ एक ऐसे बोधकर्ता का संकेत देती हैं, जिसके स्वरूप की आपने कभी पड़ताल नहीं की। इस पर पूरा ध्यान दो, प्रेमपूर्वक इसका अध्ययन करो, और तुम अस्तित्व की उन ऊँचाइयों और गहराइयों को खोज पाओगे जिनकी तुमने कल्पना भी नहीं की थी, क्योंकि तुम स्वयं की अपनी तुच्छ छवि में ही डूबे रहते हो।
प्रश्न: सार्थक आत्म-परीक्षण के लिए मुझे सही मनोदशा में होना चाहिए।
एम: आपको गंभीर, एकाग्र और वास्तव में इच्छुक होना चाहिए। आपके मन में अपने लिए सद्भावना होनी चाहिए।
प्रश्न: मैं स्वार्थी तो हूँ ही।
एम. तुम नहीं हो। तुम तो लगातार झूठे और शत्रुतापूर्ण देवताओं की पूजा करके खुद को और अपने परिवार को ही नष्ट कर रहे हो। बेशक स्वार्थी बनो - सही तरीके से। अपना भला चाहो, अपने हित में काम करो। अपने और खुशी के बीच आने वाली हर बाधा को मिटा दो। सब कुछ बनो - सबको प्यार करो - खुश रहो - दूसरों को खुश करो। इससे बड़ी खुशी कोई नहीं।
प्रश्न: प्रेम में इतना दुख क्यों होता है?
एम: सभी दुख इच्छा से उत्पन्न होते हैं। सच्चा प्रेम कभी क्षीण नहीं होता। एकता की भावना कैसे क्षीण हो सकती है? जो क्षीण हो सकता है वह अभिव्यक्ति की इच्छा है। ऐसी इच्छा मन की होती है। मानसिक रूप से उत्पन्न सभी चीजों की तरह, क्षीणता अपरिहार्य है।
प्रश्न: प्रेम में सेक्स का क्या स्थान है?
एम: प्रेम एक अवस्था है। कामुकता ऊर्जा है। प्रेम बुद्धिमान होता है, कामुकता अंधी। प्रेम और कामुकता के सच्चे स्वरूप को समझ लेने पर कोई संघर्ष या भ्रम नहीं रहेगा।
सवाल: बिना प्यार के इतना सारा सेक्स होता है।
एम: प्रेम के बिना सब कुछ बुरा है। प्रेम के बिना जीवन ही बुरा है।
प्रश्न: मुझे प्यार करने के लिए क्या प्रेरित कर सकता है?
एम: जब आप भयभीत नहीं होते हैं, तो आप स्वयं प्रेम होते हैं।

29. जीना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।
प्रश्नकर्ता: योग में असफल होने का क्या अर्थ है? योग में असफल (योगभ्रष्ट) कौन है?

महाराज: यह तो बस अपूर्णता का प्रश्न है। जो किसी कारणवश अपना योग पूर्ण नहीं कर पाता, वह योग में असफल कहलाता है। ऐसी असफलता केवल अस्थायी होती है, क्योंकि योग में कोई पराजय नहीं हो सकती। यह युद्ध हमेशा जीता जाता है, क्योंकि यह सत्य और असत्य का युद्ध है। असत्य का कोई अवसर नहीं।
प्रश्न: असफल कौन होता है? व्यक्ति (व्यक्ति) या आत्मा (व्यक्ति)?
एम: सवाल गलत तरीके से पूछा गया है। न तो अल्पकालिक और न ही दीर्घकालिक रूप से असफलता का कोई सवाल ही नहीं उठता। यह किसी अनजान देश में लंबी और कठिन यात्रा करने जैसा है। अनगिनत कदमों में से केवल अंतिम कदम ही आपको आपके गंतव्य तक पहुंचाता है। फिर भी आप पिछले सभी कदमों को असफलता नहीं

मानेंगे। हर कदम आपको अपने लक्ष्य के करीब ले गया, भले ही आपको किसी बाधा को पार करने के लिए वापस लौटना पड़ा हो। वास्तव में, हर कदम आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचाता है, क्योंकि निरंतर गतिमान रहना, सीखना, खोजना, विकास करना ही आपका शाश्वत भाग्य है। जीना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। आत्मा स्वयं को सफलता या असफलता से नहीं जोड़ती - यह या वह बनने का विचार ही अकल्पनीय है। आत्मा समझती है कि सफलता और असफलता सापेक्ष और संबंधित हैं, कि वे जीवन का ताना-बाना हैं। दोनों से सीखें और आगे बढ़ें। यदि आपने नहीं सीखा है, तो दोहराएं।
प्रश्न: मुझे क्या सीखना है?
एम: आत्म-चिंता से मुक्त जीवन जीना। इसके लिए आपको अपने सच्चे स्वरूप (स्वरूप) को अदम्य, निर्भीक और सदा विजयी के रूप में जानना होगा। जब आप पूर्णतः यह जान लेते हैं कि आपकी कल्पना के सिवा कोई भी चीज़ आपको विचलित नहीं कर सकती, तब आप अपनी इच्छाओं, भय, अवधारणाओं और विचारों को त्यागकर केवल सत्य के मार्ग पर चलने लगते हैं।
प्रश्न: योग में कुछ लोगों की सफलता और दूसरों की असफलता का कारण क्या हो सकता है? क्या यह भाग्य, चरित्र या महज संयोग है?
एम: योग में कोई कभी असफल नहीं होता। यह सब प्रगति की गति पर निर्भर करता है। शुरुआत में यह धीमी होती है और अंत में तीव्र हो जाती है। जब व्यक्ति पूर्णतः परिपक्व हो जाता है, तो आत्मज्ञान का अनुभव विस्फोट की तरह होता है। यह स्वतः ही या जरा से संकेत मिलते ही हो जाता है। शीघ्रता धीमी गति से श्रेष्ठ नहीं होती। धीमी परिपक्वता और तीव्र विकास बारी-बारी से होते हैं। दोनों ही स्वाभाविक और सही हैं।
लेकिन ये सब तो सिर्फ मन में ही है। मेरी समझ से, असल में ऐसा कुछ है ही नहीं। चेतना के विशाल दर्पण में छवियाँ बनती और लुप्त होती हैं, और सिर्फ स्मृति ही उन्हें निरंतरता प्रदान करती है। और स्मृति भौतिक है—नष्ट होने वाली, क्षणभंगुर, अस्थिर। ऐसी ही कमजोर नींव पर हम अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का बोध गढ़ते हैं—अस्पष्ट, अस्थिर, स्वप्निल। यह अस्पष्ट धारणा: 'मैं ऐसा हूँ' शुद्ध चेतना की अपरिवर्तनीय अवस्था को धुंधला कर देती है और हमें यह विश्वास दिलाती है कि हम दुख भोगने और मरने के लिए ही पैदा हुए हैं।
प्रश्न: जिस प्रकार एक बच्चा बढ़ना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मनुष्य भी स्वभाव से विवश होकर प्रगति करता है। इसमें प्रयास करने की क्या आवश्यकता है? योग की आवश्यकता कहाँ है?
एम: प्रगति निरंतर होती रहती है। हर चीज़ प्रगति में योगदान देती है। लेकिन यह अज्ञान की प्रगति है। अज्ञान का दायरा चाहे कितना भी विस्तृत हो जाए, यह बंधन बना ही रहता है। समय आने पर एक गुरु प्रकट होते हैं जो हमें योग का अभ्यास करने की शिक्षा और प्रेरणा देते हैं, और परिणामस्वरूप एक परिपक्वता आती है जिससे अज्ञान का चिरस्थायी अंधकार ज्ञान के उदय होते सूर्य के सामने विलीन हो जाता है। लेकिन वास्तव में कुछ नहीं हुआ। सूर्य तो सदा रहता है, उसमें कोई रात नहीं होती; 'मैं शरीर हूँ' के विचार से अंधा हुआ मन भ्रम के धागे को अंतहीन रूप से बुनता रहता है।
प्रश्न: यदि सब कुछ एक प्राकृतिक प्रक्रिया का हिस्सा है, तो प्रयास की आवश्यकता कहाँ है?
एम: प्रयास भी इसका एक हिस्सा है। जब अज्ञान हठधर्मी और कठोर हो जाता है और चरित्र विकृत हो जाता है, तो प्रयास और उसका कष्ट अपरिहार्य हो जाता है।

प्रकृति के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता में कोई प्रयास नहीं होता। आध्यात्मिक जीवन का बीज मौन और अंधकार में अपने नियत समय तक बढ़ता है। प्रश्न: हमें कई महान लोग देखने को मिलते हैं, जो बुढ़ापे में बचकाने, तुच्छ, झगड़ालू और द्वेषपूर्ण हो जाते हैं। वे इतने बिगड़ कैसे जाते हैं? एम: वे पूर्ण योगी नहीं थे, जिनका अपने शरीर पर पूर्ण नियंत्रण हो। या हो सकता है कि उन्होंने अपने शरीर को प्राकृतिक क्षय से बचाने की परवाह न की हो। सभी कारकों को समझे बिना निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी को हीन या श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिए। यौवन ज्ञान से अधिक प्राण शक्ति का विषय है।
प्रश्न: व्यक्ति बूढ़ा हो सकता है, लेकिन उसे अपनी सतर्कता और विवेक क्षमता क्यों खो देनी चाहिए?
एम: शरीर में रहते हुए चेतना और अचेतना मस्तिष्क की स्थिति पर निर्भर करती हैं। लेकिन आत्मा इन दोनों से परे है, मस्तिष्क से परे, मन से परे। उपकरण की खराबी उसके उपयोगकर्ता की खराबी नहीं होती।
प्रश्न: मुझे बताया गया था कि एक आत्मज्ञानी व्यक्ति कभी भी कोई अनुचित कार्य नहीं करेगा। वह हमेशा अनुकरणीय तरीके से व्यवहार करेगा।
एम: उदाहरण कौन प्रस्तुत करता है? एक स्वतंत्र व्यक्ति को परंपराओं का पालन करना ही क्यों आवश्यक है? जिस क्षण वह अनुमान के अनुरूप व्यवहार करने लगता है, वह स्वतंत्र नहीं रह पाता। उसकी स्वतंत्रता इस बात में निहित है कि वह वर्तमान की आवश्यकता को पूरा करने, परिस्थिति की अनिवार्यता का पालन करने के लिए स्वतंत्र हो। अपनी मनमर्जी करने की स्वतंत्रता वास्तव में बंधन है, जबकि जो करना आवश्यक है, जो सही है, उसे करने की स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है।
प्रश्न: फिर भी, यह पता लगाने का कोई न कोई तरीका तो होना ही चाहिए कि किसने सच्चाई को समझा है और किसने नहीं। यदि एक व्यक्ति दूसरे से अलग नहीं है, तो उसका क्या उपयोग है?
एम: जो स्वयं को जानता है, उसे इस बारे में कोई संदेह नहीं होता। न ही उसे इस बात की परवाह होती है कि दूसरे उसकी इस अवस्था को पहचानें या न पहचानें। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति दुर्लभ होता है जो अपने ज्ञान का प्रकटीकरण करता है, और सौभाग्यशाली वे लोग होते हैं जो उससे मिलते हैं, क्योंकि वह ऐसा उनके स्थायी कल्याण के लिए करता है।
प्रश्न: जब हम चारों ओर देखते हैं, तो अनावश्यक पीड़ा की भयावहता देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। जिन लोगों की मदद होनी चाहिए, उन्हें मदद नहीं मिल रही है। कल्पना कीजिए एक बड़े अस्पताल के वार्ड की, जो लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त मरीजों से भरा पड़ा है, जो दर्द से कराह रहे हैं। यदि आपको उन सभी को मार डालने और उनकी यातना समाप्त करने का अधिकार दिया जाए, तो क्या आप ऐसा नहीं करेंगे?
एम: मैं यह फैसला उन पर छोड़ दूंगा।
प्रश्न: लेकिन अगर उनका भाग्य दुख भोगना ही है तो आप भाग्य में कैसे हस्तक्षेप कर सकते हैं?
एम: उनका भाग्य वही है जो घटित होता है। भाग्य को रोका नहीं जा सकता। आपका मतलब है कि हर किसी का जीवन जन्म के समय ही पूरी तरह से निर्धारित हो जाता है? कितना अजीब विचार है! अगर ऐसा होता, तो भाग्य निर्धारित करने वाली शक्ति यह सुनिश्चित करती कि किसी को भी कष्ट न सहना पड़े।

प्रश्न: कारण और परिणाम के बारे में क्या?
एम: प्रत्येक क्षण में संपूर्ण अतीत समाहित होता है और वही संपूर्ण भविष्य का निर्माण करता है।
प्रश्न: लेकिन अतीत और भविष्य तो मौजूद हैं?
एम: यह सब मन में ही है। समय भी मन में ही है, स्थान भी मन में ही है। कारण और परिणाम का नियम भी सोचने का एक तरीका है। वास्तव में सब कुछ यहीं और अभी है, और सब एक ही है। अनेकता और विविधता केवल मन में ही हैं।
प्रश्न: फिर भी, आप लाइलाज बीमारी से ग्रसित शरीर को नष्ट करके भी पीड़ा को कम करने के पक्ष में हैं।
एम: फिर से, आप बाहर से देखते हैं जबकि मैं भीतर से देखता हूँ। मैं किसी पीड़ित को नहीं देखता, मैं स्वयं पीड़ित हूँ। मैं उसे भीतर से जानता हूँ और सहजता से और बिना किसी प्रयास के सही काम करता हूँ। मैं न तो किसी नियम का पालन करता हूँ और न ही किसी नियम का निर्माण करता हूँ। मैं जीवन के साथ बहता हूँ - निष्ठापूर्वक और अटूट रूप से।
प्रश्न: फिर भी आप अपने आस-पास के वातावरण पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाले एक अत्यंत व्यावहारिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं।
एम: आप मुझसे और क्या उम्मीद करते हैं? एक बेमेल इंसान?
प्रश्न: फिर भी आप दूसरे की ज्यादा मदद नहीं कर सकते।
एम: ज़रूर, मैं मदद कर सकता हूँ। आप भी मदद कर सकते हैं। हर कोई मदद कर सकता है। लेकिन पीड़ा बार-बार उत्पन्न होती रहती है। केवल मनुष्य ही अपने भीतर पीड़ा की जड़ों को नष्ट कर सकता है। दूसरे केवल पीड़ा में सहायता कर सकते हैं, उसके कारण को नहीं, जो कि मानव जाति की घोर मूर्खता है।
प्रश्न: क्या यह मूर्खता कभी समाप्त होगी?
एम: मनुष्य में – बिल्कुल। किसी भी क्षण। मानवता में – जैसा कि हम जानते हैं – कई वर्षों बाद। सृष्टि में – कभी नहीं, क्योंकि सृष्टि स्वयं अज्ञान में निहित है; पदार्थ स्वयं अज्ञान है। न जानना, और यह न जानना कि हम नहीं जानते, अनंत दुख का कारण है।
प्रश्न: हमें महान अवतारों, संसार के उद्धारकर्ताओं के बारे में बताया जाता है।
एम: क्या उन्होंने बचाया? वे आए और चले गए - और दुनिया चलती रही। बेशक, उन्होंने बहुत कुछ किया और मानव मन में नए आयाम खोले। लेकिन दुनिया को बचाने की बात करना अतिशयोक्ति है।
प्रश्न: क्या दुनिया के लिए कोई उद्धार नहीं है?
एम: तुम किस दुनिया को बचाना चाहते हो? अपनी कल्पना की दुनिया? उसे खुद बचा लो। मेरी दुनिया? मुझे मेरी दुनिया दिखाओ, मैं उससे निपट लूँगा। मुझे अपने से अलग किसी ऐसी दुनिया का ज्ञान नहीं है जिसे मैं बचाने या न बचाने के लिए स्वतंत्र हूँ। दुनिया को बचाने से तुम्हारा क्या लेना-देना, जबकि दुनिया को बस तुमसे ही बचने की ज़रूरत है? हट जाओ और देखो कि क्या बचाने लायक कुछ बचा भी है।
प्रश्न: आप इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि आपके बिना आपकी दुनिया अस्तित्व में नहीं होती और इसलिए आप इसके लिए बस इतना ही कर सकते हैं कि शो को समाप्त कर दें। यह कोई समाधान नहीं है। भले ही यह दुनिया मेरी ही रचना हो, यह ज्ञान इसे बचा नहीं सकता। यह केवल इसकी व्याख्या करता है। सवाल यह है: मैंने ऐसी दयनीय दुनिया क्यों बनाई और इसे बदलने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ? आप कहना चाह रहे हैं: सब कुछ भूल जाओ और अपनी उपलब्धियों पर गर्व करो।

यकीनन, आपका यह इरादा नहीं है। किसी बीमारी और उसके कारणों का वर्णन करने से वह ठीक नहीं हो जाती। हमें सही दवा की ज़रूरत है।
एम: वर्णन और कारण ही मूर्खता और अज्ञानता से उत्पन्न रोग का उपचार हैं। जिस प्रकार किसी कमी से होने वाला रोग किसी आवश्यक तत्व की पूर्ति से ठीक हो जाता है, उसी प्रकार जीवन के रोग विवेकपूर्ण वैराग्य (समझदारीपूर्ण वैराग्य) से ठीक हो जाते हैं।
प्रश्न: आप पूर्णता के उपदेश देकर दुनिया को नहीं बचा सकते। लोग जैसे हैं वैसे ही रहेंगे। क्या उन्हें कष्ट सहना ही होगा?
एम: जब तक वे इस स्थिति में रहेंगे, तब तक दुख से छुटकारा पाना असंभव है। अलगाव की भावना को दूर करो, तो कोई संघर्ष नहीं रहेगा।
प्रश्न: मुद्रित संदेश केवल कागज और स्याही से बना हो सकता है। महत्वपूर्ण तो पाठ है। दुनिया को तत्वों और गुणों में विभाजित करके हम सबसे महत्वपूर्ण चीज - उसके अर्थ - को खो देते हैं। हर चीज को स्वप्न मानकर आप एक कीड़े के स्वप्न और एक कवि के स्वप्न के अंतर को नजरअंदाज कर देते हैं। यह सच है कि सब कुछ स्वप्न है, लेकिन सभी स्वप्न समान नहीं होते।
एम: सपने एक जैसे नहीं होते, पर सपने देखने वाला एक ही होता है। मैं कीड़ा हूँ। मैं कवि हूँ - सपने में। लेकिन वास्तविकता में मैं इनमें से कोई नहीं हूँ। मैं सभी सपनों से परे हूँ। मैं वह प्रकाश हूँ जिसमें सभी सपने प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं। मैं सपने के अंदर भी हूँ और बाहर भी। जैसे सिरदर्द से पीड़ित व्यक्ति दर्द को जानता है और यह भी जानता है कि वह दर्द नहीं है, वैसे ही मैं सपने को जानता हूँ, स्वयं को सपने में और स्वयं को सपने में न देखते हुए - सब कुछ एक ही समय में। मैं वही हूँ जो मैं सपने से पहले, सपने के दौरान और सपने के बाद होता हूँ। लेकिन जो मैं सपने में देखता हूँ, वह मैं नहीं हूँ।
प्रश्न: यह सब कल्पना का मामला है। एक कल्पना करता है कि वह सपना देख रहा है, दूसरा कल्पना करता है कि वह सपना नहीं देख रहा है। क्या दोनों एक ही बात नहीं हैं?
एम: एक जैसा भी और एक जैसा नहीं भी। दो सपनों के बीच के अंतराल के रूप में सपने न देखना, बेशक, सपने देखने का ही एक हिस्सा है। वास्तविकता में स्थिर और शाश्वत रूप से बने रहने के रूप में सपने न देखने का सपने देखने से कोई संबंध नहीं है। इस अर्थ में, मैं कभी सपने नहीं देखता, और न ही कभी देखूंगा।
प्रश्न: यदि सपने देखना और सपने से बाहर निकलना दोनों ही कल्पनाएं हैं, तो इससे बाहर निकलने का रास्ता क्या है?
एम: बाहर निकलने के रास्ते की कोई ज़रूरत नहीं है! क्या आपको नहीं लगता कि बाहर निकलने का रास्ता भी सपने का ही एक हिस्सा है? आपको बस सपने को सपने के रूप में देखना है।
प्रश्न: यदि मैं हर चीज को सपना मानकर खारिज करने का अभ्यास शुरू कर दूं तो इसका परिणाम क्या होगा?
एम: यह आपको जहाँ भी ले जाए, यह एक सपना ही रहेगा। सपने से परे जाने का विचार ही भ्रामक है। कहीं जाने की क्या ज़रूरत? बस इतना समझ लीजिए कि आप एक सपना देख रहे हैं जिसे आप दुनिया कहते हैं, और इससे बाहर निकलने के रास्ते खोजना बंद कर दीजिए। सपना आपकी समस्या नहीं है। आपकी समस्या यह है कि आपको अपने सपने का एक हिस्सा पसंद है और दूसरा नहीं। या तो पूरे सपने से प्यार

कीजिए, या बिल्कुल भी नहीं, और शिकायत करना बंद कर दीजिए। जब आप सपने को सपने के रूप में देख लेते हैं, तो आपने वह सब कर लिया है जो करना ज़रूरी था। प्रश्न: क्या सपने देखना सोचने के कारण होता है?
एम: सब कुछ विचारों का खेल है। विचारहीन समाधि में कुछ भी अनुभव नहीं होता। मूल विचार है: 'मैं हूँ'। यह शुद्ध चेतना की अवस्था को भंग कर देता है और इसके बाद असंख्य संवेदनाएँ, अनुभूतियाँ, भावनाएँ और विचार उत्पन्न होते हैं, जो समग्र रूप से ईश्वर और उनके संसार का निर्माण करते हैं। 'मैं हूँ' साक्षी भाव से विद्यमान रहता है, परन्तु सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही घटित होता है।
प्रश्न: मेरी वसीयत के द्वारा क्यों नहीं?
एम: आपने फिर से स्वयं को विभाजित कर लिया है - ईश्वर और साक्षी के रूप में। दोनों एक ही हैं।

30. अब आप स्वतंत्र हैं

प्रश्नकर्ता: मनुष्य और ब्रह्मांड की प्रकृति के बारे में अनेक सिद्धांत हैं। सृष्टि का सिद्धांत, भ्रम का सिद्धांत, स्वप्न का सिद्धांत - ऐसे अनगिनत सिद्धांत हैं। इनमें से कौन सा सत्य है?
महाराज: सभी सत्य हैं, सभी असत्य हैं। आप अपनी पसंद का कोई भी सत्य चुन सकते हैं।
प्रश्न: ऐसा लगता है कि आप स्वप्न सिद्धांत का समर्थन करते हैं।
एम: ये सब शब्दों को जोड़ने के तरीके हैं। कुछ लोग एक तरीके को पसंद करते हैं, कुछ दूसरे को। सिद्धांत न तो सही होते हैं और न ही गलत। ये तो बस उस चीज़ को समझाने की कोशिश हैं जिसे समझाया नहीं जा सकता। सिद्धांत मायने नहीं रखता, बल्कि उसे परखने का तरीका मायने रखता है। सिद्धांत को परखने से ही वह फलदायी बनता है। आप जिस भी सिद्धांत पर चाहें प्रयोग करें - अगर आप सचमुच गंभीर और ईमानदार हैं, तो आपको वास्तविकता का ज्ञान अवश्य होगा। एक जीवित प्राणी होने के नाते आप एक असहनीय और पीड़ादायक स्थिति में फंसे हुए हैं और उससे निकलने का रास्ता खोज रहे हैं। आपको अपनी कैद से बाहर निकलने के कई तरीके बताए जा रहे हैं, जिनमें से कोई भी पूरी तरह सच नहीं है। लेकिन उन सभी का कुछ न कुछ महत्व है, बशर्ते आप पूरी तरह गंभीर हों। यह गंभीरता ही है जो मुक्ति दिलाती है, सिद्धांत नहीं।
प्रश्न: सिद्धांत भ्रामक हो सकता है और गंभीरता अंधाधुंध हो सकती है।
एम: आपकी ईमानदारी ही आपका मार्गदर्शन करेगी। स्वतंत्रता और पूर्णता के लक्ष्य के प्रति समर्पण आपको सभी सिद्धांतों और प्रणालियों को त्यागने और ज्ञान, बुद्धि और सक्रिय प्रेम के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करेगा। सिद्धांत आरंभिक बिंदु के रूप में अच्छे हो सकते हैं, लेकिन उन्हें त्याग देना चाहिए, जितनी जल्दी हो उतना अच्छा।
प्रश्न: एक योगी का कहना है कि आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग आवश्यक नहीं है; केवल इच्छाशक्ति ही पर्याप्त है। लक्ष्य पर पूर्ण विश्वास के साथ एकाग्रता बनाए रखना और शुद्ध इच्छाशक्ति की शक्ति पर भरोसा रखना ही काफी है, जिससे वह चीज़ सहजता और शीघ्रता से प्राप्त हो जाती है जिसे प्राप्त करने में दूसरों को दशकों लग जाते हैं।
एम: एकाग्रता, पूर्ण आत्मविश्वास, शुद्ध इच्छाशक्ति! इन गुणों के साथ शीघ्र ही सफलता प्राप्त करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह इच्छाशक्ति

का योग परिपक्व साधक के लिए उपयुक्त है, जिसने एक इच्छा को छोड़कर सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया है। आख़िरकार, इच्छाशक्ति क्या है? हृदय और मन की स्थिरता के सिवा कुछ नहीं। ऐसी स्थिरता से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।
प्रश्न: मुझे लगता है कि योगी का तात्पर्य केवल दृढ़ संकल्प और निरंतर प्रयास से नहीं था। उनका कहना था कि जब इच्छाशक्ति लक्ष्य पर केंद्रित हो तो किसी प्रयास या परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती। इच्छाशक्ति मात्र से ही लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।
एम: आप इसे चाहे जो भी नाम दें: दृढ़ संकल्प, दृढ़ निश्चय, या एकाग्रता, अंततः यह गंभीरता, निष्ठा और सच्चाई पर ही आकर रुकता है। जब आप पूरी तरह से गंभीर होते हैं, तो आप अपने जीवन के हर क्षण, हर पल को अपने उद्देश्य के लिए समर्पित कर देते हैं। आप अन्य चीजों पर समय और ऊर्जा बर्बाद नहीं करते। आप पूरी तरह से समर्पित होते हैं, चाहे इसे दृढ़ संकल्प कहें, प्रेम कहें, या केवल ईमानदारी। हम जटिल प्राणी हैं, भीतर और बाहर दोनों ओर संघर्ष करते रहते हैं। हम हर समय स्वयं का ही विरोध करते हैं, कल के काम को आज बिगाड़ देते हैं। इसीलिए हम अटके हुए हैं। थोड़ी सी ईमानदारी बहुत बड़ा बदलाव ला सकती है।
प्रश्न: इच्छा या भाग्य में से कौन अधिक शक्तिशाली है?
एम: इच्छा ही भाग्य का निर्माण करती है।
प्रश्न: और नियति ही इच्छाओं को आकार देती है। मेरी इच्छाएँ वंशानुक्रम और परिस्थितियों, अवसरों और संयोगों, और जिसे हम नियति कहते हैं, इन सब से निर्धारित होती हैं।
एम: जी हां, आप ऐसा कह सकते हैं।
प्रश्न: मुझे अपनी इच्छानुसार इच्छा करने की स्वतंत्रता कब मिलती है?
एम: अब आप स्वतंत्र हैं। आप क्या चाहना चाहते हैं? चाहिए।
प्रश्न: बेशक, मुझे इच्छा करने की स्वतंत्रता है, लेकिन अपनी इच्छा पर अमल करने की स्वतंत्रता नहीं है। अन्य आवेग मुझे गुमराह कर सकते हैं। मेरी इच्छा इतनी प्रबल नहीं है, भले ही मुझे वह स्वीकार्य हो। अन्य इच्छाएँ, जिन्हें मैं अस्वीकार करता हूँ, उससे कहीं अधिक प्रबल हैं।
एम: शायद आप खुद को धोखा दे रहे हैं। शायद आप अपनी असली इच्छाओं को व्यक्त कर रहे हैं और जिन्हें आप स्वीकार करते हैं, उन्हें मान-सम्मान बनाए रखने के लिए ऊपरी तौर पर छिपाकर रख रहे हैं।
प्रश्न: जैसा आप कह रहे हैं, वैसा हो सकता है, लेकिन यह एक अलग सिद्धांत है। असल बात यह है कि मुझे वह चाहने की स्वतंत्रता महसूस नहीं होती जो मुझे लगता है कि मुझे चाहनी चाहिए, और जब मुझे लगता है कि मेरी इच्छा सही है, तो मैं उसके अनुसार कार्य नहीं करता।
एम: यह सब मन की कमजोरी और मस्तिष्क के विघटन के कारण है। अपने मन को एकाग्र और मजबूत करें, और आप पाएंगे कि आपके विचार और भावनाएं, शब्द और कार्य आपकी इच्छा के अनुरूप ढल जाएंगे।
प्रश्न: एक बार फिर पूर्णता की सलाह! मन को एकीकृत और मजबूत करना आसान काम नहीं है! इसकी शुरुआत कैसे की जाए?
एम: आप वहीं से शुरुआत कर सकते हैं जहाँ आप हैं। आप यहीं और अभी हैं, आप यहाँ और अभी से बाहर नहीं निकल सकते।
प्रश्न: लेकिन मैं अभी और यहीं क्या कर सकता हूँ?
एम: आप अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हो सकते हैं - यहीं और अभी।

प्रश्न: बस इतना ही?
एम: बस इतना ही। इससे ज्यादा कुछ नहीं है।
प्रश्न: जागते और सपने देखते समय मैं हमेशा स्वयं के प्रति सचेत रहता हूँ।
इससे मुझे कोई खास मदद नहीं मिलती।
एम: आपको सोचने, महसूस करने और करने की जानकारी थी। आपको अपने अस्तित्व की जानकारी नहीं थी।
प्रश्न: आप मुझसे कौन सा नया कारक लाने की अपेक्षा करते हैं?
एम: घटनाओं में भाग लिए बिना, केवल उन्हें देखने का दृष्टिकोण।
प्रश्न: इससे मुझे क्या नुकसान होगा?
एम: बुद्धि की कमी, समझ की कमी के कारण दुर्बल मन की समस्या उत्पन्न होती है, जो कि अचेतनता का ही परिणाम है। चेतना के लिए प्रयास करने से मन में सामंजस्य स्थापित होता है और वह मजबूत बनता है।
प्रश्न: हो सकता है कि मुझे जो कुछ भी हो रहा है उसकी पूरी जानकारी हो, फिर भी मैं उस पर किसी भी तरह से प्रभाव डालने में पूरी तरह असमर्थ हूं।
एम: आप गलत हैं। जो कुछ हो रहा है वह आपके मन की उपज है। कमजोर मन अपनी ही उपज को नियंत्रित नहीं कर सकता। इसलिए, अपने मन और उसकी उपज के प्रति सचेत रहें। आप उस चीज़ को नियंत्रित नहीं कर सकते जिसे आप नहीं जानते। दूसरी ओर, ज्ञान शक्ति प्रदान करता है। व्यवहार में यह बहुत सरल है। खुद को नियंत्रित करने के लिए - खुद को जानें।
प्रश्न: शायद मैं खुद पर काबू पा लूं, लेकिन क्या मैं दुनिया में फैली अराजकता से निपट पाऊंगा?
एम: दुनिया में कोई अराजकता नहीं है, सिवाय उस अराजकता के जिसे आपका मन पैदा करता है। यह स्वयं निर्मित है, इस अर्थ में कि इसके मूल में स्वयं को अन्य वस्तुओं से भिन्न और अलग समझने का झूठा विचार निहित है। वास्तव में आप न तो कोई वस्तु हैं और न ही अलग। आप अनंत संभाव्यता हैं; अक्षय संभावना हैं। क्योंकि आप हैं, इसलिए सब कुछ हो सकता है। ब्रह्मांड आपकी असीम विकास क्षमता का एक आंशिक प्रकटीकरण मात्र है।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं पूरी तरह से सुख की इच्छा और दुख के भय से प्रेरित हूं। चाहे मेरी इच्छा कितनी भी महान हो और मेरा भय कितना भी उचित हो, सुख और दुख ही वे दो ध्रुव हैं जिनके बीच मेरा जीवन झूलता रहता है।
एम: दर्द और सुख, इच्छा और भय, दोनों के स्रोत तक जाओ। अवलोकन करो, जांच करो, समझने की कोशिश करो।
प्रश्न: इच्छा और भय दोनों ही शारीरिक या मानसिक कारकों से उत्पन्न भावनाएँ हैं। ये मौजूद हैं, आसानी से देखी जा सकती हैं। लेकिन ये क्यों होती हैं? मुझे सुख की इच्छा क्यों होती है और दुख से डर क्यों लगता है? एम: सुख और दुख मन की अवस्थाएँ हैं। जब तक आप यह सोचते रहेंगे कि आप मन हैं, या यों कहें कि शरीर-मन हैं, तब तक ऐसे प्रश्न उठना स्वाभाविक है। प्रश्न: और जब मुझे यह अहसास हो जाएगा कि मैं शरीर नहीं हूँ, तो क्या मैं इच्छा और भय से मुक्त हो जाऊँगा?
एम: जब तक शरीर और शरीर की रक्षा करने वाला मन मौजूद है, आकर्षण और विकर्षण क्रियाशील रहेंगे। वे मौजूद रहेंगे, घटनाओं के क्षेत्र में, लेकिन आपसे उनका कोई संबंध नहीं होगा। आपका ध्यान कहीं और केंद्रित होगा। आप विचलित नहीं होंगे।
प्रश्न: फिर भी वे तो रहेंगे ही। क्या कोई कभी पूरी तरह से मुक्त नहीं हो सकता?

एम: तुम अभी भी पूरी तरह से स्वतंत्र हो। जिसे तुम भाग्य (कर्म) कहते हो, वह तो बस जीने की तुम्हारी इच्छा का ही परिणाम है। तुम्हारी यह इच्छा कितनी प्रबल है, इसका अंदाजा तुम मृत्यु के भयावह दृश्य से लगा सकते हो। प्रश्न: लोग अक्सर स्वेच्छा से मरते हैं।
एम: केवल तभी जब विकल्प मृत्यु से भी बदतर हो। लेकिन मरने की ऐसी तत्परता उसी स्रोत से उत्पन्न होती है जिससे जीने की इच्छा उत्पन्न होती है, एक ऐसा स्रोत जो जीवन से भी गहरा है। जीवित प्राणी होना अंतिम अवस्था नहीं है; इससे परे कुछ और भी है, कहीं अधिक अद्भुत, जो न तो अस्तित्व है और न ही अस्तित्वहीनता, न ही सजीव है और न ही निर्जीव। यह शुद्ध चेतना की अवस्था है, जो स्थान और समय की सीमाओं से परे है। एक बार जब शरीर-मन को स्वयं मानने का भ्रम दूर हो जाता है, तो मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है, वह जीवन का एक हिस्सा बन जाती है।

31. ध्यान को कम मत आंकिए
प्रश्नकर्ता: आपको देखकर मुझे लगता है कि आप एक गरीब व्यक्ति हैं, जिनके पास बहुत सीमित साधन हैं और जो अन्य सभी लोगों की तरह गरीबी और बुढ़ापे की सभी समस्याओं का सामना कर रहे हैं।
महाराज: अगर मैं बहुत अमीर भी होता, तो क्या फर्क पड़ता? मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ। मैं और क्या हो सकता हूँ? मैं न अमीर हूँ, न गरीब, मैं तो बस मैं ही हूँ।
प्रश्न: फिर भी, आप सुख और दुख दोनों का अनुभव कर रहे हैं।
एम: मैं इन अनुभवों को चेतना में महसूस कर रहा हूँ, लेकिन मैं न तो चेतना हूँ और न ही उसकी विषयवस्तु।
प्रश्न: आप कहते हैं कि हमारी वास्तविक सत्ता में हम सब समान हैं। आपका अनुभव हमारे अनुभव से इतना अलग क्यों है?
एम: मेरा वास्तविक अनुभव अलग नहीं है। फर्क सिर्फ मेरे आकलन और दृष्टिकोण में है। मैं भी दुनिया को वैसे ही देखता हूँ जैसे आप देखते हैं, लेकिन अलग नज़रिए से। इसमें कोई रहस्य नहीं है। हर कोई दुनिया को अपने बारे में बनी धारणा के अनुसार देखता है। जैसा आप खुद को समझते हैं, वैसा ही आप दुनिया को समझते हैं। अगर आप खुद को दुनिया से अलग मानते हैं, तो दुनिया भी आपको अलग लगेगी और आप इच्छा और भय का अनुभव करेंगे। मैं दुनिया को खुद से अलग नहीं देखता, इसलिए मेरे लिए इच्छा या भय का कोई कारण नहीं है।
प्रश्न: आप दुनिया में प्रकाश की एक किरण हैं। हर कोई ऐसा नहीं होता।
एम: मुझमें और दूसरों में कोई अंतर नहीं है, सिवाय इसके कि मैं स्वयं को वैसे ही जानता हूँ जैसा मैं हूँ। मैं सब कुछ हूँ। मुझे यह बात निश्चित रूप से पता है, और आपको नहीं।
प्रश्न: तो फिर भी हम सब अलग-अलग राय रखते हैं।
एम: नहीं, ऐसा नहीं है। फर्क सिर्फ मन का है और अस्थायी है। मैं तुम्हारे जैसा था, तुम भी मेरे जैसे हो जाओगे।
प्रश्न: ईश्वर ने अत्यंत विविधतापूर्ण संसार बनाया।
एम: विविधता तो आप में ही निहित है। अपने आप को वैसे ही देखें जैसे आप हैं, और आप दुनिया को वैसे ही देखेंगे जैसी वह है - वास्तविकता का एक अविभाज्य, अवर्णनीय खंड। आपकी अपनी रचनात्मक शक्ति उस पर एक चित्र उकेरती है और आपके सभी प्रश्न उसी चित्र से संबंधित होते हैं।

प्रश्न: एक तिब्बती योगी ने लिखा है कि ईश्वर ने संसार की रचना एक उद्देश्य से की है और उसे एक योजना के अनुसार संचालित करता है। उद्देश्य उत्तम है और योजना अत्यंत बुद्धिमानीपूर्ण है।
एम: ये सब क्षणभंगुर है, जबकि मैं शाश्वत से संबंधित विषय पर चर्चा कर रहा हूँ। देवता और उनके ब्रह्मांड आते-जाते रहते हैं, अवतार अनंत क्रम में एक के बाद एक आते रहते हैं, और अंत में हम सब मूल स्रोत पर लौट आते हैं। मैं केवल सभी देवताओं और उनके सभी ब्रह्मांडों, भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के शाश्वत स्रोत की बात कर रहा हूँ।
प्रश्न: क्या आप उन सभी को जानते हैं? क्या आपको वे याद हैं?
एम: जब कुछ लड़के मनोरंजन के लिए नाटक का मंचन करते हैं, तो उसमें देखने और याद रखने लायक क्या होता है?
प्रश्न: आधी मानव जाति पुरुष और आधी महिला क्यों है?
एम: उनकी खुशी के लिए। रिश्तों में सुख के लिए अव्यक्त (निराकार) व्यक्त (व्यक्त) हो जाता है। मेरे गुरु की कृपा से मैं निराकार और व्यक्त दोनों को समान दृष्टि से देख सकता हूँ। मेरे लिए दोनों एक ही हैं। जीवन में व्यक्त, निराकार में विलीन हो जाता है।
प्रश्न: अवैयक्तिक से वैयक्तिक का उद्भव कैसे होता है?
एम: ये दोनों एक ही वास्तविकता के पहलू हैं। एक को दूसरे से पहले की बात कहना सही नहीं है। ये सभी विचार जाग्रत अवस्था से संबंधित हैं।
प्रश्न: जागृति की अवस्था किस कारण से उत्पन्न होती है?
एम: समस्त सृष्टि की जड़ में इच्छा निहित है। इच्छा और कल्पना एक दूसरे को पोषित और मजबूत करते हैं। चौथी अवस्था (तुरिया) शुद्ध साक्षी भाव, अनासक्त जागरूकता, भावहीनता और शब्दहीनता की अवस्था है। यह आकाश के समान है, जो अपने भीतर समाहित किसी भी चीज से अप्रभावित रहता है। शारीरिक और मानसिक कष्ट इस तक नहीं पहुँचते—वे बाहर, 'वहाँ' स्थित होते हैं, जबकि साक्षी सदा 'यहाँ' होता है।
प्रश्न: वास्तविकता क्या है, व्यक्तिपरक या वस्तुनिष्ठ? मेरा मानना है कि वस्तुनिष्ठ ब्रह्मांड ही वास्तविक है और मेरी व्यक्तिपरक भावनाएँ परिवर्तनशील और क्षणभंगुर हैं। आप अपने आंतरिक, व्यक्तिपरक भावों को वास्तविकता मानते हैं और ठोस, बाहरी दुनिया की वास्तविकता को नकारते हैं। एम: व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ दोनों ही परिवर्तनशील और क्षणभंगुर हैं। उनमें कुछ भी वास्तविक नहीं है। क्षणिक में ही स्थायित्व खोजें, हर अनुभव में एक स्थिर कारक खोजें।
प्रश्न: यह स्थिरांक कारक क्या है?
एम: इसे अलग-अलग नाम देने और कई तरीकों से बताने से आपको ज्यादा मदद नहीं मिलेगी, जब तक आप इसे देखने की क्षमता न रखें। एक मंद दृष्टि वाला व्यक्ति पेड़ की डाल पर बैठे तोते को नहीं देख पाएगा, चाहे आप उसे कितना भी देखने के लिए कहें। ज़्यादा से ज़्यादा वह आपकी उंगली ही देख पाएगा। पहले अपनी दृष्टि को शुद्ध करें, घूरने के बजाय देखना सीखें, और आप तोते को देख पाएंगे। साथ ही, आपको देखने के लिए उत्सुक होना चाहिए। आपको आत्मज्ञान के लिए स्पष्टता और लगन दोनों की आवश्यकता है। आपको हृदय और मन की परिपक्वता चाहिए, जो आपने जो कुछ भी थोड़ा बहुत समझा है, उसे दैनिक जीवन में लगन से लागू करने से आती है। योग में समझौता जैसी कोई बात नहीं है।
यदि आप पाप करना चाहते हैं, तो खुले दिल से और पूरी ईमानदारी से पाप करें। पाप भी सच्चे पापी को सबक सिखाते हैं, जैसे सच्चे संत को सद्गुण। इन दोनों

को आपस में मिला देना ही सबसे विनाशकारी होता है। समझौता आपको सबसे प्रभावी ढंग से रोक सकता है, क्योंकि यह गंभीरता की कमी दर्शाता है, जिसके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।
प्रश्न: मैं सादगी का समर्थन करता हूँ, लेकिन व्यवहार में मैं विलासिता का पक्षधर हूँ। सुख की खोज और कष्ट से बचने की आदत मुझमें इतनी गहरी समाई हुई है कि मेरे सारे नेक इरादे, जो सैद्धांतिक रूप से तो उत्तम प्रतीत होते हैं, मेरे दैनिक जीवन में साकार नहीं हो पाते। मुझे बेईमान कहना भी मेरे लिए कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि मुझे स्वयं को ईमानदार बनाना ही नहीं आता।
एम: आप न तो ईमानदार हैं और न ही बेईमान – मानसिक अवस्थाओं को नाम देना केवल अपनी सहमति या असहमति व्यक्त करने के लिए ही उपयोगी है। समस्या आपकी नहीं है – यह केवल आपके मन की है। सबसे पहले अपने मन से खुद को अलग करें। दृढ़ता से खुद को याद दिलाएं कि आप मन नहीं हैं और उसकी समस्याएं आपकी नहीं हैं। प्रश्न: मैं खुद से बार-बार यही कहता रहूँ कि 'मैं मन नहीं हूँ, मुझे इसकी समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है,' लेकिन मन तो रहता ही है और उसकी समस्याएँ भी वैसी ही बनी रहती हैं। अब, कृपया मुझे यह मत कहिए कि ऐसा इसलिए है क्योंकि मैं पर्याप्त गंभीर नहीं हूँ और मुझे और गंभीर होना चाहिए! मैं यह जानता हूँ और स्वीकार करता हूँ, और बस आपसे यह पूछता हूँ - यह कैसे संभव है?
एम: कम से कम आप पूछ तो रहे हैं! शुरुआत के लिए इतना ही काफी है। सोचते रहिए, विचार करते रहिए, रास्ता खोजने के लिए उत्सुक रहिए। अपने प्रति सचेत रहिए, अपने मन को देखिए, उस पर पूरा ध्यान दीजिए। तुरंत परिणाम की उम्मीद मत कीजिए; हो सकता है कि आपको कुछ भी नज़र न आए। आपको पता भी न चले, आपका मन बदल जाएगा, आपके विचारों में स्पष्टता आएगी, आपकी भावनाओं में उदारता आएगी, आपके व्यवहार में पवित्रता आएगी। आपको इन चीजों का लक्ष्य रखने की ज़रूरत नहीं है - आप यह बदलाव अपने आप देखेंगे। क्योंकि आप अभी जो हैं वह असावधानी का परिणाम है और आप जो बनेंगे वह ध्यान का फल होगा।
प्रश्न: मात्र ध्यान देने से ही इतना फर्क क्यों पड़ जाता है?
एम: अब तक आपका जीवन अंधकारमय और अशांत (तमस और रजस) रहा है। ध्यान, सतर्कता, जागरूकता, स्पष्टता, जीवंतता, ऊर्जा, ये सभी सत्यनिष्ठा और अपने वास्तविक स्वरूप (सत्व) के साथ एकात्मता के प्रतीक हैं। सत्व का स्वभाव ही तमस और रजस को संतुलित और निष्क्रिय करना तथा व्यक्तित्व को आत्मा के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप पुनर्निर्मित करना है। सत्व आत्मा का निष्ठावान सेवक है; वह सदा चौकस और आज्ञाकारी रहता है।
प्रश्न: और क्या मैं केवल ध्यान देने मात्र से ही इस तक पहुँच जाऊँगा?
एम: ध्यान को कम मत समझो। इसका अर्थ है रुचि और प्रेम। जानने, करने, खोजने या सृजन करने के लिए आपको अपना पूरा दिल लगाना होगा - जिसका अर्थ है ध्यान। सभी आशीर्वाद इसी से प्राप्त होते हैं।
प्रश्न: आप हमें 'मैं हूं' पर ध्यान केंद्रित करने की सलाह देते हैं। क्या यह भी ध्यान का एक रूप है?
एम: और क्या? अपने जीवन में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ पर अपना पूरा ध्यान दें - स्वयं पर। आप अपने व्यक्तिगत संसार के केंद्र हैं - केंद्र को जाने बिना आप और क्या जान सकते हैं?
प्रश्न: लेकिन मैं स्वयं को कैसे जान सकता हूँ? स्वयं को जानने के लिए मुझे स्वयं से दूर होना होगा। लेकिन जो मुझसे दूर है, वह मैं नहीं हो सकता।

इसलिए, ऐसा लगता है कि मैं स्वयं को नहीं जान सकता, केवल उसे जान सकता हूँ जिसे मैं स्वयं मानता हूँ।
एम: बिलकुल सही। जैसे आप अपना चेहरा नहीं देख सकते, बल्कि केवल दर्पण में उसका प्रतिबिंब देख सकते हैं, वैसे ही आप केवल शुद्ध चेतना के निर्मल दर्पण में प्रतिबिंबित अपनी छवि को ही जान सकते हैं।
प्रश्न: मुझे इस तरह का स्टेनलेस स्टील का दर्पण कैसे मिलेगा?
एम: जाहिर है, दाग हटाकर। दागों को देखो और उन्हें हटा दो। यह प्राचीन शिक्षा पूरी तरह से मान्य है।
प्रश्न: देखना क्या है और हटाना क्या है?
एम: एक परिपूर्ण दर्पण की प्रकृति ऐसी होती है कि आप उसे देख नहीं सकते। जो कुछ भी आप देख पाते हैं, वह एक धब्बा ही होता है। उससे मुंह मोड़ लें, उसे त्याग दें, उसे अवांछित समझ लें।
प्रश्न: क्या सभी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली चीजें दाग हैं?
एम: ये सब दाग हैं।
प्रश्न: संपूर्ण विश्व एक धब्बा है।
एम: हां, ऐसा ही है।
प्रश्न: कितना भयानक! तो क्या ब्रह्मांड का कोई मूल्य नहीं है?
एम: इसका बहुत महत्व है। इससे आगे बढ़कर ही आप स्वयं को जान पाते हैं।
प्रश्न: लेकिन यह पहली बार अस्तित्व में क्यों आया?
एम: जब यह खत्म होगा तब आपको पता चल जाएगा।
प्रश्न: क्या यह कभी खत्म होगा?
एम: हां, आपके लिए।
प्रश्न: यह कब शुरू हुआ?
एम: अभी।
प्रश्न: यह कब समाप्त होगा?
एम: अभी।
प्रश्न: क्या यह अभी समाप्त नहीं होगा?
एम: आप ऐसा होने ही मत दीजिए।
प्रश्न: मैं इसे होने देना चाहता हूँ।
एम: आप नहीं जानते। आपका पूरा जीवन इससे जुड़ा हुआ है। आपका अतीत और भविष्य, आपकी इच्छाएँ और भय, सब कुछ दुनिया से ही जुड़ा है। दुनिया के बिना आप कहाँ हैं, आप कौन हैं?
प्रश्न: लेकिन मैं यही तो पता लगाने आया था।
एम: और मैं आपसे बिल्कुल यही कह रहा हूँ: आगे बढ़ने का कोई रास्ता ढूंढो और सब कुछ स्पष्ट और आसान हो जाएगा।

32. जीवन ही सर्वोच्च गुरु है।

प्रश्नकर्ता: हम दोनों दूर-दूर के देशों से आए हैं; एक ब्रिटिश है, दूसरा अमेरिकी। जिस दुनिया में हम पैदा हुए हैं, वह बिखर रही है और युवा होने के नाते हम चिंतित हैं। बूढ़े लोग अपनी ही मृत्यु को स्वीकार करना चाहते हैं, लेकिन युवाओं को ऐसी कोई आशा नहीं है। हममें से कुछ लोग हत्या करने से इनकार कर सकते हैं, लेकिन कोई भी मारे जाने से इनकार नहीं कर सकता। क्या हम अपने जीवनकाल में दुनिया को सुधारने की आशा कर सकते हैं?
महाराज: आपको ऐसा क्यों लगता है कि दुनिया का अंत हो जाएगा?

प्रश्न: विनाश के साधन अविश्वसनीय रूप से शक्तिशाली हो गए हैं। साथ ही, हमारी उत्पादकता ही प्रकृति और हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों के लिए विनाशकारी बन गई है।
एम: आप वर्तमान समय की बात कर रहे हैं। यह स्थिति हर जगह और हमेशा से रही है। लेकिन यह चिंताजनक स्थिति अस्थायी और स्थानीय हो सकती है। एक बार समाप्त हो जाने पर, इसे भुला दिया जाएगा।
प्रश्न: आसन्न आपदा का पैमाना अविश्वसनीय रूप से बड़ा है। हम एक विस्फोट के बीच जी रहे हैं।
एम: हर इंसान अकेले ही कष्ट सहता है और अकेले ही मरता है। संख्या मायने नहीं रखती। दस लाख लोगों की मृत्यु में उतनी ही मृत्यु होती है जितनी एक व्यक्ति की मृत्यु में।
प्रश्न: प्रकृति लाखों जीवों को मारती है, लेकिन इससे मुझे डर नहीं लगता। इसमें त्रासदी या रहस्य हो सकता है, लेकिन क्रूरता नहीं। मुझे सबसे ज्यादा डर मानव निर्मित पीड़ा, विनाश और उजाड़ से लगता है। प्रकृति अपने कार्यों और विनाश में भव्य है। लेकिन मनुष्य के कृत्यों में नीचता और पागलपन झलकता है।
एम: ठीक है। तो, आपकी समस्या दुख और मृत्यु नहीं है, बल्कि उनकी जड़ में छिपी नीचता और पागलपन है। क्या नीचता भी पागलपन का ही एक रूप नहीं है? और क्या पागलपन मन का दुरुपयोग नहीं है? मानवता की समस्या मन के इसी दुरुपयोग में निहित है। प्रकृति और आध्यात्मिकता के सभी खजाने उस मनुष्य के लिए खुले हैं जो अपने मन का सही उपयोग करेगा।
प्रश्न: मन का सही उपयोग क्या है?
एम: भय और लोभ मन के दुरुपयोग का कारण बनते हैं। मन का सही उपयोग प्रेम, जीवन, सत्य और सौंदर्य की सेवा में होता है।
प्रश्न: कहना आसान है, करना मुश्किल। सत्य के प्रति प्रेम, मानवता के प्रति प्रेम, सद्भावना— ये सब कितनी विलासिता है! दुनिया को सुधारने के लिए हमें इनकी भरपूर आवश्यकता है, लेकिन इन्हें कौन उपलब्ध कराएगा?
एम: आप सत्य और प्रेम, बुद्धि और सद्भावना की तलाश में अनंत काल तक इधर-उधर भटक सकते हैं, ईश्वर और मनुष्य से प्रार्थना कर सकते हैं - सब व्यर्थ। आपको स्वयं से, अपने आप से ही शुरुआत करनी होगी - यही अटल नियम है। चेहरा बदले बिना छवि नहीं बदली जा सकती। पहले यह समझ लें कि आपकी दुनिया केवल आपका प्रतिबिंब है और प्रतिबिंब में दोष ढूंढना बंद कर दें। स्वयं पर ध्यान दें, स्वयं को मानसिक और भावनात्मक रूप से ठीक करें। शारीरिक स्थिति स्वतः सुधर जाएगी। आप सुधारों की इतनी बातें करते हैं: आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक। सुधारों को छोड़ दें और सुधारक पर ध्यान दें। एक मूर्ख, लालची और निर्दयी व्यक्ति किस प्रकार की दुनिया बना सकता है?
प्रश्न: यदि हमें हृदय परिवर्तन की प्रतीक्षा करनी है, तो अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। आपकी सलाह पूर्णता की है, जो निराशा की भी सलाह है। जब सब परिपूर्ण हो जाएँगे, तब संसार परिपूर्ण हो जाएगा। यह कितना व्यर्थ कथन है!
एम: मैंने ऐसा नहीं कहा। मैंने तो बस इतना कहा था: आप खुद को बदले बिना दुनिया को नहीं बदल सकते। मैंने यह नहीं कहा कि सबको बदले बिना। दूसरों को बदलना न तो ज़रूरी है और न ही मुमकिन। लेकिन अगर आप खुद को बदल सकते हैं, तो आपको पता चलेगा कि किसी और बदलाव की ज़रूरत नहीं है। तस्वीर बदलने के लिए आपको बस फिल्म बदलनी होती है, सिनेमा स्क्रीन पर हमला नहीं करना होता!

प्रश्न: आप अपने बारे में इतने आश्वस्त कैसे हो सकते हैं? आपको कैसे पता चलता है कि आप जो कहते हैं वह सच है?
एम: मुझे अपने बारे में नहीं, बल्कि तुम्हारे बारे में पूरा भरोसा है। तुम्हें बस इतना करना है कि जो चीज़ें तुम्हारे भीतर ही मिल सकती हैं, उन्हें बाहर खोजना बंद करो। कोई भी कदम उठाने से पहले अपनी दृष्टि स्पष्ट कर लो। तुम घोर गलतफहमी का शिकार हो। अपने मन को शांत करो, अपने हृदय को शुद्ध करो, अपने जीवन को पवित्र बनाओ - यही तुम्हारे जीवन में बदलाव लाने का सबसे तेज़ तरीका है।
प्रश्न: इतने सारे संत और रहस्यवादी जिए और मरे। उन्होंने मेरी दुनिया नहीं बदली।
एम: वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? आपकी दुनिया उनकी दुनिया नहीं है, और न ही उनकी दुनिया आपकी है।
प्रश्न: निश्चित रूप से एक ऐसी तथ्यात्मक दुनिया है जो सभी के लिए समान है। एम: वस्तुओं, ऊर्जा और पदार्थ की दुनिया? अगर ऐसी कोई आम वस्तुओं और शक्तियों की दुनिया होती भी, तो वह हमारी दुनिया नहीं है। हमारी दुनिया भावनाओं और विचारों की, आकर्षण और विकर्षण की, मूल्यों के पैमाने की, उद्देश्यों और प्रोत्साहनों की, पूरी तरह से मानसिक दुनिया है। जैविक रूप से हमें बहुत कम चीजों की आवश्यकता होती है, हमारी समस्याएं अलग तरह की हैं। इच्छाओं, भय और गलत विचारों से उत्पन्न समस्याओं का समाधान केवल मन के स्तर पर ही संभव है। आपको अपने मन पर विजय प्राप्त करनी होगी और इसके लिए आपको मन से परे जाना होगा।
प्रश्न: मन से परे जाने का क्या अर्थ है?
एम: आप शरीर से परे चले गए हैं, है ना? आप अपने पाचन, रक्त संचार और मलत्याग पर बारीकी से ध्यान नहीं देते। ये सब स्वतःस्फूर्त हो गए हैं। ठीक उसी तरह मन को भी स्वतःस्फूर्त रूप से काम करना चाहिए, बिना ध्यान मांगे। ऐसा तभी संभव है जब मन त्रुटिहीन रूप से कार्य करे। हम अपना अधिकांश समय मन और शरीर के प्रति सचेत रहते हैं, क्योंकि ये लगातार सहायता की गुहार लगाते रहते हैं। दर्द और पीड़ा केवल शरीर और मन की ध्यान आकर्षित करने की पुकार है। शरीर से परे जाने के लिए स्वस्थ होना आवश्यक है: मन से परे जाने के लिए मन का पूर्णतः व्यवस्थित होना आवश्यक है। आप अव्यवस्था को पीछे छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। अव्यवस्था आपको रोक देगी। 'अपना कूड़ा समेटो' एक सार्वभौमिक नियम प्रतीत होता है। और यह एक न्यायसंगत नियम भी है। प्रश्न: क्या मुझे यह पूछने की अनुमति है कि आप मन से परे कैसे गए?
एम: मेरे गुरु की कृपा से।
प्रश्न: उनकी कृपा का स्वरूप कैसा था?
एम: उसने मुझे सच बताया।
प्रश्न: उसने आपको क्या बताया?
एम: उन्होंने मुझसे कहा कि मैं ही परम वास्तविकता हूँ।
प्रश्न: आपने इसके बारे में क्या किया?
एम: मैंने उस पर भरोसा किया था और मुझे यह बात याद है।
प्रश्न: क्या बस इतना ही?
एम: हां, मुझे वह याद था; मुझे याद था कि उसने क्या कहा था।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि यह काफी था?
एम: और क्या करने की ज़रूरत है? गुरु और उनके वचनों को याद रखना काफ़ी मुश्किल था। मेरी सलाह तो इससे भी आसान है - बस खुद को याद करो। 'मैं हूं'

कहना ही तुम्हारे मन को शांत करने और तुम्हें उससे आगे ले जाने के लिए काफ़ी है। बस थोड़ा भरोसा रखो। मैं तुम्हें गुमराह नहीं कर रहा। मैं क्यों करूं? क्या मुझे तुमसे कुछ चाहिए? मैं तुम्हारा भला चाहता हूं - यही मेरा स्वभाव है। मैं तुम्हें क्यों गुमराह करूं?
सामान्य ज्ञान भी यही कहता है कि किसी इच्छा को पूरा करने के लिए उस पर ध्यान केंद्रित रखना आवश्यक है। यदि आप अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हैं, तो आपको हर समय स्वयं पर ध्यान देना होगा, जब तक कि आपके अस्तित्व का रहस्य प्रकट न हो जाए।
प्रश्न: आत्मस्मरण से आत्मसाक्षात्कार क्यों प्राप्त होता है?
एम: क्योंकि ये एक ही अवस्था के दो पहलू हैं। आत्म-स्मरण मन में होता है, आत्म-साक्षात्कार मन से परे होता है। दर्पण में दिखने वाली छवि दर्पण के परे स्थित चेहरे की छवि होती है।
प्रश्न: ठीक है। लेकिन इसका उद्देश्य क्या है?
एम: दूसरों की मदद करने के लिए, व्यक्ति को स्वयं मदद की आवश्यकता से परे होना चाहिए।
प्रश्न: मैं बस खुश रहना चाहता हूँ।
एम: दूसरों को खुश करके खुद भी खुश रहो।
प्रश्न: दूसरों को अपना ख्याल खुद रखने दें।
एम: महोदय, आप अलग नहीं हैं। जिस सुख को आप साझा नहीं कर सकते, वह नकली है।
केवल साझा करने योग्य सुख ही वास्तव में वांछनीय है।
प्रश्न: ठीक है। लेकिन क्या मुझे गुरु की आवश्यकता है? आपने जो बताया वह सरल और प्रेरक है। मैं इसे याद रखूंगा। इससे आप मेरे गुरु नहीं बन जाते। एम: महत्वपूर्ण किसी व्यक्ति की पूजा नहीं है, बल्कि कार्य के प्रति आपकी दृढ़ता और गहन समर्पण है। जीवन ही परम गुरु है; इसके पाठों पर ध्यान दें और इसके आदेशों का पालन करें। जब आप उनके स्रोत को व्यक्तिगत रूप देते हैं, तो आपका गुरु बाहरी हो जाता है; जब आप उन्हें सीधे जीवन से ग्रहण करते हैं, तो गुरु भीतर होता है। अपने गुरु के वचन को, चाहे वह बाहरी हो या आंतरिक, याद रखें, उस पर विचार करें, मनन करें, उसके साथ जिएं, उससे प्रेम करें, उसमें समाहित हों, उसके साथ विकसित हों, उसे अपना बना लें। अपना सब कुछ लगा दें, तो सब कुछ पा लेंगे। मैं यही कर रहा था। अपना सारा समय अपने गुरु को और उनके द्वारा कही गई बातों को समर्पित कर रहा था।
प्रश्न: मैं पेशे से लेखक हूँ। क्या आप मुझे विशेष रूप से कुछ सलाह दे सकते हैं?
एम: लेखन एक प्रतिभा और कौशल दोनों है। प्रतिभा में वृद्धि करो और कौशल विकसित करो। जो चाहने लायक हो, उसे चाहो और पूरी लगन से चाहो। जैसे आप भीड़ में लोगों के बीच से रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ते हैं, वैसे ही आप विभिन्न घटनाओं के बीच अपना रास्ता खोज लेते हैं, बिना अपनी दिशा भटके। अगर आप गंभीर हैं तो यह आसान है।
प्रश्न: आप कई बार गंभीरता की आवश्यकता का उल्लेख करते हैं। लेकिन हम एक ही इच्छा के धनी नहीं हैं। हम इच्छाओं, आवश्यकताओं, सहज प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का समूह हैं। ये एक-दूसरे पर हावी हो जाती हैं, कभी एक, कभी दूसरी, लेकिन लंबे समय तक नहीं।
एम: कोई आवश्यकता नहीं है, केवल इच्छाएँ हैं।
प्रश्न: खाना, पीना, शरीर को आश्रय देना; जीना?

एम: जीने की इच्छा ही एकमात्र मूलभूत इच्छा है। बाकी सब कुछ इसी पर निर्भर करता है।
प्रश्न: हम इसलिए जीते हैं क्योंकि जीना अनिवार्य है।
एम: हम इसलिए जीते हैं क्योंकि हमें इंद्रियों से तृप्त होने की तीव्र इच्छा होती है।
प्रश्न: इतनी सार्वभौमिक चीज गलत कैसे हो सकती है?
एम: बिलकुल गलत नहीं। अपने समय और स्थान पर कुछ भी गलत नहीं होता। लेकिन जब आप सत्य, वास्तविकता से जुड़े होते हैं, तो आपको हर चीज़ पर, यहाँ तक कि अपने जीवन पर भी सवाल उठाना पड़ता है। इंद्रियों और बौद्धिक अनुभवों की अनिवार्यता पर ज़ोर देकर आप अपनी खोज को सीमित कर केवल आराम की तलाश तक ही सीमित कर देते हैं।
प्रश्न: मैं सुख चाहता हूँ, आराम नहीं।
एम: मन और शरीर के सुख से परे आप किस प्रकार की खुशी को जानते हैं? प्रश्न: क्या कोई और विकल्प है?
एम: खुद पता लगाओ। हर इच्छा पर सवाल उठाओ, किसी भी चाहत को जायज़ मत मानो। शारीरिक और मानसिक रूप से किसी भी चीज़ से मुक्त रहो, स्वार्थ से पूरी तरह मुक्त रहो, खोज के लिए खुले रहो।
प्रश्न: भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में यह मान्यता है कि किसी संत या ऋषि के निकट रहने मात्र से ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है और इसके लिए किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती। आप आश्रम क्यों नहीं स्थापित करते ताकि लोग आपके निकट रह सकें?
एम: जिस क्षण मैं कोई संस्था बनाता हूँ, मैं उसका कैदी बन जाता हूँ। वास्तव में, मैं सबके लिए उपलब्ध हूँ। एक छत और भोजन से लोग अधिक स्वागतयोग्य नहीं हो जाते। 'निकट रहना' का अर्थ एक ही हवा में साँस लेना नहीं है। इसका अर्थ है विश्वास करना और आज्ञापालन करना, गुरु के अच्छे इरादों को व्यर्थ न जाने देना। अपने गुरु को सदा अपने हृदय में रखो और उनके निर्देशों को याद रखो - यही सत्य के साथ वास्तविक लीनता है। शारीरिक निकटता का कोई महत्व नहीं है। अपने पूरे जीवन को अपने गुरु के प्रति अपनी आस्था और प्रेम की अभिव्यक्ति बनाओ - यही गुरु के साथ वास्तविक निवास है।

33. सब कुछ अपने आप घटित होता है

प्रश्नकर्ता: क्या ज्ञानी की मृत्यु होती है?
महाराज: वे जीवन और मृत्यु से परे हैं। जिसे हम अपरिहार्य मानते हैं—जन्म लेना और मरना—उन्हें तो अचल में गति, अपरिवर्तनीय में परिवर्तन और अनंत में अंत की अभिव्यक्ति मात्र प्रतीत होती है। ज्ञानी के लिए यह स्पष्ट है कि न कुछ जन्म लेता है, न कुछ मरता है, न कुछ स्थायी है, न कुछ बदलता है, सब कुछ यथार्थ है—काल से परे।
प्रश्न: आप कहते हैं कि ज्ञानी परे है। किससे परे? ज्ञान से परे?
ज्ञान का उदय और अस्त होता रहता है। चेतना का जन्म और अंत होता रहता है। यह दैनिक अनुभव और अवलोकन का विषय है। हम सब जानते हैं कि कभी हम सचेत होते हैं और कभी नहीं। जब हम सचेत नहीं होते, तो हमें अंधकार या खालीपन का आभास होता है। परन्तु ज्ञानी स्वयं को न तो सचेत और न ही अचेत, बल्कि विशुद्ध रूप से सचेत, मन की तीनों अवस्थाओं और उनके भावों का साक्षी मानता है। प्रश्न: यह साक्षी अनुभव कब शुरू होता है?

एम: ज्ञानी के लिए किसी चीज का न कोई आरंभ होता है और न कोई अंत। जैसे नमक पानी में घुल जाता है, वैसे ही सब कुछ शुद्ध अस्तित्व में विलीन हो जाता है। ज्ञान शाश्वत रूप से असत्य का खंडन करता है। असत्य को देखना ही ज्ञान है। इसके परे अवर्णनीय सत्ता विद्यमान है।
प्रश्न: मेरे भीतर यह दृढ़ विश्वास है: 'मैं शरीर हूँ।' मान लीजिए, मैं नासमझी से बोल रहा हूँ। लेकिन स्वयं को शरीर, शरीर-मन, मन-शरीर, या यहाँ तक कि शुद्ध मन के रूप में अनुभव करने की यह अवस्था कब से शुरू हुई?
एम: आप चेतना की शुरुआत की बात नहीं कर सकते। शुरुआत और समय की अवधारणाएँ स्वयं चेतना के भीतर ही निहित हैं। किसी भी चीज़ की शुरुआत के बारे में सार्थक रूप से बात करने के लिए, आपको उससे बाहर निकलना होगा। और जैसे ही आप बाहर निकलते हैं, आपको एहसास होता है कि ऐसी कोई चीज़ नहीं है और न कभी थी। केवल वास्तविकता है, जिसमें किसी भी 'वस्तु' का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। जैसे लहरें सागर से अविभाज्य हैं, वैसे ही समस्त अस्तित्व, अस्तित्व में ही निहित है।
प्रश्न: असल बात यह है कि मैं अभी इसी वक्त आपसे पूछ रहा हूँ: 'मैं शरीर हूँ' की भावना कब उत्पन्न हुई? मेरे जन्म के समय? या आज सुबह?
एम: अभी।
प्रश्न: लेकिन मुझे याद है कि मैंने इसे कल भी खाया था!
एम: बीते कल की यादें अब बस बची हैं।
प्रश्न: लेकिन निश्चित रूप से मैं समय में विद्यमान हूं। मेरा अतीत भी है और भविष्य भी।
एम: आप इसी तरह कल्पना करते हैं - अभी।
प्रश्न: इसकी शुरुआत तो अवश्य हुई होगी।
एम: अभी।
प्रश्न: और अंत के बारे में क्या?
एम: जिसका कोई आरंभ नहीं होता, उसका अंत भी नहीं हो सकता।
प्रश्न: लेकिन मैं अपने प्रश्न के प्रति सचेत हूं।
एम: एक झूठे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसे केवल झूठा ही माना जा सकता है।
प्रश्न: मेरे लिए यह वास्तविक है।
एम: आपको यह कब से वास्तविक लगने लगा? अभी।
प्रश्न: जी हां, अब यह मेरे लिए बिल्कुल वास्तविक है।
एम: आपके प्रश्न में वास्तविकता क्या है? यह मन की एक अवस्था है। मन से अधिक वास्तविक कोई अवस्था नहीं हो सकती। क्या मन वास्तविक है? यह तो केवल अवस्थाओं का एक संग्रह है, जिनमें से प्रत्येक क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर अवस्थाओं के इस क्रम को वास्तविक कैसे माना जा सकता है?
प्रश्न: जैसे धागे में मोती पिरोए होते हैं, वैसे ही घटनाएं एक के बाद एक घटती रहती हैं - अनंतकाल तक।
एम: ये सभी मूल विचार पर आधारित हैं: 'मैं शरीर हूँ'। लेकिन यह भी एक मानसिक अवस्था है और स्थायी नहीं है। यह अन्य सभी अवस्थाओं की तरह आती-जाती रहती है। शरीर-मन होने का भ्रम केवल इसलिए बना रहता है क्योंकि इसकी जाँच नहीं की जाती। जाँच न करना ही वह धागा है जिस पर मन की सभी अवस्थाएँ टिकी हैं। यह एक बंद कमरे में अंधेरे की तरह है। यह वहाँ है - दिखने में। लेकिन जब कमरा खुलता है, तो यह कहाँ चला जाता है? यह कहीं नहीं जाता, क्योंकि यह वहाँ था ही नहीं। मन की सभी अवस्थाएँ, अस्तित्व के सभी नाम और रूप, पूछताछ न

करने, जाँच न करने, कल्पना और अंधविश्वास में निहित हैं। 'मैं हूँ' कहना सही है, लेकिन 'मैं यह हूँ', 'मैं वह हूँ' कहना पूछताछ न करने, जाँच न करने, मानसिक कमजोरी या आलस्य का संकेत है।
प्रश्न: यदि सब कुछ प्रकाशमय है, तो अंधकार की उत्पत्ति कैसे हुई? प्रकाश के बीच अंधकार कैसे हो सकता है?
एम: प्रकाश के बीच कोई अंधकार नहीं होता। स्वयं को भूल जाना ही अंधकार है। जब हम अन्य चीजों में, यानी अनकही बातों में लीन हो जाते हैं, तो हम स्वयं को भूल जाते हैं। इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन, अत्यधिक आसक्ति के कारण स्वयं को क्यों भूलना? ज्ञान इसी में निहित है कि स्वयं को कभी न भूलें, क्योंकि वह अनुभवकर्ता और उसके अनुभव दोनों का सदा विद्यमान स्रोत है।
प्रश्न: मेरी वर्तमान स्थिति में 'मैं शरीर हूँ' का विचार स्वतः ही उत्पन्न होता है, जबकि 'मैं शुद्ध अस्तित्व हूँ' का विचार मन पर थोपा जाना चाहिए, एक सत्य के रूप में जिसे अनुभव नहीं किया जा सकता।
एम: जी हाँ, साधना (अभ्यास) में स्वयं को बार-बार अपने शुद्ध अस्तित्व का स्मरण कराना शामिल है, कि मैं कुछ भी विशिष्ट नहीं हूँ, न ही विशिष्टों का योग हूँ, यहाँ तक कि ब्रह्मांड का निर्माण करने वाले सभी विशिष्टों का समग्र रूप भी नहीं हूँ। सब कुछ मन में विद्यमान है, यहाँ तक कि शरीर भी असंख्य इंद्रिय बोधों का मन में समाहित रूप है, और प्रत्येक बोध एक मानसिक अवस्था है। यदि आप कहते हैं: 'मैं शरीर हूँ', तो इसे प्रदर्शित करें। प्रश्न: यह रहा।
एम: केवल तभी जब आप इसके बारे में सोचते हैं। मन और शरीर दोनों ही क्षणिक अवस्थाएँ हैं। इन क्षणभंगुर अवस्थाओं का योग ही अस्तित्व का भ्रम पैदा करता है। क्षणिक में स्थायी, असत्य में वास्तविक की खोज करें। यही साधना है।
प्रश्न: असल बात यह है कि मैं खुद को शरीर के रूप में सोच रहा हूँ।
एम: अपने बारे में ज़रूर सोचें। बस शरीर के विचार को बीच में न लाएँ। यहाँ तो बस संवेदनाओं, धारणाओं, यादों और विचारों का प्रवाह है। शरीर एक अमूर्त अवधारणा है, जो विविधता में एकता खोजने की हमारी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है - और यह प्रवृत्ति भी गलत नहीं है।
प्रश्न: मुझे बताया जा रहा है कि 'मैं शरीर हूं' सोचना मन की एक खामी है। एम: इस तरह बात क्यों करते हो? इस तरह की अभिव्यक्तियाँ समस्याएँ पैदा करती हैं। आत्मा ही सब कुछ का स्रोत है, और सब कुछ का अंतिम गंतव्य है। कुछ भी बाह्य नहीं है।

प्रश्न: जब शरीर को लेकर धारणा जुनून बन जाती है, तो क्या यह पूरी तरह से गलत नहीं है?
एम: शरीर की अवधारणा में कोई बुराई नहीं है, यहाँ तक कि 'मैं शरीर हूँ' की अवधारणा में भी नहीं। लेकिन स्वयं को केवल एक शरीर तक सीमित रखना एक गलती है। वास्तव में, समस्त अस्तित्व, प्रत्येक रूप, मेरी चेतना के भीतर मेरा ही है। मैं यह नहीं बता सकता कि मैं क्या हूँ, क्योंकि शब्द केवल उसी का वर्णन कर सकते हैं जो मैं नहीं हूँ। मैं हूँ, और क्योंकि मैं हूँ, इसलिए सब कुछ है। लेकिन मैं चेतना से परे हूँ, और इसलिए, चेतना में रहते हुए मैं यह नहीं कह सकता कि मैं क्या हूँ। फिर भी, मैं हूँ। 'मैं कौन हूँ' प्रश्न का कोई

उत्तर नहीं है। कोई भी अनुभव इसका उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि आत्मा अनुभव से परे है।
प्रश्न: फिर भी, 'मैं कौन हूँ' यह प्रश्न किसी न किसी रूप में उपयोगी तो होना ही चाहिए।
एम: इसका चेतना में कोई उत्तर नहीं है और इसलिए, यह चेतना से परे जाने में मदद करता है।
प्रश्न: मैं यहाँ हूँ—वर्तमान क्षण में। इसमें क्या वास्तविक है और क्या नहीं? कृपया यह न कहें कि मेरा प्रश्न गलत है। अपने प्रश्नों पर प्रश्न उठाने से मुझे कोई लाभ नहीं होगा।
एम: आपका प्रश्न गलत नहीं है। यह अनावश्यक है। आपने कहा: 'मैं यहाँ और अभी हूँ'। यहीं रुक जाइए, यही वास्तविकता है। तथ्य को प्रश्न में मत बदलिए। यहीं आपकी गलती है। आप न तो ज्ञाता हैं और न ही अज्ञेय, न मन हैं और न ही पदार्थ; स्वयं को मन और पदार्थ के रूप में वर्णित करने का प्रयास न करें। प्रश्न: अभी-अभी एक लड़का आपके पास एक समस्या लेकर आया। आपने उससे कुछ कहा और वह चला गया। क्या आपने उसकी मदद की?
एम: बिल्कुल।
प्रश्न: वाह! क्या आप इतने निश्चित हो सकते हैं?
एम: मदद करना मेरा स्वभाव है।
प्रश्न: आपको इसके बारे में कैसे पता चला?
एम: जानने की कोई ज़रूरत नहीं है। यह अपने आप काम करता है।
प्रश्न: आपने फिर भी एक बयान दिया है। यह किस आधार पर है?
एम: लोगों के कहे अनुसार। लेकिन सबूत तो आप ही मांग रहे हैं। मुझे उनकी ज़रूरत नहीं है। सही करना मेरे स्वभाव में ही निहित है, जो सत्यम, शिवम, सुंदरम (सच्चाई, अच्छाई, सुंदरता) है।
प्रश्न: जब कोई व्यक्ति आपसे सलाह लेने आता है और आप उसे सलाह देते हैं, तो वह सलाह कहाँ से आती है और किस शक्ति से वह सहायता करती है?
एम: उसका स्वयं का अस्तित्व उसके मन को प्रभावित करता है और प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है।
प्रश्न: और आपकी भूमिका क्या है?

एम: मुझमें मनुष्य और उसका स्वयं का स्वरूप एक साथ मिलते हैं।
प्रश्न: आपकी अनुपस्थिति में स्वयं उस व्यक्ति की सहायता क्यों नहीं करता?
एम: लेकिन मैं ही आत्मा हूँ! आप मुझे अलग समझते हैं, इसीलिए आपका यह प्रश्न है। 'मेरी आत्मा' और 'उसकी आत्मा' जैसी कोई चीज़ नहीं है। आत्मा है, एकमात्र आत्मा जो सभी की आत्मा है। नामों, रूपों, मनों और शरीरों की विविधता से भ्रमित होकर आप अनेक आत्माओं की कल्पना कर रहे हैं। हम दोनों ही आत्मा हैं, लेकिन आप आश्वस्त नहीं लगते। व्यक्तिगत आत्मा और सार्वभौमिक आत्मा की यह चर्चा सीखने की अवस्था है; इससे आगे बढ़ें, द्वैत में न उलझें।
प्रश्न: चलिए, जरूरतमंद व्यक्ति की बात पर वापस आते हैं। वह आपके पास आता है।
एम: अगर वह आता है, तो उसे मदद ज़रूर मिलेगी। क्योंकि उसकी किस्मत में मदद लिखी थी, इसलिए वह आया है। इसमें कोई कल्पना की बात नहीं है। मैं कुछ की मदद कर सकता हूँ और दूसरों को मना नहीं कर सकता। जो भी आता है, उसकी मदद की

जाती है, क्योंकि यही नियम है। बस मदद का तरीका ज़रूरत के हिसाब से बदलता रहता है।
प्रश्न: उसे सलाह लेने के लिए यहाँ क्यों आना पड़ता है? क्या वह अपने भीतर से सलाह नहीं ले सकता?
एम: वह सुनेगा नहीं। उसका मन बाहर की ओर लगा हुआ है। लेकिन वास्तव में, सभी अनुभव मन में ही होते हैं, और यहाँ तक कि उसका मेरे पास आना और मदद लेना भी उसके भीतर ही है। अपने भीतर उत्तर खोजने के बजाय, वह बाहर से उत्तर की कल्पना करता है। मेरे लिए न तो 'मैं' है, न मनुष्य, न ही देना। यह सब बस मन की एक क्षणिक हलचल है। मैं अनंत शांति और मौन हूँ जिसमें कुछ भी प्रकट नहीं होता, क्योंकि जो कुछ भी प्रकट होता है - वह लुप्त हो जाता है। कोई मदद के लिए नहीं आता, कोई मदद नहीं देता, कोई मदद नहीं लेता। यह सब बस चेतना का एक प्रदर्शन है।
प्रश्न: फिर भी सहायता करने की शक्ति मौजूद है और कोई न कोई ऐसा है जो उस शक्ति को प्रदर्शित करता है, चाहे उसे ईश्वर कहें, आत्मा कहें या सार्वभौमिक मन कहें। नाम मायने नहीं रखता, तथ्य मायने रखता है।
एम: यही शरीर-मन का दृष्टिकोण है। शुद्ध मन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है—चेतना में उठने वाले बुलबुले। ये बुलबुले प्रकट होते हैं, लुप्त होते हैं और फिर प्रकट होते हैं—वास्तविक अस्तित्व के बिना। इनका कोई विशिष्ट कारण नहीं बताया जा सकता, क्योंकि प्रत्येक बुलबुला सभी से उत्पन्न होता है और सभी को प्रभावित करता है। प्रत्येक बुलबुला एक शरीर है और ये सभी शरीर मेरे हैं।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि आपके पास हर काम सही ढंग से करने की शक्ति है?
एम: मुझसे अलग कोई शक्ति नहीं है। यह मेरे स्वभाव में ही निहित है। इसे रचनात्मकता कहिए। सोने के एक टुकड़े से कई गहने बनाए जा सकते हैं - हर एक सोना ही रहेगा। उसी प्रकार, मैं चाहे जिस भी रूप में प्रकट होऊं और जो भी कार्य करूं - मैं वही रहता हूं जो मैं हूं: अचल, अविचल, स्वतंत्र। जिसे आप ब्रह्मांड, प्रकृति कहते हैं, वह मेरी सहज रचनात्मकता है। जो होता है - सो होता है। लेकिन मेरा स्वभाव ऐसा है कि सब कुछ आनंद में परिणत होता है। प्रश्न: मेरे पास एक ऐसे लड़के का मामला है जो अपनी मूर्ख माँ द्वारा मेथिल अल्कोहल पिलाए जाने के कारण अंधा हो गया है। मैं आपसे उसकी मदद करने का अनुरोध करता हूँ। आप करुणा से भरे हुए हैं और स्पष्ट रूप से मदद करने के लिए उत्सुक हैं। आप किस शक्ति से उसकी मदद कर सकते हैं?
एम: उनका मामला चेतना में दर्ज है। यह वहाँ है - अमिट रूप से। चेतना अपना काम करेगी।
प्रश्न: क्या इससे कोई फर्क पड़ता है कि मैं आपसे मदद मांगूं?
एम: आपका सवाल पूछना उस लड़के के अंधेपन का ही एक हिस्सा है। क्योंकि वह अंधा है, इसलिए आप सवाल पूछते हैं। आपने कुछ भी योगदान नहीं दिया है। प्रश्न: लेकिन आपकी मदद एक नया कारक होगी?
एम: नहीं, लड़के के अंधेपन में सब कुछ समाहित है। सब कुछ उसी में है - माँ, लड़का, आप और मैं और बाकी सब। यह एक ही घटना है।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि लड़के के मामले पर हमारी चर्चा भी पूर्वनियोजित थी?
एम: और कैसे? हर चीज़ में उसका भविष्य समाहित होता है। लड़का चेतना में प्रकट होता है। मैं उससे परे हूँ। मैं चेतना को आदेश नहीं देता। मैं जानता

हूँ कि चीज़ों को सही करना चेतना का स्वभाव है। चेतना को अपनी रचनाओं का ध्यान रखने दो! लड़के का दुख, तुम्हारी दया, मेरा सुनना और चेतना का कार्य करना - ये सब एक ही तथ्य है - इसे अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर प्रश्न मत पूछो।
प्रश्न: आपका दिमाग कितनी विचित्रता से काम करता है?
एम: तुम अजीब हो, मैं नहीं। मैं सामान्य हूँ। मैं समझदार हूँ। मैं चीजों को वैसे ही देखता हूँ जैसी वे हैं, इसलिए मुझे उनसे डर नहीं लगता। लेकिन तुम वास्तविकता से डरते हो।
प्रश्न: मुझे ऐसा क्यों करना चाहिए?
एम: खुद के बारे में अज्ञानता ही आपको डराती है, और साथ ही आपको इस बात का एहसास भी नहीं होता कि आप डरे हुए हैं। डर को दबाने की कोशिश मत करो। पहले अज्ञानता की दीवार को तोड़ दो।
लोग मृत्यु से डरते हैं, क्योंकि वे मृत्यु को नहीं जानते। ज्ञानी अपनी मृत्यु से पहले ही मर चुका होता है, उसने देखा होता है कि डरने की कोई बात ही नहीं है। जिस क्षण आप अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, आप किसी चीज से नहीं डरते। मृत्यु स्वतंत्रता और शक्ति प्रदान करती है। संसार में स्वतंत्र होने के लिए, संसार के प्रति आपका त्याग करना आवश्यक है। तब ब्रह्मांड आपका अपना हो जाता है, वह आपका शरीर, आपकी अभिव्यक्ति और आपका साधन बन जाता है। पूर्णतः स्वतंत्र होने का सुख अवर्णनीय है। दूसरी ओर, जो स्वतंत्रता से डरता है, वह मर नहीं सकता।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि जो मर नहीं सकता, वह जी भी नहीं सकता?
एम: आप इसे जैसे चाहें वैसे समझें; आसक्ति बंधन है, वैराग्य स्वतंत्रता है। लालसा करना गुलामी है।
प्रश्न: क्या इसका यह अर्थ है कि यदि आप बच जाते हैं, तो दुनिया भी बच जाती है?
एम: कुल मिलाकर दुनिया को बचाने की जरूरत नहीं है। मनुष्य गलतियाँ करता है और दुख पैदा करता है; जब यह ज्ञानी की चेतना के दायरे में आता है, तो यह सुधर जाता है। यही उसका स्वभाव है।
प्रश्न: हम आध्यात्मिक प्रगति कहलाने वाली घटना को देख सकते हैं। एक स्वार्थी व्यक्ति धार्मिक हो जाता है, आत्मसंयम बरतता है, अपने विचारों और भावनाओं को परिष्कृत करता है, आध्यात्मिक साधना में लीन हो जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है। क्या ऐसी प्रगति कारण-कार्य से संचालित होती है या यह संयोगवश होती है?
एम: मेरे विचार से तो सब कुछ अपने आप, सहजता से घटित होता है। लेकिन मनुष्य यह सोचता है कि वह किसी प्रोत्साहन या लक्ष्य के लिए काम कर रहा है। उसके मन में हमेशा एक पुरस्कार होता है और वह उसी के लिए प्रयास करता है। प्रश्न: एक असभ्य, अविकसित व्यक्ति बिना इनाम के काम नहीं करेगा। क्या उसे प्रोत्साहन देना उचित नहीं है?
एम: वह किसी न किसी तरह अपने लिए प्रोत्साहन पैदा कर ही लेगा। उसे यह नहीं पता कि विकास चेतना का स्वभाव है। वह एक मकसद से दूसरे मकसद की ओर बढ़ता रहेगा और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए गुरुओं की तलाश करता रहेगा। जब अपने स्वभाव के नियमों से उसे निवृत्ति का मार्ग मिल जाता है, तो वह सारे मकसद त्याग देता है, क्योंकि संसार में उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। उसे कुछ नहीं चाहिए - न दूसरों से, न स्वयं से। वह सब कुछ त्यागकर सर्वस्व बन

जाता है। कुछ न चाहना और कुछ न करना - यही सच्ची सृष्टि है! अपने हृदय में ब्रह्मांड को उभरते और विलीन होते देखना अद्भुत है।
प्रश्न: आंतरिक प्रयास में सबसे बड़ी बाधा ऊब है। शिष्य ऊब जाता है।
एम: जड़ता और बेचैनी (तमस और रजस) मिलकर स्पष्टता और सामंजस्य (सत्त्व) को दबाते हैं। सत्त्व के प्रकट होने से पहले तमस और रजस पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। यह सब समय आने पर, स्वतः ही प्राप्त हो जाएगा।
प्रश्न: तो क्या फिर प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है?
एम: जब प्रयास की आवश्यकता होती है, तो प्रयास स्वयं प्रकट होता है। जब सहजता अनिवार्य हो जाती है, तो वह स्वयं को प्रकट करती है। आपको जीवन को धकेलने की आवश्यकता नहीं है। बस इसके साथ बहते जाइए और वर्तमान क्षण के कार्य में स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर दीजिए, जो कि वर्तमान क्षण के प्रति समर्पण है। क्योंकि जीना ही मृत्यु है। मृत्यु के बिना जीवन संभव नहीं है।
इस मूल बात को समझें कि संसार और आप एक ही हैं और परिपूर्ण हैं। केवल आपका दृष्टिकोण ही दोषपूर्ण है और उसे सुधारने की आवश्यकता है।
इस प्रक्रिया या समायोजन को ही साधना कहते हैं। आलस्य का त्याग करके और अपनी सारी ऊर्जा को स्पष्टता और परोपकार के मार्ग में लगाकर ही साधना संभव है। वास्तव में, ये सब अनिवार्य विकास के संकेत हैं। डरो मत, विरोध मत करो, विलंब मत करो। जैसे हो वैसे ही रहो। डरने की कोई बात नहीं है। विश्वास रखो और प्रयास करो। ईमानदारी से प्रयोग करो। अपने वास्तविक स्वरूप को अपने जीवन को आकार देने का अवसर दो। तुम्हें पछतावा नहीं होगा।

34. मन स्वयं ही बेचैनी है।

प्रश्नकर्ता: मैं जन्म से स्वीडिश हूँ। अब मैं मेक्सिको और अमेरिका में हठ योग सिखाता हूँ।
महाराज: तुमने यह कहाँ से सीखा?
प्रश्न: अमेरिका में मेरे एक शिक्षक थे, एक भारतीय स्वामी।
एम: इससे आपको क्या मिला?
प्रश्न: इसने मुझे अच्छा स्वास्थ्य और आजीविका का साधन प्रदान किया।
एम: काफी है। क्या आपको बस इतना ही चाहिए?
प्रश्न: मैं मन की शांति चाहता हूँ। तथाकथित ईसाइयों द्वारा ईसा मसीह के नाम पर किए गए सभी क्रूर कृत्यों से मैं व्याकुल हो गया था। कुछ समय तक मैं धर्मविहीन रहा। फिर मुझे योग की ओर आकर्षण हुआ।
एम: आपको क्या लाभ हुआ?
प्रश्न: मैंने योग के दर्शन का अध्ययन किया और इससे मुझे लाभ हुआ।
एम: इससे आपको किस तरह मदद मिली? किन संकेतों से आपको पता चला कि आपको मदद मिली है?
प्रश्न: अच्छा स्वास्थ्य एक ऐसी चीज है जिसे काफी मूर्त रूप से देखा जा सकता है।
एम: इसमें कोई शक नहीं कि फिट महसूस करना बहुत सुखद होता है। क्या योग से आपको सिर्फ यही उम्मीद थी?
प्रश्न: हठ योग का फल सुख और कल्याण की अनुभूति है। लेकिन योग से इससे कहीं अधिक लाभ मिलता है। यह अनेक प्रश्नों के उत्तर देता है।
एम: योग से आपका क्या तात्पर्य है?

प्रश्न: भारत की संपूर्ण शिक्षा - विकासवाद, पुनर्जन्म, कर्म आदि।
एम: ठीक है, आपको वह सारी जानकारी मिल गई जो आप चाहते थे। लेकिन इससे आपको किस तरह का लाभ हुआ?
प्रश्न: इससे मुझे मन की शांति मिली।
एम: क्या हो गया? क्या आपका मन शांत है? क्या आपकी खोज पूरी हो गई? प्रश्न: नहीं, अभी नहीं।
एम: बिल्कुल। इसका कोई अंत नहीं होगा, क्योंकि मन की शांति जैसी कोई चीज नहीं होती। मन का अर्थ है अशांति; बेचैनी ही मन है। योग मन का गुण नहीं है, न ही यह मन की कोई अवस्था है।
प्रश्न: योग से मुझे कुछ हद तक शांति अवश्य प्राप्त हुई।
एम: ध्यान से देखें तो आपको पता चलेगा कि मन विचारों से भरा हुआ है। कभी- कभी यह शांत हो जाता है, लेकिन कुछ समय के लिए ही होता है और फिर अपनी सामान्य बेचैनी में लौट आता है। शांत मन, शांतिप्रिय मन नहीं होता। आप कहते हैं कि आप अपने मन को शांत करना चाहते हैं। क्या मन को शांत करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति स्वयं शांत होता है?
प्रश्न: नहीं। मुझे शांति नहीं मिलती, मैं योग का सहारा लेता हूँ।
एम: क्या आपको विरोधाभास नहीं दिखता? आपने कई वर्षों तक मन की शांति की तलाश की। आप उसे पा नहीं सके, क्योंकि जो चीज स्वभाव से ही बेचैन है, वह शांत नहीं रह सकती।
प्रश्न: कुछ सुधार हुआ है।
एम: जिस शांति का आप दावा करते हैं, वह बहुत नाजुक है; छोटी सी बात भी उसे तोड़ सकती है। जिसे आप शांति कहते हैं, वह केवल अशांति की अनुपस्थिति है।
यह नाम के लायक भी नहीं है। सच्ची शांति को भंग नहीं किया जा सकता। क्या आप ऐसी मन की शांति का दावा कर सकते हैं जिसे कोई झकझोर न सके?
प्रश्न: मैं प्रयास कर रहा हूँ।
एम: प्रयास करना भी एक प्रकार की बेचैनी है।
प्रश्न: तो फिर क्या बचा है?
एम: आत्मा को शांत करने की आवश्यकता नहीं है। यह स्वयं शांति है, लेकिन शांत नहीं है। केवल मन ही बेचैन है। यह केवल बेचैनी को ही जानता है, अपने अनेक रूपों और स्तरों के साथ। सुखद को श्रेष्ठ माना जाता है और दुखमय को निष्प्रभावी। जिसे हम प्रगति कहते हैं, वह केवल अप्रिय से सुखद की ओर परिवर्तन है। लेकिन परिवर्तन स्वयं हमें अपरिवर्तन तक नहीं ले जा सकते, क्योंकि जिसका आरंभ होता है, उसका अंत अवश्य होता है। वास्तविकता का कोई आरंभ नहीं होता; यह केवल स्वयं को आरंभहीन और अनंत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, अचल मूल तत्व, शाश्वत रूप से अपरिवर्तनीय के रूप में प्रकट करता है।
प्रश्न: तो फिर क्या करना चाहिए?
एम: योग के माध्यम से आपने ज्ञान और अनुभव अर्जित किया है। यह निर्विवाद है। लेकिन यह सब आपके लिए किस काम का है? योग का अर्थ है मिलन, जुड़ाव। आपने किसे पुनः जोड़ा है, किसे पुनः मिलाया है?
प्रश्न: मैं अपने व्यक्तित्व को वास्तविक स्वरूप से पुनः जोड़ने का प्रयास कर रहा हूँ।
एम: व्यक्तित्व (व्यक्ति) मात्र कल्पना की उपज है। आत्मा (व्यक्त) इसी कल्पना का शिकार है। स्वयं को वह समझना जो आप नहीं हैं, यही आपको बांधता है। व्यक्ति का अस्तित्व स्वतंत्र रूप से नहीं कहा जा सकता; यह आत्मा ही है

जो मानती है कि कोई व्यक्ति है और स्वयं को उस रूप में सचेत करती है। आत्मा (व्यक्त) से परे अव्यक्त (अव्यक्त) है, जो हर चीज का अकारण है। व्यक्ति को आत्मा से पुनः जोड़ने की बात करना भी उचित नहीं है, क्योंकि कोई व्यक्ति नहीं है, केवल एक मानसिक छवि है जिसे दृढ़ विश्वास द्वारा झूठी वास्तविकता दे दी गई है। कुछ भी विभाजित नहीं हुआ और न ही कुछ जोड़ने के लिए है। प्रश्न: योग स्वयं की खोज और उसे पाने में सहायक होता है।
एम: जो आपने खोया है, उसे आप पा सकते हैं। लेकिन जो आपने नहीं खोया है, उसे आप नहीं पा सकते।
प्रश्न: यदि मैंने कभी कुछ खोया न होता, तो मैं ज्ञानी होता। लेकिन मैं नहीं हूँ। मैं खोज रहा हूँ। क्या मेरी यह खोज ही इस बात का प्रमाण नहीं है कि मैंने कुछ खोया है?
एम: इससे तो बस यही पता चलता है कि आपको लगता है कि आपने कुछ खो दिया है। लेकिन कौन मानता है ऐसा? और किसे खोया हुआ माना जाता है? क्या आपने अपने जैसा ही कोई इंसान खो दिया है? आप किस 'स्व' की तलाश में हैं? आप आखिर क्या पाने की उम्मीद करते हैं?
प्रश्न: स्वयं का सच्चा ज्ञान।
एम: आत्मज्ञान कोई ज्ञान नहीं है। यह ऐसी चीज नहीं है जिसे खोजबीन करके, हर जगह देखकर पाया जा सके। यह स्थान या समय में नहीं पाया जा सकता। ज्ञान तो बस एक स्मृति है, विचारों का एक क्रम है, एक मानसिक आदत है। ये सब सुख और दुख से प्रेरित होते हैं। सुख और दुख से प्रेरित होकर ही आप ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं। स्वयं होना सभी प्रेरणाओं से परे है। आप किसी कारण से स्वयं नहीं हो सकते। आप स्वयं हैं, और इसके लिए किसी कारण की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: योग करने से मुझे शांति मिलेगी।
एम: क्या शांति आपके बिना संभव है? क्या आप अपने अनुभव के आधार पर बोल रहे हैं या केवल किताबों से? आपका किताबी ज्ञान शुरुआत में उपयोगी होता है, लेकिन जल्द ही उसे प्रत्यक्ष अनुभव के लिए छोड़ना पड़ता है, जो अपने आप में अवर्णनीय है। शब्दों का प्रयोग विनाश के लिए भी किया जा सकता है; शब्दों से चित्र बनते हैं, शब्दों से ही वे नष्ट होते हैं। आप शाब्दिक चिंतन के कारण ही इस वर्तमान स्थिति में पहुँचे हैं; आपको इससे बाहर भी इसी तरह निकलना होगा।
प्रश्न: मुझे कुछ हद तक आंतरिक शांति प्राप्त हुई है। क्या मुझे इसे नष्ट कर देना चाहिए?
एम: जो प्राप्त हुआ है, वह फिर से खो सकता है। जब आप सच्ची शांति को, उस शांति को जिसे आपने कभी नहीं खोया, महसूस करेंगे, तभी वह शांति आपके साथ रहेगी, क्योंकि वह कभी आपसे दूर हुई ही नहीं। जो आपके पास नहीं है, उसे खोजने के बजाय, यह पता लगाएँ कि आपने क्या कभी नहीं खोया? वह जो हर चीज के आरंभ से पहले और अंत के बाद विद्यमान है; वह जिसका न जन्म है, न मृत्यु। वह अचल अवस्था, जो शरीर या मन के जन्म और मृत्यु से अप्रभावित रहती है, उस अवस्था को आपको अनुभव करना होगा।
प्रश्न: इस प्रकार की धारणा प्राप्त करने के साधन क्या हैं?
एम: जीवन में बाधाओं को पार किए बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपने वास्तविक स्वरूप की स्पष्ट अनुभूति में बाधाएँ सुख की इच्छा और दुःख का भय हैं। यही सुख-दुःख की प्रेरणा मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है। सभी

प्रेरणाओं से मुक्ति, वह अवस्था जिसमें कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वही प्राकृतिक अवस्था है।
प्रश्न: क्या इस प्रकार की इच्छाओं का त्याग करने में समय लगता है?
एम: अगर इसे समय के भरोसे छोड़ दिया जाए, तो लाखों साल लग जाएँगे। एक-एक करके इच्छाओं का त्याग करना एक लंबी प्रक्रिया है जिसका अंत कभी नज़र नहीं आता। अपनी इच्छाओं और भय को एक तरफ रख दें, अपना पूरा ध्यान इस विषय पर लगाएं, उस पर जो इच्छा और भय के अनुभव के पीछे है। पूछें: 'इच्छा कौन करता है?' हर इच्छा आपको स्वयं से जोड़ दे।
प्रश्न: सभी इच्छाओं और भयों की जड़ एक ही है - सुख की लालसा।
एम: जिस खुशी की आप कल्पना करते हैं और जिसकी कामना करते हैं, वह मात्र शारीरिक या मानसिक संतुष्टि है। ऐसी इंद्रियजन्य या मानसिक खुशी वास्तविक, परम सुख नहीं है।
प्रश्न: शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाले संवेदी और मानसिक सुख और सामान्य कल्याण की भावना का भी मूल वास्तविकता में ही निहित होना चाहिए।
एम: इनकी जड़ें कल्पना में निहित हैं। किसी व्यक्ति को अगर कोई पत्थर देकर यह विश्वास दिलाया जाए कि वह अनमोल हीरा है, तो वह तब तक अत्यंत प्रसन्न होगा जब तक उसे अपनी गलती का एहसास नहीं हो जाता; ठीक इसी प्रकार, जब स्वयं का ज्ञान हो जाता है, तो सुख अपना तीखापन और दुख अपना दर्द खो देते हैं। दोनों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखा जाता है - सशर्त प्रतिक्रियाएँ, मात्र अभिक्रियाएँ, साधारण आकर्षण और विकर्षण, जो स्मृतियों या पूर्वधारणाओं पर आधारित होते हैं। आमतौर पर सुख और दुख का अनुभव अपेक्षित समय पर ही होता है। यह सब अर्जित आदतों और विश्वासों का मामला है। प्रश्न: खैर, सुख तो काल्पनिक हो सकता है, लेकिन दर्द वास्तविक होता है। एम: दुख और सुख हमेशा साथ-साथ चलते हैं। एक से मुक्ति का अर्थ है दोनों से मुक्ति। यदि आप सुख की परवाह नहीं करते, तो आपको दुख से डर नहीं लगेगा। लेकिन एक ऐसी खुशी भी है जो न तो सुख है और न ही सुख, जो उससे परे है। जिस खुशी को आप जानते हैं, वह वर्णनीय और मापनीय है। एक तरह से वह वस्तुनिष्ठ है। लेकिन वह वस्तुनिष्ठ आपकी अपनी नहीं हो सकती। अपने आप को किसी बाहरी चीज़ से जोड़ना एक घोर गलती होगी। स्तरों का यह मंथन किसी परिणाम की ओर नहीं ले जाता। वास्तविकता व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ से परे है, सभी स्तरों से परे है, हर भेद से परे है। निश्चित रूप से यह उनका मूल, स्रोत या जड़ नहीं है। ये वास्तविकता के अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, वास्तविकता से नहीं, जो अवर्णनीय है, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे है।
प्रश्न: मैंने कई शिक्षकों का अनुसरण किया है और कई सिद्धांतों का अध्ययन किया है, फिर भी किसी ने मुझे वह नहीं दिया जो मैं चाहता था।
एम: आत्म-खोज की इच्छा निश्चित रूप से पूरी होगी, बशर्ते आप और कुछ न चाहें। लेकिन आपको अपने प्रति ईमानदार रहना होगा और वास्तव में कुछ और नहीं चाहना होगा। यदि इस बीच आप कई अन्य चीजें चाहते हैं और उनकी पूर्ति में लगे हुए हैं, तो आपका मुख्य उद्देश्य तब तक विलंबित हो सकता है जब तक आप अधिक समझदार न हो जाएं और परस्पर विरोधी इच्छाओं के बीच उलझना बंद न कर दें। बिना विचलित हुए, बिना कभी बाहर की ओर देखे, अपने भीतर जाइए। प्रश्न: लेकिन मेरी इच्छाएं और भय अभी भी मौजूद हैं।
एम: वे आपकी स्मृति के सिवा और कहाँ हैं? यह समझ लें कि उनकी जड़ स्मृति से जन्मी अपेक्षा में है और वे आपको परेशान करना बंद कर देंगे।

प्रश्न: मैं यह अच्छी तरह समझ चुका हूँ कि सामाजिक सेवा एक अंतहीन कार्य है, क्योंकि सुधार और पतन, प्रगति और गिरावट, साथ-साथ चलती रहती हैं। हम इसे हर तरफ और हर स्तर पर देख सकते हैं। अंत में क्या बचता है?
एम: आपने जो भी काम हाथ में लिया है, उसे पूरा करें। नए काम न लें, जब तक कि किसी गंभीर पीड़ा या उससे मुक्ति की आवश्यकता न हो। पहले स्वयं को खोजें, और अनंत आशीर्वाद प्राप्त होंगे। लाभ का त्याग करने से संसार को सबसे अधिक लाभ होता है। जो व्यक्ति हानि और लाभ के बारे में सोचना छोड़ देता है, वही सच्चा अहिंसक व्यक्ति है, क्योंकि वह सभी संघर्षों से परे है।
प्रश्न: जी हां, मैं हमेशा से अहिंसा के विचार से आकर्षित रहा हूं।
एम: मूल रूप से, अहिंसा का अर्थ वही है जो इसके नाम से स्पष्ट है: 'किसी को चोट न पहुँचाना'। इसमें भलाई करना सर्वोपरि नहीं है, बल्कि दूसरों को चोट पहुँचाना बंद करना और पीड़ा को बढ़ाना नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करना अहिंसा नहीं है।
प्रश्न: मैं किसी को खुश करने की बात नहीं कर रहा हूँ, लेकिन मैं दूसरों की मदद करने के लिए पूरी तरह से तैयार हूँ।
एम: सार्थक सहायता तो बस किसी को आगे सहायता की आवश्यकता से मुक्त करना है। बार-बार सहायता करना कोई सहायता नहीं है। किसी दूसरे की सहायता करने की बात तब तक न करें, जब तक आप उसे हर तरह से सहायता की आवश्यकता से मुक्त न कर दें।
प्रश्न: मदद की आवश्यकता से परे कैसे पहुंचा जा सकता है? और क्या कोई दूसरे को ऐसा करने में मदद कर सकता है?
एम: जब आप यह समझ जाते हैं कि अलगाव और सीमाओं में संपूर्ण अस्तित्व पीड़ादायक है, और जब आप संपूर्ण जीवन के साथ एकत्व में, शुद्ध अस्तित्व के रूप में जीने के लिए तैयार और सक्षम हो जाते हैं, तब आप सहायता की सभी आवश्यकताओं से परे हो जाते हैं। आप उपदेश और उदाहरण से, और सबसे बढ़कर, अपने अस्तित्व से दूसरों की सहायता कर सकते हैं। आप वह नहीं दे सकते जो आपके पास नहीं है, और आपके पास वह नहीं है जो आप नहीं हैं। आप केवल वही दे सकते हैं जो आप हैं - और वह आप असीमित रूप से दे सकते हैं।
प्रश्न: लेकिन क्या यह सच है कि संपूर्ण जीवन पीड़ादायक है?
एम: सुख की इस सार्वभौमिक खोज का और क्या कारण हो सकता है? क्या एक सुखी व्यक्ति सुख की खोज करता है? लोग कितने बेचैन होते हैं, कितने निरंतर गतिमान रहते हैं! वे पीड़ा में होते हैं, इसीलिए सुख में राहत ढूंढते हैं। वे जिस सुख की कल्पना कर सकते हैं, वह बार-बार मिलने वाले सुख के आश्वासन में निहित है।
प्रश्न: यदि मैं जैसा हूँ, जैसा मैं स्वयं को मानता हूँ, वैसा होकर खुश नहीं रह सकता, तो मुझे क्या करना चाहिए?
एम: आप केवल अपने अस्तित्व को समाप्त कर सकते हैं—जैसा कि आप अभी दिख रहे हैं। मेरी बातों में कोई क्रूरता नहीं है। किसी व्यक्ति को बुरे सपने से जगाना करुणा है। आप यहाँ इसलिए आए हैं क्योंकि आप पीड़ा में हैं, और मैं बस इतना ही कहूँगा: जाग जाओ, खुद को जानो, खुद को पहचानो। पीड़ा का अंत सुख में नहीं है। जब आप यह महसूस कर लेते हैं कि आप पीड़ा और सुख दोनों से परे हैं, एकांत में हैं और अजेय हैं, तब सुख की खोज और उसके परिणामस्वरूप होने वाला दुख दोनों समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि पीड़ा का लक्ष्य सुख होता है और सुख का अंत पीड़ा में ही होता है, निरंतर।
प्रश्न: क्या परम अवस्था में सुख संभव नहीं है?

एम: न ही दुःख। केवल स्वतंत्रता। सुख किसी न किसी चीज़ पर निर्भर करता है और खो सकता है; हर चीज़ से मुक्ति किसी चीज़ पर निर्भर नहीं करती और खोई नहीं जा सकती। दुःख से मुक्ति का कोई कारण नहीं होता, इसलिए उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। उस स्वतंत्रता को महसूस करो।
प्रश्न: क्या मैं अपने अतीत के कर्मों के फलस्वरूप भोगने के लिए ही पैदा नहीं हुआ हूँ? क्या स्वतंत्रता संभव है? क्या मैं अपनी इच्छा से पैदा हुआ हूँ? क्या मैं महज़ एक प्राणी हूँ?
एम: जन्म और मृत्यु चेतना में घटित घटनाओं की धारा का आरंभ और अंत मात्र हैं। अलगाव और सीमाओं के विचार के कारण ये पीड़ादायक होते हैं। क्षणिक पीड़ा से राहत को हम सुख कहते हैं और अनंत सुख की आशा में हवा में महल बनाते हैं, जिसे हम खुशी कहते हैं। यह सब गलतफहमी और दुरुपयोग है। जागो, आगे बढ़ो, सचमुच जियो।
प्रश्न: मेरा ज्ञान सीमित है, मेरी क्षमता नगण्य है।
एम: दोनों का स्रोत होने के नाते, आत्मा ज्ञान और शक्ति दोनों से परे है। जो कुछ भी देखा जा सकता है, वह मन में निहित है। आत्मा का स्वरूप शुद्ध चेतना, शुद्ध साक्षी भाव है, जो ज्ञान या पसंद की उपस्थिति या अनुपस्थिति से अप्रभावित रहता है।
जन्म और मृत्यु के इस शरीर से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व को साकार करें, और आपकी सभी समस्याएं हल हो जाएंगी। ये समस्याएं इसलिए मौजूद हैं क्योंकि आप मानते हैं कि आपका जन्म मृत्यु के लिए हुआ है। अपने आप को इस भ्रम से मुक्त करें और स्वतंत्र हो जाएं। आप एक व्यक्ति नहीं हैं।

35. सबसे बड़ा गुरु आपका अंतर्मन है।
प्रश्नकर्ता: चारों ओर से यही सुनने को मिलता है कि इच्छाओं और प्रवृत्तियों से मुक्ति आत्म-साक्षात्कार की पहली शर्त है। परन्तु मुझे यह शर्त पूरी करना असंभव लगता है। स्वयं का अज्ञान इच्छाओं को जन्म देता है और इच्छाएँ अज्ञान को बढ़ावा देती हैं। यह सचमुच एक दुष्चक्र है! महाराज: कोई शर्तें पूरी करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ भी करने या त्यागने की आवश्यकता नहीं है। बस देखिए और याद रखिए, जो कुछ भी आप अनुभव करते हैं, वह आप नहीं हैं, न ही आपका है। वह चेतना के क्षेत्र में विद्यमान है, लेकिन आप न तो वह क्षेत्र हैं और न ही उसकी सामग्री, और न ही उस क्षेत्र के ज्ञाता। यह आपका विचार है कि आपको कुछ करना है, जो आपको अपने प्रयासों के परिणामों में उलझा देता है - प्रेरणा, इच्छा, असफलता, निराशा - ये सब आपको पीछे खींचते हैं। बस जो कुछ भी घटित होता है, उसे देखिए और जान लीजिए कि आप उससे परे हैं।
प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि मुझे कुछ भी करने से परहेज करना चाहिए? एम: आप ऐसा नहीं कर सकते! जो चल रहा है, वह चलता रहना चाहिए। अगर आप अचानक रुकेंगे, तो दुर्घटना हो जाएगी।
प्रश्न: क्या यह ज्ञात और ज्ञाता के एक हो जाने का मामला है?
एम: ये दोनों ही मन के विचार हैं, और उन्हें व्यक्त करने वाले शब्द हैं। इनमें कोई आत्म नहीं है। आत्म न तो बीच में है, न ही परे। मानसिक स्तर पर इसकी खोज करना व्यर्थ है। खोज बंद करो, और देखो - यह यहीं और अभी है - यह वही 'मैं हूँ' है जिसे तुम भली-भांति जानते हो। तुम्हें बस इतना करना है कि अपने आप को चेतना के क्षेत्र में होने की धारणा से मुक्त कर दो। जब तक तुमने इन बातों पर ध्यानपूर्वक विचार नहीं किया है, मेरी बात एक बार सुनना पर्याप्त

नहीं होगा। अपने अतीत के अनुभवों और उपलब्धियों को भूल जाओ, जीवन की हवाओं और बारिश के सामने नग्न खड़े हो जाओ, और तुम्हें एक मौका मिलेगा।
प्रश्न: क्या आपके शिक्षण में भक्ति का कोई स्थान है?
एम: जब आप बीमार होते हैं, तो आप डॉक्टर के पास जाते हैं जो आपको बताता है कि आपको क्या परेशानी है और उसका इलाज क्या है। अगर आपको उस पर भरोसा है, तो सब कुछ आसान हो जाता है: आप दवा लेते हैं, खान-पान संबंधी निर्देशों का पालन करते हैं और ठीक हो जाते हैं। लेकिन अगर आपको उस पर भरोसा नहीं है, तो आप जोखिम उठा सकते हैं, या आप खुद भी चिकित्सा का अध्ययन कर सकते हैं! हर हाल में, यह आपकी ठीक होने की इच्छा होती है जो आपको प्रेरित करती है, न कि डॉक्टर।
विश्वास के बिना शांति नहीं है। किसी न किसी पर तो आपको हमेशा भरोसा करना ही पड़ता है—चाहे वह आपकी माँ हो या आपकी पत्नी। समस्त मनुष्यों में आत्मज्ञानी, मुक्त पुरुष सबसे अधिक भरोसेमंद होता है। परन्तु केवल भरोसा करना ही पर्याप्त नहीं है। आपके अंदर इच्छा भी होनी चाहिए। स्वतंत्रता की इच्छा के बिना, इस विश्वास का क्या लाभ कि आप स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं? इच्छा और विश्वास साथ-साथ चलने चाहिए। आपकी इच्छा जितनी प्रबल होगी, सहायता उतनी ही आसानी से मिलेगी। जब तक शिष्य सीखने के लिए उत्सुक न हो, तब तक महान गुरु भी असहाय हो जाते हैं। उत्सुकता और लगन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अनुभव से विश्वास उत्पन्न होगा। अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहें — और जो आपका मार्गदर्शन कर सकता है, उसके प्रति समर्पण स्वयं ही आ जाएगा। यदि आपकी इच्छा और विश्वास प्रबल हैं, तो वे कार्य करेंगे और आपको आपके लक्ष्य तक पहुँचाएँगे, क्योंकि आप संकोच और समझौता करके विलंब नहीं करेंगे।
सबसे बड़ा गुरु आपका अंतर्मन है। वास्तव में, वही सर्वोच्च शिक्षक है। केवल वही आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचा सकता है और वही अंत में आपसे मिलता है। उस पर भरोसा रखें, आपको किसी बाहरी गुरु की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन फिर से, आपके भीतर उसे पाने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए और ऐसा कुछ भी न करें जिससे बाधाएं और देरी उत्पन्न हों। और पछतावे में ऊर्जा और समय बर्बाद न करें। अपनी गलतियों से सीखें और उन्हें न दोहराएं।
प्रश्न: यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो क्या मैं एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछ सकता हूँ...?
एम: जी हाँ, आगे बढ़िए।
प्रश्न: मैंने आपको हिरण की खाल पर बैठे देखा। यह अहिंसा के सिद्धांत से कैसे मेल खाता है?
एम: मैंने अपनी पूरी कामकाजी ज़िंदगी सिगरेट बनाने में बिताई, लोगों की सेहत बिगाड़ने में मदद की। और मेरे घर के सामने नगरपालिका ने एक सार्वजनिक शौचालय बना दिया है, जिससे मेरी सेहत और भी खराब हो गई है। इस हिंसक दुनिया में कोई किसी न किसी तरह की हिंसा से कैसे बच सकता है?
प्रश्न: बेशक हर तरह की हिंसा से बचना चाहिए। फिर भी भारत में हर साधु के पास बैठने के लिए बाघ, शेर, तेंदुआ या हिरण की खाल होती है।
एम: शायद इसलिए क्योंकि प्राचीन काल में प्लास्टिक उपलब्ध नहीं थे और नमी से बचाव के लिए चमड़ा ही सबसे अच्छा उपाय था। गठिया किसी को भी भाता नहीं, संत को भी नहीं! इसीलिए यह परंपरा चली आ रही है कि लंबे ध्यान के लिए चमड़े की आवश्यकता होती है। जैसे मंदिर में ढोल की खाल होती है, वैसे ही योगी की हिरण की खाल होती है। हम शायद ही इस पर ध्यान देते हैं।

प्रश्न: लेकिन उस जानवर को मारना ही पड़ा।
एम: मैंने कभी किसी योगी को बाघ की खाल के लिए उसे मारते हुए नहीं सुना।
मारने वाले योगी नहीं होते और योगी मारने वाले नहीं होते।
प्रश्न: क्या आपको चमड़े पर बैठने से इनकार करके अपनी असहमति व्यक्त नहीं करनी चाहिए?
एम: क्या विचार है! मैं तो पूरे ब्रह्मांड को ही नापसंद करता हूँ, तो सिर्फ त्वचा को ही क्यों?
प्रश्न: ब्रह्मांड में क्या गड़बड़ी है?
एम: स्वयं को भूल जाना सबसे बड़ा नुकसान है; सारी विपत्तियाँ इसी से उत्पन्न होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण का ध्यान रखो, बाकी चीजें अपने आप सुलझ जाएँगी। अंधेरे कमरे को साफ करने के लिए पहले खिड़कियाँ खोलनी पड़ती हैं। रोशनी आने से सब कुछ आसान हो जाता है। इसलिए, दूसरों को सुधारने की कोशिश तब तक न करें जब तक हम स्वयं को वैसे ही न देख लें जैसे हम हैं और खुद में बदलाव न ला लें। अंतहीन प्रश्नों में उलझने की कोई आवश्यकता नहीं है; स्वयं को खोजो और सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा।
प्रश्न: स्रोत की ओर लौटने की तीव्र इच्छा बहुत दुर्लभ है। क्या यह स्वाभाविक है?
एम: शुरुआत में बहिर्मुखी होना स्वाभाविक है, अंत में अंतर्मुखी होना। लेकिन वास्तव में ये दोनों एक ही हैं, ठीक वैसे ही जैसे सांस लेना और छोड़ना एक ही हैं।
प्रश्न: क्या शरीर और शरीर में रहने वाला जीव एक ही नहीं हैं?
एम: समय और स्थान में घटित होने वाली घटनाएँ—जन्म और मृत्यु, कारण और परिणाम—इन्हें एक माना जा सकता है; परन्तु शरीर और शरीर में विद्यमान एक ही स्तर की वास्तविकता नहीं हैं। शरीर समय और स्थान में विद्यमान है, क्षणभंगुर और सीमित है, जबकि शरीर में विद्यमान कालातीत और स्थानहीन, शाश्वत और सर्वव्यापी है। इन दोनों को एक समान मानना एक घोर त्रुटि है और अंतहीन पीड़ा का कारण है। आप मन और शरीर को एक मान सकते हैं, परन्तु शरीर-मन अंतर्निहित वास्तविकता नहीं है।
प्रश्न: वह कोई भी हो, शरीर पर शरीर का नियंत्रण होता है और इसलिए वह इसके लिए जिम्मेदार होता है।
एम: एक सार्वभौमिक शक्ति है जो नियंत्रण में है और जिम्मेदार है। प्रश्न: तो क्या मैं अपनी मनमर्जी कर सकता हूँ और सारा दोष किसी सार्वभौमिक शक्ति पर डाल सकता हूँ? कितना आसान है!
एम: जी हाँ, बहुत आसान है। बस उस एक शक्ति को पहचानो जो हर चीज़ को चलाती है और सब कुछ उसी पर छोड़ दो। अगर तुम संकोच नहीं करोगे या छल नहीं करोगे, तो यही वास्तविकता तक पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता है। इच्छा और भय से मुक्त होकर खड़े रहो, सारा नियंत्रण और सारी ज़िम्मेदारी त्याग दो।
प्रश्न: यह तो सरासर पागलपन है!
एम: हाँ, दिव्य पागलपन। व्यक्तिगत नियंत्रण और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी के भ्रम को त्यागने में क्या बुराई है? दोनों तो केवल मन में ही हैं। बेशक, जब तक आप खुद को नियंत्रण में मानते हैं, तब तक आपको खुद को ज़िम्मेदार भी मानना चाहिए। एक का अर्थ दूसरा है।
प्रश्न: सार्वभौमिक किसी विशेष के लिए कैसे जिम्मेदार हो सकता है?
एम: पृथ्वी पर सभी जीवन सूर्य पर निर्भर करता है। फिर भी, आप हर घटना के लिए सूर्य को दोषी नहीं ठहरा सकते, हालांकि वही अंतिम कारण है। प्रकाश फूल के

रंग का कारण बनता है, लेकिन यह न तो उसे नियंत्रित करता है और न ही उसके लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है। यह केवल इसे संभव बनाता है, बस इतना ही।
प्रश्न: इन सबमें मुझे जो बात पसंद नहीं है, वह है किसी सार्वभौमिक शक्ति की शरण लेना।
एम: आप तथ्यों से झगड़ा नहीं कर सकते।
प्रश्न: किसके तथ्य? आपके या मेरे?
एम: आपके। आप मेरे तथ्यों को नकार नहीं सकते, क्योंकि आप उन्हें जानते ही नहीं। अगर आप उन्हें जानते, तो आप उन्हें नकारते नहीं। यहीं समस्या है। आप अपनी कल्पना को तथ्य मान लेते हैं और मेरे तथ्यों को कल्पना। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सब एक है। भेद अलग नहीं करते। या तो आप किसी भी चीज़ के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं, या फिर हर चीज़ के लिए। यह सोचना कि आप केवल एक शरीर के नियंत्रक और ज़िम्मेदार हैं, शरीर-मन की विकृति है।
प्रश्न: फिर भी, आप अपने शरीर से ही सीमित हैं।
एम: केवल शरीर से संबंधित मामलों में। मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है। यह साल के मौसमों को सहने जैसा है। वे आते हैं, जाते हैं - उनका मुझ पर शायद ही कोई असर पड़ता है। ठीक उसी तरह शरीर और मन आते-जाते रहते हैं - जीवन हमेशा नए भावों की खोज में लगा रहता है।
प्रश्न: जब तक आप बुराई का सारा दोष ईश्वर पर नहीं डालते, तब तक मैं संतुष्ट हूँ। जहाँ तक मुझे पता है, ईश्वर का अस्तित्व है, लेकिन मेरे लिए वह मानव मन द्वारा गढ़ी गई एक अवधारणा मात्र है। वह आपके लिए एक वास्तविकता हो सकता है, लेकिन मेरे लिए समाज ईश्वर से कहीं अधिक वास्तविक है, क्योंकि मैं इसका प्राणी भी हूँ और इसका कैदी भी। आपके मूल्य ज्ञान और करुणा हैं; समाज का मूल्य विवेकपूर्ण स्वार्थ है। मैं आपकी दुनिया से बिल्कुल अलग दुनिया में रहता हूँ।
एम: कोई बाध्य नहीं करता।
प्रश्न: आपको कोई विवश नहीं करता, लेकिन मैं विवश हूँ। मेरी दुनिया एक दुष्ट दुनिया है, जो आँसुओं, परिश्रम और पीड़ा से भरी है। इसे बौद्धिक तर्कों से, विकासवाद और कर्म के सिद्धांतों से समझाना तो जले पर नमक छिड़कने जैसा है। एक दुष्ट दुनिया का ईश्वर क्रूर ईश्वर होता है।
एम: तुम अपनी दुनिया के भगवान हो और तुम मूर्ख और क्रूर दोनों हो। भगवान को एक अवधारणा मान लो - तुम्हारी अपनी रचना। पता लगाओ कि तुम कौन हो, तुम बुराई से भरी दुनिया में सत्य, अच्छाई और सुंदरता की लालसा लेकर कैसे जीने लगे। भगवान के पक्ष या विपक्ष में बहस करने का क्या फायदा, जब तुम जानते ही नहीं कि भगवान कौन है और तुम किस बारे में बात कर रहे हो। भय और आशा से जन्मा, इच्छा और कल्पना से गढ़ा गया भगवान, वह शक्ति नहीं हो सकता जो ब्रह्मांड का मन और हृदय है।
प्रश्न: मैं मानता हूँ कि जिस संसार में मैं रहता हूँ और जिस ईश्वर में मैं विश्वास करता हूँ, दोनों ही कल्पना की उपज हैं। लेकिन किस प्रकार वे इच्छा से निर्मित हैं? मैं इतना पीड़ादायक संसार और इतना उदासीन ईश्वर क्यों सोचता हूँ? मुझमें क्या दोष है कि मैं स्वयं को इतनी क्रूरता से पीड़ा पहुँचाता हूँ? ज्ञानी व्यक्ति आकर मुझसे कहता है: 'यह तो बस एक सपना है जिसका अंत करना है', लेकिन क्या वह स्वयं उस सपने का हिस्सा नहीं है? मैं स्वयं को फँसा हुआ पाता हूँ और मुझे कोई रास्ता नज़र नहीं आता। आप कहते हैं कि आप स्वतंत्र हैं। किस बात से स्वतंत्र हैं आप? ईश्वर के लिए, मुझे

शब्दों से मत बहलाओ, मुझे ज्ञान दो, मुझे जगाओ, क्योंकि तुम ही हो जो मुझे नींद में करवटें बदलते देख रहे हो।
एम: जब मैं कहता हूँ कि मैं स्वतंत्र हूँ, तो मैं केवल एक तथ्य बता रहा हूँ।
यदि आप वयस्क हैं, तो आप शैशवावस्था से मुक्त हैं। मैं हर तरह के वर्णन और पहचान से मुक्त हूँ। आप जो कुछ भी सुनें, देखें या सोचें, मैं वह नहीं हूँ।
मैं किसी बोध या अवधारणा होने से मुक्त हूँ।
प्रश्न: फिर भी, आपके पास शरीर है और आप उस पर निर्भर हैं।
एम: आप फिर से मान रहे हैं कि आपका दृष्टिकोण ही एकमात्र सही है। मैं दोहराता हूँ: मैं शरीर नहीं था, शरीर नहीं हूँ, शरीर नहीं बनूँगा। मेरे लिए यह एक सच्चाई है। मैं भी जन्म लेने के भ्रम में था, लेकिन मेरे गुरु ने मुझे समझाया कि जन्म और मृत्यु केवल विचार हैं - जन्म केवल यह विचार है: 'मेरा शरीर है'। और मृत्यु - 'मैंने अपना शरीर खो दिया है'। अब, जब मैं जानता हूँ कि मैं शरीर नहीं हूँ, तो शरीर हो या न हो - इससे क्या फर्क पड़ता है? शरीर-मन एक कमरे की तरह है। यह है, लेकिन मुझे हर समय इसमें रहने की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: फिर भी, शरीर तो है ही और आप उसकी देखभाल भी करते हैं।
एम: जिस शक्ति ने शरीर का निर्माण किया है, वही इसकी देखभाल करती है।
प्रश्न: हम लगातार एक स्तर से दूसरे स्तर पर छलांग लगा रहे हैं।
एम: विचार करने के लिए दो स्तर हैं - भौतिक - तथ्यों का, और मानसिक - विचारों का। मैं इन दोनों से परे हूँ। न तो आपके तथ्य मेरे हैं, न ही मेरे विचार। जो मैं देखता हूँ वह परे है। मेरी तरफ आओ और मेरे साथ देखो।

प्रश्न: मैं जो कहना चाहता हूँ वह बहुत सरल है। जब तक मैं यह मानता हूँ कि 'मैं शरीर हूँ', तब तक मुझे यह नहीं कहना चाहिए कि 'ईश्वर मेरे शरीर की देखभाल करेगा'। ईश्वर ऐसा नहीं करेगा। वह इसे भूखा मरने देगा, बीमार पड़ने देगा और मरने देगा।
एम: एक मात्र शरीर से आप और क्या उम्मीद करते हैं? आप इसके बारे में इतने चिंतित क्यों हैं?
क्योंकि आप स्वयं को शरीर मानते हैं, इसलिए आप इसे अविनाशी बनाना चाहते हैं। उचित उपायों से आप इसकी आयु काफी हद तक बढ़ा सकते हैं, लेकिन इससे अंततः क्या लाभ होगा?
प्रश्न: लंबा और स्वस्थ जीवन जीना बेहतर है। इससे हमें बचपन और जवानी की गलतियों, वयस्कता की निराशाओं और बुढ़ापे के कष्टों और मूर्खता से बचने का मौका मिलता है।
एम: बेशक, लंबी उम्र जियो। लेकिन तुम मालिक नहीं हो। क्या तुम अपने जन्म और मृत्यु के दिन खुद तय कर सकते हो? हम एक ही भाषा नहीं बोल रहे हैं। तुम्हारी बातें बनावटी हैं, सब कुछ अनुमानों और धारणाओं पर आधारित है। तुम उन चीजों के बारे में भी आत्मविश्वास से बोलते हो जिनके बारे में तुम्हें खुद यकीन नहीं है।
प्रश्न: इसलिए मैं यहाँ हूँ।
एम: तुम अभी यहाँ नहीं हो। मैं यहाँ हूँ। अंदर आओ! लेकिन तुम नहीं आते। तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारा जीवन जीऊँ, तुम्हारी भावनाओं को महसूस करूँ, तुम्हारी भाषा का प्रयोग करूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता, और इससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हें मेरे पास आना होगा। शब्द मन की उपज हैं और मन चीजों

को धुंधला और विकृत कर देता है। इसीलिए शब्दों से परे जाकर मेरी ओर आना अत्यंत आवश्यक है।
प्रश्न: मुझे नियंत्रण में ले जाओ।
एम: मैं कर रहा हूँ, लेकिन तुम विरोध कर रहे हो। तुम अवधारणाओं को वास्तविकता का रूप दे रहे हो, जबकि अवधारणाएँ वास्तविकता का विकृत रूप हैं। सभी अवधारणाओं को त्याग दो और शांत और एकाग्र रहो। इसमें गंभीरता बरतो, सब ठीक हो जाएगा।

36. हत्या करने से हत्यारा दुखी होता है, मारा जाने वाला नहीं।

प्रश्नकर्ता: एक हजार वर्ष पूर्व एक व्यक्ति का जन्म हुआ और उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुनर्जन्म एक नए शरीर में हुआ। उसे अपने पिछले जीवन की याद क्यों नहीं है? और यदि उसे याद है, तो क्या उस स्मृति को चेतन मन में लाया जा सकता है?
महाराज: आपको कैसे पता कि वही व्यक्ति नए शरीर में पुनः प्रकट हुआ? नया शरीर तो बिल्कुल नया व्यक्ति भी हो सकता है।
प्रश्न: घी के एक बर्तन की कल्पना कीजिए। जब बर्तन टूट जाता है, तो घी बचा रहता है और उसे दूसरे बर्तन में डाला जा सकता है। पुराने बर्तन की अपनी सुगंध थी, नए बर्तन की अपनी। घी एक बर्तन से दूसरे बर्तन में सुगंध ले जाता है। ठीक इसी तरह, व्यक्तिगत पहचान एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित होती है।
एम: कोई बात नहीं। शरीर होने पर उसकी विशेषताएँ व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। शरीर के बिना हमें 'मैं हूँ' के अर्थ में शुद्ध पहचान प्राप्त होती है। लेकिन जब आप नए शरीर में पुनर्जन्म लेते हैं, तो पहले अनुभव की गई दुनिया कहाँ रह जाती है?
प्रश्न: प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने संसार का अनुभव करता है।
एम: वर्तमान शरीर में पुराना शरीर - क्या यह महज एक विचार है, या यह एक स्मृति है?
प्रश्न: यह एक विचार है। मस्तिष्क उस चीज़ को कैसे याद रख सकता है जिसका उसने अनुभव नहीं किया है?
एम: आपने अपने ही प्रश्न का उत्तर दे दिया है। विचारों के साथ क्यों खेलना? जिस बात पर आपको पूरा भरोसा है, उसी में संतुष्ट रहें। और जिस बात पर आपको पूरा भरोसा हो सकता है, वह है 'मैं हूं'। इसी पर टिके रहें और बाकी सब कुछ त्याग दें। यही योग है।
प्रश्न: मैं केवल मौखिक रूप से ही अस्वीकार कर सकता हूँ। ज़्यादा से ज़्यादा मुझे बस इतना याद रहता है कि मैं यह दोहराऊँ: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है। मैं इन सबसे परे हूँ।'
एम: ठीक है। पहले मौखिक रूप से, फिर मानसिक और भावनात्मक रूप से, और फिर कर्म में। अपने भीतर की वास्तविकता पर ध्यान दें, वह प्रकट हो जाएगी। यह मक्खन बनाने के लिए मलाई को मथने जैसा है। इसे सही ढंग से और लगन से करें, परिणाम अवश्य मिलेगा।
प्रश्न: किसी प्रक्रिया का परिणाम निरपेक्ष कैसे हो सकता है?
एम: आप सही कह रहे हैं, सापेक्ष से निरपेक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन सापेक्ष निरपेक्ष को रोक सकता है, ठीक वैसे ही जैसे मलाई को न मथने से मक्खन अलग नहीं होता। वास्तविकता ही प्रेरणा उत्पन्न करती है; भीतरी

शक्ति बाह्य को प्रेरित करती है और बाह्य शक्ति रुचि और प्रयास से प्रतिक्रिया करती है। लेकिन अंततः न तो कोई भीतरी शक्ति है, न बाह्य; चेतना का प्रकाश ही सृष्टिकर्ता और सृष्टि, अनुभवकर्ता और अनुभव, शरीर और देहधारी, सब कुछ है। इस सब को उत्पन्न करने वाली शक्ति का ध्यान रखें और आपकी समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी।
प्रश्न: प्रक्षेपण शक्ति कौन सी है?
एम: यह इच्छा से प्रेरित कल्पना है।
प्रश्न: मुझे यह सब पता है, लेकिन इस पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं है।
एम: यह भी तुम्हारा एक भ्रम है, जो परिणामों की लालसा से पैदा हुआ है। प्रश्न: उद्देश्यपूर्ण कार्रवाई में क्या गलत है?
एम: यह बात लागू नहीं होती। इन मामलों में उद्देश्य या कर्म का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आपको बस सुनना, याद रखना और मनन करना है। यह भोजन ग्रहण करने जैसा है। आप बस इतना कर सकते हैं कि निवाला लें, चबाएं और निगल लें। बाकी सब कुछ अचेतन और स्वतःस्फूर्त है। सुनो, याद रखो और समझो - मन ही अभिनेता और रंगमंच दोनों है। सब कुछ मन का है और आप मन नहीं हैं। मन जन्म लेता है और पुनर्जन्म लेता है, आप नहीं। मन ही संसार और उसकी सारी अद्भुत विविधता का सृजन करता है। ठीक वैसे ही जैसे एक अच्छे नाटक में तरह-तरह के पात्र और परिस्थितियाँ होती हैं, वैसे ही संसार बनाने के लिए हर चीज की थोड़ी-थोड़ी मात्रा आवश्यक होती है।
प्रश्न: नाटक में कोई भी पीड़ित नहीं होता।
एम: जब तक कोई स्वयं को इससे न जोड़ ले। स्वयं को संसार से न जोड़ें और आपको कष्ट नहीं होगा।
प्रश्न: दूसरे लोग करेंगे।
एम: तो फिर, हर हाल में अपनी दुनिया को परिपूर्ण बनाओ। अगर तुम ईश्वर में विश्वास रखते हो, तो उसके साथ मिलकर काम करो। अगर नहीं रखते, तो एक हो जाओ।
या तो दुनिया को एक नाटक की तरह देखो, या फिर पूरी ताकत से उसमें जुट जाओ।
या फिर दोनों।
प्रश्न: मरणासन्न व्यक्ति की पहचान का क्या होता है? उसकी मृत्यु के बाद उसकी पहचान का क्या होता है? क्या आप इस बात से सहमत हैं कि वह पहचान किसी दूसरे शरीर में बनी रहती है?
एम: यह जारी रहता है और फिर भी नहीं। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे कैसे देखते हैं। आख़िर पहचान क्या है? स्मृति में निरंतरता? क्या स्मृति के बिना पहचान की बात की जा सकती है?
प्रश्न: जी हाँ, मैं कर सकता हूँ। बच्चा भले ही अपने माता-पिता को न जानता हो, फिर भी उसमें वंशानुगत लक्षण मौजूद होंगे।
एम: उनकी पहचान कौन करता है? कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी स्मृति उन्हें दर्ज करने और तुलना करने की क्षमता हो। क्या आप नहीं समझते कि स्मृति आपके मानसिक जीवन का ताना-बाना है? और पहचान महज़ समय और स्थान में घटित घटनाओं का एक क्रम है। इस क्रम को बदल दो, तो व्यक्ति ही बदल जाता है।
प्रश्न: पैटर्न महत्वपूर्ण और सार्थक है। इसका अपना महत्व है। किसी बुने हुए डिज़ाइन को केवल रंगीन धागों का समूह बताकर आप उसकी सबसे महत्वपूर्ण बात - उसकी सुंदरता - को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। या किसी किताब को स्याही के धब्बों वाला कागज़ बताकर आप उसके अर्थ को ही नकार देते हैं। पहचान इसलिए मूल्यवान है क्योंकि यह व्यक्तित्व का आधार है; यही हमें अद्वितीय और अनमोल बनाता है। 'मैं हूँ', यही विशिष्टता की सहज अनुभूति है।

एम: हाँ और ना। पहचान, व्यक्तित्व, विशिष्टता – ये मन के सबसे मूल्यवान पहलू हैं, लेकिन केवल मन के ही। 'मैं ही सब कुछ हूँ' का अनुभव भी उतना ही मान्य है। विशिष्ट और सार्वभौमिक अविभाज्य हैं। ये नामहीन के दो पहलू हैं, जिन्हें बाहर से और भीतर से देखा जा सकता है। दुर्भाग्य से, शब्द केवल उल्लेख करते हैं, व्यक्त नहीं करते। शब्दों से परे जाने का प्रयास करें। प्रश्न: मृत्यु के साथ क्या समाप्त होता है?
एम: 'मैं यह शरीर हूँ' का विचार मर जाता है; साक्षी नहीं मरता।
प्रश्न: जैन धर्म में अनेक साक्षी होते हैं, जो सदा अलग-अलग रहते हैं।
एम: यह उनकी परंपरा है जो कुछ महान व्यक्तियों के अनुभवों पर आधारित है। एक साक्षी स्वयं को असंख्य शरीरों में 'मैं हूँ' के रूप में प्रतिबिंबित करता है। जब तक शरीर, चाहे वे कितने भी सूक्ष्म क्यों न हों, बने रहते हैं, 'मैं हूँ' अनेक रूपों में प्रकट होता है। शरीर से परे केवल एक ही है।
प्रश्न: ईश्वर?
एम: सृष्टिकर्ता वह व्यक्ति है जिसका शरीर संसार है। नामहीन सत्ता सभी देवताओं से परे है।
प्रश्न: श्री रमण महर्षि का निधन हो गया। इससे उनके जीवन में क्या फर्क पड़ा?
एम: कुछ नहीं। वह जो थे, वही हैं - परम वास्तविकता।
प्रश्न: लेकिन आम आदमी के लिए मृत्यु एक बड़ा अंतर पैदा करती है।
एम: मृत्यु से पहले वह स्वयं को जैसा समझता है, मृत्यु के बाद भी वही बना रहता है। उसकी आत्म-छवि कायम रहती है।
प्रश्न: कुछ दिन पहले ज्ञानियों द्वारा ध्यान आदि के लिए पशु खाल के उपयोग के बारे में चर्चा हुई थी। मुझे यह बात समझ नहीं आई। रीति-रिवाजों और परंपराओं का हवाला देकर हर बात को सही ठहराना आसान है। रीति-रिवाज क्रूर हो सकते हैं और परंपराएँ भ्रष्ट कर सकती हैं। वे कारण तो बताते हैं, लेकिन औचित्य साबित नहीं करते।
एम: मेरा यह कहने का कोई इरादा नहीं था कि आत्म-साक्षात्कार के बाद अराजकता आती है। एक मुक्त व्यक्ति अत्यंत नियमनिष्ठ होता है। लेकिन उसके नियम उसके वास्तविक स्वरूप के नियम होते हैं, न कि उसके समाज के। वह परिस्थितियों और आवश्यकता के अनुसार इनका पालन करता है या इन्हें तोड़ता है। लेकिन वह कभी भी मनमौजी और अव्यवस्थित नहीं होगा।
प्रश्न: मैं रीति-रिवाज और आदत के आधार पर औचित्य को स्वीकार नहीं कर सकता।
एम: समस्या हमारे अलग-अलग दृष्टिकोणों में निहित है। आप शरीर-मन के दृष्टिकोण से बात करते हैं, जबकि मेरा दृष्टिकोण साक्षी भाव से है। अंतर मूलभूत है।
प्रश्न: फिर भी, क्रूरता तो क्रूरता ही है।
एम: कोई भी चीज़ आपको क्रूर होने के लिए मजबूर नहीं करती।
प्रश्न: दूसरों की क्रूरता का फायदा उठाना परोक्ष क्रूरता है।
एम: अगर आप जीवन प्रक्रिया को ध्यान से देखें, तो आपको हर जगह क्रूरता नज़र आएगी, क्योंकि जीवन ही जीवन का पोषण करता है। यह एक सच्चाई है, लेकिन इससे आपको जीवित होने का अपराधबोध नहीं होता। आपने अपनी माँ को अंतहीन कष्ट देकर क्रूरतापूर्ण जीवन की शुरुआत की। अपने जीवन के अंतिम दिन तक आप भोजन, वस्त्र, आश्रय के लिए संघर्ष करेंगे, अपने शरीर को थामे रखेंगे, उसकी ज़रूरतों के लिए लड़ेंगे, उसे सुरक्षित रखना चाहेंगे, एक ऐसी दुनिया में

जहाँ असुरक्षा और मृत्यु व्याप्त है। पशु के दृष्टिकोण से देखा जाए तो मारा जाना मृत्यु का सबसे बुरा रूप नहीं है; निश्चित रूप से बीमारी और बुढ़ापे की कमज़ोरी से बेहतर है। क्रूरता उद्देश्य में निहित है, तथ्य में नहीं। हत्या करने वाले को पीड़ा होती है, मारे जाने वाले को नहीं। प्रश्न: सहमत हूँ; तो फिर शिकारियों और कसाइयों की सेवाएं स्वीकार नहीं करनी चाहिए।
एम: कौन चाहता है कि आप इसे स्वीकार करें?
प्रश्न: आप स्वीकार करते हैं।
एम: आप मुझे इस तरह देखते हैं! आप कितनी जल्दी आरोप लगाते हैं, निंदा करते हैं, सजा सुनाते हैं और फांसी दे देते हैं! मुझसे शुरुआत क्यों करते हैं, खुद से क्यों नहीं?
प्रश्न: आप जैसे व्यक्ति को एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।
एम: क्या तुम मेरे उदाहरण का अनुसरण करने के लिए तैयार हो? मैं संसार से विमुख हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए, जीने की इच्छा भी नहीं। मेरे जैसा बनो, मेरे जैसा करो। तुम मुझे मेरे कपड़ों और खान-पान से आंक रहे हो; जबकि मैं केवल तुम्हारे इरादों को देखता हूँ; यदि तुम शरीर और मन को मानकर उसी के अनुसार कार्य करते हो, तो तुम सबसे बड़ी क्रूरता के दोषी हो - अपने वास्तविक अस्तित्व के प्रति क्रूरता। इसके आगे अन्य सभी क्रूरताएँ महत्वहीन हैं।
प्रश्न: आप यह कहकर शरण ले रहे हैं कि आप शरीर नहीं हैं। लेकिन आप शरीर के नियंत्रक हैं और इसके सभी कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं। शरीर को पूर्ण स्वायत्तता देना मूर्खता और पागलपन होगा!
एम: शांत हो जाओ। मैं भी मांस या फर के लिए जानवरों की हत्या के खिलाफ हूँ, लेकिन मैं इसे सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं देता। शाकाहार एक सराहनीय उद्देश्य है, लेकिन सबसे ज़रूरी नहीं; सभी उद्देश्यों की पूर्ति उसी व्यक्ति द्वारा सर्वोत्तम तरीके से की जा सकती है जो अपने मूल स्रोत की ओर लौट आया हो।
प्रश्न: जब मैं श्री रामनाश्रम में था, तो मैंने महसूस किया कि भगवान हर जगह व्याप्त हैं, सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञानी हैं।
एम: आपके पास आवश्यक आस्था थी। जो लोग उसमें सच्ची आस्था रखते हैं, वे उसे हर जगह और हर समय देखेंगे। सब कुछ आपकी आस्था के अनुसार होता है और आपकी आस्था ही आपकी इच्छा का स्वरूप है।
प्रश्न: क्या स्वयं पर आपका विश्वास भी एक प्रकार की इच्छा ही नहीं है? एम: जब मैं कहता हूँ: 'मैं हूँ', तो मेरा तात्पर्य शरीर को केंद्र मानकर चलने वाली किसी पृथक सत्ता से नहीं है। मेरा तात्पर्य संपूर्ण अस्तित्व, चेतना के सागर, उस संपूर्ण ब्रह्मांड से है जिसमें सब कुछ विद्यमान और ज्ञात है। मुझे किसी चीज की इच्छा नहीं है क्योंकि मैं शाश्वत रूप से पूर्ण हूँ। प्रश्न: क्या आप दूसरों के आंतरिक जीवन को छू सकते हैं?
एम: मैं ही जनता हूँ।
प्रश्न: मेरा तात्पर्य सार या तत्व की समानता या रूप की एकरूपता से नहीं है। मेरा तात्पर्य दूसरों के मन और हृदय में वास्तविक प्रवेश करने और उनके व्यक्तिगत अनुभवों में सहभागिता करने से है। क्या आप मेरे साथ दुख और सुख का अनुभव कर सकते हैं, या आप केवल अवलोकन और तुलना के आधार पर ही मेरे भावों का अनुमान लगाते हैं?

एम: सभी प्राणी मुझमें समाहित हैं। लेकिन दूसरे मस्तिष्क की सामग्री को अपने मस्तिष्क में उतारना विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण से कुछ भी असंभव नहीं है।
प्रश्न: मैं न तो आपकी छवि हूँ, न ही आप मेरी। मैं स्वयं में एक अस्तित्व हूँ, मात्र आपकी रचना नहीं। कल्पना और छवि पर आधारित यह भद्दा दर्शन मुझे भाता नहीं। आप मुझे वास्तविकता से वंचित कर रहे हैं। कौन किसकी छवि है? आप मेरी छवि हैं या मैं आपकी? या मैं अपनी ही छवि में एक छवि हूँ! नहीं, कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है।
एम: शब्द अपनी खोखली प्रकृति को प्रकट करते हैं। वास्तविकता का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे अनुभव करना ही पड़ता है। मैं अभी जो हूं, उसके लिए मुझे इससे बेहतर शब्द नहीं मिल रहे। मेरी बातें शायद हास्यास्पद लगें, लेकिन मेरे शब्दों का सार सर्वोच्च सत्य है। चाहे हम कितना भी तर्क-वितर्क करें, सब एक ही है। और सब कुछ उस एक स्रोत और हर इच्छा के लक्ष्य को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है, जिसे हम सब 'मैं हूं' के नाम से जानते हैं।
प्रश्न: इच्छा की जड़ में पीड़ा ही होती है। मूल प्रवृत्ति पीड़ा से मुक्ति पाना है।
एम: दर्द की जड़ क्या है? स्वयं का अज्ञान। इच्छा की जड़ क्या है? स्वयं को खोजने की तीव्र इच्छा। समस्त सृष्टि अपने लिए परिश्रम करती है और तब तक विश्राम नहीं करती जब तक वह अपने आप में लौट न जाए।
प्रश्न: यह कब वापस आएगा?
एम: यह आपकी इच्छा अनुसार कभी भी वापस आ सकता है।
प्रश्न: और दुनिया?
एम: आप इसे अपने साथ ले जा सकते हैं।
प्रश्न: क्या मुझे पूर्णता प्राप्त करने तक दुनिया की मदद करने से पहले इंतजार करना चाहिए?
एम: बेशक दुनिया की मदद करो। इससे शायद ज्यादा मदद न मिले, लेकिन कोशिश करने से तुम्हारा विकास होगा। दुनिया की मदद करने की कोशिश करने में कोई बुराई नहीं है।
प्रश्न: निश्चित रूप से ऐसे लोग थे, आम लोग, जिन्होंने बहुत मदद की।
एम: जब दुनिया की मदद करने का समय आता है, तो कुछ लोगों को महान परिवर्तन लाने की इच्छाशक्ति, बुद्धि और शक्ति प्रदान की जाती है।

37. दर्द और सुख से परे परमानंद है

महाराज: सर्वप्रथम आपको यह समझना होगा कि आप स्वयं सहित हर चीज के प्रमाण हैं। कोई भी आपके अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि उसके अस्तित्व की पुष्टि पहले आपको ही करनी होगी। आपका अस्तित्व और आपका ज्ञान किसी के ऋणी नहीं हैं। याद रखिए, आप पूर्णतः स्वतंत्र हैं। आप कहीं से नहीं आते, कहीं नहीं जाते। आप शाश्वत सत्ता और चेतना हैं।
प्रश्नकर्ता: हम दोनों में एक बुनियादी अंतर है। आप वास्तविकता को जानते हैं, जबकि मैं केवल अपने मन की कार्यप्रणाली को जानता हूँ। इसलिए, आप जो कहते हैं वह एक है, और मैं जो सुनता हूँ वह दूसरा है। आप जो कहते हैं वह सत्य है; मैं जो समझता हूँ वह असत्य है, भले ही शब्द एक ही हों। हमारे बीच एक खाई है। इस खाई को कैसे भरा जाए?

एम: अपने आप को जैसा समझते हो वैसा बनने का विचार छोड़ दो, और कोई अंतर नहीं रहेगा। खुद को अलग मानकर तुमने ही यह अंतर पैदा किया है। इसे पार करने की ज़रूरत नहीं है। बस इसे पैदा मत करो। सब कुछ तुम हो और तुम्हारा ही है। तुम्हारे अलावा कोई और नहीं है। यह एक सच्चाई है।
प्रश्न: कितनी अजीब बात है! वही शब्द जो आपके लिए सत्य हैं, मेरे लिए असत्य हैं। 'कोई और नहीं है'। यह तो स्पष्ट रूप से असत्य है!
एम: चाहे वे बातें सच हों या झूठ, शब्दों का कोई महत्व नहीं। मायने रखता है आपके मन में खुद के बारे में जो धारणा है, वही आपको रोकती है। उसे त्याग दीजिए।
प्रश्न: बचपन से ही मुझे यह सिखाया गया है कि मेरी पहचान मेरे नाम और आकार तक ही सीमित है। इसके विपरीत एक मात्र कथन से यह मानसिक धारणा नहीं मिटेगी। इसके लिए नियमित रूप से मस्तिष्क-प्रवेश की आवश्यकता है—यदि संभव हो तो।
एम: आप इसे ब्रेनवाशिंग कहते हैं, मैं इसे योग कहता हूँ - मानसिक रूढ़ियों को तोड़ना। आपको एक ही विचार को बार-बार सोचने के लिए विवश नहीं होना चाहिए। आगे बढ़ो!
प्रश्न: कहना आसान है, करना मुश्किल।
एम: बचकानापन मत दिखाओ! कष्ट सहने से बेहतर है बदलना। बस, अपने बचकानेपन से बाहर निकलो, यही बात है।
प्रश्न: ऐसी चीजें की नहीं जातीं। ये तो बस हो जाती हैं।
एम: हर समय सब कुछ घटित होता रहता है, लेकिन आपको इसके लिए तैयार रहना चाहिए। तत्परता ही परिपक्वता है। आप वास्तविकता को इसलिए नहीं देख पाते क्योंकि आपका मन इसके लिए तैयार नहीं है।
प्रश्न: यदि वास्तविकता ही मेरा वास्तविक स्वभाव है, तो मैं कभी अप्रस्तुत कैसे हो सकता हूँ?
एम: तैयार न होना डर का प्रतीक है। आप अपने अस्तित्व से डरते हैं। आपका लक्ष्य संपूर्णता है। लेकिन आपको डर है कि आप अपनी पहचान खो देंगे। यह बचकानापन है, खिलौनों से, अपनी इच्छाओं और भय से, अपने विचारों और धारणाओं से चिपके रहना है। इन सबको त्याग दो और वास्तविकता को प्रकट होने के लिए तैयार हो जाओ। इस आत्म-अभिव्यक्ति को शब्दों में सबसे अच्छे से व्यक्त किया जा सकता है: 'मैं हूँ'। इसके अलावा किसी और का अस्तित्व नहीं है। इस बात का आपको पूर्ण विश्वास है।
प्रश्न: 'मैं हूँ', बेशक, लेकिन 'मैं जानता हूँ' भी। और मैं जानता हूँ कि मैं फलां-फलां हूँ, शरीर का स्वामी हूँ, और अन्य स्वामियों के साथ अनेक संबंधों में हूँ।
एम: यह सब स्मृति है जो वर्तमान में स्थानांतरित हो गई है।
प्रश्न: मैं केवल वर्तमान के बारे में ही निश्चित हो सकता हूँ। अतीत और भविष्य, स्मृति और कल्पना, ये सभी मानसिक अवस्थाएँ हैं, लेकिन मैं केवल इन्हीं को जानता हूँ और ये वर्तमान हैं। आप मुझसे इन्हें त्यागने के लिए कह रहे हैं। वर्तमान को कैसे त्यागा जा सकता है?
एम: आप चाहे चाहें या न चाहें, आप हर समय भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं। प्रश्न: मैं वर्तमान से वर्तमान की ओर बढ़ रहा हूँ - मैं बिल्कुल भी नहीं हिलता। बाकी सब कुछ हिलता है - मैं नहीं।
एम: ठीक है। लेकिन आपका मन गतिशील है। वर्तमान क्षण में आप गतिशील और अचल दोनों हैं। अब तक आपने स्वयं को गतिशील समझा और अचल को अनदेखा किया। अपने

मन को उलट-पलट कर देखिए। गतिशील को अनदेखा कीजिए और आप स्वयं को सर्वव्यापी, अपरिवर्तनीय वास्तविकता पाएंगे, जो अवर्णनीय है, परन्तु चट्टान की तरह ठोस है।
प्रश्न: यदि यह अभी हो रहा है, तो मुझे इसकी जानकारी क्यों नहीं है?
एम: क्योंकि आप इस धारणा से चिपके हुए हैं कि आप इसके बारे में अनजान हैं। इस धारणा को छोड़ दें।
प्रश्न: इससे मुझे कोई जानकारी नहीं मिलती।
एम: रुको। तुम एक ही समय में दीवार के दोनों ओर रहना चाहते हो। तुम रह सकते हो, लेकिन इसके लिए तुम्हें दीवार हटानी होगी। या फिर यह समझना होगा कि दीवार और उसके दोनों ओर एक ही स्थान हैं, जिस पर 'यहाँ' या 'वहाँ' जैसी कोई धारणा लागू नहीं होती।
प्रश्न: उपमाओं से कुछ सिद्ध नहीं होता। मेरी एकमात्र शिकायत यही है: मुझे वह क्यों नहीं दिखता जो आपको दिखता है, आपके शब्द मेरे मन में सत्य क्यों नहीं लगते? बस इतना ही बता दीजिए; बाकी सब बाद में हो सकता है। आप बुद्धिमान हैं और मैं मूर्ख; आप देखिए, मुझे समझ नहीं आता। मुझे अपनी बुद्धिमत्ता कहाँ और कैसे मिलेगी?
एम: अगर आप खुद को बेवकूफ समझते हैं, तो आप बिल्कुल भी बेवकूफ नहीं हैं! प्रश्न: जिस प्रकार स्वयं को बीमार जानने से मैं स्वस्थ नहीं हो जाता, उसी प्रकार स्वयं को मूर्ख जानने से मैं बुद्धिमान नहीं हो जाता।
एम: क्या बीमार होने का पता चलने के लिए शुरुआत में स्वस्थ होना जरूरी नहीं है?
प्रश्न: ओह, नहीं। मैं तुलना करके समझता हूँ। अगर मैं जन्म से अंधा हूँ और आप मुझसे कहते हैं कि आप चीजों को बिना छुए ही जानते हैं, जबकि मुझे जानने के लिए छूना पड़ता है, तो मैं जानता हूँ कि मैं अंधा हूँ क्योंकि मुझे पता ही नहीं कि देखने का क्या अर्थ होता है। इसी तरह, जब आप ऐसी बातें कहते हैं जिन्हें मैं समझ नहीं पाता, तो मैं जानता हूँ कि मुझमें कुछ कमी है। आप मुझे अपने बारे में इतनी अद्भुत बातें बता रहे हैं; आपके अनुसार मैं शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, परम सुखी, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक, समस्त जीवन का स्रोत, अस्तित्व का हृदय, समस्त प्राणी का स्वामी और प्रियतम हूँ। आप मुझे परम सत्य, समस्त अस्तित्व के स्रोत और लक्ष्य के समान मानते हैं। मैं बस पलकें झपकाता हूँ, क्योंकि मैं स्वयं को इच्छाओं और भय का एक छोटा सा बंडल, दुख का एक बुलबुला, अंधकार के सागर में चेतना की एक क्षणभंगुर चमक मानता हूँ।
एम: दर्द से पहले तुम थे। दर्द के चले जाने के बाद भी तुम बने रहे। दर्द क्षणभंगुर है, तुम नहीं।
प्रश्न: मुझे खेद है, लेकिन मैं वह नहीं देख पा रहा जो आप देख रहे हैं। मेरे जन्म से लेकर मृत्यु तक, सुख और दुख मेरे जीवन का ताना-बाना बुनेंगे। जन्म से पहले और मृत्यु के बाद के अस्तित्व के बारे में मुझे कुछ भी नहीं पता। मैं न तो आपको स्वीकार करता हूँ और न ही अस्वीकार करता हूँ। मैं आपकी बातें सुनता हूँ, लेकिन उन्हें समझ नहीं पाता।
एम: अब आपको होश आ गया है, है ना?
प्रश्न: कृपया मुझसे पहले और बाद के बारे में न पूछें। मुझे केवल वर्तमान स्थिति का ही ज्ञान है।
एम: काफी है। आप सचेत हैं। इसे बनाए रखें। कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जब आप सचेत नहीं होते। इसे अचेतन अवस्था कहते हैं।

प्रश्न: बेहोश होना?
एम: चेतना और अचेतना का यहाँ कोई संबंध नहीं है। अस्तित्व चेतना में निहित है, सार चेतना से स्वतंत्र है।
प्रश्न: क्या यह शून्य है? क्या यह मौन है?
एम: विस्तार से बताने की क्या आवश्यकता है? अस्तित्व चेतना में व्याप्त है और उससे परे है। वस्तुनिष्ठ चेतना शुद्ध चेतना का एक भाग है, उससे परे नहीं।
प्रश्न: ऐसी शुद्ध अवस्था का ज्ञान कैसे होता है जो न तो चेतन है और न ही अचेतन? समस्त ज्ञान तो चेतना में ही निहित है। मन की निष्क्रियता जैसी कोई अवस्था हो सकती है। क्या तब चेतना साक्षी के रूप में प्रकट होती है?
एम: साक्षी केवल घटनाओं को दर्ज करता है। मन के निष्क्रिय होने पर 'मैं हूँ' की भावना भी विलीन हो जाती है। मन के बिना 'मैं हूँ' का कोई अस्तित्व नहीं है।
प्रश्न: मन के बिना का अर्थ है विचारों के बिना। 'मैं हूँ' एक विचार के रूप में शांत हो जाता है। 'मैं हूँ' एक अस्तित्व की भावना के रूप में बना रहता है।
एम: मन के साथ ही सभी अनुभव समाप्त हो जाते हैं। मन के बिना न तो अनुभवकर्ता हो सकता है और न ही अनुभव।
प्रश्न: क्या गवाह वहां नहीं रहता?
एम: साक्षी केवल अनुभव की उपस्थिति या अनुपस्थिति को दर्ज करता है। यह अपने आप में एक अनुभव नहीं है, बल्कि यह तब अनुभव बन जाता है जब यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं साक्षी हूँ'।
प्रश्न: मुझे बस इतना पता है कि कभी मन काम करता है और कभी रुक जाता है। मानसिक शांति के इस अनुभव को मैं मन की निष्क्रियता कहता हूँ।
एम: इसे मौन कहो, शून्य कहो, या ठहराव कहो, असलियत यह है कि तीनों - अनुभवकर्ता, अनुभव करना, अनुभव - मौजूद नहीं हैं। साक्षी भाव में, जागरूकता में, आत्मचेतना में, किसी चीज़ के होने का बोध नहीं होता। अज्ञात अस्तित्व बना रहता है।
प्रश्न: क्या यह अचेतन अवस्था है?
एम: किसी भी चीज़ के संदर्भ में, यह उसका विपरीत है। यह सभी विपरीतताओं के बीच और उससे परे भी है। यह न तो चेतना है, न ही अचेतना, न ही मध्य में है, न ही इन दोनों से परे है। यह अपने आप में है, किसी भी ऐसी चीज़ के संदर्भ में नहीं जिसे अनुभव या उसकी अनुपस्थिति कहा जा सके।
प्रश्न: कितना अजीब है! आप तो इसे एक अनुभव की तरह बता रहे हैं।
एम: जब मैं इसके बारे में सोचता हूँ तो यह एक अनुभव बन जाता है।
प्रश्न: क्या यह उस अदृश्य प्रकाश की तरह है, जो फूल द्वारा ग्रहण किए जाने पर रंग में बदल जाता है?
एम: जी हाँ, आप ऐसा कह सकते हैं। यह रंग में तो है, लेकिन रंग नहीं है। प्रश्न: वही पुराना नागार्जुन का चार गुना निषेध: न यह, न वह, न दोनों, न ही कोई एक। मेरा दिमाग चकरा जाता है!
एम: आपकी समस्या इस धारणा से उत्पन्न होती है कि वास्तविकता चेतना की एक अवस्था है, अनेक अवस्थाओं में से एक। आप अक्सर कहते हैं: "यह वास्तविक है। वह वास्तविक नहीं है। और यह आंशिक रूप से वास्तविक है, आंशिक रूप से अवास्तविक है", मानो वास्तविकता कोई गुण या विशेषता हो जो अलग-अलग मात्रा में मौजूद हो।

प्रश्न: चलिए इसे दूसरे तरीके से समझते हैं। आखिर, चेतना तभी समस्या बनती है जब वह कष्टदायी हो। एक सदा आनंदमय अवस्था में तो प्रश्न ही नहीं उठते। हम पाते हैं कि समस्त चेतना सुख और दुख का मिश्रण है। ऐसा क्यों?
एम: सभी चेतना सीमित है और इसलिए कष्टदायी है। चेतना की जड़ में इच्छा निहित है, अनुभव करने की तीव्र इच्छा।
प्रश्न: क्या आपका तात्पर्य यह है कि इच्छा के बिना चेतना नहीं हो सकती? और अचेतन होने का क्या लाभ है? यदि मुझे दर्द से मुक्ति के लिए सुख का त्याग करना पड़े, तो बेहतर है कि मैं दोनों को ही रखूँ।
एम: दर्द और सुख से परे परमानंद है।
प्रश्न: अचेतन आनंद का क्या उपयोग है?
एम: न तो चेतन, न ही अचेतन। वास्तविक।
प्रश्न: चेतना के प्रति आपकी क्या आपत्ति है?
एम: यह एक बोझ है। शरीर का अर्थ है बोझ। संवेदनाएं, इच्छाएं, विचार - ये सब बोझ हैं। सारी चेतना संघर्ष से भरी है।
प्रश्न: वास्तविकता को सच्चे अस्तित्व, शुद्ध चेतना और अनंत आनंद के रूप में वर्णित किया गया है। इसमें पीड़ा का क्या संबंध है?
एम: सुख और दुख दोनों होते हैं, लेकिन सुख का मूल्य दुख है और दुख का फल। जीवन में भी अक्सर आप दूसरों को दुख देकर प्रसन्न करते हैं और दूसरों को प्रसन्न करके दुखी करते हैं। सुख और दुख को एक ही समझना ही शांति है। प्रश्न: यह सब बेशक बहुत दिलचस्प है, लेकिन मेरा लक्ष्य इससे कहीं अधिक सरल है। मैं जीवन में अधिक सुख और कम दुख चाहता हूँ। मुझे क्या करना चाहिए? एम: जब तक चेतना है, तब तक सुख और दुख अवश्य होंगे। 'मैं हूं', यानी चेतना का स्वभाव ही है कि वह स्वयं को विपरीतताओं से जोड़ती है।
प्रश्न: तो फिर इन सबका मुझे क्या लाभ है? इससे मुझे संतुष्टि नहीं मिलती। एम: तुम कौन हो, जो असंतुष्ट हो?
प्रश्न: मैं दर्द और आनंद का आदमी हूँ।
एम: दर्द और सुख दोनों ही आनंद हैं। मैं यहाँ आपके सामने बैठा हूँ और अपने प्रत्यक्ष और अपरिवर्तनीय अनुभव से आपको बता रहा हूँ कि दर्द और सुख आनंद के सागर में लहरों के शिखर और घाटियाँ हैं। गहराई में पूर्ण परिपूर्णता व्याप्त है।
प्रश्न: क्या आपका अनुभव स्थिर है?
एम: यह शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।
प्रश्न: मुझे केवल सुख की इच्छा और दुख के भय का ही ज्ञान है।
एम: यही तो तुम अपने बारे में सोचते हो। इसे बंद करो। अगर किसी आदत को एक झटके में नहीं तोड़ सकते, तो सोचने के उस परिचित तरीके पर विचार करो और उसकी असत्यता को समझो। आदतों पर सवाल उठाना मन का कर्तव्य है। मन ने जो बनाया है, उसे ही नष्ट करना होगा। या फिर यह समझ लो कि मन के बाहर कोई इच्छा नहीं होती और उससे दूर रहो।
प्रश्न: सच कहूँ तो, मुझे हर चीज़ को मन की उपज बताने वाली इस व्याख्या पर विश्वास नहीं है। मन तो बस एक साधन है, जैसे आँख एक साधन है। क्या आप कह सकते हैं कि बोध ही सृजन है? मैं दुनिया को खिड़की के बाहर से देखता हूँ, खिड़की के अंदर से नहीं। आपकी सारी बातें एक समान आधार के कारण सही बैठती हैं, लेकिन मुझे नहीं पता कि आपका आधार वास्तविकता में है या केवल मन में। मैं तो बस उसका एक मानसिक चित्र ही बना सकता हूँ। आपके लिए इसका क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता।

एम: जब तक तुम मन में अपना रुख बनाए रखोगे, तब तक तुम मुझे मन में देख पाओगे।
प्रश्न: समझने के लिए शब्द कितने अपर्याप्त हैं!
एम: बिना शब्दों के, क्या समझा जा सकता है? समझने की आवश्यकता गलतफहमी से उत्पन्न होती है। मैं जो कहता हूँ वह सत्य है, परन्तु आपके लिए यह मात्र एक सिद्धांत है। आप यह कैसे जानेंगे कि यह सत्य है? सुनिए, याद रखिए, मनन कीजिए, कल्पना कीजिए, अनुभव कीजिए। इसे अपने दैनिक जीवन में भी उतारिए। मुझ पर धैर्य रखिए और सबसे बढ़कर अपने आप पर धैर्य रखिए, क्योंकि आप ही अपनी एकमात्र बाधा हैं। मार्ग आपके भीतर से होकर, आपके परे जाता है। जब तक आप केवल विशिष्ट को ही वास्तविक, चेतन और सुखी मानते रहेंगे और अद्वैत वास्तविकता को काल्पनिक, एक अमूर्त अवधारणा मानकर अस्वीकार करते रहेंगे, तब तक आप मुझे अवधारणाओं और अमूर्त विचारों का संग्रह करते हुए पाएंगे। परन्तु एक बार जब आप अपने भीतर के वास्तविक को छू लेंगे, तो आप मुझे उस चीज़ का वर्णन करते हुए पाएंगे जो आपके लिए सबसे निकट और प्रिय है।

38. आध्यात्मिक अभ्यास इच्छाशक्ति का अभिकथन और पुन: अभिकथन है।

प्रश्नकर्ता: जो पश्चिमी लोग कभी-कभार आपसे मिलने आते हैं, उन्हें एक अजीब सी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। एक मुक्त पुरुष, एक आत्मज्ञानी पुरुष, एक आत्म-ज्ञानी पुरुष, एक ईश्वर-ज्ञानी पुरुष, संसार से परे पुरुष की अवधारणा ही उनके लिए अकल्पनीय है। उनकी ईसाई संस्कृति में केवल संत की ही छवि है: एक धर्मनिष्ठ, विधि-पालन करने वाला, ईश्वर से भयभीत, सहोपकारी, प्रार्थनाशील, कभी-कभी समाधि की अवस्था में रहने वाला और कुछ चमत्कारों से सिद्ध। ज्ञानी की अवधारणा ही पश्चिमी संस्कृति के लिए पराई है, कुछ अनोखी और अविश्वसनीय सी। यहां तक कि जब उनके अस्तित्व को स्वीकार भी कर लिया जाता है, तो उन्हें संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, मानो वे अजीब शारीरिक मुद्राओं और मानसिक मनोवृत्तियों के कारण स्वयं उत्पन्न हुई परमानंद की स्थिति में हों। चेतना के एक नए आयाम की अवधारणा ही उन्हें अकल्पनीय और असंभव सी लगती है।
उन्हें ज्ञानी से उनके आत्मज्ञान के अनुभव, उसके कारणों और आरंभ, उसकी प्रगति और उपलब्धियों तथा दैनिक जीवन में उसके वास्तविक अभ्यास के बारे में सुनने का अवसर मिलेगा, जो उनके लिए सहायक होगा। उनकी कही गई कई बातें शायद विचित्र या अर्थहीन लगें, फिर भी वास्तविकता का अहसास, वास्तविक अनुभव का वातावरण बना रहेगा, जो अवर्णनीय होते हुए भी अत्यंत वास्तविक होगा, एक ऐसा केंद्र जहाँ से अनुकरणीय जीवन जिया जा सकता है।
महाराज: यह अनुभव अवर्णनीय हो सकता है। क्या कोई अनुभव को व्यक्त कर सकता है?
प्रश्न: जी हाँ, यदि कोई कलाकार है। कला का सार भावनाओं और अनुभवों का संचार करना है।
एम: संचार प्राप्त करने के लिए, आपको ग्रहणशील होना चाहिए।
प्रश्न: बिल्कुल। रिसीवर तो होना ही चाहिए। लेकिन अगर ट्रांसमीटर ही सिग्नल नहीं भेजता, तो रिसीवर का क्या फायदा?
एम: ज्ञानी सभी का होता है। वह अपने पास आने वाले हर व्यक्ति को बिना थके और पूरी तरह से अपना सब कुछ दे देता है। यदि वह देने वाला नहीं है, तो वह ज्ञानी नहीं है। उसके पास जो कुछ भी होता है, वह बाँट देता है।

प्रश्न: लेकिन क्या वह अपने बारे में बता सकता है?
एम: आपका मतलब है, क्या वह दूसरों को ज्ञानी बना सकता है? हाँ और ना। नहीं, क्योंकि ज्ञानी बनाए नहीं जाते, वे स्वयं को ज्ञानी के रूप में अनुभव करते हैं, जब वे अपने मूल स्वरूप, अपने वास्तविक स्वरूप में लौटते हैं। मैं आपको वह नहीं बना सकता जो आप पहले से ही हैं। मैं आपको केवल अपना यात्रा मार्ग बता सकता हूँ और आपको उस मार्ग पर चलने के लिए आमंत्रित कर सकता हूँ। प्रश्न: यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है। मेरा तात्पर्य उस आलोचनात्मक और संशयवादी पश्चिमी व्यक्ति से है जो चेतना की उच्च अवस्थाओं की संभावना को ही नकार देता है। हाल ही में मादक पदार्थों ने उसके अविश्वास को कुछ हद तक तोड़ दिया है, हालांकि उसके भौतिकवादी दृष्टिकोण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। मादक पदार्थ हों या न हों, शरीर ही प्राथमिक तथ्य है और मन गौण। मन के परे उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। बुद्ध के समय से ही आत्म-साक्षात्कार की अवस्था का वर्णन नकारात्मक शब्दों में किया गया है, जैसे 'न यह, न वह'। क्या यह अपरिहार्य है? क्या इसका वर्णन न कर पाना संभव है? मैं मानता हूँ कि जब वर्णित अवस्था शब्दों से परे हो, तो उसका शाब्दिक वर्णन पर्याप्त नहीं होगा। फिर भी यह शब्दों के भीतर भी है। कविता अव्यक्त को शब्दों में पिरोने की कला है।
एम: धार्मिक कवियों की कोई कमी नहीं है। आप जो चाहें, उनके माध्यम से सीख सकते हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरी शिक्षा सरल है: कुछ समय के लिए मुझ पर भरोसा करें और जो मैं कहता हूँ, उसका पालन करें। यदि आप दृढ़ रहेंगे, तो आप पाएंगे कि आपका भरोसा सही था।
प्रश्न: और उन लोगों के साथ क्या किया जाए जो रुचि तो रखते हैं, लेकिन भरोसा नहीं कर सकते?
एम: अगर वे मेरे साथ रह सकें, तो वे मुझ पर भरोसा करने लगेंगे। एक बार जब वे मुझ पर भरोसा करने लगेंगे, तो वे मेरी सलाह मानेंगे और खुद ही सब कुछ जान लेंगे।
प्रश्न: मैं अभी प्रशिक्षण के बारे में नहीं, बल्कि उसके परिणामों के बारे में पूछ रहा हूँ। आपने प्रशिक्षण लिया है और परिणाम भी। आप प्रशिक्षण के बारे में सब कुछ बताने को तैयार हैं, लेकिन परिणामों के बारे में बताने से इनकार कर देते हैं। या तो आप कहते हैं कि आपकी स्थिति शब्दों से परे है, या फिर कहते हैं कि कोई फर्क नहीं है; जहाँ हमें फर्क दिखता है, वहाँ आपको कुछ नहीं दिखता। दोनों ही मामलों में हमें आपकी स्थिति के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।
एम: जब आपको अपनी स्थिति का ज्ञान ही नहीं है, तो आप मेरी स्थिति का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जब ज्ञान प्राप्त करने का साधन ही न हो, तो क्या उसे पहले खोजना ज़रूरी नहीं है? यह ठीक वैसे ही है जैसे कोई अंधा व्यक्ति अपनी दृष्टि वापस पाने से पहले ही चित्रकला सीखना चाहता हो। आप मेरी स्थिति जानना चाहते हैं - लेकिन क्या आप अपनी पत्नी या नौकरानी की स्थिति जानते हैं?
प्रश्न: मैं केवल कुछ संकेत मांग रहा हूँ।
एम: ठीक है, मैंने आपको एक बहुत महत्वपूर्ण संकेत दिया है - जहाँ आपको अंतर दिखते हैं, वहाँ मुझे नहीं। मेरे लिए इतना ही काफी है। अगर आपको लगता है कि यह काफी नहीं है, तो मैं बस इतना ही दोहरा सकता हूँ; यह काफी है। इस पर गहराई से विचार करें और आप वही देखेंगे जो मैं देखता हूँ। आप तुरंत अंतर्दृष्टि चाहते हैं, यह भूलकर कि तुरंत मिलने वाली अंतर्दृष्टि से

पहले हमेशा एक लंबी तैयारी होती है। फल अचानक गिरता है, लेकिन पकने में समय लगता है। आखिरकार, जब मैं मुझ पर भरोसा करने की बात करता हूँ, तो यह केवल थोड़े समय के लिए होता है, बस इतना समय कि आप आगे बढ़ सकें। आप जितने अधिक गंभीर होंगे, आपको उतने ही कम विश्वास की आवश्यकता होगी, क्योंकि जल्द ही आप मुझ पर अपने विश्वास को सही पाएंगे। आप चाहते हैं कि मैं आपको साबित करूँ कि मैं भरोसेमंद हूँ! मैं कैसे कर सकता हूँ और मुझे क्यों करना चाहिए? आखिरकार, मैं आपको जो पेशकश कर रहा हूँ वह पश्चिमी विज्ञान में प्रचलित व्यावहारिक दृष्टिकोण है। जब कोई वैज्ञानिक किसी प्रयोग और उसके परिणामों का वर्णन करता है, तो आमतौर पर आप उसके कथनों को विश्वास के आधार पर स्वीकार करते हैं और उसके द्वारा वर्णित प्रयोग को दोहराते हैं। एक बार जब आपको वही या समान परिणाम मिल जाते हैं, तो आपको उस पर और भरोसा करने की आवश्यकता नहीं होती; आप अपने अनुभव पर भरोसा करते हैं। इससे उत्साहित होकर आप आगे बढ़ते हैं और अंत में लगभग समान परिणाम प्राप्त करते हैं।
प्रश्न: भारतीय मन संस्कृति और पालन-पोषण से आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए तैयार होता है। भारतीयों के लिए 'परम सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव' जैसे शब्द अर्थपूर्ण होते हैं और उनके अंतर्मन की गहराई से प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं। पश्चिमी लोगों के लिए इनका कोई विशेष महत्व नहीं होता; यहाँ तक कि अपने ईसाई धर्म में पले-बढ़े होने पर भी, वे ईश्वर की आज्ञाओं और ईसा मसीह के उपदेशों का पालन करने से आगे नहीं सोचते। सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान न केवल महत्वाकांक्षा से परे है, बल्कि कल्पना से भी परे है। कुछ भारतीय मुझसे कहते हैं: 'निराशाजनक। पश्चिमी व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाएगा, क्योंकि वह कर ही नहीं सकता। उसे आत्म-साक्षात्कार के बारे में कुछ मत बताओ; उसे एक उपयोगी जीवन जीने दो और भारत में पुनर्जन्म प्राप्त करने दो। तभी उसे मौका मिलेगा।' कुछ कहते हैं: 'सत्य सबके लिए समान है, लेकिन इसे समझने की क्षमता सभी में समान नहीं होती। यह क्षमता इच्छा से आती है, जो भक्ति में और अंततः पूर्ण आत्म-समर्पण में परिवर्तित होती है। ईमानदारी, लगन और सभी बाधाओं को दूर करने के दृढ़ संकल्प के साथ, पश्चिमी व्यक्ति के पास पूर्वी व्यक्ति के समान ही अवसर है।' उसे केवल रुचि जगाने की आवश्यकता है। आत्मज्ञान में उसकी रुचि जगाने के लिए उसे इसके लाभों के बारे में आश्वस्त करना होगा। एम: क्या आपको लगता है कि व्यक्तिगत अनुभव को प्रसारित करना संभव है? प्रश्न: मुझे नहीं पता। आप एकता की बात कर रहे हैं, द्रष्टा और दृश्य की एकता की बात कर रहे हैं। जब सब एक हो, तभी संवाद संभव होना चाहिए।
एम: किसी देश का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए वहां जाकर रहना आवश्यक है। असंभव की अपेक्षा मत करो। किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक विजय से निस्संदेह मानवता को लाभ होता है, लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति को लाभ पहुंचाने के लिए घनिष्ठ व्यक्तिगत संबंध आवश्यक है। ऐसा संबंध आकस्मिक नहीं होता और हर कोई इसका दावा नहीं कर सकता। दूसरी ओर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण सबके लिए है। 'विश्वास करो, परखो, अनुभव करो'। और क्या चाहिए? अनिच्छुक लोगों पर सत्य थोपना क्यों? वैसे भी यह संभव नहीं है। ग्रहणकर्ता के बिना दाता क्या कर सकता है?
प्रश्न: कला का सार आंतरिक अनुभूति को व्यक्त करने के लिए बाहरी रूप का उपयोग करना है। बेशक, बाहरी रूप का अर्थ समझने से पहले व्यक्ति को आंतरिक भावों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। संवेदनशीलता कैसे विकसित की जा सकती है?

एम: आप इसे चाहे जिस तरह से कहें, बात वही है। देने वाले तो बहुत हैं; लेकिन लेने वाले कहाँ हैं?
प्रश्न: क्या आप अपनी संवेदनशीलता साझा नहीं कर सकते?
एम: हाँ, मैं कर सकता हूँ, लेकिन साझा करना दोतरफा होता है। साझा करने के लिए दो लोगों की आवश्यकता होती है। जो मैं देने को तैयार हूँ, उसे लेने के लिए कौन तैयार है?
प्रश्न: आप कहते हैं कि हम एक हैं। क्या यह पर्याप्त नहीं है?
एम: मैं तुम्हारे साथ एक हूँ। क्या तुम मेरे साथ एक हो? यदि तुम हो, तो तुम प्रश्न नहीं पूछोगे। यदि तुम नहीं हो, यदि तुम वह नहीं देखते जो मैं देखता हूँ, तो मैं तुम्हारी दृष्टि सुधारने का मार्ग दिखाने के अलावा और क्या कर सकता हूँ?
प्रश्न: जो आप नहीं दे सकते, वह आपका अपना नहीं है।
मैं: मैं किसी भी चीज़ पर अपना अधिकार नहीं जताता। जब 'मैं' ही नहीं है, तो 'मेरा' कहाँ है? दो लोग एक पेड़ को देखते हैं। एक को पत्तों के बीच छिपा फल दिखाई देता है, दूसरे को नहीं। अन्यथा दोनों में कोई अंतर नहीं है। जो देखता है, वह जानता है कि थोड़ा ध्यान देने पर दूसरा भी देख लेगा, लेकिन साझा करने का सवाल ही नहीं उठता। मेरा विश्वास करो, मैं कंजूस नहीं हूँ, जो वास्तविकता में तुम्हारा हिस्सा रोक कर रखूँ। इसके विपरीत, मैं पूरी तरह से तुम्हारा हूँ, मुझे खाओ और पियो। लेकिन जब तुम ज़बानी 'दो, दो' दोहराते हो, तो जो दिया जा रहा है उसे लेने के लिए कुछ नहीं करते। मैं तुम्हें वह देखने का एक छोटा और आसान तरीका दिखा रहा हूँ जो मैं देखता हूँ, लेकिन तुम अपने पुराने विचारों, भावनाओं और कार्यों की आदतों से चिपके रहते हो और सारा दोष मुझ पर डाल देते हो। मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जो तुम्हारे पास न हो। आत्मज्ञान कोई संपत्ति नहीं है जिसे दिया और लिया जा सके। यह एक बिल्कुल नया आयाम है, जहाँ देने या लेने जैसा कुछ नहीं है।
प्रश्न: अपने दैनिक जीवन में आप किस दौर से गुजरते हैं, इसके बारे में हमें कुछ जानकारी दीजिए। खाना, पीना, बात करना, सोना - आपको कैसा लगता है?
एम: जीवन की आम बातें: मैं उन्हें वैसे ही अनुभव करता हूँ जैसे आप करते हैं। अंतर उन चीजों में है जिन्हें मैं अनुभव नहीं करता। मैं डर या लोभ, घृणा या क्रोध का अनुभव नहीं करता। मैं कुछ नहीं माँगता, किसी चीज से इनकार नहीं करता, किसी चीज को अपने पास नहीं रखता। इन मामलों में मैं समझौता नहीं करता। शायद यही हम दोनों के बीच का सबसे बड़ा अंतर है। मैं समझौता नहीं करूँगा, मैं अपने आप के प्रति सच्चा हूँ, जबकि आप वास्तविकता से डरते हैं। प्रश्न: पश्चिमी दृष्टिकोण से, आपके तौर-तरीकों में कुछ अटपटापन है। एक कोने में अकेले बैठकर बार-बार 'मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ' दोहराना सरासर पागलपन लगता है। एक पश्चिमी व्यक्ति को कैसे समझाया जाए कि ऐसी प्रथाएँ परम विवेक की ओर ले जाती हैं?
एम: जो व्यक्ति स्वयं को ईश्वर होने का दावा करता है और जो व्यक्ति इस पर संदेह करता है—दोनों ही भ्रमित हैं। वे सपने में बातें करते हैं। प्रश्न: यदि सब कुछ स्वप्न है, तो जागृति क्या है?
एम: स्वप्नलोक की भाषा में जागृत अवस्था का वर्णन कैसे करें? शब्द वर्णन नहीं करते, वे केवल प्रतीक होते हैं।
प्रश्न: फिर वही बहाना कि शब्द वास्तविकता को व्यक्त नहीं कर सकते।
एम: अगर आपको शब्द चाहिए, तो मैं आपको शक्ति के कुछ प्राचीन शब्द दूंगा।
इनमें से किसी भी शब्द को लगातार दोहराते रहिए; ये चमत्कार कर सकते हैं।

प्रश्न: क्या आप सचमुच ऐसा कह रहे हैं? क्या आप किसी पश्चिमी व्यक्ति से कहेंगे कि वह लगातार 'ओम', 'राम' या 'हरे कृष्ण' का जाप करे, जबकि उसमें सही सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न आस्था और दृढ़ विश्वास का पूर्ण अभाव हो? बिना आत्मविश्वास और उत्साह के, यंत्रवत रूप से उन्हीं ध्वनियों को दोहराते रहने से क्या वह कभी कुछ हासिल कर पाएगा?
एम: क्यों नहीं? महत्वपूर्ण तो वह प्रेरणा है, वह छिपा हुआ मकसद है, न कि उसका स्वरूप। वह जो भी करे, अगर वह अपने वास्तविक स्वरूप को खोजने के लिए करे, तो निश्चित रूप से उसे अपने आप तक पहुंचा देगा।
प्रश्न: क्या उपायों की प्रभावशीलता पर विश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं है?
एम: ऐसे विश्वास की कोई आवश्यकता नहीं है जो केवल परिणामों की अपेक्षा हो। यहाँ केवल कर्म ही मायने रखता है। सत्य के लिए आप जो भी करेंगे, वह आपको सत्य तक ले जाएगा। बस दृढ़ और ईमानदार रहें। कर्म का स्वरूप मायने नहीं रखता।
प्रश्न: तो फिर अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने की आवश्यकता कहाँ रह जाती है? एम: कोई ज़रूरत नहीं। कुछ न करना भी उतना ही अच्छा है। केवल इच्छाशक्ति, बिना किसी विचार या कर्म के, शुद्ध और एकाग्र इच्छाशक्ति, आपको शीघ्र ही आपके लक्ष्य तक पहुँचा देगी। मायने रखता है सच्चा उद्देश्य, तरीका नहीं। प्रश्न: अविश्वसनीय! निराशा की कगार पर पहुँच चुकी नीरस और उबाऊ दिनचर्या कैसे प्रभावी हो सकती है?
एम: बार-बार प्रयास करना, लगातार संघर्ष करना, ऊब, निराशा और पूर्ण रूप से दृढ़ विश्वास की कमी के बावजूद धैर्य और दृढ़ता बनाए रखना, ये तथ्य वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। ये स्वयं में महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि इनके पीछे की ईमानदारी सर्वोपरि है। इसके लिए भीतर से प्रेरणा और बाहर से खिंचाव दोनों का होना आवश्यक है।
प्रश्न: मेरे प्रश्न पश्चिमी देशों के विशिष्ट प्रश्नों जैसे ही हैं। वहाँ लोग कारण और परिणाम, साधन और लक्ष्य के संदर्भ में सोचते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि किसी विशेष शब्द और परम वास्तविकता के बीच क्या कारण-कार्य संबंध हो सकता है।
एम: बिलकुल नहीं। लेकिन शब्द और उसके अर्थ के बीच, क्रिया और उसके उद्देश्य के बीच एक संबंध है। आध्यात्मिक अभ्यास इच्छाशक्ति का बार-बार निरूपण है। जिसके पास साहस नहीं है, वह वास्तविकता को, चाहे वह कितनी भी स्पष्ट क्यों न हो, स्वीकार नहीं करता। भय से उत्पन्न अनिच्छा ही एकमात्र बाधा है। प्रश्न: डरने की क्या बात है?
एम: अज्ञात। अस्तित्वहीनता, अज्ञानता, कर्महीनता। परे की दुनिया। प्रश्न: आपका मतलब यह है कि आप अपनी उपलब्धि का तरीका तो साझा कर सकते हैं, लेकिन उसके फल साझा नहीं कर सकते?
एम: बिल्कुल, मैं फल बाँट सकता हूँ और मैं हमेशा ऐसा करता रहता हूँ। लेकिन मेरी भाषा मौन है। सुनना और समझना सीखो।
प्रश्न: मुझे नहीं लगता कि बिना दृढ़ विश्वास के कोई शुरुआत कर सकता है। एम: कुछ देर मेरे साथ रहिए, या मेरी बातों और कामों पर ध्यान दीजिए, आपको सच्चाई का एहसास हो जाएगा। क्यू: हर किसी को आपसे मिलने का मौका नहीं मिलता।
एम: अपने आप से मिलो। अपने भीतर रहो, उसकी आवाज़ सुनो, उसका पालन करो, उसे संजोओ, उसे निरंतर अपने मन में रखो। तुम्हें किसी और मार्गदर्शक की

आवश्यकता नहीं है। जब तक सत्य की खोज तुम्हारे दैनिक जीवन को प्रभावित करती है, तब तक सब ठीक है। किसी को दुख पहुँचाए बिना अपना जीवन जियो। अहिंसा योग का सबसे शक्तिशाली रूप है और यह तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचाएगी। इसे मैं निसर्ग योग, प्राकृतिक योग कहता हूँ। यह शांति और सद्भाव, मित्रता और प्रेम में जीने की कला है। इसका फल है आनंद, जो अकारण और अनंत है।
प्रश्न: फिर भी, इन सब बातों के लिए कुछ हद तक आस्था आवश्यक है।
एम: अपने भीतर झांको और तुम्हें खुद पर भरोसा करना आ जाएगा। बाकी सब चीजों में आत्मविश्वास अनुभव से आता है।
प्रश्न: जब कोई व्यक्ति मुझसे कहता है कि वह कुछ ऐसा जानता है जो मैं नहीं जानती, तो मुझे यह पूछने का अधिकार है: 'वह क्या है जो आप जानते हैं और मैं नहीं जानती?'
एम: और अगर वह आपसे कहे कि इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता? प्रश्न: फिर मैं उसे ध्यान से देखता हूँ और समझने की कोशिश करता हूँ।
एम: और मैं यही तो चाहता हूँ कि तुम करो! रुचि लो, ध्यान दो, जब तक आपसी समझ का एक प्रवाह स्थापित न हो जाए। तब साझा करना आसान हो जाएगा। वास्तव में, सभी अनुभूतियाँ साझा करना ही हैं। तुम एक व्यापक चेतना में प्रवेश करते हो और उसमें भाग लेते हो। प्रवेश करने और साझा करने की अनिच्छा ही एकमात्र बाधा है। मैं कभी मतभेदों की बात नहीं करता, क्योंकि मेरे लिए कोई मतभेद नहीं हैं। तुममें हैं, इसलिए यह तुम्हारा काम है कि तुम मुझे उन्हें दिखाओ। अवश्य, मुझे मतभेद दिखाओ। इसके लिए तुम्हें मुझे समझना होगा, लेकिन तब तुम मतभेदों की बात नहीं करोगे। एक बात को अच्छी तरह समझ लो, और तुम मंजिल पर पहुँच जाओगे। तुम्हें जानने से जो रोकता है, वह अवसर की कमी नहीं है, बल्कि उस बात पर ध्यान केंद्रित करने की क्षमता की कमी है जिसे तुम समझना चाहते हो। यदि तुम जो नहीं जानते उसे याद रख सको, तो वह अपने रहस्य तुम्हारे सामने प्रकट कर देगा। लेकिन यदि तुम सतही और अधीर हो, देखने और प्रतीक्षा करने के लिए पर्याप्त गंभीर नहीं हो, तो तुम चाँद के लिए रोने वाले बच्चे के समान हो।

39. स्वयं से किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं होता।

प्रश्नकर्ता: आपकी बातें सुनकर मुझे लगता है कि आपसे प्रश्न पूछना व्यर्थ है। प्रश्न चाहे जो भी हो, आप उसे घुमा-फिराकर मुझे इस मूल तथ्य तक ले आते हैं कि मैं अपने ही बनाए भ्रम में जी रहा हूँ और वास्तविकता को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। शब्द तो केवल भ्रम बढ़ाते हैं और एकमात्र समझदारी भरा मार्ग है अपने भीतर मौन खोज करना।
महाराज: आखिरकार, भ्रम मन से ही उत्पन्न होता है और मन ही उसे दूर भी करता है। शब्द भ्रम को बढ़ा सकते हैं, और उसे दूर करने में भी सहायक हो सकते हैं। एक ही सत्य को बार-बार दोहराने में कोई बुराई नहीं है, जब तक कि वह वास्तविकता न बन जाए। बच्चे के जन्म के साथ ही माँ का काम समाप्त नहीं हो जाता। वह उसे दिन-प्रतिदिन, वर्ष-वर्ष तब तक पोषण देती है जब तक कि उसे उसकी आवश्यकता न रह जाए। लोगों को शब्द सुनने की आवश्यकता होती है, जब तक कि तथ्य शब्दों से अधिक प्रभावशाली ढंग से उन पर प्रभाव न डालने लगें। प्रश्न: तो क्या हम ऐसे बच्चे हैं जिन्हें शब्दों से ही पाला-पोसा जाना चाहिए?

एम: जब तक आप शब्दों को महत्व देते रहेंगे, तब तक आप बच्चे ही रहेंगे।
प्रश्न: ठीक है, तो हमारी माँ बन जाओ।
एम: जन्म से पहले बच्चा कहाँ था? क्या वह माँ के साथ नहीं था? माँ के साथ होने के कारण ही उसका जन्म हो सका।
प्रश्न: निश्चित रूप से, माँ ने स्वयं शिशु अवस्था में बच्चे को जन्म नहीं दिया होगा।
एम: संभवतः, वह माँ थी। समय के भ्रम से परे जाओ।
प्रश्न: आपका उत्तर हमेशा एक जैसा होता है। एक प्रकार की घड़ी जो बार-बार एक ही समय पर बजती है।
एम: इसमें कुछ नहीं किया जा सकता। जैसे एक सूर्य अरबों ओस की बूंदों में प्रतिबिंबित होता है, वैसे ही शाश्वत सत्य अनंत रूप से दोहराया जाता है। जब मैं दोहराता हूँ: 'मैं हूँ, मैं हूँ', तो मैं बस एक शाश्वत सत्य को बार-बार दोहराता हूँ। आप मेरे शब्दों से ऊब जाते हैं क्योंकि आप उनके पीछे छिपे जीवंत सत्य को नहीं देख पाते। उससे संपर्क कीजिए और आपको शब्दों और मौन दोनों का पूर्ण अर्थ मिल जाएगा।
प्रश्न: आपने कहा कि वह छोटी बच्ची पहले से ही अपने भावी बच्चे की माँ है। संभावित रूप से - हाँ। वास्तव में - नहीं।
एम: चिंतन से ही संभाव्यता वास्तविकता में परिवर्तित होती है। शरीर और उसके कार्य मन में विद्यमान होते हैं।
प्रश्न: मन गतिमान चेतना है, और चेतना आत्मा का सगुण (परिस्थितिजन्य) पहलू है। निर्गुण (अनपरिस्थितिजन्य) एक अन्य पहलू है, और उससे परे परमार्थ (परमार्थ) की असीम गहराई स्थित है।
एम: बिलकुल सही – आपने इसे बहुत खूबसूरती से व्यक्त किया है।
प्रश्न: लेकिन ये तो मेरे लिए महज शब्द हैं। इन्हें सुनना और दोहराना पर्याप्त नहीं है, इनका अनुभव करना आवश्यक है।
एम: आपको रोकने वाली एकमात्र चीज बाहरी चीजों में आपकी व्यस्तता है, जो आपको आंतरिक एकाग्रता से वंचित करती है। इसका कोई उपाय नहीं है, आप अपनी साधना को छोड़ नहीं सकते। आपको संसार से मुंह मोड़कर अपने भीतर जाना होगा, जब तक कि आंतरिक और बाहरी एक न हो जाएं और आप आंतरिक या बाहरी, किसी भी प्रकार की बाध्यता से मुक्त न हो जाएं।
प्रश्न: निश्चित रूप से, अप्रतिबंधित मात्र सशर्त मन में एक विचार मात्र है। इसका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं है।
एम: स्वयं से किसी का अस्तित्व नहीं है। हर चीज़ को अपनी अनुपस्थिति की आवश्यकता होती है। होना, भेदनीय होना है; यहाँ होना, वहाँ नहीं; अभी होना, तब नहीं; इस प्रकार होना, अन्यथा नहीं। जैसे पानी बर्तन के आकार से प्रभावित होता है, वैसे ही हर चीज़ गुणों (परिस्थितियों) से निर्धारित होती है। जैसे पानी बर्तनों में रखे जाने पर भी पानी ही रहता है; जैसे प्रकाश अपने रंगों से प्रभावित होने पर भी अपना स्वरूप बनाए रखता है; वैसे ही वास्तविकता, चाहे वह किसी भी परिस्थिति में प्रतिबिंबित हो, वास्तविकता ही रहती है। चेतना के केंद्र में केवल प्रतिबिंब ही क्यों रखें? वास्तविकता को ही क्यों न देखें?
प्रश्न: चेतना स्वयं एक प्रतिबिंब है। यह वास्तविकता को कैसे धारण कर सकती है?

एम: यह जानना कि चेतना और उसकी विषयवस्तु मात्र प्रतिबिंब हैं, परिवर्तनशील और क्षणभंगुर हैं, वास्तविकता पर ध्यान केंद्रित करना है। रस्सी में सांप को न देख पाना ही रस्सी को देखने की आवश्यक शर्त है। प्रश्न: क्या यह केवल आवश्यक है, या पर्याप्त भी है?
एम: यह भी जानना आवश्यक है कि रस्सी का अस्तित्व है और वह साँप जैसी दिखती है। इसी प्रकार, यह जानना आवश्यक है कि यथार्थ का अस्तित्व है और वह साक्षी-चेतना के स्वरूप का है। निःसंदेह, यह साक्षी से परे है, परन्तु उसमें प्रवेश करने के लिए पूर्वतः शुद्ध साक्षी की अवस्था का अहसास होना आवश्यक है। परिस्थितियों का ज्ञान हमें निर्धारण की अवस्था तक ले जाता है।
प्रश्न: क्या अप्रतिबंधित चीजों का अनुभव किया जा सकता है?
एम: सशर्त को सशर्त के रूप में जानना ही अशर्त के बारे में कही जा सकने वाली एकमात्र बात है। सकारात्मक शब्द महज संकेत मात्र हैं और भ्रामक हैं। प्रश्न: क्या हम वास्तविक अनुभव को देखने की बात कर सकते हैं?
एम: हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? हम केवल अवास्तविक, भ्रामक, क्षणभंगुर और सशर्त चीजों की ही बात कर सकते हैं। इससे आगे बढ़ने के लिए, हमें स्वतंत्र अस्तित्व की धारणा को पूरी तरह से नकारना होगा। सभी चीजें एक-दूसरे पर निर्भर हैं।
प्रश्न: वे किस पर निर्भर करते हैं?
एम: चेतना के बारे में। और चेतना साक्षी पर निर्भर करती है।
प्रश्न: और गवाह वास्तविक स्थिति पर निर्भर करता है?
एम: साक्षी, वास्तविकता का उसकी संपूर्ण शुद्धता में प्रतिबिंब है। यह मन की अवस्था पर निर्भर करता है। जहाँ स्पष्टता और वैराग्य प्रबल होते हैं, वहाँ साक्षी-चेतना उत्पन्न होती है। यह ठीक वैसा ही है जैसे यह कहना कि जहाँ जल स्वच्छ और शांत होता है, वहाँ चंद्रमा का प्रतिबिंब दिखाई देता है। या जैसे दिन का प्रकाश हीरे में चमक के रूप में प्रकट होता है। प्रश्न: क्या साक्षी के बिना चेतना हो सकती है?
एम: साक्षी के बिना यह अचेतन अवस्था बन जाती है, बस जीना। साक्षी चेतना की हर अवस्था में विद्यमान होता है, ठीक वैसे ही जैसे प्रकाश हर रंग में विद्यमान होता है। ज्ञाता के बिना ज्ञान नहीं हो सकता और साक्षी के बिना ज्ञाता नहीं हो सकता। आप न केवल जानते हैं, बल्कि आप यह भी जानते हैं कि आप जानते हैं।
प्रश्न: यदि अप्रतिबंधित का अनुभव नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी अनुभव सशर्त होते हैं, तो फिर इसके बारे में बात करने का क्या फायदा?
एम: सशर्त ज्ञान के बिना सशर्त ज्ञान कैसे संभव है? कोई न कोई स्रोत तो होना ही चाहिए जिससे यह सब प्रवाहित होता हो, कोई आधार तो होना ही चाहिए जिस पर सब टिका हो। आत्म-साक्षात्कार मूलतः अपनी सशर्तता का ज्ञान और यह जागरूकता है कि परिस्थितियों की अनंत विविधता हमारी सशर्त होने और विविधता को जन्म देने की अनंत क्षमता पर निर्भर करती है। सशर्त मन के लिए सशर्तता समग्रता के साथ-साथ सर्वस्व के अभाव के रूप में भी प्रकट होती है। इनमें से किसी का भी प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जा सकता, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अस्तित्वहीन हैं।
प्रश्न: क्या यह एक भावना नहीं है?
एम: भावना भी मन की एक अवस्था है। जैसे स्वस्थ शरीर को ध्यान की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही निर्वात भाव अनुभव से मुक्त होता है। मृत्यु के अनुभव

को ही लीजिए। साधारण मनुष्य मृत्यु से भयभीत होता है, क्योंकि वह परिवर्तन से डरता है। ज्ञानी भयभीत नहीं होता, क्योंकि उसका मन पहले से ही मृत होता है। वह यह नहीं सोचता: 'मैं जीवित हूँ'। वह जानता है: 'जीवन है'। इसमें न कोई परिवर्तन है और न ही मृत्यु। मृत्यु समय और स्थान में परिवर्तन प्रतीत होती है। जहाँ न समय है और न ही स्थान, वहाँ मृत्यु कैसे हो सकती है? ज्ञानी नाम और रूप से पहले ही मृत हो चुका होता है। उनके खोने का उस पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? ट्रेन में बैठा व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करता है, लेकिन ट्रेन से उतरा व्यक्ति कहीं नहीं जाता, क्योंकि वह किसी गंतव्य के लिए बाध्य नहीं है। उसके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं है, करने के लिए कुछ नहीं है, बनने के लिए कुछ नहीं है। जो योजनाएँ बनाते हैं, वे उन्हें पूरा करने के लिए जन्म लेते हैं। जो योजनाएँ नहीं बनाते, उन्हें जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: दर्द और सुख का उद्देश्य क्या है?
एम: क्या वे अपने आप अस्तित्व में होते हैं, या केवल मन में?
प्रश्न: फिर भी, वे मौजूद हैं। दिमाग की परवाह मत करो।
एम: दर्द और सुख महज लक्षण हैं, गलत ज्ञान और गलत भावना के परिणाम हैं।
परिणाम का अपना कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।
प्रश्न: ईश्वर की व्यवस्था में हर चीज का एक उद्देश्य होना चाहिए।
एम: क्या आप ईश्वर को जानते हैं कि आप उनके बारे में इतनी खुलकर बात करते हैं? आपके लिए ईश्वर क्या है? एक ध्वनि, कागज पर लिखा एक शब्द, मन में एक विचार?
प्रश्न: उनकी शक्ति से ही मेरा जन्म हुआ है और मैं जीवित हूं।
एम: और कष्ट सहो, और मर जाओ। क्या तुम खुश हो?
प्रश्न: शायद मेरी ही गलती है कि मैं कष्ट भोग रहा हूँ और मर रहा हूँ। मुझे तो शाश्वत जीवन के लिए सृजित किया गया था।
एम: भविष्य में शाश्वत क्यों, अतीत में क्यों नहीं? जिसका आरंभ होता है उसका अंत अवश्य होता है। केवल अनादि ही अनंत होता है।
प्रश्न: ईश्वर महज एक अवधारणा, एक व्यावहारिक सिद्धांत हो सकता है। फिर भी, यह एक बहुत ही उपयोगी अवधारणा है!
एम: इसके लिए आंतरिक विरोधाभासों से मुक्त होना आवश्यक है, जो कि अभी नहीं है। क्यों न इस सिद्धांत पर काम करें कि आप स्वयं अपनी रचना और रचनाकार हैं? कम से कम तब किसी बाहरी ईश्वर से संघर्ष तो नहीं करना पड़ेगा। प्रश्न: यह दुनिया इतनी समृद्ध और जटिल है - मैं इसे कैसे बना सकता हूँ? एम: क्या आप खुद को इतना जानते हैं कि आपको पता हो कि आप क्या कर सकते हैं और क्या नहीं? आपको अपनी क्षमताओं का पता ही नहीं है। आपने कभी खोजबीन नहीं की। अब खुद से शुरुआत कीजिए।
प्रश्न: हर कोई ईश्वर में विश्वास करता है।
एम: मेरे लिए तुम स्वयं अपने ईश्वर हो। लेकिन अगर तुम ऐसा नहीं सोचते, तो अंत तक सोचो। अगर ईश्वर है, तो सब कुछ ईश्वर का है और सब कुछ सर्वोत्तम है।
जो भी आए, उसका प्रसन्न और कृतज्ञ हृदय से स्वागत करो। और सभी प्राणियों से प्रेम करो। यही तुम्हें तुम्हारे आत्म-पहचान तक ले जाएगा।

40. केवल आत्मा ही वास्तविक है

महाराज: संसार तो बस एक तमाशा है, चमकीला और खोखला। यह है भी और नहीं भी। यह तब तक रहता है जब तक मैं इसे देखना और इसमें शामिल होना चाहता हूँ। जब मैं परवाह करना छोड़ देता हूँ, तो यह विलीन हो जाता है। इसका कोई कारण नहीं है और न ही कोई उद्देश्य। यह बस तब घटित होता है जब हम अन्यमनस्क होते हैं। यह जैसा दिखता है वैसा ही प्रतीत होता है, लेकिन इसमें न तो कोई गहराई है और न ही कोई अर्थ। केवल देखने वाला ही वास्तविक है। उसे आत्मा कहो। आत्मा के लिए संसार एक रंगीन तमाशा मात्र है, जिसका वह तब तक आनंद लेता है जब तक वह चलता है और समाप्त होने पर भूल जाता है। तमाशे पर जो कुछ भी होता है, वह उसे भय से कांपने या हँसी से लोटपोट कर देता है, फिर भी वह हर समय इस बात से अवगत रहता है कि यह केवल एक तमाशा है। बिना इच्छा या भय के वह इसका आनंद लेता है, जैसा कि यह घटित होता है।
प्रश्नकर्ता: संसार में लीन रहने वाले व्यक्ति का जीवन अनेक रंगों से भरा होता है। वह रोता है, हंसता है, प्रेम करता है और घृणा करता है, इच्छा करता है और भय महसूस करता है, दुख सहता है और आनंदित होता है। इच्छा रहित और निर्भय ज्ञानी का जीवन कैसा होता है? क्या वह अपने एकांत में अकेला और बेसहारा नहीं रह जाता?
एम: उसकी अवस्था इतनी निराशाजनक नहीं है। उसमें शुद्ध, अकारण, निर्मल आनंद का अनुभव होता है। वह प्रसन्न है और इस बात से भलीभांति अवगत है कि सुख उसका मूल स्वभाव है और उसे इसे प्राप्त करने के लिए कुछ भी करने या प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। यह उसके साथ-साथ चलता है, शरीर से भी अधिक वास्तविक, मन से भी अधिक निकट। आप सोचते हैं कि बिना कारण के सुख नहीं हो सकता। मेरे लिए सुख के लिए किसी भी चीज़ पर निर्भरता घोर दुःख है। सुख और दुख के कारण होते हैं, जबकि मेरी अवस्था मेरी अपनी है, पूर्णतः अकारण, स्वतंत्र, अजेय।
प्रश्न: जैसे मंच पर कोई नाटक?
एम: नाटक लिखा गया, योजना बनाई गई और पूर्वाभ्यास किया गया। दुनिया अचानक शून्य से अस्तित्व में आती है और शून्य में ही विलीन हो जाती है।
प्रश्न: क्या कोई सृष्टिकर्ता नहीं है? क्या सृष्टि की रचना से पहले यह ब्रह्मा के मन में नहीं थी?
एम: जब तक तुम मेरी अवस्था से बाहर हो, तब तक तुम्हारे पास सृष्टिकर्ता, संरक्षक और संहारक होंगे, लेकिन एक बार मेरे साथ होने पर तुम केवल आत्मा को जानोगे और स्वयं को सब में देखोगे।
प्रश्न: फिर भी आप काम करते हैं।
एम: जब आप मदहोश होते हैं, तो आपको दुनिया अपने चारों ओर घूमती हुई दिखाई देती है। साधन और साध्य, काम और उद्देश्य के विचार में डूबे रहने के कारण, आप मुझे ऊपर से काम करते हुए देखते हैं। असल में मैं सिर्फ देखता रहता हूँ। जो कुछ भी होता है, वह मंच पर होता है। सुख-दुख, जीवन-मृत्यु, ये सब बंधन में जकड़े हुए व्यक्ति के लिए वास्तविक हैं; मेरे लिए ये सब एक नाटक का हिस्सा हैं, ठीक वैसे ही अवास्तविक जैसे यह नाटक खुद है।
मैं शायद दुनिया को ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे आप देखते हैं, लेकिन आप मानते हैं कि आप इसमें मौजूद हैं, जबकि मैं इसे चेतना के विशाल विस्तार में एक इंद्रधनुषी बूंद के रूप में देखता हूँ।
प्रश्न: हम सब बूढ़े हो रहे हैं। बुढ़ापा सुखद नहीं होता – दर्द, कमजोरी और अंत का नज़दीक आना, ये सब इसी में निहित हैं। एक ज्ञानी को बुढ़ापे में

कैसा अनुभव होता है? उसका अंतर्मन अपने बुढ़ापे को किस दृष्टि से देखता है?
एम: जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, वह और भी खुश और शांत होता जाता है। आखिरकार, वह घर जा रहा है। जैसे कोई यात्री अपनी मंजिल के करीब पहुँचकर अपना सामान समेट रहा हो, वैसे ही वह बिना किसी पछतावे के ट्रेन से उतर जाता है।
प्रश्न: इसमें विरोधाभास अवश्य है। हमें बताया जाता है कि ज्ञानी सभी परिवर्तनों से परे है। उसका सुख न तो बढ़ता है और न ही घटता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ वह शारीरिक कमजोरी आदि के बावजूद कैसे अधिक सुखी हो सकता है? एम: इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। नियति का चक्र समाप्त हो रहा है - मन प्रसन्न है। शारीरिक अस्तित्व का कोहरा छंट रहा है - शरीर का बोझ दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है।
प्रश्न: मान लीजिए, ज्ञानी बीमार है। उसे ज़ुकाम हो गया है और उसके हर जोड़ में दर्द और जलन हो रही है। उसकी मानसिक स्थिति कैसी है?
एम: हर अनुभूति पर पूर्ण समभाव से विचार किया जाता है। न तो उसकी कोई इच्छा होती है, न ही उसका अस्वीकरण। वह जैसी है वैसी ही है, और फिर वह उसे स्नेहपूर्ण अनासक्ति की मुस्कान के साथ देखता है।
प्रश्न: हो सकता है कि वह अपने स्वयं के कष्ट से विरक्त हो, लेकिन फिर भी वह कष्ट मौजूद है।
एम: यह मौजूद है, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं जिस भी स्थिति में हूँ, मैं उसे एक ऐसी मानसिक स्थिति मानता हूँ जिसे वैसे ही स्वीकार करना चाहिए।
प्रश्न: दर्द तो दर्द ही होता है। आप इसे हर बार एक समान ही महसूस करते हैं।
एम: जो शरीर का अनुभव करता है, वह उसके सुख-दुखों का अनुभव करता है। मैं न तो शरीर हूँ, न ही शरीर का अनुभव करने वाला।
प्रश्न: मान लीजिए आपकी उम्र पच्चीस वर्ष है। आपकी शादी तय हो चुकी है और संपन्न भी हो गई है, और घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियां आप पर हावी हो जाती हैं। आपको कैसा लगेगा?
एम: ठीक वैसे ही जैसे मैं अभी महसूस कर रहा हूँ। आप बार-बार यही कहते हैं कि मेरी आंतरिक स्थिति बाहरी घटनाओं से प्रभावित होती है। ऐसा बिलकुल नहीं है। चाहे कुछ भी हो जाए, मैं स्थिर रहता हूँ। मेरे अस्तित्व का मूल शुद्ध चेतना है, एक तीव्र प्रकाश का कण। यह कण अपने स्वभाव से ही प्रकाश बिखेरता है और सहजता से अंतरिक्ष में चित्र और समय में घटनाएँ सृजित करता है। जब तक यह केवल सचेत रहता है, तब तक कोई समस्या नहीं होती। परन्तु जब भेदभाव करने वाला मन जागृत होता है और भेद करता है, तब सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। नींद के दौरान मन शांत रहता है, और सुख-दुख भी। सृजन की प्रक्रिया चलती रहती है, परन्तु उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। मन चेतना का एक रूप है, और चेतना जीवन का एक पहलू है। जीवन सब कुछ सृजित करता है, परन्तु परम सत्ता सबसे परे है।
प्रश्न: परमेश्वर स्वामी है और चेतना उसकी सेविका है।
एम: गुरु चेतना में विद्यमान हैं, उससे परे नहीं। चेतना के संदर्भ में, परम सत्ता सृजन और विघटन, मूर्त और अमूर्त, केंद्र और सार्वभौमिक दोनों है।
साथ ही, वह इनमें से कुछ भी नहीं है। शब्द वहां तक नहीं पहुंचते, न ही मन।

प्रश्न: ज्ञानी एक अत्यंत एकाकी प्राणी प्रतीत होता है, जो बिल्कुल अकेला होता है।
एम: वह अकेला है, पर वह सब कुछ है। वह एक अस्तित्व भी नहीं है। वह समस्त प्राणियों का अस्तित्व है। इतना ही नहीं। कोई शब्द उसके लिए उपयुक्त नहीं हैं। वह वही है जो वह है, वह आधार जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है।
प्रश्न: क्या आपको मरने से डर नहीं लगता?
एम: मैं आपको बताता हूँ कि मेरे गुरु के गुरु का निधन कैसे हुआ। अपनी मृत्यु निकट आने की घोषणा करने के बाद, उन्होंने अपने दैनिक जीवन में कोई बदलाव किए बिना खाना-पीना छोड़ दिया। ग्यारहवें दिन, प्रार्थना के समय वे ज़ोर-ज़ोर से गा रहे थे और ताली बजा रहे थे और अचानक उनका निधन हो गया! ठीक ऐसे ही, दो पलों के बीच, जैसे कोई मोमबत्ती बुझ जाती है। हर कोई वैसे ही मरता है जैसे जीता है। मुझे मृत्यु से डर नहीं लगता, क्योंकि मुझे जीवन से डर नहीं लगता। मैं सुखी जीवन जीता हूँ और सुखी मृत्यु मरूँगा। दुख तो जन्म लेने के लिए होता है, मरने के लिए नहीं। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे कैसे देखते हैं।
प्रश्न: आपकी स्थिति का कोई प्रमाण नहीं हो सकता। मुझे इसके बारे में केवल वही पता है जो आप कहते हैं। मुझे तो बस एक बहुत ही दिलचस्प बूढ़ा व्यक्ति दिखाई देता है।
एम: दिलचस्प बूढ़े तो आप हैं, मैं नहीं! मेरा तो कभी जन्म ही नहीं हुआ। मैं बूढ़ा कैसे हो सकता हूँ? मैं आपको जैसा दिखता हूँ, वह केवल आपके मन में ही है। मुझे इससे कोई लेना-देना नहीं है।
प्रश्न: सपने के रूप में भी आप एक अत्यंत असामान्य सपना हैं।
एम: मैं एक ऐसा सपना हूँ जो आपको जगा सकता है। जागने पर आपको इसका प्रमाण मिल जाएगा।
प्रश्न: कल्पना कीजिए, आपको खबर मिलती है कि मेरी मृत्यु हो गई है। कोई आपसे कहता है: 'आप फलां व्यक्ति को जानते हैं? उनकी मृत्यु हो गई है।' आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी?
एम: मुझे आपको घर वापस पाकर बहुत खुशी होगी। आपको इस मूर्खता से बाहर निकलते देखकर मुझे सचमुच बहुत प्रसन्नता होगी।
प्रश्न: कौन सी मूर्खता?
एम: ये सोचना कि तुम्हारा जन्म हुआ है और तुम मरोगे, कि तुम एक शरीर हो जो मन को प्रदर्शित करता है, और इस तरह की सारी बकवास। मेरी दुनिया में न कोई जन्म लेता है और न कोई मरता है। कुछ लोग यात्रा पर जाते हैं और लौट आते हैं, कुछ कभी जाते ही नहीं। इससे क्या फर्क पड़ता है, क्योंकि वे सब सपनों की दुनिया में घूमते हैं, हर कोई अपने सपने में डूबा हुआ है। केवल जागना ही महत्वपूर्ण है। 'मैं हूँ' को वास्तविकता के रूप में जानना और प्रेम करना ही काफी है।
प्रश्न: मेरा दृष्टिकोण इतना निरपेक्ष नहीं है, इसीलिए मेरा यह प्रश्न है। पश्चिमी देशों में लोग किसी वास्तविक चीज़ की खोज में लगे हैं। वे विज्ञान की ओर रुख करते हैं, जो उन्हें पदार्थ के बारे में तो बहुत कुछ बताता है, लेकिन मन के बारे में थोड़ा-बहुत और चेतना के स्वरूप और उद्देश्य के बारे में कुछ भी नहीं। उनके लिए वास्तविकता वस्तुनिष्ठ है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवलोकन और वर्णन से परे; वास्तविकता के व्यक्तिपरक पहलू के बारे में उन्हें कुछ भी नहीं पता। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि उन्हें यह बताया जाए कि वास्तविकता मौजूद है और यह चेतना की पदार्थ और

उसकी सीमाओं एवं विकृतियों से मुक्त होने में पाई जाती है। दुनिया के अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि चेतना में वास्तविकता पाई और अनुभव की जा सकती है। यह बहुत महत्वपूर्ण लगता है कि वे यह खुशखबरी किसी ऐसे व्यक्ति से सुनें जिसने वास्तव में इसका अनुभव किया हो। ऐसे साक्षी हमेशा से मौजूद रहे हैं और उनकी गवाही अनमोल है।
एम: बिलकुल। आत्म-साक्षात्कार का उपदेश, एक बार सुन लेने पर, कभी भुलाया नहीं जा सकता। जैसे ज़मीन में पड़ा बीज सही मौसम का इंतज़ार करता है, वैसे ही अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष बन जाता है।

41. साक्षी भाव विकसित करें

प्रश्नकर्ता: एक आत्मज्ञानी व्यक्ति की दैनिक और प्रति घंटा मन की अवस्था क्या होती है? वह कैसे देखता, सुनता, खाता, पीता, जागता और सोता है, काम करता और आराम करता है? उसकी अवस्था हमारी अवस्था से भिन्न होने का क्या प्रमाण है? तथाकथित आत्मज्ञानी व्यक्तियों के मौखिक प्रमाण के अलावा, क्या उनकी अवस्था को वस्तुनिष्ठ रूप से सत्यापित करने का कोई और तरीका नहीं है? क्या उनकी शारीरिक और तंत्रिका प्रतिक्रियाओं, उनके चयापचय, या मस्तिष्क तरंगों, या उनकी मनोदैहिक संरचना में कुछ प्रत्यक्ष अंतर नहीं हैं? महाराज: आपको अंतर दिख भी सकते हैं और नहीं भी। यह सब आपकी अवलोकन क्षमता पर निर्भर करता है। हालांकि, प्रत्यक्ष अंतर सबसे कम महत्वपूर्ण हैं। मायने रखता है उनका दृष्टिकोण, उनका रवैया, जो पूर्ण रूप से अनासक्ति, अलगाव और अलग खड़े रहने का है।
प्रश्न: क्या किसी ज्ञानी को अपने बच्चे की मृत्यु पर शोक नहीं होता, क्या उसे पीड़ा नहीं होती?
एम: वह दुखियों के साथ दुख सहता है। घटना स्वयं उसके लिए महत्वहीन है, लेकिन वह पीड़ित प्राणी के प्रति करुणा से परिपूर्ण है, चाहे वह जीवित हो या मृत, शरीर में हो या शरीर से बाहर। अंततः, प्रेम और करुणा उसका मूल स्वभाव है। वह सभी जीवित प्राणियों के साथ एक है और प्रेम उसी एकता का क्रियान्वयन है।
प्रश्न: लोग मृत्यु से बहुत डरते हैं।
एम: ज्ञानी किसी चीज से नहीं डरता। लेकिन वह डरने वाले व्यक्ति पर दया करता है। आखिर जन्म लेना, जीना और मरना तो स्वाभाविक है। डरना स्वाभाविक नहीं है। घटना पर, बेशक, ध्यान दिया जाता है।
प्रश्न: कल्पना कीजिए कि आप बीमार हैं - तेज बुखार, बदन दर्द, कंपकंपी। डॉक्टर आपको बताते हैं कि आपकी हालत गंभीर है, आपके पास जीने के लिए कुछ ही दिन बचे हैं। आपकी पहली प्रतिक्रिया क्या होगी?
एम: कोई प्रतिक्रिया नहीं। जैसे अगरबत्ती का जलकर खत्म हो जाना स्वाभाविक है, वैसे ही शरीर का मरना भी स्वाभाविक है। वास्तव में, यह कोई बहुत छोटी सी बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि मैं न तो शरीर हूँ और न ही मन। मैं हूँ। प्रश्न: आपका परिवार तो निश्चित रूप से बहुत परेशान होगा। आप उन्हें क्या कहेंगे?
एम: वही घिसी-पिटी बातें: डरो मत, ज़िंदगी चलती रहती है, भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे, हम जल्द ही फिर मिलेंगे, वगैरह। लेकिन मेरे लिए यह सारा शोरगुल बेमानी है, क्योंकि मैं वह प्राणी नहीं हूँ जो खुद को जीवित या मृत

समझता है। न मेरा जन्म होता है और न ही मेरी मृत्यु हो सकती है। मुझे न कुछ याद रखना है और न ही कुछ भूलना है।
प्रश्न: मृतकों के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं के बारे में क्या?
एम: आप मृतकों के लिए प्रार्थना अवश्य करें। इससे उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। वे प्रसन्न होते हैं। ज्ञानी को आपकी प्रार्थनाओं की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं आपकी प्रार्थनाओं का उत्तर हैं।
प्रश्न: मृत्यु के बाद ज्ञानी का क्या हाल होता है?
एम: ज्ञानी तो पहले ही मर चुका है। क्या आप उससे दोबारा मरने की उम्मीद करते हैं?
प्रश्न: निःसंदेह, शरीर का विघटन एक ज्ञानी के लिए भी एक महत्वपूर्ण घटना है।
ज्ञानी के लिए कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं होती, सिवाय तब जब कोई सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। तभी उसका हृदय आनंदित होता है। बाकी सब उसके लिए महत्वहीन है। संपूर्ण ब्रह्मांड उसका शरीर है, समस्त जीवन उसका जीवन है। जैसे प्रकाश के नगर में एक बल्ब के फ्यूज होने से पूरे नगर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही शरीर की मृत्यु से पूरे नगर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
प्रश्न: संपूर्ण के लिए विशिष्ट का कोई महत्व नहीं हो सकता, लेकिन विशिष्ट के लिए उसका महत्व होता है। संपूर्ण एक अमूर्त अवधारणा है, जबकि विशिष्ट, मूर्त, वास्तविक है।
एम: यही तो आप कहते हैं। मेरे लिए यह शायद इसके विपरीत है - संपूर्ण ही वास्तविक है, अंश आते-जाते रहते हैं। विशेष का जन्म और पुनर्जन्म होता है, नाम और रूप बदलता रहता है, ज्ञानी वह अपरिवर्तनीय वास्तविकता है जो परिवर्तनशीलता को संभव बनाती है। लेकिन वह आपको यह विश्वास नहीं दिला सकता। यह आपके स्वयं के अनुभव से ही आएगा। मेरे लिए सब एक है, सब बराबर है। प्रश्न: क्या पाप और पुण्य एक ही हैं?
एम: ये सब तो मानव निर्मित मूल्य हैं! मेरे लिए इनका क्या महत्व है? जो सुख की ओर ले जाता है वह सद्गुण है, जो दुःख की ओर ले जाता है वह पाप है। दोनों ही मन की अवस्थाएँ हैं। मेरी अवस्था मन की अवस्था नहीं है।
प्रश्न: हम उन अंधों की तरह हैं जिन्हें यह समझने में असमर्थता होती है कि देखने का क्या अर्थ है।
एम: आप इसे अपनी इच्छानुसार रख सकते हैं।
प्रश्न: क्या साधना के रूप में मौन का अभ्यास प्रभावी है?
एम: ज्ञान प्राप्ति के लिए किया गया कोई भी कार्य आपको उसके निकट ले जाता है। ज्ञान प्राप्ति को ध्यान में रखे बिना किया गया कोई भी कार्य आपको उससे दूर कर देता है। लेकिन इसे जटिल क्यों बनाना? बस इतना जान लीजिए कि आप सभी चीजों और विचारों से परे हैं। आप जो बनना चाहते हैं, आप वही हैं। बस इसे याद रखिए।
प्रश्न: मैं आपकी बात सुन तो रहा हूँ, लेकिन मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। एम: मैं भी ऐसी ही स्थिति में था। लेकिन मैंने अपने गुरु पर भरोसा किया और वे सही साबित हुए। अगर आप कर सकते हैं तो मुझ पर भरोसा करें। मेरी बात याद रखें: किसी चीज की इच्छा न करें, क्योंकि आपको किसी चीज की कमी नहीं होगी।
खोज ही आपको पाने से रोकती है।
प्रश्न: आप तो हर चीज के प्रति बेहद उदासीन प्रतीत होते हैं!

एम: मैं उदासीन नहीं, निष्पक्ष हूँ। मैं 'मैं' और 'मेरा' में से किसी को प्राथमिकता नहीं देता। मिट्टी की टोकरी और रत्नों की टोकरी, दोनों ही मुझे अवांछित हैं। मेरे लिए जीवन और मृत्यु एक समान हैं।
प्रश्न: निष्पक्षता आपको उदासीन बना देती है।
एम: इसके विपरीत, करुणा और प्रेम मेरे मूल तत्व हैं। सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, मैं प्रेम करने के लिए स्वतंत्र हूँ।
प्रश्न: बुद्ध ने कहा कि ज्ञानोदय का विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है। अधिकांश लोग अपना जीवन इस ज्ञान के बिना ही व्यतीत कर देते हैं कि ज्ञानोदय जैसी कोई चीज भी होती है, उसे पाने का प्रयास करना तो दूर की बात है। एक बार जब वे इसके बारे में सुन लेते हैं, तो एक ऐसा बीज बोया जाता है जो कभी नष्ट नहीं होता। इसलिए, वे अपने भिक्षुओं को हर साल आठ महीने तक निरंतर प्रचार करने के लिए भेजते थे।
एम: 'भोजन, वस्त्र, आश्रय, ज्ञान, स्नेह तो दिया जा सकता है, लेकिन सबसे बड़ा दान तो ज्ञान का सुसमाचार है', मेरे गुरुजी कहा करते थे। आप सही कह रहे हैं, ज्ञान ही सर्वोच्च पुण्य है। एक बार यह प्राप्त हो जाए तो कोई इसे आपसे छीन नहीं सकता।
सवाल: अगर आप पश्चिम में इस तरह बात करेंगे तो लोग आपको पागल समझेंगे।
एम: बिल्कुल, वे ऐसा ही करेंगे! अज्ञानी के लिए वह सब कुछ जो वे समझ नहीं सकते, पागलपन है। इसमें क्या बुराई है? उन्हें जैसा है वैसा ही रहने दो। मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ, इसमें मेरी कोई अच्छाई नहीं है और वे जैसे हैं वैसे ही हैं, इसमें उनकी कोई गलती नहीं है। परम सत्य असंख्य रूपों में प्रकट होता है। उसके नाम और रूप अनंत हैं। सब कुछ उसी सागर में उत्पन्न होता है, सब कुछ उसी सागर में विलीन हो जाता है, सबका स्रोत एक ही है। कारण और परिणाम खोजना तो बस मन का खेल है। जो है, वह प्रेममय है। प्रेम कोई परिणाम नहीं है, बल्कि अस्तित्व का मूल आधार है। आप जहाँ भी जाएँगे, आपको अस्तित्व, चेतना और प्रेम मिलेगा। भेद क्यों और किसलिए करते हैं? प्रश्न: जब प्राकृतिक कारणों से हजारों-लाखों जानें चली जाती हैं (जैसे बाढ़ और भूकंप में), तो मुझे शोक नहीं होता। लेकिन जब किसी एक व्यक्ति की मृत्यु मनुष्य के हाथों होती है, तो मुझे अत्यंत दुःख होता है। अपरिहार्य की अपनी एक गरिमा होती है, लेकिन हत्या को टाला जा सकता है, इसलिए यह घृणित और अत्यंत भयानक है।
एम: सब कुछ अपने आप घटित होता है। आपदाएँ, चाहे प्राकृतिक हों या मानव निर्मित, होती रहती हैं और उनसे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रश्न: कोई भी चीज बिना कारण के कैसे हो सकती है?
एम: हर घटना में संपूर्ण ब्रह्मांड प्रतिबिंबित होता है। इसका मूल कारण अज्ञात है। कारण-कार्य संबंध की अवधारणा मात्र सोचने और बोलने का एक तरीका है। हम अकारण उत्पत्ति की कल्पना नहीं कर सकते। हालांकि, इससे कारण-कार्य संबंध का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता।
प्रश्न: प्रकृति बुद्धिहीन है, इसलिए गैर-जिम्मेदार है। लेकिन मनुष्य के पास बुद्धि है। फिर भी वह इतना विकृत क्यों है?
एम: विकृति के कारण भी प्राकृतिक ही होते हैं—वंशानुक्रम, वातावरण इत्यादि। आप दूसरों की निंदा करने में बहुत जल्दी करते हैं। दूसरों की चिंता मत कीजिए। पहले अपने मन को समझिए। जब आपको यह अहसास हो जाएगा कि आपका मन भी प्रकृति का एक हिस्सा है, तो द्वैत समाप्त हो जाएगा।

प्रश्न: इसमें कुछ रहस्य छिपा है जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। मन प्रकृति का अंश कैसे हो सकता है?
एम: क्योंकि प्रकृति मन में है; मन के बिना प्रकृति कहाँ है?
प्रश्न: यदि प्रकृति मन में निहित है और मन मेरा अपना है, तो मुझे प्रकृति को नियंत्रित करने में सक्षम होना चाहिए, जो वास्तव में सच नहीं है। मेरे व्यवहार को मेरे नियंत्रण से परे की शक्तियाँ निर्धारित करती हैं।
एम: साक्षी भाव विकसित करें और आप स्वयं अनुभव करेंगे कि अनासक्ति से ही नियंत्रण प्राप्त होता है। साक्षी भाव शक्ति से परिपूर्ण है, इसमें निष्क्रियता का कोई स्थान नहीं है।

42. वास्तविकता को व्यक्त नहीं किया जा सकता

प्रश्नकर्ता: मैंने अपने भीतर एक नए व्यक्तित्व को उभरते हुए देखा है, जो पुराने व्यक्तित्व से स्वतंत्र है। ये दोनों किसी न किसी रूप में सह-अस्तित्व में हैं। पुराना व्यक्तित्व अपनी आदतों के अनुसार चलता रहता है; नया व्यक्तित्व पुराने को रहने देता है, लेकिन उससे स्वयं को नहीं जोड़ता। महाराज: पुराने और नए व्यक्तित्व में मुख्य अंतर क्या है?
प्रश्न: पुराना स्व हर चीज़ को परिभाषित और स्पष्ट करना चाहता है। वह चाहता है कि बातें शब्दों में एक-दूसरे से मेल खाएं। नया स्व शब्दों के स्पष्टीकरण की परवाह नहीं करता - वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में स्वीकार करता है और उन्हें यादों से जोड़ने की कोशिश नहीं करता।
एम: क्या आप आदत और आध्यात्मिकता के बीच के अंतर से पूरी तरह और निरंतर अवगत हैं? नए स्वरूप का पुराने स्वरूप के प्रति क्या दृष्टिकोण है? प्रश्न: नया, पुराने को बस देखता है। यह न तो मित्रतापूर्ण है और न ही शत्रुतापूर्ण। यह पुराने स्वरूप को बाकी सब कुछ के साथ स्वीकार करता है। यह अपने अस्तित्व से इनकार नहीं करता, लेकिन उसके मूल्य और वैधता को स्वीकार नहीं करता।
एम: नया, पुराने का पूर्ण खंडन है। उदारवादी नया वास्तव में नया नहीं है। यह तो पुराने के प्रति एक नया दृष्टिकोण मात्र है। सच्चा नया, पुराने को पूरी तरह मिटा देता है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते। क्या इसमें आत्म-त्याग की प्रक्रिया, पुराने विचारों और मूल्यों को स्वीकार करने से निरंतर इनकार, या केवल आपसी सहिष्णुता शामिल है? इनका आपस में क्या संबंध है?
प्रश्न: इनके बीच कोई विशिष्ट संबंध नहीं है। ये सह-अस्तित्व में हैं। एम: जब आप पुराने और नए स्वरूप की बात करते हैं, तो आपका तात्पर्य किससे है? चूंकि दोनों के बीच स्मृति में निरंतरता है, और दोनों एक-दूसरे को याद करते हैं, तो आप दो स्वरूपों की बात कैसे कर सकते हैं?
प्रश्न: एक आदतों का गुलाम है, दूसरा नहीं। एक अवधारणा बनाता है, दूसरा सभी विचारों से मुक्त है।
एम: दो स्व क्यों? बंधे हुए और मुक्त के बीच कोई संबंध नहीं हो सकता। सह-अस्तित्व ही उनकी मूलभूत एकता को सिद्ध करता है। केवल एक ही स्व है - वह सदा वर्तमान में है। जिसे आप दूसरा स्व कहते हैं - पुराना या नया - वह केवल एक रूप है, एक ही स्व का एक और पहलू है। स्व एक है। आप वही स्व हैं और आपके मन में इस बात के विचार हैं कि आप क्या रहे हैं या क्या होंगे। लेकिन विचार

स्व नहीं है। अभी, जब आप मेरे सामने बैठे हैं, तो आप कौन सा स्व हैं? पुराना या नया?
प्रश्न: दोनों में परस्पर विरोधी भावना है।
एम: जो है और जो नहीं है, उसके बीच संघर्ष कैसे हो सकता है? संघर्ष तो पुराने का ही गुण है। जब नया आता है, तो पुराना नहीं रहता। नए और संघर्ष की बात एक साथ नहीं की जा सकती। यहाँ तक कि नए स्वरूप को पाने का प्रयास भी पुराने का ही हिस्सा है। जहाँ भी संघर्ष, प्रयास, संघर्ष, चाहत, बदलाव की लालसा होती है, वहाँ नया नहीं होता। आप संघर्ष पैदा करने और उसे बनाए रखने की इस आदत से किस हद तक मुक्त हैं?
प्रश्न: मैं यह नहीं कह सकता कि मैं अब एक अलग इंसान बन गया हूँ। लेकिन मैंने अपने बारे में कुछ नई बातें खोजी हैं, ऐसी बातें जो पहले की मेरी जानकारी से इतनी अलग हैं कि मैं उन्हें नया कहना उचित समझता हूँ।
एम: पुराना स्व ही आपका अपना स्व है। वह अवस्था जो अचानक और बिना किसी कारण के उत्पन्न होती है, उसमें स्वयं का कोई दाग नहीं होता; आप उसे 'ईश्वर' कह सकते हैं। जो बीजहीन और जड़हीन है, जो अंकुरित होकर बढ़ता नहीं, फूलता और फलता नहीं, जो अचानक और पूर्ण महिमा के साथ, रहस्यमय और अद्भुत रूप से अस्तित्व में आता है, आप उसे 'ईश्वर' कह सकते हैं। यह पूरी तरह से अप्रत्याशित होते हुए भी अपरिहार्य है, असीम रूप से परिचित होते हुए भी अत्यंत आश्चर्यजनक है, सभी आशाओं से परे होते हुए भी पूर्णतः निश्चित है। क्योंकि यह बिना कारण के है, इसलिए यह बिना किसी बाधा के है। यह केवल एक ही नियम का पालन करता है; स्वतंत्रता का नियम। कोई भी ऐसी चीज जो निरंतरता, क्रम, एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने का संकेत देती है, वह वास्तविक नहीं हो सकती। वास्तविकता में कोई प्रगति नहीं है, यह अंतिम, परिपूर्ण, असंबंधित है।
प्रश्न: मैं इसे कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?
एम: आप इसे लाने के लिए कुछ नहीं कर सकते, लेकिन आप बाधाएँ उत्पन्न करने से बच सकते हैं। अपने मन को देखें, यह कैसे अस्तित्व में आता है, कैसे कार्य करता है। जब आप अपने मन को देखते हैं, तो आप स्वयं को देखने वाले के रूप में पाते हैं। जब आप स्थिर खड़े होकर केवल देखते हैं, तो आप स्वयं को देखने वाले के पीछे प्रकाश के रूप में पाते हैं। प्रकाश का स्रोत अंधकारमय है, ज्ञान का स्रोत अज्ञात है। केवल वही स्रोत है। उस स्रोत पर लौटें और वहीं स्थिर रहें। यह न तो आकाश में है और न ही सर्वव्यापी आकाश में। ईश्वर ही वह सब कुछ है जो महान और अद्भुत है; मैं कुछ भी नहीं हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं कुछ भी नहीं कर सकता। फिर भी सब कुछ मुझसे ही उत्पन्न होता है - स्रोत मैं ही हूँ; जड़, मूल मैं ही हूँ।
जब आपके भीतर वास्तविकता का विस्फोट होता है, तो आप इसे ईश्वर का अनुभव कह सकते हैं। या यूँ कहें कि यह ईश्वर का आपको अनुभव करना है। ईश्वर आपको तब जानता है जब आप स्वयं को जान लेते हैं। वास्तविकता किसी प्रक्रिया का परिणाम नहीं है; यह एक विस्फोट है। यह निश्चित रूप से मन से परे है, लेकिन आप केवल इतना कर सकते हैं कि अपने मन को भलीभांति जान लें। ऐसा नहीं है कि मन आपकी सहायता करेगा, लेकिन अपने मन को जानकर आप उसे अपने ऊपर हावी होने से रोक सकते हैं। आपको बहुत सतर्क रहना होगा, अन्यथा आपका मन आपके साथ छल करेगा। यह एक चोर पर नज़र रखने जैसा है - ऐसा नहीं है कि आप चोर से कुछ उम्मीद करते हैं, लेकिन आप लूटे जाने से बचना चाहते हैं। ठीक उसी तरह, आप मन पर बहुत ध्यान देते हैं, लेकिन उससे कुछ अपेक्षा नहीं रखते।

या, एक और उदाहरण लीजिए। हम जागते हैं और सोते हैं। दिनभर के काम के बाद नींद आती है। अब, क्या मैं सो जाता हूँ या नींद की अवस्था की विशेषता - अचेतनता - मुझ पर हावी हो जाती है? दूसरे शब्दों में - हम जागते हैं क्योंकि हम सो रहे होते हैं। हम सचमुच जागृत अवस्था में नहीं जागते। जागृत अवस्था में अज्ञान के कारण संसार प्रकट होता है और व्यक्ति को एक जागृत-स्वप्न अवस्था में ले जाता है। नींद और जागना दोनों ही भ्रामक नाम हैं। हम केवल स्वप्न देख रहे हैं। सच्चा जागना और सच्चा सोना केवल ज्ञानी ही जानता है। हम स्वप्न देखते हैं कि हम जाग रहे हैं, हम स्वप्न देखते हैं कि हम सो रहे हैं। ये तीनों अवस्थाएँ स्वप्न अवस्था के ही विभिन्न रूप हैं। हर चीज को स्वप्न समझना मुक्ति दिलाता है। जब तक आप स्वप्नों को वास्तविकता देते हैं, आप उनके दास बने रहते हैं। यह कल्पना करके कि आप अमुक रूप में पैदा हुए हैं, आप अमुक के दास बन जाते हैं। दासता का सार स्वयं को एक प्रक्रिया, अतीत और भविष्य, इतिहास के रूप में कल्पना करना है। वास्तव में, हमारा कोई इतिहास नहीं है, हम एक प्रक्रिया नहीं हैं, हम न तो विकसित होते हैं और न ही क्षय होते हैं; और इसे एक सपने के रूप में देखें और इससे दूर रहें। प्रश्न: आपको सुनने से मुझे क्या लाभ होगा?
एम: मैं तुम्हें तुम्हारे स्वयं की ओर वापस बुला रहा हूँ। मैं तुमसे बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि तुम स्वयं को देखो, स्वयं की ओर देखो, अपने भीतर देखो।
प्रश्न: किस उद्देश्य से?
एम: आप जीते हैं, आप महसूस करते हैं, आप सोचते हैं। अपने जीने, महसूस करने और सोचने पर ध्यान देकर आप इनसे मुक्त हो जाते हैं और इनसे परे चले जाते हैं। आपका व्यक्तित्व विलीन हो जाता है और केवल साक्षी ही शेष रह जाता है। फिर आप साक्षी से भी परे चले जाते हैं। यह कैसे होता है, यह मत पूछिए। बस अपने भीतर खोजिए।
प्रश्न: व्यक्ति और गवाह में क्या अंतर होता है?
एम: दोनों ही चेतना के रूप हैं। एक में आप इच्छा और भय का अनुभव करते हैं, जबकि दूसरे में आप सुख-दुख से अप्रभावित रहते हैं और घटनाओं से विचलित नहीं होते। आप उन्हें आने-जाने देते हैं।
प्रश्न: उच्चतर अवस्था, यानी शुद्ध साक्षी भाव की अवस्था में कैसे स्थापित हुआ जा सकता है?
एम: चेतना स्वयं प्रकाशित नहीं होती। यह अपने से परे किसी प्रकाश से प्रकाशित होती है। चेतना के स्वप्निल स्वरूप को देखकर, उस प्रकाश को खोजें जिसमें यह प्रकट होती है, जो इसे अस्तित्व प्रदान करता है। चेतना की विषयवस्तु भी होती है और उसकी जागरूकता भी।
प्रश्न: मुझे पता है और मुझे यह भी पता है कि मुझे पता है।
एम: बिलकुल सही, बशर्ते दूसरा ज्ञान निःशर्त और शाश्वत हो। ज्ञात को भूल जाओ, परन्तु यह याद रखो कि तुम ही ज्ञाता हो। अपने अनुभवों में ही लीन मत रहो। याद रखो कि तुम अनुभव से परे हो, सदा अजन्मे और अमर हो। इसे याद करने मात्र से ही शुद्ध ज्ञान का गुण प्रकट होगा, निःशर्त जागरूकता का प्रकाश। प्रश्न: व्यक्ति को वास्तविकता का अनुभव किस बिंदु पर होता है?
एम: अनुभव परिवर्तनशील है, यह आता-जाता रहता है। वास्तविकता कोई घटना नहीं है, इसका अनुभव नहीं किया जा सकता। यह घटना की तरह प्रत्यक्ष नहीं है। यदि आप किसी घटना के घटित होने की, वास्तविकता के आने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, तो आप अनंत काल तक प्रतीक्षा करते रहेंगे, क्योंकि वास्तविकता न

आती है और न जाती है। इसे अनुभव किया जाना चाहिए, इसकी अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। इसके लिए तैयारी या पूर्वाभास नहीं किया जा सकता। लेकिन वास्तविकता की लालसा और खोज ही वास्तविकता की गति, क्रिया और कार्य है। आप केवल इतना ही कर सकते हैं कि इस मूल बिंदु को समझें कि वास्तविकता कोई घटना नहीं है और न ही यह घटित होती है, और जो कुछ भी घटित होता है, जो कुछ भी आता- जाता है, वह वास्तविकता नहीं है। घटना को केवल घटना के रूप में देखें, क्षणभंगुर को क्षणभंगुर के रूप में देखें, अनुभव को केवल अनुभव के रूप में देखें, और आपने वह सब कर लिया जो आप कर सकते थे। तब आप वास्तविकता के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं, अब आप इसके विरुद्ध उस कवच में नहीं रहते, जैसा कि आप तब थे जब आपने घटनाओं और अनुभवों को वास्तविकता का दर्जा दिया था। लेकिन जैसे ही कुछ पसंद या नापसंद होती है, आप एक पर्दा खींच लेते हैं। प्रश्न: क्या आप कहेंगे कि वास्तविकता ज्ञान के बजाय क्रिया में व्यक्त होती है? या, यह एक प्रकार की भावना है?
एम: न तो कर्म, न भावना, न विचार वास्तविकता को व्यक्त करते हैं। वास्तविकता की अभिव्यक्ति जैसी कोई चीज नहीं है। आप वहां द्वैत का परिचय दे रहे हैं जहां कोई द्वैत है ही नहीं। केवल वास्तविकता है, और कुछ नहीं। जागना, स्वप्न देखना और सोना, ये तीनों अवस्थाएं मैं नहीं हूं और न ही मैं इनमें हूं। जब मैं मरूंगा, तो दुनिया कहेगी - 'ओह, महाराज मर गए!' लेकिन मेरे लिए ये शब्द सारहीन हैं; इनका कोई अर्थ नहीं है। जब गुरु की प्रतिमा के सामने पूजा की जाती है, तो सब कुछ ऐसा होता है मानो वे जागते हैं, स्नान करते हैं, खाते हैं, विश्राम करते हैं, टहलने जाते हैं, लौटते हैं, सबको आशीर्वाद देते हैं और सो जाते हैं। हर छोटी से छोटी बात का ध्यान रखा जाता है, फिर भी सब कुछ अवास्तविक सा लगता है। मेरे साथ भी ऐसा ही है। सब कुछ अपनी जरूरत के हिसाब से होता है, फिर भी कुछ नहीं होता। मैं वह करता हूं जो जरूरी लगता है, लेकिन साथ ही मैं जानता हूं कि कुछ भी जरूरी नहीं है, जीवन ही एक भ्रम मात्र है।
प्रश्न: तो फिर जीने का क्या फायदा? यह सब अनावश्यक आना-जाना, जागना और सोना, खाना और पचाना क्यों?
एम: मेरे द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता, सब कुछ बस हो जाता है। मैं उम्मीद नहीं करता, मैं योजना नहीं बनाता, मैं बस घटनाओं को घटित होते हुए देखता हूं, यह जानते हुए कि वे अवास्तविक हैं।
प्रश्न: क्या आप ज्ञान प्राप्ति के पहले क्षण से ही ऐसे थे?
एम: तीनों अवस्थाएँ सामान्य रूप से चक्र में चलती रहती हैं—जागना, सोना और फिर जागना, लेकिन ये मेरे साथ घटित नहीं होतीं। ये बस हो जाती हैं। मेरे लिए कभी कुछ घटित नहीं होता। कुछ ऐसा है जो अपरिवर्तनीय, गतिहीन, अचल, चट्टान के समान, अजेय है; शुद्ध अस्तित्व-चेतना-आनंद का एक ठोस पिंड। मैं कभी इससे बाहर नहीं निकलता। कोई भी चीज मुझे इससे बाहर नहीं निकाल सकती, न कोई यातना, न कोई विपत्ति।
प्रश्न: फिर भी, आप सचेत हैं!
एम: हां और ना। शांति है—गहरी, असीम, अविचल। घटनाएं स्मृति में दर्ज तो हैं, लेकिन उनका कोई महत्व नहीं है। मुझे उनका शायद ही एहसास होता है। प्रश्न: यदि मैं आपको सही समझ रहा हूँ, तो यह अवस्था खेती से प्राप्त नहीं हुई है।

एम: कोई आगमन नहीं था। यह हमेशा से ऐसा ही था। एक खोज हुई और वह अचानक हुई। जैसे जन्म के समय आप अचानक दुनिया को खोजते हैं, वैसे ही अचानक मैंने अपने वास्तविक अस्तित्व को खोजा।
प्रश्न: क्या आपके ऊपर बादल छाए हुए थे और आपकी साधना ने उस धुंध को दूर कर दिया? जब आपको अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ, तो क्या वह स्पष्टता बनी रही या फिर से धुंधली हो गई? क्या आपकी यह स्थिति स्थायी है या क्षणिक? एम: बिलकुल स्थिर। मैं चाहे जो भी करूँ, यह चट्टान की तरह स्थिर रहता है— अचल। एक बार जब आप वास्तविकता में जागृत हो जाते हैं, तो आप उसी में बने रहते हैं। बच्चा गर्भ में वापस नहीं जाता! यह एक सरल अवस्था है, सबसे छोटी से भी छोटी, सबसे बड़ी से भी बड़ी। यह स्वतः स्पष्ट है, फिर भी वर्णन से परे है।
प्रश्न: क्या इसका कोई तरीका है?
एम: रुचि होने पर हर चीज़ एक रास्ता बन सकती है। मेरे शब्दों पर विचार करना और उनके पूर्ण अर्थ को समझने का प्रयास करना ही दीवार तोड़ने के लिए पर्याप्त साधना है। मुझे कोई बात परेशान नहीं करती। मैं परेशानी का विरोध नहीं करता—इसलिए वह मुझ पर टिकती नहीं। तुम्हारी तरफ तो बहुत परेशानियाँ हैं। मेरी तरफ बिल्कुल भी परेशानियाँ नहीं हैं। मेरी तरफ आओ। तुम परेशानियों से घिरे रहते हो। मैं उनसे अछूता हूँ। कुछ भी हो सकता है— ज़रूरत है सच्ची रुचि की। लगन से ही यह संभव है।
प्रश्न: क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ?
एम: बिल्कुल। आप आसानी से पार कर सकते हैं। बस ईमानदार रहें।

43. अज्ञान को पहचाना जा सकता है, ज्ञान को नहीं।

प्रश्नकर्ता: आपकी शिक्षण शैली साल दर साल एक जैसी ही रहती है। आपके द्वारा बताई गई बातों में कोई प्रगति नहीं दिखती।
महाराज: अस्पताल में बीमारों का इलाज होता है और वे ठीक हो जाते हैं। इलाज एक नियमित प्रक्रिया है, जिसमें शायद ही कोई बदलाव होता है, लेकिन स्वास्थ्य में कोई नीरसता नहीं होती। मेरा शिक्षण भले ही नियमित हो, लेकिन इसका फल हर व्यक्ति के लिए नया होता है।
प्रश्न: आत्मज्ञान क्या है? आत्मज्ञानी कौन होता है? ज्ञानी की पहचान किन बातों से होती है?
एम: ज्ञान के कोई विशिष्ट लक्षण नहीं होते। केवल अज्ञान को पहचाना जा सकता है, ज्ञान को नहीं। न ही कोई ज्ञानी स्वयं को कोई विशेष मानता है। वे सभी जो अपनी महानता और विशिष्टता का बखान करते हैं, ज्ञानी नहीं हैं। वे किसी असामान्य विकास को आत्मज्ञान समझ रहे हैं। ज्ञानी स्वयं को ज्ञानी घोषित करने की प्रवृत्ति नहीं रखता। वह स्वयं को पूर्णतः सामान्य, अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति सच्चा मानता है। स्वयं को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी देवता घोषित करना अज्ञान का स्पष्ट संकेत है। प्रश्न: क्या ज्ञानी व्यक्ति अपने अनुभव को अज्ञानी व्यक्ति तक पहुंचा सकता है? क्या ज्ञान एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाया जा सकता है? एम: जी हाँ, ऐसा हो सकता है। ज्ञानी के वचन मन के अज्ञान और अंधकार को दूर करने की शक्ति रखते हैं। महत्वपूर्ण शब्द नहीं, बल्कि उनके पीछे छिपी शक्ति है।
प्रश्न: वह शक्ति क्या है?

एम: व्यक्तिगत अनुभूति और प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित दृढ़ विश्वास की शक्ति।
प्रश्न: कुछ ज्ञानी लोग कहते हैं कि ज्ञान अर्जित करना पड़ता है, प्राप्त नहीं किया जा सकता। दूसरा केवल सिखा सकता है, लेकिन सीखना स्वयं का होता है।
एम: बात वही है।
प्रश्न: कई लोग वर्षों से योग का अभ्यास कर रहे हैं लेकिन उन्हें कोई लाभ नहीं मिल रहा है। उनकी असफलता का कारण क्या हो सकता है?
एम: कुछ लोग समाधि की अवस्था के आदी हो जाते हैं, जिसमें उनकी चेतना निष्क्रिय हो जाती है। पूर्ण चेतना के बिना भला प्रगति कैसे हो सकती है? प्रश्न: बहुत से लोग समाधि (उत्साहपूर्ण एकाग्रता की अवस्था) का अभ्यास कर रहे हैं। समाधि में चेतना अत्यंत तीव्र होती है, फिर भी इससे कुछ भी परिणाम नहीं निकलता।
एम: आप क्या परिणाम की अपेक्षा रखते हैं? और ज्ञान किसी चीज़ का परिणाम क्यों होना चाहिए? एक चीज़ दूसरी चीज़ की ओर ले जाती है, लेकिन ज्ञान कारण और परिणाम के बंधन में नहीं बंधा होता। यह कारण-कार्य संबंध से परे है। यह आत्मा में लीन रहना है। योगी अनेक चमत्कारों को जान लेता है, परन्तु आत्मा के विषय में अनभिज्ञ रहता है। ज्ञानी दिखने और महसूस करने में भले ही साधारण लगे, परन्तु आत्मा को वह भली-भांति जानता है।
प्रश्न: ऐसे बहुत से लोग हैं जो आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करते हैं, लेकिन उन्हें बहुत कम परिणाम मिलते हैं। इसका कारण क्या हो सकता है?
एम: उन्होंने ज्ञान के स्रोतों की पर्याप्त जांच नहीं की है, वे अपनी संवेदनाओं, भावनाओं और विचारों को अच्छी तरह से नहीं जानते हैं। यह देरी का एक कारण हो सकता है। दूसरा कारण: कुछ इच्छाएँ अभी भी जीवित हो सकती हैं। प्रश्न: साधना में उतार-चढ़ाव आना स्वाभाविक है। फिर भी, सच्चा साधक इन सब बाधाओं के बावजूद निरंतर प्रयास करता रहता है। ज्ञानी ऐसे साधक के लिए क्या कर सकता है?
एम: यदि साधक गंभीर हो, तो प्रकाश प्राप्त हो सकता है। प्रकाश सबके लिए है और सदा विद्यमान है, परन्तु साधक अल्प हैं, और उन अल्पों में भी जो तैयार हैं, वे अत्यंत दुर्लभ हैं। हृदय और मन की परिपक्वता अत्यावश्यक है। प्रश्न: क्या आपको आत्मज्ञान अपने प्रयासों से प्राप्त हुआ या अपने गुरु की कृपा से?
एम: शिक्षा उनकी थी और विश्वास मेरा। उन पर मेरे भरोसे ने मुझे उनके शब्दों को सत्य मानने, उनमें गहराई से उतरने और उन्हें अपने जीवन में उतारने के लिए प्रेरित किया, और इसी तरह मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरु के व्यक्तित्व और उनके वचनों ने मुझमें उन पर विश्वास जगाया और मेरे विश्वास ने उन्हें फलदायी बनाया।
प्रश्न: लेकिन क्या कोई गुरु बिना शब्दों के, बिना विश्वास के, यूं ही, बिना किसी तैयारी के, आत्मज्ञान प्रदान कर सकता है?
एम: जी हाँ, संभव है, लेकिन इसे अपनाने वाला कौन है? देखिए, मैं अपने गुरु से इतना जुड़ा हुआ था, उन पर इतना पूर्ण विश्वास करता था कि मेरे भीतर प्रतिरोध की भावना इतनी कम थी कि सब कुछ आसानी से और जल्दी हो गया। लेकिन हर कोई इतना भाग्यशाली नहीं होता। आलस्य और बेचैनी अक्सर बाधा बन जाते हैं और जब तक इन्हें पहचान कर दूर नहीं किया जाता, प्रगति धीमी रहती है। जिन

लोगों ने मात्र स्पर्श, दृष्टि या चिंतन से ही इस ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, वे इसके लिए तैयार थे। लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं। अधिकांश लोगों को परिपक्व होने के लिए कुछ समय चाहिए होता है। साधना परिपक्वता की प्रक्रिया को तेज करती है।
प्रश्न: किसी जीव के पकने की प्रक्रिया क्या है? पकने का कारक क्या है? एम: बेशक, लगन तो जरूरी है, इसके लिए वास्तव में उत्सुक होना चाहिए। आखिर, आत्मज्ञानी व्यक्ति ही सबसे लगनशील होता है। वह जो भी करता है, उसे पूरी तरह से, बिना किसी सीमा या संकोच के करता है। ईमानदारी ही आपको वास्तविकता तक ले जाएगी।
प्रश्न: क्या आप दुनिया से प्यार करते हैं?
एम: जब आपको चोट लगती है, तो आप रोते हैं। क्यों? क्योंकि आप खुद से प्यार करते हैं। अपने प्यार को शरीर तक सीमित करके मत रखो, उसे खुला रखो। तभी वह प्यार सबके लिए होगा। जब खुद से जुड़ी सारी झूठी धारणाएं दूर हो जाती हैं, तो जो बचता है वह सर्वव्यापी प्रेम होता है। अपने बारे में सारे विचार त्याग दो, यहां तक कि यह विचार भी कि तुम ईश्वर हो। खुद की कोई भी परिभाषा मान्य नहीं है।
प्रश्न: मैं वादों से थक गया हूँ। मैं साधनाओं से थक गया हूँ, जो मेरा सारा समय और ऊर्जा ले लेती हैं और कुछ भी हासिल नहीं करतीं। मुझे अभी और यहीं वास्तविकता चाहिए। क्या मुझे यह मिल सकती है?
एम: बिल्कुल कर सकते हैं, बशर्ते आप अपनी साधनाओं सहित हर चीज से पूरी तरह ऊब चुके हों। जब आप न तो दुनिया से कुछ मांगते हैं, न ही भगवान से, जब आप कुछ नहीं चाहते, कुछ नहीं खोजते, कुछ उम्मीद नहीं करते, तब परम सत्ता आपके पास अनचाहे और अप्रत्याशित रूप से आ जाएगी!
प्रश्न: यदि कोई व्यक्ति पारिवारिक जीवन और सांसारिक मामलों में लीन रहते हुए शास्त्रों में वर्णित विधि का कड़ाई से पालन करे, तो क्या उसे फल प्राप्त होंगे?
एम: उसे परिणाम तो मिलेंगे, लेकिन वह उनमें इस कदर उलझा रहेगा जैसे किसी कोकून में लिपटा हो।
प्रश्न: कई संत कहते हैं कि जब आप परिपक्व और तैयार हो जाएंगे, तब आपको ज्ञान प्राप्त होगा। उनकी बातें सत्य हो सकती हैं, लेकिन उनका कोई खास उपयोग नहीं है। परिपक्वता से परे, जिसके लिए समय चाहिए, और साधना से परे, जिसके लिए प्रयास चाहिए, कोई और रास्ता अवश्य होना चाहिए।
एम: इसे तरीका मत कहो; यह एक तरह का कौशल है। बल्कि यह वह भी नहीं है। बस शांत और खुले रहो, यही काफी है। जो तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे इतना करीब है कि वहां किसी तरीके की कोई गुंजाइश ही नहीं है।
प्रश्न: दुनिया में इतने सारे अज्ञानी लोग हैं और इतने कम ज्ञानी। इसका कारण क्या हो सकता है?
एम: दूसरों की चिंता मत करो, अपना ख्याल रखो। तुम जानते हो कि तुम कौन हो। खुद को नामों के बोझ तले मत दबाओ, बस खुद बनो। तुम खुद को जो भी नाम या रूप दोगे, वह तुम्हारे असली स्वरूप को छुपा देगा।
प्रश्न: किसी व्यक्ति को प्राप्ति से पहले ही खोज क्यों समाप्त कर देनी चाहिए?
एम: सत्य की खोज सभी इच्छाओं में सर्वोच्च है, फिर भी यह एक इच्छा ही है। सभी इच्छाओं को यथार्थ के समक्ष समर्पित करना होगा। याद रखें कि आप ही

हैं। यही आपकी कार्यशील पूंजी है। इसका सदुपयोग करें और आपको भरपूर लाभ मिलेगा।
प्रश्न: खोज की आवश्यकता ही क्यों होनी चाहिए?
एम: जीवन खोज है, कोई खोज किए बिना नहीं रह सकता। जब सारी खोज समाप्त हो जाती है, वही सर्वोच्च अवस्था होती है।
प्रश्न: सर्वोच्च राज्य का अस्तित्व क्यों आता-जाता रहता है?
एम: यह न तो आता है और न ही जाता है। यह है।
प्रश्न: क्या आप अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर बोल रहे हैं?
एम: बिल्कुल। यह एक शाश्वत अवस्था है, जो हमेशा विद्यमान रहती है। प्रश्न: मेरे साथ तो यह समस्या आती-जाती रहती है, आपके साथ ऐसा नहीं होता। यह अंतर क्यों है?

एम: शायद इसलिए कि मुझमें कोई इच्छा नहीं है। या फिर आप परमेश्वर की उतनी प्रबल इच्छा नहीं रखते। जब आपका मन परमेश्वर से संपर्क में नहीं होता, तब आप हताश महसूस करते होंगे।
प्रश्न: मैंने जीवन भर प्रयास किया, लेकिन बहुत कम हासिल किया। मैं पढ़ता रहा, सुनता रहा - सब व्यर्थ।
एम: आपको सुनने और पढ़ने की आदत पड़ गई थी।
प्रश्न: मैंने भी इसे छोड़ दिया है। मैं आजकल पढ़ता नहीं हूँ।
एम: आपने क्या त्यागा, अब उसका कोई महत्व नहीं है। आपने क्या नहीं त्यागा है? इसका पता लगाइए और उसे त्याग दीजिए। साधना त्यागने योग्य चीजों की खोज है। अपने आप को पूरी तरह से खाली कर दीजिए।
प्रश्न: एक मूर्ख ज्ञान की इच्छा कैसे कर सकता है? इच्छा करने के लिए पहले उसका ज्ञान होना आवश्यक है। जब परम सत्ता का ज्ञान ही न हो, तो उसकी इच्छा कैसे की जा सकती है?
एम: मनुष्य स्वाभाविक रूप से परिपक्व होता है और आत्मज्ञान के लिए तैयार हो जाता है।
प्रश्न: लेकिन पकने का कारक क्या है?
एम: आत्म-स्मरण, 'मैं हूं' की जागरूकता, व्यक्ति को शक्तिशाली और शीघ्रता से परिपक्व बनाती है। अपने बारे में सभी विचारों को त्याग दें और बस अस्तित्व में रहें।
प्रश्न: मैं इन सभी तरीकों, साधनों, कौशलों और तरकीबों से, इन सभी मानसिक कसरतों से थक गया हूँ। क्या वास्तविकता को सीधे और तुरंत समझने का कोई तरीका है?
एम: अपने दिमाग का इस्तेमाल करना बंद करो और देखो क्या होता है। बस एक काम पूरी तरह से करो। बस इतना ही।
प्रश्न: जब मैं छोटा था, तब मुझे कुछ अजीबोगरीब अनुभव हुए थे, क्षणिक लेकिन यादगार, जिनमें मैं कुछ भी नहीं था, बस कुछ भी नहीं, फिर भी पूरी तरह सचेत था। लेकिन खतरा यह है कि बीते हुए पलों को यादों से दोबारा जीने की इच्छा मन में जाग उठती है।
एम: यह सब कल्पना है। चेतना के प्रकाश में हर प्रकार की चीज़ें घटित होती हैं और किसी को भी विशेष महत्व देने की आवश्यकता नहीं है। फूल का दर्शन उतना ही अद्भुत है जितना ईश्वर का दर्शन। उन्हें रहने दो। उन्हें याद करके फिर स्मृति को समस्या क्यों बनाना? उनके प्रति तटस्थ रहो; उन्हें ऊँच-नीच, भीतर-बाहर, स्थायी-क्षणिक में विभाजित मत करो। आगे बढ़ो, स्रोत की ओर लौटो,

उस आत्मा की ओर लौटो जो हर हाल में एक समान है। तुम्हारी कमजोरी इस विश्वास के कारण है कि तुम संसार में जन्म लिए हो। वास्तव में संसार तुम्हारे भीतर और तुम्हारे द्वारा सदा पुनर्जीवित होता रहता है। हर चीज़ को उस प्रकाश से उत्पन्न होते हुए देखो जो तुम्हारे अपने अस्तित्व का स्रोत है। तुम पाओगे कि उस प्रकाश में प्रेम और अनंत ऊर्जा है।
प्रश्न: यदि मैं ही वह प्रकाश हूँ, तो मुझे इसका ज्ञान क्यों नहीं है?
एम: जानने के लिए, एक ज्ञानवान मन की आवश्यकता होती है, एक ऐसा मन जो जानने में सक्षम हो। लेकिन आपका मन हमेशा भागता रहता है, कभी स्थिर नहीं होता, कभी पूरी तरह से चिंतन नहीं करता। जब आंखें बीमारी से धुंधली हों तो आप चंद्रमा को उसकी पूरी महिमा में कैसे देख सकते हैं?
प्रश्न: क्या हम यह कह सकते हैं कि हालांकि सूर्य छाया का कारण है, लेकिन छाया में सूर्य दिखाई नहीं देता? इसके लिए घूमकर देखना पड़ता है।
एम: आपने फिर से सूर्य, शरीर और छाया की त्रिमूर्ति का जिक्र किया है। वास्तविकता में ऐसा कोई विभाजन नहीं है। मैं जिस बारे में बात कर रहा हूँ उसका द्वैत और त्रिमूर्ति से कोई लेना-देना नहीं है। मानसिक और शाब्दिक रूप से मत सोचो। बस देखो और अनुभव करो।
प्रश्न: क्या मुझे अस्तित्व में रहने के लिए देखना आवश्यक है?
एम: देखो तुम क्या हो। दूसरों से मत पूछो, दूसरों को अपने बारे में बताने मत दो। अपने भीतर देखो और खुद को पहचानो। गुरु तुम्हें बस यही बता सकते हैं। एक से दूसरे के पास जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी कुओं में एक ही पानी है। बस पास वाले से पानी निकाल लो। मेरे मामले में पानी मेरे भीतर है और मैं ही पानी हूँ।

44. 'मैं हूँ' सत्य है, बाकी सब अनुमान है।

महाराज: संसार को देखने वाला, क्या वह संसार से पहले अस्तित्व में था, या वह संसार के साथ ही अस्तित्व में आया?
प्रश्नकर्ता: यह तो बहुत ही अजीब सवाल है! आप ऐसे सवाल क्यों पूछते हैं? एम: जब तक आपको सही उत्तर नहीं पता होगा, तब तक आपको शांति नहीं मिलेगी। प्रश्न: जब मैं सुबह उठता हूँ, तो दुनिया पहले से ही मेरा इंतज़ार कर रही होती है। बेशक, दुनिया पहले अस्तित्व में आती है। मैं भी अस्तित्व में आता हूँ, लेकिन बहुत बाद में, शायद मेरे जन्म के समय। शरीर मेरे और दुनिया के बीच मध्यस्थ का काम करता है। शरीर के बिना न तो मैं हूँ और न ही दुनिया। एम: शरीर आपके मन में प्रकट होता है, आपका मन आपकी चेतना का सार है; आप चेतना की उस नदी के स्थिर साक्षी हैं जो आपको बदले बिना शाश्वत रूप से बदलती रहती है। आपकी अपनी अपरिवर्तनीयता इतनी स्पष्ट है कि आप इसे महसूस भी नहीं करते। अपने आप को ध्यान से देखें और ये सभी भ्रांतियाँ और भ्रम दूर हो जाएँगे। जैसे सभी छोटे जलीय जीव जल में रहते हैं और जल के बिना नहीं रह सकते, वैसे ही सारा ब्रह्मांड आप में समाया हुआ है और आपके बिना नहीं रह सकता।
प्रश्न: हम इसे ईश्वर कहते हैं।
एम: ईश्वर तो केवल आपके मन का एक विचार है। वास्तविकता तो आप ही हैं। आप केवल एक ही बात निश्चित रूप से जानते हैं: 'मैं अभी और यहीं हूँ'। 'अभी और यहीं' को हटा दें तो 'मैं हूँ' अटल रहता है। शब्द स्मृति में विद्यमान होता

है, स्मृति चेतना में प्रकट होती है; चेतना जागरूकता में विद्यमान होती है और जागरूकता अस्तित्व के जल पर प्रकाश का प्रतिबिंब है।
प्रश्न: फिर भी मुझे समझ नहीं आता कि जब इसका विपरीत कथन 'मैं संसार में हूँ' इतना स्पष्ट है, तो संसार मुझमें कैसे हो सकता है? उत्तर: 'मैं संसार हूँ, संसार मैं हूँ' कहना भी अज्ञानता का संकेत है। परन्तु जब मैं संसार के साथ अपनी एकता को ध्यान में रखता हूँ और जीवन में इसकी पुष्टि करता हूँ, तो मुझमें एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जो अज्ञानता को नष्ट कर देती है, उसे पूरी तरह जला देती है।
प्रश्न: क्या अज्ञानता का साक्षी होना अज्ञानता से अलग है? क्या 'मैं अज्ञानी हूँ' कहना अज्ञानता का ही एक हिस्सा नहीं है?
एम: बिलकुल। मैं सच में बस इतना ही कह सकता हूँ: 'मैं हूँ', बाकी सब अनुमान है। लेकिन अनुमान लगाना एक आदत बन गई है। सोचने और देखने की सभी आदतों को नष्ट करो। 'मैं हूँ' की भावना एक गहरे कारण की अभिव्यक्ति है, जिसे आप स्वयं, ईश्वर, वास्तविकता या किसी अन्य नाम से पुकार सकते हैं। 'मैं हूँ' संसार में है; लेकिन यह वह कुंजी है जो संसार से बाहर निकलने का द्वार खोल सकती है। पानी पर नाचता हुआ चंद्रमा पानी में दिखाई देता है, लेकिन यह आकाश में स्थित चंद्रमा के कारण होता है, पानी के कारण नहीं।
प्रश्न: फिर भी मुख्य बिंदु मेरी समझ से परे लगता है। मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि जिस संसार में मैं रहता हूँ, चलता हूँ और मेरा अस्तित्व है, वह मेरी ही रचना है, मेरी कल्पना का, अज्ञात संसार पर, उस संसार पर जैसा वह है, 'परम पदार्थ' के संसार पर, चाहे वह पदार्थ कुछ भी हो। मेरी स्वयं की रचना का संसार परम, वास्तविक संसार से बिल्कुल भिन्न हो सकता है, ठीक वैसे ही जैसे सिनेमा का पर्दा उस पर प्रदर्शित चित्रों से बिल्कुल भिन्न होता है। फिर भी, यह परम संसार विद्यमान है, मुझसे पूरी तरह स्वतंत्र।
एम: बिलकुल सही, परम वास्तविकता की दुनिया, जिस पर आपके मन ने सापेक्षिक अवास्तविकता की दुनिया को प्रक्षेपित किया है, आपसे स्वतंत्र है, इसका सीधा सा कारण यह है कि वह स्वयं आप ही हैं।
प्रश्न: क्या इसमें कोई विरोधाभास नहीं है? स्वतंत्रता किस प्रकार पहचान को सिद्ध कर सकती है?
एम: परिवर्तन की गति का अध्ययन कीजिए और आप समझ जाएँगे। जो चीज़ आपके न बदलने पर भी बदल सकती है, उसे आपसे स्वतंत्र कहा जा सकता है। परन्तु जो चीज़ अपरिवर्तनीय है, वह अन्य सभी अपरिवर्तनीय चीज़ों के साथ एक हो जाती है। क्योंकि द्वैत का अर्थ है अंतःक्रिया और अंतःक्रिया से ही परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, जो पूर्णतः भौतिक है और जो पूर्णतः आध्यात्मिक है, जो पूर्णतः वस्तुनिष्ठ है और जो पूर्णतः व्यक्तिपरक है, वे सार और तत्व दोनों में एक समान हैं।
प्रश्न: त्रि-आयामी चित्र की तरह, प्रकाश अपनी स्वयं की स्क्रीन बनाता है। एम: कोई भी तुलना चलेगी। समझने वाली मुख्य बात यह है कि आपने अपनी यादों, इच्छाओं और भय पर आधारित अपनी कल्पना की दुनिया खुद पर थोप ली है और खुद को उसमें कैद कर लिया है। इस बंधन को तोड़ें और मुक्त हो जाएं।
प्रश्न: इस जादू को कैसे तोड़ा जा सकता है?
एम: अपने विचारों और कार्यों में स्वतंत्रता का दावा करें। आखिरकार, सब कुछ आपके स्वयं पर विश्वास पर, इस दृढ़ विश्वास पर टिका है कि आप जो देखते, सुनते, सोचते और महसूस करते हैं, वह वास्तविक है। अपने विश्वास पर प्रश्न क्यों न उठाएं? निस्संदेह, यह संसार आपके द्वारा चेतना के पर्दे पर

चित्रित किया गया है और पूरी तरह से आपका अपना निजी संसार है। केवल आपका 'मैं हूं' का बोध, हालांकि संसार में है, संसार का नहीं है। तर्क या कल्पना के किसी भी प्रयास से आप 'मैं हूं' को 'मैं नहीं हूं' में नहीं बदल सकते। अपने अस्तित्व के इनकार में ही आप उसे पुष्ट करते हैं। एक बार जब आप यह जान लेते हैं कि संसार आपका स्वयं का प्रक्षेपण है, तो आप इससे मुक्त हो जाते हैं। आपको उस संसार से स्वयं को मुक्त करने की आवश्यकता नहीं है जो अस्तित्व में ही नहीं है, सिवाय आपकी अपनी कल्पना में! चित्र चाहे जैसा भी हो, सुंदर हो या बदसूरत, आप ही उसे चित्रित कर रहे हैं और आप उससे बंधे नहीं हैं। यह समझें कि इसे आप पर थोपने वाला कोई नहीं है, यह काल्पनिक को वास्तविक मानने की आदत के कारण है। काल्पनिक को काल्पनिक के रूप में देखें और भय से मुक्त हो जाएं।
जिस प्रकार इस कालीन के रंग प्रकाश से निखरते हैं, लेकिन प्रकाश रंग नहीं है, उसी प्रकार संसार आपके कारण निर्मित है, लेकिन आप संसार नहीं हैं।
जो संसार का सृजन और पालन-पोषण करता है, आप उसे ईश्वर या ईश्वरीय विधान कह सकते हैं, लेकिन अंततः ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण आप ही हैं, न कि ईश्वर का। क्योंकि ईश्वर के बारे में कोई भी प्रश्न पूछने से पहले, आपका वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है।
प्रश्न: ईश्वर समय में अनुभव किया जाने वाला एक प्राणी है, लेकिन अनुभव करने वाला व्यक्ति कालातीत है।
एम: अनुभव करने वाला भी गौण है। प्राथमिक है चेतना का अनंत विस्तार, शाश्वत संभावना, और जो कुछ था, है और होगा, उसकी असीम क्षमता। जब आप किसी भी चीज़ को देखते हैं, तो आप उसका अंतिम रूप देखते हैं, लेकिन आप कल्पना करते हैं कि आप एक बादल या एक पेड़ देख रहे हैं।
बिना कल्पना के देखना सीखो, बिना विकृति के सुनना सीखो: बस इतना ही। मूलतः नामहीन और निराकार को नाम और आकार देना बंद करो, यह समझो कि बोध का प्रत्येक तरीका व्यक्तिपरक है, कि जो कुछ देखा या सुना जाता है, छुआ या सूंघा जाता है, महसूस किया या सोचा जाता है, अपेक्षित या कल्पना की जाती है, वह मन में होता है, वास्तविकता में नहीं, और तुम शांति और भय से मुक्ति का अनुभव करोगे।
'मैं हूँ' की भावना भी शुद्ध प्रकाश और अस्तित्व की भावना से बनी है। 'मैं' का अस्तित्व 'हूँ' के बिना भी है। इसी प्रकार, शुद्ध प्रकाश भी विद्यमान है, चाहे आप 'मैं' कहें या न कहें। उस शुद्ध प्रकाश के प्रति सजग हो जाइए, और आप उसे कभी नहीं खोएँगे। अस्तित्व में विद्यमानता, चेतना में जागरूकता, प्रत्येक अनुभव में रुचि—यह अवर्णनीय है, फिर भी पूर्णतः सुलभ है, क्योंकि इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
प्रश्न: आप वास्तविकता की बात सीधे तौर पर करते हैं—सर्वव्यापी, सर्वव्यापी, शाश्वत, सर्वज्ञ, सर्व-ऊर्जावान मूल कारण के रूप में। कुछ अन्य शिक्षक वास्तविकता पर चर्चा करने से ही इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि वास्तविकता मन से परे है, जबकि सभी चर्चाएँ मन के दायरे में ही होती हैं, जो कि अवास्तविक का घर है। उनका दृष्टिकोण नकारात्मक है; वे अवास्तविक को इंगित करते हैं और इस प्रकार उससे परे वास्तविक में प्रवेश करते हैं।
एम: फर्क सिर्फ शब्दों में है। आखिर, जब मैं वास्तविकता की बात करता हूँ, तो मैं उसे अवास्तविक नहीं, स्थान-रहित, समय-रहित, कारण-रहित, आरंभ-रहित और अंत-रहित बताता हूँ। बात वही है। जब तक यह ज्ञान की ओर ले जाता है, शब्दों

का क्या महत्व है? क्या इससे कोई फर्क पड़ता है कि आप गाड़ी खींचते हैं या धकेलते हैं, जब तक वह चलती रहती है? आप कभी वास्तविकता की ओर आकर्षित हो सकते हैं और कभी असत्य से विमुख; ये केवल मनोदशाएँ हैं जो बदलती रहती हैं; पूर्ण स्वतंत्रता के लिए दोनों आवश्यक हैं। आप किसी भी रास्ते पर जा सकते हैं - लेकिन हर बार वह उस समय सही रास्ता होगा; बस पूरे मन से आगे बढ़ें, संदेह या झिझक में समय बर्बाद न करें। बच्चे के विकास के लिए कई प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है, लेकिन खाने की क्रिया एक ही है। सैद्धांतिक रूप से - सभी दृष्टिकोण अच्छे हैं। व्यवहार में, और किसी भी समय, आप केवल एक ही रास्ते पर आगे बढ़ते हैं। देर-सवेर आपको यह अवश्य ही पता चल जाएगा कि यदि आप वास्तव में कुछ पाना चाहते हैं, तो आपको केवल एक ही जगह खोजना होगा - अपने भीतर।
न तो आपका शरीर और न ही आपका मन आपको वह दे सकता है जिसकी आप तलाश कर रहे हैं - स्वयं को जानना और समझना तथा उससे मिलने वाली महान शांति।
प्रश्न: निश्चित रूप से प्रत्येक दृष्टिकोण में कुछ न कुछ वैधता और मूल्य होता है।
एम: हर मामले में महत्व आपको अपने भीतर झाँकने की आवश्यकता का एहसास कराने में निहित है। विभिन्न दृष्टिकोणों को आजमाने का कारण शायद भीतर जाने में हिचकिचाहट हो, या किसी विशेष व्यक्तित्व होने के भ्रम को छोड़ने का डर हो। पानी खोजने के लिए आप जगह-जगह छोटे-छोटे गड्ढे नहीं खोदते, बल्कि एक ही जगह पर गहराई तक खुदाई करते हैं। इसी प्रकार, स्वयं को खोजने के लिए आपको स्वयं का अन्वेषण करना होगा। जब आप यह महसूस करेंगे कि आप संसार का प्रकाश हैं, तो आप यह भी महसूस करेंगे कि आप संसार का प्रेम हैं; कि जानना ही प्रेम है और प्रेम करना ही जानना है।
सभी भावनाओं में आत्मप्रेम सर्वोपरि है। संसार के प्रति आपका प्रेम आपके स्वयं के प्रति प्रेम का प्रतिबिंब है, क्योंकि संसार आपकी स्वयं की रचना है। प्रकाश और प्रेम निराकार हैं, परन्तु वे आपके मन में स्वयं के कल्याण के ज्ञान और कामना के रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। हम सदा स्वयं के प्रति मित्रवत रहते हैं, परन्तु सर्वथा बुद्धिमान नहीं। योगी वह व्यक्ति है जिसका सद्भाव ज्ञान से जुड़ा होता है।

45. जो आता है और जाता है उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।

प्रश्नकर्ता: मैं आपसे मिलने आया हूँ, सुनने नहीं। शब्दों में बहुत कम कहा जा सकता है, मौन में बहुत कुछ व्यक्त किया जा सकता है।
महाराज: पहले शब्द, फिर मौन। मौन के लिए परिपक्व होना आवश्यक है।
प्रश्न: क्या मैं मौन में रह सकता हूँ?
एम: निस्वार्थ कर्म से शांति मिलती है, क्योंकि जब आप निस्वार्थ भाव से काम करते हैं, तो आपको मदद मांगने की ज़रूरत नहीं पड़ती। परिणामों की परवाह किए बिना, आप सबसे सीमित साधनों से भी काम करने को तैयार रहते हैं। आपको अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य की परवाह नहीं होती। न ही आप पहचान या सहायता की कामना करते हैं। आप बस वही करते हैं जो करना आवश्यक है, सफलता और असफलता को अनिश्चितता पर छोड़ देते हैं। क्योंकि हर चीज़ अनगिनत कारकों के कारण होती है, जिनमें से आपका व्यक्तिगत प्रयास मात्र एक है। फिर भी, मनुष्य के मन और हृदय का यही जादू है कि जब मानवीय इच्छाशक्ति और प्रेम एक साथ काम करते हैं, तो असंभव से असंभव भी संभव हो जाता है।

प्रश्न: जब काम सार्थक हो तो मदद मांगने में क्या बुराई है?
एम: पूछने की क्या ज़रूरत है? यह तो केवल कमज़ोरी और चिंता दिखाता है। काम करते रहो, ब्रह्मांड तुम्हारा साथ देगा। आख़िरकार, सही काम करने का विचार तो अज्ञात से ही आता है। परिणामों की चिंता मत करो, बस ज़रूरी कदम उठाते रहो। तुम तो बस कारण-कार्य की लंबी कड़ी में एक कड़ी हो। मूलतः, सब कुछ मन में ही घटित होता है। जब तुम किसी चीज़ के लिए पूरे मन से और निरंतर प्रयास करते हो, तो वह घटित होती है, क्योंकि मन का ही काम है चीज़ों को घटित करना। वास्तव में, किसी चीज़ की कमी नहीं है और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, सारा काम सतही है। गहराई में पूर्ण शांति है। तुम्हारी सारी समस्याएँ इसलिए उत्पन्न होती हैं क्योंकि तुमने स्वयं को परिभाषित कर लिया है और इस प्रकार स्वयं को सीमित कर लिया है। जब तुम स्वयं को यह या वह नहीं समझते, तो सभी संघर्ष समाप्त हो जाते हैं। अपनी समस्याओं को दूर करने का कोई भी प्रयास विफल होना तय है, क्योंकि इच्छा से उत्पन्न होने वाली हर चीज़ को इच्छा से मुक्ति के बिना दूर नहीं किया जा सकता। आपने स्वयं को समय और स्थान में कैद कर लिया है, अपने आप को एक जीवनकाल और शरीर के आकार में संकुचित कर लिया है और इस प्रकार जीवन और मृत्यु, सुख और दुख, आशा और भय के अनगिनत संघर्षों को जन्म दिया है। भ्रमों को त्यागे बिना आप समस्याओं से छुटकारा नहीं पा सकते।
प्रश्न: मनुष्य स्वभावतः सीमित होता है।
एम: व्यक्ति जैसी कोई चीज़ नहीं होती। केवल प्रतिबंध और सीमाएँ होती हैं। इन्हीं का योग व्यक्ति को परिभाषित करता है। जब आप यह जान लेते हैं कि आप क्या हैं, तो आपको लगता है कि आप स्वयं को जान गए हैं। लेकिन आप कभी नहीं जान पाते कि आप कौन हैं। व्यक्ति केवल प्रतीत होता है, जैसे किसी बर्तन के अंदर का स्थान बर्तन के आकार, आयतन और गंध जैसा प्रतीत होता है। ध्यान दें कि आप वह नहीं हैं जो आप स्वयं को मानते हैं। अपने नाम और वर्णन के योग्य होने के विचार का पूरी शक्ति से विरोध करें। आप नहीं हैं। स्वयं को इस या उस रूप में सोचना बंद करें। उस दुख से बाहर निकलने का कोई और रास्ता नहीं है जिसे आपने बिना सोचे-समझे स्वीकार करके स्वयं ही पैदा किया है। पीड़ा जिज्ञासा का आह्वान है, हर दर्द की जाँच आवश्यक है। सोचने में आलस न करें। प्रश्न: गतिविधि ही वास्तविकता का सार है। निष्क्रिय रहने में कोई गुण नहीं है। सोचने के साथ-साथ कुछ न कुछ करना भी आवश्यक है।
एम: दुनिया में काम करना कठिन है, और सभी अनावश्यक कामों से बचना उससे भी ज्यादा कठिन है।
प्रश्न: मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह सब असंभव लगता है।
एम: आप अपने बारे में क्या जानते हैं? आप वही हो सकते हैं जो आप वास्तविकता में हैं; आप वही प्रकट हो सकते हैं जो आप नहीं हैं। आप पूर्णता से कभी दूर नहीं हुए हैं। आत्म-सुधार के सभी विचार रूढ़िवादी और शाब्दिक हैं। जैसे सूर्य अंधकार को नहीं जानता, वैसे ही आत्मा अनात्मा को नहीं जानती। यह मन ही है जो दूसरे को जानकर दूसरा बन जाता है। फिर भी मन आत्मा के सिवा कुछ नहीं है। यह आत्मा ही है जो दूसरे, अनात्मा में बदल जाती है, और फिर भी आत्मा ही बनी रहती है। बाकी सब एक धारणा है। जैसे बादल सूर्य को बिना प्रभावित किए ढक लेता है, वैसे ही धारणा वास्तविकता को नष्ट किए बिना उसे ढक लेती है। वास्तविकता के विनाश का विचार ही हास्यास्पद है; विनाशक हमेशा नष्ट होने वाले से अधिक वास्तविक होता है। वास्तविकता ही परम विनाशक है।

सभी अलगाव, हर प्रकार का विरक्ति और पराक्रम झूठा है। सब एक है - यही हर संघर्ष का अंतिम समाधान है।
प्रश्न: इतनी शिक्षा और सहायता मिलने के बावजूद हम प्रगति क्यों नहीं कर पा रहे हैं?
एम: जब तक हम स्वयं को अलग-अलग व्यक्तित्व मानते रहेंगे, तब तक हम उस वास्तविकता को नहीं समझ पाएंगे जो मूलतः निराकार है। सर्वप्रथम हमें स्वयं को केवल साक्षी के रूप में जानना होगा, आयामहीन और कालातीत अवलोकन केंद्र के रूप में, और फिर उस विशाल शुद्ध चेतना के सागर को समझना होगा, जो मन और पदार्थ दोनों है तथा इन दोनों से परे भी है।
प्रश्न: वास्तविकता में मैं जो भी हूँ, फिर भी मैं स्वयं को एक छोटा और अलग व्यक्ति महसूस करता हूँ, अनेकों में से एक।
एम: आपका व्यक्तित्व समय और स्थान के भ्रम के कारण है; आप स्वयं को एक निश्चित स्थान पर एक निश्चित आयतन में मौजूद मानते हैं; आपका व्यक्तित्व शरीर के साथ आपके आत्म-पहचान के कारण है। आपके विचार और भावनाएँ क्रमानुसार विद्यमान हैं, उनका समय में अपना विस्तार है और स्मृति के कारण आप स्वयं को एक स्थिर इकाई के रूप में कल्पना करते हैं। वास्तव में समय और स्थान आप में विद्यमान हैं; आप उनमें विद्यमान नहीं हैं। वे बोध के तरीके हैं, लेकिन वे एकमात्र तरीके नहीं हैं। समय और स्थान कागज पर लिखे शब्दों की तरह हैं; कागज वास्तविक है, शब्द केवल एक परंपरा हैं। आपकी उम्र कितनी है?
प्रश्न: अड़तालीस!
एम: आप अड़तालीस क्यों कहते हैं? आप ऐसा क्यों कहते हैं: मैं यहाँ हूँ? धारणाओं से जन्मी मौखिक आदतें। मन समय और स्थान बनाता है और अपनी ही रचनाओं को वास्तविकता मान लेता है। सब कुछ यहीं और अभी है, लेकिन हम इसे देख नहीं पाते। वास्तव में, सब कुछ मुझमें और मेरे द्वारा है। इसके अलावा कुछ नहीं है। 'अन्य' का विचार ही एक आपदा और विपत्ति है।
प्रश्न: मानवीकरण का, समय और स्थान में आत्म-सीमितता का कारण क्या है?
एम: जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसका कोई कारण नहीं हो सकता। स्वतंत्र व्यक्ति जैसी कोई चीज नहीं होती। यहां तक कि अनुभवजन्य दृष्टिकोण से भी यह स्पष्ट है कि सब कुछ, सब कुछ का कारण है, सब कुछ जैसा है वैसा ही है, क्योंकि संपूर्ण ब्रह्मांड जैसा है वैसा ही है।
प्रश्न: फिर भी व्यक्तित्व का कोई कारण होना चाहिए।
एम: व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होता है? स्मृति के द्वारा। वर्तमान को अतीत से जोड़कर और उसे भविष्य पर आरोपित करके। अपने आप को क्षणिक, अतीत और भविष्य से रहित समझें, तो आपका व्यक्तित्व विलीन हो जाता है।
प्रश्न: क्या 'मैं हूँ' शेष नहीं रहता?
एम: 'रहना' शब्द यहाँ लागू नहीं होता। 'मैं हूँ' सदा जीवंत रहता है। होने के लिए स्मरण की आवश्यकता नहीं होती। वास्तव में, किसी भी चीज़ का अनुभव करने से पहले, होने का बोध होना आवश्यक है। इस समय आपका अस्तित्व अनुभवों में उलझा हुआ है। आपको बस इतना करना है कि अपने अस्तित्व को अनुभवों के जाल से अलग करें। एक बार जब आप शुद्ध अस्तित्व को जान लेंगे, बिना कुछ होने या कुछ होने के, तो आप उसे अनुभवों के बीच पहचान लेंगे और नामों और रूपों से भ्रमित नहीं होंगे।
आत्म-सीमितता ही व्यक्तित्व का मूल तत्व है।
प्रश्न: मैं सार्वभौमिक कैसे बन सकता हूँ?

एम: लेकिन आप सार्वभौमिक हैं। आपको वह बनने की आवश्यकता नहीं है और आप वह बन भी नहीं सकते जो आप पहले से ही हैं। बस स्वयं को विशिष्ट समझना बंद कर दें। जो आता है और जाता है उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। उसका स्वरूप ही वास्तविकता पर निर्भर करता है। आप जानते हैं कि संसार है, लेकिन क्या संसार आपको जानता है? समस्त ज्ञान, समस्त अस्तित्व और समस्त आनंद आपसे ही प्रवाहित होते हैं। यह जान लें कि आप शाश्वत स्रोत हैं और समस्त को अपना मान लें। ऐसा स्वीकार करना ही सच्चा प्रेम है।
प्रश्न: आपकी कही सारी बातें बहुत सुंदर लगती हैं। लेकिन इसे जीवनशैली में कैसे ढाला जाए?
एम: घर से बाहर निकले बिना ही तुम घर लौटने का रास्ता पूछ रहे हो। बस गलत विचारों से छुटकारा पाओ, यही एकमात्र उपाय है। सही विचारों का संग्रह भी तुम्हें कहीं नहीं ले जाएगा। कल्पना करना छोड़ दो।
प्रश्न: यह उपलब्धि का मामला नहीं है, बल्कि समझ का मामला है।
एम: समझने की कोशिश मत करो! इतना काफी है कि तुम गलत न समझो। मुक्ति के लिए अपने मन पर भरोसा मत करो। मन ही तुम्हें बंधन में लाया है। इससे पूरी तरह परे जाओ।
जिसका कोई आरंभ नहीं है, उसका कोई कारण नहीं हो सकता। ऐसा नहीं है कि आप अपने स्वरूप को जानते थे और फिर भूल गए। एक बार जान लेने के बाद आप भूल नहीं सकते। अज्ञान का कोई आरंभ नहीं होता, परन्तु अंत अवश्य होता है। खोजो: कौन अज्ञानी है, और अज्ञान स्वप्न की तरह विलीन हो जाएगा। संसार विरोधाभासों से भरा है, इसीलिए आप सामंजस्य और शांति की खोज में लगे हैं। ये आपको संसार में नहीं मिलेंगे, क्योंकि संसार अराजकता की संतान है। व्यवस्था पाने के लिए आपको अपने भीतर ही खोजना होगा। संसार का अस्तित्व तभी आता है जब आप शरीर में जन्म लेते हैं। शरीर नहीं तो संसार नहीं। पहले यह खोजो कि क्या तुम शरीर हो। संसार की समझ बाद में आ जाएगी।
प्रश्न: आपकी बातें सुनने में तो विश्वसनीय लगती हैं, लेकिन एक निजी व्यक्ति के लिए इसका क्या उपयोग है, जो स्वयं को संसार में और संसार का हिस्सा मानता है?
एम: लाखों लोग रोटी खाते हैं, लेकिन कुछ ही लोग गेहूँ के बारे में सब कुछ जानते हैं। और केवल वही लोग जो जानते हैं, रोटी को बेहतर बना सकते हैं। इसी प्रकार, केवल वही लोग जो स्वयं को जानते हैं, जिन्होंने संसार से परे देखा है, संसार को बेहतर बना सकते हैं। निजी व्यक्तियों के लिए उनका महत्व असीम है, क्योंकि वे ही उनकी मुक्ति की एकमात्र आशा हैं। संसार में जो कुछ है वह संसार को नहीं बचा सकता; यदि आप वास्तव में संसार की मदद करना चाहते हैं तो आपको इससे बाहर निकलना होगा।
प्रश्न: लेकिन क्या कोई दुनिया से बाहर निकल सकता है?
एम: पहले किसका जन्म हुआ, आपका या संसार का? जब तक आप संसार को प्रथम स्थान देते रहेंगे, आप उससे बंधे रहेंगे; एक बार जब आप निःसंदेह यह जान लेंगे कि संसार आप में है, आप संसार में नहीं, तो आप उससे मुक्त हो जाएंगे। बेशक आपका शरीर संसार में और संसार का ही रहेगा, लेकिन आप उससे भ्रमित नहीं होंगे। सभी शास्त्र कहते हैं कि संसार के अस्तित्व से पहले सृष्टिकर्ता था। सृष्टिकर्ता को कौन जानता है? केवल वही जो सृष्टिकर्ता से पहले था, आपका वास्तविक अस्तित्व, समस्त संसारों और उनके सृष्टिकर्ताओं का स्रोत। प्रश्न: आपकी सारी बातें इस धारणा पर आधारित हैं कि संसार आपका अपना ही प्रतिबिंब है। आप स्वीकार करते हैं कि आपका तात्पर्य आपके निजी,

आत्मनिष्ठ संसार से है, वह संसार जो आपको आपकी इंद्रियों और मन के माध्यम से प्राप्त होता है। इस अर्थ में, हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के प्रतिबिंब वाले संसार में जीता है। ये निजी संसार एक-दूसरे को लगभग छूते ही नहीं हैं और ये अपने केंद्र में स्थित 'मैं हूँ' से उत्पन्न होकर उसी में विलीन हो जाते हैं। लेकिन निश्चित रूप से इन निजी संसारों के पीछे एक साझा वस्तुनिष्ठ संसार होना चाहिए, जिसकी ये निजी संसार मात्र छाया मात्र हैं। क्या आप ऐसे वस्तुनिष्ठ संसार के अस्तित्व को नकारते हैं, जो सभी के लिए समान हो?
एम: वास्तविकता न तो व्यक्तिपरक है और न ही वस्तुनिष्ठ, न मन है और न पदार्थ, न समय है और न स्थान। इन विभाजनों के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जिसके लिए ये घटित हों, एक सचेत पृथक केंद्र। लेकिन वास्तविकता सब कुछ है और कुछ भी नहीं, समग्रता और अपवर्जन, परिपूर्णता और शून्यता, पूर्णतः सुसंगत, पूर्णतः विरोधाभासी। आप इसके बारे में बात नहीं कर सकते, आप केवल इसमें स्वयं को विलीन कर सकते हैं। जब आप किसी भी चीज़ की वास्तविकता को नकारते हैं, तो आप एक ऐसे अवशेष पर पहुँच जाते हैं जिसे नकारा नहीं जा सकता।
ज्ञान की हर बात अज्ञानता की निशानी है। मन ही ऐसा है जो पहले तो अनजान होने का भ्रम पालता है और फिर ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वास्तविकता इन सब उलझनों से अनभिज्ञ है। यहाँ तक कि ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने का विचार भी झूठा है। क्या मेरा अस्तित्व किसी और सत्ता पर निर्भर है? क्योंकि मैं हूँ, इसलिए सब कुछ है।
प्रश्न: यह कैसे संभव है? बच्चा संसार में जन्म लेता है, संसार बच्चे में नहीं। संसार पुराना है और बच्चा नया।
एम: बच्चा आपके संसार में जन्म लेता है। अब, क्या आप अपने संसार में जन्म लेते हैं, या आपका संसार आपके सामने प्रकट होता है? जन्म लेने का अर्थ है अपने चारों ओर एक संसार का निर्माण करना, जिसमें आप केंद्र में हों। लेकिन क्या आप कभी स्वयं का निर्माण करते हैं? या किसी ने आपका निर्माण किया है? हर कोई अपने लिए एक संसार बनाता है और उसमें अपनी अज्ञानता की कैद में जीता है। हमें बस इतना करना है कि अपनी कैद की वास्तविकता को नकार दें। प्रश्न: जिस प्रकार जागृत अवस्था नींद के दौरान बीज रूप में विद्यमान होती है, उसी प्रकार जन्म लेने पर शिशु द्वारा निर्मित संसार भी उसके जन्म से पहले विद्यमान होता है। यह बीज किसके पास निहित होता है?
एम: उनके साथ जो जन्म और मृत्यु के साक्षी हैं, परन्तु न जन्म लेते हैं और न मरते हैं। वही सृष्टि के बीज और उसके अवशेष हैं। जो मन से परे है, उसे मन से सिद्ध करने की अपेक्षा न करें। प्रत्यक्ष अनुभव ही एकमात्र प्रामाणिक प्रमाण है।

46. अपने अस्तित्व की जागरूकता ही परमानंद है

प्रश्नकर्ता: पेशे से मैं चिकित्सक हूँ। मैंने शल्य चिकित्सा से शुरुआत की, फिर मनोचिकित्सा में आगे बढ़ा और मानसिक स्वास्थ्य तथा आस्था के माध्यम से उपचार पर कुछ पुस्तकें भी लिखीं। मैं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के नियम सीखने के लिए आपके पास आया हूँ।

महाराज: जब आप किसी रोगी का इलाज करने की कोशिश कर रहे होते हैं, तो वास्तव में आप किसका इलाज करने की कोशिश कर रहे होते हैं? इलाज क्या है? आप कब कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति ठीक हो गया है?
प्रश्न: मैं शरीर को स्वस्थ करने के साथ-साथ शरीर और मन के बीच संबंध को बेहतर बनाना चाहता हूँ। मैं मन को भी सही राह पर लाना चाहता हूँ।
एम: क्या आपने मन और शरीर के बीच संबंध की जांच की? वे किस बिंदु पर जुड़े हुए हैं?
प्रश्न: शरीर और अंतर्निर्मित चेतना के बीच मन स्थित होता है।
एम: क्या शरीर भोजन से नहीं बना होता? और क्या भोजन के बिना मन हो सकता है? प्रश्न: शरीर का निर्माण और रखरखाव भोजन से होता है। भोजन के बिना मन आमतौर पर कमजोर हो जाता है। लेकिन मन मात्र भोजन नहीं है। शरीर में मन का निर्माण करने वाला एक परिवर्तनकारी कारक होता है। वह परिवर्तनकारी कारक क्या है? एम: जैसे लकड़ी से आग उत्पन्न होती है, जो लकड़ी नहीं है, वैसे ही शरीर से मन उत्पन्न होता है, जो शरीर नहीं है। लेकिन मन किसे दिखाई देता है? आपके द्वारा मन कहे जाने वाले विचारों और भावनाओं का बोध कौन करता है? लकड़ी है, आग है और आग का आनंद लेने वाला है। मन का आनंद कौन लेता है? क्या आनंद लेने वाला भी भोजन का परिणाम है, या वह उससे स्वतंत्र है?
प्रश्न: बोधकर्ता स्वतंत्र है।
एम: आपको कैसे पता? अपने अनुभव से बताइए। आप न तो शरीर हैं और न ही मन। आप ऐसा कहते हैं। आपको कैसे पता?
प्रश्न: मुझे वास्तव में नहीं पता। शायद ऐसा ही हो।
एम: सत्य अटल है। वास्तविकता अपरिवर्तनीय है। जो बदलता है वह वास्तविक नहीं है, जो वास्तविक है वह नहीं बदलता। अब, आप में ऐसा क्या है जो नहीं बदलता? जब तक भोजन है, शरीर और मन हैं। भोजन बंद होने पर शरीर मर जाता है और मन विलीन हो जाता है। लेकिन क्या द्रष्टा भी नष्ट हो जाता है?
प्रश्न: मुझे लगता है कि ऐसा नहीं है। लेकिन मेरे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है।
एम: आप स्वयं ही प्रमाण हैं। आपके पास कोई और प्रमाण नहीं है, न ही हो सकता है। आप स्वयं हैं, आप स्वयं को जानते हैं, आप स्वयं से प्रेम करते हैं। मन जो कुछ भी करता है, वह अपने ही प्रेम के लिए करता है। आत्मा का मूल स्वभाव प्रेम है। यह प्रेममय है, प्रेम करने वाला है और प्रेम के योग्य है। आत्मा ही शरीर और मन को इतना रोचक, इतना प्रिय बनाती है। इन पर दिया जाने वाला ध्यान भी आत्मा से ही आता है।
प्रश्न: यदि आत्मा न तो शरीर है और न ही मन, तो क्या यह शरीर और मन के बिना विद्यमान हो सकती है?
एम: जी हाँ, ऐसा हो सकता है। यह एक वास्तविक अनुभव है कि आत्मा मन और शरीर से स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। यह अस्तित्व है - जागरूकता - आनंद। अस्तित्व की जागरूकता ही आनंद है।
प्रश्न: यह आपके लिए प्रत्यक्ष अनुभव का विषय हो सकता है, लेकिन मेरे मामले में ऐसा नहीं है। मैं समान अनुभव कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? मुझे किन अभ्यासों का पालन करना चाहिए, किन व्यायामों को अपनाना चाहिए?
एम: यह जानना कि तुम न तो शरीर हो और न ही मन, स्वयं को स्थिर भाव से देखना और अपने शरीर और मन से अप्रभावित होकर, पूर्णतः उदासीन होकर जीना, मानो तुम मृत हो। इसका अर्थ है कि तुम्हारा न तो शरीर में और न ही मन में कोई स्वार्थ है।

प्रश्न: खतरनाक!
एम: मैं आपसे आत्महत्या करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। और न ही आप ऐसा कर सकते हैं। आप केवल शरीर को मार सकते हैं, मानसिक प्रक्रिया को रोक नहीं सकते, और न ही आप उस व्यक्ति को खत्म कर सकते हैं जिसे आप स्वयं समझते हैं। बस अप्रभावित रहें। यह पूर्ण अलगाव, मन और शरीर के प्रति उदासीनता इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि आपके अस्तित्व के मूल में आप न तो मन हैं और न ही शरीर। शरीर और मन के साथ जो होता है, उसे बदलना शायद आपके बस में न हो, लेकिन आप हमेशा स्वयं को शरीर और मन समझने की कल्पना को समाप्त कर सकते हैं। चाहे कुछ भी हो, खुद को याद दिलाएं कि केवल आपका शरीर और मन प्रभावित होते हैं, आप नहीं। जो याद रखने योग्य है, उसे याद रखने में आप जितनी अधिक गंभीरता दिखाएंगे, उतनी ही जल्दी आप स्वयं को वैसे ही जान पाएंगे जैसे आप हैं, क्योंकि स्मृति अनुभव बन जाती है। गंभीरता ही अस्तित्व को प्रकट करती है। जो कल्पना और इच्छा की जाती है, वही वास्तविकता बन जाती है - यहीं खतरा भी है और बचाव का रास्ता भी।
मुझे बताइए, आपने अपने वास्तविक स्वरूप को, अपने भीतर के उस अपरिवर्तनीय तत्व को, अपने शरीर और मन से अलग करने के लिए क्या कदम उठाए हैं?
प्रश्न: मैं एक चिकित्सक हूं, मैंने बहुत अध्ययन किया है, मैंने व्यायाम और समय-समय पर उपवास के रूप में अपने ऊपर एक सख्त अनुशासन लागू किया है और मैं शाकाहारी हूं।
एम: लेकिन आपके दिल की गहराई में आप क्या चाहते हैं?
प्रश्न: मैं वास्तविकता की खोज करना चाहता हूँ।
एम: आप वास्तविकता के लिए क्या कीमत चुकाने को तैयार हैं? कोई भी कीमत? प्रश्न: सैद्धांतिक रूप से तो मैं कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हूँ, लेकिन असल जिंदगी में बार-बार मुझे ऐसे व्यवहार करने के लिए उकसाया जाता है जो मुझे वास्तविकता से दूर कर देते हैं। इच्छा मुझे बहका देती है।
एम: अपनी इच्छाओं को इतना बढ़ाओ और विस्तृत करो कि वास्तविकता के सिवा कुछ और उन्हें पूरा न कर सके। इच्छा गलत नहीं है, बल्कि उसकी संकीर्णता और छोटापन गलत है। इच्छा ही भक्ति है। हर हाल में अस्तित्व के वास्तविक, अनंत और शाश्वत हृदय के प्रति समर्पित रहो। इच्छा को प्रेम में बदल दो। तुम बस खुश रहना चाहते हो। तुम्हारी सभी इच्छाएँ, चाहे वे कुछ भी हों, खुशी की तुम्हारी लालसा की अभिव्यक्ति हैं। मूलतः, तुम स्वयं का भला चाहते हो। प्रश्न: मुझे पता है कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए…
एम: रुको! तुम्हें किसने कहा कि तुम्हें खुश नहीं रहना चाहिए? खुश रहने की चाह में क्या बुराई है?
प्रश्न: मुझे पता है, 'स्व' को जाना ही होगा।
एम: लेकिन आपका 'स्व' तो है ही। आपकी इच्छाएँ हैं। खुश रहने की आपकी चाहत है। क्यों? क्योंकि आप खुद से प्यार करते हैं। बेशक, समझदारी से खुद से प्यार करें। मूर्खता से खुद से प्यार करना, जिससे आपको कष्ट हो, गलत है। समझदारी से खुद से प्यार करें। भोग-विलास और तपस्या दोनों का एक ही उद्देश्य है - आपको खुश रखना। भोग-विलास मूर्खता का रास्ता है, तपस्या समझदारी का रास्ता है।
प्रश्न: मितव्ययिता क्या है?
एम: एक बार कोई अनुभव हो जाने के बाद, उसे दोबारा न दोहराना ही तपस्या है। अनावश्यक चीजों से दूर रहना ही तपस्या है। सुख-दुख की अपेक्षा न करना ही तपस्या है। हर समय सब कुछ नियंत्रण में रखना ही तपस्या है। इच्छा अपने आप

में गलत नहीं है। यह स्वयं जीवन है, ज्ञान और अनुभव में वृद्धि की प्रेरणा है।
आपकी पसंद ही गलत है। यह सोचना कि कोई छोटी-मोटी चीज़—भोजन, कामुकता, शक्ति, प्रसिद्धि—आपको खुश कर देगी, खुद को धोखा देना है। केवल आपका वास्तविक स्वरूप ही आपको सच्ची और स्थायी खुशी दे सकता है।
प्रश्न: चूंकि आत्मप्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में इच्छा में मूल रूप से कुछ भी गलत नहीं है, तो इच्छा को कैसे नियंत्रित किया जाना चाहिए?
एम: अपने जीवन को समझदारी से जिएं, हमेशा अपने अंतर्मन के हितों को ध्यान में रखें। आखिर आप वास्तव में क्या चाहते हैं? पूर्णता नहीं; आप तो पहले से ही पूर्ण हैं। आप जो चाहते हैं, वह है अपने वास्तविक स्वरूप को कर्मों में प्रकट करना। इसके लिए आपके पास शरीर और मन है। इनका उपयोग करें और इन्हें अपने हित में लगाएं।
प्रश्न: यहाँ संचालक कौन है? शरीर और मन को नियंत्रण में कौन रखेगा?
एम: शुद्ध मन आत्मा का निष्ठावान सेवक होता है। यह आंतरिक और बाह्य, दोनों ही साधनों का नियंत्रण अपने हाथ में लेता है और उन्हें उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग करता है।
प्रश्न: और उनका उद्देश्य क्या है?
एम: आत्मा सार्वभौमिक है और उसके लक्ष्य भी सार्वभौमिक हैं। आत्मा में कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है। एक व्यवस्थित जीवन जिएं, लेकिन इसे अपना एकमात्र लक्ष्य न बनाएं। यह रोमांचकारी यात्राओं का आरंभिक बिंदु होना चाहिए। प्रश्न: क्या आप मुझे बार-बार भारत आने की सलाह देते हैं?
एम: अगर आप सच्चे मन से प्रयासरत हैं, तो आपको इधर-उधर भटकने की ज़रूरत नहीं है। आप जहाँ भी हों, आप स्वयं ही होते हैं और अपना वातावरण स्वयं बनाते हैं। आवागमन और परिवहन से आपको मोक्ष नहीं मिलेगा। आप शरीर नहीं हैं और शरीर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर घसीटने से आपको कोई लाभ नहीं होगा। आपका मन तीनों लोकों में विचरण करने के लिए स्वतंत्र है - इसका भरपूर उपयोग करें।
प्रश्न: यदि मैं स्वतंत्र हूँ, तो मैं शरीर में क्यों हूँ?
एम: तुम शरीर में नहीं हो, शरीर तुममें है! मन तुममें है। ये सब तुम्हारे साथ घटित होते हैं। ये इसलिए हैं क्योंकि तुम्हें इनमें रुचि है। तुम्हारा स्वभाव ही आनंद लेने की असीम क्षमता रखता है। यह उत्साह और स्नेह से परिपूर्ण है। यह अपनी रोशनी हर उस चीज़ पर बिखेरता है जो इसकी चेतना के दायरे में आती है और कुछ भी इससे अछूता नहीं रहता। यह बुराई या कुरूपता को नहीं जानता, यह आशा करता है, विश्वास करता है, प्रेम करता है। तुम लोग नहीं जानते कि अपने सच्चे स्वरूप को न जानकर तुम कितना कुछ खो रहे हो। तुम न तो शरीर हो, न मन, न ईंधन हो, न आग। ये अपने-अपने नियमों के अनुसार प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।
आप जो हैं, आपका सच्चा स्वरूप, आप उससे प्रेम करते हैं, और आप जो कुछ भी करते हैं, अपनी खुशी के लिए करते हैं। उसे पाना, उसे जानना, उसका संजोना आपकी मूल इच्छा है। अनादि काल से आप स्वयं से प्रेम करते आए हैं, लेकिन कभी भी बुद्धिमानी से नहीं। अपने शरीर और मन का बुद्धिमानी से उपयोग स्वयं की सेवा में करें, बस इतना ही। अपने प्रति सच्चे रहें, स्वयं से पूर्णतः प्रेम करें। यह दिखावा न करें कि आप दूसरों से स्वयं के समान प्रेम करते हैं। जब तक आप उन्हें स्वयं के साथ एक नहीं जान लेते, तब तक आप उनसे प्रेम नहीं कर सकते। वह होने का दिखावा न करें जो आप नहीं हैं, वह होने से इनकार न करें जो

आप हैं। दूसरों के प्रति आपका प्रेम आत्मज्ञान का परिणाम है, कारण नहीं। आत्म-साक्षात्कार के बिना कोई भी सद्गुण वास्तविक नहीं होता। जब आप निःसंदेह यह जान लेते हैं कि एक ही जीवन सभी में प्रवाहित होता है और आप वही जीवन हैं, तो आप स्वाभाविक रूप से सभी से प्रेम करेंगे। जब आप स्वयं के प्रति अपने प्रेम की गहराई और पूर्णता को जान लेते हैं, तो आप यह जान लेते हैं कि प्रत्येक जीवित प्राणी और संपूर्ण ब्रह्मांड आपके स्नेह में समाहित है। लेकिन जब आप किसी भी चीज को स्वयं से अलग देखते हैं, तो आप उससे प्रेम नहीं कर सकते क्योंकि आप उससे भयभीत होते हैं। अलगाव भय को जन्म देता है और भय अलगाव को और गहरा कर देता है। यह एक दुष्चक्र है। केवल आत्म-साक्षात्कार ही इसे तोड़ सकता है। दृढ़ संकल्प के साथ इसके लिए प्रयास करें।

47. अपने मन पर नज़र रखें

प्रश्नकर्ता: सार की खोज में, व्यक्ति को जल्द ही अपनी अपर्याप्तता और एक मार्गदर्शक या शिक्षक की आवश्यकता का एहसास हो जाता है। इसका अर्थ है एक विशेष अनुशासन, क्योंकि आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप अपने मार्गदर्शक पर भरोसा करें और उनकी सलाह और निर्देशों का अक्षरशः पालन करें। फिर भी, सामाजिक दबाव और बाध्यताएँ इतनी प्रबल होती हैं, व्यक्तिगत इच्छाएँ और भय इतने प्रबल होते हैं कि आज्ञापालन के लिए आवश्यक मन और इच्छा की सरलता प्राप्त नहीं हो पाती। गुरु की आवश्यकता और उनका अक्षरशः पालन करने की कठिनाई के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए?
महाराज: समाज और परिस्थितियों के दबाव में किए गए कार्य का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वे अधिकतर यांत्रिक होते हैं, मात्र प्रभावों पर प्रतिक्रिया मात्र। स्वयं को तटस्थ भाव से देखना ही पर्याप्त है, ताकि व्यक्ति स्वयं को चल रही घटनाओं से पूर्णतः अलग कर सके। बिना सोचे-समझे, अंधाधुंध किए गए कार्य कर्मों में वृद्धि कर सकते हैं, अन्यथा उनका कोई महत्व नहीं है। गुरु केवल एक ही चीज की मांग करते हैं; उद्देश्य की स्पष्टता और तीव्रता, स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व की भावना। संसार की वास्तविकता पर ही प्रश्न उठाना आवश्यक है। आख़िर गुरु कौन हैं? वह जो उस अवस्था को जानता है जिसमें न संसार है और न ही उसका विचार, वही परम गुरु हैं। उन्हें पाना उस अवस्था तक पहुंचना है जिसमें कल्पना को वास्तविकता न माना जाए। कृपया समझें कि गुरु वास्तविकता, सत्य और यथार्थ का प्रतीक हैं। वे उच्चतम अर्थों में यथार्थवादी हैं। वे मन और उसके भ्रमों से समझौता नहीं कर सकते और न ही करेंगे। वे आपको वास्तविकता तक ले जाने आते हैं; उनसे और कुछ अपेक्षा न करें।
आपके मन में जो गुरु है, जो आपको जानकारी और निर्देश देता है, वह सच्चा गुरु नहीं है। सच्चा गुरु वह है जो बाहरी दिखावे से परे, वास्तविकता को जानता है। उनके लिए आज्ञापालन और अनुशासन से संबंधित आपके प्रश्न अर्थहीन हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में आप स्वयं को जो समझते हैं, उसका कोई अस्तित्व नहीं है; आपके प्रश्न एक ऐसे व्यक्ति के बारे में हैं जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। जो आपके लिए विद्यमान है, वह उनके लिए विद्यमान नहीं है। जिसे आप स्वाभाविक मानते हैं, उसे वे पूर्णतः नकारते हैं। वे चाहते हैं कि आप स्वयं को वैसे ही देखें जैसे वे आपको देखते हैं। तब आपको आज्ञापालन और अनुसरण के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि आप स्वयं अपनी

वास्तविकता का अनुसरण करेंगे। यह समझें कि आप स्वयं को जो भी समझते हैं, वह मात्र घटनाओं का प्रवाह है; कि सब कुछ घटित होता है, आता है और जाता है, लेकिन आप अकेले ही हैं, परिवर्तनशील में अपरिवर्तनीय, अनुमानित में स्वतः सिद्ध। देखे जाने वाले को देखे जाने योग्य से अलग करें और झूठी पहचानों का त्याग करें।
प्रश्न: वास्तविकता को पाने के लिए, हमें हर उस चीज़ को त्याग देना चाहिए जो हमारे रास्ते में बाधा बनती है। दूसरी ओर, किसी समाज में जीवित रहने की आवश्यकता हमें अनेक कार्य करने और सहने के लिए विवश करती है। क्या वास्तविकता को पाने के लिए हमें अपना पेशा और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा त्यागनी पड़ती है?
एम: अपना काम करो। जब भी थोड़ा खाली समय मिले, आत्मचिंतन करो। महत्वपूर्ण यह है कि जब भी कोई अवसर मिले, उसे हाथ से जाने न दो। यदि तुम गंभीर हो, तो अपने खाली समय का पूरा सदुपयोग करोगे। इतना ही काफी है।
प्रश्न: आवश्यक चीजों की खोज और अनावश्यक चीजों को त्यागने की प्रक्रिया में क्या रचनात्मक जीवन जीने की कोई गुंजाइश है? उदाहरण के लिए, मुझे चित्रकारी बहुत पसंद है। क्या अपने खाली समय को चित्रकारी में लगाना मेरे लिए फायदेमंद होगा?
एम: आपको जो भी करना पड़े, अपने मन पर नियंत्रण रखें। साथ ही, आपको पूर्ण आंतरिक शांति और स्थिरता के क्षण भी अवश्य चाहिए, जब आपका मन बिल्कुल शांत हो। यदि आप इसे चूक जाते हैं, तो आप सब कुछ खो देते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं, तो मन की शांति सब कुछ भंग कर देगी और उसमें समाहित हो जाएगी। आपकी समस्या वास्तविकता को चाहने और साथ ही उससे डरने में निहित है। आप उससे डरते हैं क्योंकि आप उसे जानते नहीं हैं। परिचित चीजें जानी-पहचानी होती हैं, आप उनके साथ सुरक्षित महसूस करते हैं। अज्ञात अनिश्चित होता है और इसलिए खतरनाक होता है। लेकिन वास्तविकता को जानना ही उसके साथ सामंजस्य स्थापित करना है। और सामंजस्य में भय के लिए कोई स्थान नहीं होता।
एक शिशु अपने शरीर को जानता है, लेकिन शरीर से जुड़े भेदों को नहीं। वह बस सचेत और प्रसन्न होता है। आख़िरकार, यही तो उसके जन्म का उद्देश्य था। अस्तित्व का आनंद आत्म-प्रेम का सबसे सरल रूप है, जो बाद में आत्म-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। उस शिशु की तरह बनो जिसके शरीर और आत्मा के बीच कुछ भी बाधा न हो। मानसिक जीवन का निरंतर शोर अनुपस्थित होता है। गहन मौन में आत्मा शरीर का चिंतन करती है। यह उस कोरे कागज़ की तरह है जिस पर अभी कुछ लिखा नहीं गया है। उस शिशु की तरह बनो, कुछ बनने की कोशिश करने के बजाय, अपने अस्तित्व में प्रसन्न रहो। तुम चेतना के क्षेत्र के पूर्णतः जागृत साक्षी बनोगे। लेकिन तुम्हारे और उस क्षेत्र के बीच कोई भावनाएँ और विचार नहीं होने चाहिए।
प्रश्न: मात्र अस्तित्व में रहकर संतुष्ट रहना समय बिताने का सबसे स्वार्थी तरीका प्रतीत होता है।
एम: स्वार्थी होने का सबसे उत्तम तरीका! स्वयं के सिवा सब कुछ त्यागकर स्वार्थी बनो। जब तुम केवल स्वयं से प्रेम करते हो, तब तुम स्वार्थी और निस्वार्थ के भेद से परे हो जाते हो। सभी भेद अर्थहीन हो जाते हैं। एक प्रेम और सभी प्रेम एक हो जाते हैं, शुद्ध और सरल प्रेम में, जो न किसी के लिए है, न किसी से वर्जित है। उस प्रेम में बने रहो, उसमें और गहराई तक उतरो, स्वयं का अन्वेषण करो और अन्वेषण से प्रेम करो, और तुम न केवल अपनी

समस्याओं का समाधान करोगे, बल्कि मानवता की समस्याओं का भी समाधान करोगे।
तुम्हें पता चल जाएगा कि क्या करना है। सतही प्रश्न मत पूछो; मूलभूत बातों पर ध्यान दो, अपने अस्तित्व की जड़ों तक जाओ।
प्रश्न: क्या आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया को तेज करने का कोई तरीका है? एम: बिल्कुल है।
प्रश्न: यह स्पीड कौन बढ़ाएगा? क्या आप मेरे लिए यह कर देंगे?
एम: न तो तुम करोगे, न मैं। यह बस हो जाएगा।
प्रश्न: यहाँ आने मात्र से ही यह सिद्ध हो गया है। क्या यह सब ईश्वर की संगति के कारण तेज़ी से हो रहा है? पिछली बार जब मैं गया था, तो वापस आने की आशा रखता था। और मैं आया भी! अब मुझे इंग्लैंड के लिए इतनी जल्दी रवाना होने का बहुत दुख है।
एम: तुम नवजात शिशु के समान हो। वह पहले से मौजूद था, लेकिन अपने अस्तित्व से अनभिज्ञ था। जन्म के साथ ही उसके भीतर एक संसार का उदय हुआ और उसके साथ ही अस्तित्व की चेतना भी। अब तुम्हें केवल चेतना में वृद्धि करनी है, बस इतना ही। शिशु संसार का राजा होता है - जब वह बड़ा होता है, तो अपने राज्य का कार्यभार संभालता है। कल्पना कीजिए कि शैशवावस्था में वह गंभीर रूप से बीमार पड़ गया और चिकित्सक ने उसे ठीक कर दिया। क्या इसका अर्थ यह है कि नन्हा राजा अपने राज्य का ऋणी चिकित्सक है? शायद, यह एक सहायक कारक हो सकता है। कई अन्य कारक भी थे; सभी ने योगदान दिया। लेकिन मुख्य कारक, सबसे महत्वपूर्ण, राजा के पुत्र के रूप में जन्म लेना था। इसी प्रकार, गुरु सहायता कर सकते हैं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात है भीतर की वास्तविकता का होना। यह स्वयं प्रकट होगी। तुम्हारा यहाँ आना निश्चित रूप से तुम्हारे लिए सहायक रहा है। यह एकमात्र चीज़ नहीं है जो तुम्हारी सहायता करेगी। मुख्य बात तुम्हारा स्वयं का अस्तित्व है। तुम्हारी लगन ही इसकी गवाही देती है।
प्रश्न: क्या किसी पेशे को अपनाना मेरी लगन को नकारता है?
एम: मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है। जब तक तुम अपने लिए शांति के भरपूर पल निकालते रहोगे, तब तक तुम अपने सबसे नेक पेशे को निश्चिंत होकर निभा सकते हो। ये आंतरिक शांति के पल हर बाधा को निश्चित रूप से दूर कर देंगे। इसकी प्रभावशीलता पर संदेह मत करो। इसे आजमा कर देखो।
प्रश्न: लेकिन मैंने कोशिश तो की थी!
एम: कभी निष्ठापूर्वक नहीं, कभी स्थिरता से नहीं। अन्यथा आप ऐसे प्रश्न नहीं पूछते। आप इसलिए पूछ रहे हैं क्योंकि आप स्वयं पर आश्वस्त नहीं हैं। और आप स्वयं पर आश्वस्त नहीं हैं क्योंकि आपने कभी स्वयं पर ध्यान नहीं दिया, केवल अपने अनुभवों पर ध्यान दिया। सभी अनुभवों से परे स्वयं में रुचि रखें, स्वयं के साथ रहें, स्वयं से प्रेम करें; परम सुरक्षा केवल आत्मज्ञान में ही पाई जाती है। सबसे महत्वपूर्ण बात है गंभीरता। स्वयं के प्रति ईमानदार रहें और कोई भी आपको धोखा नहीं दे सकता। सद्गुण और शक्तियाँ तो बच्चों के खेलने के मात्र प्रतीक हैं। वे संसार में उपयोगी हैं, लेकिन आपको इससे बाहर नहीं निकाल सकते। इससे आगे बढ़ने के लिए, आपको सचेत स्थिरता, शांत एकाग्रता की आवश्यकता है।
प्रश्न: तो फिर व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व का क्या होता है?
एम: जब तक आप स्वस्थ हैं, तब तक आपका जीवन चलता रहेगा।
प्रश्न: क्या आंतरिक गतिहीनता का यह जीवन किसी के स्वास्थ्य को प्रभावित नहीं करेगा?

एम: आपका शरीर भोजन का परिवर्तित रूप है। आपका भोजन, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, जैसा होगा, आपका स्वास्थ्य भी वैसा ही होगा।
प्रश्न: यौन प्रवृत्ति का क्या होता है? इसे कैसे नियंत्रित किया जा सकता है?
एम: कामुकता एक अर्जित आदत है। इससे आगे बढ़ो। जब तक तुम्हारा ध्यान शरीर पर केंद्रित रहेगा, तुम भोजन और कामुकता, भय और मृत्यु के चंगुल में फंसे रहोगे। स्वयं को खोजो और मुक्त हो जाओ।

48. जागरूकता मुफ्त है

प्रश्नकर्ता: मैं अभी-अभी श्री रामनाश्रम से आया हूँ। मैंने वहाँ सात महीने बिताए हैं।
महाराज: आप आश्रम में किस प्रथा का पालन कर रहे थे?
प्रश्न: जहाँ तक संभव हो सका, मैंने 'मैं कौन हूँ?' पर ध्यान केंद्रित किया। एम: आप इसे किस तरीके से कर रहे थे? मौखिक रूप से?
प्रश्न: दिनभर के खाली समय में, कभी-कभी मैं मन ही मन बुदबुदाता था, 'मैं कौन हूँ?' 'मैं हूँ, पर मैं कौन हूँ?' या यूँ कहूँ, मैं मन ही मन सोचता था। कभी-कभी मुझे सुखद अनुभूति होती थी, या मैं शांत आनंद की अवस्था में चला जाता था। कुल मिलाकर, मैं अनुभवों की खोज में समय बर्बाद करने के बजाय शांत और ग्रहणशील रहने की कोशिश करता था।
एम: जब आप सही मूड में थे, तब आप वास्तव में क्या अनुभव कर रहे थे?
प्रश्न: आंतरिक शांति, सुकून और मौन की अनुभूति।
एम: क्या आपको खुद के बेहोश होने का एहसास हुआ?
प्रश्न: हां, कभी-कभार और बहुत थोड़े समय के लिए। अन्यथा मैं भीतरी और बाहरी रूप से बिल्कुल शांत रहता था।
एम: वह किस तरह की शांति थी? गहरी नींद जैसी, फिर भी पूरी तरह सचेत। एक तरह की जागृत नींद?
प्रश्न: हाँ. सचेत होकर सोया हुआ। (जागृत-सुषुप्ति)।
एम: सबसे महत्वपूर्ण बात है नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होना—इच्छा, भय आदि, जो मन के 'छह शत्रु' हैं। एक बार मन इनसे मुक्त हो जाए, तो बाकी सब कुछ आसानी से हो जाएगा। जैसे साबुन के पानी में रखा कपड़ा साफ हो जाता है, वैसे ही शुद्ध भावों की धारा में मन भी शुद्ध हो जाता है।
जब आप शांत बैठकर स्वयं को देखते हैं, तो अनेक प्रकार की बातें आपके मन में उभर सकती हैं। उन पर ध्यान न दें, प्रतिक्रिया न करें; जैसे वे आई हैं, वैसे ही वे स्वतः ही चली जाएंगी। महत्वपूर्ण बात है सचेतनता, स्वयं के प्रति या यों कहें कि अपने मन के प्रति पूर्ण जागरूकता।
प्रश्न: क्या 'स्वयं' से आपका तात्पर्य दैनिक जीवन से है?
एम: जी हाँ, व्यक्ति ही वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकनीय है। प्रेक्षक अवलोकन से परे है। जो अवलोकनीय है वह वास्तविक स्व नहीं है।
प्रश्न: मैं निरंतर मंदी में प्रेक्षक का अवलोकन कर सकता हूँ।
एम: आप अवलोकन को देख सकते हैं, लेकिन अवलोकनकर्ता को नहीं। आप प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि से जानते हैं कि आप ही परम अवलोकनकर्ता हैं, न कि अवलोकन पर आधारित तार्किक प्रक्रिया से। आप वही हैं जो आप हैं, लेकिन आप जानते हैं कि आप क्या नहीं हैं। आत्मा को अस्तित्व के रूप में जाना जाता है, और अन-आत्मा को क्षणभंगुर के रूप में। लेकिन वास्तव में सब कुछ मन में है। देखा जाने

वाला, अवलोकन और अवलोकनकर्ता मानसिक रचनाएँ हैं। केवल आत्मा ही अस्तित्व में है।

प्रश्न: मन ये सभी विभाजन क्यों उत्पन्न करता है?
एम: विभाजन और विशिष्टता मन का मूल स्वभाव है। विभाजन में कोई बुराई नहीं है। परन्तु पृथक्करण वास्तविकता के विरुद्ध है। वस्तुएँ और मनुष्य भिन्न हैं, परन्तु पृथक नहीं। प्रकृति एक है, वास्तविकता एक है। विपरीत चीजें हैं, परन्तु कोई विरोध नहीं।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं स्वभाव से बहुत सक्रिय हूँ। यहाँ मुझे सक्रियता से बचने की सलाह दी गई है। जितना अधिक मैं निष्क्रिय रहने का प्रयास करता हूँ, उतना ही कुछ करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। इससे मैं न केवल बाहरी रूप से सक्रिय हो जाता हूँ, बल्कि आंतरिक रूप से भी उस स्वरूप को धारण करने के लिए संघर्ष करता हूँ जो स्वभाव से मैं नहीं हूँ। क्या काम करने की इस लालसा का कोई उपाय है?
एम: काम और मात्र गतिविधि में अंतर होता है। प्रकृति का हर भाग कार्यशील है। काम ही प्रकृति है, प्रकृति ही काम है। दूसरी ओर, गतिविधि इच्छा और भय पर आधारित होती है, अधिकार और भोग की लालसा पर, पीड़ा और विनाश के भय पर। काम संपूर्ण के लिए होता है, जबकि गतिविधि स्वयं के लिए होती है। प्रश्न: क्या इस गतिविधि के विरुद्ध कोई उपाय है?
ध्यान से देखो, और यह रुक जाएगा। हर अवसर का उपयोग स्वयं को यह याद दिलाने के लिए करो कि तुम बंधन में हो, कि तुम्हारे साथ जो कुछ भी होता है वह तुम्हारे शारीरिक अस्तित्व के कारण होता है। इच्छा, भय, कष्ट, सुख, ये तब तक प्रकट नहीं हो सकते जब तक तुम स्वयं उपस्थित न हो। फिर भी, जो कुछ भी घटित होता है, वह एक संवेदी केंद्र के रूप में तुम्हारे अस्तित्व की ओर इशारा करता है। इन संकेतों को अनदेखा करो और इस बात से अवगत रहो कि वे किस ओर इशारा कर रहे हैं। यह बहुत सरल है, लेकिन इसे करना आवश्यक है। महत्वपूर्ण बात यह है कि तुम कितनी दृढ़ता से स्वयं की ओर लौटते रहते हो। प्रश्न: मैं कभी-कभी आत्म-मग्नता की विचित्र अवस्थाओं में डूब जाता हूँ, लेकिन यह अवस्था अप्रत्याशित और क्षणिक होती है। मुझे ऐसी अवस्थाओं पर अपना नियंत्रण महसूस नहीं होता।
एम: शरीर एक भौतिक वस्तु है और इसे बदलने में समय लगता है। मन तो बस मानसिक आदतों, सोचने-समझने के तरीकों का एक समूह है, और इन्हें बदलने के लिए इन्हें सतह पर लाना और इनकी जांच करना आवश्यक है। इसमें भी समय लगता है। बस दृढ़ संकल्प और लगन बनाए रखें, बाकी सब अपने आप ठीक हो जाएगा।
प्रश्न: मुझे स्पष्ट रूप से पता है कि क्या करने की आवश्यकता है, लेकिन मैं खुद को थका हुआ और उदास महसूस करता हूं और मानवीय संगति की तलाश करता हूं, जिससे वह समय बर्बाद हो जाता है जो एकांत और ध्यान के लिए दिया जाना चाहिए। एम: जो मन करे, वही करो। खुद पर दबाव मत डालो। हिंसा तुम्हें कठोर और अड़ियल बना देगी। अपने रास्ते में आने वाली बाधाओं से मत लड़ो। बस उनमें रुचि लो, उन्हें देखो, उनका अवलोकन करो, उनके बारे में पूछताछ करो। जो भी हो, होने दो - अच्छा या बुरा। लेकिन जो भी हो, उसमें खुद को डूबने मत दो। प्रश्न: स्वयं को हर समय यह याद दिलाने का क्या उद्देश्य है कि आप ही दर्शक हैं?
एम: मन को यह सीखना होगा कि गतिशील मन के परे जागरूकता की पृष्ठभूमि है, जो बदलती नहीं है। मन को अपने सच्चे स्वरूप को जानना और उसका सम्मान करना

होगा, और उसे ढकना बंद करना होगा, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य ग्रहण के दौरान चंद्रमा सूर्य को ढक लेता है। बस इतना जान लें कि जो कुछ भी देखा या अनुभव किया जा सकता है, वह आप नहीं हैं, न ही आपको बांधता है। जो आप स्वयं नहीं हैं, उन पर ध्यान न दें।
प्रश्न: जो आप मुझे करने के लिए कहते हैं, उसे करने के लिए मुझे निरंतर जागरूक रहना होगा।
एम: जागरूक होना जागृत अवस्था है। अचेतन अवस्था का अर्थ है नींद। आप वैसे भी जागरूक हैं, इसके लिए आपको प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। आपको बस अपनी जागरूकता के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है। जानबूझकर और सचेत रूप से जागरूक रहें, जागरूकता के क्षेत्र को विस्तृत और गहरा करें। आप मन के प्रति हमेशा सचेत रहते हैं, लेकिन आप स्वयं को सचेत रूप में नहीं जानते। प्रश्न: जैसा कि मैं समझ सकता हूँ, आप 'मन', 'चेतना' और 'जागरूकता' शब्दों को अलग-अलग अर्थ देते हैं।
एम: इसे इस तरह समझिए। मन लगातार विचार उत्पन्न करता रहता है, यहाँ तक कि जब आप उन पर ध्यान नहीं देते। जब आप अपने मन में चल रही बातों को जानते हैं, तो उसे चेतना कहते हैं। यही आपकी जाग्रत अवस्था है – आपकी चेतना एक संवेदना से दूसरी संवेदना, एक बोध से दूसरे बोध, एक विचार से दूसरे विचार में निरंतर बदलती रहती है। फिर आती है जागरूकता, जो संपूर्ण चेतना, मन की समग्रता का प्रत्यक्ष ज्ञान है। मन एक नदी के समान है, जो शरीर में निरंतर बहती रहती है; आप क्षण भर के लिए किसी विशेष तरंग से स्वयं को जोड़ लेते हैं और उसे 'मेरा विचार' कहते हैं। आप केवल अपने मन के प्रति ही सचेत होते हैं; जागरूकता संपूर्ण चेतना का बोध है।
प्रश्न: हर कोई सचेत है, लेकिन हर कोई जागरूक नहीं है।
एम: यह मत कहो कि 'हर कोई सचेत है'। कहो कि 'चेतना है', जिसमें सब कुछ प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है। हमारा मन चेतना के सागर की लहरों के समान है। लहरों की तरह वे आते-जाते हैं। सागर की तरह वे अनंत और शाश्वत हैं। स्वयं को अस्तित्व का सागर, समस्त अस्तित्व का गर्भ समझो। ये सब रूपक हैं; वास्तविकता वर्णन से परे है। इसे केवल स्वयं को अनुभव करके ही जाना जा सकता है।
प्रश्न: क्या इसकी खोज करना व्यर्थ नहीं है?
एम: इसके बिना सब कुछ परेशानी भरा है। अगर आप समझदारी से, रचनात्मक रूप से और खुशी से जीना चाहते हैं और आपके पास बांटने के लिए असीम धन-संपत्ति हो, तो अपने आप को खोजें।
जब मन शरीर में केंद्रित होता है और चेतना मन में केंद्रित होती है, तब जागरूकता स्वतंत्र होती है। शरीर की अपनी इच्छाएँ होती हैं और मन के अपने सुख-दुख। जागरूकता अनासक्त और अविचलित होती है। यह स्पष्ट, शांत, स्थिर, सजग और निर्भय होती है, इच्छा और भय से रहित होती है। इसे अपने सच्चे स्वरूप के रूप में ध्यान करें और अपने दैनिक जीवन में इसे जीने का प्रयास करें, और आप इसकी पूर्णता को जान पाएंगे।
मन घटित होने वाली घटनाओं में रुचि रखता है, जबकि जागरूकता स्वयं मन में रुचि रखती है। बच्चा खिलौने के पीछे भाग रहा है, लेकिन माँ बच्चे को देख रही है, खिलौने को नहीं।
निरंतर खोजते-करते मैं पूर्णतः खाली हो गया, और उस खालीपन के साथ ही मुझे सब कुछ याद आ गया, सिवाय मन के। मुझे लगता है कि मैंने अपना मन हमेशा के लिए खो दिया है।

प्रश्न: क्या आप अभी हमसे बात करते समय बेहोश हैं?
एम: मैं न तो चेतन हूँ और न ही अचेतन, मैं मन और उसकी विभिन्न अवस्थाओं से परे हूँ। भेद मन द्वारा निर्मित होते हैं और केवल मन पर ही लागू होते हैं। मैं स्वयं शुद्ध चेतना हूँ, समस्त का अटूट ज्ञान। मैं आपकी अवस्था से कहीं अधिक वास्तविक अवस्था में हूँ। मैं उन भेदों और विभाजनों से विचलित नहीं हूँ जो एक व्यक्ति का निर्माण करते हैं। जब तक शरीर है, उसकी भी अन्य शरीरों की तरह आवश्यकताएँ हैं, परन्तु मेरी मानसिक प्रक्रिया समाप्त हो चुकी है।
प्रश्न: आप एक विचारशील व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हैं।
एम: क्यों नहीं? लेकिन मेरी सोच, मेरे पाचन की तरह, अचेतन और उद्देश्यपूर्ण है।
प्रश्न: यदि आपकी सोच अवचेतन है, तो आपको कैसे पता चलता है कि वह सही है? एम: इसे रोकने की न तो कोई इच्छा है और न ही कोई डर। भला इसे गलत क्या बना सकता है? जब मैं खुद को और अपने सिद्धांतों को जान लेता हूँ, तो मुझे हर समय खुद की जाँच करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जब आपको पता होता है कि आपकी घड़ी सही समय दिखा रही है, तो आप हर बार उसे देखने में संकोच नहीं करते। प्रश्न: इस समय, यदि मन नहीं तो और कौन बोल रहा है?
एम: जो प्रश्न सुनता है, वही उसका उत्तर देता है।
प्रश्न: लेकिन यह कौन है?
एम: कौन नहीं, बल्कि क्या। मैं आपके अर्थ में कोई व्यक्ति नहीं हूँ, भले ही आपको मैं व्यक्ति प्रतीत होता हूँ। मैं चेतना का वह अनंत सागर हूँ जिसमें सब कुछ घटित होता है। मैं सभी अस्तित्व और बोध से परे हूँ, अस्तित्व का शुद्ध आनंद हूँ। मुझे किसी भी चीज़ से अलग होने का अहसास नहीं होता, इसलिए मैं सब कुछ हूँ। कोई भी वस्तु मैं नहीं हूँ, इसलिए मैं कुछ भी नहीं हूँ। जिस शक्ति से आग जलती है, पानी बहता है, बीज अंकुरित होते हैं और पेड़ उगते हैं, वही शक्ति मुझे आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रेरित करती है। मुझमें कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है, भले ही भाषा और शैली व्यक्तिगत प्रतीत हो। एक व्यक्ति इच्छाओं, विचारों और उनसे उत्पन्न कार्यों का एक निश्चित स्वरूप होता है; मेरे मामले में ऐसा कोई स्वरूप नहीं है। मुझे न तो कुछ चाहिए और न ही कुछ डर – भला कोई स्वरूप कैसे हो सकता है?
प्रश्न: निश्चित रूप से, आपकी मृत्यु हो जाएगी।
एम: जीवन समाप्त हो जाएगा, शरीर मर जाएगा, लेकिन इसका मुझ पर ज़रा भी असर नहीं पड़ेगा। मैं अंतरिक्ष और समय से परे हूं, अकारण हूं, अकारण हूं, फिर भी अस्तित्व का मूल तत्व हूं।
प्रश्न: क्या मुझे यह पूछने की अनुमति दी जा सकती है कि आप अपनी वर्तमान स्थिति तक कैसे पहुंचे?
एम: मेरे गुरु ने मुझे 'मैं हूं' की भावना को दृढ़ता से थामे रहने और एक पल के लिए भी उससे विचलित न होने की सलाह दी थी। मैंने उनकी सलाह का पालन करने की पूरी कोशिश की और अपेक्षाकृत कम समय में ही मुझे उनके उपदेश की सच्चाई का अहसास हो गया। मैंने बस इतना किया कि उनके उपदेश, उनका चेहरा, उनके शब्द लगातार याद करता रहा। इससे मन शांत हो गया; मन की शांति में मैंने स्वयं को उसी रूप में देखा जैसा मैं हूं - बंधनमुक्त।
प्रश्न: क्या आपको यह अहसास अचानक हुआ या धीरे-धीरे?
एम: दोनों में से कोई नहीं। व्यक्ति शाश्वत रूप से वही रहता है जो वह है।
मन को तभी ज्ञान प्राप्त होता है जब वह इच्छाओं और भय से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न: क्या आत्म-साक्षात्कार की इच्छा भी?
एम: सभी इच्छाओं का अंत करने की इच्छा एक अत्यंत विचित्र इच्छा है, ठीक वैसे ही जैसे भय का भय एक अत्यंत विचित्र भय होता है। एक आपको पकड़ने से रोकता है और दूसरा भागने से। आप भले ही एक ही शब्द का प्रयोग करें, लेकिन अवस्थाएँ एक जैसी नहीं हैं। आत्मज्ञान की खोज करने वाला व्यक्ति इच्छाओं का वश में नहीं होता; वह ऐसा साधक है जो इच्छा के विरुद्ध जाता है, उसके साथ नहीं। मुक्ति की सामान्य लालसा तो केवल आरंभ है; उचित साधन खोजना और उनका उपयोग करना अगला चरण है। साधक का केवल एक ही लक्ष्य होता है: अपने सच्चे स्वरूप को खोजना। सभी इच्छाओं में यह सबसे महत्वाकांक्षी है, क्योंकि इसे न तो कुछ और न ही कोई संतुष्ट कर सकता है; साधक और खोज एक ही हैं और केवल खोज ही मायने रखती है।
प्रश्न: खोज का अंत होगा। खोजकर्ता बना रहेगा।
एम: नहीं, साधक तो विलीन हो जाएगा, लेकिन खोज बनी रहेगी। खोज ही परम और शाश्वत वास्तविकता है।
प्रश्न: खोज का अर्थ है कमी, चाहत, अपूर्णता और खामी।
एम: नहीं, इसका अर्थ है अपूर्ण और अपूर्ण को अस्वीकार करना। वास्तविकता की खोज ही वास्तविकता की गति है। एक तरह से सभी खोज वास्तविक आनंद या वास्तविकता के आनंद की खोज है। लेकिन यहाँ खोज से हमारा तात्पर्य स्वयं की खोज से है, जो चेतना का मूल है, मन से परे प्रकाश है। यह खोज कभी समाप्त नहीं होगी, जबकि वास्तविक प्रगति के लिए अन्य सभी चीजों की अतृप्त लालसा का अंत होना आवश्यक है।
यह समझना आवश्यक है कि सत्य, ईश्वर, गुरु की खोज और आत्मा की खोज एक ही है; एक की प्राप्ति होने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जब मन में 'मैं हूँ' और 'ईश्वर है' का भेद समाप्त हो जाता है, तब कुछ ऐसा घटित होगा कि आप बिना किसी संदेह के जान जाएँगे कि ईश्वर इसलिए है क्योंकि आप हैं, आप इसलिए हैं क्योंकि ईश्वर है। दोनों एक ही हैं।
प्रश्न: चूंकि सब कुछ पूर्वनिर्धारित है, तो क्या हमारी आत्म-साक्षात्कार भी पूर्वनिर्धारित है? या कम से कम इस मामले में तो हम स्वतंत्र हैं?
एम: नियति का तात्पर्य केवल नाम और आकार से है। चूंकि आप न तो शरीर हैं और न ही मन, इसलिए नियति का आप पर कोई नियंत्रण नहीं है। आप पूर्णतः स्वतंत्र हैं। प्याला अपने आकार, सामग्री, उपयोग आदि से निर्धारित होता है। परन्तु प्याले के भीतर का स्थान स्वतंत्र है। यह प्याले में तभी प्रकट होता है जब इसे प्याले के संदर्भ में देखा जाता है। अन्यथा यह केवल स्थान है। जब तक शरीर है, आप शरीरधारी प्रतीत होते हैं। शरीर के बिना आप निराकार नहीं हैं - आप बस हैं।
भाग्य भी एक विचार मात्र है। शब्दों को अनगिनत तरीकों से जोड़ा जा सकता है! कथन भिन्न हो सकते हैं, लेकिन क्या उनसे वास्तविकता में कोई परिवर्तन आता है? चीजों को समझाने के लिए अनगिनत सिद्धांत गढ़े गए हैं - सभी तर्कसंगत लगते हैं, लेकिन कोई भी सत्य नहीं है। जब आप कार चलाते हैं, तो आप यांत्रिकी और रसायन विज्ञान के नियमों के अधीन होते हैं: कार से बाहर निकलें और आप शरीर क्रिया विज्ञान और जैव रसायन विज्ञान के नियमों के अधीन हो जाते हैं।
प्रश्न: ध्यान क्या है और इसके क्या उपयोग हैं?
एम: जब तक आप शुरुआती दौर में हैं, कुछ औपचारिक ध्यान या प्रार्थनाएँ आपके लिए फायदेमंद हो सकती हैं। लेकिन सत्य की खोज करने वाले के लिए केवल एक ही

ध्यान है - विचारों को मन में न आने देना। विचारों से मुक्त होना ही अपने आप में ध्यान है।
प्रश्न: यह कैसे किया जाता है?
एम: विचारों को बहने देने और उन्हें देखने से शुरुआत करें। अवलोकन मात्र से ही मन की गति धीमी हो जाती है और धीरे-धीरे पूरी तरह रुक जाती है। एक बार मन शांत हो जाए, तो उसे शांत ही रखें। शांति से ऊबें नहीं, उसमें लीन रहें, और उसमें और गहराई तक उतरें।
प्रश्न: मैंने सुना है कि एक विचार को पकड़े रहने से दूसरे विचार दूर रहते हैं। लेकिन सभी विचारों को दूर कैसे रखा जाए? विचार भी तो एक विचार ही होता है।
एम: नए सिरे से प्रयोग करो, बीते अनुभवों पर मत चलो। अपने विचारों पर ध्यान दो और खुद को विचारों को देखते हुए देखो। विचारों से मुक्ति की अवस्था अचानक आ जाएगी और उसके आनंद से तुम उसे पहचान लोगे।
[चित्र]
प्रश्न: क्या आपको दुनिया की स्थिति की बिल्कुल भी चिंता नहीं है? पूर्वी पाकिस्तान (1971, अब बांग्लादेश) में हुए भयावह अत्याचारों को देखिए। क्या वे आपको जरा भी प्रभावित नहीं करते?
एम: मैं अखबार पढ़ रहा हूँ, मुझे पता है क्या हो रहा है! लेकिन मेरी प्रतिक्रिया आपकी जैसी नहीं है। आप इलाज ढूंढ रहे हैं, जबकि मैं रोकथाम पर ध्यान दे रहा हूँ। जब तक कारण हैं, परिणाम भी होंगे। जब तक लोग फूट डालने और अलग करने पर तुले रहेंगे, जब तक वे स्वार्थी और आक्रामक रहेंगे, तब तक ऐसी चीजें होती रहेंगी। अगर आप दुनिया में शांति और सद्भाव चाहते हैं, तो आपके दिलों और दिमागों में शांति और सद्भाव होना चाहिए। ऐसा बदलाव थोपा नहीं जा सकता; यह भीतर से आना चाहिए। जो लोग युद्ध से नफरत करते हैं, उन्हें अपने अंदर से युद्ध को निकालना होगा। शांतिप्रिय लोगों के बिना दुनिया में शांति कैसे हो सकती है? जब तक लोग जैसे हैं वैसे ही रहेंगे, दुनिया भी वैसी ही रहेगी। मैं लोगों को यह समझाने की कोशिश कर रहा हूँ कि वे अपनी ही पीड़ा के एकमात्र कारण हैं। इस मायने में मैं एक उपयोगी व्यक्ति हूँ। लेकिन मैं अपने भीतर क्या हूँ, मेरी सामान्य स्थिति क्या है, इसे सामाजिक चेतना और उपयोगिता के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। मैं इसके बारे में बात कर सकता हूँ, उपमाओं या दृष्टांतों का प्रयोग कर सकता हूँ, लेकिन मैं भली-भांति जानता हूँ कि यह वास्तव में ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि इसका अनुभव नहीं किया जा सकता। यह स्वयं ही अनुभव है! लेकिन इसे उस मन की भाषा में वर्णित नहीं किया जा सकता जो जानने के लिए विच्छेद और विरोध करता है।
दुनिया एक कागज़ की शीट की तरह है जिस पर कुछ लिखा हुआ है। पढ़ने वाले के अनुसार उसका अर्थ और व्याख्या भिन्न हो सकती है, लेकिन कागज़ एक साझा तत्व है, जो हमेशा मौजूद रहता है, लेकिन जिसका एहसास शायद ही कभी होता है। जब टाइपिंग रिबन हटा दिया जाता है, तो लिखाई का कोई निशान कागज़ पर नहीं रह जाता। मेरा मन भी ऐसा ही है - विचार आते रहते हैं, लेकिन कोई निशान नहीं छोड़ते।
प्रश्न: आप यहां बैठकर लोगों से बात क्यों करते हैं? आपका असली मकसद क्या है?
एम: कोई मकसद नहीं। आप कहते हैं कि मेरा कोई मकसद होना चाहिए। मैं यहाँ बैठा नहीं हूँ, न ही बात कर रहा हूँ: मकसद खोजने की कोई ज़रूरत नहीं है।

मुझे शरीर से मत मिलाइए। मुझे कोई काम नहीं करना है, कोई कर्तव्य नहीं निभाना है। मेरा वह हिस्सा जिसे आप ईश्वर कह सकते हैं, दुनिया की देखभाल करेगा। आपकी यह दुनिया, जिसकी इतनी देखभाल की ज़रूरत है, आपके मन में बसती और चलती है। इसमें गहराई से उतरिए, आपको अपने जवाब वहीं मिलेंगे, और कहीं नहीं। आप उन्हें और कहाँ से पाने की उम्मीद करते हैं? क्या आपकी चेतना के बाहर कुछ भी मौजूद है?
प्रश्न: हो सकता है कि यह मेरे जाने बिना ही मौजूद हो।
एम: यह किस प्रकार का अस्तित्व होगा? क्या होना और जानना अलग हो सकते हैं? सभी अस्तित्व, सभी ज्ञान की तरह, आपसे संबंधित हैं। कोई वस्तु इसलिए है क्योंकि आप उसे अपने अनुभव या अपने अस्तित्व में जानते हैं। आपका शरीर और आपका मन तब तक विद्यमान रहते हैं जब तक आप ऐसा मानते हैं। यह सोचना छोड़ दें कि वे आपके हैं और वे स्वतः ही विलीन हो जाएंगे। अपने शरीर और मन को पूरी तरह से कार्य करने दें, लेकिन उन्हें आपको सीमित न करने दें। यदि आपको कोई अपूर्णता दिखाई दे, तो बस देखते रहें: उन पर ध्यान देने मात्र से ही आपका हृदय, मन और शरीर सही हो जाएगा।
प्रश्न: क्या मैं किसी गंभीर बीमारी को केवल पहचान कर ही ठीक कर सकता हूँ? एम: केवल बाहरी लक्षणों पर ही ध्यान न दें, बल्कि पूरी स्थिति को समझें। हर बीमारी मन से शुरू होती है। सबसे पहले मन का ध्यान रखें, सभी गलत विचारों और भावनाओं को पहचानकर उन्हें दूर करें। फिर बीमारी की परवाह किए बिना जीवन जिएं और काम करें, और उसके बारे में सोचना बंद कर दें। कारण दूर होते ही परिणाम भी अपने आप दूर हो जाते हैं।
मनुष्य वही बन जाता है जो वह स्वयं को मानता है। अपने बारे में सभी विचारों को त्याग दें और आप स्वयं को शुद्ध साक्षी पाएंगे, जो शरीर या मन में घटित होने वाली हर चीज से परे है।
प्रश्न: यदि मैं वह सब कुछ बन जाऊं जो मैं स्वयं को समझता हूं, और यह सोचने लगूं कि मैं ही परम वास्तविकता हूं, तो क्या मेरी परम वास्तविकता केवल एक विचार बनकर नहीं रह जाएगी?
एम: पहले उस स्थिति तक पहुंचें और फिर प्रश्न पूछें।

49. मन असुरक्षा का कारण बनता है

प्रश्नकर्ता: लोग आपसे सलाह लेने आते हैं। आपको कैसे पता चलता है कि क्या जवाब देना है?
महाराज: जैसा प्रश्न मैं सुनता हूँ, वैसा ही उत्तर मुझे सुनाई देता है। प्रश्न: और आपको कैसे पता चलता है कि आपका उत्तर सही है?
एम: एक बार जब मुझे उत्तरों का सही स्रोत पता चल जाता है, तो मुझे उन पर संदेह करने की आवश्यकता नहीं रहती। शुद्ध स्रोत से केवल शुद्ध जल ही प्रवाहित होता है। मुझे लोगों की इच्छाओं और भय से कोई लेना-देना नहीं है। मैं तथ्यों से जुड़ा हूं, विचारों से नहीं। मनुष्य अपने नाम और रूप को ही स्वयं मानता है, जबकि मैं स्वयं को कुछ भी नहीं मानता। यदि मैं स्वयं को केवल एक शरीर मान लूं, तो मैं आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाऊंगा। यदि मैं आपको केवल एक शरीर मान लूं, तो मेरे उत्तरों से आपको कोई लाभ नहीं होगा। कोई भी सच्चा शिक्षक विचारों में लिप्त नहीं होता। वह चीजों को वैसे ही देखता है जैसी वे हैं और उन्हें वैसे ही दिखाता है जैसी वे हैं। यदि आप लोगों को उनके स्वयं के विचारों के अनुसार ढालेंगे, तो आप उन्हें केवल दुख

पहुंचाएंगे, जैसे वे स्वयं को हर समय बहुत दुख पहुंचाते हैं। लेकिन यदि आप उन्हें वास्तविकता में उनके स्वरूप में देखेंगे, तो इससे उन्हें बहुत लाभ होगा। यदि वे आपसे पूछें कि क्या करना है, कौन से अभ्यास अपनाने हैं, कौन सा जीवन पथ अपनाना है, तो उत्तर दें: 'कुछ न करो, बस रहो। होने में ही सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता है।'
प्रश्न: मुझे ऐसा लगता है कि आप अपनी बातों में 'स्वाभाविक रूप से' और 'आकस्मिक रूप से' शब्दों का प्रयोग अंधाधुंध करते हैं। मुझे लगता है कि इन दोनों शब्दों के अर्थ में गहरा अंतर है। स्वाभाविक व्यवस्थित होता है, नियमों के अधीन होता है; प्रकृति पर भरोसा किया जा सकता है; जबकि आकस्मिक अव्यवस्थित, अप्रत्याशित और अनिश्चित होता है। कोई यह तर्क दे सकता है कि सब कुछ स्वाभाविक है, प्रकृति के नियमों के अधीन है; लेकिन यह कहना कि सब कुछ आकस्मिक है, बिना किसी कारण के, निश्चित रूप से अतिशयोक्ति है।
एम: क्या आपको बेहतर लगेगा अगर मैं 'आकस्मिक' शब्द के बजाय 'सहज' शब्द का प्रयोग करूं?
प्रश्न: आप 'आकस्मिक' के स्थान पर 'सहज' या 'स्वाभाविक' शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। आकस्मिकता में अव्यवस्था और अराजकता का तत्व निहित होता है। दुर्घटना हमेशा नियमों का उल्लंघन, अपवाद या आश्चर्य होती है।
एम: क्या जीवन स्वयं आश्चर्यों की एक धारा नहीं है?
प्रश्न: प्रकृति में सामंजस्य है। आकस्मिक घटना ही अशांति है।
एम: आप एक ऐसे व्यक्ति के रूप में बोलते हैं, जो समय और स्थान से सीमित है, शरीर और मन की सीमाओं में सिमटा हुआ है। जो आपको पसंद है, उसे आप 'स्वाभाविक' कहते हैं और जो आपको नापसंद है, उसे आप 'आकस्मिक' कहते हैं। प्रश्न: मुझे प्राकृतिक, नियम-पालन करने वाला, अपेक्षित चीज़ें पसंद हैं और मुझे नियम तोड़ने वाले, अव्यवस्थित, अप्रत्याशित और अर्थहीन लोगों से डर लगता है। आकस्मिक घटनाएँ हमेशा भयावह होती हैं। तथाकथित 'भाग्यशाली दुर्घटनाएँ' हो सकती हैं, लेकिन वे केवल इस नियम को सिद्ध करती हैं कि दुर्घटनाओं से भरी दुनिया में जीवन असंभव होगा।
एम: मुझे लगता है कि कुछ गलतफहमी है। 'आकस्मिक' से मेरा तात्पर्य ऐसी चीज़ से है जिस पर कोई ज्ञात नियम लागू नहीं होता। जब मैं कहता हूँ कि सब कुछ आकस्मिक है, अकारण है, तो मेरा मतलब केवल इतना है कि कारण और वे नियम जिनके अनुसार वे क्रियाशील होते हैं, हमारे ज्ञान या कल्पना से परे हैं। यदि आप जिसे व्यवस्थित, सामंजस्यपूर्ण, पूर्वानुमानित मानते हैं, उसे प्राकृतिक कहते हैं, तो जो उच्च नियमों का पालन करता है और उच्च शक्तियों द्वारा संचालित होता है, उसे सहज कहा जा सकता है। इस प्रकार, हमारे पास दो प्राकृतिक व्यवस्थाएँ होंगी: व्यक्तिगत और पूर्वानुमानित तथा अवैयक्तिक, या अतिव्यक्तिगत, और अप्रत्याशित। इसे निम्न प्रकृति और उच्च प्रकृति कहें और आकस्मिक शब्द को हटा दें। जैसे-जैसे आपका ज्ञान और अंतर्दृष्टि बढ़ती है, निम्न और उच्च प्रकृति के बीच की सीमा रेखा धुंधली होती जाती है, लेकिन दोनों तब तक बनी रहती हैं जब तक कि उन्हें एक के रूप में नहीं देखा जाता। क्योंकि वास्तव में, सब कुछ अत्यंत अद्भुत रूप से अकथनीय है! प्रश्न: विज्ञान बहुत कुछ स्पष्ट करता है।
एम: विज्ञान नामों और आकृतियों, मात्राओं और गुणों, स्वरूपों और नियमों से संबंधित है; यह अपने आप में ठीक है। लेकिन जीवन जीने के लिए है; विश्लेषण के लिए समय नहीं है। प्रतिक्रिया तात्कालिक होनी चाहिए - इसीलिए सहजता और

शाश्वतता का महत्व है। अज्ञात में ही हम जीते और आगे बढ़ते हैं। ज्ञात अतीत है।
प्रश्न: मैं अपने बारे में जो महसूस करता हूँ, उस पर दृढ़ रुख अपना सकता हूँ। मैं एक व्यक्ति हूँ, व्यक्तियों के बीच एक व्यक्ति। कुछ लोग एकीकृत और सामंजस्यपूर्ण होते हैं, और कुछ नहीं। कुछ सहजता से जीवन जीते हैं, हर परिस्थिति में सही ढंग से सहजता से प्रतिक्रिया करते हैं, उस क्षण की आवश्यकता को पूरी तरह से पूरा करते हैं, जबकि अन्य लोग लड़खड़ाते हैं, गलतियाँ करते हैं और आम तौर पर उपद्रव मचाते हैं। सामंजस्यपूर्ण लोगों को स्वाभाविक, नियमबद्ध कहा जा सकता है, जबकि विघटित लोग अराजक और दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं।
एम: अराजकता की अवधारणा ही व्यवस्थित, जैविक और परस्पर संबंधित होने की भावना को पूर्वकल्पित करती है। अराजकता और ब्रह्मांड: क्या वे एक ही अवस्था के दो पहलू नहीं हैं?
प्रश्न: लेकिन ऐसा लगता है कि आप कह रहे हैं कि सब कुछ अराजकता, आकस्मिक और अप्रत्याशित है।
एम: जी हाँ, इस अर्थ में कि अस्तित्व के सभी नियम ज्ञात नहीं हैं और सभी घटनाएँ पूर्वानुमानित नहीं हैं। जितना अधिक आप समझ पाते हैं, उतना ही ब्रह्मांड भावनात्मक और मानसिक रूप से संतोषजनक हो जाता है। वास्तविकता अच्छी और सुंदर है; अराजकता हम ही पैदा करते हैं।
प्रश्न: यदि आपका तात्पर्य यह है कि दुर्घटनाएँ मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा के कारण होती हैं, तो मैं सहमत हूँ। लेकिन हमने अभी तक स्वतंत्र इच्छा पर चर्चा नहीं की है।
एम: व्यवस्था ही आपको सुख देती है और अव्यवस्था ही आपको पीड़ा देती है।
प्रश्न: आप ऐसा कह सकते हैं, लेकिन मुझे यह मत बताइए कि ये दोनों एक ही हैं। मुझसे मेरी ही भाषा में बात कीजिए—उस भाषा में जो सुख की तलाश में निकले एक व्यक्ति की भाषा है। मैं अद्वैतवादी बातों से गुमराह नहीं होना चाहता।
एम: आपको ऐसा क्यों लगता है कि आप एक अलग व्यक्ति हैं?
प्रश्न: मैं एक व्यक्ति के रूप में व्यवहार करता हूँ। मैं अपने दम पर कार्य करता हूँ। मैं सर्वप्रथम स्वयं को महत्व देता हूँ, और दूसरों को केवल अपने संदर्भ में ही देखता हूँ। संक्षेप में, मैं स्वयं में ही व्यस्त रहता हूँ। एम: अच्छा, तुम अपने काम में लगे रहो। तुम यहाँ किसलिए आए हो?
प्रश्न: मैं अपने पुराने लक्ष्य, यानी आत्म-सुरक्षा और सुख की तलाश में हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे इसमें ज़्यादा सफलता नहीं मिली है। मैं न तो सुरक्षित हूँ और न ही खुश। इसीलिए आप मुझे यहाँ पा रहे हैं। यह जगह मेरे लिए नई है, लेकिन यहाँ आने का मेरा कारण पुराना है: सुरक्षित सुख, सुखमय सुरक्षा की तलाश। अभी तक मुझे यह नहीं मिला है। क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?
एम: जो कभी खोया ही नहीं, वह कभी पाया भी नहीं जा सकता। सुरक्षा और खुशी की यही खोज आपको उनसे दूर रखती है। खोज करना बंद करो, खोना छोड़ दो। समस्या सीधी-सादी है और इलाज भी उतना ही सीधा। यह सिर्फ आपका मन ही है जो आपको असुरक्षित और दुखी बनाता है। भविष्य की चिंता आपको असुरक्षित बनाती है, यादें आपको दुखी करती हैं। अपने मन का दुरुपयोग करना बंद करो, सब ठीक हो जाएगा। आपको इसे ठीक करने की ज़रूरत नहीं है - यह अपने आप ठीक हो जाएगा, जैसे ही आप अतीत और भविष्य की चिंताओं को त्यागकर पूरी तरह से वर्तमान में जीना शुरू करेंगे।

प्रश्न: लेकिन वर्तमान का कोई आयाम नहीं है। मैं एक महत्वहीन व्यक्ति बन जाऊंगा, एक नगण्य व्यक्ति!
एम: बिल्कुल सही। जब आप कुछ भी नहीं और कोई नहीं हैं, तब आप सुरक्षित और खुश हैं। आप बस कोशिश करके देख सकते हैं।
लेकिन चलिए, आकस्मिक और सहज, या प्राकृतिक के बीच के अंतर पर वापस आते हैं। आपने कहा कि प्रकृति व्यवस्थित है जबकि आकस्मिकता अव्यवस्था का संकेत है। मैंने इस अंतर को नकारते हुए कहा कि हम किसी घटना को आकस्मिक तब कहते हैं जब उसके कारण अज्ञात हों। प्रकृति में अव्यवस्था का कोई स्थान नहीं है। अव्यवस्था केवल मनुष्य के मन में होती है। मन संपूर्ण को नहीं समझ पाता— उसका ध्यान बहुत सीमित होता है। वह केवल अंश ही देखता है और पूर्ण चित्र को नहीं समझ पाता। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति जो आवाज़ें सुनता है, लेकिन भाषा नहीं समझता, वह वक्ता पर निरर्थक बड़बड़ाहट का आरोप लगा सकता है, और वह पूरी तरह गलत हो सकता है। जो एक के लिए ध्वनियों का अव्यवस्थित प्रवाह है, वही दूसरे के लिए एक सुंदर कविता है।
एक बार राजा जनक ने स्वप्न देखा कि वे एक भिखारी हैं। जागने पर उन्होंने अपने गुरु वशिष्ठ से पूछा: क्या मैं एक राजा हूँ जो भिखारी होने का स्वप्न देख रहा है, या एक भिखारी हूँ जो राजा होने का स्वप्न देख रहा है? गुरु ने उत्तर दिया: तुम न तो राजा हो, न ही भिखारी, तुम दोनों हो। तुम हो, और फिर भी तुम वह नहीं हो जो तुम स्वयं को समझते हो। तुम हो क्योंकि तुम उसी के अनुसार व्यवहार करते हो; तुम नहीं हो क्योंकि यह स्थायी नहीं है। क्या कोई सदा के लिए राजा या भिखारी रह सकता है? सब कुछ परिवर्तनशील है। तुम वह हो जो नहीं बदलता। तुम क्या हो? जनक ने कहा: हाँ, मैं न तो राजा हूँ और न ही भिखारी, मैं एक उदासीन साक्षी हूँ। गुरु ने कहा: यह तुम्हारा अंतिम भ्रम है कि तुम ज्ञानी हो, कि तुम सामान्य मनुष्य से भिन्न और श्रेष्ठ हो। तुम फिर से स्वयं को अपने मन से जोड़ रहे हो, इस मामले में एक सुसंस्कृत और हर तरह से अनुकरणीय मन से। जब तक तुम जरा सा भी अंतर देखते हो, तुम वास्तविकता से अजनबी हो। तुम मन के स्तर पर हो। जब 'मैं स्वयं हूँ' का भाव चला जाता है, तब 'मैं सर्वस्व हूँ' का भाव आ जाता है। जब 'मैं सर्वस्व हूँ' का भाव चला जाता है, तब 'मैं हूँ' का भाव आ जाता है। यहाँ तक कि जब 'मैं हूँ' का भाव भी चला जाता है, तब केवल वास्तविकता ही शेष रहती है और उसमें प्रत्येक 'मैं हूँ' का भाव संरक्षित और महिमामंडित होता है। अलगाव रहित विविधता ही वह परम तत्व है जिसे मन अनुभव कर सकता है। उससे परे समस्त गतिविधियाँ थम जाती हैं, क्योंकि उसमें समस्त लक्ष्य प्राप्त हो जाते हैं और समस्त उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं।
प्रश्न: एक बार सर्वोच्च राज्य की प्राप्ति हो जाने पर, क्या इसे दूसरों के साथ साझा किया जा सकता है?
एम: परम अवस्था सार्वभौमिक है, यहीं और अभी; हर कोई पहले से ही इसमें भागीदार है। यह अस्तित्व की अवस्था है - जानना और पसंद करना। कौन अपने अस्तित्व को पसंद नहीं करता या कौन अपने अस्तित्व को नहीं जानता? लेकिन हम सचेत होने के इस आनंद का लाभ नहीं उठाते, हम इसमें प्रवेश नहीं करते और इसे उन सभी चीजों से शुद्ध नहीं करते जो इससे पराई हैं। मानसिक आत्म-शुद्धि का यह कार्य, मन की शुद्धि, आवश्यक है। जैसे आँख में एक कण सूजन पैदा करके संसार को नष्ट कर सकता है, वैसे ही 'मैं शरीर-मन हूँ' का भ्रामक विचार आत्म-चिंता का कारण बनता है, जो ब्रह्मांड को ढक लेता है। सीमित और पृथक व्यक्ति होने की भावना से लड़ना व्यर्थ है जब तक कि इसकी जड़ों को उजागर न किया

जाए। स्वार्थ स्वयं के बारे में भ्रामक विचारों में निहित है। मन का स्पष्टीकरण ही योग है।

50. आत्म-जागरूकता ही साक्षी है

प्रश्नकर्ता: आपने मुझे बताया कि मुझे तीन पहलुओं में समझा जा सकता है: व्यक्ति (व्यक्तिगत), अतिव्यक्तिगत (व्यक्तिगत) और अव्यक्त (अव्यक्त)। अव्यक्त सार्वभौमिक और वास्तविक शुद्ध 'मैं' है; व्यक्त चेतना में 'मैं हूँ' के रूप में इसका प्रतिबिंब है; व्यक्ति भौतिक और प्राणिक प्रक्रियाओं की समग्रता है। वर्तमान क्षण की संकीर्ण सीमाओं के भीतर, अतिव्यक्तिगत व्यक्ति को स्थान और समय दोनों में जानता है; न केवल एक व्यक्ति को, बल्कि कर्म के धागे से जुड़े व्यक्तियों की लंबी श्रृंखला को। यह मूल रूप से साक्षी होने के साथ-साथ संचित अनुभवों का अवशेष भी है, स्मृति का केंद्र है, सूत्रात्मा (जोड़ने वाली कड़ी) है। यह मनुष्य का चरित्र है जिसे जीवन जन्म-जन्म से बनाता और आकार देता है। सार्वभौमिक नाम और आकार से परे है, चेतना और चरित्र से परे है, शुद्ध अचेतन सत्ता है। क्या मैंने आपके विचारों को सही ढंग से व्यक्त किया?
महाराज: मन के स्तर पर – हाँ। मानसिक स्तर से परे तो कोई शब्द लागू नहीं होता।
प्रश्न: मैं समझ सकता हूँ कि व्यक्ति एक मानसिक संरचना है, स्मृतियों और आदतों के समूह के लिए एक सामूहिक संज्ञा है। लेकिन, जिसके साथ वह व्यक्ति घटित होता है, साक्षी केंद्र, क्या वह भी मानसिक है?
एम: व्यक्ति को एक आधार की आवश्यकता होती है, एक शरीर की जिससे वह स्वयं को पहचान सके, ठीक वैसे ही जैसे किसी रंग को प्रकट होने के लिए एक सतह की आवश्यकता होती है। रंग का अवलोकन रंग से स्वतंत्र होता है—यह किसी भी रंग में एक समान होता है। रंग देखने के लिए आँख की आवश्यकता होती है। रंग अनेक हैं, आँख एक है। व्यक्ति रंग और आँख में प्रकाश के समान है, फिर भी सरल, एकल, अविभाज्य और अगोचर है, सिवाय इसके प्रकट रूपों के। अज्ञेय नहीं, बल्कि अगोचर, वस्तुनिष्ठ नहीं, अविभाज्य। न भौतिक, न मानसिक, न वस्तुनिष्ठ, न व्यक्तिपरक, यह पदार्थ का मूल और चेतना का स्रोत है। मात्र जीने और मरने से परे, यह सर्व-समावेशी, सर्व-अनन्य जीवन है, जिसमें जन्म ही मृत्यु है और मृत्यु ही जन्म है।
प्रश्न: आप जिस परम सत्ता या जीवन की बात कर रहे हैं, क्या वह वास्तव में मौजूद है, या केवल हमारी अज्ञानता को छिपाने के लिए एक सिद्धांत मात्र है? एम: दोनों। मन के लिए, एक सिद्धांत; अपने आप में एक वास्तविकता। यह असत्य को स्वतः और पूर्ण रूप से अस्वीकार करने में ही वास्तविकता है। जैसे प्रकाश अपनी उपस्थिति मात्र से अंधकार को नष्ट कर देता है, वैसे ही परम सत्ता कल्पना को नष्ट कर देती है। यह देखना कि समस्त ज्ञान अज्ञान का ही एक रूप है, स्वयं वास्तविकता की एक गति है। साक्षी कोई व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति का अस्तित्व तब होता है जब उसका कोई आधार हो, कोई जीव हो, कोई शरीर हो। उसमें परम सत्ता चेतना के रूप में प्रतिबिंबित होती है। शुद्ध चेतना आत्म-चेतना बन जाती है। जब आत्मा होती है, तो आत्म-चेतना ही साक्षी होती है। जब साक्षी देने के लिए कोई आत्मा नहीं होती, तो साक्षी भी नहीं होता। यह सब बहुत सरल है; व्यक्ति की उपस्थिति ही इसे जटिल बनाती है। यह समझ लें कि कोई भी व्यक्ति स्थायी रूप से पृथक नहीं होता और सब कुछ स्पष्ट हो जाता

है। चेतना - मन - पदार्थ - ये दोनों एक ही वास्तविकता हैं, अपने दो पहलुओं में - अचल और चल, और जड़ता, ऊर्जा और सामंजस्य के तीन गुणों में।
प्रश्न: चेतना या जागरूकता में से पहले क्या आता है?
एम: जागरूकता तब चेतना बन जाती है जब उसका कोई लक्ष्य होता है। लक्ष्य निरंतर बदलता रहता है। चेतना में गति होती है; जागरूकता अपने आप में स्थिर और कालातीत है, यहीं और अभी में है।
प्रश्न: इस समय पूर्वी पाकिस्तान में पीड़ा और रक्तपात हो रहा है। आप इसे किस दृष्टि से देखते हैं? आपको यह कैसा लगता है, आप इस पर क्या प्रतिक्रिया देते हैं?
एम: शुद्ध चेतना में कभी कुछ नहीं होता।
प्रश्न: कृपया इन दार्शनिक विचारों से नीचे उतरें! एक पीड़ित व्यक्ति को यह बताना कि उसके दुख से केवल वही वाकिफ है, क्या लाभ? हर बात को भ्रम बता देना जले पर नमक छिड़कने जैसा है। पूर्वी पाकिस्तान का बंगाली एक हकीकत है और उसका दुख भी एक हकीकत है। कृपया, इन बातों को नज़रअंदाज़ न करें! आप अखबार पढ़ते हैं, लोगों को इसके बारे में बात करते सुनते हैं। आप अनभिज्ञता का बहाना नहीं बना सकते। अब, जो हो रहा है उसके प्रति आपका क्या रवैया है?
एम: कोई प्रतिक्रिया नहीं। कुछ नहीं हो रहा है।
प्रश्न: किसी भी दिन आपके सामने दंगा हो सकता है, शायद लोग एक-दूसरे को मार रहे हों। आप निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि कुछ नहीं हो रहा है और तटस्थ बने रहें।
एम: मैंने कभी अलग-थलग रहने की बात नहीं की। आप मुझे किसी को बचाने के लिए लड़ाई में कूदते और खुद मारे जाते हुए भी देख सकते थे। फिर भी मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ा।
कल्पना कीजिए एक विशाल इमारत ढह जाती है। कुछ कमरे खंडहर हो जाते हैं, कुछ सही-सलामत रहते हैं। लेकिन क्या आप उस जगह को खंडहर या सही-सलामत कह सकते हैं? केवल इमारत और उसमें रहने वाले लोग ही प्रभावित होते हैं। जगह को कुछ नहीं होता। ठीक इसी तरह, जब रूप टूट जाते हैं और नाम मिट जाते हैं, तो जीवन पर कोई असर नहीं पड़ता। सुनार पुराने गहनों को पिघलाकर नए गहने बनाता है। कभी-कभी एक अच्छा गहना खराब गहने के साथ मिल जाता है। वह इसे सहजता से स्वीकार करता है, क्योंकि वह जानता है कि सोना नष्ट नहीं हुआ है।
प्रश्न: मैं मृत्यु के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर रहा हूँ। मैं मरने के तरीके के विरुद्ध विद्रोह कर रहा हूँ।
एम: मृत्यु स्वाभाविक है, मरने का तरीका मनुष्य द्वारा निर्मित है। अलगाव भय और आक्रामकता को जन्म देता है, जो फिर हिंसा को जन्म देता है। मनुष्य द्वारा निर्मित अलगावों को समाप्त करो, और लोगों के एक-दूसरे को मारने का यह भयावह सिलसिला निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगा। लेकिन वास्तविकता में न तो हत्या है और न ही मृत्यु। वास्तविक कभी नहीं मरता, अवास्तविक कभी जीवित ही नहीं था। अपने मन को सही करो, और सब कुछ ठीक हो जाएगा। जब तुम जान जाओगे कि संसार एक है, मानवता एक है, तो तुम उसी के अनुसार कार्य करोगे। लेकिन सबसे पहले तुम्हें अपने भावों, विचारों और जीवन शैली पर ध्यान देना होगा। जब तक तुममें व्यवस्था नहीं होगी, तब तक संसार में व्यवस्था नहीं हो सकती।
वास्तव में कुछ नहीं होता। मन की स्क्रीन पर नियति निरंतर अपनी तस्वीरें, पूर्व की यादों को प्रदर्शित करती रहती है और इस प्रकार भ्रम निरंतर

नवीकृत होता रहता है। तस्वीरें आती-जाती रहती हैं - अज्ञान द्वारा अवरुद्ध प्रकाश। प्रकाश को देखो और तस्वीर को अनदेखा करो।
प्रश्न: चीजों को देखने का कितना असंवेदनशील तरीका है! लोग मार रहे हैं और मारे जा रहे हैं और आप यहाँ तस्वीरों की बात कर रहे हैं।
एम: अगर आपको लगता है कि यही करना चाहिए, तो आप जाकर खुद को मार डालिए। या फिर अगर आप इसे अपना कर्तव्य समझते हैं, तो जाकर मार डालिए। लेकिन बुराई को खत्म करने का यह तरीका नहीं है। बुराई एक बीमार दिमाग की दुर्गंध है। अपने दिमाग को ठीक कीजिए, और यह विकृत, घिनौनी तस्वीरें दिखाना बंद कर देगा। प्रश्न: आपकी बात मैं समझता हूँ, लेकिन भावनात्मक रूप से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। जीवन का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण मुझे अत्यंत अरुचिकर लगता है। मैं स्वयं को स्थायी रूप से स्वप्न की अवस्था में रहने की कल्पना भी नहीं कर सकता।
एम: कोई व्यक्ति किसी क्षणिक शरीर के कारण उत्पन्न अवस्था में स्थायी रूप से कैसे रह सकता है? यह गलतफहमी आपके इस विचार पर आधारित है कि आप ही शरीर हैं। इस विचार का विश्लेषण कीजिए, इसके अंतर्निहित विरोधाभासों को समझिए, और यह महसूस कीजिए कि आपका वर्तमान अस्तित्व चिंगारियों की बौछार के समान है, प्रत्येक चिंगारी एक सेकंड तक रहती है और पूरी बौछार एक या दो मिनट तक चलती है। निश्चित रूप से, जिस वस्तु का आरंभ ही अंत है, उसका कोई मध्य नहीं हो सकता। अपने नियमों का सम्मान कीजिए। वास्तविकता क्षणिक नहीं हो सकती। यह कालातीत है, लेकिन कालातीतता अवधि नहीं है।
प्रश्न: मैं मानता हूँ कि जिस दुनिया में मैं रहता हूँ, वह असली दुनिया नहीं है। लेकिन एक असली दुनिया है, जिसकी मुझे विकृत छवि दिखाई देती है। यह विकृति शायद मेरे शरीर या मन की किसी खामी के कारण है। लेकिन जब आप कहते हैं कि कोई असली दुनिया नहीं है, केवल मेरे मन में एक स्वप्नलोक है, तो मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर पाता। काश मैं यह मान पाता कि जीवन की सारी भयावहता मेरे शरीर होने के कारण है। आत्महत्या ही एकमात्र रास्ता होता।
एम: जब तक आप अपने या दूसरों के विचारों पर ध्यान देते रहेंगे, तब तक आप परेशानी में रहेंगे। लेकिन अगर आप सभी शिक्षाओं, सभी किताबों, शब्दों में लिखी हर बात को नज़रअंदाज़ करके अपने भीतर गहराई से उतरें और खुद को खोजें, तो यही आपके सभी समस्याओं का समाधान कर देगा और आपको हर परिस्थिति पर पूर्ण नियंत्रण प्रदान करेगा, क्योंकि आप उस परिस्थिति के बारे में अपने विचारों से प्रभावित नहीं होंगे। एक उदाहरण लीजिए। आप एक आकर्षक महिला के साथ हैं। आपके मन में उसके बारे में विचार आते हैं और इससे यौन संबंध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समस्या उत्पन्न होती है और आप संयम या आनंद पर किताबें खोजने लगते हैं। अगर आप बच्चे होते, तो आप दोनों बिना किसी समस्या के नग्न अवस्था में एक साथ हो सकते थे। बस यह सोचना बंद कर दें कि आप शरीर हैं और प्रेम और यौन संबंध की समस्याएं अपना अर्थ खो देंगी। सीमाओं का बोध समाप्त होने पर, भय, पीड़ा और सुख की खोज - सब समाप्त हो जाते हैं। केवल जागरूकता शेष रह जाती है।

51. दर्द और सुख के प्रति उदासीन रहें

प्रश्नकर्ता: मैं जन्म और निवास स्थान से फ्रांसीसी हूँ और लगभग दस वर्षों से योग का अभ्यास कर रहा हूँ।

महाराज: दस साल की मेहनत के बाद क्या आप अपने लक्ष्य के कहीं करीब पहुंचे हैं?
प्रश्न: थोड़ा और पास, शायद। यह कठिन काम है, आप जानते हैं।
एम: आत्मा निकट है और उस तक पहुँचने का मार्ग सरल है। आपको बस इतना करना है कि कुछ न करें।
प्रश्न: फिर भी मुझे अपनी साधना बहुत कठिन लगी।
एम: आपकी साधना तो 'होना' है। कर्म तो अपने आप हो जाता है। बस सचेत रहिए। यह याद रखने में क्या कठिनाई है कि आप हैं? आप तो हर समय हैं।
प्रश्न: अस्तित्व की अनुभूति सर्वत्र विद्यमान रहती है - इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन ध्यान का क्षेत्र अक्सर तरह-तरह की मानसिक घटनाओं - भावनाओं, छवियों, विचारों - से भर जाता है। इस प्रकार, अस्तित्व की शुद्ध अनुभूति अक्सर दब जाती है।
एम: अनावश्यक विचारों से मन को मुक्त करने की आपकी प्रक्रिया क्या है? मन को शुद्ध करने के लिए आप किन साधनों और उपकरणों का उपयोग करते हैं? प्रश्न: मूलतः, मनुष्य भयभीत है। वह सबसे अधिक स्वयं से भयभीत है। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं एक ऐसे व्यक्ति की तरह हूँ जिसके पास एक बम है जो फटने वाला है। वह उसे निष्क्रिय नहीं कर सकता, उसे फेंक नहीं सकता। वह बुरी तरह डरा हुआ है और समाधान की तलाश में बेचैन है, जो उसे नहीं मिल रहा। मेरे लिए मुक्ति इस बम से छुटकारा पाना है। मैं इस बम के बारे में ज्यादा नहीं जानता। मैं केवल इतना जानता हूँ कि यह बचपन से ही जुड़ा हुआ है। मैं उस डरे हुए बच्चे की तरह महसूस करता हूँ जो प्यार न मिलने पर पुरजोर विरोध कर रहा है। बच्चा प्यार के लिए तड़प रहा है और क्योंकि उसे प्यार नहीं मिल रहा, इसलिए वह भयभीत और क्रोधित है। कभी-कभी मुझे किसी को या खुद को मार डालने का मन करता है। यह इच्छा इतनी प्रबल है कि मैं लगातार भयभीत रहता हूँ। और मुझे नहीं पता कि इस भय से कैसे मुक्ति पाई जाए।
देखिए, हिंदू और यूरोपीय मानसिकता में अंतर होता है। हिंदू मानसिकता अपेक्षाकृत सरल होती है। यूरोपीय मानसिकता कहीं अधिक जटिल होती है। हिंदू मूलतः सात्विक होता है। वह यूरोपीय की बेचैनी, उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के प्रति अथक लगन और उसके व्यापक ज्ञान को नहीं समझ पाता।
एम: उसकी तर्क क्षमता इतनी प्रबल है कि वह तर्क के बल पर ही सारी हदें पार कर देगा! उसका आत्मविश्वास तर्क पर उसकी निर्भरता के कारण है।
प्रश्न: लेकिन सोचना, तर्क करना तो मन की सामान्य अवस्था है। मन कभी रुक ही नहीं सकता।
एम: यह एक अभ्यस्त अवस्था हो सकती है, लेकिन जरूरी नहीं कि यह सामान्य अवस्था हो। एक सामान्य अवस्था दर्दनाक नहीं हो सकती, जबकि आदत अक्सर दीर्घकालिक दर्द का कारण बनती है।
प्रश्न: यदि यह मन की स्वाभाविक या सामान्य अवस्था नहीं है, तो इसे कैसे रोका जाए? मन को शांत करने का कोई न कोई तरीका तो अवश्य होगा। मैं कितनी बार स्वयं से कहता हूँ: बस करो, रुक जाओ, बार-बार दोहराए जाने वाले वाक्यों की इस अंतहीन बकबक को बंद करो! लेकिन मेरा मन रुकता ही नहीं। मुझे लगता है कि इसे कुछ समय के लिए तो रोका जा सकता है, लेकिन लंबे समय तक नहीं। यहाँ तक कि तथाकथित 'आध्यात्मिक' लोग भी अपने मन को शांत रखने के लिए तरह-तरह के तरीके अपनाते हैं। वे मंत्र दोहराते हैं, गाते हैं, प्रार्थना करते हैं, ज़ोर से या धीरे से साँस लेते हैं, हिलते-डुलते हैं, ध्यान लगाते हैं, ध्यानमग्न होते हैं, समाधि की अवस्था में जाते हैं, सद्गुणों का अभ्यास

करते हैं - हर समय काम करते रहते हैं, ताकि काम करना बंद कर सकें, भाग-दौड़ करना बंद कर सकें, हिलना-डुलना बंद कर सकें। यदि यह इतना दुखद न होता, तो यह हास्यास्पद होता।
एम: मन दो अवस्थाओं में विद्यमान होता है: जल के समान और शहद के समान। जल थोड़ी सी भी हलचल से कंपन करने लगता है, जबकि शहद चाहे कितना भी विचलित हो जाए, शीघ्र ही स्थिर अवस्था में लौट आता है।
प्रश्न: मन स्वभाव से ही बेचैन होता है। इसे शायद शांत किया जा सकता है, लेकिन यह अपने आप शांत नहीं रहता।
एम: आपको लगातार बुखार और कंपकंपी हो सकती है। इच्छाएं और भय ही मन को बेचैन करते हैं। सभी नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होने पर मन शांत होता है। प्रश्न: आप बच्चे को नकारात्मक भावनाओं से नहीं बचा सकते। जन्म लेते ही वह दर्द और भय सीख लेता है। भूख एक क्रूर स्वामी है जो निर्भरता और घृणा सिखाती है। बच्चा माँ से प्यार करता है क्योंकि वह उसे भोजन देती है और उससे नफरत करता है क्योंकि वह भोजन देने में देरी करती है। हमारा अवचेतन मन संघर्षों से भरा है, जो चेतन मन में उभर आते हैं। हम एक ज्वालामुखी पर रहते हैं; हम हमेशा खतरे में रहते हैं। मैं मानता हूँ कि शांत मन वाले लोगों की संगति बहुत सुखदायक होती है, लेकिन जैसे ही मैं उनसे दूर होता हूँ, पुरानी परेशानियाँ फिर से शुरू हो जाती हैं। इसीलिए मैं समय-समय पर अपने गुरु की संगति पाने के लिए भारत आता हूँ।
एम: आपको लगता है कि आप आ-जा रहे हैं, विभिन्न अवस्थाओं और मनोदशाओं से गुज़र रहे हैं। मैं चीज़ों को वैसे ही देखता हूँ जैसे वे हैं, क्षणिक घटनाएँ, जो मेरे सामने तेज़ी से घटित होती हैं, जिनका अस्तित्व मुझसे ही है, फिर भी निश्चित रूप से न तो मैं हूँ और न ही मेरा। मैं घटनाओं में से एक नहीं हूँ, न ही किसी के अधीन हूँ। मैं इतना सरल और पूर्ण रूप से स्वतंत्र हूँ कि आपका मन, जो विरोध और अस्वीकृति का आदी है, इसे समझ नहीं सकता। मैं जो कहता हूँ, उसका शाब्दिक अर्थ वही है; मुझे विरोध या अस्वीकृति की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह मेरे लिए स्पष्ट है कि मैं किसी भी चीज़ का विपरीत या अस्वीकृति नहीं हो सकता। मैं बस परे हूँ, एक बिल्कुल अलग आयाम में। मुझे किसी चीज़ के साथ एकात्मता या विरोध में मत खोजो: मैं वहाँ हूँ जहाँ इच्छा और भय नहीं हैं। अब, आपका अनुभव क्या है? क्या आप भी महसूस करते हैं कि आप सभी क्षणभंगुर चीज़ों से पूरी तरह अलग हैं?
प्रश्न: जी हाँ, मैं कभी-कभी ऐसा करता हूँ। लेकिन तुरंत ही खतरे का आभास होने लगता है, मैं अकेला पड़ जाता हूँ, दूसरों से मेरा कोई संबंध नहीं रह जाता। देखिए, यहीं हमारी मानसिकता में अंतर है। हिंदू में भावना विचार के बाद आती है। किसी हिंदू को कोई विचार दीजिए, उसकी भावनाएँ जागृत हो जाती हैं। पश्चिमी व्यक्ति के साथ इसका उल्टा होता है: उसे कोई भावना दीजिए, वह एक विचार उत्पन्न कर देगा। आपके विचार बौद्धिक रूप से बहुत आकर्षक हैं, लेकिन भावनात्मक रूप से मैं उनसे जुड़ाव महसूस नहीं करता।
एम: अपनी बुद्धि को एक तरफ रख दो। इन मामलों में इसका इस्तेमाल मत करो। प्रश्न: उस सलाह का क्या फायदा जिसे मैं अमल में नहीं ला सकता? ये सब विचार हैं और आप चाहते हैं कि मैं विचारों पर भावनात्मक रूप से प्रतिक्रिया दूं, क्योंकि भावनाओं के बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती।
एम: आप क्रिया की बात क्यों करते हैं? क्या आप कभी क्रिया करते हैं? कोई अज्ञात शक्ति क्रिया करती है और आप कल्पना करते हैं कि आप क्रिया कर रहे

हैं। आप बस जो हो रहा है उसे देख रहे हैं, उस पर किसी भी तरह से प्रभाव डालने में असमर्थ हैं।
प्रश्न: मेरे अंदर यह स्वीकार करने के प्रति इतना जबरदस्त प्रतिरोध क्यों है कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता?
एम: लेकिन आप क्या कर सकते हैं? आप उस मरीज की तरह हैं जिसे बेहोश करके सर्जन ऑपरेशन कर रहा है। जब आप जागते हैं तो पाते हैं कि ऑपरेशन खत्म हो चुका है; क्या आप कह सकते हैं कि आपने कुछ किया है?
प्रश्न: लेकिन ऑपरेशन करवाने का विकल्प मैंने ही चुना है।
एम: बिलकुल नहीं। एक तरफ आपकी बीमारी है और दूसरी तरफ आपके डॉक्टर और परिवार का दबाव है, जिसकी वजह से आपने यह फैसला लिया है। आपके पास कोई विकल्प नहीं है, बस विकल्प होने का भ्रम है।
प्रश्न: फिर भी मुझे लगता है कि मैं उतना असहाय नहीं हूँ जितना आप मुझे दिखाते हैं। मुझे लगता है कि मैं वह सब कुछ कर सकता हूँ जो मैं सोच सकता हूँ, बस मुझे यह नहीं पता कि कैसे। मुझमें शक्ति की कमी नहीं है, बल्कि ज्ञान की कमी है।
एम: यह सच है कि साधन न जानना उतना ही बुरा है जितना कि शक्ति का न होना! लेकिन फिलहाल इस विषय को यहीं छोड़ देते हैं; आखिरकार, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हम असहाय क्यों महसूस करते हैं, जब तक कि हम यह स्पष्ट रूप से समझ लें कि फिलहाल हम असहाय हैं।
अब मेरी उम्र 74 वर्ष है। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मैं एक शिशु हूँ। मुझे स्पष्ट रूप से महसूस होता है कि तमाम बदलावों के बावजूद मैं एक बच्चा हूँ। मेरे गुरु ने मुझसे कहा: वह बच्चा, जो तुम अभी भी हो, तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। उस शुद्ध अवस्था में लौट जाओ, जहाँ 'मैं हूँ' अभी भी अपनी शुद्धता में है, इससे पहले कि वह 'यह मैं हूँ' या 'वह मैं हूँ' से दूषित हो जाए। तुम्हारा बोझ झूठे आत्म-पहचान का है - इन सबको त्याग दो। मेरे गुरु ने मुझसे कहा - 'मुझ पर विश्वास करो। मैं तुमसे कहता हूँ; तुम दिव्य हो। इसे परम सत्य मानो। तुम्हारा आनंद भी दिव्य है, तुम्हारा दुख भी दिव्य है। सब कुछ ईश्वर से आता है। इसे हमेशा याद रखो। तुम ईश्वर हो, तुम्हारी इच्छा ही पूरी होती है।' मैंने उन पर विश्वास किया और जल्द ही महसूस किया कि उनके शब्द कितने अद्भुत रूप से सत्य और सटीक थे। मैंने अपने मन को यह सोचकर नियंत्रित नहीं किया कि 'मैं ईश्वर हूँ, मैं अद्भुत हूँ, मैं सर्वोपरि हूँ'। मैंने बस उनके निर्देश का पालन किया, जो था मन को शुद्ध 'मैं हूँ' पर केंद्रित करना और उसी में बने रहना। मैं घंटों तक केवल 'मैं' को ध्यान में रखकर बैठा रहता था, और जल्द ही शांति, आनंद और एक गहरा, सर्वव्यापी प्रेम मेरी सामान्य अवस्था बन गया। उसमें सब कुछ विलीन हो जाता था - मैं, मेरे गुरु, मेरा जीवन, मेरे आस-पास की दुनिया। केवल शांति और अथाह मौन शेष रह जाता था।
प्रश्न: सब कुछ बहुत सरल और आसान लगता है, लेकिन ऐसा है नहीं। कभी-कभी आनंदमय शांति की अद्भुत अनुभूति मुझ पर छा जाती है और मैं सोचता हूँ: यह कितनी आसानी से आती है, कितनी आत्मीय लगती है, कितनी पूरी तरह से मेरी अपनी। इतनी नज़दीक की इस अवस्था के लिए इतनी मेहनत करने की क्या ज़रूरत थी? इस बार तो यह निश्चित रूप से स्थायी है। फिर भी यह सब कितनी जल्दी लुप्त हो जाता है और मुझे सोचने पर मजबूर कर देता है - क्या यह वास्तविकता का एक अनुभव था या कोई और विचलन? यदि यह वास्तविकता थी, तो यह क्यों चली गई? शायद मुझे इस नई अवस्था में स्थायी रूप से स्थिर होने के लिए किसी अनूठे

अनुभव की आवश्यकता है और जब तक वह महत्वपूर्ण अनुभव नहीं आता, तब तक लुका- छिपी का यह खेल जारी रहना चाहिए।
एम: किसी अनोखी और नाटकीय घटना, किसी अद्भुत विस्फोट की आपकी अपेक्षा, केवल आपके आत्म-साक्षात्कार में बाधा डाल रही है और उसे विलंबित कर रही है। आपको विस्फोट की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि विस्फोट तो पहले ही हो चुका है - उस क्षण जब आपका जन्म हुआ, जब आपने स्वयं को अस्तित्व-ज्ञान-भावना के रूप में अनुभव किया। आप केवल एक ही गलती कर रहे हैं: आप भीतर को बाह्य और बाह्य को आंतरिक मान रहे हैं। जो आपके भीतर है, उसे आप बाह्य और जो बाह्य है, उसे आप अंतर्मन मान रहे हैं। मन और भावनाएँ बाह्य हैं, लेकिन आप उन्हें अंतरंग मान रहे हैं। आप संसार को वस्तुनिष्ठ मानते हैं, जबकि यह पूरी तरह से आपकी मनोदशा का प्रक्षेपण है। यही मूल भ्रम है और कोई नया विस्फोट इसे ठीक नहीं कर सकता। आपको स्वयं को इससे बाहर निकालना होगा। इसके अलावा कोई और रास्ता नहीं है।
प्रश्न: जब मेरे विचार अपनी मर्जी से आते-जाते रहते हैं, तो मैं खुद को कैसे शांत करूँ? उनकी अंतहीन बकबक मुझे विचलित और थका देती है।
एम: सड़क पर चलते लोगों को देखते हुए अपने विचारों पर ध्यान दें। लोग आते- जाते रहते हैं; आप उन्हें बिना प्रतिक्रिया दिए महसूस करते हैं। शुरुआत में यह आसान नहीं होगा, लेकिन अभ्यास से आप पाएंगे कि आपका मन एक ही समय में कई स्तरों पर काम कर सकता है और आप उन सभी के प्रति जागरूक हो सकते हैं। जब आप किसी विशेष स्तर में रुचि रखते हैं, तभी आपका ध्यान उसमें फंस जाता है और आप अन्य स्तरों से बेखबर हो जाते हैं। फिर भी, उन बेखबर स्तरों पर काम चेतना के दायरे से बाहर चलता रहता है। अपनी यादों और विचारों से संघर्ष न करें; केवल अपने ध्यान के दायरे में अन्य, अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों को शामिल करने का प्रयास करें, जैसे 'मैं कौन हूँ?', 'मेरा जन्म कैसे हुआ?', 'मेरे चारों ओर यह ब्रह्मांड कहाँ से आया?', 'वास्तविक क्या है और क्षणिक क्या है?' यदि आप किसी स्मृति में रुचि खो देते हैं, तो वह स्थायी नहीं रहती; यह भावनात्मक जुड़ाव ही है जो बंधन को बनाए रखता है। आप हमेशा सुख की तलाश में रहते हैं, दुख से बचते हैं, हमेशा सुख और शांति के पीछे भागते हैं। क्या आप नहीं देखते कि सुख की यही खोज आपको दुखी करती है? दूसरा तरीका आजमाएं: सुख-दुख से उदासीन होकर, न कुछ मांगकर, न ही मना करके, अपना सारा ध्यान उस स्तर पर लगाएं जहां 'मैं हूं' शाश्वत रूप से विद्यमान है। जल्द ही आप महसूस करेंगे कि शांति और सुख आपके स्वभाव में ही निहित हैं और इन्हें कुछ विशेष माध्यमों से खोजना ही आपको विचलित करता है। बस, इस विक्षिप्तता से बचें। खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है; जो आपके पास पहले से है, उसे आप क्यों खोजेंगे? आप स्वयं ईश्वर हैं, परम सत्य। शुरुआत में, मुझ पर विश्वास करें, गुरु पर विश्वास करें। यह आपको पहला कदम उठाने में सक्षम बनाता है - और फिर आपका विश्वास आपके अपने अनुभव से सिद्ध होता है। जीवन के हर क्षेत्र में प्रारंभिक विश्वास आवश्यक है; इसके बिना कुछ भी संभव नहीं है। हर कार्य विश्वास का कार्य है। यहां तक कि आप अपनी रोजी-रोटी भी विश्वास के सहारे ही खाते हैं! मैंने जो कहा है उसे याद रखकर आप सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। मैं आपसे फिर कह रहा हूं: आप सर्वव्यापी, सर्वव्यापी सत्य हैं। तदनुसार व्यवहार करें: संपूर्ण के साथ सामंजस्य में सोचें, महसूस करें और कार्य करें और जो मैंने कहा है उसका वास्तविक अनुभव आपको शीघ्र ही प्राप्त हो जाएगा। किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखें और उस पर अमल करें। कृपया समझें कि मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए। मैं

आपके हित में ही बोल रहा हूँ, क्योंकि सबसे बढ़कर आप स्वयं से प्रेम करते हैं, आप स्वयं को सुरक्षित और सुखी देखना चाहते हैं। इस बात से शर्मिंदा न हों, इसे नकारें नहीं। स्वयं से प्रेम करना स्वाभाविक और अच्छा है। केवल आपको ही यह जानना चाहिए कि आप वास्तव में किससे प्रेम करते हैं। आप शरीर से प्रेम नहीं करते, बल्कि जीवन से प्रेम करते हैं - अनुभव करना, महसूस करना, सोचना, करना, प्रेम करना, प्रयास करना, सृजन करना। आप उसी जीवन से प्रेम करते हैं, जो आप हैं, जो सब कुछ है। इसे इसकी संपूर्णता में, सभी विभाजनों और सीमाओं से परे, अनुभव करें, और आपकी सभी इच्छाएँ इसमें विलीन हो जाएँगी, क्योंकि जो बड़ा है उसमें छोटा समाहित है। इसलिए स्वयं को खोजें, क्योंकि स्वयं को खोजने में ही सब कुछ है।
सभी को अपने अस्तित्व पर प्रसन्नता होती है। परन्तु कुछ ही लोग इसके पूर्ण अर्थ को जान पाते हैं। आप 'मैं हूँ', 'मैं जानता हूँ', 'मैं प्रेम करता हूँ' जैसे शब्दों पर मनन करके, इन शब्दों के मर्मस्पर्शी अर्थ को समझने के प्रयास से ही इसे जान सकते हैं।
प्रश्न: क्या मैं यह सोच सकता हूँ कि 'मैं ईश्वर हूँ'?
एम: किसी विचार से स्वयं को मत जोड़ो। यदि ईश्वर से तुम्हारा तात्पर्य अज्ञात से है, तो बस इतना कहो: 'मैं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ'। यदि तुम ईश्वर को वैसे ही जानते हो जैसे स्वयं को जानते हो, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है। सर्वोत्तम है 'मैं हूँ' की सरल अनुभूति। इस पर धैर्यपूर्वक चिंतन करो। यहाँ धैर्य ही बुद्धिमत्ता है; असफलता के बारे में मत सोचो। इस कार्य में असफलता संभव नहीं है।
प्रश्न: मेरे विचार मुझे ऐसा करने नहीं दे रहे हैं।
एम: उन पर ध्यान मत दो। उनसे मत लड़ो। बस उनके बारे में कुछ मत करो, उन्हें वैसे ही रहने दो जैसे वे हैं। उनसे लड़ना ही उन्हें जीवन देता है। बस उन्हें अनदेखा करो। उनके आर-पार देखो। याद रखो: 'जो कुछ भी होता है - वह मेरे होने के कारण होता है'। सब कुछ तुम्हें याद दिलाता है कि तुम हो। इस तथ्य का पूरा लाभ उठाओ कि अनुभव करने के लिए तुम्हारा होना आवश्यक है। तुम्हें सोचना बंद करने की आवश्यकता नहीं है। बस रुचि लेना छोड़ दो। यही अनासक्ति मुक्ति दिलाती है। पकड़ मत रखो, बस इतना ही। दुनिया छल्लों से बनी है। सारे हुक तुम्हारे हैं। अपने हुक सीधे करो और कोई भी तुम्हें रोक नहीं सकता। अपनी लतों को छोड़ दो। छोड़ने के लिए और कुछ नहीं है। अपनी लालच की दिनचर्या, परिणामों की तलाश करने की आदत छोड़ दो और ब्रह्मांड की स्वतंत्रता तुम्हारी है। सहज रहो।
प्रश्न: जीवन एक प्रयास है। करने के लिए बहुत कुछ है।
एम: जो करना ज़रूरी है, उसे करो। विरोध मत करो। तुम्हारा संतुलन गतिशील होना चाहिए, पल-पल सही काम करने पर आधारित होना चाहिए। बड़े होने से कतराने वाले बच्चे की तरह मत बनो। रूढ़िवादी हाव-भाव और मुद्राएँ तुम्हारी मदद नहीं करेंगी। पूरी तरह से अपने विचारों की स्पष्टता, इरादों की पवित्रता और कार्यों की ईमानदारी पर भरोसा रखो। तुम कभी गलत नहीं हो सकते। आगे बढ़ो और सब कुछ पीछे छोड़ दो।
प्रश्न: लेकिन क्या कुछ भी हमेशा के लिए छोड़ा जा सकता है?
एम: आप चौबीसों घंटे चलने वाली परमानंद जैसी अनुभूति चाहते हैं। परमानंद आते-जाते रहते हैं, यह स्वाभाविक है, क्योंकि मानव मस्तिष्क लंबे समय तक तनाव सहन नहीं कर सकता। लंबे समय तक रहने वाला परमानंद आपके मस्तिष्क को थका देगा, जब तक कि वह अत्यंत शुद्ध और सूक्ष्म न हो। प्रकृति में कुछ भी

स्थिर नहीं है, सब कुछ स्पंदित होता है, प्रकट होता है और लुप्त हो जाता है। हृदय, श्वास, पाचन, नींद और जागना - जन्म और मृत्यु - सब कुछ लहरों की तरह आता-जाता है। लय, आवधिकता, चरम सीमाओं का सामंजस्यपूर्ण परिवर्तन ही नियम है। जीवन के मूल स्वरूप के विरुद्ध विद्रोह करने का कोई लाभ नहीं है। यदि आप अपरिवर्तनीय की खोज करना चाहते हैं, तो अनुभव से परे जाएं। जब मैं कहता हूं: 'मैं हूं' को हर समय याद रखें, तो मेरा अर्थ है: 'बार-बार इस पर लौटें'। कोई विशेष विचार मन की स्वाभाविक अवस्था नहीं हो सकता, केवल मौन ही है। मौन का विचार नहीं, बल्कि स्वयं मौन। जब मन अपनी स्वाभाविक अवस्था में होता है, तो वह प्रत्येक अनुभव के बाद स्वतः ही मौन में लौट आता है, या यों कहें कि प्रत्येक अनुभव मौन की पृष्ठभूमि में घटित होता है।
अब, आपने यहाँ जो सीखा है, वह बीज बन जाता है। आप इसे भूल सकते हैं - शायद। लेकिन यह जीवित रहेगा और उचित समय पर अंकुरित होकर बढ़ेगा और फूल और फल देगा। सब कुछ अपने आप होगा। आपको कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, बस इसे रोकें नहीं।

52. खुश रहना और दूसरों को खुश करना ही जीवन की लय है।

प्रश्नकर्ता: मैं कुछ महीने पहले यूरोप से कलकत्ता के पास स्थित अपने गुरु के दर्शन के लिए नियमित रूप से यूरोप आया था। अब मैं वापस घर जा रहा हूँ। मुझे एक मित्र ने आपसे मिलने का निमंत्रण दिया था और मुझे आकर खुशी हुई। महाराज: आपने अपने गुरु से क्या सीखा और आपने किस अभ्यास का पालन किया? प्रश्न: वे लगभग अस्सी वर्ष के एक आदरणीय बुजुर्ग हैं। दार्शनिक रूप से वे एक वेदांती हैं और उनके द्वारा सिखाई जाने वाली साधना का संबंध मन की अचेतन ऊर्जाओं को जागृत करने और छिपी हुई बाधाओं और अवरोधों को चेतन मन में लाने से है। मेरी व्यक्तिगत साधना मेरे बचपन की एक विशेष समस्या से संबंधित थी। मेरी माँ मुझे सुरक्षा और प्रेम का वह अहसास नहीं दे सकीं, जो एक बच्चे के सामान्य विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह माँ बनने के योग्य नहीं थीं; चिंताओं और मानसिक विकारों से ग्रस्त, स्वयं पर अनिश्चित, वे मुझे अपने ऊपर एक बोझ और ज़िम्मेदारी समझती थीं, जिसे वे सहन नहीं कर सकती थीं। वे कभी नहीं चाहती थीं कि मेरा जन्म हो। वे नहीं चाहती थीं कि मेरा विकास हो, वे मुझे अपनी कोख में ही रखना चाहती थीं, अजन्मा, अस्तित्वहीन। मुझमें जीवन की किसी भी हलचल का उन्होंने विरोध किया, उनके अभ्यस्त अस्तित्व के संकीर्ण दायरे से बाहर जाने के किसी भी प्रयास का उन्होंने पुरजोर विरोध किया। एक बच्चे के रूप में मैं संवेदनशील और स्नेही दोनों था। मैं हर चीज़ से बढ़कर प्रेम चाहता था और प्रेम, एक माँ का अपने बच्चे के लिए सरल, सहज प्रेम, मुझे नहीं मिला। बच्चे की अपनी माँ की खोज मेरे जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य बन गई और मैं इससे कभी बाहर नहीं निकल पाई। एक खुशहाल बच्चा, एक खुशहाल बचपन मेरे लिए एक जुनून बन गया था। गर्भावस्था, जन्म, शैशवावस्था में मेरी गहरी रुचि थी। मैं एक प्रसिद्ध प्रसूति विशेषज्ञ बनी और दर्द रहित प्रसव की विधि के विकास में योगदान दिया। एक खुशहाल माँ का खुशहाल बच्चा - यही मेरा जीवन भर का आदर्श था। लेकिन मेरी माँ हमेशा मेरे साथ थीं - स्वयं दुखी, मुझे खुश देखने के लिए अनिच्छुक और असमर्थ। यह अजीब तरीकों से प्रकट होता था। जब भी मैं बीमार होती, उन्हें बेहतर महसूस होता; जब मैं स्वस्थ होती, वह फिर से उदास हो जातीं, खुद को और मुझे भी कोसतीं। मानो उन्होंने मुझे जन्म लेने के अपराध

के लिए कभी माफ नहीं किया, उन्होंने मुझे जीवित रहने का दोषी महसूस कराया। 'तुम इसलिए जीते हो क्योंकि तुम मुझसे नफरत करते हो। अगर तुम मुझसे प्यार करते हो - तो मर जाओ', उनका निरंतर, हालांकि मौन संदेश था। और इस तरह मैंने अपना जीवन प्रेम के बजाय मृत्यु को स्वीकार करते हुए बिताया। अपनी माँ, जो हमेशा शिशु बनी रहती थीं, में कैद होने के कारण, मैं एक स्त्री के साथ सार्थक संबंध विकसित नहीं कर सकी; माँ की छवि बीच में खड़ी रहती, निर्दयी, क्षमा न पाने वाली। मैंने अपने काम में सुकून ढूंढा और बहुत कुछ पाया भी; लेकिन मैं बचपन के उस गड्ढे से बाहर नहीं निकल सका। अंततः, मैंने आध्यात्मिक खोज का रुख किया और कई वर्षों से इसी राह पर निरंतर चल रहा हूँ। लेकिन, एक तरह से यह माँ के प्रेम की वही पुरानी खोज है, चाहे इसे ईश्वर कहें, आत्मा कहें या परम सत्य। मूलतः मैं प्रेम करना और प्रेम पाना चाहता हूँ; दुर्भाग्य से तथाकथित धार्मिक लोग जीवन के विरोधी हैं और केवल मन के पक्ष में हैं। जीवन की आवश्यकताओं और इच्छाओं का सामना करते हुए, वे वर्गीकरण, अमूर्तीकरण और अवधारणा निर्माण से शुरुआत करते हैं और फिर वर्गीकरण को जीवन से अधिक महत्वपूर्ण बना देते हैं। वे एक अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करने और उसका अनुकरण करने के लिए कहते हैं। प्रेम के माध्यम से सहज एकीकरण के बजाय वे एक सूत्र पर जानबूझकर और श्रमसाध्य एकाग्रता की सलाह देते हैं। चाहे वह ईश्वर हो या आत्मा, मैं हो या कोई और, बात एक ही है! सोचने के लिए कुछ, प्रेम करने के लिए कोई नहीं। मुझे सिद्धांतों और प्रणालियों की आवश्यकता नहीं है; कई समान रूप से आकर्षक या तर्कसंगत विकल्प मौजूद हैं। मुझे हृदय में एक हलचल, जीवन का नवीनीकरण चाहिए, न कि सोचने का कोई नया तरीका। सोचने के कोई नए तरीके नहीं होते, लेकिन भावनाएँ हमेशा ताज़ा रह सकती हैं। जब मैं किसी से प्रेम करता हूँ, तो मैं सहजता से और प्रबलता से, उस स्नेह और जोश के साथ उसका ध्यान लगाता हूँ, जिस पर मेरा मन नियंत्रण नहीं कर सकता।
शब्द भावनाओं को आकार देने में अच्छे होते हैं; भावनाहीन शब्द ऐसे कपड़ों के समान हैं जिनमें शरीर न हो—ठंडे और बेजान। मेरी माँ ने तो मेरी सारी भावनाएँ निचोड़ लीं—मेरी सारी भावनाएँ सूख गईं। क्या मुझे यहाँ वो भरपूर और समृद्ध भावनाएँ मिल सकती हैं, जिनकी मुझे बचपन में बहुत ज़रूरत थी? एम: आपका बचपन अब कहाँ है? और आपका भविष्य क्या है?
प्रश्न: मेरा जन्म हुआ, मैं बड़ा हुआ, और मैं मर जाऊंगा।
एम: आपका मतलब आपके शरीर से है, ज़ाहिर है। और आपके मन से भी। मैं आपकी शारीरिक क्रियाओं और मनोविज्ञान की बात नहीं कर रहा हूँ। ये प्रकृति का हिस्सा हैं और प्रकृति के नियमों द्वारा संचालित होते हैं। मैं आपके प्रेम की खोज की बात कर रहा हूँ। क्या इसकी कोई शुरुआत थी? क्या इसका कोई अंत होगा?
प्रश्न: मैं सचमुच कुछ नहीं कह सकता। यह मेरे जीवन के पहले क्षण से लेकर अंतिम क्षण तक मौजूद रहा है। प्रेम की यह लालसा—कितनी निरंतर और कितनी निराशाजनक!
एम: प्यार की तलाश में आप वास्तव में क्या खोज रहे हैं?
प्रश्न: बस इतना ही: प्रेम करना और प्रेम पाना।
एम: आपका मतलब महिला से है?
प्रश्न: ज़रूरी नहीं। एक दोस्त, एक शिक्षक, एक मार्गदर्शक—जब तक भावना स्पष्ट और सच्ची हो। बेशक, आमतौर पर जवाब होता है एक महिला। लेकिन यह एकमात्र जवाब होना ज़रूरी नहीं है।

एम: इन दोनों में से आप क्या पसंद करेंगे, प्यार करना या प्यार पाना? प्रश्न: मुझे दोनों ही चाहिए! लेकिन मैं समझ सकती हूँ कि प्रेम करना कहीं अधिक महान, श्रेष्ठ और गहरा है। प्रेम पाना सुखद तो है, लेकिन इससे व्यक्ति का विकास नहीं होता।
एम: क्या आप स्वयं प्रेम कर सकते हैं, या आपको प्रेम करना सिखाया जाना चाहिए?
प्रश्न: किसी को तो प्यार करने लायक इंसान से मिलना ही चाहिए, बिल्कुल। मेरी माँ न केवल प्यार करने वाली नहीं थीं, बल्कि प्यार करने लायक भी नहीं थीं।
एम: किसी व्यक्ति को प्रेमयोग्य क्या बनाता है? क्या यह प्रेम पाना ही नहीं है? पहले आप प्रेम करते हैं और फिर उसके कारणों की तलाश करते हैं। प्रश्न: यह इसके विपरीत भी हो सकता है। आप उस चीज़ से प्यार करते हैं जो आपको खुशी देती है।
एम: लेकिन आपको किस बात से खुशी मिलती है?
प्रश्न: इस बारे में कोई नियम नहीं है। यह पूरा विषय अत्यंत व्यक्तिगत और अप्रत्याशित है।
एम: ठीक है। आप इसे चाहे जैसे भी कहें, प्रेम के बिना सुख नहीं है। लेकिन क्या प्रेम हमेशा सुख देता है? क्या प्रेम को सुख से जोड़ना एक प्रारंभिक, बचकाना अवस्था नहीं है? जब प्रियजन को दुख होता है, तो क्या आपको भी दुख नहीं होता? और क्या आप दुख के कारण प्रेम करना छोड़ देते हैं? क्या प्रेम और सुख का साथ-साथ आना-जाना ज़रूरी है? क्या प्रेम केवल सुख की अपेक्षा है? प्रश्न: बिलकुल नहीं। प्रेम में बहुत कष्ट हो सकते हैं।
एम: तो फिर प्रेम क्या है? क्या यह मन की अवस्था नहीं बल्कि अस्तित्व की अवस्था है? क्या प्रेम करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि आप प्रेम करते हैं? क्या आपने अनजाने में ही अपनी माँ से प्रेम नहीं किया? उनके प्रेम की आपकी लालसा, उन्हें प्रेम करने के अवसर की आपकी चाहत, क्या प्रेम की भावना नहीं है? क्या प्रेम उतना ही आपका हिस्सा नहीं है जितना कि चेतना? आपने अपनी माँ का प्रेम चाहा, क्योंकि आप उनसे प्रेम करते थे।
प्रश्न: लेकिन उसने मुझे ऐसा करने नहीं दिया!
एम: वह तुम्हें रोक नहीं सकी।
प्रश्न: तो फिर मैं जीवन भर दुखी क्यों रहा?
एम: क्योंकि आप अपने अस्तित्व की जड़ों तक नहीं पहुँचे। यह आपकी स्वयं की अज्ञानता ही थी जिसने आपके प्रेम और खुशी को ढक दिया और आपको उस चीज़ की तलाश में लगा दिया जिसे आपने कभी खोया ही नहीं था। प्रेम इच्छाशक्ति है, अपनी खुशी को सबके साथ बाँटने की इच्छाशक्ति। खुश रहना - खुशियाँ देना - यही प्रेम की लय है।
53. इच्छाओं की पूर्ति से और अधिक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं

प्रश्नकर्ता: मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं आज विद्रोही मनोदशा में आया था। एयरलाइंस कार्यालय में मेरे साथ बहुत बुरा बर्ताव हुआ। ऐसी परिस्थितियों में सब कुछ संदिग्ध और व्यर्थ लगता है।
महाराज: यह एक बहुत उपयोगी मनोवृत्ति है। सब पर संदेह करना, सब कुछ अस्वीकार करना, किसी दूसरे से सीखना न चाहना। यह आपकी लंबी साधना का फल है।
आख़िरकार, कोई भी व्यक्ति हमेशा के लिए अध्ययन तो नहीं कर सकता।
प्रश्न: बस बहुत हो गया। इससे मुझे कुछ हासिल नहीं हुआ।

एम: 'कहीं नहीं' मत कहो। इसी ने तुम्हें यहाँ तक पहुँचाया है जहाँ तुम अभी हो।
प्रश्न: ये फिर से बच्चे और उसके नखरों का मामला है। मैं जहां था वहां से एक इंच भी नहीं हिला।
एम: तुमने बचपन में ही शुरुआत की थी और बचपन में ही तुम्हारा अंत होगा। इस बीच तुमने जो कुछ भी हासिल किया है, उसे तुम्हें खोना होगा और शुरुआत से शुरू करना होगा।
प्रश्न: लेकिन बच्चा लात मारता है। जब वह नाखुश होता है या उसे किसी चीज से वंचित किया जाता है तो वह लात मारता है।
एम: इसे लात मारने दो। बस लात मारते हुए देखो। और अगर तुम समाज से इतना डरते हो कि खुलकर लात नहीं मार सकते, तो उसे भी देखो। मुझे पता है यह एक दर्दनाक प्रक्रिया है। लेकिन इसका कोई उपाय नहीं है - सिवाय एक के - उपायों की खोज बंद होनी चाहिए।
यदि आप क्रोधित या पीड़ा में हैं, तो अपने क्रोध और पीड़ा से खुद को अलग करें और उन्हें देखें। बहिर्विमीकरण मुक्ति का पहला कदम है। दूर हटें और देखें। भौतिक घटनाएँ घटित होती रहेंगी, लेकिन उनका अपने आप में कोई महत्व नहीं है। केवल मन ही मायने रखता है। चाहे कुछ भी हो जाए, आप एयरलाइन कार्यालय या बैंक में चिल्ला-चिल्ली नहीं कर सकते। समाज इसकी अनुमति नहीं देता। यदि आपको उनके तौर-तरीके पसंद नहीं हैं, या आप उन्हें सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो हवाई यात्रा न करें या पैसे न ले जाएं। पैदल चलें, और यदि आप पैदल नहीं चल सकते, तो यात्रा न करें। यदि आप समाज से व्यवहार करते हैं, तो आपको उसके तौर-तरीकों को स्वीकार करना होगा, क्योंकि उसके तौर-तरीके आपके ही तौर-तरीके हैं। आपकी ज़रूरतों और मांगों ने ही उन्हें जन्म दिया है। आपकी इच्छाएँ इतनी जटिल और विरोधाभासी हैं - इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आपके द्वारा निर्मित समाज भी जटिल और विरोधाभासी है। प्रश्न: मैं यह देखता और स्वीकार करता हूँ कि बाहरी अव्यवस्था मेरे आंतरिक असामंजस्य का मात्र प्रतिबिंब है। लेकिन इसका उपाय क्या है?
एम: उपचार मत खोजो।
प्रश्न: कभी-कभी व्यक्ति 'सद्गुणों की अवस्था' में होता है और जीवन सुखमय और सामंजस्यपूर्ण होता है। लेकिन ऐसी अवस्था स्थायी नहीं होती! मनोदशा बदलती है और सब कुछ गड़बड़ हो जाता है।
एम: अगर आप शांत रह सकें, यादों और अपेक्षाओं से मुक्त हो सकें, तो आप घटनाओं के सुंदर क्रम को समझ पाएंगे। आपकी बेचैनी ही अराजकता का कारण है। प्रश्न: एयरलाइन कार्यालय में बिताए पूरे तीन घंटों के दौरान मैंने धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास किया। इससे काम में कोई तेजी नहीं आई।
एम: कम से कम इससे उनकी रफ़्तार धीमी तो नहीं हुई, जबकि तुम्हारे लात मारने से ज़रूर हो जाती! तुम्हें तुरंत नतीजे चाहिए! हम यहाँ जादू नहीं करते। हर कोई यही गलती करता है: साधन को ठुकराकर, लक्ष्य की चाह रखता है। तुम दुनिया में शांति और सद्भाव चाहते हो, लेकिन खुद में उसे नहीं चाहते। मेरी सलाह को अक्षरशः मानो और निराश मत हो। मैं तुम्हारी समस्या को सिर्फ़ शब्दों से हल नहीं कर सकता। तुम्हें मेरी कही बातों पर अमल करना होगा और दृढ़ रहना होगा। मुक्ति सही सलाह से नहीं, बल्कि उस पर आधारित कर्म से मिलती है। जैसे एक डॉक्टर मरीज़ को इंजेक्शन देने के बाद कहता है: 'अब चुप रहो। कुछ मत करो, बस चुप रहो,' वैसे ही मैं तुमसे कह रहा हूँ: तुम्हें तुम्हारा 'इंजेक्शन' लग गया है, अब चुप रहो, बस चुप रहो। तुम्हें और कुछ नहीं करना है। मेरे गुरु भी

यही करते थे। वे मुझे कुछ कहते और फिर कहते: 'अब चुप रहो। हर समय सोचते मत रहो। रुक जाओ। शांत रहो।'
प्रश्न: मैं सुबह एक घंटे तक शांत रह सकता हूँ। लेकिन दिन लंबा होता है और कई ऐसी बातें होती हैं जो मुझे विचलित कर देती हैं। 'शांत रहो' कहना तो आसान है, लेकिन जब मेरे भीतर और मेरे चारों ओर शोर मच रहा हो, तब शांत रहना - कृपया मुझे बताएं कि यह कैसे संभव है।
एम: जो भी काम करना है, वह शांति और मौन में किया जा सकता है। परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है।
प्रश्न: यह सब सैद्धांतिक बातें हैं जो तथ्यों से मेल नहीं खातीं। मैं यूरोप लौट रहा हूँ, लेकिन वहाँ मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं है। मेरा जीवन पूरी तरह से खाली है।
एम: अगर तुम बस शांत रहने की कोशिश करो, तो सब कुछ अपने आप मिल जाएगा—काम, काम करने की शक्ति, सही प्रेरणा। क्या तुम्हें सब कुछ पहले से जानना ज़रूरी है? अपने भविष्य को लेकर चिंतित मत हो—अभी शांत रहो और सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा। अनपेक्षित घटित होना तय है, जबकि अपेक्षित शायद कभी न हो। मुझसे यह मत कहो कि तुम अपने स्वभाव को नियंत्रित नहीं कर सकते। तुम्हें इसे नियंत्रित करने की ज़रूरत नहीं है। इसे त्याग दो। न तो अपने स्वभाव से लड़ो, न ही उसके आगे झुको। कोई भी अनुभव तुम्हें दुख नहीं पहुँचाएगा, बशर्ते तुम उसे अपनी आदत न बना लो। तुम ही समस्त ब्रह्मांड के सूक्ष्म कारण हो। सब कुछ तुम्हारे कारण ही है। इस बात को दृढ़ता और गहराई से समझो और बार-बार इस पर मनन करो। इसे पूर्णतः सत्य समझना ही मुक्ति है।
प्रश्न: यदि मैं अपने ब्रह्मांड का बीज हूँ, तो मैं एक सड़ा हुआ बीज हूँ! फल से ही बीज की पहचान होती है।
एम: तुम्हारी दुनिया में ऐसा क्या गलत है कि तुम उसे गालियां देते हो? प्रश्न: यह दर्द से भरा हुआ है।
एम: प्रकृति न तो सुखदायी है और न ही दुखदायी। यह पूर्णतः बुद्धि और सौंदर्य है। सुख और सुख मन में निहित हैं। अपने मूल्यों का पैमाना बदलें, सब कुछ बदल जाएगा। सुख और दुख केवल इंद्रियों की गड़बड़ी हैं; उन्हें समान मानें, तो केवल आनंद ही प्राप्त होगा। और संसार वही है जो आप उसे बनाते हैं; इसे सुखी बनाने का हर संभव प्रयास करें। केवल संतोष ही आपको सुखी बना सकता है - इच्छाओं की पूर्ति से और इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। सभी इच्छाओं से दूर रहना और जो स्वतः प्राप्त होता है उसमें संतुष्ट रहना एक अत्यंत फलदायी अवस्था है - पूर्णता की अवस्था की पूर्व शर्त। इसकी स्पष्ट निरर्थकता और शून्यता पर अविश्वास न करें। मेरा विश्वास करें, इच्छाओं की पूर्ति ही दुख का कारण है। इच्छाओं से मुक्ति ही आनंद है।
प्रश्न: हमें कुछ चीजों की आवश्यकता है।
एम: आपको जो चाहिए वो आपको मिल जाएगा, बशर्ते आप उन चीजों की मांग न करें जिनकी आपको आवश्यकता नहीं है। फिर भी, पूर्ण वैराग्य और अनासक्ति की इस अवस्था तक बहुत कम लोग ही पहुँच पाते हैं। यह एक बहुत ही उच्च अवस्था है, मुक्ति की दहलीज।
प्रश्न: मैं पिछले दो वर्षों से बांझ, उदास और खाली महसूस कर रही हूँ और अक्सर मृत्यु के आने की प्रार्थना करती थी।
एम: खैर, आपके यहाँ आने से घटनाएँ घटने लगी हैं। जो होना है होने दीजिए— अंत में सब ठीक हो जाएगा। आपको भविष्य के लिए परेशान होने की ज़रूरत नहीं है—भविष्य अपने आप आपके पास आ जाएगा। कुछ समय तक आप इसी तरह नींद में चलते

रहेंगे, अर्थ और आश्वासन से रहित; लेकिन यह दौर भी समाप्त होगा और आपको अपना काम फलदायी और आसान लगेगा। ऐसे क्षण हमेशा आते हैं जब व्यक्ति खालीपन और अलगाव महसूस करता है। ऐसे क्षण सबसे वांछनीय होते हैं क्योंकि इसका अर्थ है कि आत्मा ने अपने बंधन तोड़ दिए हैं और दूर स्थानों की ओर प्रस्थान कर रही है। यही वैराग्य है—जब पुराना समाप्त हो चुका है और नया अभी आया नहीं है। यदि आप भयभीत हैं, तो यह स्थिति कष्टदायक हो सकती है; लेकिन वास्तव में डरने की कोई बात नहीं है। इस निर्देश को याद रखें: जो भी आपके सामने आए—उससे आगे बढ़ें।
प्रश्न: बुद्ध का नियम है: जो याद रखना आवश्यक है उसे याद रखो। लेकिन मुझे सही समय पर सही बात याद रखना बहुत मुश्किल लगता है। मेरे साथ तो भूल जाना ही नियम बन गया है!
एम: जब हर परिस्थिति इच्छाओं और भय का तूफान ला देती है, तो याद रखना आसान नहीं होता। स्मृति से उत्पन्न लालसा ही स्मृति का नाश करने वाली होती है। प्रश्न: मैं इच्छा से कैसे लड़ूँ? इससे अधिक शक्तिशाली कुछ भी नहीं है। एम: जीवन का जल वस्तुओं की चट्टानों पर गर्जना करते हुए बह रहा है—चाहे वे वांछनीय हों या घृणास्पद। अंतर्दृष्टि और वैराग्य से इन चट्टानों को हटा दें, तो वही जल गहराई में, शांत और तीव्र गति से, अधिक मात्रा में और अधिक शक्ति के साथ बहेगा। इस बारे में सैद्धांतिक मत बनो, चिंतन और मनन के लिए समय दो; यदि तुम स्वतंत्र होना चाहते हो, तो स्वतंत्रता के निकटतम कदम को भी न छोड़ो। यह पहाड़ चढ़ने के समान है: एक भी कदम नहीं छूटना चाहिए। एक कदम भी चूक गए तो शिखर तक नहीं पहुंचा जा सकता।

54. शरीर और मन अज्ञानता के लक्षण हैं

प्रश्नकर्ता: एक दिन हम व्यक्ति, साक्षी और परम सत्ता (व्यक्ति-व्यक्त-अव्यक्त) पर चर्चा कर रहे थे। जहाँ तक मुझे याद है, आपने कहा था कि केवल परम सत्ता ही वास्तविक है और साक्षी केवल किसी विशेष स्थान और समय पर ही परम सत्ता होता है। व्यक्ति वह जीव है, स्थूल और सूक्ष्म, जो साक्षी की उपस्थिति से प्रकाशित होता है। मुझे यह बात स्पष्ट रूप से समझ नहीं आई; क्या हम इस पर फिर से चर्चा कर सकते हैं? आपने महादकाश, चिदकाश और परमाकाश शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनका व्यक्ति, साक्षी और परम सत्ता से क्या संबंध है?
महाराज: महादकाश प्रकृति है, अस्तित्वों का सागर है, वह भौतिक स्थान है जिसमें इंद्रियों द्वारा अनुभव की जा सकने वाली हर चीज समाहित है। चिदकाश चेतना का विस्तार है, समय, बोध और अनुभूति का मानसिक स्थान है। परमाकाश कालातीत और स्थानहीन वास्तविकता है, मन रहित, अविभेदित, अनंत संभाव्यता, स्रोत और उत्पत्ति, पदार्थ और सार, पदार्थ और चेतना दोनों - फिर भी दोनों से परे। इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता, लेकिन इसका अनुभव किया जा सकता है, जैसे साक्षी को देखने वाला, देखने वाले को देखने वाला, समस्त अभिव्यक्ति का मूल और अंत, समय और स्थान का मूल, कारण-कार्य की प्रत्येक श्रृंखला में प्रमुख कारण।
प्रश्न: व्यक्त और अव्यक्त में क्या अंतर है?
एम: कोई अंतर नहीं है। यह प्रकाश और दिन के उजाले के समान है। ब्रह्मांड प्रकाश से भरा है जिसे आप देख नहीं सकते; लेकिन वही प्रकाश आप दिन के उजाले के रूप में देखते हैं। और दिन का उजाला जो प्रकट करता है वह व्यक्ति है।

मनुष्य हमेशा वस्तु होता है, साक्षी विषय होता है और उनका परस्पर निर्भरता का संबंध उनकी परम एकता का प्रतिबिंब है। आप कल्पना करते हैं कि वे अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। वे नहीं हैं। वे एक ही चेतना हैं जो स्थिर और गतिशील अवस्था में हैं, प्रत्येक अवस्था दूसरी अवस्था के प्रति सचेत है। चित्त में मनुष्य ईश्वर को जानता है और ईश्वर मनुष्य को जानता है। चित्त में मनुष्य संसार को आकार देता है और संसार मनुष्य को आकार देता है। चित्त चरम सीमाओं के बीच की कड़ी है, सेतु है, प्रत्येक अनुभव में संतुलन और एकता का कारक है। अनुभव की गई समग्रता को आप पदार्थ कहते हैं। सभी अनुभवकर्ताओं की समग्रता को आप सार्वभौमिक मन कहते हैं। इन दोनों की एकता, जो स्वयं को बोधगम्यता और बोध, सामंजस्य और बुद्धि, सुंदरता और प्रेम के रूप में प्रकट करती है, शाश्वत रूप से स्वयं को पुन: स्थापित करती है।
प्रश्न: क्या सत्व, रजस और तमस, ये तीनों गुण केवल पदार्थ में ही पाए जाते हैं, या मन में भी होते हैं?
एम: दोनों में, बेशक, क्योंकि दोनों अलग नहीं हैं। केवल परम तत्व ही गुणों से परे है। वास्तव में, ये तो केवल दृष्टिकोण हैं, देखने के तरीके हैं। ये केवल मन में ही विद्यमान हैं। मन से परे सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। प्रश्न: क्या ब्रह्मांड इंद्रियों का परिणाम है?
एम: जैसे आप जागने पर अपनी दुनिया को फिर से बनाते हैं, वैसे ही ब्रह्मांड खुलता है। मन अपनी पांच इंद्रियों, पांच वाणी और पांच चेतना-वाहनों के साथ स्मृति, विचार, तर्क और आत्म-बोध के रूप में प्रकट होता है।
प्रश्न: विज्ञान ने बहुत प्रगति की है। हम अपने पूर्वजों की तुलना में शरीर और मन को कहीं बेहतर जानते हैं। मन और पदार्थ का वर्णन और विश्लेषण करने का आपका पारंपरिक तरीका अब मान्य नहीं है।
एम: लेकिन आपके वैज्ञानिक अपने विज्ञान के साथ कहाँ हैं? क्या वे फिर से आपके अपने दिमाग में बनी छवियां नहीं हैं?
प्रश्न: यहीं तो मूल अंतर है! मेरे लिए ये मेरी अपनी कल्पनाएँ नहीं हैं। ये मेरे जन्म से पहले की हैं और मेरे मरने के बाद भी रहेंगी।
एम: बिल्कुल। एक बार जब आप समय और स्थान को वास्तविक मान लेते हैं, तो आप स्वयं को निष्कलंक और अल्पकालिक समझेंगे। लेकिन क्या वे वास्तव में वास्तविक हैं? क्या वे आप पर निर्भर हैं, या आप उन पर? शरीर के रूप में आप स्थान में हैं। मन के रूप में आप समय में हैं। लेकिन क्या आप केवल एक शरीर हैं जिसमें मन समाहित है? क्या आपने कभी इस पर विचार किया है?
प्रश्न: मेरे पास न तो मकसद था और न ही तरीका।
एम: मैं दोनों सुझाव दे रहा हूँ। लेकिन अंतर्दृष्टि और वैराग्य (विवेक-वैराग्य) का वास्तविक कार्य आपका है।
प्रश्न: मुझे जो एकमात्र प्रेरणा दिखाई देती है, वह मेरी स्वयं की निरर्थक और शाश्वत खुशी है। और वह विधि क्या है?
एम: खुशी तो संयोगवश मिलती है। सच्चा और प्रभावी मकसद प्रेम है। आप लोगों को दुख में देखते हैं और उनकी मदद करने का सबसे अच्छा तरीका ढूंढते हैं। जवाब स्पष्ट है - पहले खुद को मदद की ज़रूरत से परे रखें। सुनिश्चित करें कि आपका रवैया पूरी तरह से सद्भावनापूर्ण हो, किसी भी प्रकार की अपेक्षा से मुक्त हो।
जो लोग मात्र सुख की तलाश करते हैं, वे अंततः परम उदासीनता में लीन हो सकते हैं, जबकि प्रेम कभी शांत नहीं होता।

विधि की बात करें तो, केवल एक ही विधि है - आपको स्वयं को जानना होगा - आप जैसे दिखते हैं और जैसे वास्तव में हैं, दोनों को। स्पष्टता और परोपकार साथ-साथ चलते हैं - दोनों एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं और एक दूसरे को मजबूत करते हैं।

प्रश्न: करुणा का तात्पर्य एक वस्तुनिष्ठ दुनिया के अस्तित्व से है, जो टाले जा सकने वाले दुखों से भरी हुई है।
एम: दुनिया वस्तुनिष्ठ नहीं है और इसके दुख से बचा नहीं जा सकता। करुणा काल्पनिक कारणों से कष्ट सहने से इनकार करने का ही दूसरा नाम है।
प्रश्न: यदि कारण काल्पनिक हैं, तो पीड़ा अपरिहार्य क्यों होनी चाहिए? एम: दुख का कारण हमेशा झूठ ही होता है, झूठी इच्छाएँ और भय, झूठे मूल्य और विचार, लोगों के बीच झूठे रिश्ते। झूठ को त्याग दो और तुम दर्द से मुक्त हो जाओगे; सत्य सुख देता है - सत्य मुक्ति देता है।
प्रश्न: सच्चाई यह है कि मैं एक शरीर में कैद एक दिमाग हूं और यह एक बहुत ही दुखद सच्चाई है।
एम: तुम न तो शरीर हो और न ही शरीर में हो - शरीर जैसी कोई चीज नहीं होती।
तुमने खुद को बुरी तरह गलत समझा है; सही से समझने के लिए - जांच-पड़ताल करो।
प्रश्न: लेकिन मैं एक शरीर के रूप में, एक शरीर में पैदा हुआ था और उसी शरीर के साथ, एक शरीर के रूप में मरूंगा।
एम: यह आपकी गलतफहमी है। पूछताछ करें, छानबीन करें, खुद पर और दूसरों पर संदेह करें। सत्य को पाने के लिए आपको अपनी मान्यताओं से चिपके नहीं रहना चाहिए; यदि आप तात्कालिक सत्य के प्रति आश्वस्त हैं, तो आप कभी भी अंतिम सत्य तक नहीं पहुंच पाएंगे। आपका यह विचार कि आपका जन्म हुआ है और आपकी मृत्यु होगी, बेतुका है: तर्क और अनुभव दोनों इसका खंडन करते हैं। प्रश्न: ठीक है, मैं यह दावा नहीं करूँगा कि मैं ही शरीर हूँ। आपकी बात सही है। लेकिन अभी और यहीं, जब मैं आपसे बात कर रहा हूँ, मैं अपने शरीर में हूँ - ज़ाहिर है। शरीर भले ही मैं न होऊँ, लेकिन यह मेरा ही है।
एम: संपूर्ण ब्रह्मांड आपके अस्तित्व में निरंतर योगदान देता है। इसलिए संपूर्ण ब्रह्मांड ही आपका शरीर है। इस अर्थ में - मैं सहमत हूँ।
प्रश्न: मेरा शरीर मुझ पर गहरा प्रभाव डालता है। कई मायनों में मेरा शरीर ही मेरा भाग्य है। मेरा चरित्र, मेरी मनोदशा, मेरी प्रतिक्रियाओं का स्वरूप, मेरी इच्छाएँ और भय - चाहे जन्मजात हों या अर्जित - सब कुछ मेरे शरीर पर आधारित है। थोड़ी सी शराब या कोई नशा लेने से सब कुछ बदल जाता है। जब तक नशे का असर खत्म नहीं होता, मैं एक अलग ही इंसान बन जाता हूँ।
एम: यह सब इसलिए होता है क्योंकि तुम खुद को शरीर समझते हो। अपने असली स्वरूप को पहचानो, तब तो ड्रग्स का भी तुम पर कोई असर नहीं रहेगा। प्रश्न: क्या आप धूम्रपान करते हैं?
एम: मेरे शरीर में कुछ आदतें रह गई हैं जो शायद मरने तक बनी रहेंगी। इनमें कोई बुराई नहीं है।
प्रश्न: क्या आप मांस खाते हैं?
एम: मेरा जन्म मांसाहारी लोगों के बीच हुआ था और मेरे बच्चे भी मांसाहारी हैं। मैं बहुत कम खाती हूँ और इस बारे में कोई हंगामा नहीं करती।
प्रश्न: मांस खाना हत्या करने का संकेत है।

एम: ज़ाहिर सी बात है। मैं निरंतरता का कोई दावा नहीं करता। अगर आपको लगता है कि पूर्ण निरंतरता संभव है, तो उदाहरण देकर साबित कीजिए। जो आप स्वयं नहीं करते, उसका उपदेश मत दीजिए।
जन्म की अवधारणा पर वापस आते हैं। आप अपने माता-पिता द्वारा बताई गई बातों से बंधे हुए हैं: गर्भाधान, गर्भावस्था और जन्म, शिशु, बच्चा, युवा, किशोर आदि। अब, इस विचार को त्याग दें कि आप शरीर हैं, और इसके विपरीत इस विचार को अपनाएँ कि आप शरीर नहीं हैं। यह भी एक विचार ही है, इसमें कोई संदेह नहीं; इसे तब त्याग दें जब इसका काम पूरा हो जाए। 'मैं शरीर नहीं हूँ' का विचार शरीर को वास्तविकता प्रदान करता है, जबकि वास्तव में शरीर जैसी कोई चीज नहीं है, यह केवल मन की एक अवस्था है। आप जितने चाहें उतने और विविध शरीर धारण कर सकते हैं; बस दृढ़ता से याद रखें कि आप क्या चाहते हैं और असंगत चीजों को त्याग दें।
प्रश्न: मैं एक डिब्बे के अंदर डिब्बे, फिर उसके अंदर डिब्बे की तरह हूँ, बाहरी डिब्बा शरीर का काम करता है और उसके बगल वाला डिब्बा उसमें निवास करने वाली आत्मा का। बाहरी डिब्बे को हटा दें तो अगला डिब्बा शरीर बन जाता है और उसके बगल वाला डिब्बा आत्मा। यह एक अनंत श्रृंखला है, डिब्बों का अंतहीन खुलना है, क्या आखिरी डिब्बा ही परम आत्मा है?
एम: यदि शरीर है, तो आत्मा भी होनी चाहिए; यहाँ बक्सों के घोंसले वाली आपकी उपमा बिल्कुल सटीक बैठती है। लेकिन अभी इसी क्षण, आपके सभी शरीरों और आत्माओं में चेतना, चित्त का शुद्ध प्रकाश, चमक रहा है। इसे दृढ़ता से थामे रहो। चेतना के बिना शरीर एक पल भी नहीं टिक सकता। शरीर में ऊर्जा, स्नेह और बुद्धि की एक धारा बहती है, जो शरीर का मार्गदर्शन करती है, उसे बनाए रखती है और उसे ऊर्जा प्रदान करती है। उस धारा को खोजो और उसके साथ बने रहो। बेशक, ये सब कहने के तौर-तरीके हैं। शब्द जितने अवरोध पैदा करते हैं, उतने ही पुल का काम भी करते हैं। अपने शरीर के ऊतकों को जोड़ने वाली जीवन की चिंगारी को खोजें और उसके साथ लीन हो जाएं। यही शरीर की एकमात्र वास्तविकता है।
प्रश्न: मृत्यु के बाद जीवन की वह चिंगारी कहाँ चली जाती है?
एम: यह समय से परे है। जन्म और मृत्यु तो बस समय के कुछ बिंदु हैं। जीवन अनंत काल तक अपने अनेक जाल बुनता रहता है। यह बुनना समय के साथ चलता है, लेकिन जीवन स्वयं कालातीत है। आप इसके भावों को चाहे जो भी नाम और रूप दें, यह सागर के समान है - कभी न बदलने वाला, फिर भी सदा बदलता हुआ।
प्रश्न: आपकी कही हर बात बेहद प्रभावशाली लगती है। फिर भी, इस अजीब और पराई दुनिया में, जो अक्सर शत्रुतापूर्ण और खतरनाक होती है, एक आम इंसान होने का मेरा एहसास कभी खत्म नहीं होता। एक इंसान होने के नाते, जो स्थान और समय में सीमित है, मैं खुद को इसके विपरीत कैसे महसूस कर सकता हूँ; एक ऐसी अवैयक्तिक, सार्वभौमिक चेतना जिसमें किसी विशिष्ट चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है?
एम: आप स्वयं को वह साबित करने का प्रयास करते हैं जो आप नहीं हैं और स्वयं को वह मानने से इनकार करते हैं जो आप हैं। आप शुद्ध ज्ञान, सभी व्यक्तिगत विकृतियों से मुक्त जागरूकता के तत्व को नकार देते हैं। जब तक आप चित की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक आप स्वयं को कभी नहीं जान पाएंगे।

प्रश्न: मैं क्या करूँ? मैं खुद को वैसे नहीं देखता जैसे आप मुझे देखते हैं। हो सकता है आप सही हों और मैं गलत, लेकिन मैं खुद को जैसा महसूस करता हूँ, वैसा होना कैसे बंद करूँ?
एम: जो राजकुमार खुद को भिखारी समझता है, उसे पूरी तरह से समझाने का केवल एक ही तरीका है: उसे राजकुमार की तरह व्यवहार करना होगा और देखना होगा कि क्या होता है। मान लो कि मेरी बातें सच हैं और जो होता है, उसी के आधार पर फैसला करो। मैं बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम पहला कदम उठाने के लिए ज़रूरी थोड़ा सा विश्वास रखो। अनुभव से आत्मविश्वास आएगा और तुम्हें मेरी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं जानता हूँ कि तुम क्या हो और मैं तुम्हें बता रहा हूँ। कुछ समय के लिए मुझ पर भरोसा रखो।
प्रश्न: वर्तमान क्षण में रहने के लिए मुझे अपने शरीर और उसकी इंद्रियों की आवश्यकता है। समझने के लिए मुझे एक मस्तिष्क की आवश्यकता है।
एम: शरीर और मन केवल अज्ञान और गलतफहमी के लक्षण हैं। ऐसा व्यवहार करो मानो तुम शुद्ध चेतना हो, शरीरहीन और मनहीन, स्थानहीन और समयहीन, 'कहाँ', 'कब' और 'कैसे' से परे। उस पर ध्यान केंद्रित करो, उसके बारे में सोचो, उसकी वास्तविकता को स्वीकार करना सीखो। हर समय उसका विरोध और खंडन मत करो। कम से कम खुला मन रखो। योग बाह्य को आंतरिक की ओर मोड़ना है। अपने मन और शरीर को उस वास्तविकता को व्यक्त करने दो जो सर्वव्यापी और सर्वव्यापी है। सफलता कर्मों से मिलती है, तर्क-वितर्क से नहीं।
प्रश्न: कृपया मुझे अपने पहले प्रश्न पर वापस आने की अनुमति दें। व्यक्ति होने की त्रुटि की उत्पत्ति कैसे होती है?
एम: परम सत्ता समय से पहले आती है। जागरूकता सर्वप्रथम आती है। स्मृतियों और मानसिक आदतों का समूह ध्यान आकर्षित करता है, जागरूकता केंद्रित हो जाती है और अचानक एक व्यक्ति प्रकट होता है। जागरूकता का प्रकाश हटा दें, सो जाएं या बेहोश हो जाएं - और वह व्यक्ति गायब हो जाता है। व्यक्ति (व्यक्ति) क्षणभंगुर होता है, जागरूकता (व्यक्त) में समस्त स्थान और समय समाहित होता है, परम सत्ता (अव्यक्त) विद्यमान होती है।

55. सब कुछ त्याग दो, सब कुछ पा लो

प्रश्नकर्ता: इस समय आपकी क्या स्थिति है?
महाराज: एक ऐसी अवस्था जिसमें कोई अनुभूति नहीं होती। इसमें सभी अनुभूतियाँ समाहित होती हैं।
प्रश्न: क्या आप किसी दूसरे व्यक्ति के मन और हृदय में प्रवेश कर सकते हैं और उसके अनुभव को साझा कर सकते हैं?
एम: नहीं। ऐसी चीजों के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। मैं गेहूँ के व्यापारी की तरह हूँ। मुझे ब्रेड और केक के बारे में बहुत कम जानकारी है। यहाँ तक कि गेहूँ के दलिया का स्वाद भी शायद मुझे न पता हो। लेकिन गेहूँ के दाने के बारे में मैं सब कुछ जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ। मैं सभी अनुभवों के स्रोत को जानता हूँ। लेकिन अनुभव के अनगिनत विशिष्ट रूप मुझे नहीं पता। और न ही मुझे जानने की आवश्यकता है। पल-पल, जीवन जीने के लिए मुझे जो थोड़ा-बहुत जानना आवश्यक होता है, वह मैं किसी न किसी तरह जान लेता हूँ।
प्रश्न: क्या आपका और मेरा विशिष्ट अस्तित्व, दोनों ही ब्रह्मा के मन में विद्यमान हैं?

एम: सार्वभौमिक, विशेष से अनभिज्ञ है। व्यक्ति का अस्तित्व एक व्यक्तिगत मामला है। व्यक्ति समय और स्थान में विद्यमान होता है, उसका नाम और आकार होता है, उसका आरंभ और अंत होता है; सार्वभौमिक में सभी व्यक्ति समाहित हैं और परम सत्ता सभी की जड़ में और सभी से परे है।
प्रश्न: मुझे समग्रता से कोई सरोकार नहीं है। मेरी व्यक्तिगत चेतना और आपकी व्यक्तिगत चेतना—इन दोनों के बीच क्या संबंध है?
एम: दो स्वप्नद्रष्टाओं के बीच क्या संबंध हो सकता है?
प्रश्न: वे एक-दूसरे के सपने देख सकते हैं।

एम: लोग यही कर रहे हैं। हर कोई 'दूसरों' की कल्पना करता है और उनसे संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है। संबंध स्थापित करने वाला ही वह व्यक्ति है, दूसरा कोई नहीं।
प्रश्न: हम जिन अनेक चेतनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनमें निश्चित रूप से कुछ न कुछ समानता अवश्य होगी।
एम: अनेक बिंदु कहाँ हैं? आपके मन में। आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आपकी दुनिया आपके मन से स्वतंत्र है। यह कैसे संभव है? दूसरों के मन को जानने की आपकी इच्छा इसलिए है क्योंकि आप स्वयं अपने मन को नहीं जानते। पहले अपने मन को जानो, और तुम पाओगे कि अन्य मनों का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि कोई अन्य व्यक्ति है ही नहीं। तुम ही वह साझा तत्व हो, मनों के बीच एकमात्र कड़ी। अस्तित्व ही चेतना है; 'मैं हूँ' सब पर लागू होता है।
प्रश्न: परम सत्य (परब्रह्म) हम सभी में विद्यमान हो सकता है। लेकिन इससे हमें क्या लाभ है?
एम: आप उस व्यक्ति के समान हैं जो कहता है: 'मुझे अपनी चीजें रखने के लिए जगह चाहिए, लेकिन मेरे लिए जगह का क्या उपयोग?' या 'मुझे दूध, चाय, कॉफी या सोडा चाहिए, लेकिन पानी का कोई उपयोग नहीं।' क्या आप नहीं देखते कि परम सत्य ही वह है जो सब कुछ संभव बनाता है? लेकिन यदि आप पूछें कि इसका आपके लिए क्या उपयोग है, तो मुझे उत्तर देना होगा: 'कोई नहीं।' दैनिक जीवन के मामलों में सत्य के ज्ञाता को कोई लाभ नहीं होता; बल्कि वह हानि में ही रह सकता है: लोभ और भय से मुक्त होने के कारण वह स्वयं को सुरक्षित नहीं रखता। लाभ का विचार ही उसके लिए पराया है; वह संचय से घृणा करता है; उसका जीवन निरंतर त्याग, साझा करने और देने में व्यतीत होता है।
प्रश्न: यदि सर्वोच्च सत्ता को प्राप्त करने में कोई लाभ नहीं है, तो फिर प्रयास क्यों करें?
एम: मुसीबत तभी आती है जब आप किसी चीज से चिपके रहते हैं। जब आप किसी चीज से चिपके नहीं रहते, तो कोई मुसीबत नहीं आती। छोटी चीजों का त्याग करना बड़ी चीजों को पाना है। सब कुछ त्याग दो, सब कुछ पा लो। तब जीवन वैसा हो जाता है जैसा उसे होना चाहिए: एक अक्षय स्रोत से निकलने वाला शुद्ध प्रकाश। उस प्रकाश में दुनिया धुंधली सी सपने जैसी लगती है।
प्रश्न: यदि मेरी दुनिया महज एक सपना है और आप उसका एक हिस्सा हैं, तो आप मेरे लिए क्या कर सकते हैं? यदि सपना वास्तविक नहीं है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तो वास्तविकता उसे कैसे प्रभावित कर सकती है?
एम: जब तक सपना रहता है, तब तक वह क्षणिक होता है। समस्या तो उसे थामे रखने की आपकी इच्छा में ही है। उसे छोड़ दें। यह सोचना बंद करें कि सपना आपका है।

प्रश्न: आप शायद यह मानकर चलते हैं कि सपने देखने वाले के बिना भी सपना हो सकता है और मैं खुद को अपनी इच्छा के सपने से जोड़ता हूँ। लेकिन मैं ही सपने देखने वाला हूँ और सपना भी। भला सपने देखने से कौन रोक सकता है?
एम: सपने को अपने अंत तक खुद ही खुलने दो। तुम इसे रोक नहीं सकते। लेकिन तुम सपने को सपने के रूप में देख सकते हो, उसे वास्तविकता का ठप्पा देने से इनकार कर सकते हो।
प्रश्न: मैं यहाँ आपके सामने बैठा हूँ। मैं सपना देख रहा हूँ और आप मुझे सपने में बात करते हुए देख रहे हैं। हमारे बीच क्या संबंध है?
एम: तुम्हें जगाने का मेरा इरादा ही वह कड़ी है। मेरा दिल चाहता है कि तुम जाग जाओ। मैं तुम्हें तुम्हारे सपने में दुख झेलते हुए देखता हूँ और जानता हूँ कि तुम्हें अपने दुखों को खत्म करने के लिए जागना होगा। जब तुम अपने सपने को सपना समझोगे, तब तुम जागोगे। लेकिन तुम्हारे सपने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। मेरे लिए इतना जानना ही काफी है कि तुम्हें जागना होगा। तुम्हें अपने सपने को किसी निश्चित अंजाम तक पहुँचाने की ज़रूरत नहीं है, न ही उसे महान, खुशहाल या सुंदर बनाने की; तुम्हें बस इतना समझना है कि तुम सपना देख रहे हो। कल्पना करना छोड़ो, विश्वास करना छोड़ो। मानव अवस्था के विरोधाभासों, विसंगतियों, झूठ और दुख को देखो, उससे आगे बढ़ने की ज़रूरत को समझो। अंतरिक्ष की विशालता में चेतना का एक छोटा सा कण तैर रहा है और उसमें पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है।
प्रश्न: सपने में कुछ ऐसी भावनाएँ प्रकट होती हैं जो वास्तविक और शाश्वत प्रतीत होती हैं। क्या जागने पर वे लुप्त हो जाती हैं?
एम: सपने में आप कुछ लोगों से प्रेम करते हैं और कुछ से नहीं। जागने पर आप पाते हैं कि आप स्वयं प्रेम हैं, जो सभी को समाहित करता है। व्यक्तिगत प्रेम, चाहे कितना भी तीव्र और सच्चा क्यों न हो, हमेशा बंधनकारी होता है; स्वतंत्रता में प्रेम ही सर्वव्यापी प्रेम है।
प्रश्न: लोग आते-जाते रहते हैं। इंसान जिससे मिलता है, उससे प्यार करता है, सबको प्यार नहीं कर सकता।
एम: जब आप स्वयं प्रेम होते हैं, तो आप समय और संख्याओं से परे होते हैं। एक से प्रेम करने में आप सभी से प्रेम करते हैं, सभी से प्रेम करने में आप प्रत्येक से प्रेम करते हैं। एक और सभी एक दूसरे के अनन्य नहीं हैं। प्रश्न: आप कहते हैं कि आप कालहीन अवस्था में हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि आपके लिए अतीत और भविष्य दोनों खुले हैं? क्या आप राम के गुरु वशिष्ठ मुनि से मिले थे?
एम: सवाल समय से जुड़ा है और समय के बारे में है। आप मुझसे फिर से सपने की विषयवस्तु के बारे में पूछ रहे हैं। कालातीतता समय के भ्रम से परे है, यह समय का विस्तार नहीं है। जिसने स्वयं को वशिष्ठ कहा, वह वशिष्ठ को जानता था। मैं सभी नामों और रूपों से परे हूँ। वशिष्ठ आपके सपने में एक सपना है। मैं उसे कैसे जान सकता हूँ? आप अतीत और भविष्य को लेकर बहुत चिंतित हैं। यह सब आपकी निरंतर बने रहने की लालसा, खुद को विलुप्त होने से बचाने की चाहत के कारण है। और क्योंकि आप बने रहना चाहते हैं, आप चाहते हैं कि दूसरे आपका साथ दें, इसीलिए आप उनके अस्तित्व को लेकर चिंतित हैं। लेकिन जिसे आप अस्तित्व कहते हैं, वह तो बस एक सपने का अस्तित्व है। इससे बेहतर तो मृत्यु है। जागने की संभावना है।
प्रश्न: आप शाश्वतता से अवगत हैं, इसलिए आपको अस्तित्व की चिंता नहीं है।

एम: बात इसके उलट है। सभी इच्छाओं से मुक्ति ही शाश्वतता है। सभी आसक्ति भय का प्रतीक है, क्योंकि सब कुछ क्षणभंगुर है। और भय मनुष्य को गुलाम बना देता है। आसक्ति से मुक्ति अभ्यास से नहीं मिलती; यह स्वाभाविक है, जब व्यक्ति अपने सच्चे स्वरूप को जान लेता है। प्रेम आसक्ति नहीं रखता; आसक्ति प्रेम नहीं है।
प्रश्न: तो क्या वैराग्य प्राप्त करने का कोई तरीका नहीं है?
एम: इससे कुछ भी हासिल नहीं होगा। सभी कल्पनाओं को त्याग दो और स्वयं को वैसे ही जानो जैसे तुम हो। आत्मज्ञान ही वैराग्य है। सभी लालसाएँ अपर्याप्तता की भावना के कारण होती हैं। जब तुम जान लेते हो कि तुम्हें किसी चीज की कमी नहीं है, कि जो कुछ भी है, वह तुम और तुम्हारा ही है, तो इच्छा समाप्त हो जाती है।
प्रश्न: क्या स्वयं को जानने के लिए मुझे जागरूकता का अभ्यास करना आवश्यक है?
एम: अभ्यास करने जैसा कुछ नहीं है। खुद को जानने के लिए, खुद को वैसे ही जियो जैसे तुम हो। खुद को वैसे ही जीने के लिए, खुद को कुछ और या कुछ और समझने की कल्पना करना छोड़ दो। बस जियो। अपने सच्चे स्वरूप को प्रकट होने दो। खोजबीन में अपना मन मत उलझाओ।
प्रश्न: यदि मैं केवल आत्म-साक्षात्कार की प्रतीक्षा करता रहूँ तो इसमें बहुत समय लगेगा।
एम: जब यह पहले से ही यहाँ और अभी मौजूद है, तो किस बात का इंतज़ार? बस देखो और समझो। खुद को देखो, अपने अस्तित्व को देखो। तुम जानते हो कि तुम हो और तुम्हें यह अच्छा लगता है। सारी कल्पनाओं को त्याग दो, बस इतना ही। समय पर निर्भर मत रहो। समय मृत्यु है। जो इंतज़ार करता है, वह मर जाता है। जीवन बस अभी है। मुझसे अतीत और भविष्य की बातें मत करो - वे केवल तुम्हारे मन में मौजूद हैं।
प्रश्न: तुम भी मरोगे।
एम: मैं तो पहले से ही मृत हूँ। शारीरिक मृत्यु से मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मैं कालजयी सत्ता हूँ। मैं इच्छा और भय से मुक्त हूँ, क्योंकि मुझे अतीत याद नहीं है और न ही मैं भविष्य की कल्पना करता हूँ। जहाँ नाम और आकार नहीं हैं, वहाँ इच्छा और भय कैसे हो सकते हैं? इच्छाहीनता से ही कालजयी सत्ता आती है। मैं सुरक्षित हूँ, क्योंकि जो नहीं है, वह जो है, उसे छू नहीं सकता। आप असुरक्षित महसूस करते हैं, क्योंकि आप खतरे की कल्पना करते हैं। बेशक, आपका शरीर जटिल और नाजुक है और उसे सुरक्षा की आवश्यकता है। लेकिन आपको नहीं। एक बार जब आप अपने अजेय अस्तित्व को जान लेंगे, तो आपको शांति प्राप्त होगी।
प्रश्न: जब दुनिया दुख झेल रही हो तो मैं शांति कैसे पा सकता हूँ?
एम: दुनिया के दुख भोगने के पीछे बहुत ही जायज़ कारण हैं। अगर आप दुनिया की मदद करना चाहते हैं, तो आपको पहले खुद मदद की ज़रूरत से ऊपर उठना होगा। तभी आपके हर काम, चाहे वो हो या न हो, से दुनिया को सबसे प्रभावी ढंग से मदद मिलेगी।
प्रश्न: जहां कार्रवाई की आवश्यकता हो, वहां निष्क्रियता कैसे उपयोगी हो सकती है?
एम: जहाँ कार्रवाई की आवश्यकता होती है, वहाँ कार्रवाई होती है। मनुष्य कर्ता नहीं है। उसका काम है जो कुछ घटित हो रहा है, उसके प्रति सजग रहना। उसकी उपस्थिति ही क्रिया है। खिड़की दीवार की अनुपस्थिति है और यह हवा और

प्रकाश प्रदान करती है क्योंकि यह खाली है। सभी मानसिक विचारों, सभी कल्पनाओं और प्रयासों से मुक्त हो जाओ, और बाधाओं की अनुपस्थिति ही वास्तविकता को प्रकट कर देगी। यदि आप वास्तव में किसी व्यक्ति की मदद करना चाहते हैं, तो उससे दूर रहें। यदि आप भावनात्मक रूप से मदद करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, तो आप मदद करने में असफल रहेंगे। आप बहुत व्यस्त हो सकते हैं और अपने परोपकारी स्वभाव से बहुत प्रसन्न हो सकते हैं, लेकिन इससे कुछ खास नहीं होगा। किसी व्यक्ति की वास्तविक सहायता तब होती है जब उसे अब सहायता की आवश्यकता नहीं होती। बाकी सब व्यर्थ है।
प्रश्न: मदद आने का इंतज़ार करने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय नहीं है। कुछ न कुछ करना ही होगा।
एम: बिलकुल करो। लेकिन जो तुम कर सकते हो, वह सीमित है; केवल आत्मा ही असीमित है। असीम रूप से स्वयं को दो। बाकी सब कुछ तुम केवल थोड़ी मात्रा में ही दे सकते हो। केवल तुम ही अतुलनीय हो। मदद करना तुम्हारा मूल स्वभाव है। यहाँ तक कि जब तुम खाते-पीते हो, तब भी तुम अपने शरीर की मदद करते हो। तुम्हें अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए। तुम शुद्ध दान हो, आदिहीन, अनंत, अक्षय। जब तुम दुख और पीड़ा देखो, तो उसके साथ रहो। तुरंत किसी काम में मत लगो। न तो ज्ञान और न ही कर्म वास्तव में मदद कर सकते हैं। दुख के साथ रहो और उसकी जड़ों को उजागर करो - उसे समझने में मदद करना ही सच्ची मदद है। प्रश्न: मेरी मृत्यु निकट आ रही है।
एम: आपके शरीर में समय की कमी है, आपमें नहीं। समय और स्थान केवल मन में ही निहित हैं। आप बंधे हुए नहीं हैं। बस स्वयं को समझिए - वही शाश्वतता है।

56. चेतना का उदय हुआ, संसार का उदय हुआ
प्रश्नकर्ता: जब एक साधारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसके साथ क्या होता है?

महाराज: उनके विश्वास के अनुसार ऐसा होता है, जैसे मृत्यु से पहले का जीवन मात्र कल्पना है, वैसे ही मृत्यु के बाद का जीवन भी। सपना जारी रहता है। प्रश्न: और ज्ञानी के बारे में क्या?
एम: ज्ञानी की मृत्यु नहीं होती क्योंकि उसका जन्म ही नहीं हुआ था। प्रश्न: वह दूसरों को ऐसा ही प्रतीत होता है।
एम: लेकिन स्वयं के लिए नहीं। वह अपने आप में भौतिक और मानसिक दोनों ही चीजों से मुक्त है।
प्रश्न: फिर भी आपको मरने वाले व्यक्ति की स्थिति का पता होना चाहिए। कम से कम अपने पिछले जन्मों से तो पता होना ही चाहिए।
एम: अपने गुरु से मिलने से पहले मैं बहुत कुछ जानता था। अब मैं कुछ नहीं जानता, क्योंकि सारा ज्ञान केवल स्वप्न में है और मान्य नहीं है। मैं स्वयं को जानता हूँ और अपने भीतर न जीवन पाता हूँ, न मृत्यु, केवल शुद्ध अस्तित्व—यह या वह नहीं, बस अस्तित्व। लेकिन जिस क्षण मन, अपनी स्मृतियों के भंडार से, कल्पना करने लगता है, वह अंतरिक्ष को वस्तुओं से और समय को घटनाओं से भर देता है। जब मैं इस जन्म को भी नहीं जानता, तो मैं बीते जन्मों को कैसे जान सकता हूँ? यह मन ही है जो स्वयं गतिमान होकर सब कुछ गतिमान देखता है, और समय का सृजन करके अतीत और भविष्य की चिंता करता है। सारा ब्रह्मांड चेतना (महा तत्व) में समाया हुआ है, जो वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ पूर्ण व्यवस्था और सामंजस्य (महा सत्व) होता है। जैसे सागर में

सभी लहरें होती हैं, वैसे ही सभी भौतिक और मानसिक वस्तुएँ जागरूकता में विद्यमान होती हैं। इसलिए जागरूकता ही सर्वोपरि है, उसकी विषयवस्तु नहीं। अपनी स्वयं की जागरूकता को गहरा और विस्तृत करें और सभी आशीर्वाद आप पर बरसेंगे। आपको कुछ भी खोजने की आवश्यकता नहीं है, सब कुछ आपको सहजता और बिना किसी प्रयास के प्राप्त होगा। पांचों इंद्रियां और मन के चार कार्य - स्मृति, विचार, समझ और आत्मबोध; पांच तत्व - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; सृष्टि के दो पहलू - पदार्थ और आत्मा, ये सभी जागरूकता में समाहित हैं।
प्रश्न: फिर भी, आपको पहले भी जी चुके होने में विश्वास रखना होगा।
एम: शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है, पर मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता। मैं स्वयं को जैसा हूँ वैसा ही जानता हूँ; जैसा मैं प्रकट हुआ हूँ या जैसा प्रकट होऊँगा, वह मेरे अनुभव में नहीं है। ऐसा नहीं है कि मुझे कुछ याद नहीं है। वास्तव में, याद करने जैसा कुछ है ही नहीं। पुनर्जन्म का अर्थ है बार-बार जन्म लेने वाला स्व। ऐसी कोई बात नहीं है। स्मृतियों और आशाओं का वह समूह, जिसे 'मैं' कहते हैं, स्वयं को शाश्वत मानता है और अपनी इस झूठी शाश्वतता के लिए समय का सृजन करता है: अस्तित्व के लिए मुझे अतीत या भविष्य की आवश्यकता नहीं है। सभी अनुभव कल्पना से उत्पन्न होते हैं; मैं कल्पना नहीं करता, इसलिए मेरा कोई जन्म या मृत्यु नहीं होती। केवल वही लोग जो स्वयं को जन्मा हुआ मानते हैं, स्वयं को पुनर्जन्मा हुआ मान सकते हैं। आप मुझ पर जन्म लेने का आरोप लगा रहे हैं - मैं निर्दोष हूँ!
सब कुछ चेतना में विद्यमान है और चेतना न तो मरती है और न ही पुनर्जन्म लेती है। यह स्वयं अपरिवर्तनीय वास्तविकता है।
अनुभव का समस्त ब्रह्मांड शरीर के साथ जन्म लेता है और शरीर के साथ ही समाप्त हो जाता है; इसका आरंभ और अंत चेतना में ही है, परन्तु चेतना का न कोई आरंभ है, न कोई अंत। यदि आप इस पर ध्यानपूर्वक विचार करें और लंबे समय तक मनन करें, तो आप चेतना के प्रकाश को उसकी संपूर्ण स्पष्टता में देख पाएंगे और संसार आपके दृष्टि से ओझल हो जाएगा। यह जलती हुई अगरबत्ती को देखने के समान है; आप पहले अगरबत्ती और धुआं देखते हैं; जब आप जलते हुए बिंदु को देखते हैं, तो आपको अहसास होता है कि इसमें अगरबत्तियों के पहाड़ों को भस्म करने और ब्रह्मांड को धुएं से भरने की शक्ति है। अनंत काल तक आत्मा स्वयं को साकार करती रहती है, अपनी अनंत संभावनाओं को समाप्त किए बिना। अगरबत्ती के उपमा में अगरबत्ती शरीर है और धुआं मन है। जब तक मन अपनी उलझनों में उलझा रहता है, तब तक वह अपने स्रोत को नहीं देख पाता। गुरु आते हैं और आपका ध्यान भीतर की चिंगारी की ओर मोड़ते हैं। अपने स्वभाव से ही मन बाह्य की ओर उन्मुख होता है; यह हमेशा चीजों के स्रोत को उन्हीं चीजों में खोजने की प्रवृत्ति रखता है; स्रोत को भीतर खोजने के लिए कहा जाना, एक प्रकार से, एक नए जीवन की शुरुआत है। चेतना की जगह जागरूकता ले लेती है; चेतना में 'मैं' होता है, जो सचेत होता है, जबकि जागरूकता अविभाजित होती है; जागरूकता स्वयं से अवगत होती है। 'मैं हूँ' एक विचार है, जबकि जागरूकता एक विचार नहीं है, जागरूकता में 'मैं सचेत हूँ' जैसी कोई बात नहीं होती। चेतना एक गुण है, जबकि जागरूकता नहीं; व्यक्ति सचेत होने के प्रति सचेत हो सकता है, लेकिन जागरूकता के प्रति सचेत नहीं हो सकता। ईश्वर चेतना की समग्रता है, लेकिन जागरूकता इन सबसे परे है - अस्तित्व और गैर-अस्तित्व दोनों से परे।

प्रश्न: मैंने मृत्यु के बाद मनुष्य की स्थिति के बारे में प्रश्न से शुरुआत की थी। जब उसका शरीर नष्ट हो जाता है, तो उसकी चेतना का क्या होता है? क्या वह अपनी देखने, सुनने आदि इंद्रियों को अपने साथ ले जाता है या उन्हें पीछे छोड़ देता है? और, यदि वह अपनी इंद्रियों को खो देता है, तो उसकी चेतना का क्या होता है?
एम: इंद्रियां मात्र अनुभूति के साधन हैं। जैसे-जैसे स्थूल साधन लुप्त होते जाते हैं, चेतना की सूक्ष्म अवस्थाएं उभरती जाती हैं।
प्रश्न: क्या मृत्यु के बाद चेतना की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता? एम: चेतना से जागरूकता में कोई संक्रमण नहीं हो सकता, क्योंकि जागरूकता चेतना का एक रूप नहीं है। चेतना केवल अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत हो सकती है, और यही मृत्यु के बाद होता है। जैसे-जैसे मनुष्य के विभिन्न शरीर नष्ट होते जाते हैं, उनसे उत्पन्न चेतना के प्रकार भी लुप्त होते जाते हैं। प्रश्न: जब तक केवल अचेतन अवस्था शेष न रह जाए?
एम: खुद को देखो, तुम अचेतन को आने-जाने वाली चीज़ बता रहे हो! अचेतन को भला कौन जान सकता है? जब तक खिड़की खुली है, कमरे में धूप आती रहेगी। खिड़कियाँ बंद होने पर भी सूरज तो रहेगा, लेकिन क्या उसे कमरे का अँधेरा दिखाई देता है? क्या सूरज को अँधेरा दिखाई देता है? अचेतन जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं, क्योंकि अचेतन का अनुभव नहीं किया जा सकता। हम अचेतन का अनुमान तब लगाते हैं जब स्मृति या संवाद में कोई कमी आ जाती है। अगर मैं प्रतिक्रिया देना बंद कर दूं, तो तुम कहोगे कि मैं अचेतन हूँ। असल में, मैं पूरी तरह से सचेत हो सकता हूँ, बस संवाद करने या याद रखने में असमर्थ।
प्रश्न: मैं एक सीधा-सा सवाल पूछ रहा हूँ: दुनिया में लगभग चार अरब लोग हैं और उन सभी को मरना ही है। मृत्यु के बाद उनकी क्या स्थिति होगी—शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक? क्या उनकी चेतना बनी रहेगी? और अगर रहेगी, तो किस रूप में? मुझे यह मत कहिए कि मैं गलत सवाल पूछ रहा हूँ, या आपको जवाब नहीं पता, या आपकी दुनिया में मेरा सवाल अर्थहीन है; जिस क्षण आप अपनी दुनिया और मेरी दुनिया को अलग और असंगत बताने लगते हैं, आप हमारे बीच एक दीवार खड़ी कर देते हैं। या तो हम एक ही दुनिया में रहें, या आपका अनुभव हमारे लिए किसी काम का नहीं।
एम: बेशक हम एक ही दुनिया में रहते हैं। बस मैं इसे वैसे ही देखता हूँ जैसी यह है, जबकि तुम नहीं। तुम खुद को दुनिया में देखते हो, जबकि मैं दुनिया को खुद में देखता हूँ। तुम्हारे लिए, जन्म लेना और मरना स्वाभाविक है, जबकि मेरे लिए, दुनिया प्रकट होती है और लुप्त हो जाती है। हमारी दुनिया वास्तविक है, लेकिन तुम्हारा नज़रिया नहीं। हमारे बीच कोई दीवार नहीं है, सिवाय उस दीवार के जो तुमने बनाई है। इंद्रियों में कोई खराबी नहीं है, यह तुम्हारी कल्पना है जो तुम्हें गुमराह करती है। यह दुनिया को उसकी असलियत से ढक देती है, उस रूप में जो तुम कल्पना करते हो - कुछ ऐसा जो तुमसे स्वतंत्र रूप से विद्यमान है, फिर भी तुम्हारे वंशानुगत या अर्जित तौर-तरीकों का बारीकी से अनुसरण करता है। तुम्हारे रवैये में एक गहरा विरोधाभास है, जिसे तुम देख नहीं पाते और जो दुख का कारण है। तुम इस विचार से चिपके रहते हो कि तुम्हारा जन्म दुख और पीड़ा की दुनिया में हुआ है; मैं जानता हूँ कि दुनिया प्रेम की संतान है, जिसका आरंभ, विकास और पूर्णता प्रेम में ही है। लेकिन मैं तो प्रेम से भी परे हूँ।
प्रश्न: यदि आपने प्रेम से संसार की रचना की है, तो यह इतना दुखमय क्यों है?

एम: आप सही हैं - शरीर के दृष्टिकोण से। लेकिन आप शरीर नहीं हैं। आप चेतना की विशालता और अनंतता हैं। जो सच नहीं है, उसे मानकर न चलें, और आप चीजों को वैसे ही देखेंगे जैसे मैं देखता हूँ। दर्द और सुख, अच्छा और बुरा, सही और गलत: ये सापेक्ष शब्द हैं और इन्हें पूर्णतः सत्य नहीं मानना चाहिए। ये सीमित और क्षणिक हैं।
प्रश्न: बौद्ध परंपरा में कहा गया है कि निर्वाण, यानी प्रबुद्ध बुद्ध, को ब्रह्मांड की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। वे स्वयं अस्तित्व में मौजूद हर चीज को जान और अनुभव कर सकते हैं। वे आदेश दे सकते हैं, प्रकृति में हस्तक्षेप कर सकते हैं, कारण-कार्य के क्रम को बदल सकते हैं, घटनाओं के क्रम को बदल सकते हैं, यहाँ तक कि अतीत को भी बदल सकते हैं! संसार उनके साथ रहता है, लेकिन वे उसमें स्वतंत्र होते हैं।
एम: आप जिसका वर्णन कर रहे हैं, वह ईश्वर है। बेशक, जहाँ ब्रह्मांड है, वहाँ उसका प्रतिरूप, यानी ईश्वर भी होगा। लेकिन मैं इन दोनों से परे हूँ। एक राज्य राजा की तलाश में था। उन्हें सही व्यक्ति मिल गया और उन्होंने उसे राजा बना दिया। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। उसे केवल राजा की उपाधि, अधिकार और कर्तव्य सौंपे गए। उसके स्वभाव में कोई बदलाव नहीं आया, केवल उसके कर्मों में परिवर्तन आया। इसी प्रकार, प्रबुद्ध व्यक्ति के साथ भी होता है; उसकी चेतना की विषयवस्तु में आमूल परिवर्तन होता है। लेकिन वह भ्रमित नहीं होता। वह अपरिवर्तनीय को जानता है।
प्रश्न: जो अपरिवर्तनीय है वह चेतन नहीं हो सकता। चेतना तो हमेशा परिवर्तनशील होती है। अपरिवर्तनीय चेतना में कोई निशान नहीं छोड़ता। एम: हां और ना। कागज स्वयं लेखन नहीं है, फिर भी वह लेखन को धारण करता है। स्याही संदेश नहीं है, न ही पाठक का मन संदेश है - लेकिन ये सभी मिलकर संदेश को संभव बनाते हैं।
प्रश्न: क्या चेतना वास्तविकता से उत्पन्न होती है या यह पदार्थ का एक गुण है?
एम: चेतना स्वयं पदार्थ का सूक्ष्म प्रतिरूप है। जिस प्रकार जड़त्व (तमस) और ऊर्जा (राजस) पदार्थ के गुण हैं, उसी प्रकार सामंजस्य (सत्त्व) चेतना के रूप में प्रकट होता है। आप इसे एक प्रकार की अत्यंत सूक्ष्म ऊर्जा मान सकते हैं। जहाँ भी पदार्थ एक स्थिर जीव के रूप में संगठित होता है, चेतना स्वतः प्रकट हो जाती है। जीव के नष्ट होने पर चेतना लुप्त हो जाती है। प्रश्न: तो फिर क्या बचता है?
एम: वह, जिसके पदार्थ और चेतना मात्र पहलू हैं, जो न तो जन्म लेता है और न ही मरता है।
प्रश्न: यदि यह पदार्थ और चेतना से परे है, तो इसका अनुभव कैसे किया जा सकता है?
एम: इसे दोनों पर इसके प्रभावों से जाना जा सकता है; इसे सौंदर्य और परमानंद में खोजो। लेकिन जब तक तुम शरीर और चेतना दोनों से परे नहीं जाओगे, तब तक तुम न तो शरीर को समझ पाओगे और न ही चेतना को।
प्रश्न: कृपया स्पष्ट रूप से बताएं: आप सचेत हैं या अचेत?
एम: ज्ञानी व्यक्ति न तो ज्ञानी है और न ही ज्ञानी। परन्तु उसके ज्ञान में सब कुछ समाहित है। चेतना में हर अनुभव समाहित है। परन्तु जो सचेत है, वह हर अनुभव से परे है। वह स्वयं चेतना से भी परे है।
प्रश्न: अनुभव की पृष्ठभूमि है, जिसे हम पदार्थ कह सकते हैं। अनुभवकर्ता है, जिसे हम मन कह सकते हैं। इन दोनों के बीच सेतु का काम कौन करता है?

एम: इनके बीच का अंतर ही पुल है। जो एक छोर पर पदार्थ और दूसरे छोर पर मन जैसा दिखता है, वही अपने आप में पुल है। वास्तविकता को मन और शरीर में विभाजित न करें, तो पुलों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।
चेतना जागृत होती है, संसार का जन्म होता है। जब आप संसार की बुद्धिमत्ता और सुंदरता पर विचार करते हैं, तो आप उसे ईश्वर कहते हैं। अपने भीतर निहित स्रोत को जानो, और तुम्हें अपने सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। प्रश्न: देखने वाला और देखा जाने वाला: क्या वे एक हैं या दो?
एम: केवल देखना ही है; देखने वाला और देखा जाने वाला दोनों उसी में समाहित हैं। जहाँ कोई भेद नहीं है, वहाँ भेद पैदा मत करो।
प्रश्न: मैंने मृत व्यक्ति के बारे में प्रश्न से शुरुआत की थी। आपने कहा कि उनके अनुभव उनकी अपेक्षाओं और मान्यताओं के अनुसार आकार लेंगे।
एम: तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम एक योजना के अनुसार जीवन जीने की उम्मीद रखते थे, जिसे तुमने स्वयं निर्धारित किया था। तुम्हारी अपनी इच्छाशक्ति ही तुम्हारे भाग्य की आधारशिला थी।
प्रश्न: निश्चित रूप से, कर्म का हस्तक्षेप हुआ होगा।
एम: कर्म ही परिस्थितियों को निर्धारित करता है: दृष्टिकोण आपके अपने होते हैं। अंततः आपका चरित्र ही आपके जीवन को आकार देता है और केवल आप ही अपने चरित्र को आकार दे सकते हैं।
प्रश्न: कोई व्यक्ति अपने चरित्र का निर्माण कैसे करता है?
एम: इसे जैसा है वैसा देखकर और सच्चे दिल से खेद व्यक्त करके। यह समग्र दृष्टि-अनुभूति चमत्कार कर सकती है। यह कांस्य प्रतिमा बनाने जैसा है; केवल धातु या केवल आग से काम नहीं चलेगा; न ही सांचा किसी काम का होगा; आपको धातु को आग की गर्मी में पिघलाना होगा और फिर उसे सांचे में ढालना होगा।

57. मन से परे कोई दुख नहीं है

प्रश्नकर्ता: मैं आपको अपने बेटे के घर में दोपहर के भोजन का इंतज़ार करते हुए देख रहा हूँ। और मैं सोच रहा हूँ कि क्या आपकी चेतना की स्थिति मेरी जैसी ही है, या कुछ भिन्न है, या पूरी तरह भिन्न है। क्या आप भी मेरी तरह भूखी-प्यासी हैं, और भोजन परोसे जाने का बेसब्री से इंतज़ार कर रही हैं, या आपकी मनःस्थिति बिल्कुल अलग है?
महाराज: ऊपरी तौर पर तो ज़्यादा फ़र्क़ नज़र नहीं आता, पर गहराई में बहुत फ़र्क़ है। तुम खुद को सिर्फ़ इंद्रियों और मन के ज़रिए जानते हो। तुम खुद को वही समझते हो जो ये तुम्हें बताते हैं; खुद का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने के कारण तुम्हारे पास महज़ विचार हैं; सब मामूली, सुनी-सुनाई बातों पर आधारित। तुम खुद को जो भी समझते हो, उसे सच मान लेते हो; खुद को प्रत्यक्ष और वर्णनीय समझने की आदत तुममें बहुत प्रबल है।
मैं वैसे ही देखता हूँ जैसे आप देखते हैं, वैसे ही सुनता हूँ जैसे आप सुनते हैं, वैसे ही स्वाद लेता हूँ जैसे आप लेते हैं, वैसे ही खाता हूँ जैसे आप खाते हैं। मुझे भी प्यास और भूख लगती है और मैं समय पर भोजन मिलने की उम्मीद करता हूँ। जब मैं भूखा या बीमार होता हूँ, तो मेरा शरीर और मन कमजोर हो जाते हैं। यह सब मैं स्पष्ट रूप से अनुभव करता हूँ, लेकिन किसी तरह मैं इसमें शामिल नहीं होता, मैं खुद को इसके ऊपर तैरता हुआ महसूस करता हूँ, अलग-थलग और उदासीन। यहाँ तक कि अलग-थलग और उदासीन भी नहीं। जैसे प्यास और भूख होती है, वैसे ही अलगाव और उदासीनता भी होती है; साथ ही इन सब की

जागरूकता और एक असीम दूरी का एहसास भी होता है, मानो शरीर, मन और उन पर घटित होने वाली हर चीज क्षितिज पर कहीं दूर हो। मैं एक सिनेमा स्क्रीन की तरह हूँ - साफ और खाली - चित्र उस पर से गुजरते हैं और गायब हो जाते हैं, उसे पहले की तरह साफ और खाली छोड़ देते हैं। स्क्रीन पर चित्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, न ही चित्रों पर स्क्रीन का। स्क्रीन चित्रों को रोकती और प्रतिबिंबित करती है, उन्हें आकार नहीं देती। इसका फिल्म के रोल से कोई लेना-देना नहीं है। ये जैसे हैं वैसे ही हैं, भाग्य के टुकड़े (प्रारब्ध), लेकिन मेरा भाग्य नहीं; स्क्रीन पर दिखने वाले लोगों का भाग्य।
प्रश्न: आपका मतलब यह नहीं है कि तस्वीर में मौजूद लोगों का कोई भाग्य होता है! वे कहानी का हिस्सा हैं, कहानी उनकी नहीं है।
एम: और आपके बारे में क्या? क्या आप अपने जीवन को आकार देते हैं या आपका जीवन आपको आकार देता है?
प्रश्न: जी हाँ, आप सही कह रहे हैं। एक जीवन कथा खुलती है जिसमें मैं एक पात्र हूँ। मेरा उससे अलग कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मेरे बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। मैं महज़ एक पात्र हूँ, कोई व्यक्ति नहीं।
एम: चरित्र एक व्यक्ति तब बनेगा, जब वह अपने जीवन को जैसा है वैसा स्वीकार करने और उससे खुद को जोड़ने के बजाय उसे आकार देना शुरू कर देगा।
प्रश्न: जब मैं कोई प्रश्न पूछता हूँ और आप उसका उत्तर देते हैं, तो वास्तव में क्या होता है?
एम: प्रश्न और उत्तर—दोनों स्क्रीन पर दिखाई देते हैं। होंठ हिलते हैं, शरीर बोलता है—और फिर से स्क्रीन साफ़ और खाली हो जाती है।
प्रश्न: जब आप कहते हैं: स्पष्ट और खाली, तो आपका क्या मतलब है?
एम: मेरा मतलब है, सभी तत्वों से मुक्त। मैं स्वयं को न तो देख सकता हूँ और न ही कल्पना कर सकता हूँ; ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं इंगित करके कह सकूँ: 'मैं यह हूँ'। आप स्वयं को हर चीज़ से इतनी आसानी से जोड़ लेते हैं, मेरे लिए यह असंभव है। 'मैं यह या वह नहीं हूँ, और न ही कुछ मेरा है' की भावना मुझमें इतनी प्रबल है कि जैसे ही कोई वस्तु या विचार प्रकट होता है, तुरंत 'मैं यह नहीं हूँ' का बोध होता है।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि आप अपना समय 'मैं यह नहीं हूँ, मैं वह नहीं हूँ' दोहराते हुए बिताते हैं?
एम: बिलकुल नहीं। मैं तो बस आपकी खातिर ये बात कह रहा हूँ। अपने गुरु की कृपा से मुझे ये बात हमेशा के लिए समझ आ गई है कि मैं न तो वस्तु हूँ और न ही विषय, और मुझे खुद को बार-बार याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है।
प्रश्न: मुझे यह समझना मुश्किल लग रहा है कि आप "आप न तो वस्तु हैं और न ही विषय" कहकर वास्तव में क्या कहना चाहते हैं। इस समय, जब हम बात कर रहे हैं, क्या मैं आपके अनुभव की वस्तु नहीं हूँ और आप विषय नहीं हैं?
एम: देखो, मेरा अंगूठा मेरी तर्जनी को छूता है। दोनों एक-दूसरे को छूते हैं और स्पर्श किए जाते हैं। जब मेरा ध्यान अंगूठे पर होता है, तो अंगूठा स्पर्श करने वाला अंग होता है और तर्जनी स्वयं। ध्यान का केंद्र बदलते ही यह संबंध उलट जाता है। मुझे लगता है कि ध्यान का केंद्र बदलने से मैं स्वयं वही बन जाता हूँ जिसे मैं देखता हूँ और उसकी चेतना का अनुभव करता हूँ; मैं उस वस्तु का आंतरिक साक्षी बन जाता हूँ। चेतना के अन्य केंद्रों में प्रवेश करने की इस क्षमता को मैं प्रेम कहता हूँ; आप इसे कोई भी नाम दे सकते हैं। प्रेम कहता है: 'मैं सब कुछ हूँ'। ज्ञान कहता है: 'मैं कुछ भी नहीं हूँ'। इन दोनों के बीच मेरा जीवन प्रवाहित होता है। क्योंकि किसी भी समय और

स्थान पर मैं अनुभव का विषय और वस्तु दोनों हो सकता हूँ, इसलिए मैं इसे इस प्रकार व्यक्त करता हूँ कि मैं दोनों हूँ, और न ही दोनों, और दोनों से परे हूँ।
प्रश्न: आप अपने बारे में ये सभी असाधारण बातें कहते हैं। आप ऐसा क्यों कहते हैं? अंतरिक्ष और समय से परे होने का आपका क्या मतलब है?
एम: आप पूछते हैं और उत्तर मिल जाता है। मैं स्वयं को देखता हूँ—मैं उत्तर को देखता हूँ और मुझे कोई विरोधाभास नहीं दिखता। मुझे स्पष्ट है कि मैं आपको सत्य बता रहा हूँ। यह सब बहुत सरल है। बस आपको मुझ पर विश्वास करना होगा कि मैं जो कह रहा हूँ, वही कह रहा हूँ, मैं पूरी तरह गंभीर हूँ। जैसा कि मैंने आपको पहले ही बताया है, मेरे गुरु ने मुझे मेरा वास्तविक स्वरूप — और संसार का वास्तविक स्वरूप—दिखाया। यह जानकर कि मैं संसार के साथ एक हूँ, और फिर भी उससे परे हूँ, मैं सभी इच्छाओं और भय से मुक्त हो गया। मैंने यह तर्क नहीं किया कि मुझे मुक्त होना चाहिए—मैंने स्वयं को मुक्त पाया— अचानक, बिना किसी प्रयास के। इच्छाओं और भय से यह मुक्ति तब से मेरे साथ बनी हुई है। एक और बात जो मैंने देखी वह यह थी कि मुझे प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है; कर्म विचार के बाद बिना किसी विलंब या बाधा के होता है। मैंने यह भी पाया है कि विचार स्वतः ही पूर्ण हो जाते हैं; चीजें सहजता से और सही ढंग से अपनी जगह पर आ जाती हैं। मुख्य परिवर्तन मन में हुआ; यह गतिहीन और शांत हो गया, शीघ्रता से प्रतिक्रिया करता था, लेकिन प्रतिक्रिया को निरंतर नहीं रखता था। सहजता जीवन का एक तरीका बन गई, वास्तविकता स्वाभाविक हो गई और स्वाभाविक वास्तविकता बन गया। और सबसे बढ़कर, असीम स्नेह, प्रेम, अंधकारमय और शांत, जो सभी दिशाओं में फैलता है, सबको आलिंगन देता है, सबको रोचक और सुंदर, महत्वपूर्ण और शुभ बनाता है। प्रश्न: हमें बताया जाता है कि जो व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है, उसमें विभिन्न योगिक शक्तियां स्वतः ही उत्पन्न हो जाती हैं। इस संबंध में आपका क्या अनुभव है?
मनुष्य का पंचांग (शारीरिक आदि) ऐसी शक्तियों से परिपूर्ण है जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। न केवल संपूर्ण ब्रह्मांड मनुष्य में प्रतिबिंबित होता है, बल्कि ब्रह्मांड को नियंत्रित करने की शक्ति भी उसके द्वारा प्रयोग किए जाने की प्रतीक्षा कर रही है। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी शक्तियों का उपयोग करने के लिए उत्सुक नहीं होता, सिवाय तब जब परिस्थिति इसकी मांग करती है। वह दैनिक जीवन के कार्यों के लिए मानव व्यक्तित्व की क्षमताओं और कौशलों को पर्याप्त पाता है। कुछ शक्तियों को विशेष प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जा सकता है, लेकिन जो व्यक्ति ऐसी शक्तियों का प्रदर्शन करता है वह अभी भी बंधन में है। बुद्धिमान व्यक्ति किसी भी चीज को अपना नहीं मानता। जब किसी समय और स्थान पर किसी चमत्कार का श्रेय किसी व्यक्ति को दिया जाता है, तो वह घटनाओं और व्यक्तियों के बीच कोई कारण-कार्य संबंध स्थापित नहीं करता, न ही वह कोई निष्कर्ष निकालने देता है। सब कुछ वैसा ही हुआ जैसा होना था, क्योंकि ब्रह्मांड जैसा है वैसा ही है।
प्रश्न: यह ब्रह्मांड रहने के लिए सुखद स्थान प्रतीत नहीं होता। यहाँ इतना दुख क्यों है?
एम: दर्द शारीरिक होता है; पीड़ा मानसिक। मन से परे कोई पीड़ा नहीं है। दर्द केवल एक संकेत है कि शरीर खतरे में है और उसे ध्यान देने की आवश्यकता है। इसी प्रकार, पीड़ा हमें चेतावनी देती है कि स्मृतियों और आदतों की

संरचना, जिसे हम व्यक्ति कहते हैं, हानि या परिवर्तन से खतरे में है। शरीर के अस्तित्व के लिए दर्द आवश्यक है, लेकिन कोई भी पीड़ा आपको कष्ट सहने के लिए विवश नहीं करती। पीड़ा पूरी तरह से आसक्ति या प्रतिरोध के कारण होती है; यह जीवन के साथ आगे बढ़ने, बहने की हमारी अनिच्छा का संकेत है।
जिस प्रकार एक स्वस्थ जीवन दुख से मुक्त होता है, उसी प्रकार एक संतमय जीवन कष्टों से मुक्त होता है।
प्रश्न: संतों से अधिक कष्ट किसी ने नहीं सहा है।
एम: क्या उन्होंने आपको बताया, या आप स्वयं ऐसा कह रहे हैं? संतत्व का सार वर्तमान क्षण को पूर्णतः स्वीकार करना और घटित होने वाली घटनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करना है। एक संत नहीं चाहता कि चीजें जैसी हैं वैसी ही रहें; वह जानता है कि सभी कारकों पर विचार करते हुए, वे अपरिहार्य हैं। वह अपरिहार्य को स्वीकार करता है और इसलिए कष्ट नहीं सहता। वह पीड़ा का अनुभव कर सकता है, लेकिन वह उसे तोड़ नहीं सकती। यदि संभव हो, तो वह खोए हुए संतुलन को बहाल करने के लिए आवश्यक कदम उठाता है - या वह चीजों को अपने आप होने देता है।
प्रश्न: उसकी मृत्यु हो सकती है।
एम: तो क्या हुआ? जीने से उसे क्या लाभ होगा और मरने से क्या हानि? जो पैदा हुआ है, उसे मरना ही है; जो पैदा ही नहीं हुआ, वह मर नहीं सकता। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि वह खुद को क्या समझता है।
प्रश्न: कल्पना कीजिए कि आप जानलेवा बीमारी से बीमार पड़ जाते हैं। क्या आपको पछतावा और नाराजगी नहीं होगी?
एम: लेकिन मैं तो पहले से ही मर चुका हूँ, या यूँ कहूँ कि न तो जीवित हूँ और न ही मृत। आप मेरे शरीर को उसकी सामान्य हरकतें करते हुए देखते हैं और अपने निष्कर्ष निकालते हैं। आप यह स्वीकार नहीं करेंगे कि आपके निष्कर्ष केवल आप पर ही लागू होते हैं। ज़रा समझिए कि मेरे बारे में आपकी जो छवि है, वह पूरी तरह गलत हो सकती है। आपकी स्वयं की छवि भी गलत है, लेकिन यह आपकी समस्या है। लेकिन आपको मेरे लिए समस्याएँ पैदा करने और फिर मुझसे उन्हें हल करने के लिए कहने की ज़रूरत नहीं है। मैं न तो समस्याएँ पैदा कर रहा हूँ और न ही उन्हें हल कर रहा हूँ।

58. पूर्णता, सभी का भाग्य

प्रश्नकर्ता: आत्म-साक्षात्कार के साधनों के बारे में पूछे जाने पर, आप हमेशा 'मैं हूँ' की भावना पर मन के ध्यान केंद्रित करने के महत्व पर बल देते हैं। इसका कारण क्या है? यह विशेष विचार आत्म-साक्षात्कार का कारण क्यों बनता है? 'मैं हूँ' के चिंतन का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ता है?
महाराज: अवलोकन की प्रक्रिया ही अवलोकनकर्ता और अवलोकन दोनों को बदल देती है। अंततः, अपने वास्तविक स्वरूप की अंतर्दृष्टि में बाधा मन की कमजोरी और मंदबुद्धि तथा सूक्ष्म को अनदेखा करके केवल स्थूल पर ध्यान केंद्रित करने की प्रवृत्ति ही है। जब आप मेरी सलाह का पालन करते हुए अपने मन को केवल 'मैं हूँ' की भावना पर केंद्रित करने का प्रयास करते हैं, तो आप अपने मन और उसकी चंचलताओं के प्रति पूर्णतः सजग हो जाते हैं। जागरूकता, क्रिया में स्पष्ट सामंजस्य (सत्त्व) होने के कारण, सुस्ती को दूर करती है और मन की बेचैनी को शांत करती है तथा धीरे-धीरे, लेकिन निरंतर, उसके मूल स्वरूप को बदल देती है। यह परिवर्तन अत्यंत भव्य होना आवश्यक नहीं है; यह शायद ही ध्यान देने

योग्य हो; फिर भी यह अंधकार से प्रकाश की ओर, अचेतनता से जागरूकता की ओर एक गहरा और मौलिक परिवर्तन है।
प्रश्न: क्या 'मैं हूँ' वाला वाक्य ही ज़रूरी है? क्या कोई और वाक्य काम नहीं आएगा? अगर मैं 'एक मेज है' पर ध्यान केंद्रित करूँ, तो क्या उससे भी वही उद्देश्य पूरा नहीं होगा?
एम: एकाग्रता के अभ्यास के रूप में - हाँ। लेकिन यह आपको मेज की अवधारणा से आगे नहीं ले जाएगा। आपको मेजों में रुचि नहीं है, आप स्वयं को जानना चाहते हैं। इसके लिए, चेतना के केंद्र में केवल एक ही संकेत को स्थिर रखें: अपने अस्तित्व की निश्चितता। इसके साथ रहें, इसके साथ खेलें, इस पर विचार करें, इसमें गहराई से उतरें, जब तक कि अज्ञान का आवरण टूट न जाए और आप वास्तविकता के क्षेत्र में न आ जाएँ।
प्रश्न: क्या 'मैं हूं' पर ध्यान केंद्रित करने और 'मैं हूं' की भावना के टूटने के बीच कोई कारण-कार्य संबंध है?
एम: स्वयं को जानने की तीव्र इच्छा इस बात का संकेत है कि आप तैयार हो रहे हैं। यह प्रेरणा हमेशा भीतर से आती है। जब तक आपका समय नहीं आएगा, तब तक आपके पास आत्म-अन्वेषण के लिए पूरी लगन से प्रयास करने की न तो इच्छा होगी और न ही शक्ति।
प्रश्न: क्या इच्छा और उसकी पूर्ति के लिए गुरु की कृपा ही जिम्मेदार नहीं है? क्या गुरु का तेजस्वी चेहरा ही वह चारा नहीं है जिस पर हम फंसते हैं और दुख के इस दलदल से बाहर निकल आते हैं?
एम: यह आपका आंतरिक गुरु (सद्गुरु) ही है जो आपको बाह्य गुरु तक ले जाता है, ठीक वैसे ही जैसे एक माँ अपने बच्चे को शिक्षक के पास ले जाती है। अपने गुरु पर भरोसा रखें और उनकी आज्ञा का पालन करें, क्योंकि वे आपके वास्तविक स्वरूप के संदेशवाहक हैं।
प्रश्न: मुझे ऐसा गुरु कैसे मिलेगा जिस पर मैं भरोसा कर सकूं?
एम: आपका अपना हृदय आपको बता देगा। गुरु को पाना कोई मुश्किल नहीं है, क्योंकि गुरु आपकी खोज में हैं। गुरु हमेशा तैयार रहते हैं; आप तैयार नहीं होते। आपको सीखने के लिए तैयार रहना होगा; वरना आप अपने गुरु से मिल तो लेंगे, लेकिन अपनी लापरवाही और हठ के कारण अपना मौका गँवा देंगे। मेरा उदाहरण लीजिए; मुझमें कोई खास प्रतिभा नहीं थी, लेकिन जब मैं अपने गुरु से मिला, तो मैंने उनकी बात सुनी, उन पर भरोसा किया और उनकी आज्ञा का पालन किया।
प्रश्न: क्या मुझे स्वयं को पूरी तरह से शिक्षक के हाथों में सौंपने से पहले उनकी जांच-पड़ताल नहीं करनी चाहिए?
एम: बेशक जांच करें! लेकिन आप क्या पता लगा सकते हैं? केवल उतना ही जितना वह आपको आपके अपने स्तर पर दिखाई देता है।
प्रश्न: मैं देखूंगा कि क्या वह सुसंगत है, क्या उसके जीवन और उसकी शिक्षा में सामंजस्य है।
एम: आपको बहुत सारी असहमति मिल सकती है - तो क्या हुआ? इससे कुछ साबित नहीं होता। केवल इरादे मायने रखते हैं। आपको उसके इरादे कैसे पता चलेंगे? प्रश्न: मुझे कम से कम उनसे यह अपेक्षा तो करनी ही चाहिए कि वे आत्मसंयमित व्यक्ति हों और धार्मिक जीवन जीते हों।
एम: ऐसे लोग आपको बहुत मिलेंगे—और वे आपके किसी काम के नहीं होंगे। एक गुरु आपको घर लौटने का, अपने वास्तविक स्वरूप तक पहुँचने का मार्ग दिखा सकता है। इसका उस व्यक्ति के चरित्र या स्वभाव से क्या संबंध है जैसा वह

दिखता है? क्या वह आपको स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि वह वह व्यक्ति नहीं है? इसका एकमात्र तरीका है कि आप उनके साथ रहने पर अपने आप में आए परिवर्तन को महसूस करें। यदि आप अधिक शांत और प्रसन्न महसूस करते हैं, यदि आप स्वयं को सामान्य से अधिक स्पष्टता और गहराई से समझते हैं, तो इसका अर्थ है कि आप सही व्यक्ति से मिले हैं। समय लें, लेकिन एक बार जब आप उन पर भरोसा करने का मन बना लें, तो उन पर पूर्ण विश्वास करें और उनके हर निर्देश का पूरी तरह और निष्ठापूर्वक पालन करें। यदि आप उन्हें अपना गुरु स्वीकार नहीं करते और केवल उनकी संगति से संतुष्ट हैं तो कोई बात नहीं। सत्संग भी आपको आपके लक्ष्य तक पहुँचा सकता है, बशर्ते वह शुद्ध और शांत हो। लेकिन एक बार जब आप किसी को अपना गुरु स्वीकार कर लें, तो सुनें, याद रखें और आज्ञा का पालन करें। अपूर्णता एक गंभीर दोष है और स्वयं द्वारा निर्मित कई दुखों का कारण है। गलती कभी गुरु की नहीं होती; इसके लिए हमेशा अनुशासन की अज्ञानता और हठधर्मिता ही जिम्मेदार होती है।
प्रश्न: क्या गुरु तब शिष्य को निष्कासित या अयोग्य घोषित कर देते हैं? एम: अगर वह ऐसा करता तो वह गुरु नहीं होता! वह सही समय का इंतजार करता है और शिष्य के सुधरने और संयमित होने के बाद अधिक ग्रहणशील मनोदशा में उसके पास लौटने का इंतजार करता है।
प्रश्न: इसका उद्देश्य क्या है? गुरु इतनी मेहनत क्यों करते हैं?
एम: दुःख और दुःख का अंत। वह लोगों को सपनों में दुःख भोगते हुए देखता है और चाहता है कि वे जाग जाएं। प्रेम पीड़ा और कष्ट सहन नहीं कर सकता। गुरु के धैर्य की कोई सीमा नहीं होती, इसलिए उसे पराजित नहीं किया जा सकता। गुरु कभी असफल नहीं होता।
प्रश्न: क्या मेरा पहला गुरु ही मेरा आखिरी गुरु होगा, या मुझे एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना होगा?
एम: संपूर्ण ब्रह्मांड ही आपका गुरु है। यदि आप सजग और बुद्धिमान हैं, तो आप हर चीज से सीखते हैं। यदि आपका मन निर्मल और हृदय शुद्ध होता, तो आप हर राहगीर से सीखते। आपकी आलस्य या बेचैनी के कारण ही आपका अंतर्मन बाहरी गुरु के रूप में प्रकट होता है और आपको उस पर विश्वास करने और उसकी आज्ञा मानने के लिए प्रेरित करता है।
प्रश्न: क्या गुरु का होना अपरिहार्य है?
एम: यह ऐसा ही है जैसे पूछना, 'क्या माँ होना अपरिहार्य है?' चेतना के एक आयाम से दूसरे आयाम तक पहुँचने के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। यह सहायता हमेशा किसी मनुष्य के रूप में नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म उपस्थिति या अंतर्ज्ञान की एक चिंगारी के रूप में हो सकती है, लेकिन सहायता अवश्य आनी चाहिए। अंतर्मन पुत्र के अपने पिता के पास लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। उचित समय पर वह स्नेहपूर्वक और प्रभावी ढंग से सब कुछ व्यवस्थित कर देता है। जहाँ किसी संदेशवाहक या मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है, वहाँ वह गुरु को भेजता है।
प्रश्न: एक बात मेरी समझ से परे है। आप अंतर्मन को बुद्धिमान, अच्छा, सुंदर और हर तरह से परिपूर्ण बताते हैं, और व्यक्ति को मात्र एक प्रतिबिंब मानते हैं जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। दूसरी ओर, आप व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार दिलाने में इतना प्रयास करते हैं। यदि व्यक्ति इतना महत्वहीन है, तो उसके कल्याण की इतनी चिंता क्यों? परछाई की परवाह कौन करता है?

एम: आपने द्वैत का विचार वहाँ ला दिया है जहाँ कोई द्वैत नहीं है। शरीर है और आत्मा है। इन दोनों के बीच मन है, जिसमें आत्मा 'मैं हूँ' के रूप में प्रतिबिंबित होती है। मन की अपूर्णताओं, उसकी असंयम और बेचैनी, विवेक और अंतर्दृष्टि के अभाव के कारण, वह स्वयं को शरीर समझता है, आत्मा नहीं। आवश्यकता केवल मन को शुद्ध करने की है ताकि वह आत्मा के साथ अपनी पहचान को जान सके। जब मन आत्मा में विलीन हो जाता है, तो शरीर कोई समस्या नहीं रह जाता। वह वही रहता है जो वह है, ज्ञान और क्रिया का साधन, भीतर की सृजनात्मक अग्नि का उपकरण और अभिव्यक्ति। शरीर का परम मूल्य यह है कि वह ब्रह्मांडीय शरीर को खोजने में सहायक होता है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड है। जैसे-जैसे आप स्वयं को साकार रूप में अनुभव करते हैं, आप यह खोजते रहते हैं कि आप अपनी कल्पना से कहीं अधिक हैं।
प्रश्न: क्या आत्म-खोज की कोई सीमा नहीं है?
एम: क्योंकि न कोई शुरुआत है, न कोई अंत। लेकिन मैंने अपने गुरु की कृपा से यह पाया है कि मैं वह कुछ भी नहीं हूँ जिसे इंगित किया जा सके। मैं न तो 'यह' हूँ और न ही 'वह'। यह बात बिल्कुल सत्य है।
प्रश्न: तो फिर, इस कभी न खत्म होने वाली खोज, स्वयं को नए आयामों में अनंत रूप से पार करने की प्रक्रिया का स्रोत क्या है?
एम: यह सब अभिव्यक्ति के क्षेत्र से संबंधित है; ब्रह्मांड की संरचना में ही यह निहित है कि उच्चतर को केवल निम्नतर से मुक्ति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।
प्रश्न: क्या नीचा है और क्या ऊँचा है?
एम: इसे जागरूकता के संदर्भ में देखें। व्यापक और गहन चेतना ही उच्चतर है। सभी जीवित प्राणी चेतना की रक्षा, उसे बनाए रखने और उसका विस्तार करने के लिए कार्य करते हैं। यही संसार का एकमात्र अर्थ और उद्देश्य है। यही योग का सार है - चेतना के स्तर को निरंतर ऊपर उठाना, नए आयामों की खोज करना, उनके गुणों, विशेषताओं और शक्तियों के साथ। इस अर्थ में संपूर्ण ब्रह्मांड योग का एक विद्यालय (योगक्षेत्र) बन जाता है।
प्रश्न: क्या पूर्णता सभी मनुष्यों का भाग्य है?
एम: सभी जीवित प्राणियों में – अंततः। ज्ञानोदय की धारणा मन में आते ही संभावना निश्चितता में बदल जाती है। एक बार जब किसी जीव को यह पता चल जाता है कि मुक्ति उसकी पहुँच में है, तो वह इसे कभी नहीं भूलता, क्योंकि यह भीतर से आने वाला पहला संदेश है। यह जड़ पकड़ेगा, बढ़ेगा और समय आने पर गुरु का दिव्य रूप धारण कर लेगा।
प्रश्न: तो क्या हमारा सारा सरोकार केवल मन के उद्धार से ही है?
एम: और क्या? मन भटक जाता है, मन लौट आता है। 'भटक जाना' शब्द भी उचित नहीं है। मन को हर अवस्था में स्वयं को जानना चाहिए। कोई भी गलती तब तक नहीं होती जब तक उसे दोहराया न जाए।

59. इच्छा और भय: स्व-केंद्रित अवस्थाएँ

प्रश्नकर्ता: मैं सुख और दुख, इच्छा और भय के प्रश्न पर फिर से विचार करना चाहूंगा। मैं भय को पीड़ा की स्मृति और आशंका के रूप में समझता हूं। यह शरीर और उसके जीवन चक्र के संरक्षण के लिए आवश्यक है। आवश्यकताएँ, जब महसूस होती हैं, तो पीड़ादायक होती हैं और उनकी आशंका भय से भरी होती है; हम अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न कर पाने से स्वाभाविक रूप से भयभीत

होते हैं। आवश्यकता पूरी होने या चिंता दूर होने पर जो राहत मिलती है, वह पूरी तरह से पीड़ा के समाप्त होने के कारण होती है। हम इसे सुख, आनंद या प्रसन्नता जैसे सकारात्मक नाम दे सकते हैं, लेकिन मूलतः यह पीड़ा से मुक्ति है। पीड़ा का यही भय हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थानों को एक साथ जोड़े रखता है।
मुझे जो बात हैरान करती है, वह यह है कि हम उन चीजों और मन की अवस्थाओं से आनंद प्राप्त करते हैं जिनका जीवन से कोई संबंध नहीं है। इसके विपरीत, हमारा आनंद अक्सर विनाशकारी होता है। यह आनंद की वस्तु, साधन और विषय को भी नुकसान पहुंचाता है या नष्ट कर देता है। अन्यथा, आनंद और आनंद की खोज कोई समस्या ही नहीं होती। यही मुझे मेरे प्रश्न के मूल तक ले जाता है: आनंद विनाशकारी क्यों है? अपनी विनाशकारी प्रकृति के बावजूद, हम इसे क्यों चाहते हैं?
मैं यह भी कहना चाहूंगा कि मेरा तात्पर्य उस सुख-दुख के चक्र से नहीं है जिसके द्वारा प्रकृति हमें अपने मार्ग पर चलने के लिए विवश करती है। मेरा विचार मानव निर्मित सुखों से है, जो इंद्रियजन्य और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं, जिनमें अत्यधिक भोजन जैसे स्थूल सुख से लेकर परिष्कृत सुख तक शामिल हैं। सुख की लत, चाहे वह किसी भी कीमत पर हो, इतनी व्यापक है कि इसके मूल में कोई न कोई महत्वपूर्ण कारण अवश्य ही निहित है।
बेशक, मनुष्य की हर गतिविधि उपयोगितावादी या किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही नहीं होती। उदाहरण के लिए, खेलना स्वाभाविक है और मनुष्य सबसे चंचल प्राणी है। खेल आत्म-खोज और आत्म-विकास की आवश्यकता को पूरा करता है। लेकिन अपने खेल में भी मनुष्य प्रकृति, दूसरों और स्वयं का विनाश करने लगता है।
महाराज: संक्षेप में, आपको सुख से कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि उससे मिलने वाले कष्ट और दुख से आपत्ति है।
प्रश्न: यदि वास्तविकता स्वयं ही आनंद है, तो सुख किसी न किसी रूप में इससे संबंधित होना चाहिए।
एम: आइए हम शाब्दिक तर्क के आधार पर आगे न बढ़ें। वास्तविकता का आनंद दुख को नकारता नहीं है। इसके अलावा, आप केवल सुख को जानते हैं, शुद्ध अस्तित्व के आनंद को नहीं। इसलिए आइए हम सुख का उसके अपने स्तर पर विश्लेषण करें। सुख या दुख के क्षणों में यदि आप स्वयं को देखें, तो आप पाएंगे कि सुख या दुख का कारण वस्तु स्वयं नहीं, बल्कि वह परिस्थिति है जिसका वह हिस्सा है। सुख, सुख भोगने वाले और सुख भोगने वाले के बीच के संबंध में निहित है। और इसका सार स्वीकृति है। परिस्थिति चाहे जो भी हो, यदि वह स्वीकार्य है, तो सुख है। यदि वह स्वीकार्य नहीं है, तो दुख है। उसे स्वीकार्य बनाने वाले कारक महत्वपूर्ण नहीं हैं; कारण शारीरिक, मनोवैज्ञानिक या अज्ञात हो सकता है; स्वीकृति ही निर्णायक कारक है। इसके विपरीत, दुख अस्वीकृति के कारण होता है।
प्रश्न: दर्द बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।
एम: क्यों नहीं? क्या आपने कभी कोशिश की है? कोशिश कीजिए, आपको दर्द में वह आनंद मिलेगा जो सुख से नहीं मिल सकता, क्योंकि दर्द को स्वीकार करना आपको सुख से कहीं अधिक गहराई तक ले जाता है। हमारा स्वभाव ही ऐसा है कि हम निरंतर सुख की खोज करते हैं और दर्द से बचते हैं। इस चक्र का अंत ही आत्म का अंत है। इच्छाओं और भय से मुक्त आत्म का अंत आपको अपने वास्तविक स्वरूप में लौटने में सक्षम बनाता है, जो समस्त सुख और शांति का स्रोत है। सुख की

शाश्वत इच्छा हमारे भीतर की शाश्वत सामंजस्यता का प्रतिबिंब है। यह एक प्रत्यक्ष तथ्य है कि व्यक्ति तभी आत्म-जागरूक होता है जब वह सुख और दुख के बीच संघर्ष में फंस जाता है, जिसमें चुनाव और निर्णय की आवश्यकता होती है। इच्छा और भय का यही टकराव क्रोध का कारण बनता है, जो जीवन में विवेक का सबसे बड़ा नाश करने वाला है। जब दर्द को उसके वास्तविक रूप में स्वीकार किया जाता है, एक सबक और एक चेतावनी के रूप में, और गहराई से उसका अध्ययन और पालन किया जाता है, तो दर्द और सुख के बीच का भेद टूट जाता है, दोनों अनुभव बन जाते हैं - प्रतिरोध करने पर पीड़ादायक, स्वीकार करने पर आनंददायक। प्रश्न: क्या आप सुख का त्याग करके कष्ट सहने की सलाह देते हैं?
एम: नहीं, न ही सुख की खोज करना और दुख से बचना। दोनों को जैसे हैं वैसे ही स्वीकार करो, जब तक वे रहें उनका आनंद लो, और फिर उन्हें जाने दो, क्योंकि उन्हें जाना ही है।
प्रश्न: मैं दर्द का आनंद कैसे ले सकता हूँ? शारीरिक दर्द तो क्रियाशील होने की मांग करता है।
एम: बिल्कुल। और मानसिक अवस्था भी। आनंद तो इसके प्रति सजग रहने में है, इससे पीछे न हटने में, या किसी भी तरह से इससे मुंह न मोड़ने में। सारी खुशी जागरूकता से आती है। हम जितने अधिक सचेत होते हैं, आनंद उतना ही गहरा होता है। दर्द को स्वीकार करना, प्रतिरोध न करना, साहस और सहनशीलता - ये सच्ची खुशी और परमानंद के गहरे और शाश्वत स्रोत खोलते हैं।
प्रश्न: सुख की तुलना में दर्द अधिक प्रभावी क्यों होना चाहिए?
एम: सुख को सहजता से स्वीकार किया जाता है, जबकि आत्म-शक्ति के सभी बल पीड़ा को अस्वीकार करते हैं। चूंकि पीड़ा को स्वीकार करना आत्म-त्याग है, और आत्म-त्याग ही सच्ची खुशी के मार्ग में बाधा है, इसलिए पीड़ा को पूर्णतया स्वीकार करने से ही सुख के स्रोत खुलते हैं।
प्रश्न: क्या पीड़ा को स्वीकार करना भी उसी तरह कार्य करता है?
एम: दर्द की वास्तविकता को आसानी से जागरूकता के दायरे में लाया जा सकता है। लेकिन पीड़ा के साथ ऐसा नहीं है। केवल पीड़ा पर ध्यान केंद्रित करना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि मानसिक जीवन, जैसा कि हम जानते हैं, पीड़ा की एक निरंतर धारा है। पीड़ा की गहरी परतों तक पहुँचने के लिए आपको उसकी जड़ों तक जाना होगा और उसके विशाल भूमिगत जाल को उजागर करना होगा, जहाँ भय और इच्छा आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं और जीवन की ऊर्जा की धाराएँ एक-दूसरे का विरोध, अवरोध और विनाश करती हैं।
प्रश्न: मैं उस उलझन को कैसे सुलझा सकता हूँ जो पूरी तरह से मेरी चेतना के स्तर से नीचे है?
एम: अपने आप से, अपने 'मैं' से, सचेत भाव से अपने दैनिक जीवन में स्वयं को निहारते हुए, निर्णय लेने के बजाय समझने के इरादे से, जो कुछ भी प्रकट हो उसे पूर्णतः स्वीकार करते हुए, क्योंकि वह मौजूद है, आप गहरे भावों को सतह पर आने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और उनकी ऊर्जाओं से अपने जीवन और चेतना को समृद्ध करते हैं। यही जागरूकता का महान कार्य है; यह जीवन और मन की प्रकृति को समझकर बाधाओं को दूर करता है और ऊर्जाओं को मुक्त करता है। बुद्धि स्वतंत्रता का द्वार है और सचेत ध्यान बुद्धि की जननी है। प्रश्न: एक और प्रश्न। सुख का अंत दुख में क्यों होता है?
एम: हर चीज़ का आरंभ और अंत होता है, और सुख का भी। भविष्य की कल्पना न करो और पछतावा न करो, तो कोई कष्ट नहीं होगा। स्मृति और कल्पना ही दुख का कारण बनती हैं।

बेशक, सुख के बाद दुख का कारण शरीर या मन का दुरुपयोग हो सकता है। शरीर अपनी सीमा जानता है, पर मन नहीं। इसकी इच्छाएँ अनगिनत और असीमित हैं। अपने मन पर विशेष ध्यान दें, क्योंकि यहीं आपकी गुलामी और मुक्ति की कुंजी छिपी है।
प्रश्न: मेरे प्रश्न का अभी तक पूर्ण उत्तर नहीं मिला है: मनुष्य के सुख विनाशकारी क्यों होते हैं? उसे विनाश में इतना आनंद क्यों मिलता है? जीवन का उद्देश्य स्वयं की रक्षा, निरंतरता और विस्तार करना है। इस प्रक्रिया में सुख और दुख दोनों ही मार्गदर्शक होते हैं। किस बिंदु पर ये विनाशकारी बन जाते हैं?
एम: जब मन हावी हो जाता है, याद करता है और अनुमान लगाता है, तो वह अतिशयोक्ति करता है, विकृत करता है, अनदेखी करता है। अतीत को भविष्य पर थोपा जाता है और भविष्य उम्मीदों पर खरा नहीं उतरता। इंद्रियों और क्रिया के अंग अपनी क्षमता से अधिक उत्तेजित हो जाते हैं और अंततः निष्क्रिय हो जाते हैं। सुख के स्रोत अपनी अपेक्षा के अनुरूप परिणाम नहीं दे पाते और दुरुपयोग से घिस जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जहां सुख की अपेक्षा थी, वहां अत्यधिक पीड़ा उत्पन्न होती है।
प्रश्न: हम न केवल स्वयं को, बल्कि दूसरों को भी नष्ट कर देते हैं!
एम: स्वाभाविक रूप से, स्वार्थ हमेशा विनाशकारी होता है। इच्छा और भय, दोनों ही स्वकेंद्रित अवस्थाएँ हैं। इच्छा और भय से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से घृणा, और घृणा से विनाश की तीव्र इच्छा। युद्ध संगठित और मृत्यु के सभी हथियारों से लैस घृणा का क्रियान्वयन है।
प्रश्न: क्या इन भयावह घटनाओं को समाप्त करने का कोई तरीका है?
एम: जब अधिक लोग अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेंगे, तो उनका प्रभाव, चाहे कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो, प्रबल होगा और संसार का भावनात्मक वातावरण मधुर हो जाएगा। लोग अपने नेताओं का अनुसरण करते हैं और जब नेताओं में से कुछ ऐसे लोग प्रकट होते हैं जो हृदय और मन से महान हों और स्वार्थ से पूरी तरह मुक्त हों, तो उनका प्रभाव इतना प्रबल होगा कि वर्तमान युग की क्रूरताएँ और अपराध असंभव हो जाएँगे। एक नया स्वर्ण युग आ सकता है, जो कुछ समय तक कायम रहेगा और फिर अपनी ही पूर्णता में विलीन हो जाएगा। क्योंकि, ज्वार अपने चरम पर होने पर ही भाटा शुरू होता है।
प्रश्न: क्या स्थायी पूर्णता जैसी कोई चीज नहीं होती?
एम: जी हाँ, है, लेकिन उसमें सभी अपूर्णताएँ समाहित हैं। हमारे आत्म-स्वभाव की पूर्णता ही सब कुछ संभव, अनुभव करने योग्य और रोचक बनाती है। यह दुख नहीं जानती, क्योंकि यह न पसंद करती है, न नापसंद; न स्वीकार करती है, न अस्वीकार करती है। सृजन और विनाश वे दो ध्रुव हैं जिनके बीच यह अपना निरंतर बदलता स्वरूप बुनती है। पूर्वाग्रहों और पसंदों से मुक्त हो जाओ, और मन अपने दुख के बोझ से मुक्त हो जाएगा।
प्रश्न: लेकिन मैं अकेला पीड़ित नहीं हूँ। और भी लोग हैं।
एम: जब आप अपनी इच्छाओं और भय के साथ उनके पास जाते हैं, तो आप केवल उनके दुखों को बढ़ाते हैं। पहले स्वयं दुख से मुक्त हो जाओ, और फिर दूसरों की सहायता करने की आशा रखो। आशा रखने की भी आवश्यकता नहीं है - आपका अस्तित्व ही मनुष्य द्वारा अपने साथी मनुष्यों को दी जाने वाली सबसे बड़ी सहायता होगी।

60. वास्तविक तथ्य, कल्पनाएँ नहीं

प्रश्नकर्ता: आप कहते हैं कि जो कुछ भी आप देखते हैं, वह आप स्वयं हैं। आप यह भी स्वीकार करते हैं कि आप दुनिया को वैसे ही देखते हैं जैसे हम देखते हैं। आज का अखबार देखिए, जिसमें तमाम भयावह घटनाओं का जिक्र है। चूंकि दुनिया आप स्वयं हैं, तो आप ऐसे दुर्व्यवहार को कैसे समझा सकते हैं? महाराज: आपके मन में कौन सी दुनिया है?
प्रश्न: हमारी साझा दुनिया, जिसमें हम रहते हैं।
एम: क्या आपको यकीन है कि हम एक ही दुनिया में रहते हैं? मेरा मतलब प्रकृति, समुद्र और ज़मीन, पेड़-पौधों और जानवरों से नहीं है। समस्या ये नहीं हैं, न ही अनंत अंतरिक्ष, न ही असीम समय, न ही अक्षय शक्ति। मेरे खाने-पीने, पढ़ने- लिखने और बोलने से भ्रमित मत होइए। मेरा मन यहाँ नहीं है, मेरा जीवन यहाँ नहीं है। आपकी दुनिया, इच्छाओं और उनकी पूर्ति की दुनिया, डर और उनसे मुक्ति की दुनिया, निश्चित रूप से मेरी दुनिया नहीं है। मैं इसे समझ भी नहीं पाता, सिवाय इसके कि आप मुझे इसके बारे में क्या बताते हैं। यह आपकी निजी स्वप्नलोक है और इस पर मेरी एकमात्र प्रतिक्रिया यही है कि आप सपने देखना बंद कर दें।
प्रश्न: निश्चित रूप से, युद्ध और क्रांतियाँ सपने नहीं हैं। बीमार माताएँ और भूखे बच्चे सपने नहीं हैं। अवैध रूप से अर्जित और दुरुपयोग किया गया धन भी सपना नहीं है।
एम: और क्या?
प्रश्न: सपने को साझा नहीं किया जा सकता।
एम: न ही जागृत अवस्था ऐसा कर सकती है। तीनों अवस्थाएँ—जागना, स्वप्न देखना और सोना—व्यक्तिगत, निजी और अंतरंग होती हैं। ये सभी चेतना के उस छोटे से दायरे में घटित होती हैं और समाहित होती हैं, जिसे 'मैं' कहते हैं। वास्तविक दुनिया स्वयं से परे है।
प्रश्न: चाहे आत्मा हो या न हो, तथ्य तो वास्तविक होते हैं।
एम: बेशक तथ्य वास्तविक होते हैं! मैं तो उनके बीच ही रहता हूँ। लेकिन तुम कल्पनाओं में जीते हो, तथ्यों में नहीं। तथ्य कभी आपस में टकराते नहीं, जबकि तुम्हारा जीवन और संसार विरोधाभासों से भरा है। विरोधाभास झूठ की निशानी है; वास्तविक कभी स्वयं का खंडन नहीं करता।
उदाहरण के लिए, आप शिकायत करते हैं कि लोग बेहद गरीब हैं। फिर भी आप अपनी दौलत उनके साथ साझा नहीं करते। आपको अपने पड़ोसी देश में चल रहे युद्ध की चिंता होती है, लेकिन जब वह किसी दूर देश में होता है तो आप शायद ही उस पर ध्यान देते हैं। आपके अहंकार के बदलते रुझान आपके मूल्यों को निर्धारित करते हैं; 'मैं सोचता हूँ', 'मैं चाहता हूँ', 'मुझे करना ही चाहिए' को आप अटल सत्य मान लेते हैं।
प्रश्न: फिर भी, बुराई वास्तविक है।
एम: आपसे ज़्यादा वास्तविक कोई नहीं। बुराई गलतफहमी और दुरुपयोग से उत्पन्न समस्याओं के प्रति गलत दृष्टिकोण में निहित है। यह एक दुष्चक्र है।
प्रश्न: क्या इस वृत्त को तोड़ा जा सकता है?
एम: एक झूठे घेरे को तोड़ने की जरूरत नहीं है। उसे वैसे ही देखना काफी है जैसा वह है - यानी अस्तित्वहीन।
प्रश्न: लेकिन, क्या यह इतना वास्तविक है कि हमें अपमान और अत्याचार सहने और उन्हें सहन करने के लिए मजबूर कर दे?

एम: पागलपन सार्वभौमिक है। समझदारी दुर्लभ है। फिर भी आशा है, क्योंकि जिस क्षण हम अपने पागलपन को पहचान लेते हैं, उसी क्षण हम समझदारी की ओर अग्रसर हो जाते हैं। गुरु का यही कार्य है - हमें हमारे दैनिक जीवन के पागलपन को दिखाना। जीवन आपको सचेत करता है, लेकिन गुरु आपको जागरूक बनाता है। प्रश्न: महोदय, आप न तो पहले हैं और न ही आखिरी। अनादि काल से ही लोग वास्तविकता को जानने का प्रयास करते रहे हैं। फिर भी इसका हमारे जीवन पर कितना कम प्रभाव पड़ा! राम और कृष्ण, बुद्ध और ईसा मसीह आए और चले गए, और हम वैसे ही हैं जैसे पहले थे; पसीने और आँसुओं में डूबे हुए। जिन महानुभावों के जीवन को हमने देखा, उन्होंने क्या किया? महोदय, आपने संसार के इस बंधन को तोड़ने के लिए क्या किया है?
एम: तुमने जो बुराई पैदा की है, उसे तुम अकेले ही मिटा सकते हो। तुम्हारी निर्मम स्वार्थपरता ही इसकी जड़ है। पहले अपने घर को सुधारो, फिर तुम्हारा काम हो जाएगा।
प्रश्न: हमसे पहले आए ज्ञान और प्रेम के धनी पुरुषों ने, अक्सर भारी कीमत चुकाकर, अपने आप को सही राह पर लाया। इसका परिणाम क्या हुआ? टूटता तारा, चाहे कितना भी चमकीला क्यों न हो, रात के अंधेरे को कम नहीं कर सकता।
एम: उनका और उनके काम का मूल्यांकन करने के लिए आपको खुद उन्हीं में से एक बनना होगा। कुएँ में बैठा मेंढक आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के बारे में कुछ नहीं जानता।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि अच्छाई और बुराई के बीच कोई दीवार नहीं है?
एम: कोई दीवार नहीं है, क्योंकि अच्छाई और बुराई जैसी कोई चीज नहीं है। हर ठोस परिस्थिति में केवल आवश्यक और अनावश्यक ही होता है। जो आवश्यक है वह सही है, जो अनावश्यक है वह गलत है।
प्रश्न: निर्णय कौन लेता है?
एम: परिस्थिति ही निर्णायक होती है। हर परिस्थिति एक चुनौती है जिसके लिए सही प्रतिक्रिया आवश्यक है। सही प्रतिक्रिया से चुनौती का सामना हो जाता है और समस्या का समाधान हो जाता है। गलत प्रतिक्रिया से चुनौती का सामना नहीं हो पाता और समस्या अनसुलझी ही रह जाती है। आपकी अनसुलझी समस्याएं ही आपका कर्म हैं। इन्हें सही ढंग से हल करें और मुक्त हो जाएं।
प्रश्न: आप मुझे हमेशा आत्म-चिंतन में ही उलझाए रखते हैं। क्या दुनिया की समस्याओं का कोई वस्तुनिष्ठ समाधान नहीं है?
एम: दुनिया की समस्याएं आप जैसे अनगिनत लोगों ने पैदा की हैं, जिनमें से हर एक अपनी इच्छाओं और भय से भरा हुआ है। आपके निजी और सामाजिक अतीत से आपको कौन मुक्त कर सकता है, सिवाय आपके खुद के? और आप यह कैसे करेंगे जब तक आप भ्रम से जन्मी लालसाओं से मुक्त होने की तत्काल आवश्यकता को नहीं समझ लेते? जब तक आपको खुद मदद की ज़रूरत है, तब तक आप वास्तव में दूसरों की मदद कैसे कर सकते हैं?
प्रश्न: प्राचीन ऋषियों ने किस प्रकार सहायता की? आप किस प्रकार सहायता करते हैं? कुछ व्यक्तियों को निस्संदेह लाभ होता है; आपका मार्गदर्शन और उदाहरण उनके लिए बहुत मायने रखता होगा; लेकिन आप मानवता, जीवन और चेतना की समग्रता को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? आप कहते हैं कि आप ही संसार हैं और संसार ही आप हैं; आपने इस पर क्या प्रभाव डाला है?
एम: आप किस प्रकार के प्रभाव की अपेक्षा करते हैं?
प्रश्न: मनुष्य मूर्ख, स्वार्थी और क्रूर है।

एम: मनुष्य बुद्धिमान, स्नेही और दयालु भी होता है।
प्रश्न: अच्छाई की जीत क्यों नहीं होती?
एम: हाँ, मेरी दुनिया में तो ऐसा ही है। मेरी दुनिया में तो जिसे आप बुराई कहते हैं, वह भी अच्छाई की सेवक है और इसलिए आवश्यक है। यह फोड़ों और बुखार की तरह है जो शरीर से अशुद्धियों को दूर करते हैं। बीमारी दर्दनाक होती है, यहाँ तक कि खतरनाक भी, लेकिन अगर सही तरीके से इलाज किया जाए तो यह ठीक कर देती है।
प्रश्न: या मार डालता है?
एम: कुछ मामलों में मृत्यु ही सबसे अच्छा इलाज है। जीवन मृत्यु से भी बदतर हो सकता है, जो देखने में चाहे जैसा भी लगे, शायद ही कभी अप्रिय अनुभव होता है। इसलिए, जीवितों पर दया करो, मृतकों पर कभी नहीं। अच्छाई और बुराई जैसी चीजों का यह मुद्दा मेरी दुनिया में मौजूद नहीं है। आवश्यक अच्छा है और अनावश्यक बुरा है। तुम्हारी दुनिया में सुख अच्छा है और दुख बुरा है। प्रश्न: क्या आवश्यक है?
एम: विकास आवश्यक है। आगे बढ़ना आवश्यक है। बेहतर के लिए अच्छे को पीछे छोड़ना आवश्यक है।
प्रश्न: किसलिए?
एम: अंत ही शुरुआत में है। आप वहीं समाप्त होते हैं जहाँ से शुरू करते हैं - परम सत्ता में।
प्रश्न: तो फिर इतनी सारी परेशानी क्यों उठाई? क्या मुझे वहीं लौटना था जहाँ से मैंने शुरुआत की थी?
एम: किसकी परेशानी? कौन सी परेशानी? क्या तुम्हें उस बीज पर दया आती है जो बढ़कर एक विशाल जंगल बन जाएगा? क्या तुम किसी शिशु को जीवन की परेशानियों से बचाने के लिए मार डालोगे? जीवन में, और जीवन में, क्या बुराई है? विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करो और तुम्हारी सभी व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याएं स्वतः ही दूर हो जाएंगी। ब्रह्मांड संपूर्ण रूप से परिपूर्ण है और इसके अंशों का परिपूर्णता की ओर प्रयास करना आनंद का मार्ग है। अपूर्ण को परिपूर्ण के लिए स्वेच्छा से त्याग दो और फिर अच्छे और बुरे की चर्चा नहीं होगी।
प्रश्न: फिर भी हम बेहतर से डरते हैं और बदतर से चिपके रहते हैं।
एम: यह हमारी मूर्खता है, जो पागलपन की हद तक पहुंच चुकी है।

61. पदार्थ स्वयं चेतना है।

प्रश्नकर्ता: मुझे जीवन भर पवित्र संगति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। क्या आत्म-साक्षात्कार के लिए यह पर्याप्त है?
महाराज: यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे कैसे लेते हैं।
प्रश्न: मुझे बताया गया था कि सत्संग की मुक्तिदायक क्रिया स्वतःस्फूर्त होती है। जैसे नदी हमें हमारे मुहाने तक ले जाती है, वैसे ही अच्छे लोगों का सूक्ष्म और मौन प्रभाव मुझे वास्तविकता की ओर ले जाएगा।
एम: यह आपको नदी तक ले जाएगा, लेकिन उसे पार करना आपका अपना काम है।
स्वतंत्रता की इच्छा के बिना न तो स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है और न ही उसे बनाए रखा जा सकता है। आपको मुक्ति के लिए प्रयास करना होगा; कम से कम आप इतना तो कर ही सकते हैं कि बाधाओं को खोजकर उन्हें लगन से दूर करें।

यदि आप शांति चाहते हैं तो आपको इसके लिए प्रयास करना होगा। चुप रहने से आपको शांति नहीं मिलेगी।
प्रश्न: एक बच्चा बस बढ़ता है। वह विकास के लिए कोई योजना नहीं बनाता, न ही उसका कोई निश्चित पैटर्न होता है; न ही वह टुकड़ों में बढ़ता है, जैसे एक हाथ यहाँ, एक पैर वहाँ; वह समग्र रूप से और अचेतन रूप से बढ़ता है।
एम: क्योंकि वह कल्पना से मुक्त है। आप भी इस प्रकार विकसित हो सकते हैं, लेकिन आपको स्मृति और पूर्वधारणाओं से उत्पन्न भविष्यवाणियों और योजनाओं में लिप्त नहीं होना चाहिए। ज्ञानी का एक गुण यह है कि वह भविष्य की चिंता नहीं करता। भविष्य के प्रति आपकी चिंता दुख के भय और सुख की इच्छा के कारण है, जबकि ज्ञानी के लिए सब कुछ आनंदमय है: वह जो कुछ भी प्राप्त होता है, उससे प्रसन्न रहता है।
प्रश्न: निश्चित रूप से, ऐसी कई चीजें हैं जो एक ज्ञानी को भी दुखी कर सकती हैं।
एम: एक ज्ञानी को कठिनाइयाँ तो मिल सकती हैं, लेकिन वे उसे कष्ट नहीं देतीं। बच्चे का जन्म से लेकर परिपक्वता तक पालन-पोषण करना कठिन लग सकता है, लेकिन एक माँ के लिए कठिनाइयों की यादें आनंदमय होती हैं। संसार में कुछ भी गलत नहीं है। गलत तो उसे देखने का आपका नजरिया है। आपकी अपनी कल्पना ही आपको गुमराह करती है। कल्पना के बिना संसार नहीं है। आपका यह विश्वास कि आप संसार के प्रति सचेत हैं, वही संसार है। जिस संसार को आप अनुभव करते हैं, वह चेतना से बना है; जिसे आप पदार्थ कहते हैं, वह स्वयं चेतना है। आप वह आकाश हैं जिसमें यह विचरण करता है, वह समय हैं जिसमें यह विद्यमान है, वह प्रेम हैं जो इसे जीवन देता है। कल्पना और आसक्ति को त्याग दें तो क्या शेष रह जाता है?
प्रश्न: दुनिया बनी रहेगी। मैं बना रहूंगा।
एम: हां। लेकिन जब आप इसे इच्छा और भय के पर्दे के बजाय, जैसा है वैसा देख पाते हैं, तो कितना फर्क पड़ता है।
प्रश्न: ये सारे भेद – वास्तविकता और भ्रम, ज्ञान और अज्ञान, संत और पापी – किसलिए हैं? हर कोई सुख की खोज में है, हर कोई जी-जान से कोशिश करता है; हर कोई योगी है और उसका जीवन ज्ञान का विद्यालय है। हर कोई अपने तरीके से ज़रूरी सबक सीखता है। समाज कुछ को स्वीकार करता है, कुछ को अस्वीकार करता है; ऐसा कोई नियम नहीं है जो हर जगह और हर समय लागू हो।
एम: मेरी दुनिया में प्रेम ही एकमात्र नियम है। मैं प्रेम नहीं मांगता, मैं प्रेम देता हूं। यही मेरा स्वभाव है।
प्रश्न: मैं देखता हूँ कि आप एक नियमित दिनचर्या का पालन करते हैं। आप सुबह ध्यान की कक्षा चलाते हैं, नियमित रूप से व्याख्यान और चर्चाएँ करते हैं; दिन में दो बार शाम को पूजा और भजन करते हैं। ऐसा लगता है कि आप इस दिनचर्या का पूरी निष्ठा से पालन करते हैं।
एम: पूजा-अर्चना और गायन जैसा मैंने देखा, वैसा ही है और मुझे इसमें दखल देने का कोई कारण नहीं दिखा। सामान्य दिनचर्या उन लोगों की इच्छा के अनुसार है जिनके साथ मैं रहता हूँ या जो सुनने आते हैं। वे कामकाजी लोग हैं, जिन पर कई जिम्मेदारियाँ हैं और समय उनकी सुविधा के अनुसार निर्धारित किया गया है। कुछ नियमित दिनचर्या अपरिहार्य है। यहाँ तक कि जानवरों और पौधों की भी अपनी समय सारिणी होती है।

प्रश्न: जी हाँ, हम जीवन के सभी पहलुओं में एक नियमित क्रम देखते हैं। इस क्रम को कौन बनाए रखता है? क्या कोई आंतरिक शासक है, जो नियम बनाता है और व्यवस्था को लागू करता है?
एम: सब कुछ अपने स्वभाव के अनुसार चलता है। पुलिसवाले की क्या ज़रूरत है? हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है, जो क्रिया को संतुलित और बेअसर कर देती है। सब कुछ घटित होता है, लेकिन एक निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है, और अंत में ऐसा लगता है जैसे कुछ हुआ ही नहीं।
प्रश्न: मुझे अंतिम सुख की बातों से सांत्वना मत दीजिए। हिसाब-किताब तो सही है, लेकिन नुकसान मेरा ही है।
एम: देखते हैं क्या होता है। हो सकता है आपको इतना अच्छा मुनाफा हो जाए कि किए गए खर्च जायज साबित हो जाएं।
प्रश्न: मैंने एक लंबा जीवन व्यतीत किया है और मैं अक्सर सोचता हूँ कि इसकी अनेक घटनाएँ संयोगवश घटीं या कोई पूर्वनियोजित थीं? क्या मेरे जन्म से पहले ही कोई ऐसा ढाँचा निर्धारित था जिसके अनुसार मुझे अपना जीवन जीना था? यदि हाँ, तो ये योजनाएँ किसने बनाईं और किसने इन्हें लागू किया? क्या इसमें विचलन और गलतियाँ हो सकती हैं? कुछ लोग कहते हैं कि भाग्य अटल है और जीवन का हर क्षण पूर्वनिर्धारित है; वहीं कुछ अन्य कहते हैं कि सब कुछ संयोगवश ही तय होता है।
एम: आप इसे अपनी इच्छानुसार समझ सकते हैं। आप अपने जीवन में एक पैटर्न देख सकते हैं या इसे केवल संयोगों की एक श्रृंखला मान सकते हैं। स्पष्टीकरण मन को प्रसन्न करने के लिए होते हैं। उनका सत्य होना आवश्यक नहीं है। वास्तविकता अपरिभाषित और अवर्णनीय है।
प्रश्न: महोदय, आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं! मैं जानना चाहता हूँ कि आप इसे किस दृष्टिकोण से देखते हैं। जिधर भी देखें, हमें अविश्वसनीय बुद्धिमत्ता और सुंदरता की संरचनाएँ दिखाई देती हैं। मैं यह कैसे मान सकता हूँ कि ब्रह्मांड निराकार और अव्यवस्थित है? आपका संसार, जिस संसार में आप रहते हैं, भले ही निराकार हो, लेकिन यह अव्यवस्थित होना आवश्यक नहीं है।
एम: वस्तुनिष्ठ ब्रह्मांड में संरचना है, वह सुव्यवस्थित और सुंदर है। इसे कोई नकार नहीं सकता। लेकिन संरचना और नियम, बंधन और बाध्यता का संकेत देते हैं। मेरी दुनिया पूरी तरह से स्वतंत्र है; इसमें सब कुछ स्वतः निर्धारित है। इसलिए मैं हमेशा कहता हूं कि सब कुछ अपने आप घटित होता है। मेरी दुनिया में भी व्यवस्था है, लेकिन यह बाहर से थोपी नहीं गई है। यह अपने आप और तुरंत आती है, क्योंकि यह शाश्वत है। पूर्णता भविष्य में नहीं है। यह अभी है।

प्रश्न: क्या आपकी दुनिया मेरी दुनिया को प्रभावित करती है?
एम: केवल एक ही बिंदु पर—वर्तमान क्षण पर। यह इसे क्षणिक अस्तित्व, वास्तविकता का क्षणभंगुर बोध प्रदान करता है। पूर्ण जागरूकता में संपर्क स्थापित होता है। इसके लिए सहज, आत्म-चेतना रहित ध्यान की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: क्या ध्यान मन की एक मनोवृत्ति नहीं है?
एम: जी हाँ, जब मन वास्तविकता के लिए उत्सुक होता है, तो वह ध्यान देता है। आपकी दुनिया में कुछ भी गलत नहीं है, बल्कि आप खुद को इससे अलग समझते हैं, जिससे अव्यवस्था पैदा होती है। स्वार्थ ही सभी बुराइयों की जड़ है।

प्रश्न: मैं अपने प्रश्न पर वापस आ रहा हूँ। मेरे जन्म से पहले, क्या मेरे अंतर्मन ने मेरे जीवन की रूपरेखा तय की थी, या यह पूरी तरह से आकस्मिक था और वंशानुक्रम और परिस्थितियों पर निर्भर था?
एम: जो लोग यह दावा करते हैं कि उन्होंने अपने माता-पिता का चयन किया है और यह तय किया है कि वे अपना अगला जीवन कैसे जिएंगे, वे शायद खुद जानते होंगे। मैं खुद जानता हूँ। मेरा तो कभी जन्म ही नहीं हुआ।
प्रश्न: मैं आपको अपने सामने बैठे हुए और मेरे प्रश्नों का उत्तर देते हुए देख रहा हूँ।
एम: आप केवल शरीर को देखते हैं, जो निश्चित रूप से पैदा हुआ है और मरेगा। प्रश्न: मैं इस शरीर-मन की जीवन कहानी में रुचि रखता हूँ। क्या इसे आपने रचा था या किसी और ने, या यह संयोगवश हुआ था?
एम: आपके प्रश्न में ही एक पेचीदगी है। मैं शरीर और ब्रह्मांड में कोई भेद नहीं करता। दोनों एक दूसरे के कारण हैं; वास्तव में दोनों एक दूसरे में समाहित हैं। लेकिन मैं इन सबसे परे हूँ। जब मैं आपको बता रहा हूँ कि मेरा कभी जन्म ही नहीं हुआ, तो आप मुझसे अगले जन्म की तैयारियों के बारे में क्यों पूछ रहे हैं? जैसे ही आप अपनी कल्पना को उड़ान भरने देते हैं, वह तुरंत एक ब्रह्मांड की रचना कर देती है। यह बिल्कुल वैसा नहीं है जैसा आप कल्पना करते हैं और मैं आपकी कल्पनाओं से बंधा हुआ नहीं हूँ।
प्रश्न: किसी जीवित शरीर का निर्माण और उसे बनाए रखने के लिए बुद्धि और ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ये दोनों कहाँ से आती हैं?
एम: केवल कल्पना ही है। बुद्धि और शक्ति सब कल्पना में ही व्यतीत हो जाती है। इसने आपको इस कदर अपने वश में कर लिया है कि आप समझ ही नहीं पाते कि वास्तविकता से कितनी दूर भटक गए हैं। निःसंदेह कल्पना अत्यंत रचनात्मक होती है। इसी पर ब्रह्मांड के भीतर ब्रह्मांड निर्मित होते हैं। फिर भी वे सब अंतरिक्ष और समय, अतीत और भविष्य में विद्यमान हैं, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है।
प्रश्न: मैंने हाल ही में एक ऐसी बच्ची के बारे में एक रिपोर्ट पढ़ी है जिसके साथ बचपन में बहुत क्रूरता से व्यवहार किया गया था। उसके शरीर पर गंभीर चोटें आई थीं और वह बुरी तरह विकृत हो गई थी। वह एक अनाथालय में पली- बढ़ी, जहाँ वह अपने परिवेश से पूरी तरह अलग-थलग थी। यह बच्ची शांत और आज्ञाकारी थी, लेकिन पूरी तरह उदासीन थी। बच्चों की देखभाल करने वाली एक नन को पूरा विश्वास था कि बच्ची मानसिक रूप से मंदबुद्धि नहीं है, बल्कि केवल अंतर्मुखी और अनुक्रियाहीन है। एक मनोविश्लेषक को इस मामले को देखने के लिए कहा गया और उन्होंने पूरे दो साल तक सप्ताह में एक बार बच्ची से मुलाकात की और उसके अलगाव की दीवार को तोड़ने की कोशिश की। वह विनम्र और अच्छे व्यवहार वाली थी, लेकिन अपने डॉक्टर की बात पर ध्यान नहीं देती थी। डॉक्टर उसके लिए एक खिलौना घर लाए, जिसमें कमरे, चलने-फिरने वाला फर्नीचर और पिता, माता और उनके बच्चों का प्रतिनिधित्व करने वाली गुड़िया थीं। इससे बच्ची में रुचि पैदा हुई। एक दिन उसके पुराने घाव फिर से उभर आए। धीरे-धीरे वह ठीक हो गई, कई ऑपरेशनों के बाद उसका चेहरा और शरीर सामान्य हो गया और वह एक कुशल और आकर्षक युवती बन गई। डॉक्टर को पाँच साल से अधिक का समय लगा, लेकिन काम पूरा हो गया। वे सचमुच एक गुरु थे! उन्होंने न तो कोई शर्तें रखीं और न ही योग्यता की बात की। बिना आस्था, बिना उम्मीद के, केवल प्रेम से उन्होंने बार-बार प्रयास किया।

एम: जी हाँ, यही गुरु का स्वभाव होता है। वे कभी हार नहीं मानते। लेकिन सफलता के लिए उन्हें बहुत अधिक प्रतिरोध का सामना नहीं करना चाहिए। संदेह और अवज्ञा से निश्चित रूप से देरी होती है। यदि शिष्य में विश्वास और लचीलापन हो, तो वे उसमें शीघ्र ही आमूलचूल परिवर्तन ला सकते हैं। गुरु में गहरी अंतर्दृष्टि और शिष्य में लगन, दोनों आवश्यक हैं। आपकी कहानी में वर्णित लड़की की जो भी स्थिति रही हो, उसे लोगों में लगन की कमी के कारण कष्ट सहना पड़ा। सबसे कठिन तो बुद्धिजीवी होते हैं। वे बहुत बातें करते हैं, लेकिन गंभीर नहीं होते।
जिसे आप आत्मज्ञान कहते हैं, वह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जब आप तैयार होंगे, तो आपके गुरु आपका इंतज़ार कर रहे होंगे। साधना सहज है। जब गुरु के साथ आपका संबंध सही होता है, तो आप प्रगति करते हैं। सबसे बढ़कर, उन पर भरोसा रखें। वे आपको गुमराह नहीं कर सकते।
प्रश्न: क्या तब भी जब वह मुझसे कुछ स्पष्ट रूप से गलत करने को कहता है? एम: कर लो। एक संन्यासी को उसके गुरु ने विवाह करने के लिए कहा था। उसने आज्ञा का पालन किया और बहुत कष्ट सहा। लेकिन उसके चारों बच्चे संत और ऋषि बने, जो महाराष्ट्र के महानतम संत थे। अपने गुरु से जो भी मिले, उससे प्रसन्न रहो और तुम बिना प्रयास किए ही पूर्णता प्राप्त कर लोगे। प्रश्न: महोदय, क्या आपकी कोई आवश्यकता या इच्छा है? क्या मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ?
एम: आप मुझे ऐसा क्या दे सकते हैं जो मेरे पास नहीं है? संतोष के लिए भौतिक वस्तुएँ आवश्यक हैं। लेकिन मैं स्वयं से संतुष्ट हूँ। मुझे और क्या चाहिए?
प्रश्न: निश्चित रूप से, जब आपको भूख लगती है तो आपको भोजन की आवश्यकता होती है और जब आप बीमार होते हैं तो आपको दवा की आवश्यकता होती है।
एम: भूख भोजन लाती है और बीमारी दवा। यह सब प्रकृति का काम है।
प्रश्न: यदि मैं कोई ऐसी वस्तु लाऊं जिसकी आपको आवश्यकता हो, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?
एम: जिस प्रेम ने आपको प्रस्ताव देने के लिए प्रेरित किया, वही प्रेम मुझे इसे स्वीकार करने के लिए भी प्रेरित करेगा।
प्रश्न: यदि कोई आपको एक सुंदर आश्रम बनाने का प्रस्ताव दे तो?
एम: उसे बिल्कुल ऐसा करने दो। उसे खूब पैसा खर्च करने दो, सैकड़ों लोगों को रोजगार देने दो, हजारों लोगों को भोजन कराने दो।
प्रश्न: क्या यह इच्छा नहीं है?
एम: बिलकुल नहीं। मैं तो बस उससे यही कह रहा हूँ कि वह इसे ठीक से करे, कंजूसी से या आधे-अधूरे मन से नहीं। वह अपनी इच्छा पूरी कर रहा है, मेरी नहीं। उसे इसे अच्छे से करने दो और मनुष्यों और देवताओं के बीच प्रसिद्धि प्राप्त करने दो।
प्रश्न: लेकिन क्या आप इसे चाहते हैं?
एम: मुझे यह नहीं चाहिए।
प्रश्न: क्या आप इसे स्वीकार करेंगे?
एम: मुझे इसकी जरूरत नहीं है।
प्रश्न: क्या आप इसमें रहेंगे?
एम: अगर मुझे विवश किया जाए।
प्रश्न: आपको क्या प्रेरित कर सकता है?
एम: उन लोगों के प्रति प्रेम जो प्रकाश की खोज में हैं।

प्रश्न: जी हाँ, मैं आपकी बात समझ गया। अब, मैं समाधि में कैसे जाऊँ?
एम: अगर आप सही अवस्था में हैं, तो आप जो कुछ भी देखेंगे, वह आपको समाधि में ले जाएगा। आखिर समाधि कोई असामान्य बात नहीं है। जब मन किसी विषय में गहन रुचि रखता है, तो वह उस विषय के साथ एक हो जाता है - देखने वाला और देखी जाने वाली वस्तु देखने में एक हो जाते हैं, सुनने वाला और सुनी जाने वाली वस्तु सुनने में एक हो जाते हैं, प्रेमी और प्रेम करने वाला प्रेम में एक हो जाते हैं। हर अनुभव समाधि का आधार बन सकता है।
प्रश्न: क्या आप हमेशा समाधि की अवस्था में रहते हैं?
एम: बिलकुल नहीं। समाधि तो मन की एक अवस्था है। मैं समाधि सहित सभी अनुभवों से परे हूँ। मैं महान भक्षक और संहारक हूँ: मैं जिस भी चीज को स्पर्श करता हूँ, वह आकाश में विलीन हो जाती है।
प्रश्न: मुझे आत्मसाक्षात्कार के लिए समाधि की आवश्यकता है।
एम: आपको आत्म-साक्षात्कार की जितनी आवश्यकता है, वह सब आपके पास है, लेकिन आप उस पर भरोसा नहीं करते। हिम्मत रखिए, खुद पर भरोसा रखिए, आगे बढ़िए, बात कीजिए, काम कीजिए; इसे खुद को साबित करने का मौका दीजिए। कुछ लोगों में आत्म-साक्षात्कार धीरे-धीरे आता है, लेकिन उन्हें किसी न किसी तरह समझाने की ज़रूरत पड़ती है। वे बदल चुके होते हैं, लेकिन उन्हें इसका एहसास नहीं होता। ऐसे साधारण मामले अक्सर सबसे भरोसेमंद होते हैं।
प्रश्न: क्या कोई व्यक्ति स्वयं को आत्मज्ञानी मानकर गलती कर सकता है? एम: बिलकुल। 'मैं आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर चुका हूँ' का विचार ही गलत है। प्राकृतिक अवस्था में 'मैं यह हूँ' या 'मैं वह हूँ' जैसी कोई बात नहीं होती।
62. सर्वोच्च ईश्वर में साक्षी प्रकट होता है

प्रश्नकर्ता: लगभग चालीस वर्ष पहले जे. कृष्णमूर्ति ने कहा था कि केवल जीवन ही है और व्यक्तित्वों और वैयक्तिकताओं की सारी बातें वास्तविकता में निराधार हैं। उन्होंने जीवन का वर्णन करने का प्रयास नहीं किया - उन्होंने केवल इतना कहा कि यद्यपि जीवन का वर्णन न तो आवश्यक है और न ही संभव है, फिर भी यदि इसके अनुभव में आने वाली बाधाओं को दूर कर दिया जाए तो इसका पूर्ण अनुभव किया जा सकता है। मुख्य बाधा समय के प्रति हमारी धारणा और आसक्ति में निहित है, अतीत के प्रकाश में भविष्य की परिकल्पना करने की हमारी आदत में। अतीत का कुल योग 'मैं था' बन जाता है, आशा किया गया भविष्य 'मैं होऊंगा' बन जाता है और जीवन 'मैं था' से 'मैं होऊंगा' की ओर निरंतर प्रयास है। वर्तमान क्षण, 'अभी' दृष्टि से ओझल हो जाता है। महाराज 'मैं हूं' की बात करते हैं। क्या यह 'मैं था' और 'मैं होऊंगा' की तरह एक भ्रम है, या इसमें कुछ वास्तविकता है? और यदि 'मैं हूं' भी एक भ्रम है, तो इससे मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? 'मैं हूं' से मुक्त 'मैं हूं' की धारणा ही निरर्थक है। क्या 'मैं हूँ' और 'मैं था' या 'मैं होऊंगा' के बीच कोई वास्तविक, कोई स्थायी अंतर है, जो समय के साथ बदलते रहते हैं, क्योंकि जुड़ती यादें नई अपेक्षाएँ पैदा करती हैं?
महाराज: वर्तमान 'मैं हूँ' उतना ही झूठा है जितना 'मैं था' और 'मैं होऊंगा'। यह मात्र मन में एक विचार है, स्मृति द्वारा छोड़ी गई एक छाप है, और इससे उत्पन्न होने वाली पृथक पहचान भी झूठी है। इस झूठे केंद्र का सहारा लेने की आदत को त्यागना होगा, 'मैं देखता हूँ', 'मैं महसूस करता हूँ', 'मैं सोचता हूँ', 'मैं करता हूँ' जैसी धारणाओं को चेतना के क्षेत्र से मिटाना होगा; जब

झूठ का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तब जो शेष रहता है, वही वास्तविक होता है।
प्रश्न: यह आत्म-विनाश की इतनी चर्चा किस बात की है? आत्म स्वयं का विनाश कैसे कर सकता है? किस प्रकार की आध्यात्मिक कलाबाजियाँ कलाबाज के लुप्त होने का कारण बन सकती हैं? अंत में वह अपने लुप्त होने पर अत्यंत गर्व के साथ पुनः प्रकट होगा।
एम: 'मैं हूँ' को मारने के लिए उसका पीछा करने की ज़रूरत नहीं है। आप ऐसा नहीं कर सकते। आपको बस वास्तविकता के लिए सच्ची तड़प की ज़रूरत है। हम इसे आत्म-भक्ति कहते हैं, परम सत्ता के प्रति प्रेम; या मोक्ष-संकल्प, असत्य से मुक्त होने का दृढ़ संकल्प। प्रेम और प्रेम से प्रेरित इच्छाशक्ति के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। वास्तविकता के बारे में केवल बातें करना और उसके लिए कुछ भी न करना आत्मघाती है। 'मैं हूँ' कहने वाले व्यक्ति और उस 'मैं हूँ' को देखने वाले के बीच प्रेम का संबंध होना चाहिए। जब तक देखने वाला, यानी भीतरी आत्मा, यानी 'उच्चतर' आत्मा, स्वयं को देखी जाने वाली वस्तु, यानी 'निम्नतर' आत्मा से अलग समझता है, उसका तिरस्कार करता है और उसकी निंदा करता है, तब तक स्थिति निराशाजनक है। केवल तभी जब देखने वाला (व्यक्त) व्यक्ति (व्यक्त) को स्वयं का प्रक्षेपण या अभिव्यक्ति मानकर स्वीकार करता है, और एक तरह से आत्मा को आत्मा में समाहित कर लेता है, तभी 'मैं' और 'यह' का द्वैत समाप्त होता है और बाह्य और आंतरिक की एकता में परम वास्तविकता प्रकट होती है।
द्रष्टा और दृश्य का यह मिलन तब होता है जब द्रष्टा स्वयं को द्रष्टा के रूप में सचेत करता है; वह केवल दृश्य में ही रुचि नहीं रखता, जो कि वह वैसे भी रखता है, बल्कि रुचि रखने में भी रुचि रखता है; ध्यान पर ध्यान देता है, और सचेत होने के प्रति सचेत रहता है। स्नेहपूर्ण जागरूकता ही वह महत्वपूर्ण कारक है जो वास्तविकता को स्पष्ट रूप से सामने लाती है। प्रश्न: थियोसोफिस्टों और उनसे जुड़े रहस्यवादियों के अनुसार, मनुष्य के तीन पहलू हैं: व्यक्तित्व, वैयक्तिकता और आध्यात्मिकता। आध्यात्मिकता से परे दैवीयता निहित है। व्यक्तित्व पूरी तरह से क्षणिक है और केवल एक जन्म के लिए ही मान्य है। यह शरीर के जन्म के साथ शुरू होता है और अगले शरीर के जन्म के साथ समाप्त हो जाता है। एक बार समाप्त हो जाने पर, यह हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है; कुछ मीठे या कड़वे सबक के अलावा इसका कुछ भी शेष नहीं रहता।
वैयक्तिकता का आरंभ पशु-मानव से होता है और पूर्ण मानव बनने पर समाप्त होता है। व्यक्तित्व और वैयक्तिकता के बीच का यह विभाजन हमारी वर्तमान मानवता की विशेषता है। एक ओर सत्य, अच्छाई और सुंदरता की लालसा से परिपूर्ण वैयक्तिकता है; दूसरी ओर आदत और महत्वाकांक्षा, भय और लोभ, निष्क्रियता और हिंसा के बीच का कुटिल संघर्ष है।
आध्यात्मिकता का पहलू अभी भी अधर में है। यह द्वैत के वातावरण में स्वयं को प्रकट नहीं कर सकता। केवल तभी जब व्यक्तित्व, वैयक्तिकता के साथ पुनः जुड़ जाता है और उसका एक सीमित, संभवतः, लेकिन सच्चा प्रकटीकरण बन जाता है, तभी आध्यात्मिक प्रकाश, प्रेम और सौंदर्य अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होते हैं।
आप व्यक्ति, व्यक्त, अव्यक्त (प्रेक्षक, प्रेक्षित और अवलोकन का आधार) के बारे में पढ़ाते हैं। क्या यह दूसरे दृष्टिकोण से मेल खाता है?

एम: जी हाँ, जब व्यक्ति, व्यक्त से अलग होकर अपने अस्तित्वहीन होने का अहसास करता है, और व्यक्त, व्यक्ति को अपनी ही अभिव्यक्ति के रूप में देखता है, तब अव्यक्त अवस्था की शांति और मौन उत्पन्न होते हैं। वास्तव में, तीनों एक ही हैं: व्यक्त और अव्यक्त अविभाज्य हैं, जबकि व्यक्ति पाँच तत्वों से निर्मित और पोषित शरीर पर आधारित, संवेदी-भावनात्मक-चिंतनशील प्रक्रिया है।
प्रश्न: व्यक्त और अव्यक्त के बीच क्या संबंध है?
एम: जब वे एक ही हैं तो संबंध कैसे हो सकता है? अलगाव और संबंध की सारी बातें 'मैं-शरीर हूँ' की विकृत और भ्रष्ट करने वाली धारणा के प्रभाव के कारण हैं। बाह्य आत्मा (व्यक्ति) केवल आंतरिक आत्मा (व्यक्त) का शरीर-मन पर प्रक्षेपण है, जो स्वयं परम आत्मा (अव्यक्त) की अभिव्यक्ति है, जो सब कुछ है और कुछ भी नहीं।
प्रश्न: कुछ शिक्षक ऐसे हैं जो उच्चतर आत्मा और निम्नतर आत्मा की बात नहीं करते। वे मनुष्य से इस प्रकार बात करते हैं मानो केवल निम्नतर आत्मा ही विद्यमान हो। न तो बुद्ध और न ही ईसा मसीह ने कभी उच्चतर आत्मा का उल्लेख किया। जे. कृष्णमूर्ति भी उच्चतर आत्मा का उल्लेख करने से कतराते हैं। ऐसा क्यों है?
एम: एक शरीर में दो आत्माएँ कैसे हो सकती हैं? 'मैं' एक ही है। कोई 'उच्चतर मैं' या 'निम्नतर मैं' नहीं है। मन की सभी अवस्थाएँ चेतना के समक्ष प्रस्तुत होती हैं और उनसे आत्म-पहचान होती है। अवलोकन की वस्तुएँ वैसी नहीं होतीं जैसी वे दिखती हैं और उनके प्रति जो अभिव्यक्तियाँ होती हैं, वे वैसी नहीं होतीं जैसी होनी चाहिए। यदि आप सोचते हैं कि बुद्ध, ईसा मसीह या कृष्णमूर्ति व्यक्ति से बात करते हैं, तो आप गलत हैं। वे भली-भांति जानते हैं कि व्यक्ति, बाह्य आत्मा, आंतरिक आत्मा, की मात्र छाया है, और वे केवल व्यक्त को ही संबोधित और अनुशासित करते हैं। वे उसे बाह्य आत्मा पर ध्यान देने, उसका मार्गदर्शन करने और उसकी सहायता करने, उसके प्रति उत्तरदायित्व महसूस करने के लिए कहते हैं; संक्षेप में, उसके प्रति पूर्णतः सजग रहने के लिए कहते हैं। जागरूकता परम सत्ता से आती है और आंतरिक आत्मा में व्याप्त होती है; तथाकथित बाह्य आत्मा केवल व्यक्ति के अस्तित्व का वह भाग है जिसके प्रति व्यक्ति सजग नहीं होता। व्यक्ति सचेत हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी सजग है, परन्तु वह सजग नहीं होता। जो कुछ भी जागरूकता में समाहित होता है, वह आंतरिक बन जाता है और आंतरिक का हिस्सा बन जाता है। आप इसे दूसरे शब्दों में भी कह सकते हैं: शरीर बाहरी स्व को परिभाषित करता है, चेतना आंतरिक स्व को, और शुद्ध जागरूकता में परम सत्ता से संपर्क स्थापित होता है।
प्रश्न: आपने कहा कि शरीर बाहरी व्यक्तित्व को परिभाषित करता है। चूंकि आपके पास शरीर है, तो क्या आपका कोई बाहरी व्यक्तित्व भी है?
एम: अगर मैं शरीर से जुड़ा होता और उसे स्वयं मान लेता, तो मैं ऐसा करता। प्रश्न: लेकिन आप इससे अवगत हैं और इसकी जरूरतों का ध्यान रखते हैं।
एम: इसके विपरीत कहना सत्य के अधिक निकट है—शरीर मुझे जानता है और मेरी आवश्यकताओं से अवगत है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। यह शरीर आपके मन में प्रकट होता है; मेरे मन में कुछ भी नहीं है।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि आप अपने शरीर के होने के बारे में पूरी तरह से अनजान हैं?
एम: इसके विपरीत, मुझे इस बात का एहसास है कि मेरा कोई शरीर नहीं है।

प्रश्न: मैंने आपको सिगरेट पीते देखा!
एम: बिलकुल सही। आप मुझे सिगरेट पीते हुए देखते हैं। खुद पता लगाइए कि आपको मुझे सिगरेट पीते हुए कैसे दिखाई दिया, और आपको आसानी से एहसास हो जाएगा कि यह आपकी 'मैं शरीर हूं' वाली मानसिकता ही है जो इस 'मैं आपको सिगरेट पीते हुए देख रहा हूं' के विचार के लिए जिम्मेदार है।
प्रश्न: शरीर है और मैं हूं। मैं शरीर को जानता हूं। इसके अलावा, मैं क्या हूं?
एम: शरीर और संसार से अलग कोई 'मैं' नहीं है। ये तीनों एक साथ प्रकट होते हैं और एक साथ लुप्त हो जाते हैं। मूल में 'मैं हूँ' का भाव निहित है। इससे आगे बढ़ो। 'मैं शरीर नहीं हूँ' का विचार मात्र 'मैं शरीर हूँ' के विचार का प्रतिकार है, जो कि असत्य है। वह 'मैं हूँ' क्या है? जब तक आप स्वयं को नहीं जानते, तब तक आप और क्या जान सकते हैं?
प्रश्न: आपकी बातों से मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि शरीर के बिना मुक्ति संभव नहीं है। यदि 'मैं शरीर नहीं हूँ' का विचार मुक्ति की ओर ले जाता है, तो शरीर की उपस्थिति अनिवार्य है।
एम: बिलकुल सही। शरीर के बिना, 'मैं शरीर नहीं हूँ' का विचार कैसे आ सकता है? 'मैं स्वतंत्र हूँ' का विचार उतना ही गलत है जितना 'मैं बंधन में हूँ' का विचार। इन दोनों में समान 'मैं हूँ' को खोजें और उससे आगे बढ़ें।
प्रश्न: यह सब सिर्फ एक सपना है।
एम: ये सब महज़ शब्द हैं, इनका आपके लिए क्या उपयोग है? आप शाब्दिक परिभाषाओं और सूत्रों के जाल में उलझे हुए हैं। अपनी अवधारणाओं और विचारों से परे जाइए; इच्छा और विचार की मौनता में ही सत्य पाया जाता है। प्रश्न: हमें यह याद रखना होगा कि हमें याद नहीं रखना है। कितना मुश्किल काम है!
एम: यह असंभव नहीं है, बिल्कुल। यह होना ही चाहिए। लेकिन यह तभी होता है जब आप वास्तव में इसकी आवश्यकता को समझते हैं। फिर से, लगन ही सफलता की कुंजी है।
प्रश्न: मेरे मन में लगातार एक भनभनाहट सी बनी रहती है। अनगिनत कमजोर विचार उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं और यह आकारहीन बादल हमेशा मेरे साथ रहता है। क्या आपके साथ भी ऐसा ही होता है? आपके मन में क्या चल रहा है?
एम: जहाँ मन नहीं होता, वहाँ उसका कोई सहारा भी नहीं होता। मैं पूरी तरह से आगे हूँ, मेरा कोई सहारा नहीं! शून्य बोलता है, शून्य बना रहता है। प्रश्न: क्या अब कोई मेमोरी नहीं बची है?
एम: बीते हुए सुख-दुख की कोई स्मृति शेष नहीं रहती। हर पल नए सिरे से जन्म लेता है।
प्रश्न: स्मृति के बिना आप सचेत नहीं हो सकते।
एम: बिल्कुल, मैं सचेत हूँ और इस बात से पूरी तरह अवगत हूँ। मैं कोई लकड़ी का टुकड़ा नहीं हूँ! चेतना और उसकी अंतर्मन की तुलना एक बादल से कीजिए। आप बादल के भीतर हैं, जबकि मैं आपको देख रहा हूँ। आप उसमें इस कदर खोए हुए हैं कि अपनी उंगलियों के सिरे भी मुश्किल से देख पा रहे हैं, जबकि मैं बादल और कई अन्य बादलों को, नीले आकाश को, सूर्य, चंद्रमा और तारों को देख रहा हूँ। वास्तविकता हम दोनों के लिए एक ही है, लेकिन आपके लिए यह एक जेल है और मेरे लिए यह एक घर है।
प्रश्न: आपने व्यक्ति (व्यक्ति), साक्षी (व्यक्त) और परम सत्ता (अव्यक्त) की बात की। इनमें से सर्वप्रथम कौन आता है?

एम: परम सत्ता में साक्षी प्रकट होता है। साक्षी व्यक्ति का सृजन करता है और स्वयं को उससे भिन्न मानता है। साक्षी देखता है कि व्यक्ति चेतना में प्रकट होता है, जो फिर साक्षी में प्रकट होती है। इस मूलभूत एकता का अहसास ही परम सत्ता का कार्य है। यह साक्षी के पीछे की शक्ति है, वह स्रोत जिससे सब कुछ प्रवाहित होता है। इससे संपर्क तभी संभव है जब व्यक्ति और साक्षी के बीच एकता, प्रेम और पारस्परिक सहयोग हो, जब कर्म, अस्तित्व और ज्ञान के सामंजस्य में हो। परम सत्ता ऐसे सामंजस्य का स्रोत और फल दोनों है। जब मैं आपसे बात कर रहा हूँ, मैं अनासक्त लेकिन स्नेहपूर्ण जागरूकता (तुरिया) की अवस्था में हूँ। जब यह जागरूकता स्वयं पर केंद्रित होती है, तो आप इसे परम अवस्था (तुरियातीत) कह सकते हैं। लेकिन मूल वास्तविकता जागरूकता से परे है, होने, होने और न होने की तीन अवस्थाओं से परे है।
प्रश्न: यहाँ मेरा मन उच्च विषयों में लगा रहता है और उन पर चिंतन करना मुझे सहज और सुखद लगता है, ऐसा क्यों है? घर लौटने पर मैं यहाँ सीखी हुई सारी बातें भूल जाता हूँ, चिंता और बेचैनी में डूबा रहता हूँ, और एक पल के लिए भी अपने वास्तविक स्वभाव को याद नहीं कर पाता। इसका कारण क्या हो सकता है?
एम: तुम अपने बचपने की ओर लौट रहे हो। तुम अभी पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुए हो; तुम्हारे अंदर कुछ ऐसे पहलू हैं जो अविकसित रह गए हैं क्योंकि उन पर ध्यान नहीं दिया गया। बस अपने अंदर की उन चीजों पर पूरा ध्यान दो जो अशिष्ट और आदिम हैं, तर्कहीन और निर्दयी हैं, पूरी तरह से बचकानी हैं, और तुम परिपक्व हो जाओगे। हृदय और मन की परिपक्वता ही आवश्यक है। यह सहजता से तब आती है जब मुख्य बाधा दूर हो जाती है - असावधानी, अनभिज्ञता। जागरूकता में ही विकास होता है।

63. कर्तापन की धारणा बंधन है

प्रश्नकर्ता: हम कुछ समय से सत्य साई बाबा आश्रम में रह रहे हैं। हमने तिरुवनमलाई स्थित श्री रमणाश्रम में भी दो महीने बिताए हैं। अब हम वापस संयुक्त राज्य अमेरिका जा रहे हैं।
महाराज: क्या भारत ने आपमें कोई बदलाव लाया?
प्रश्न: हमें ऐसा लगता है जैसे हमारा बोझ उतर गया है। श्री सत्य साई बाबा ने हमसे कहा था कि सब कुछ उन पर छोड़ दो और बस हर दिन यथासंभव धार्मिकता से जियो। वे हमसे कहते थे, 'अच्छे बनो और बाकी सब मुझ पर छोड़ दो।'
एम: आप श्री रामनाश्रम में क्या कर रहे थे?
प्रश्न: हम गुरु द्वारा दिए गए मंत्र का जाप कर रहे थे। हमने कुछ ध्यान भी किया। हमने ज्यादा चिंतन या अध्ययन नहीं किया; हम बस शांत रहने की कोशिश कर रहे थे। हम भक्ति मार्ग पर हैं और दर्शनशास्त्र में हमारा ज्ञान कम है। हमें ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है - बस अपने गुरु पर भरोसा रखते हैं और अपना जीवन जीते हैं।
एम: अधिकांश भक्त अपने गुरु पर तभी तक भरोसा करते हैं जब तक सब कुछ ठीक चल रहा होता है। मुसीबतें आने पर वे निराश हो जाते हैं और दूसरे गुरु की तलाश में निकल पड़ते हैं।
प्रश्न: जी हाँ, हमें इस खतरे के बारे में चेतावनी दी गई थी। हम कठिन और आसान दोनों को साथ लेकर चलने की कोशिश कर रहे हैं। 'सब कुछ ईश्वर की कृपा है' का भाव बहुत प्रबल होना चाहिए। एक साधु पूर्व दिशा की ओर चल रहे थे, तभी

अचानक तेज हवा चलने लगी। साधु ने मुड़कर पश्चिम दिशा की ओर चलना शुरू कर दिया। हम भी ठीक उसी तरह जीवन जीना चाहते हैं - अपने गुरु द्वारा भेजे गए परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढालना चाहते हैं।
एम: केवल जीवन है। जीवन जीने वाला कोई नहीं है।
प्रश्न: हम यह समझते हैं, फिर भी हम लगातार जीने के बजाय अपने जीवन को जीने का प्रयास करते रहते हैं। भविष्य के लिए योजना बनाना हमारी एक अटूट आदत बन गई है।
एम: चाहे आप योजना बनाएं या न बनाएं, जीवन चलता रहता है। लेकिन जीवन में ही मन में एक छोटा सा भंवर उठ खड़ा होता है, जो कल्पनाओं में खो जाता है और खुद को जीवन पर हावी और नियंत्रित करने वाला समझता है। जीवन स्वयं इच्छा रहित है। लेकिन यह झूठा स्व सुखद रूप से जीवन को जारी रखना चाहता है। इसलिए यह हमेशा अपनी निरंतरता सुनिश्चित करने में लगा रहता है। जीवन निर्भीक और स्वतंत्र है। जब तक आपके मन में घटनाओं को प्रभावित करने का विचार है, तब तक मुक्ति आपके लिए नहीं है: कर्ता होने का, कारण बनने का विचार ही बंधन है।
प्रश्न: कर्ता और कर्म के द्वंद्व को हम कैसे दूर कर सकते हैं?
एम: जीवन को अनंत, अविभाजित, सर्वव्यापी और सर्वसक्रिय रूप में चिंतन करें, जब तक कि आप स्वयं को इसके साथ एकरूप न महसूस कर लें। यह बहुत कठिन भी नहीं है, क्योंकि अंततः आप अपनी स्वाभाविक अवस्था में ही लौटेंगे।
जब आपको यह अहसास हो जाता है कि सब कुछ भीतर से ही आता है, कि जिस संसार में आप रहते हैं वह आप पर थोपा नहीं गया है बल्कि आपने ही बनाया है, तो आपका भय समाप्त हो जाता है। इस अहसास के बिना आप स्वयं को बाहरी तत्वों से जोड़ लेते हैं, जैसे शरीर, मन, समाज, राष्ट्र, मानवता, यहाँ तक कि ईश्वर या परम सत्ता से भी। लेकिन ये सब भय से बचने के उपाय हैं। जब आप अपने छोटे से संसार के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह स्वीकार करते हैं और उसके निर्माण, संरक्षण और विनाश की प्रक्रिया को देखते हैं, तभी आप अपने काल्पनिक बंधन से मुक्त हो सकते हैं।
प्रश्न: मुझे खुद को इतना दुखी क्यों समझना चाहिए?
एम: आप ये सब आदत से ही करते हैं। अपने सोचने-समझने के तरीके बदलें, उनका जायज़ा लें और गहराई से जांच करें। आप अनजाने में ही बंधन में हैं। ध्यान ही मुक्ति दिलाता है। आप बहुत सी बातों को हल्के में ले रहे हैं। सवाल करना शुरू करें। सबसे स्पष्ट बातें ही सबसे ज़्यादा संदेह पैदा करती हैं। खुद से ऐसे सवाल पूछें: 'क्या मैं सचमुच पैदा हुआ था?' 'क्या मैं सचमुच ऐसा हूँ?' 'मुझे कैसे पता कि मेरा अस्तित्व है?' 'मेरे माता-पिता कौन हैं?' 'क्या उन्होंने मुझे बनाया है, या मैंने उन्हें?' 'क्या मुझे अपने बारे में बताई गई हर बात पर विश्वास करना चाहिए?' 'आखिर मैं हूँ कौन?' आपने अपने लिए एक जेल बनाने में बहुत ऊर्जा खर्च की है। अब उतनी ही ऊर्जा इसे तोड़ने में लगाएं। दरअसल, तोड़ना आसान है, क्योंकि झूठ का पता चलते ही वह घुल जाता है। सब कुछ 'मैं हूँ' के विचार पर टिका है। इसकी गहराई से जांच करें। यही हर परेशानी की जड़ है। यह एक तरह का आवरण है जो आपको वास्तविकता से अलग करता है। वास्तविकता आवरण के अंदर और बाहर दोनों जगह है, लेकिन आवरण स्वयं वास्तविक नहीं है। यह 'मैं हूँ' का विचार आपके साथ जन्म से नहीं आया था। आप इसके बिना भी सुखमय जीवन जी सकते थे। यह बाद में आपके शरीर के साथ आत्म-पहचान के कारण आया। इसने एक ऐसे अलगाव का भ्रम पैदा किया जहाँ कोई अलगाव था ही नहीं। इसने आपको अपनी ही दुनिया में अजनबी बना दिया और दुनिया को पराया

और शत्रुतापूर्ण बना दिया। 'मैं हूँ' की भावना के बिना भी जीवन चलता रहता है। ऐसे क्षण भी आते हैं जब हम 'मैं हूँ' की भावना के बिना भी शांत और प्रसन्न होते हैं। 'मैं हूँ' की भावना के वापस आते ही मुसीबतें शुरू हो जाती हैं।
प्रश्न: 'मैं' की भावना से मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है?
एम: अगर आप 'मैं' की भावना से मुक्त होना चाहते हैं, तो आपको उससे निपटना होगा। इसे क्रियाशील और शांत अवस्था में देखें, यह कैसे शुरू होती है और कब समाप्त होती है, यह क्या चाहती है और कैसे प्राप्त करती है, जब तक कि आप इसे स्पष्ट रूप से न देख लें और पूरी तरह समझ न लें। आखिरकार, सभी योग, चाहे उनका स्रोत और स्वरूप कुछ भी हो, उनका केवल एक ही उद्देश्य है: आपको अलग अस्तित्व के संकट से बचाना, एक विशाल और सुंदर चित्र में एक अर्थहीन बिंदु होने से बचाना।
आप इसलिए पीड़ित हैं क्योंकि आपने स्वयं को वास्तविकता से अलग कर लिया है और अब आप इस अलगाव से मुक्ति पाना चाहते हैं। आप अपनी ही सनक से बच नहीं सकते। आप केवल उन्हें पालना बंद कर सकते हैं।
‘मैं हूँ’ की अवधारणा झूठी है, इसीलिए यह बनी रहना चाहती है। वास्तविकता को निरंतर बने रहने की आवश्यकता नहीं है— स्वयं को अविनाशी जानते हुए, यह रूपों और अभिव्यक्तियों के विनाश के प्रति उदासीन है। ‘मैं हूँ’ की अवधारणा को सुदृढ़ और स्थिर करने के लिए हम तरह-तरह के प्रयास करते हैं— सब व्यर्थ, क्योंकि ‘मैं हूँ’ पल-पल पुनर्निर्मित होता रहता है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है और इसका एकमात्र मौलिक समाधान यही है कि ‘मैं अमुक व्यक्ति हूँ’ की अलगाववादी भावना को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाए। अस्तित्व तो बना रहता है, लेकिन आत्म-अस्तित्व नहीं।
प्रश्न: मेरी कुछ निश्चित आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाएँ हैं। क्या मुझे उनकी पूर्ति के लिए काम नहीं करना चाहिए?
एम: कोई भी महत्वाकांक्षा आध्यात्मिक नहीं होती। सभी महत्वाकांक्षाएँ 'मैं' की प्राप्ति के लिए होती हैं। यदि आप वास्तविक प्रगति करना चाहते हैं, तो आपको व्यक्तिगत उपलब्धि के सभी विचारों का त्याग करना होगा। तथाकथित योगियों की महत्वाकांक्षाएँ बेतुकी हैं। शाश्वत व्यक्तिगत आनंद की लालसा की तुलना में किसी पुरुष की स्त्री के प्रति इच्छा स्वयं एक पवित्रता है। मन धोखेबाज है। यह जितना पवित्र प्रतीत होता है, उतना ही बड़ा विश्वासघात होता है।
प्रश्न: लोग अक्सर अपनी सांसारिक परेशानियों को लेकर आपके पास आते हैं और मदद मांगते हैं। आपको कैसे पता चलता है कि उन्हें क्या कहना चाहिए?
एम: मैं उन्हें वही बताता हूँ जो उस समय मेरे मन में आता है। लोगों से व्यवहार करने का मेरा कोई मानक तरीका नहीं है।
प्रश्न: आप स्वयं पर बहुत आश्वस्त हैं। लेकिन जब लोग मुझसे सलाह लेने आते हैं, तो मुझे कैसे यकीन होगा कि मेरी सलाह सही है?
एम: ध्यान रखें कि आप किस अवस्था में हैं, किस स्तर से बात कर रहे हैं। यदि आप मन के बल पर बात करते हैं, तो आप गलत हो सकते हैं। यदि आप स्थिति की पूरी समझ के साथ, अपनी मानसिक आदतों को दरकिनार रखते हुए बात करते हैं, तो आपकी सलाह सटीक हो सकती है। मुख्य बात यह है कि आप पूरी तरह से जागरूक रहें कि न तो आप और न ही आपके सामने वाला व्यक्ति मात्र शरीर हैं; यदि आपकी जागरूकता स्पष्ट और पूर्ण है, तो गलती की संभावना कम हो जाती है।

64. जो भी आपको प्रसन्न करता है, वही आपको पीछे खींचता है।

प्रश्नकर्ता: मैं एक सेवानिवृत्त चार्टर्ड अकाउंटेंट हूँ और मेरी पत्नी गरीब महिलाओं के लिए सामाजिक कार्य करती हैं। हमारा बेटा अमेरिका जा रहा है और हम उसे विदा करने आए हैं। हम पंजाबी हैं, लेकिन दिल्ली में रहते हैं। हमारे गुरु राधा-स्वामी धर्म के अनुयायी हैं और हम सत्संग को बहुत महत्व देते हैं। हमें यहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम कई धर्मनिष्ठ व्यक्तियों से मिल चुके हैं और एक और धर्मनिष्ठ व्यक्ति से मिलकर हमें प्रसन्नता हुई है।
महाराज: आपने अनेक संन्यासियों और तपस्वियों से मुलाकात की होगी, परन्तु अपने दैवीय स्वरूप (स्वरूप) के प्रति सजग पूर्णतः आत्मज्ञानी व्यक्ति मिलना कठिन है। संत और योगी अथक परिश्रम और बलिदानों से अनेक चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं और लोगों की सहायता करने तथा आस्था जगाने में अनेक कार्य कर सकते हैं, परन्तु इससे वे परिपूर्ण नहीं हो जाते। यह वास्तविकता का मार्ग नहीं, परन्तु असत्य को ही समृद्ध करना है। प्रत्येक प्रयास से और अधिक प्रयास की उत्पत्ति होती है; जो कुछ भी सृजित किया गया है, उसका संरक्षण करना आवश्यक है, जो कुछ भी अर्जित किया गया है, उसे क्षय या हानि से बचाना आवश्यक है। जो कुछ भी खो सकता है, वह वास्तव में अपना नहीं है; और जो आपका अपना नहीं है, वह आपके किस काम का? मेरे संसार में कुछ भी धकेला नहीं जाता, सब कुछ स्वतः घटित होता है। समस्त अस्तित्व अंतरिक्ष और समय में है, सीमित और क्षणभंगुर। जो अस्तित्व का अनुभव करता है, वह भी सीमित और क्षणभंगुर है। मुझे न तो 'क्या विद्यमान है' से कोई सरोकार है और न ही 'कौन विद्यमान है' से। मैं उससे परे, उस स्थान पर विराजमान हूँ जहाँ मैं दोनों हूँ और न ही दोनों।
जो लोग अथक परिश्रम और तपस्या के बाद अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करते हैं और उच्च स्तर का अनुभव और कर्म प्राप्त करते हैं, वे आमतौर पर अपनी स्थिति के प्रति अत्यंत सजग होते हैं; वे लोगों को निम्नतम असफल व्यक्ति से लेकर उच्चतम सफल व्यक्ति तक के क्रम में रखते हैं। मेरे लिए सभी समान हैं। दिखावट और भाव-भंगिमा में अंतर होता है, पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जैसे सोने के आभूषण का आकार सोने पर कोई प्रभाव नहीं डालता, वैसे ही मनुष्य का सार अप्रभावित रहता है। जहाँ समानता की यह भावना नहीं होती, वहाँ वास्तविकता से अनभिज्ञता का भाव होता है।
मात्र ज्ञान पर्याप्त नहीं; ज्ञानी का ज्ञान होना आवश्यक है। पंडित और योगी अनेक बातें जानते होंगे, परन्तु जब आत्मज्ञान ही न हो तो मात्र ज्ञान का क्या लाभ? उसका निश्चित रूप से दुरुपयोग होगा। ज्ञानी के ज्ञान के बिना शांति संभव नहीं।
प्रश्न: कोई व्यक्ति ज्ञाता को कैसे जान सकता है?
एम: मैं आपको केवल वही बता सकता हूँ जो मुझे अपने अनुभव से पता है। जब मैं अपने गुरु से मिला, तो उन्होंने मुझसे कहा: 'तुम वह नहीं हो जो तुम खुद को समझते हो। जानो कि तुम क्या हो। 'मैं हूँ' की भावना पर ध्यान दो, अपने वास्तविक स्वरूप को खोजो।' मैंने उनकी बात मानी, क्योंकि मुझे उन पर भरोसा था। मैंने वैसा ही किया जैसा उन्होंने कहा था। मैं अपना सारा खाली समय चुपचाप स्वयं को निहारने में बिताता था। और इससे कितना फर्क पड़ा, और कितनी जल्दी! मुझे अपने सच्चे स्वरूप को जानने में केवल तीन साल लगे। मेरे गुरु का निधन मुझसे मिलने के कुछ समय बाद ही हो गया, लेकिन इससे कोई फर्क

नहीं पड़ा। मुझे उनकी कही बातें याद रहीं और मैंने अपना प्रयास जारी रखा।
इसका फल मेरे सामने है।
प्रश्न: यह क्या है?
एम: मैं स्वयं को यथार्थ रूप में जानता हूँ। मैं न तो शरीर हूँ, न मन, न ही मानसिक क्षमताएँ। मैं इन सबसे परे हूँ।
प्रश्न: क्या तुम बिल्कुल कुछ भी नहीं हो?
एम: अरे, समझदारी से काम लो। बेशक मैं हूँ, स्पष्ट रूप से। बस मैं वैसा नहीं हूँ जैसा तुम मुझे समझते हो। इससे तुम्हें सब पता चल जाएगा।
प्रश्न: इससे मुझे कुछ पता नहीं चलता।
एम: क्योंकि इसे बताया नहीं जा सकता। आपको स्वयं इसका अनुभव करना होगा। आप भौतिक और मानसिक चीजों से निपटने के आदी हैं। मैं कोई वस्तु नहीं हूँ, न ही आप। हम न तो पदार्थ हैं, न ऊर्जा, न शरीर, न मन। एक बार जब आपको अपने अस्तित्व की झलक मिल जाएगी, तो आपको मुझे समझना कठिन नहीं लगेगा।
हम सुनी-सुनाई बातों पर बहुत सी चीजों पर विश्वास कर लेते हैं। हम दूर-दराज के देशों और लोगों पर, स्वर्ग और नरक पर, देवी-देवताओं पर विश्वास करते हैं, क्योंकि हमें बताया गया है। इसी तरह, हमें अपने बारे में, अपने माता-पिता के बारे में, नाम, पद, कर्तव्यों आदि के बारे में बताया गया है। हमने कभी इसकी सत्यता की जाँच नहीं की। सत्य का मार्ग असत्य के नाश से होकर गुजरता है। असत्य को नाश करने के लिए, आपको अपनी सबसे गहरी मान्यताओं पर प्रश्न उठाना होगा। इनमें से सबसे बुरी मान्यता यह है कि आप शरीर हैं। शरीर के साथ संसार आता है, संसार के साथ - ईश्वर, जिसने संसार की रचना की है और इस प्रकार संसार का आरंभ होता है - भय, धर्म, प्रार्थनाएँ, बलिदान, सभी प्रकार की प्रणालियाँ - ये सब उस शिशु-मनुष्य की रक्षा और समर्थन के लिए हैं, जो अपने ही बनाए राक्षसों से भयभीत है। यह समझें कि आप जो हैं वह न तो जन्म ले सकते हैं और न ही मर सकते हैं, और भय के दूर होते ही सभी दुख समाप्त हो जाते हैं।
मन जो कुछ भी गढ़ता है, मन ही उसे नष्ट कर देता है। परन्तु वास्तविकता न गढ़ी जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। उस पर पकड़ बनाए रखो जिस पर मन का कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम्हें जिस विषय में बता रहा हूँ, वह न तो अतीत में है और न ही भविष्य में। न ही यह वर्तमान में प्रवाहित होने वाले दैनिक जीवन में निहित है। यह कालातीत है और इसकी पूर्ण कालातीतता मन की सीमा से परे है। मेरे गुरु और उनके वचन: 'तुम ही मैं हो' कालातीत रूप से मेरे साथ हैं। आरंभ में मुझे अपना मन उन पर केंद्रित करना पड़ा, परन्तु अब यह सहज और स्वाभाविक हो गया है। वह क्षण जब मन गुरु के वचनों को सत्य मानकर सहजता से अपने दैनिक जीवन के हर पहलू में उनका अनुसरण करता है, वही आत्मज्ञान की दहलीज है। एक प्रकार से यह आस्था द्वारा मोक्ष है, परन्तु आस्था गहन और स्थायी होनी चाहिए।
लेकिन आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल आस्था ही पर्याप्त है। कर्म में व्यक्त आस्था ही मोक्ष का अचूक साधन है। सभी साधनों में यह सबसे प्रभावी है। कुछ शिक्षक आस्था का खंडन करते हैं और केवल तर्क पर भरोसा करते हैं। वास्तव में वे आस्था का खंडन नहीं करते, बल्कि अंधविश्वासों का खंडन करते हैं। आस्था अंधी नहीं होती। यह प्रयास करने की इच्छाशक्ति है।
प्रश्न: हमें बताया गया है कि सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं में, केवल साक्षी भाव से साधना करना सबसे अधिक प्रभावी है। इसकी तुलना आस्था से कैसे की जा सकती है?

एम: साक्षी भाव भी आस्था ही है; यह स्वयं पर आस्था है। आप मानते हैं कि आप वह नहीं हैं जो आप अनुभव करते हैं और आप हर चीज़ को दूर से देखते हैं। साक्षी भाव में कोई प्रयास नहीं होता। आप समझते हैं कि आप ही साक्षी हैं और यही समझ क्रिया करती है। आपको और कुछ नहीं चाहिए, बस याद रखें कि आप ही साक्षी हैं। यदि साक्षी भाव में आप स्वयं से पूछें: 'मैं कौन हूँ?', तो उत्तर तुरंत मिल जाता है, भले ही वह शब्दहीन और मौन हो। जो कुछ भी घटित होता है, उसका विषय बनना छोड़ दें; एक बार भीतर की ओर मुड़ने पर, आप स्वयं को विषय से परे पाएंगे। जब आप स्वयं को पा लेंगे, तो आप पाएंगे कि आप विषय से भी परे हैं, कि विषय और विषय दोनों आप में विद्यमान हैं, लेकिन आप दोनों में से कोई नहीं हैं।
प्रश्न: आप मन की बात करते हैं, मन से परे साक्षी चेतना की बात करते हैं और उस परम सत्ता की बात करते हैं जो जागरूकता से परे है। क्या आपका तात्पर्य यह है कि जागरूकता भी वास्तविक नहीं है?
एम: जब तक आप वास्तविक-अवास्तविक के संदर्भ में बात करते रहेंगे, तब तक चेतना ही एकमात्र वास्तविकता रहेगी। लेकिन परम सत्ता सभी भेदों से परे है और उस पर 'वास्तविक' शब्द लागू नहीं होता, क्योंकि उसमें सब कुछ वास्तविक है, इसलिए उसे ऐसा नाम देने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं वास्तविकता का स्रोत है, वह जिस भी चीज को स्पर्श करती है, उसे वास्तविकता प्रदान करती है। उसे शब्दों से समझा ही नहीं जा सकता। यहाँ तक कि प्रत्यक्ष अनुभव, चाहे वह कितना भी उत्कृष्ट क्यों न हो, केवल गवाही देता है, इससे अधिक कुछ नहीं। प्रश्न: लेकिन दुनिया का निर्माण कौन करता है?
एम: चिदाकाश (सर्वव्यापी मन) ही सब कुछ बनाता और बिगाड़ता है। परमकाश (परमकाश) ही हर उस चीज़ को वास्तविकता प्रदान करता है जो अस्तित्व में आती है। इसे सार्वभौमिक प्रेम कहना ही शायद शब्दों में इसका सबसे सटीक वर्णन है। प्रेम की ही तरह यह सब कुछ वास्तविक, सुंदर और मनभावन बना देता है। प्रश्न: यह वांछनीय क्यों है?
एम: क्यों नहीं? सभी सृजित वस्तुओं को एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रिया करने और लोगों को आपस में जोड़ने वाले ये शक्तिशाली आकर्षण, अगर सर्वोच्च सत्ता से नहीं आते तो फिर कहाँ से आते हैं? इच्छाओं का त्याग न करो; बस यह सुनिश्चित करो कि वे सही दिशा में प्रवाहित हों। इच्छाओं के बिना तुम मृत हो। परन्तु नीच इच्छाओं के साथ तुम प्रेत के समान हो।
प्रश्न: वह कौन सा अनुभव है जो परम सत्ता के सबसे निकट आता है?
एम: असीम शांति और अनंत प्रेम। यह महसूस करो कि ब्रह्मांड में जो कुछ भी सत्य, श्रेष्ठ और सुंदर है, वह सब तुमसे ही उत्पन्न होता है, तुम स्वयं ही उसके स्रोत हो। संसार की देखरेख करने वाले देवी-देवता भले ही कितने ही अद्भुत और गौरवशाली प्राणी हों; फिर भी वे उन भव्य वस्त्रधारी सेवकों के समान हैं जो अपने स्वामी की शक्ति और धन का बखान करते हैं।
प्रश्न: सर्वोच्च अवस्था तक कैसे पहुंचा जा सकता है?
एम: सभी छोटी इच्छाओं का त्याग करके। जब तक आप छोटी इच्छाओं से संतुष्ट रहेंगे, तब तक आप सर्वोच्च को प्राप्त नहीं कर सकते। जो भी आपको प्रसन्न करता है, वही आपको पीछे खींचता है। जब तक आप हर चीज की असंतोषजनकता, उसकी क्षणभंगुरता और सीमाओं को नहीं समझ लेते और अपनी सारी ऊर्जा को एक महान लालसा में केंद्रित नहीं कर लेते, तब तक पहला कदम भी नहीं उठाया जा सकता। दूसरी ओर, परम सत्ता की सच्ची इच्छा स्वयं परम सत्ता का आह्वान है। कोई भी चीज, चाहे भौतिक हो या मानसिक, आपको मुक्ति नहीं दे सकती। आप तभी मुक्त

होते हैं जब आप यह समझ जाते हैं कि आपका बंधन आपने स्वयं बनाया है और आप अपने ऊपर बंधन लगाने वाली जंजीरों को बनाना बंद कर देते हैं।
प्रश्न: गुरु में आस्था कैसे उत्पन्न होती है?
एम: गुरु को पाना और उन पर भरोसा करना दुर्लभ सौभाग्य है। ऐसा अक्सर नहीं होता।
प्रश्न: क्या भाग्य ही सब कुछ निर्धारित करता है?
एम: इसे नियति कहना कुछ खास स्पष्टीकरण नहीं देता। जब ऐसा होता है तो आप यह नहीं बता सकते कि ऐसा क्यों हुआ, और आप बस अपनी अज्ञानता को कर्म, कृपा या ईश्वर की इच्छा कहकर छुपाते हैं।
प्रश्न: कृष्णमूर्ति कहते हैं कि गुरु की आवश्यकता नहीं है।
एम: किसी को तो आपको परम सत्य और उस तक पहुँचने के मार्ग के बारे में बताना ही होगा। कृष्णमूर्ति यही कर रहे हैं। एक तरह से वे सही हैं - तथाकथित शिष्यों में से अधिकांश अपने गुरुओं पर विश्वास नहीं करते; वे उनकी अवज्ञा करते हैं और अंततः उन्हें त्याग देते हैं। ऐसे शिष्यों के लिए यह कहीं अधिक बेहतर होता कि उनका कोई गुरु ही न होता और वे मार्गदर्शन के लिए केवल अपने भीतर ही देखते। एक जीवित गुरु को पाना एक दुर्लभ अवसर और एक बड़ी ज़िम्मेदारी है। इन बातों को हल्के में नहीं लेना चाहिए। आप लोग स्वर्ग को खरीदने के लिए तत्पर हैं और सोचते हैं कि गुरु उसे कीमत लेकर प्रदान करेंगे। आप कम देकर बहुत कुछ माँगकर सौदा करने की कोशिश करते हैं। आप केवल स्वयं को धोखा देते हैं।
प्रश्न: आपके गुरु ने आपको बताया कि आप ही सर्वोच्च हैं और आपने उन पर विश्वास करके उस पर अमल किया। आपको यह विश्वास किस बात से मिला?
एम: मान लीजिए, मैं तो बस समझदार थी। उस पर अविश्वास करना मूर्खता होती। भला मुझे गुमराह करने में उसका क्या स्वार्थ हो सकता था?
प्रश्न: आपने एक प्रश्नकर्ता से कहा कि हम सब एक समान हैं, हम बराबर हैं। मुझे इस पर विश्वास नहीं हो रहा है। चूंकि मुझे इस पर विश्वास नहीं है, तो आपके इस कथन का मेरे लिए क्या उपयोग है?
एम: आपके अविश्वास से कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी बातें सच हैं और वे अपना असर दिखाएंगी। यही तो नेक संगति (सत्संग) की खूबसूरती है।
प्रश्न: क्या आपके पास मात्र बैठना भी आध्यात्मिक अभ्यास माना जा सकता है? एम: बिल्कुल। जीवन की नदी बह रही है। इसका कुछ पानी यहाँ है, लेकिन इसका बहुत सारा पानी अपने गंतव्य तक पहुँच चुका है। तुम केवल वर्तमान को जानते हो। मैं अतीत और भविष्य में बहुत दूर तक देख सकता हूँ, तुम क्या हो और क्या बन सकते हो, यह सब देख सकता हूँ। मैं तुम्हें स्वयं के समान ही देखता हूँ। प्रेम का मूल स्वभाव ही है कि वह कोई भेद नहीं देखता।
प्रश्न: मैं खुद को वैसे कैसे देख सकता हूँ जैसे आप मुझे देखते हैं?
एम: इतना ही काफी है कि आप स्वयं को शरीर न समझें। 'मैं ही शरीर हूँ' का विचार ही सबसे बड़ा विनाशकारी है। यह आपको आपके वास्तविक स्वरूप से पूरी तरह अंधा कर देता है। एक पल के लिए भी यह न सोचें कि आप शरीर हैं। स्वयं को कोई नाम, कोई आकार न दें। अंधकार और मौन में ही वास्तविकता निहित है। प्रश्न: क्या मुझे इस दृढ़ विश्वास के साथ नहीं सोचना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूँ? मुझे यह दृढ़ विश्वास कहाँ से मिलेगा?
एम: ऐसा व्यवहार करो मानो तुम पूरी तरह आश्वस्त हो, आत्मविश्वास अपने आप आ जाएगा। मात्र शब्दों का क्या लाभ? कोई सूत्र या मानसिक पैटर्न तुम्हारी

मदद नहीं करेगा। परन्तु निस्वार्थ कर्म, शरीर और उसके हितों से मुक्त होकर, तुम्हें वास्तविकता के मूल तक ले जाएगा।
प्रश्न: बिना दृढ़ विश्वास के कार्य करने का साहस मुझे कहाँ से मिलेगा? एम: प्यार आपको साहस देगा। जब आप किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो पूरी तरह से प्रशंसनीय, प्रेम के योग्य और उदात्त है, तो आपका प्यार और प्रशंसा आपको नेक काम करने की प्रेरणा देगी।
प्रश्न: प्रशंसनीय चीजों की प्रशंसा करना हर किसी को नहीं आता। अधिकतर लोग बिल्कुल असंवेदनशील होते हैं।
एम: जीवन उन्हें मूल्य बोध कराएगा। संचित अनुभव का भार ही उन्हें दृष्टि प्रदान करेगा। जब आप किसी योग्य व्यक्ति से मिलेंगे, तो आप उससे प्रेम करेंगे, उस पर विश्वास करेंगे और उसकी सलाह मानेंगे। यही आत्मज्ञानी लोगों का कर्तव्य है - पूर्णता का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना जिसे दूसरे सराहें और प्रेम करें। जीवन और चरित्र की सुंदरता जनहित में एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।
प्रश्न: क्या विकास के लिए हमें कष्ट सहना नहीं पड़ता?
एम: यह जानना ही काफी है कि दुख है, संसार दुखों से ग्रस्त है। न तो सुख और न ही दुख अपने आप में ज्ञान प्रदान करते हैं। केवल समझ ही ऐसा करती है। एक बार जब आप इस सत्य को समझ लेते हैं कि संसार दुखों से भरा है, कि जन्म लेना ही एक विपत्ति है, तो आपको इससे परे जाने की प्रेरणा और ऊर्जा प्राप्त होगी। सुख आपको सुला देता है और दुख आपको जगा देता है। यदि आप दुख नहीं सहना चाहते, तो सोइए मत। आप केवल आनंद से स्वयं को नहीं जान सकते, क्योंकि आनंद ही आपका मूल स्वभाव है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको अपने विपरीत, अपने विपरीत स्वरूप का सामना करना होगा।

65. शांत मन ही काफी है

प्रश्नकर्ता: मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मुझे काफी कमजोरी महसूस हो रही है। मुझे क्या करना चाहिए?
महाराज: कौन अस्वस्थ है, आप या शरीर?
प्रश्न: मेरा शरीर, बिल्कुल।
एम: कल आप ठीक महसूस कर रहे थे। क्या ठीक महसूस कर रहे थे?
प्रश्न: शरीर।
एम: जब शरीर स्वस्थ था तब आप खुश थे और जब शरीर अस्वस्थ है तब आप दुखी हैं।
कौन ऐसा है जो एक दिन खुश होता है और अगले दिन दुखी?
प्रश्न: मन।
एम: और परिवर्तनशील मन को कौन जानता है?
प्रश्न: मन।
एम: मन ही ज्ञाता है। ज्ञाता को कौन जानता है?
प्रश्न: क्या जानने वाला स्वयं को नहीं जानता?
एम: मन असंतुलित होता है। बार-बार यह खाली हो जाता है, जैसे नींद में, बेहोशी में, या ध्यान भटकने पर। इस असंतुलन को महसूस करने के लिए कुछ निरंतर होना आवश्यक है।
प्रश्न: मन याद रखता है। यह निरंतरता का प्रतीक है।

एम: स्मृति हमेशा अधूरी, अविश्वसनीय और क्षणभंगुर होती है। यह चेतना में व्याप्त पहचान की प्रबल भावना, 'मैं हूँ' की भावना को स्पष्ट नहीं करती।
इसके मूल में क्या है, इसका पता लगाएँ।
प्रश्न: मैं चाहे कितनी भी गहराई से देखूँ, मुझे केवल मन ही मिलता है। आपके शब्द 'मन से परे' मुझे कोई संकेत नहीं देते।
एम: मन से देखते हुए आप मन से परे नहीं जा सकते। मन से परे जाने के लिए आपको मन और उसकी अवधारणाओं से नज़र हटानी होगी।
प्रश्न: मुझे किस दिशा में देखना चाहिए?
एम: सभी दिशाएँ मन के भीतर ही हैं! मैं आपसे किसी विशेष दिशा में देखने के लिए नहीं कह रहा हूँ। बस अपने मन में चल रही हर बात से ध्यान हटाकर 'मैं हूँ' की अनुभूति पर ध्यान केंद्रित करें। 'मैं हूँ' कोई दिशा नहीं है। यह सभी दिशाओं का निषेध है। अंततः 'मैं हूँ' का भी अंत होगा, क्योंकि जो स्पष्ट है उसे बार-बार दोहराने की आवश्यकता नहीं है। मन को 'मैं हूँ' की अनुभूति पर केंद्रित करने से मन को अन्य सभी चीजों से दूर करने में सहायता मिलती है। प्रश्न: इन सबका परिणाम मुझे कहाँ ले जाएगा?
एम: जब मन को उसकी चिंताओं से दूर रखा जाता है, तो वह शांत हो जाता है। यदि आप इस शांति को भंग न करें और इसमें बने रहें, तो आप पाएंगे कि यह एक ऐसे प्रकाश और प्रेम से भर गया है जिसे आपने पहले कभी नहीं जाना था; और फिर भी आप इसे तुरंत अपने स्वभाव के रूप में पहचान लेंगे। एक बार जब आप इस अनुभव से गुजर जाते हैं, तो आप फिर कभी पहले जैसे नहीं रहेंगे; अशांत मन इसकी शांति भंग कर सकता है और इसकी दृष्टि को मिटा सकता है; लेकिन निरंतर प्रयास करने पर यह अवश्य लौटेगा; जब तक कि वह दिन न आ जाए जब सभी बंधन टूट जाएं, भ्रम और आसक्ति समाप्त हो जाएं और जीवन पूरी तरह से वर्तमान में केंद्रित हो जाए।
प्रश्न: इससे क्या फर्क पड़ता है?
एम: मन का अस्तित्व ही नहीं है। केवल कर्म में प्रेम ही शेष है।
प्रश्न: इस अवस्था तक पहुँचने पर मैं इसे कैसे पहचानूँगा?
एम: डरने की कोई बात नहीं होगी।
प्रश्न: रहस्यों और खतरों से भरी दुनिया से घिरे होने पर मैं कैसे निडर रह सकता हूँ?
एम: आपका छोटा सा शरीर भी रहस्यों और खतरों से भरा है, फिर भी आप इससे डरते नहीं, क्योंकि आप इसे अपना मानते हैं। आप यह नहीं जानते कि संपूर्ण ब्रह्मांड आपका शरीर है और आपको इससे डरने की आवश्यकता नहीं है। आप कह सकते हैं कि आपके दो शरीर हैं; व्यक्तिगत और सार्वभौमिक। व्यक्तिगत आता- जाता रहता है, सार्वभौमिक सदा आपके साथ रहता है। संपूर्ण सृष्टि आपका सार्वभौमिक शरीर है। आप व्यक्तिगत के प्रति इतने अंधे हो गए हैं कि आप सार्वभौमिक को देख ही नहीं पाते। यह अंधापन अपने आप दूर नहीं होगा - इसे कुशलतापूर्वक और जानबूझकर दूर करना होगा। जब सभी भ्रमों को समझकर त्याग दिया जाता है, तब आप त्रुटिहीन और परिपूर्ण अवस्था में पहुँच जाते हैं, जिसमें व्यक्तिगत और सार्वभौमिक के बीच कोई भेद नहीं रह जाता।
प्रश्न: मैं एक व्यक्ति हूँ और इसलिए स्थान और समय में सीमित हूँ। मैं बहुत कम स्थान घेरता हूँ और कुछ क्षणों के लिए ही विद्यमान रहता हूँ; मैं स्वयं को शाश्वत और सर्वव्यापी होने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

एम: फिर भी तुम हो। जैसे-जैसे तुम अपने सच्चे स्वरूप की खोज में अपने भीतर गहराई से उतरोगे, तुम्हें पता चलेगा कि केवल तुम्हारा शरीर छोटा है और केवल तुम्हारी स्मृति ही अल्प है; जबकि जीवन का विशाल सागर तुम्हारा है। प्रश्न: 'मैं' और 'सार्वभौमिक' शब्द ही विरोधाभासी हैं। एक शब्द दूसरे का खंडन करता है।
एम: ऐसा नहीं है। पहचान की भावना सर्वव्यापी है। खोजो और तुम्हें वह सर्वव्यापी व्यक्ति मिल जाएगा, जो तुम स्वयं हो और उससे भी कहीं अधिक है। बहरहाल, सबसे पहले यह समझ लें कि दुनिया आप में है, आप दुनिया में नहीं। प्रश्न: यह कैसे संभव है? मैं तो केवल संसार का एक अंश हूँ। प्रतिबिंब के अलावा, दर्पण की तरह, संपूर्ण संसार मेरे अंश में कैसे समाहित हो सकता है? एम: आपकी बात सही है। आपका व्यक्तिगत शरीर एक ऐसा अंग है जिसमें संपूर्ण शरीर का अद्भुत प्रतिबिंब दिखता है। लेकिन आपका एक सार्वभौमिक शरीर भी है। आप यह भी नहीं कह सकते कि आप इसे नहीं जानते, क्योंकि आप इसे हर समय देखते और अनुभव करते हैं। बस आप इसे 'संसार' कहते हैं और इससे डरते हैं। प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं अपने छोटे से शरीर को अच्छी तरह जानती हूँ, जबकि दूसरे शरीर को मैं विज्ञान के माध्यम से ही जानती हूँ।
एम: तुम्हारा नन्हा सा शरीर रहस्यों और अजूबों से भरा है, जिन्हें तुम नहीं जानते। यहाँ भी विज्ञान ही तुम्हारा एकमात्र मार्गदर्शक है। शरीर रचना विज्ञान और खगोल विज्ञान दोनों ही तुम्हारा वर्णन करते हैं।
प्रश्न: यदि मैं आपके सार्वभौमिक शरीर के सिद्धांत को एक व्यावहारिक सिद्धांत के रूप में स्वीकार भी कर लूँ, तो मैं इसका परीक्षण किस प्रकार कर सकता हूँ और यह मेरे लिए किस काम का है?
एम: अपने आप को दोनों शरीरों में निवास करने वाला जानकर आप किसी भी चीज का त्याग नहीं करेंगे। संपूर्ण ब्रह्मांड आपकी चिंता का विषय होगा; आप प्रत्येक जीवित प्राणी से अत्यंत प्रेम करेंगे और उसकी अत्यंत कोमल और बुद्धिमानी से सहायता करेंगे। आपके और दूसरों के बीच हितों का कोई टकराव नहीं होगा। सभी प्रकार का शोषण पूर्णतः समाप्त हो जाएगा। आपका प्रत्येक कार्य लाभकारी होगा, आपका प्रत्येक कार्य आशीर्वादमय होगा।
प्रश्न: यह सब बहुत लुभावना है, लेकिन मैं अपने सार्वभौमिक अस्तित्व को साकार करने के लिए आगे कैसे बढ़ूँ?
एम: आपके पास दो रास्ते हैं: या तो आप अपना हृदय और मन आत्म-खोज में लगा दें, या आप मेरे शब्दों पर विश्वास करके उसी के अनुसार कार्य करें। दूसरे शब्दों में, या तो आप पूरी तरह आत्म-केंद्रित हो जाएं, या पूरी तरह आत्म-निरंतर न रहें। 'पूरी तरह' शब्द महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च तक पहुँचने के लिए आपको अतिवादी होना पड़ेगा।
प्रश्न: मैं अपनी सीमित क्षमता के बावजूद ऐसी ऊंचाइयों को कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?
एम: स्वयं को चेतना के उस सागर के रूप में जानो जिसमें सब कुछ घटित होता है। यह कठिन नहीं है। थोड़ा ध्यान देने से, स्वयं का गहन अवलोकन करने से, आप पाएंगे कि कोई भी घटना आपकी चेतना से परे नहीं है।
प्रश्न: दुनिया में ऐसी कई घटनाएं हैं जो मेरी चेतना में प्रकट नहीं होतीं।
एम: आपका शरीर भी ऐसी घटनाओं से भरा हुआ है जो आपकी चेतना में प्रकट नहीं होतीं। फिर भी, आप अपने शरीर को अपना मानने से पीछे नहीं हटते। आप दुनिया को ठीक उसी तरह जानते हैं जैसे अपने शरीर को - अपनी इंद्रियों के माध्यम

से। यह आपका मन ही है जिसने आपकी त्वचा के बाहर की दुनिया को आपकी त्वचा के अंदर की दुनिया से अलग कर दिया है और उन्हें एक-दूसरे के विपरीत खड़ा कर दिया है। इसी ने भय, घृणा और जीवन के सभी दुखों को जन्म दिया है।
प्रश्न: आपकी चेतना से परे जाने वाली बात मुझे समझ नहीं आ रही है। शब्द तो समझ में आ रहे हैं, लेकिन उस अनुभव की कल्पना नहीं कर पा रहा। आखिर आपने खुद ही कहा है कि समस्त अनुभव चेतना में ही होता है।
एम: आप सही कह रहे हैं, चेतना से परे कोई अनुभव नहीं हो सकता। फिर भी, केवल होने का अनुभव तो होता ही है। चेतना से परे एक अवस्था है, जो अचेतन नहीं है। कुछ लोग इसे अतिचेतना, शुद्ध चेतना या सर्वोच्च चेतना कहते हैं। यह कर्ता-वस्तु के बंधन से मुक्त शुद्ध जागरूकता है।
प्रश्न: मैंने थियोसोफी का अध्ययन किया है और मुझे आपकी बातों में कुछ भी जाना-पहचाना नहीं लगता। मैं मानता हूँ कि थियोसोफी केवल अभिव्यक्ति की बात करती है। यह ब्रह्मांड और उसके निवासियों का विस्तृत वर्णन करती है। यह पदार्थ के अनेक स्तरों और उनसे संबंधित अनुभव के स्तरों को मानती है, लेकिन ऐसा लगता है कि यह उनसे आगे नहीं जाती। आपकी बातें सभी अनुभवों से परे हैं। यदि यह अनुभव करने योग्य नहीं है, तो इसके बारे में बात करने का क्या लाभ?
एम: चेतना रुक-रुक कर आती है, उसमें बहुत सारे अंतराल होते हैं। फिर भी पहचान की निरंतरता बनी रहती है। अगर यह चेतना से परे किसी चीज़ के कारण नहीं है, तो पहचान की यह भावना किस कारण से है?
प्रश्न: यदि मैं मन से परे हूँ, तो मैं स्वयं को कैसे बदल सकता हूँ?
एम: कुछ बदलने की क्या ज़रूरत है? मन तो वैसे भी हर समय बदलता रहता है। अपने मन को तटस्थ भाव से देखें; इतना ही उसे शांत करने के लिए काफी है। जब वह शांत हो जाता है, तो आप उससे परे जा सकते हैं। उसे हर समय व्यस्त न रखें। उसे रोकें और बस शांत हो जाएं। अगर आप उसे आराम देंगे, तो वह स्थिर हो जाएगा और अपनी शुद्धता और शक्ति को पुनः प्राप्त कर लेगा। लगातार सोचने से मन कमजोर हो जाता है।
प्रश्न: यदि मेरा वास्तविक स्वरूप हमेशा मेरे साथ है, तो मैं उससे अनभिज्ञ कैसे हूँ?
एम: क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है और आपका मन स्थूल है, स्थूल विचारों और भावनाओं से भरा हुआ है। अपने मन को शांत और स्पष्ट करें, और आप स्वयं को वैसे ही जान पाएंगे जैसे आप हैं।
प्रश्न: क्या मुझे स्वयं को जानने के लिए मन की आवश्यकता है?
एम: आप मन से परे हैं, लेकिन आप अपने मन से जानते हैं। यह स्पष्ट है कि ज्ञान की सीमा, गहराई और स्वरूप इस बात पर निर्भर करते हैं कि आप किस उपकरण का उपयोग करते हैं। अपने उपकरण को बेहतर बनाएं, और आपका ज्ञान भी बेहतर होगा।
प्रश्न: पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुझे एक परिपूर्ण मस्तिष्क की आवश्यकता है।
एम: आपको बस एक शांत मन की आवश्यकता है। मन शांत होते ही सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा। जैसे सूर्योदय के समय सूर्य जगत में हलचल उत्पन्न होती है, वैसे ही आत्मजागरूकता मन में परिवर्तन लाती है। शांत और स्थिर आत्मजागरूकता के प्रकाश में आंतरिक ऊर्जाएं जागृत होती हैं और बिना किसी प्रयास के चमत्कार करती हैं।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि सबसे बड़ा काम न करके ही किया जाता है?

एम: बिल्कुल सही। यह समझ लें कि आपको ज्ञान प्राप्ति के लिए चुना गया है। अपने भाग्य के साथ सहयोग करें, उसके विरुद्ध न जाएं, उसे बाधित न करें। उसे अपना काम पूरा करने दें। आपको बस इतना करना है कि मूर्ख मन द्वारा उत्पन्न बाधाओं पर ध्यान दें।
66. सुख की हर खोज दुखमय होती है

प्रश्नकर्ता: मैं इंग्लैंड से आया हूँ और मद्रास जा रहा हूँ। वहाँ मेरी मुलाकात मेरे पिता से होगी और हम सड़क मार्ग से कार द्वारा लंदन जाएँगे। मैं मनोविज्ञान का अध्ययन करने जा रहा हूँ, लेकिन डिग्री प्राप्त करने के बाद मैं क्या करूँगा, यह अभी तय नहीं है। मैं औद्योगिक मनोविज्ञान या मनोचिकित्सा का प्रयास कर सकता हूँ। मेरे पिता एक सामान्य चिकित्सक हैं, मैं भी शायद इसी क्षेत्र में आगे बढ़ूँ।
लेकिन मेरी रुचियां यहीं समाप्त नहीं होतीं। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो समय के साथ नहीं बदलते। मुझे पता है कि आपके पास ऐसे प्रश्नों के कुछ उत्तर हैं और इसी कारण मैं आपसे मिलने आया हूँ।
महाराज: मुझे आश्चर्य है कि क्या मैं आपके सवालों का जवाब देने के लिए सही व्यक्ति हूँ। मुझे चीजों और लोगों के बारे में बहुत कम जानकारी है। मैं केवल इतना जानता हूँ कि मैं हूँ, और इतना तो आप भी जानते हैं। हम बराबर हैं।
प्रश्न: बेशक मुझे पता है कि मैं हूँ। लेकिन मुझे इसका मतलब नहीं पता। एम: जिसे आप 'मैं हूँ' में 'मैं' समझते हैं, वह आप नहीं हैं। यह जानना कि आप हैं, स्वाभाविक है, लेकिन यह जानना कि आप क्या हैं, गहन खोज का परिणाम है। आपको चेतना के संपूर्ण क्षेत्र का अन्वेषण करना होगा और उससे आगे बढ़ना होगा। इसके लिए आपको सही गुरु खोजना होगा और खोज के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ बनानी होंगी। सामान्यतः, दो मार्ग हैं: बाह्य और आंतरिक। या तो आप सत्य को जानने वाले किसी व्यक्ति के साथ रहें और स्वयं को पूरी तरह से उनके मार्गदर्शन और प्रभाव में समर्पित कर दें, या आप अपने भीतर के मार्गदर्शक की खोज करें और आंतरिक प्रकाश का अनुसरण करें, चाहे वह आपको कहीं भी ले जाए। दोनों ही मामलों में आपको अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और भय को त्यागना होगा। आप या तो निकटता से या खोज से, निष्क्रिय या सक्रिय तरीके से सीखते हैं। या तो आप स्वयं को अपने गुरु द्वारा दर्शाई गई जीवन और प्रेम की नदी में बहने दें, या आप अपने भीतर के तारे द्वारा निर्देशित होकर स्वयं प्रयास करें। दोनों ही मामलों में आपको आगे बढ़ना होगा, आपको गंभीर होना होगा। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जिन्हें विश्वास और प्रेम के योग्य कोई व्यक्ति मिल पाता है। उनमें से अधिकांश को कठिन मार्ग अपनाना होगा, बुद्धि और समझ का मार्ग, विवेक और वैराग्य का मार्ग। यही मार्ग सभी के लिए खुला है।
प्रश्न: मैं भाग्यशाली हूं कि मैं यहां आया हूं: हालांकि मैं कल जा रहा हूं, लेकिन आपसे हुई एक बातचीत मेरे पूरे जीवन को प्रभावित कर सकती है। एम: जी हाँ, एक बार जब आप कहते हैं 'मैं सत्य की खोज करना चाहता हूँ', तो आपका पूरा जीवन इससे गहराई से प्रभावित होगा। आपकी सभी मानसिक और शारीरिक आदतें, भावनाएँ, इच्छाएँ और भय, योजनाएँ और निर्णय पूरी तरह से बदल जाएँगे। प्रश्न: एक बार जब मैंने वास्तविकता को खोजने का मन बना लिया, तो मुझे आगे क्या करना चाहिए?

एम: यह आपके स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि आप गंभीर हैं, तो आप जो भी रास्ता चुनेंगे, वह आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचा देगा। यही गंभीरता निर्णायक कारक है।
प्रश्न: गंभीरता का स्रोत क्या है?
एम: यह घर वापसी की सहज प्रवृत्ति है, जो पक्षी को अपने घोंसले में और मछली को उस पहाड़ी धारा में वापस ले जाती है जहाँ उसका जन्म हुआ था। बीज फल पकने पर वापस धरती में मिल जाता है। परिपक्वता ही सब कुछ है।
प्रश्न: और मुझे परिपक्व होने में क्या मदद करेगा? क्या मुझे अनुभव की आवश्यकता है?
एम: आपके पास पहले से ही वह सारा अनुभव है जिसकी आपको आवश्यकता है, अन्यथा आप यहाँ नहीं आते। आपको और अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आपको अनुभव से परे जाना होगा। आप चाहे जो भी प्रयास करें, चाहे जो भी साधना विधि अपनाएँ, उससे केवल अधिक अनुभव ही प्राप्त होगा, पर आप उससे आगे नहीं बढ़ पाएँगे। न ही पुस्तकें पढ़ने से आपको कोई लाभ होगा। वे आपके मन को समृद्ध करेंगी, पर आपका मूल स्वरूप अपरिवर्तित रहेगा। यदि आप अपनी खोज से किसी भी प्रकार का लाभ, चाहे भौतिक, मानसिक या आध्यात्मिक, की अपेक्षा रखते हैं, तो आप गलत समझ रहे हैं। सत्य कोई लाभ नहीं देता। यह आपको कोई उच्च दर्जा या दूसरों पर कोई शक्ति नहीं देता; आपको केवल सत्य और असत्य से मुक्ति मिलती है।
प्रश्न: निश्चित रूप से सत्य आपको दूसरों की मदद करने की शक्ति देता है। एम: यह तो महज़ कल्पना है, चाहे कितनी भी महान क्यों न हो! सच तो यह है कि आप दूसरों की मदद नहीं करते, क्योंकि दूसरे हैं ही नहीं। आप लोगों को श्रेष्ठ और नीच में बाँटते हैं और श्रेष्ठों से नीचों की मदद करने को कहते हैं। आप अलग करते हैं, मूल्यांकन करते हैं, न्याय करते हैं और निंदा करते हैं— सत्य के नाम पर आप उसे नष्ट कर देते हैं। सत्य को गढ़ने की आपकी इच्छा ही उसका खंडन करती है, क्योंकि उसे शब्दों में नहीं समाहित किया जा सकता। सत्य को केवल असत्य के खंडन—कर्म में—से ही व्यक्त किया जा सकता है। इसके लिए आपको असत्य को असत्य के रूप में देखना (विवेक) और उसका त्याग (वैराग्य) करना होगा। असत्य का त्याग मुक्तिदायक और ऊर्जादायक है। यह पूर्णता का मार्ग प्रशस्त करता है।
प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि मैंने सत्य की खोज कर ली है?
एम: जब 'यह सत्य है', 'वह सत्य है' का विचार उत्पन्न नहीं होता, तब सत्य स्वयं प्रकट नहीं होता; सत्य असत्य को असत्य के रूप में देखकर उसे अस्वीकार करने में निहित है। सत्य की खोज व्यर्थ है, जब मन असत्य के प्रति अंधा हो। सत्य के प्रकट होने से पहले मन को असत्य से पूर्णतः मुक्त करना आवश्यक है। प्रश्न: लेकिन असत्य क्या है?
एम: निःसंदेह, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है वह असत्य है।
प्रश्न: अस्तित्वहीन होने से आपका क्या तात्पर्य है? असत्य तो मौजूद है, एकदम अटल।
एम: जो स्वयं विरोधाभासी है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। या उसका अस्तित्व क्षणिक है, जो अंततः एक ही बात पर आकर समाप्त हो जाता है। क्योंकि जिसका आरंभ और अंत होता है, उसका कोई मध्य नहीं होता। वह खोखला है। उसका केवल नाम और आकार होता है, जो उसे मन द्वारा दिया जाता है, उसमें न तो कोई सार होता है और न ही कोई तत्व।

प्रश्न: यदि जो कुछ भी गुजरता है उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तो ब्रह्मांड का भी कोई अस्तित्व नहीं है।
एम: भला इसे कौन नकार सकता है? बेशक ब्रह्मांड का कोई अस्तित्व नहीं है। प्रश्न: क्या हुआ है?
एम: वह जो अपने अस्तित्व के लिए किसी पर निर्भर नहीं है, जो न तो ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न होता है और न ही ब्रह्मांड के विनाश के साथ समाप्त होता है, जिसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि वह अपने संपर्क में आने वाली हर चीज को वास्तविकता प्रदान करता है। असत्य का स्वभाव है कि वह क्षण भर के लिए वास्तविक प्रतीत होता है। कोई कह सकता है कि सत्य असत्य का जनक होता है। परन्तु असत्य समय और स्थान में सीमित है और परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न होता है।
प्रश्न: मैं झूठ से कैसे छुटकारा पाऊं और सच्चाई को कैसे सुरक्षित करूं? एम: किस उद्देश्य से?
प्रश्न: एक बेहतर, अधिक संतोषजनक, संतुलित और सुखी जीवन जीने के लिए।
एम: मन में जो कुछ भी कल्पना की जाती है, वह असत्य ही होता है, क्योंकि वह सापेक्ष और सीमित होता है। वास्तविकता अकल्पनीय है और उसे किसी उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। उसकी चाहत अपने आप में ही होती है। प्रश्न: मैं अकल्पनीय चीज़ की इच्छा कैसे कर सकता हूँ?
एम: और क्या चाहने लायक है? यह सच है कि वास्तविक को वस्तु की तरह चाहा नहीं जा सकता। लेकिन आप अवास्तविक को अवास्तविक मानकर उसे त्याग सकते हैं। असत्य को त्यागने से ही सत्य का मार्ग खुलता है।
प्रश्न: मैं समझ गया, लेकिन वास्तविक दैनिक जीवन में यह कैसा दिखता है? एम: स्वार्थ और आत्म-चिंता ही असत्य के केंद्रबिंदु हैं। आपका दैनिक जीवन इच्छा और भय के बीच झूलता रहता है। इसे ध्यानपूर्वक देखें और आप पाएंगे कि मन किस प्रकार असंख्य नाम और रूप धारण कर लेता है, जैसे चट्टानों के बीच बहती नदी। प्रत्येक क्रिया के स्वार्थपूर्ण उद्देश्य का पता लगाएं और उस उद्देश्य को तब तक ध्यानपूर्वक देखें जब तक वह विलीन न हो जाए।
प्रश्न: जीने के लिए, व्यक्ति को अपना ख्याल रखना चाहिए, अपने लिए पैसे कमाने चाहिए।
एम: आपको अपने लिए कमाना ज़रूरी नहीं है, लेकिन शायद कमाना पड़े—एक औरत और बच्चे के लिए। आपको दूसरों के लिए लगातार काम करना पड़ सकता है। यहाँ तक कि जीवित रहना भी एक त्याग हो सकता है। स्वार्थी होने की कोई ज़रूरत नहीं है। जैसे ही स्वार्थ की भावना दिखे, उसे त्याग दीजिए; आपको सत्य की खोज करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी; सत्य स्वयं आपको मिल जाएगा।
प्रश्न: न्यूनतम आवश्यकताएं तो हैं ही।
एम: क्या ये चीजें तुम्हारे जन्म से ही उपलब्ध नहीं कराई गईं? स्वार्थ के बंधन को त्याग दो और अपने असली स्वरूप को अपनाओ - बुद्धि और प्रेम को कर्म में बदलो।
प्रश्न: लेकिन जीवित रहना तो जरूरी है!
एम: आप जीवित रहने से बच नहीं सकते! आपका वास्तविक स्वरूप शाश्वत है और जन्म-मृत्यु से परे है। और शरीर तब तक जीवित रहेगा जब तक इसकी आवश्यकता है। यह ज़रूरी नहीं कि यह दीर्घायु हो। एक पूर्ण जीवन, दीर्घायु जीवन से बेहतर है।
प्रश्न: एक परिपूर्ण जीवन क्या होता है, यह कौन तय कर सकता है? यह मेरी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

एम: यदि आप वास्तविकता की खोज करना चाहते हैं, तो आपको अपने आप को सभी पृष्ठभूमियों, सभी संस्कृतियों, सभी प्रकार के चिंतन और भावों से मुक्त करना होगा। पुरुष या स्त्री होने का, या यहाँ तक कि मानव होने का विचार भी त्याग देना चाहिए। जीवन के सागर में सब कुछ समाहित है, केवल मनुष्य ही नहीं। इसलिए, सबसे पहले स्वयं की पहचान से विमुख हो जाएँ, स्वयं को अमुक-अमुक, अमुक-अमुक, यह या वह समझना बंद कर दें। स्व-चिंता को त्याग दें, अपने कल्याण, चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, की चिंता न करें, हर इच्छा, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म, को त्याग दें, किसी भी प्रकार की उपलब्धि के बारे में सोचना बंद कर दें। आप यहीं और अभी पूर्ण हैं, आपको किसी भी चीज़ की आवश्यकता नहीं है।
इसका मतलब यह नहीं है कि आपको बुद्धिहीन, लापरवाह, अविवेकी या उदासीन होना चाहिए; केवल स्वयं के प्रति बुनियादी चिंता को त्यागना होगा। आपको अपने और अपने परिवार के लिए भोजन, वस्त्र और आश्रय की आवश्यकता है, लेकिन जब तक लालच को आवश्यकता न समझा जाए, तब तक इससे कोई समस्या नहीं होगी। चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में स्वीकार करें, न कि उनकी कल्पनाओं के अनुसार।

प्रश्न: यदि मैं मनुष्य नहीं हूँ तो क्या हूँ?
एम: जो चीज़ आपको यह सोचने पर मजबूर करती है कि आप मनुष्य हैं, वह मनुष्य नहीं है। वह तो बस चेतना का एक आयामहीन बिंदु है, एक सचेत शून्यता; आप अपने बारे में बस इतना ही कह सकते हैं: 'मैं हूँ।' आप शुद्ध अस्तित्व हैं - जागरूकता - आनंद। इसे प्राप्त करना ही समस्त खोज का अंत है। आप इसे तब प्राप्त करते हैं जब आप स्वयं को जो कुछ भी समझते हैं, उसे मात्र कल्पना समझते हैं और क्षणभंगुर को क्षणभंगुर, काल्पनिक को काल्पनिक, अवास्तविक को अवास्तविक के रूप में शुद्ध जागरूकता में विरक्त खड़े हो जाते हैं। यह बिल्कुल भी कठिन नहीं है, लेकिन अनासक्ति आवश्यक है। असत्य से आसक्ति ही सत्य को देखना इतना कठिन बना देती है। एक बार जब आप समझ जाते हैं कि असत्य को समय चाहिए और जिसे समय चाहिए वह असत्य है, तो आप वास्तविकता के निकट पहुँच जाते हैं, जो कालातीत है, सदा वर्तमान में विद्यमान है। समय में शाश्वतता मात्र पुनरावृत्ति है, घड़ी की गति की तरह। यह अतीत से भविष्य की ओर अनंत रूप से बहती है, एक खाली निरंतरता। वास्तविकता ही वर्तमान को इतना जीवंत बनाती है, अतीत और भविष्य से इतना भिन्न बनाती है, जो मात्र मानसिक हैं। यदि आपको कुछ प्राप्त करने के लिए समय चाहिए, तो वह असत्य ही होगा। सच्चाई हमेशा आपके साथ है; आपको अपने असली स्वरूप को पाने के लिए इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं है। बस आपको अपने मन को खोज में भटकने नहीं देना है। जब आप कुछ चाहते हैं, तो खुद से पूछें: क्या मुझे सच में इसकी ज़रूरत है? और अगर जवाब ना है, तो उसे छोड़ दें।
प्रश्न: क्या मुझे खुश नहीं रहना चाहिए? मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं हो सकती, फिर भी अगर वह मुझे खुश कर सकती है, तो क्या मुझे उसे नहीं अपनाना चाहिए?
एम: आपको अपने आप से अधिक खुशी कोई नहीं दे सकता। खुशी की हर खोज दुखदायी होती है और उससे और भी दुख मिलता है। सच्ची खुशी तो सचेतनता की स्वाभाविक खुशी ही है।
प्रश्न: क्या मुझे इतनी उच्च स्तर की जागरूकता प्राप्त करने से पहले बहुत अनुभव की आवश्यकता नहीं होगी?

एम: अनुभव केवल यादें छोड़ जाता है और पहले से ही भारी बोझ को और बढ़ा देता है। आपको और अनुभवों की आवश्यकता नहीं है। बीते हुए अनुभव ही काफी हैं। और अगर आपको लगता है कि आपको और अनुभवों की आवश्यकता है, तो अपने आस-पास के लोगों के दिलों में झाँकें। आपको अनेक प्रकार के अनुभव मिलेंगे जिन्हें आप हज़ार वर्षों में भी नहीं जी पाएंगे। दूसरों के दुखों से सीखें और अपने दुखों से खुद को बचाएं। आपको अनुभव की नहीं, बल्कि सभी अनुभवों से मुक्ति की आवश्यकता है। अनुभवों के लिए लालची न बनें; आपको किसी भी अनुभव की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: क्या आप स्वयं ऐसे अनुभवों से नहीं गुजरते?
एम: मेरे आस-पास घटनाएँ घटित होती हैं, लेकिन मैं उनमें कोई हिस्सा नहीं लेता। कोई घटना तभी अनुभव बनती है जब मैं भावनात्मक रूप से उससे जुड़ा होता हूँ। मैं एक ऐसी अवस्था में हूँ जो पूर्ण है, जो स्वयं को बेहतर बनाने की कोशिश नहीं करती। मेरे लिए अनुभव का क्या उपयोग है?
प्रश्न: व्यक्ति को ज्ञान और शिक्षा की आवश्यकता होती है।
एम: चीजों से निपटने के लिए ज्ञान आवश्यक है। लोगों से व्यवहार करने के लिए अंतर्दृष्टि और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। स्वयं से निपटने के लिए किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। आप जैसे हैं वैसे ही रहें: सचेत प्राणी और स्वयं से दूर न भटकें।
प्रश्न: विश्वविद्यालय शिक्षा सबसे उपयोगी है।
एम: इसमें कोई शक नहीं कि इससे आपको जीविका कमाने में मदद मिलती है। लेकिन यह आपको जीना नहीं सिखाता। आप मनोविज्ञान के छात्र हैं। यह कुछ स्थितियों में आपकी मदद कर सकता है। लेकिन क्या आप मनोविज्ञान के आधार पर जी सकते हैं? जीवन तभी सार्थक है जब वह वास्तविकता को क्रियाशील रूप में प्रतिबिंबित करे। कोई भी विश्वविद्यालय आपको जीना नहीं सिखाएगा ताकि मृत्यु का समय आने पर आप कह सकें: मैंने अच्छा जीवन जिया, मुझे दोबारा जीने की ज़रूरत नहीं है। हममें से अधिकांश लोग मरते समय यही सोचते हैं कि काश हम दोबारा जी पाते। कितनी गलतियाँ कीं, कितना कुछ अधूरा रह गया। अधिकांश लोग निष्क्रिय अवस्था में रहते हैं, लेकिन जीते नहीं। वे केवल अनुभव इकट्ठा करते हैं और अपनी स्मृति को समृद्ध करते हैं। लेकिन अनुभव वास्तविकता का खंडन है, जो न तो इंद्रियों से संबंधित है, न ही अवधारणात्मक, न शरीर से, न मन से, हालांकि यह दोनों को समाहित करता है और उनसे परे भी है।
प्रश्न: लेकिन अनुभव सबसे उपयोगी होता है। अनुभव से ही आप सीखते हैं कि आग को नहीं छूना चाहिए।
एम: मैंने आपको पहले ही बताया है कि ज्ञान चीजों से निपटने में सबसे उपयोगी होता है। लेकिन यह आपको लोगों और खुद से व्यवहार करना, जीवन जीना नहीं सिखाता। हम कार चलाने या पैसा कमाने की बात नहीं कर रहे हैं। इसके लिए आपको अनुभव चाहिए। लेकिन खुद के लिए प्रकाश बनने के लिए भौतिक ज्ञान आपकी मदद नहीं करेगा। आपको सूक्ष्म ज्ञान से कहीं अधिक अंतरंग और गहन ज्ञान की आवश्यकता है, ताकि आप शब्द के सच्चे अर्थों में स्वयं को जान सकें। आपका बाहरी जीवन महत्वहीन है। आप रात के चौकीदार बनकर भी सुखी जीवन जी सकते हैं। मायने यह रखता है कि आप अंदर से कैसे हैं। आपको अपनी आंतरिक शांति और आनंद अर्जित करना होगा। यह पैसा कमाने से कहीं अधिक कठिन है। कोई भी विश्वविद्यालय आपको स्वयं को जानना नहीं सिखा सकता। सीखने का एकमात्र तरीका अभ्यास है। अभी से स्वयं को जानना शुरू करें। जो आप नहीं हैं उसे त्याग दें और गहराई में उतरें। जैसे कुआँ खोदने वाला व्यक्ति पानी न होने

वाली चीजों को तब तक त्यागता रहता है जब तक कि वह पानी वाली परत तक न पहुँच जाए, वैसे ही आपको भी उन चीजों को त्यागना होगा जो आपकी अपनी नहीं हैं, जब तक कि कुछ भी ऐसा न बचे जिसे आप अस्वीकार कर सकें। आप पाएंगे कि जो कुछ भी बचा है वह ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे मन जुड़ सके। तुम मनुष्य भी नहीं हो। तुम बस हो—चेतना का एक बिंदु, समय और स्थान के साथ-साथ उनसे परे, परम कारण, जो स्वयं अकारण है। यदि तुम मुझसे पूछो: 'तुम कौन हो?' तो मेरा उत्तर होगा: 'कुछ विशेष नहीं। फिर भी, मैं हूँ।'
प्रश्न: यदि आप कुछ भी विशिष्ट नहीं हैं, तो आप सार्वभौमिक ही होंगे।
एम: सार्वभौमिकता क्या है—एक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि जीवन शैली के रूप में? अलग न करना, विरोध न करना, बल्कि जो भी आपके संपर्क में आए उसे समझना और प्रेम करना ही सार्वभौमिक जीवन है। सचमुच यह कह पाना: मैं संसार हूँ, संसार मैं हूँ, मैं संसार में घर जैसा महसूस करता हूँ, संसार मेरा अपना है। हर अस्तित्व मेरा अस्तित्व है, हर चेतना मेरी चेतना है, हर दुःख मेरा दुःख है और हर आनन्द मेरा आनन्द है—यही सार्वभौमिक जीवन है। फिर भी, मेरा वास्तविक अस्तित्व, और आपका भी, ब्रह्मांड से परे है और इसलिए, विशेष और सार्वभौमिक की श्रेणियों से परे है। यह जैसा है वैसा ही है, पूर्णतः आत्मनिर्भर और स्वतंत्र।
प्रश्न: मुझे इसे समझने में कठिनाई होती है।
एम: आपको इन बातों पर मनन करने के लिए समय देना होगा। अपने दिमाग से पुरानी धारणाओं को मिटाना होगा, नई धारणाएँ नहीं बनानी होंगी। आपको स्वयं को अचल, गतिशील के पीछे और परे, घटित होने वाली हर चीज का मूक साक्षी समझना होगा। प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि मुझे सक्रिय जीवन जीने का सारा विचार त्याग देना चाहिए?
एम: बिलकुल नहीं। विवाह होगा, बच्चे होंगे, परिवार चलाने के लिए पैसा कमाना होगा; ये सब स्वाभाविक रूप से होगा, क्योंकि नियति को अपना काम करना ही है; आप बिना किसी प्रतिरोध के इन सब से गुज़रेंगे, आने वाली हर चुनौती का सामना करते हुए, छोटी-बड़ी हर बात में सजग और लगन से काम लेंगे। लेकिन आपका सामान्य रवैया स्नेहपूर्ण वैराग्य, अपार सद्भावना, प्रतिफल की अपेक्षा न रखना, बिना मांगे निरंतर देते रहने का होगा। विवाह में आप न तो पति हैं और न ही पत्नी; आप दोनों के बीच का प्रेम हैं। आप वह स्पष्टता और दयालुता हैं जो हर चीज़ को व्यवस्थित और सुखमय बनाती है। यह आपको अस्पष्ट लग सकता है, लेकिन अगर आप थोड़ा सोचेंगे, तो पाएंगे कि रहस्यवाद ही सबसे व्यावहारिक है, क्योंकि यह आपके जीवन को रचनात्मक रूप से सुखमय बनाता है। आपकी चेतना एक उच्च आयाम तक पहुँच जाती है, जहाँ से आप हर चीज़ को कहीं अधिक स्पष्ट और गहनता से देखते हैं। आप यह महसूस करते हैं कि जन्म के समय आप जो व्यक्ति बने थे और मृत्यु के समय जो नहीं रहेंगे, वह अस्थायी और झूठा है। आप वह कामुक, भावुक और बौद्धिक व्यक्ति नहीं हैं जो इच्छाओं और भय से ग्रस्त है। अपने वास्तविक स्वरूप को खोजिए। मैं क्या हूँ? यह दर्शन और मनोविज्ञान का मूलभूत प्रश्न है। इसका गहराई से अध्ययन करें।

67. अनुभव ही असली चीज नहीं है
महाराज: खोजी वह है जो स्वयं की खोज में लगा रहता है। शीघ्र ही उसे यह अहसास हो जाता है कि वह अपना शरीर नहीं हो सकता। जब यह दृढ़ विश्वास कि 'मैं शरीर नहीं हूँ' इतना प्रबल हो जाता है कि वह शरीर के लिए और शरीर की ओर से महसूस करना, सोचना और कार्य करना बंद कर देता है, तब वह सहजता से यह जान

लेता है कि वह सर्वव्यापी सत्ता है, जो जानती है, कार्य करती है, और जिसके द्वारा और उसमें संपूर्ण ब्रह्मांड वास्तविक, चेतन और सक्रिय है। यही मूल समस्या है। या तो आप शरीर-सचेत होकर परिस्थितियों के दास बन जाते हैं, या आप स्वयं सर्वव्यापी चेतना बन जाते हैं और प्रत्येक घटना पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं।
फिर भी, चाहे व्यक्तिगत हो या सार्वभौमिक, चेतना मेरा वास्तविक निवास स्थान नहीं है; मैं उसमें नहीं हूँ, वह मेरी नहीं है, उसमें 'मैं' का कोई अस्तित्व नहीं है। मैं उससे परे हूँ, हालाँकि यह समझाना आसान नहीं है कि कोई कैसे न तो चेतन हो सकता है, न ही अचेतन, बल्कि उससे परे हो सकता है। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं ईश्वर में हूँ या मैं ईश्वर हूँ; ईश्वर सार्वभौमिक प्रकाश और प्रेम है, सार्वभौमिक साक्षी है: मैं तो सार्वभौमिक से भी परे हूँ।
प्रश्नकर्ता: तो फिर आपका कोई नाम या आकार नहीं है। आप किस प्रकार के प्राणी हैं?
एम: मैं वही हूँ जो मैं हूँ, न तो सजीव हूँ और न ही निराकार, न चेतन हूँ और न ही अचेतन। मैं इन सभी श्रेणियों से परे हूँ।
प्रश्न: आप नेति-नेति (यह नहीं, यह नहीं) दृष्टिकोण अपना रहे हैं।
एम: मात्र इनकार से आप मुझे नहीं पा सकते। मैं सब कुछ भी हूँ और कुछ भी नहीं भी। न दोनों, न ही कोई एक। ये परिभाषाएँ ब्रह्मांड के स्वामी पर लागू होती हैं, मुझ पर नहीं।
प्रश्न: क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आप कुछ भी नहीं हैं?
एम: ओह, नहीं! मैं पूर्ण और परिपूर्ण हूँ। मैं अस्तित्व का सार हूँ, ज्ञान का सार हूँ, आनंद की परिपूर्णता हूँ। आप मुझे शून्यता में नहीं बदल सकते! प्रश्न: यदि आप शब्दों से परे हैं, तो हम किस विषय पर बात करें? आध्यात्मिक दृष्टि से, आपकी बातें सुसंगत हैं; उनमें कोई आंतरिक विरोधाभास नहीं है। लेकिन आपकी बातों में मेरे लिए कोई सार नहीं है। वे मेरी तात्कालिक आवश्यकताओं से बिल्कुल परे हैं। जब मैं रोटी मांगता हूँ, तो आप मुझे रत्न देते हैं। वे बेशक सुंदर हैं, लेकिन मैं भूखा हूँ।
एम: ऐसा नहीं है। मैं तुम्हें वही दे रहा हूँ जिसकी तुम्हें ज़रूरत है— जागृति। तुम भूखे नहीं हो और तुम्हें रोटी की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें निश्चिंतता, त्याग और विच्छेद की ज़रूरत है। जो तुम समझते हो कि तुम्हें चाहिए, वह तुम्हारी ज़रूरत नहीं है। तुम्हारी असली ज़रूरत मैं जानता हूँ, तुम नहीं। तुम्हें उस अवस्था में लौटना होगा जिसमें मैं हूँ—तुम्हारी स्वाभाविक अवस्था। इसके अलावा तुम जो कुछ भी सोचते हो, वह भ्रम और बाधा है। मेरा विश्वास करो, तुम्हें अपने स्वरूप के अलावा किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं है। तुम सोचते हो कि अधिग्रहण से तुम्हारा मूल्य बढ़ेगा। यह सोने के इस विचार के समान है कि तांबा मिलाने से उसका मूल्य बढ़ जाएगा। अपने स्वभाव के विपरीत सभी चीज़ों का त्याग और शुद्धि ही पर्याप्त है। बाकी सब व्यर्थ है।
प्रश्न: कहना आसान है, करना मुश्किल। एक आदमी पेट दर्द लेकर आपके पास आता है और आप उसे पेट खाली करने की सलाह देते हैं। बेशक, दिमाग के बिना कोई समस्या नहीं होगी। लेकिन दिमाग तो मौजूद है - सबसे स्पष्ट रूप से।
एम: यह मन ही है जो आपको बताता है कि मन का अस्तित्व है। धोखे में मत पड़ो।
मन के बारे में सभी अंतहीन तर्क मन द्वारा ही उत्पन्न किए गए हैं, अपनी

सुरक्षा, निरंतरता और विस्तार के लिए। मन की पेचीदगियों और उथल-पुथल पर विचार करने से पूरी तरह इनकार करना ही आपको इससे परे ले जा सकता है। प्रश्न: महोदय, मैं एक विनम्र साधक हूँ, जबकि आप स्वयं परम सत्य हैं। साधक ज्ञान प्राप्ति के लिए परम सत्य के पास जाता है। परम सत्य क्या करता है? एम: मेरी कही हर बात को ध्यान से सुनो और उससे विचलित मत हो। हर समय उसी के बारे में सोचो, और किसी और चीज़ के बारे में मत सोचो। जब तुम उस स्थिति तक पहुँच जाओ, तो संसार के ही नहीं, अपने बारे में भी सारे विचार त्याग दो। सभी विचारों से परे, मौन चेतना में लीन रहो। यह प्रगति नहीं है, क्योंकि जिस अवस्था तक तुम पहुँच रहे हो, वह पहले से ही तुम्हारे भीतर मौजूद है, तुम्हारा इंतज़ार कर रही है।
प्रश्न: तो आप कहते हैं कि मुझे सोचना बंद करने की कोशिश करनी चाहिए और इस विचार में स्थिर रहना चाहिए: 'मैं हूं'।
एम: हां, और 'मैं हूं' के संबंध में आपके मन में जो भी विचार आएं, उन्हें अर्थहीन बना दें, उन पर ध्यान न दें।
प्रश्न: मुझे पश्चिम से आने वाले कई युवाओं से मिलने का अवसर मिलता है और मैं पाता हूँ कि भारतीयों की तुलना में उनमें एक बुनियादी अंतर है। ऐसा लगता है मानो उनकी मानसिकता (अंतःकरण) अलग है। आत्मा, वास्तविकता, शुद्ध मन, सार्वभौमिक चेतना जैसी अवधारणाएँ भारतीय मन आसानी से ग्रहण कर लेता है। ये अवधारणाएँ उसे परिचित लगती हैं, उसे सहजता का अनुभव कराती हैं। पश्चिमी मन या तो इन अवधारणाओं को ग्रहण नहीं करता, या उन्हें अस्वीकार कर देता है। वह इन्हें मूर्त रूप देता है और स्वीकृत मूल्यों की सेवा में तुरंत उपयोग करना चाहता है। ये मूल्य अक्सर व्यक्तिगत होते हैं: स्वास्थ्य, खुशहाली, समृद्धि; कभी-कभी ये सामाजिक भी होते हैं - एक बेहतर समाज, सभी के लिए सुखी जीवन; ये सभी सांसारिक समस्याओं से जुड़े होते हैं, चाहे वे व्यक्तिगत हों या अवैयक्तिक। पश्चिमी लोगों से बात करते समय एक और कठिनाई जो अक्सर सामने आती है, वह यह है कि उनके लिए सब कुछ अनुभव है - जैसे वे भोजन, पेय और स्त्रियों, कला और यात्राओं का अनुभव करना चाहते हैं, वैसे ही वे योग, आत्मज्ञान और मुक्ति का भी अनुभव करना चाहते हैं। उनके लिए यह मात्र एक और अनुभव है, जिसे कीमत देकर प्राप्त किया जा सकता है। वे सोचते हैं कि ऐसे अनुभव खरीदे जा सकते हैं और वे कीमत को लेकर मोलभाव करते हैं। जब एक गुरु समय और मेहनत के मामले में बहुत अधिक शुल्क लेते हैं, तो शिष्य दूसरे गुरु के पास जाते हैं, जो किश्तों में शिक्षा देने का प्रस्ताव देते हैं, जो देखने में तो बहुत आसान लगती हैं, लेकिन उनमें ऐसी शर्तें होती हैं जिन्हें पूरा करना असंभव होता है। यह वही पुरानी कहावत है कि दवा लेते समय बंदर के बारे में न सोचें! इस मामले में इसका अर्थ है संसार के बारे में न सोचना, 'स्वभाव का त्याग करना', 'हर इच्छा का नाश करना', 'पूर्ण ब्रह्मचारी बनना' आदि। स्वाभाविक रूप से हर स्तर पर व्यापक धोखाधड़ी हो रही है और परिणाम शून्य हैं। कुछ गुरु घोर निराशा में सभी अनुशासन का त्याग कर देते हैं, कोई शर्त नहीं रखते, सहजता, स्वाभाविकता और निष्क्रिय जागरूकता में जीने की सलाह देते हैं, बिना किसी 'जरूरी' और 'ना जरूरी' के नियम के। और ऐसे कई शिष्य हैं जिनके पिछले अनुभवों ने उन्हें स्वयं से इतनी घृणा करना सिखा दिया है कि वे स्वयं को देखना ही नहीं चाहते। यदि वे घृणा नहीं करते, तो वे ऊब जाते हैं। उन्हें आत्मज्ञान का अत्यधिक ज्ञान हो चुका है, वे कुछ और चाहते हैं।

एम: अगर उन्हें अपने बारे में सोचना पसंद नहीं है, तो उन्हें ऐसा न करने दें। उन्हें किसी गुरु के साथ रहने दें, उन्हें देखें, उनके बारे में सोचें। जल्द ही वे एक ऐसे आनंद का अनुभव करेंगे, जो बिल्कुल नया होगा, जैसा उन्होंने पहले कभी अनुभव नहीं किया होगा, शायद केवल बचपन में ही किया हो। यह अनुभव इतना नया होगा कि यह उनका ध्यान आकर्षित करेगा और उनमें रुचि पैदा करेगा; एक बार रुचि जागृत हो जाने पर, वे नियमित रूप से अभ्यास करेंगे।
प्रश्न: ये लोग बेहद आलोचनात्मक और शंकालु हैं। इतना ज्ञान और इतनी निराशा झेलने के बाद इनका स्वभाव ऐसा होना स्वाभाविक है। एक ओर तो वे अनुभव चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर उस पर अविश्वास भी करते हैं। उन तक कैसे पहुंचा जाए, यह तो केवल ईश्वर ही जानता है!
एम: सच्ची समझ और प्रेम उन तक पहुँच जाएगा।
प्रश्न: जब उन्हें कोई आध्यात्मिक अनुभव होता है, तो एक और समस्या उत्पन्न हो जाती है। वे शिकायत करते हैं कि अनुभव स्थायी नहीं होता, अनियमित रूप से आता-जाता रहता है। लॉलीपॉप मिलने के बाद, वे उसे हर समय चूसते रहना चाहते हैं।
एम: अनुभव, चाहे कितना भी उदात्त क्यों न हो, वास्तविक नहीं है। अपने स्वभाव से ही यह आता-जाता रहता है। आत्म-साक्षात्कार कोई प्राप्ति नहीं है। यह तो बोध का ही रूप है। एक बार प्राप्त हो जाने पर यह कभी खोता नहीं। दूसरी ओर, चेतना परिवर्तनशील है, प्रवाहमय है, पल-पल रूपांतरित होती रहती है। चेतना और उसके सार को थामे मत रखो। थामे रहने पर चेतना क्षीण हो जाती है। अंतर्दृष्टि की एक झलक या आनंद की एक लहर को अमर करने का प्रयास उस चीज़ को नष्ट कर देता है जिसे वह संरक्षित रखना चाहती है। जो आता है, वह चला जाता है। जो शाश्वत है, वह सभी आने-जाने से परे है। सभी अनुभवों के मूल तक जाओ, अस्तित्व की भावना तक जाओ। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे वास्तविकता की विशालता विद्यमान है। प्रयास करते रहो।
प्रश्न: प्रयास करने के लिए आस्था की आवश्यकता होती है।
एम: सबसे पहले इच्छाशक्ति होनी चाहिए। जब इच्छाशक्ति प्रबल होती है, तो प्रयास करने की तत्परता अपने आप आ जाती है। जब इच्छाशक्ति प्रबल होती है, तो सफलता की गारंटी की आवश्यकता नहीं होती। आप जोखिम उठाने के लिए तैयार होते हैं।
प्रश्न: प्रबल इच्छा, प्रबल विश्वास—बात एक ही है। ये लोग न तो अपने माता- पिता पर, न समाज पर, और न ही स्वयं पर। इनके स्पर्श से सब कुछ राख हो गया। इन्हें एक ऐसा अनुभव दीजिए जो बिलकुल सच्चा हो, निर्विवाद हो, मन के तर्कों से परे हो, और ये दुनिया के अंत तक आपका साथ देंगे।
एम: लेकिन मैं और कुछ नहीं कर रहा! मैं अथक रूप से उनका ध्यान एक अकाट्य तथ्य की ओर आकर्षित करता हूँ - अस्तित्व का तथ्य। अस्तित्व को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती - यह सब कुछ सिद्ध करता है। यदि वे अस्तित्व के तथ्य में गहराई से उतरें और उस विशालता और महिमा को खोजें जिसका द्वार 'मैं हूँ' है, और उस द्वार को पार करके आगे बढ़ें, तो उनका जीवन सुख और प्रकाश से भर जाएगा। मेरा विश्वास कीजिए, इसके लिए जो प्रयास करना पड़ेगा, वह प्राप्त होने वाली खोजों के सामने नगण्य है।
प्रश्न: आपकी बात सही है। लेकिन इन लोगों में न तो आत्मविश्वास है और न ही धैर्य। थोड़ी सी कोशिश भी इन्हें थका देती है। इन्हें अंधाधुंध भटकते देखना और फिर भी मदद का हाथ थामने में असमर्थ देखना सचमुच दयनीय है। ये लोग

मूल रूप से तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन पूरी तरह से भ्रमित हैं। मैं उनसे कहता हूँ: आप अपनी शर्तों पर सत्य नहीं पा सकते। आपको शर्तें माननी होंगी। इस पर वे उत्तर देते हैं: कुछ लोग शर्तें मानेंगे और कुछ नहीं। स्वीकार करना या न करना सतही और आकस्मिक है; वास्तविकता सब में है; सबके लिए बिना किसी शर्त के आगे बढ़ने का रास्ता अवश्य है।
एम: एक ऐसा मार्ग है, जो हर स्तर पर, जीवन के हर क्षेत्र में, सभी के लिए खुला है। हर कोई स्वयं से अवगत है। आत्म-जागरूकता को गहरा और विस्तृत करना ही सर्वोच्च मार्ग है। इसे सजगता कहो, साक्षी भाव कहो, या मात्र ध्यान कहो
- यह सबके लिए है। कोई भी इसके लिए अपरिपक्व नहीं है और कोई भी इसमें असफल नहीं हो सकता।
लेकिन, ज़ाहिर है, आपको केवल सचेत ही नहीं रहना है। आपकी जागरूकता में मन भी शामिल होना चाहिए। साक्षी भाव मूलतः चेतना और उसकी गतिविधियों के प्रति जागरूकता है।

68. चेतना के स्रोत की खोज करें

प्रश्नकर्ता: हम कुछ दिन पहले आधुनिक पश्चिमी मानसिकता के तौर-तरीकों और वेदांत के नैतिक और बौद्धिक अनुशासन को अपनाने में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बात कर रहे थे। एक बाधा यह है कि युवा यूरोपीय या अमेरिकी विश्व की दयनीय स्थिति और उसे सुधारने की तत्काल आवश्यकता को लेकर चिंतित रहते हैं।
आप जैसे लोगों के प्रति उनमें कोई धैर्य नहीं है जो दुनिया की बेहतरी के लिए व्यक्तिगत सुधार को एक पूर्व शर्त के रूप में प्रचारित करते हैं। वे कहते हैं कि यह न तो संभव है और न ही आवश्यक। मानवता व्यवस्था में बदलाव के लिए तैयार है - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक। एक विश्व-सरकार, विश्व-पुलिस, विश्व-योजना और सभी भौतिक और वैचारिक बाधाओं का उन्मूलन: इतना ही काफी है, किसी व्यक्तिगत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोग समाज को आकार देते हैं, लेकिन समाज भी लोगों को आकार देता है। एक मानवीय समाज में लोग मानवीय होंगे; इसके अलावा, विज्ञान कई ऐसे प्रश्नों के उत्तर प्रदान करता है जो पहले धर्म के दायरे में थे।
महाराज: निःसंदेह, संसार के सुधार के लिए प्रयास करना अत्यंत प्रशंसनीय कार्य है। निस्वार्थ भाव से किया गया यह प्रयास मन को निर्मल और हृदय को शुद्ध करता है। परन्तु मनुष्य को शीघ्र ही अहसास हो जाता है कि वह एक मृगतृष्णा का पीछा कर रहा है। स्थानीय और क्षणिक सुधार सदा संभव है और महान राजा या गुरु के प्रभाव से बार-बार प्राप्त भी हुआ है; परन्तु यह शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, और मानवता को दुख के एक नए चक्र में फंसा देता है। समस्त सृष्टि का स्वभाव है कि अच्छाई और बुराई एक दूसरे के साथ समान रूप से घटित होती हैं। सच्चा आश्रय केवल अव्यक्त में ही है।
प्रश्न: क्या आप भागने की सलाह नहीं दे रहे हैं?
एम: इसके विपरीत। नवीनीकरण का एकमात्र मार्ग विनाश में निहित है। नया आभूषण गढ़ने से पहले आपको पुराने आभूषणों को पिघलाकर निराकार सोना बनाना होगा। संसार को केवल वही लोग बदल सकते हैं जो संसार से परे जा चुके हैं। अन्यथा ऐसा कभी नहीं हुआ। जिन कुछ लोगों का प्रभाव दीर्घकालिक रहा, वे सभी वास्तविकता के ज्ञाता थे। उनके स्तर तक पहुँचें और तभी संसार की सहायता करने की बात करें।

प्रश्न: हम नदियों और पहाड़ों की मदद नहीं करना चाहते, बल्कि लोगों की मदद करना चाहते हैं।
एम: दुनिया में कुछ भी गलत नहीं है, सिवाय उन लोगों के जो इसे खराब बनाते हैं। जाओ और उनसे कहो कि वे सही व्यवहार करें।
प्रश्न: इच्छा और भय उन्हें ऐसा व्यवहार करने के लिए मजबूर करते हैं। एम: बिल्कुल सही। जब तक मानवीय व्यवहार इच्छा और भय से प्रभावित रहेगा, तब तक कोई खास उम्मीद नहीं है। और लोगों से प्रभावी ढंग से संपर्क स्थापित करने के लिए, आपको स्वयं इच्छा और भय से मुक्त होना होगा।
प्रश्न: कुछ मूलभूत इच्छाएँ और भय अपरिहार्य हैं, जैसे कि भोजन, सेक्स और मृत्यु से संबंधित।
एम: ये ज़रूरतें हैं और ज़रूरतें होने के नाते इन्हें पूरा करना आसान है। प्रश्न: क्या मृत्यु भी एक आवश्यकता है?
एम: एक लंबा और सार्थक जीवन जीने के बाद आपको मरने की इच्छा होती है। इच्छा और भय का गलत प्रयोग ही विनाशकारी होता है। बेशक, सही की इच्छा करो और गलत से डरो। लेकिन जब लोग गलत की इच्छा करते हैं और सही से डरते हैं, तो वे अराजकता और निराशा का कारण बनते हैं।
प्रश्न: क्या सही है और क्या गलत है?
एम: सापेक्षतः, जो पीड़ा का कारण बनता है वह गलत है, जो पीड़ा को कम करता है वह सही है। पूर्णतः, जो आपको वास्तविकता में वापस लाता है वह सही है और जो वास्तविकता को धुंधला करता है वह गलत है।
प्रश्न: जब हम मानवता की सहायता करने की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य अव्यवस्था और पीड़ा के विरुद्ध संघर्ष से होता है।
एम: आप तो बस मदद की बात करते हैं। क्या आपने कभी किसी की मदद की है, सचमुच में? क्या आपने कभी किसी को इस स्थिति से उबारा है कि उसे आगे किसी मदद की ज़रूरत न रहे? क्या आप किसी व्यक्ति को उसके कर्तव्यों और अवसरों की पूर्ण समझ के आधार पर चरित्र दे सकते हैं, भले ही उसके सच्चे स्वरूप की अंतर्दृष्टि न दे सकें? जब आपको खुद के लिए अच्छा नहीं पता, तो आप दूसरों के लिए अच्छा कैसे जान सकते हैं?
प्रश्न: आजीविका के पर्याप्त साधन सभी के लिए अच्छे हैं। आप भले ही स्वयं भगवान हों, लेकिन हमसे बात करने के लिए आपको एक स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है।
एम: आपको मुझसे बात करने के लिए मेरे शरीर की आवश्यकता है। मैं मेरा शरीर नहीं हूँ, न ही मुझे इसकी आवश्यकता है। मैं केवल साक्षी हूँ। मेरा अपना कोई आकार नहीं है। आप स्वयं को चेतना युक्त शरीर समझने के इतने आदी हो चुके हैं कि आप चेतना को शरीर धारण करते हुए कल्पना ही नहीं कर सकते। जब आप यह जान लेंगे कि शारीरिक अस्तित्व केवल मन की एक अवस्था है, चेतना की एक गति है, कि चेतना का सागर अनंत और शाश्वत है, और जब आप चेतना के संपर्क में होते हैं, तो आप केवल साक्षी होते हैं, तब आप चेतना से पूरी तरह परे जा सकेंगे। प्रश्न: हमें बताया जाता है कि अस्तित्व के अनेक स्तर हैं। क्या आप सभी स्तरों पर विद्यमान और कार्य करते हैं? क्या आप पृथ्वी पर रहते हुए स्वर्ग में भी मौजूद होते हैं?
मैं कहीं नहीं मिलता! मैं कोई वस्तु नहीं हूँ जिसे अन्य वस्तुओं के बीच स्थान दिया जा सके। सब कुछ मुझमें समाहित है, परन्तु मैं वस्तुओं के बीच नहीं हूँ। तुम मुझे ऊपरी संरचना के बारे में बता रहे हो जबकि मुझे नींव की चिंता है। ऊपरी संरचनाएँ बनती और बिगड़ती हैं, परन्तु नींव स्थायी होती

है। मुझे क्षणभंगुर चीजों में कोई रुचि नहीं है, जबकि तुम केवल इसी विषय में बात कर रहे हो।
प्रश्न: एक अजीब सवाल के लिए मुझे क्षमा करें। अगर कोई तेज धार वाली तलवार से अचानक आपका सिर काट दे, तो आपको क्या फर्क पड़ेगा?
एम: बिलकुल नहीं। शरीर अपना सिर खो देगा, संचार की कुछ कड़ियाँ कट जाएँगी, बस इतना ही। दो लोग फ़ोन पर बात कर रहे हैं और तार कट जाता है। लोगों को कुछ नहीं होता, उन्हें बस संचार का कोई दूसरा साधन ढूँढना पड़ता है। भगवद् गीता कहती है: "तलवार इसे काट नहीं सकती"। यह सचमुच सही है। चेतना का स्वभाव है कि वह अपने शरीरों से परे जीवित रहती है। यह आग की तरह है। यह ईंधन को जला देती है, लेकिन खुद को नहीं। जैसे आग ईंधन के पहाड़ से भी ज़्यादा देर तक जलती रहती है, वैसे ही चेतना अनगिनत शरीरों से परे जीवित रहती है।
प्रश्न: ईंधन लौ को प्रभावित करता है।
एम: जब तक यह चलता रहेगा। ईंधन की प्रकृति बदलने से लौ का रंग और स्वरूप बदल जाएगा।
अब हम एक-दूसरे से बात कर रहे हैं। इसके लिए उपस्थिति आवश्यक है; जब तक हम उपस्थित नहीं होंगे, तब तक हम बात नहीं कर सकते। लेकिन केवल उपस्थिति ही पर्याप्त नहीं है। बात करने की इच्छा भी होनी चाहिए।
सबसे बढ़कर, हम सचेत रहना चाहते हैं। हम हर तरह के कष्ट और अपमान सहेंगे, लेकिन फिर भी सचेत रहना ही बेहतर होगा। जब तक हम इस अनुभव की लालसा के विरुद्ध विद्रोह नहीं करते और प्रकट वास्तविकता को पूरी तरह से त्याग नहीं देते, तब तक कोई राहत नहीं मिलेगी। हम फँसे ही रहेंगे।
प्रश्न: आप कहते हैं कि आप मौन साक्षी हैं और चेतना से परे भी हैं। क्या इसमें कोई विरोधाभास नहीं है? यदि आप चेतना से परे हैं, तो आप किस बात के साक्षी हैं?
एम: मैं चेतन और अचेतन दोनों हूँ, चेतन और अचेतन दोनों हूँ, न चेतन हूँ न अचेतन—इन सब का मैं साक्षी हूँ—पर वास्तव में कोई साक्षी नहीं है, क्योंकि साक्षी होने के लिए कुछ है ही नहीं। मैं सभी मानसिक संरचनाओं से पूर्णतः मुक्त हूँ, मन से रहित हूँ—फिर भी पूर्णतः सजग हूँ। यही मैं अपने इस कथन से व्यक्त करने का प्रयास करता हूँ कि मैं मन से परे हूँ।
प्रश्न: तो मैं आपसे कैसे संपर्क कर सकता हूँ?
एम: सचेतनता के प्रति जागरूक रहो और चेतना के स्रोत की खोज करो। बस इतना ही। शब्दों में बहुत कम व्यक्त किया जा सकता है। मेरे कहने से नहीं, बल्कि मेरे बताए अनुसार करने से ही ज्ञान प्राप्त होगा। साधन अधिक मायने नहीं रखते; मायने तो इच्छा, प्रेरणा और लगन रखती है।

69. क्षणभंगुरता अवास्तविकता का प्रमाण है

प्रश्नकर्ता: मेरा एक मित्र जर्मन है और मेरा जन्म इंग्लैंड में फ्रांसीसी माता-पिता से हुआ था। मैं एक साल से अधिक समय से भारत में आश्रम-आश्रम घूम रहा हूँ।
महाराज: क्या आप कोई आध्यात्मिक साधना करते हैं?
प्रश्न: अध्ययन और ध्यान।
एम: आपने किस बात पर ध्यान लगाया?
प्रश्न: मैंने जो पढ़ा उसके आधार पर।

एम: अच्छा।
प्रश्न: आप क्या कर रहे हैं, महोदय?
एम: बैठा हुआ।
प्रश्न: और क्या?
एम: बात कर रहा हूँ।
प्रश्न: आप किस बारे में बात कर रहे हैं?
एम: क्या आप उपदेश सुनना चाहते हैं? बेहतर होगा कि आप कोई ऐसा सवाल पूछें जो आपको सच में प्रभावित करे, जिसके बारे में आप दिल से सोचते हों। जब तक आप भावनात्मक रूप से जुड़े नहीं होंगे, आप मुझसे बहस तो कर सकते हैं, लेकिन हमारे बीच कोई वास्तविक समझ नहीं बनेगी। अगर आप कहते हैं: 'मुझे कोई चिंता नहीं है, मुझे कोई समस्या नहीं है', तो ठीक है, हम चुप रह सकते हैं। लेकिन अगर कोई बात आपको सच में प्रभावित करती है, तो बात करने का एक मकसद है। क्या मैं आपसे पूछूं? आपके एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का उद्देश्य क्या है?
प्रश्न: लोगों से मिलना, उन्हें समझने की कोशिश करना।
एम: आप किन लोगों को समझने की कोशिश कर रहे हैं? आप वास्तव में क्या जानना चाहते हैं?
प्रश्न: एकीकरण।
एम: यदि आप एकीकरण चाहते हैं, तो आपको यह जानना होगा कि आप किसे एकीकृत करना चाहते हैं।
प्रश्न: लोगों से मिलने और उन्हें देखने से व्यक्ति स्वयं को भी जान पाता है। ये दोनों बातें साथ-साथ चलती हैं।
एम: यह जरूरी नहीं कि दोनों एक साथ हों।
प्रश्न: एक दूसरे को बेहतर बनाता है।
एम: यह इस तरह काम नहीं करता। दर्पण प्रतिबिंब को प्रतिबिंबित करता है, लेकिन प्रतिबिंब दर्पण को बेहतर नहीं बनाता। आप न तो दर्पण हैं और न ही दर्पण में दिखने वाला प्रतिबिंब। दर्पण को इस प्रकार परिपूर्ण करने के बाद कि वह सही और सटीक रूप से प्रतिबिंबित करे, आप दर्पण को घुमाकर उसमें अपना सच्चा प्रतिबिंब देख सकते हैं - उतना सच्चा जितना दर्पण प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन वह प्रतिबिंब आप नहीं हैं - आप प्रतिबिंब को देखने वाले हैं। इसे अच्छी तरह समझ लें - आप जो कुछ भी देखते हैं, आप वह नहीं हैं जो आप देखते हैं।
प्रश्न: मैं दर्पण हूँ और संसार उसकी छवि है?
एम: आप छवि और दर्पण दोनों को देख सकते हैं। आप न तो छवि हैं और न ही दर्पण। आप कौन हैं? सूत्रों के आधार पर मत सोचिए। उत्तर शब्दों में नहीं है। शब्दों में आप इसे इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं: मैं वह हूं जो बोध को संभव बनाता है, अनुभवकर्ता और उसके अनुभव से परे का जीवन।
अब, क्या आप स्वयं को दर्पण और दर्पण में दिखने वाली अपनी छवि दोनों से अलग कर सकते हैं और पूरी तरह से अकेले, अपने दम पर खड़े हो सकते हैं?
प्रश्न: नहीं, मैं नहीं कर सकता।
एम: आपको कैसे पता कि आप ऐसा नहीं कर सकते? आप बहुत सी चीजें बिना यह जाने करते हैं कि उन्हें कैसे करना है। आप पाचन क्रिया करते हैं, रक्त और लसीका का संचार करते हैं, मांसपेशियों को हिलाते हैं - ये सब बिना यह जाने कि कैसे। उसी तरह, आप बिना यह जाने कि ऐसा क्यों और कैसे होता है, अनुभव करते हैं, महसूस करते हैं, सोचते हैं। इसी प्रकार आप स्वयं हैं, बिना यह जाने कि

आप स्वयं हैं। आत्मा के रूप में आपमें कोई दोष नहीं है। यह अपने पूर्ण स्वरूप में है। यह दर्पण है जो स्पष्ट और सच्चा नहीं है, और इसलिए आपको गलत छवियाँ दिखाता है। आपको स्वयं को सुधारने की आवश्यकता नहीं है - केवल अपने बारे में अपनी धारणा को सही करें। स्वयं को छवि और दर्पण से अलग करना सीखें, हमेशा याद रखें: मैं न तो मन हूँ और न ही उसके विचार: इसे धैर्य और दृढ़ विश्वास के साथ करें और आप निश्चित रूप से स्वयं को अस्तित्व, ज्ञान, प्रेम, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वव्यापी के स्रोत के रूप में प्रत्यक्ष रूप से देख पाएंगे। आप शरीर में केंद्रित अनंत हैं। अभी आप केवल शरीर देखते हैं। ईमानदारी से प्रयास करें और आप केवल अनंत को ही देख पाएंगे।
प्रश्न: जब वास्तविकता का अनुभव होता है, तो क्या वह स्थायी होता है?
एम: सभी अनुभव क्षणभंगुर होते हैं। लेकिन सभी अनुभवों का आधार अटल है। कोई भी घटना स्थायी नहीं होती। कुछ घटनाएँ मन को शुद्ध करती हैं और कुछ उसे दूषित करती हैं। गहन अंतर्दृष्टि और सर्वव्यापी प्रेम के क्षण मन को शुद्ध करते हैं, जबकि इच्छाएँ और भय, ईर्ष्या और क्रोध, अंधविश्वास और बौद्धिक अहंकार मन को दूषित और सुस्त कर देते हैं।
प्रश्न: क्या आत्म-साक्षात्कार इतना महत्वपूर्ण है?
एम: इसके बिना तुम इच्छाओं और भय में घिरे रहोगे, जो निरर्थक रूप से अंतहीन पीड़ा में दोहराते रहेंगे। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि दर्द का भी अंत हो सकता है। लेकिन एक बार जब उन्हें यह खुशखबरी मिल जाती है, तो जाहिर है कि सभी संघर्षों और कठिनाइयों से परे जाना ही सबसे जरूरी काम होता है। तुम जानते हो कि तुम मुक्त हो सकते हो और अब यह तुम पर निर्भर है। या तो तुम सदा भूखे-प्यासे, लालसा करते, खोजते, हड़पते, जकड़े रहते, हमेशा खोते और दुखी रहते, या फिर उस शाश्वत पूर्णता की अवस्था की खोज में पूरी तरह से जुट जाओ जिसमें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता, जिससे कुछ भी घटाया नहीं जा सकता। उसमें सभी इच्छाएँ और भय अनुपस्थित होते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें त्याग दिया गया है, बल्कि इसलिए कि उनका अर्थ ही खो गया है।
प्रश्न: मैं अब तक आपका अनुसरण करता रहा हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए? एम: कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। बस रहो। कुछ मत करो। बस रहो। न पहाड़ों पर चढ़ना है, न गुफाओं में बैठना है। मैं तो यह भी नहीं कहता कि 'स्वयं बनो', क्योंकि तुम स्वयं को नहीं जानते। बस रहो। यह जानते हुए कि तुम न तो प्रत्यक्ष जगत हो, न ही आंतरिक जगत, न शरीर हो, न मन - बस रहो।
प्रश्न: निश्चित रूप से, अहसास के भी कई स्तर होते हैं।
एम: आत्म-साक्षात्कार के कोई चरण नहीं होते। इसमें कुछ भी क्रमिक नहीं होता। यह अचानक होता है और अपरिवर्तनीय है। आप एक नए आयाम में प्रवेश करते हैं, जिसके सामने पिछले आयाम मात्र अमूर्त प्रतीत होते हैं। जैसे सूर्योदय के समय आप चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखते हैं, वैसे ही आत्म-साक्षात्कार के समय आप सब कुछ उसके वास्तविक स्वरूप में देखते हैं। भ्रम का संसार पीछे छूट जाता है।
प्रश्न: आत्मज्ञान की अवस्था में क्या चीजें बदल जाती हैं? क्या वे रंगीन और अर्थपूर्ण हो जाती हैं?
एम: यह अनुभव बिल्कुल सही है, लेकिन यह वास्तविकता (सदनुभाव) का अनुभव नहीं है, बल्कि ब्रह्मांड के सामंजस्य (सत्वानुभाव) का अनुभव है।
प्रश्न: फिर भी, प्रगति हो रही है।
एम: प्रगति केवल तैयारी (साधना) में ही संभव है। अनुभूति अचानक होती है। फल धीरे-धीरे पकता है, लेकिन अचानक गिरता है और कभी वापस नहीं आता।

प्रश्न: मैं शारीरिक और मानसिक रूप से शांत हूं। मुझे और क्या चाहिए?
एम: आपकी स्थिति शायद अंतिम अवस्था न हो। आप स्वयं यह पहचान लेंगे कि आप अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आए हैं, जब आपकी सारी इच्छाएँ और भय पूरी तरह से समाप्त हो जाएँगे। आख़िरकार, सभी इच्छाओं और भय की जड़ में यह भावना होती है कि आप वह नहीं हैं जो आप वास्तव में हैं। जैसे किसी जोड़ के अपनी जगह से हट जाने पर दर्द होता है और ठीक होते ही दर्द दूर हो जाता है, वैसे ही आत्म-चिंता भी मानसिक विकृति का एक लक्षण है जो सामान्य अवस्था में आते ही गायब हो जाता है।
प्रश्न: जी हाँ, लेकिन प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधना क्या है?
एम: 'मैं हूं' की भावना को पूरी तरह से थामे रहो, बाकी सब कुछ त्याग दो। जब मन पूरी तरह शांत हो जाता है, तो वह एक नए प्रकाश से जगमगा उठता है और नए ज्ञान से स्पंदित हो उठता है। यह सब सहज रूप से होता है, आपको बस 'मैं हूं' को थामे रहना है। जैसे नींद या परमानंद की अवस्था से जागने पर आप तरोताजा महसूस करते हैं, फिर भी आप यह नहीं समझा पाते कि आप इतना अच्छा क्यों और कैसे महसूस कर रहे हैं, उसी तरह आत्मज्ञान प्राप्त होने पर आप पूर्ण, तृप्त, सुख-दुख के बोध से मुक्त महसूस करते हैं, फिर भी हमेशा यह नहीं समझा पाते कि क्या हुआ, क्यों और कैसे। आप इसे केवल नकारात्मक शब्दों में ही व्यक्त कर सकते हैं: 'अब मुझमें कुछ भी गलत नहीं है।' केवल अतीत से तुलना करने पर ही आपको पता चलता है कि आप उससे बाहर आ चुके हैं। अन्यथा - आप बस स्वयं ही हैं। इसे दूसरों तक पहुंचाने की कोशिश मत करो। अगर आप ऐसा कर भी सकते हैं, तो यह वास्तविक अनुभव नहीं है। शांत रहो और इसे क्रिया में स्वयं को व्यक्त करते हुए देखो।
प्रश्न: यदि आप मुझे बता सकें कि मैं भविष्य में क्या बनूंगा, तो इससे मुझे अपने विकास पर नजर रखने में मदद मिल सकती है।
एम: जब कुछ बनता ही नहीं, तो कोई कैसे बता सकता है कि तुम क्या बनोगे? तुम तो बस अपने वर्तमान स्वरूप को खोजते हो। किसी सांचे में ढलने की कोशिश करना समय की घोर बर्बादी है। न अतीत की चिंता करो, न भविष्य की, बस रहो।
प्रश्न: मैं कैसे सहज रह सकता हूँ? परिवर्तन तो अपरिहार्य हैं।
एम: परिवर्तनशीलता में परिवर्तन अपरिहार्य हैं, लेकिन आप उनसे अप्रभावित हैं। आप एक अपरिवर्तनीय पृष्ठभूमि हैं, जिसके संदर्भ में परिवर्तन देखे जाते हैं।
प्रश्न: सब कुछ बदलता है, पृष्ठभूमि भी बदलती है। परिवर्तनों को समझने के लिए अपरिवर्तनीय पृष्ठभूमि की आवश्यकता नहीं है। आत्मा क्षणभंगुर है - यह केवल वह बिंदु है जहाँ अतीत भविष्य से मिलता है।
एम: बेशक, स्मृति पर आधारित आत्म क्षणिक होता है। लेकिन ऐसे आत्म के पीछे अटूट निरंतरता होनी चाहिए। आप अनुभव से जानते हैं कि ऐसे अंतराल आते हैं जब आपका आत्म भुला दिया जाता है। उसे फिर से जीवित कौन करता है? सुबह आपको कौन जगाता है? चेतना के अंतरालों को पाटने वाला कोई स्थिर कारक अवश्य होना चाहिए। यदि आप ध्यान से देखें तो पाएंगे कि आपकी दैनिक चेतना भी क्षणिक होती है, जिसमें लगातार अंतराल आते रहते हैं। इन अंतरालों में क्या है? आपके वास्तविक अस्तित्व के अलावा और क्या हो सकता है, जो कालातीत है; मन और मनहीनता इसके लिए एक ही हैं।
प्रश्न: क्या आप मुझे आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए किसी विशेष स्थान की सलाह देंगे?

एम: सही जगह तो सिर्फ़ भीतर है। बाहरी दुनिया न तो मदद कर सकती है और न ही बाधा डाल सकती है। कोई भी व्यवस्था, कोई भी कार्यप्रणाली आपको आपके लक्ष्य तक नहीं पहुँचाएगी। भविष्य के लिए सारी चिंताएँ छोड़ दें, पूरी तरह से वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करें, जीवन के हर क्षण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया पर ही ध्यान दें।
प्रश्न: घूमने-फिरने की इच्छा का कारण क्या है?
एम: कोई कारण नहीं है। तुम बस सपने में घूम रहे हो। कुछ वर्षों में भारत में तुम्हारा प्रवास तुम्हारे लिए एक सपने जैसा लगेगा। उस समय तुम कोई और सपना देखोगे। यह समझ लो कि सपने से सपने में जाने वाला तुम नहीं हो, बल्कि सपने तुम्हारे सामने बहते हैं और तुम उनके अटल साक्षी हो। कोई भी घटना तुम्हारे वास्तविक अस्तित्व को प्रभावित नहीं करती - यही परम सत्य है। प्रश्न: क्या मैं शारीरिक रूप से सक्रिय रहते हुए आंतरिक रूप से स्थिर नहीं रह सकता?
एम: आप कर सकते हैं, लेकिन इससे क्या लाभ होगा? यदि आप गंभीर हैं, तो अंत में आप भटकते-भटकते थक जाएंगे और ऊर्जा और समय की बर्बादी पर पछताएंगे। स्वयं को खोजने के लिए आपको एक कदम भी उठाने की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: क्या आत्म (आत्मन) और परम (ब्रह्मन) के अनुभव में कोई अंतर है?
एम: परम सत्ता का कोई अनुभव नहीं हो सकता, क्योंकि वह सभी अनुभवों से परे है। दूसरी ओर, आत्मा ही प्रत्येक अनुभव का बोध कराती है और इस प्रकार, एक तरह से, अनुभवों की बहुलता को प्रमाणित करती है। संसार भले ही बहुमूल्य वस्तुओं से भरा हो, लेकिन यदि उन्हें खरीदने वाला कोई न हो, तो उनका कोई मूल्य नहीं है। परम सत्ता में अनुभव करने योग्य सब कुछ समाहित है, परन्तु अनुभव के बिना वे कुछ भी नहीं हैं। जो अनुभव को संभव बनाता है, वही परम सत्ता है। जो उसे वास्तविक बनाता है, वही आत्मा है।
प्रश्न: क्या हम अनुभवों के क्रमिक विकास के माध्यम से ही परम सत्य तक नहीं पहुँचते? स्थूल अनुभवों से शुरू होकर हम परम उदात्त अनुभवों पर समाप्त होते हैं।
एम: इच्छा के बिना कोई अनुभव संभव नहीं है। इच्छाओं में विभिन्न स्तर हो सकते हैं, लेकिन परम उदात्त इच्छा और सभी इच्छाओं से मुक्ति के बीच एक खाई है जिसे पार करना आवश्यक है। अवास्तविक चीज़ें वास्तविक प्रतीत हो सकती हैं, लेकिन वे क्षणभंगुर हैं। वास्तविक चीज़ें समय से भयभीत नहीं होतीं। प्रश्न: क्या अवास्तविक, वास्तविक की अभिव्यक्ति नहीं है?
एम: यह कैसे हो सकता है? यह तो ऐसा कहने जैसा है कि सत्य सपनों में प्रकट होता है। वास्तविक के लिए अवास्तविक का कोई अस्तित्व नहीं है। यह केवल इसलिए वास्तविक प्रतीत होता है क्योंकि आप इस पर विश्वास करते हैं। संदेह करो, और यह समाप्त हो जाता है। जब आप किसी से प्रेम करते हैं, तो आप उसे वास्तविकता प्रदान करते हैं - आप अपने प्रेम को सर्वशक्तिमान और शाश्वत मानते हैं। जब यह समाप्त हो जाता है, तो आप कहते हैं: 'मैंने सोचा था कि यह वास्तविक था, लेकिन यह नहीं था'। क्षणभंगुरता अवास्तविकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। जो समय और स्थान में सीमित है, और केवल एक व्यक्ति पर लागू होता है, वह वास्तविक नहीं है। वास्तविक सभी के लिए और शाश्वत है।
आप सर्वोपरि स्वयं को महत्व देते हैं। आप अपने अस्तित्व के बदले कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे। जीने की इच्छा सर्वोपरि है और यह केवल आपके वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति पर ही कायम रहेगी।
प्रश्न: अवास्तविक में भी वास्तविकता का अंश मौजूद होता है।

एम: हाँ, आप इसे वास्तविक मानकर इसे जो वास्तविकता प्रदान करते हैं। एक बार खुद को आश्वस्त कर लेने पर, आप अपने विश्वास से बंध जाते हैं। जब सूरज चमकता है, तो रंग दिखाई देते हैं। जब सूरज डूबता है, तो वे गायब हो जाते हैं। प्रकाश के बिना रंग कहाँ हैं?
प्रश्न: यह द्वैत के संदर्भ में सोचना है।
एम: सभी चिंतन द्वैत में निहित है। एकता में कोई विचार टिकता ही नहीं।

70. ईश्वर समस्त इच्छाओं और ज्ञान का अंत है।

महाराज: आप कहाँ से आ रहे हैं? आप किसलिए आए हैं?
प्रश्नकर्ता: मैं अमेरिका से हूं और मेरा दोस्त आयरलैंड गणराज्य से है।
मैं लगभग छह महीने पहले आया था और आश्रम-आश्रम घूम रहा था। मेरा दोस्त अकेले आया था।
एम: तुमने क्या देखा है?
प्रश्न: मैं श्री रमणाश्रम जा चुका हूँ और ऋषिकेश भी घूम चुका हूँ। क्या मैं आपसे श्री रमण महर्षि के बारे में आपकी राय जान सकता हूँ?
एम: हम दोनों एक ही प्राचीन अवस्था में हैं। लेकिन आप महर्षि के बारे में क्या जानते हैं? आप स्वयं को एक नाम और एक शरीर मानते हैं, इसलिए आपको केवल नाम और शरीर ही दिखाई देते हैं।
प्रश्न: यदि आपकी मुलाकात महर्षि से हो, तो क्या होगा?
एम: शायद हम काफी खुश होंगे। हम शायद कुछ बातें भी कर लें।
प्रश्न: लेकिन क्या वह आपको एक मुक्त पुरुष के रूप में पहचान पाएगा?
एम: बिलकुल। जैसे एक पुरुष दूसरे पुरुष को पहचानता है, वैसे ही एक ज्ञानी दूसरे ज्ञानी को पहचानता है। आप उस चीज़ की कद्र नहीं कर सकते जिसका आपने अनुभव नहीं किया है। आप वही हैं जो आप खुद को समझते हैं, लेकिन आप खुद को वह नहीं मान सकते जिसका आपने अनुभव नहीं किया है।
प्रश्न: अभियंता बनने के लिए मुझे इंजीनियरिंग सीखनी होगी। भगवान बनने के लिए मुझे क्या सीखना होगा?
एम: तुम्हें सब कुछ भूलना होगा। ईश्वर ही समस्त इच्छाओं और ज्ञान का अंत है।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि मैं ईश्वर बनने की इच्छा को त्यागकर ही ईश्वर बन जाता हूँ?
एम: सभी इच्छाओं का त्याग करना आवश्यक है, क्योंकि इच्छा करने से आप अपनी इच्छाओं के अनुरूप ही बन जाते हैं। जब कोई इच्छा शेष नहीं रहती, तो आप अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आते हैं।
प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि मैंने पूर्णता प्राप्त कर ली है?
एम: आप पूर्णता को नहीं जान सकते, आप केवल अपूर्णता को जान सकते हैं। ज्ञान के लिए अलगाव और असामंजस्य आवश्यक है। आप यह जान सकते हैं कि आप क्या नहीं हैं, लेकिन आप अपने वास्तविक अस्तित्व को नहीं जान सकते। आप केवल वही हो सकते हैं जो आप हैं। संपूर्ण दृष्टिकोण समझ के माध्यम से है, जो असत्य को असत्य के रूप में देखने में निहित है। लेकिन समझने के लिए, आपको बाहर से अवलोकन करना होगा।
प्रश्न: वेदांतिक अवधारणा माया, भ्रम, प्रकट अवस्था पर लागू होती है। इसलिए प्रकट अवस्था का हमारा ज्ञान अविश्वसनीय है। लेकिन अप्रकट अवस्था के हमारे ज्ञान पर हमें भरोसा करना चाहिए।

एम: अप्रकट का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। संभाव्यता अज्ञेय है। केवल वास्तविक को ही जाना जा सकता है।
प्रश्न: जानने वाला अज्ञात क्यों रहे?
एम: ज्ञाता, ज्ञात को जानता है। क्या आप ज्ञाता को जानते हैं? ज्ञाता का ज्ञाता कौन है? आप अप्रकट को जानना चाहते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि आप प्रकट को जानते हैं?
प्रश्न: मैं चीजों, विचारों और उनके संबंधों को जानता हूँ। यह मेरे सभी अनुभवों का कुल योग है।
मॉल?
प्रश्न: खैर, ये सभी वास्तविक अनुभव हैं। मैं मानता हूँ कि मुझे यह नहीं पता कि क्या नहीं हुआ।
एम: यदि प्रकट स्वरूप सभी वास्तविक अनुभवों का कुल योग है, जिसमें उनके अनुभवकर्ता भी शामिल हैं, तो आप उस कुल का कितना हिस्सा जानते हैं? वास्तव में बहुत छोटा हिस्सा। और वह थोड़ा सा हिस्सा क्या है जो आप जानते हैं? प्रश्न: मुझसे संबंधित कुछ संवेदी अनुभव।
एम: वो भी नहीं। आपको बस इतना पता है कि आप प्रतिक्रिया करते हैं। कौन प्रतिक्रिया करता है और किस पर, ये आपको नहीं पता होता। संपर्क में आते ही आपको पता चल जाता है कि आपका अस्तित्व है - 'मैं हूं'। 'मैं ये हूं', 'मैं वो हूं' ये सब काल्पनिक हैं।
प्रश्न: मैं इस वास्तविकता को जानता हूँ क्योंकि मैं इसमें सहभागी हूँ। मैं मानता हूँ कि इसमें मेरी भूमिका बहुत छोटी है, फिर भी यह इसकी समग्रता के समान ही वास्तविक है। और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि मैं इसे अर्थ देता हूँ। मेरे बिना संसार अंधकारमय और मौन है।
एम: एक जुगनू जो दुनिया को रोशन करता है! आप दुनिया को अर्थ नहीं देते, आप उसे खोजते हैं। अपने भीतर गहराई से उतरें और उस स्रोत को खोजें जहाँ से सभी अर्थ प्रवाहित होते हैं। निश्चित रूप से सतही मन अर्थ नहीं दे सकता। प्रश्न: मुझे सीमित और सतही क्या बनाता है?
एम: संपूर्णता खुली और सुलभ है, लेकिन आप इसे ग्रहण नहीं करेंगे। आप अपने आप को एक छोटे व्यक्ति के रूप में देखते हैं और उसी में सिमटे हुए हैं। आपकी इच्छाएँ संकीर्ण हैं, आपकी महत्वाकांक्षाएँ छोटी हैं। आख़िरकार, बोध के केंद्र के बिना प्रकट कैसे हो सकता है? अगोचर, प्रकट अगोचर के समान ही अच्छा है। और आप ही बोध बिंदु हैं, समस्त आयामों के आयामी स्रोत हैं। स्वयं को संपूर्णता के रूप में जानो।
प्रश्न: एक बिंदु में ब्रह्मांड कैसे समाहित हो सकता है?
एम: एक बिंदु में अनंत ब्रह्मांडों के लिए पर्याप्त स्थान है। क्षमता की कोई कमी नहीं है। समस्या केवल आत्म-सीमितता है। लेकिन आप स्वयं से भाग नहीं सकते। आप चाहे कितनी भी दूर चले जाएं, आप अंततः स्वयं में लौट आते हैं और इस बिंदु को समझने की आवश्यकता महसूस करते हैं, जो कुछ भी नहीं है, फिर भी सब कुछ का स्रोत है।
प्रश्न: मैं योग शिक्षक की तलाश में भारत आया था। मेरी तलाश अभी भी जारी है।
एम: आप किस प्रकार का योग करना चाहते हैं, पाने का योग या त्याग का योग? प्रश्न: क्या अंत में दोनों का परिणाम एक ही नहीं होता?

एम: वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? एक गुलामी करवाता है, दूसरा मुक्ति। मकसद सबसे ज़्यादा मायने रखता है। स्वतंत्रता त्याग से ही मिलती है। हर तरह की संपत्ति बंधन है।
प्रश्न: जिस चीज़ को थामे रखने की शक्ति और साहस मुझमें है, उसे मैं क्यों छोड़ दूं? और अगर मुझमें शक्ति ही न हो, तो मैं कैसे छोड़ दूं? मुझे यह त्यागने की ज़रूरत समझ नहीं आती। जब मैं कुछ चाहता हूं, तो उसे पाने की कोशिश क्यों न करूं? त्याग तो कमज़ोर लोगों का काम है।
एम: अगर आपमें त्याग करने की बुद्धि और शक्ति नहीं है, तो बस अपनी संपत्ति को देखिए। आपका देखना मात्र ही उन्हें नष्ट कर देगा। अगर आप अपने मन से बाहर निकलकर सोच सकें, तो आप जल्द ही पाएंगे कि संपत्ति और इच्छाओं का पूर्ण त्याग ही सबसे तर्कसंगत उपाय है। आप ही संसार का निर्माण करते हैं और फिर उसी की चिंता करते हैं। स्वार्थी होना आपको कमजोर बनाता है। अगर आपको लगता है कि आपमें इच्छा करने की शक्ति और साहस है, तो यह इसलिए है क्योंकि आप युवा और अनुभवहीन हैं। इच्छा की वस्तु हमेशा उसे प्राप्त करने के साधनों को नष्ट कर देती है और फिर स्वयं भी नष्ट हो जाती है। यह सब अच्छे के लिए ही होता है, क्योंकि यह आपको इच्छा को जहर की तरह त्यागना सिखाता है।
प्रश्न: मैं इच्छाहीनता का अभ्यास कैसे करूँ?
एम: अभ्यास की कोई आवश्यकता नहीं। त्याग के किसी भी कार्य की आवश्यकता नहीं। बस अपने मन को दूसरी ओर मोड़ लें, बस इतना ही। इच्छा मात्र मन का किसी विचार पर स्थिर होना है। उस पर ध्यान न देकर उसे उसकी जड़ से बाहर निकालें।
प्रश्न: बस इतना ही?
एम: जी हाँ, बस इतना ही। चाहे जो भी इच्छा या भय हो, उस पर ध्यान मत दीजिए। खुद कोशिश करके देखिए। कभी-कभार भूल जाइए, कोई बात नहीं। तब तक कोशिश करते रहिए जब तक हर इच्छा, हर भय, हर प्रतिक्रिया अपने आप दूर न हो जाए।
प्रश्न: भावनाओं के बिना कोई कैसे जी सकता है?
एम: आप अपनी इच्छानुसार सभी भावनाओं का अनुभव कर सकते हैं, लेकिन प्रतिक्रियाओं और बाहरी प्रभावों से सावधान रहें। पूरी तरह से आत्मनिर्भर बनें और भीतर से प्रेरित हों, बाहरी प्रभावों से नहीं। किसी बेहतर चीज़ को पाने के लिए किसी पुरानी चीज़ को छोड़ देना सच्चा त्याग नहीं है। उसे इसलिए छोड़ें क्योंकि आप उसका महत्वहीनता देख रहे हैं। जैसे- जैसे आप त्याग करते रहेंगे, आप पाएंगे कि आपकी बुद्धि, शक्ति और असीम प्रेम और आनंद स्वतः ही बढ़ते जा रहे हैं।
प्रश्न: सभी इच्छाओं और भयों को त्यागने पर इतना जोर क्यों दिया जाता है? क्या वे स्वाभाविक नहीं हैं?
एम: वे नहीं हैं। वे पूरी तरह से मनगढ़ंत हैं। यह जानने के लिए कि आपको किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी नहीं, आपको सब कुछ त्यागना होगा। आपकी ज़रूरतें अवास्तविक हैं और आपके प्रयास व्यर्थ हैं। आप कल्पना करते हैं कि आपकी संपत्ति आपकी रक्षा करती है। वास्तविकता में, वे आपको असुरक्षित बनाती हैं। स्वयं को उन सभी चीज़ों से दूर समझें जिन्हें 'यह' या 'वह' कहा जा सकता है। आप किसी भी इंद्रिय अनुभव या शाब्दिक रचना से अछूते हैं। उनसे मुंह मोड़ लें। नकल करने से इनकार करें।
प्रश्न: आपकी बात सुनने के बाद मुझे क्या करना चाहिए?

एम: सिर्फ सुनने से कुछ खास मदद नहीं मिलेगी। आपको इसे ध्यान में रखना होगा, इस पर विचार करना होगा और उस मनस्थिति को समझने की कोशिश करनी होगी जिसके कारण मैं ये सब कह रहा हूँ। मैं सच बोल रहा हूँ; अपना हाथ बढ़ाओ और इसे स्वीकार करो। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप वो नहीं हैं जो आप खुद को समझते हैं। आपकी खुद की जो छवि है, वो यादों से बनी है और पूरी तरह से आकस्मिक है।
प्रश्न: मैं जो कुछ भी हूँ, वह मेरे कर्मों का परिणाम है।
एम: तुम जैसे दिखते हो, वैसे नहीं हो। कर्म तो बस एक शब्द है जिसे तुमने रटना सीख लिया है। तुम न कभी इंसान थे, न कभी बनोगे। खुद को इंसान मानना छोड़ दो। लेकिन जब तक तुम खुद को मिस्टर फलां-फलां होने का शक भी नहीं करते, तब तक कोई उम्मीद नहीं है। जब तुम आंखें खोलने से ही इनकार करोगे, तो तुम्हें क्या दिखाया जाएगा?
प्रश्न: मैं कर्म को एक रहस्यमय शक्ति के रूप में देखता हूँ जो मुझे पूर्णता की ओर प्रेरित करती है।
एम: लोगों ने तुम्हें यही बताया है। तुम अभी इसी वक्त परिपूर्ण हो। परिपूर्णता की चाहत तुममें नहीं है। तुम खुद को वो समझने की कोशिश कर रहे हो जो तुम नहीं हो - इसे बंद करो। महत्वपूर्ण यह है कि तुम इस सोच को कैसे रोकते हो, न कि तुम क्या रोकने वाले हो।
प्रश्न: क्या कर्म ने मुझे वह बनने के लिए विवश नहीं किया जो मैं आज हूँ? एम: कोई भी चीज़ आपको बाध्य नहीं करती। आप वही हैं जो आप खुद को मानते हैं। मानना बंद करो।
प्रश्न: आप यहाँ अपनी सीट पर बैठे मुझसे बात कर रहे हैं। आपको ऐसा करने के लिए प्रेरित करने वाला कारक आपका कर्म है।
एम: मुझे कोई बाध्यता नहीं है। मैं वही करता हूँ जो ज़रूरी है। लेकिन तुम तो बहुत सी अनावश्यक चीज़ें करते हो। तुम्हारा आत्मविश्लेषण न करना ही कर्म का फल देता है। अपने कष्टों के प्रति तुम्हारी उदासीनता ही उन्हें निरंतर बनाए रखती है।
प्रश्न: जी हाँ, यह सच है। इस उदासीनता को कैसे समाप्त किया जा सकता है? एम: यह प्रेरणा भीतर से ही अनासक्ति या करुणा की लहर के रूप में आनी चाहिए। प्रश्न: क्या मैं इस इच्छा को कुछ हद तक पूरा कर सकता हूँ?
एम: बिल्कुल। अपनी हालत देखो, दुनिया की हालत देखो।
प्रश्न: हमें कर्म, पुनर्जन्म, विकासवाद, योग, गुरु और शिष्यों के बारे में बताया गया। इस सारी जानकारी का हम क्या करें?
एम: सब कुछ पीछे छोड़ दो। भूल जाओ। विचारों और मान्यताओं के बोझ से मुक्त होकर आगे बढ़ो। सभी शाब्दिक संरचनाओं, सभी सापेक्षिक सत्यों, सभी मूर्त उद्देश्यों का त्याग करो। परम सत्य तक केवल पूर्ण समर्पण से ही पहुंचा जा सकता है। आधे मन से मत करो।
प्रश्न: मुझे किसी परम सत्य से शुरुआत करनी होगी। क्या ऐसा कोई सत्य है? एम: हां, है तो सही, वो एहसास: 'मैं हूं'। यहीं से शुरुआत करें।
प्रश्न: क्या इसके अलावा कुछ भी सच नहीं है?
एम: बाकी सब न तो सत्य है और न ही असत्य। जब वह प्रकट होता है तो वास्तविक लगता है, और जब उसे नकार दिया जाता है तो वह गायब हो जाता है। क्षणभंगुर वस्तु एक रहस्य है।
प्रश्न: मुझे लगा कि रहस्य ही वास्तविकता है।

एम: यह कैसे संभव है? वास्तविकता सरल, खुली, स्पष्ट और दयालु है, सुंदर और आनंदमय है। यह विरोधाभासों से पूरी तरह मुक्त है। यह हमेशा नई, हमेशा ताज़ा और अनंत रूप से रचनात्मक है। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व, जीवन और मृत्यु, सभी भेद इसमें विलीन हो जाते हैं।
प्रश्न: मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि सब कुछ झूठ है। लेकिन क्या इससे मेरा दिमाग अस्तित्वहीन हो जाता है?
एम: मन वही है जो वह सोचता है। इसे सच करने के लिए, सच सोचो।
प्रश्न: यदि वस्तुओं का आकार मात्र एक आभास है, तो वास्तविकता में वे क्या हैं?
एम: वास्तव में केवल बोध ही होता है। बोधकर्ता और बोधित वस्तु दोनों ही अवधारणात्मक हैं, बोध की घटना ही वास्तविक है।
प्रश्न: इसमें परम सत्ता का क्या स्थान है?
एम: परम सत्ता ही बोध का जन्मस्थान है। यही बोध को संभव बनाती है।
लेकिन अत्यधिक विश्लेषण से कोई लाभ नहीं होता। आपके भीतर वह सार तत्व विद्यमान है जो विश्लेषण से परे है, मन से परे है। आप इसे केवल कर्म से ही जान सकते हैं। इसे अपने दैनिक जीवन में अभिव्यक्त करें और इसका प्रकाश और भी अधिक प्रज्वलित होगा।
मन का वैध कार्य आपको यह बताना है कि क्या नहीं है। लेकिन यदि आप सकारात्मक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको मन से परे जाना होगा।
प्रश्न: क्या पूरे ब्रह्मांड में कोई एक ऐसी वस्तु है जिसका कोई मूल्य हो? एम: हां, प्रेम की शक्ति।

71. आत्म-जागरूकता में आप स्वयं के बारे में सीखते हैं।

प्रश्नकर्ता: हमारा बार-बार का अनुभव यह है कि शिष्य अपने गुरुओं को बहुत हानि पहुँचाते हैं। वे गुरु की इच्छाओं पर विचार किए बिना योजनाएँ बनाते हैं और उन्हें क्रियान्वित करते हैं। अंत में गुरु को केवल अंतहीन चिंता होती है और उनके शिष्यों के मन में कड़वाहट रह जाती है।
महाराज: जी हाँ, ऐसा होता है।
प्रश्न: गुरु को इन अपमानों को सहने के लिए कौन विवश करता है?
एम: गुरु मूलतः इच्छाहीन होते हैं। वे जो कुछ घटित होता देखते हैं, उसमें हस्तक्षेप करने की कोई इच्छा नहीं रखते। वे कोई चुनाव नहीं करते, कोई निर्णय नहीं लेते। शुद्ध साक्षी के रूप में, वे जो कुछ घटित होता देखते हैं और अप्रभावित रहते हैं।
प्रश्न: लेकिन इससे उनके काम पर बुरा असर पड़ता है।
एम: अंत में विजय हमेशा उन्हीं की होती है। वे जानते हैं कि यदि शिष्य उनके वचनों से नहीं सीखते, तो वे अपनी गलतियों से स्वयं सीख लेंगे। वे अंतर्मन में शांत और मौन रहते हैं। उन्हें स्वयं को अलग व्यक्ति होने का कोई बोध नहीं है। संपूर्ण ब्रह्मांड उनका अपना है, जिसमें उनके शिष्य और उनकी छोटी-मोटी योजनाएँ भी शामिल हैं। कोई भी बात उन्हें विशेष रूप से प्रभावित नहीं करती, या दूसरे शब्दों में कहें तो, संपूर्ण ब्रह्मांड उन्हें समान रूप से प्रभावित करता है।
प्रश्न: क्या गुरु की कृपा जैसी कोई चीज नहीं होती?
एम: उनकी कृपा निरंतर और सार्वभौमिक है। यह किसी एक को दी जाती है और किसी दूसरे को नहीं दी जाती।

प्रश्न: इससे मुझ पर व्यक्तिगत रूप से क्या प्रभाव पड़ता है?
एम: गुरु की कृपा से ही आपका मन सत्य की खोज में लगा हुआ है और उन्हीं की कृपा से आपको सत्य प्राप्त होगा। यह निःस्वार्थ भाव से आपके परम कल्याण की ओर कार्य करता है। और यह सबके लिए है।
प्रश्न: कुछ शिष्य तैयार और परिपक्व होते हैं, जबकि कुछ नहीं। क्या गुरु को चुनाव करने और निर्णय लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए?
एम: गुरु को परम सत्य का ज्ञान होता है और वे शिष्य को निरंतर उसी ओर अग्रसर करते हैं। शिष्य के जीवन में अनेक बाधाएँ आती हैं, जिन्हें उसे स्वयं ही पार करना होता है। गुरु शिष्य के जीवन की सतही बातों से अधिक चिंतित नहीं होते। यह गुरुत्वाकर्षण के समान है - फल अपने आप ही गिरता है, जब उसे कोई रोक नहीं पाता।
प्रश्न: यदि शिष्य को लक्ष्य का ही ज्ञान न हो, तो वह बाधाओं को कैसे पहचान पाएगा?
एम: लक्ष्य गुरु द्वारा दिखाया जाता है, बाधाएं शिष्य द्वारा खोजी जाती हैं। गुरु किसी का पक्ष नहीं लेते, लेकिन जिन शिष्यों को बाधाओं का सामना करना पड़ता है, वे पीछे छूटते हुए प्रतीत होते हैं।
वास्तव में शिष्य गुरु से भिन्न नहीं है। वह भी कर्म में परित्यक्त, असीम, बोध और प्रेम का केंद्र है। केवल उसकी कल्पना और कल्पित से आत्म-पहचान ही उसे घेर लेती है और उसे एक व्यक्ति में परिवर्तित कर देती है। गुरु को व्यक्ति से कोई सरोकार नहीं होता। उनका ध्यान अंतर्मन के द्रष्टा पर होता है। द्रष्टा का कार्य है व्यक्ति को समझना और इस प्रकार उसे विलीन करना। एक ओर कृपा है तो दूसरी ओर कार्य के प्रति समर्पण भी आवश्यक है।
प्रश्न: लेकिन वह व्यक्ति बाहर होना नहीं चाहता।
एम: यह व्यक्ति महज एक गलतफहमी का नतीजा है। असल में, ऐसा कुछ है ही नहीं। भावनाएँ, विचार और कर्म देखने वाले के सामने लगातार दौड़ते रहते हैं, दिमाग में निशान छोड़ते हैं और निरंतरता का भ्रम पैदा करते हैं। मन में देखने वाले का प्रतिबिंब 'मैं' का बोध पैदा करता है और व्यक्ति को एक स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त हो जाता है। असल में, कोई व्यक्ति नहीं है, सिर्फ देखने वाला है जो खुद को 'मैं' और 'मेरा' से जोड़ता है। गुरु देखने वाले से कहते हैं: तुम यह नहीं हो, इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है, सिवाय 'मैं हूँ' के उस छोटे से बिंदु के, जो देखने वाले और उसके सपने के बीच सेतु है। 'मैं यह हूँ, मैं वह हूँ' सपना है, जबकि शुद्ध 'मैं हूँ' पर वास्तविकता की छाप है। तुमने बहुत सी चीजों का स्वाद चखा है - सब व्यर्थ हो गया। सिर्फ 'मैं हूँ' का बोध बना रहा - अपरिवर्तित। परिवर्तनशील के बीच अपरिवर्तनीय के साथ रहो, जब तक तुम उससे आगे न बढ़ सको।
प्रश्न: यह कब होगा?
एम: जैसे ही आप बाधाएं हटाएंगे, यह हो जाएगा।
प्रश्न: कौन सी बाधाएँ?
एम: असत्य की लालसा और सत्य का भय। आप, एक व्यक्ति के रूप में, यह कल्पना करते हैं कि गुरु को आपमें व्यक्तिगत रूप से रुचि है। बिलकुल नहीं। उनके लिए आप एक उपद्रव और एक बाधा हैं जिसे दूर करना आवश्यक है। वास्तव में उनका उद्देश्य चेतना में आपके अस्तित्व को मिटाना है।
प्रश्न: अगर मैं बाहर हो जाता हूँ, तो क्या बचेगा?
एम: कुछ भी नहीं बचेगा, सब कुछ बना रहेगा। पहचान का बोध बना रहेगा, लेकिन किसी विशेष शरीर से जुड़ाव नहीं रहेगा। अस्तित्व—जागरूकता—प्रेम अपने

पूर्ण वैभव में चमक उठेगा। मुक्ति कभी व्यक्ति की नहीं होती, वह हमेशा व्यक्ति से मुक्ति होती है।
प्रश्न: और उस व्यक्ति का कोई सुराग नहीं मिला?
एम: एक धुंधली सी याद रह जाती है, जैसे किसी सपने की या बचपन की। आखिर याद रखने लायक है क्या? घटनाओं का एक सिलसिला, ज्यादातर आकस्मिक और अर्थहीन। इच्छाओं, भय और व्यर्थ की गलतियों का एक क्रम। क्या याद रखने लायक कुछ है भी? वह व्यक्ति तो बस एक खोल है जो तुम्हें कैद कर रहा है। इस खोल को तोड़ो। प्रश्न: आप किससे कवच तोड़ने के लिए कह रहे हैं? कवच कौन तोड़ेगा?
एम: स्मृति और आत्म-पहचान के बंधन तोड़ दो, और कवच अपने आप टूट जाएगा। एक केंद्र है जो हर उस चीज़ को वास्तविकता प्रदान करता है जिसे वह अनुभव करता है। आपको बस इतना समझना है कि आप वास्तविकता के स्रोत हैं, कि आप वास्तविकता प्राप्त करने के बजाय उसे प्रदान करते हैं, कि आपको किसी सहारे या पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। चीजें जैसी हैं वैसी ही हैं, क्योंकि आप उन्हें वैसे ही स्वीकार करते हैं। उन्हें स्वीकार करना बंद कर दें, और वे विलीन हो जाएंगी। आप जिस भी चीज़ के बारे में इच्छा या भय से सोचते हैं, वह आपके सामने वास्तविक रूप में प्रकट होती है। उसे बिना इच्छा या भय के देखें, और वह अपना सार खो देती है। सुख और दुख क्षणिक होते हैं। उन पर अमल करने की बजाय उन्हें अनदेखा करना कहीं अधिक सरल और आसान है।

प्रश्न: यदि सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो वे अस्तित्व में क्यों आए?
एम: सृजन चेतना के मूल स्वभाव में निहित है। चेतना ही घटनाओं का कारण बनती है। वास्तविकता चेतना से परे है।
प्रश्न: हम दिखावे के प्रति सचेत होते हुए भी, यह कैसे संभव है कि हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि ये मात्र दिखावे हैं?
एम: मन अनजाने में ही वास्तविकता को छुपा लेता है। मन के स्वरूप को जानने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है, मन को शांत और तटस्थ भाव से देखने की क्षमता की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: यदि मैं सर्वव्यापी चेतना का स्वरूप हूं, तो मुझमें अज्ञान और भ्रम कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?
एम: न तो अज्ञान और न ही भ्रम कभी आप पर हावी हुआ। उस आत्मा को खोजिए जिसे आप अज्ञान और भ्रम का कारण मानते हैं, और आपके प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। आप ऐसे बात करते हैं मानो आप आत्मा को जानते हों और उसे अज्ञान और भ्रम के वश में देखते हों। लेकिन वास्तव में, आप आत्मा को नहीं जानते, न ही आप अज्ञान से अवगत हैं। हर हाल में जागरूक हो जाइए - इससे आप आत्मा तक पहुँच जाएँगे और आपको अहसास होगा कि उसमें न तो अज्ञान है और न ही भ्रम। यह ऐसा ही है जैसे कहना: यदि सूर्य है, तो अंधकार कैसे हो सकता है? जैसे पत्थर के नीचे अंधकार होता है, चाहे सूर्य का प्रकाश कितना भी तीव्र क्यों न हो, वैसे ही 'मैं-शरीर हूँ' चेतना की छाया में अज्ञान और भ्रम अवश्य होता है। प्रश्न: लेकिन शरीर चेतना का अस्तित्व क्यों आया?
एम: 'क्यों' मत पूछो, 'कैसे' पूछो। रचनात्मक कल्पना का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह अपनी रचनाओं से जुड़ जाती है। आप ध्यान हटाकर या छानबीन करके इसे किसी भी क्षण रोक सकते हैं।
प्रश्न: क्या सृजन, अनुसंधान से पहले आता है?
एम: पहले आप एक दुनिया बनाते हैं, फिर 'मैं' एक व्यक्ति बन जाता है, जो अनेक कारणों से दुखी होता है। वह खुशी की तलाश में निकलता है, एक गुरु से मिलता

है जो उससे कहता है: 'तुम एक व्यक्ति नहीं हो, अपने असली स्वरूप को खोजो।' वह ऐसा करता है और उससे आगे बढ़ जाता है।
प्रश्न: उन्होंने इसे शुरुआत में ही क्यों नहीं किया?
एम: उसे यह बात सूझी ही नहीं। उसे किसी ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत थी जो उसे यह बात बताए।
प्रश्न: क्या यह पर्याप्त था?
एम: इतना काफी था।
प्रश्न: मेरे मामले में यह काम क्यों नहीं कर रहा है?
एम: आपको मुझ पर भरोसा नहीं है।
प्रश्न: मेरा विश्वास कमजोर क्यों है?
एम: इच्छाओं और भय ने आपके दिमाग को सुस्त कर दिया है। इसे शुद्धिकरण की आवश्यकता है।
प्रश्न: मैं अपने मन को कैसे शांत कर सकता हूँ?
एम: इसे लगातार देखते रहने से। असावधानी चीजों को धुंधला कर देती है, ध्यान उन्हें स्पष्ट करता है।
प्रश्न: भारतीय शिक्षक निष्क्रियता की वकालत क्यों करते हैं?
एम: अधिकांश लोगों के कार्य व्यर्थ हैं, बल्कि विनाशकारी ही हैं। इच्छा और भय से ग्रस्त होकर वे कुछ भी अच्छा नहीं कर पाते। बुराई को रोकना ही भलाई की शुरुआत है। इसलिए, कुछ समय के लिए सभी गतिविधियों को रोकना, अपनी इच्छाओं और उनके उद्देश्यों की जांच करना, अपने जीवन में मौजूद सभी असत्य चीजों को देखना, मन से सभी बुराइयों को दूर करना और फिर अपने स्पष्ट कर्तव्यों से शुरू करते हुए कार्य पुनः आरंभ करना आवश्यक है। बेशक, यदि आपको किसी की मदद करने का अवसर मिले, तो अवश्य करें और शीघ्रता से करें, उसे अपने पूर्ण होने तक प्रतीक्षा न कराएं। लेकिन पेशेवर परोपकारी न बनें।
प्रश्न: मुझे शिष्यों में परोपकारी लोगों की संख्या बहुत कम लगती है। मैंने जिनसे भी मुलाकात की है, उनमें से अधिकतर अपने ही छोटे-मोटे झगड़ों में उलझे रहते हैं। उनमें दूसरों के लिए कोई सहानुभूति नहीं है।
एम: ऐसा स्वार्थ अस्थायी होता है। ऐसे लोगों के साथ धैर्य रखें। इतने वर्षों तक उन्होंने हर चीज़ पर ध्यान दिया, सिवाय खुद के। उन्हें भी एक मौका दें, खुद पर ध्यान देने का।
प्रश्न: आत्मजागरूकता के क्या लाभ हैं?
एम: आप अधिक बुद्धिमान बनते हैं। जागरूकता में आप सीखते हैं। आत्मजागरूकता में आप अपने बारे में सीखते हैं। बेशक, आप केवल वही जान सकते हैं जो आप नहीं हैं। आप क्या हैं, यह जानने के लिए आपको मन से परे जाना होगा। प्रश्न: क्या चेतना मन से परे नहीं है?
एम: जागरूकता वह बिंदु है जहाँ मन स्वयं से परे जाकर वास्तविकता तक पहुँचता है। जागरूकता में आप वह नहीं खोजते जो आपको प्रसन्न करता है, बल्कि वह खोजते हैं जो सत्य है।
प्रश्न: मुझे लगता है कि जागरूकता आंतरिक शांति की स्थिति, मानसिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न करती है।
एम: जैसा चल रहा है, ठीक है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। क्या आपने उस सर्वव्यापी शून्यता को महसूस किया है जिसमें ब्रह्मांड नीले आकाश में बादल की तरह तैरता है?
प्रश्न: महोदय, मुझे पहले अपने अंतर्मन को अच्छी तरह से जानने दीजिए।

एम: उस दीवार को नष्ट कर दो जो अलग करती है, 'मैं ही शरीर हूं' की धारणा को तोड़ दो और भीतरी और बाह्य एक हो जाएंगे।
प्रश्न: क्या मुझे मरना है?
एम: भौतिक विनाश अर्थहीन है। यह इंद्रियजन्य जीवन से लगाव ही है जो आपको बांधे रखता है। यदि आप आंतरिक शून्यता का पूर्णतः अनुभव कर सकें, तो संपूर्णता में विस्फोट निकट होगा।
प्रश्न: मेरे आध्यात्मिक अनुभव में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कभी मैं आनंदित महसूस करता हूँ, तो कभी उदास। मैं एक छोटे बच्चे की तरह हूँ - ऊपर जाता हूँ, नीचे आता हूँ, ऊपर जाता हूँ, नीचे आता हूँ।
एम: चेतना में होने वाले सभी परिवर्तन 'मैं ही शरीर हूँ' की धारणा के कारण होते हैं। इस धारणा से मुक्त होकर मन स्थिर हो जाता है। तब शुद्ध अस्तित्व प्राप्त होता है, जो किसी विशेष अनुभूति से मुक्त होता है। लेकिन इसे अनुभव करने के लिए आपको अपने गुरु की बात माननी होगी। केवल सुनना या याद करना पर्याप्त नहीं है। यदि आप इसके प्रत्येक शब्द को अपने दैनिक जीवन में उतारने के लिए प्रयास नहीं करते हैं, तो यह शिकायत न करें कि आपने कोई प्रगति नहीं की। सभी वास्तविक प्रगति अपरिवर्तनीय होती है। उतार-चढ़ाव केवल यह दर्शाते हैं कि शिक्षा को पूरी तरह से आत्मसात नहीं किया गया है और उसे कर्म में नहीं उतारा गया है।
प्रश्न: आपने कुछ दिन पहले हमसे कहा था कि कर्म जैसी कोई चीज नहीं होती। फिर भी हम देखते हैं कि हर चीज का कोई न कोई कारण होता है और सभी कारणों का कुल योग ही कर्म कहलाता है।
एम: जब तक आप स्वयं को शरीर मानते रहेंगे, तब तक आप हर चीज़ के लिए कारण ढूंढते रहेंगे। मैं यह नहीं कहता कि किसी चीज़ का कोई कारण नहीं होता। हर चीज़ के अनगिनत कारण होते हैं। वह जैसी है वैसी ही है, क्योंकि संसार जैसा है वैसा ही है। हर कारण अपने विस्तार में पूरे ब्रह्मांड को समाहित करता है।
जब आपको यह अहसास होता है कि आप जो चाहें वो बनने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र हैं, कि आप अज्ञानता या उदासीनता के कारण ही ऐसे दिखते हैं जैसे आप हैं, तब आप विद्रोह करने और बदलने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं। आप स्वयं को वह बनने देते हैं जो आप नहीं हैं। आप अपने उस स्वरूप के कारणों की खोज कर रहे हैं जो आप नहीं हैं! यह व्यर्थ की खोज है। कोई कारण नहीं है, सिवाय आपके अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान के, जो परिपूर्ण है और सभी कारणों से परे है। क्योंकि जो कुछ भी होता है, उसके लिए संपूर्ण ब्रह्मांड जिम्मेदार है और आप ही ब्रह्मांड के स्रोत हैं।
प्रश्न: मुझे ब्रह्मांड के कारण होने के बारे में कुछ भी नहीं पता।
एम: क्योंकि आप जांच-पड़ताल नहीं करते। पूछताछ कीजिए, अपने भीतर खोजबीन कीजिए और आपको पता चल जाएगा।
प्रश्न: मुझ जैसे एक छोटे से कण से इतना विशाल ब्रह्मांड कैसे बन सकता है? एम: जब आप 'मैं ही शरीर हूँ' के वायरस से संक्रमित हो जाते हैं, तो एक संपूर्ण ब्रह्मांड अस्तित्व में आ जाता है। लेकिन जब आप इससे ऊब जाते हैं, तो आप मुक्ति के बारे में कुछ काल्पनिक विचार पाल लेते हैं और पूरी तरह व्यर्थ कर्मों का अनुसरण करते हैं। आप एकाग्रता से ध्यान लगाते हैं, अपने मन और शरीर को पीड़ा देते हैं, तरह-तरह के अनावश्यक काम करते हैं, लेकिन आप उस मूल तत्व को भूल जाते हैं जो कि व्यक्ति का उन्मूलन है।

प्रश्न: शुरुआत में हमें आत्म-जांच के लिए तैयार होने से पहले कुछ समय तक प्रार्थना और ध्यान करना पड़ सकता है।
एम: अगर आपको ऐसा लगता है, तो ठीक है। मेरे लिए, हर तरह की देरी समय की बर्बादी है। आप सारी तैयारियों को छोड़ सकते हैं और सीधे अपने भीतर की परम खोज में लग सकते हैं। सभी योगों में यह सबसे सरल और सबसे छोटा है।

72. जो शुद्ध, मिलावट रहित और अनासक्त है, वही वास्तविक है।

महाराज: आप भारत लौट आए! आप कहाँ-कहाँ गए थे, आपने क्या-क्या देखा? प्रश्नकर्ता: मैं स्विट्जरलैंड से हूँ। मैं वहाँ एक असाधारण व्यक्ति के साथ रहा, जो आत्मज्ञान प्राप्त करने का दावा करता है। उसने अतीत में कई योगासन किए हैं और अनेक अनुभव प्राप्त किए हैं जो अब समाप्त हो चुके हैं। अब वह किसी विशेष क्षमता या ज्ञान का दावा नहीं करता; उसके बारे में एकमात्र असामान्य बात उसकी संवेदनाओं से जुड़ी है; वह देखने वाले और देखे जाने वाले को अलग नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, जब वह किसी कार को अपनी ओर तेज़ी से आते देखता है, तो उसे नहीं पता होता कि कार उसकी ओर आ रही है या वह कार की ओर। वह एक ही समय में देखने वाला और देखा जाने वाला दोनों प्रतीत होता है। वे एक हो जाते हैं। वह जो कुछ भी देखता है, उसमें वह स्वयं को ही देखता है। जब मैंने उससे कुछ वेदांतिक प्रश्न पूछे, तो उसने कहा: 'मैं वास्तव में उत्तर नहीं दे सकता। मुझे नहीं पता। मैं बस इतना जानता हूँ कि मैं जो कुछ भी अनुभव करता हूँ, उसके साथ यह विचित्र एकात्मता है। आप जानते हैं, मुझे इससे कुछ और ही उम्मीद थी।'
कुल मिलाकर वह एक विनम्र व्यक्ति हैं; वह किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते और न ही कभी स्वयं को श्रेष्ठ समझते हैं। वह अपनी विचित्र स्थिति के बारे में बात करने को तैयार हैं, बस इतना ही।
एम: अब उसे पता चल गया है कि उसे क्या पता है। बाकी सब खत्म हो गया। कम से कम वह अभी भी बोलता तो है। जल्द ही वह बोलना बंद भी कर सकता है।
प्रश्न: तब वह क्या करेगा?
एम: स्थिरता और मौन निष्क्रियता नहीं हैं। फूल अपनी सुगंध से पूरे स्थान को भर देता है, मोमबत्ती अपने प्रकाश से। वे कुछ नहीं करते, फिर भी अपनी उपस्थिति मात्र से सब कुछ बदल देते हैं। आप मोमबत्ती की तस्वीर ले सकते हैं, लेकिन उसके प्रकाश की नहीं। आप उस व्यक्ति को जान सकते हैं, उसका नाम और रूप-रंग, लेकिन उसके प्रभाव को नहीं। उसकी उपस्थिति ही क्रिया है। प्रश्न: क्या सक्रिय रहना स्वाभाविक नहीं है?
एम: हर कोई सक्रिय रहना चाहता है, लेकिन उसके कार्यों की उत्पत्ति कहाँ से होती है? कोई केंद्रीय बिंदु नहीं है; प्रत्येक क्रिया दूसरी क्रिया को जन्म देती है, निरर्थक और कष्टदायी रूप से, अंतहीन क्रम में। काम और विश्राम का कोई चक्र नहीं है। पहले उस अविचल केंद्र को खोजें जहाँ से सभी गति का जन्म होता है। जैसे एक पहिया धुरी पर घूमता है, वैसे ही आपको हमेशा धुरी के केंद्र में रहना चाहिए, न कि परिधि पर घूमते रहना चाहिए।
प्रश्न: व्यवहार में मैं इसे कैसे लागू करूँ?
एम: जब भी आपके मन में इच्छा या भय का कोई विचार या भावना आए, तो बस उससे मुंह मोड़ लें।
प्रश्न: अपने विचारों और भावनाओं को दबाकर मैं एक प्रतिक्रिया को भड़काऊंगा।

एम: मैं दमन की बात नहीं कर रहा हूँ। बस ध्यान आकर्षित करने से इनकार कर दो।
प्रश्न: क्या मुझे मन की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए?
एम: इसका प्रयास से कोई लेना-देना नहीं है। बस नज़रें फेर लें, विचारों पर ध्यान देने के बजाय उनके बीच देखें। जब आप किसी भीड़ में चलते हैं, तो हर किसी से झगड़ा न करें - बस उनके बीच से अपना रास्ता बना लें।
प्रश्न: यदि मैं अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग मन को नियंत्रित करने के लिए करूं, तो इससे केवल अहंकार ही मजबूत होता है।
एम: बिल्कुल। जब आप लड़ते हैं, तो आप लड़ाई को न्योता देते हैं। लेकिन जब आप विरोध नहीं करते, तो आपको किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ता। जब आप खेल में भाग लेने से इनकार करते हैं, तो आप खेल से बाहर हो जाते हैं। प्रश्न: मुझे मन से मुक्ति पाने में कितना समय लगेगा?
एम: इसमें हज़ार साल लग सकते हैं, लेकिन वास्तव में समय की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको बस पूरी लगन से प्रयास करना होगा। यहाँ इच्छा ही कर्म है। यदि आप सच्चे हैं, तो आपको यह प्राप्त हो जाएगा। अंततः, यह दृष्टिकोण का मामला है। भय के अलावा, अभी और यहीं ज्ञानी बनने से आपको कोई नहीं रोक सकता। आप निराकार होने से, निराकार अस्तित्व से डरते हैं। यह सब बहुत सरल है। अपनी इच्छाओं और भयों से, और उनसे उत्पन्न विचारों से दूर हो जाइए, और आप तुरंत अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुँच जाएँगे।
प्रश्न: क्या मन को पुनर्परिभाषित करने, बदलने या समाप्त करने का कोई सवाल ही नहीं उठता?
एम: बिलकुल नहीं। अपने मन को शांत रखो, बस इतना ही। उसके बहकावे में मत आओ। आखिर, विचारों से अलग मन जैसी कोई चीज नहीं है, जो अपने नियमों के अनुसार आते-जाते हैं, आपके नियमों के अनुसार नहीं। वे आप पर हावी होते हैं, सिर्फ इसलिए कि आप उनमें रुचि रखते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसा ईसा मसीह ने कहा था, 'बुराई का विरोध मत करो'। बुराई का विरोध करके आप उसे और मजबूत ही करते हैं।
प्रश्न: जी हाँ, अब मुझे समझ आ गया। मुझे बस बुराई के अस्तित्व को नकारना है। फिर वह लुप्त हो जाती है। लेकिन क्या यह किसी प्रकार के स्वतः-सुझाव का परिणाम नहीं है?
एम: इस समय आत्म-सुझाव पूरी तरह से सक्रिय है, जब आप खुद को अच्छाई और बुराई के बीच फंसा हुआ व्यक्ति समझते हैं। मैं आपसे यही कहना चाहता हूं कि इसे रोकें, जागें और चीजों को उनके वास्तविक रूप में देखें।
स्विट्जरलैंड में अपने उस अजीब दोस्त के साथ बिताए समय के बारे में: आपको उसकी संगति से क्या लाभ हुआ?
प्रश्न: बिलकुल कुछ नहीं। उनके अनुभव का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। एक बात जो मैंने समझी है: खोजने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं जहाँ भी जाऊँ, यात्रा के अंत में मेरा कुछ भी इंतज़ार नहीं करता। खोज यात्रा का परिणाम नहीं है। एम: जी हाँ, आप उन सभी चीजों से बिल्कुल अलग हैं जिन्हें हासिल किया जा सकता है या खोया जा सकता है।
प्रश्न: क्या आप इसे वैराग्य, त्याग या वैराग्य कहते हैं?
एम: त्यागने जैसा कुछ नहीं है। बस इतना ही काफी है कि आप संचय करना बंद कर दें। देने के लिए पाना आवश्यक है, और पाने के लिए लेना आवश्यक है। बेहतर है

कि आप लेना ही छोड़ दें। यह त्याग का अभ्यास करने से कहीं अधिक सरल है, क्योंकि त्याग एक खतरनाक प्रकार के 'आध्यात्मिक' अभिमान की ओर ले जाता है। यह सब तौलना, चुनना, छांटना, अदला-बदली करना—यह सब किसी 'आध्यात्मिक' बाज़ार में खरीदारी करने जैसा है। वहाँ आपका क्या काम है? आप कौन सा सौदा करने आए हैं? जब आप व्यापार के लिए नहीं आए हैं, तो इस अंतहीन चुनाव की चिंता का क्या फायदा? बेचैनी आपको कहीं नहीं ले जाती। कोई चीज़ आपको यह देखने से रोकती है कि आपको किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। उसे पहचानें और उसकी असत्यता को समझें। यह ऐसा है जैसे आपने कोई ज़हर निगल लिया हो और पानी के लिए असहनीय प्यास से पीड़ित हों। हद से ज़्यादा पीने के बजाय, क्यों न ज़हर को निकाल दें और इस जलती हुई प्यास से छुटकारा पा लें?
प्रश्न: मुझे अहंकार को खत्म करना होगा!
एम: 'मैं समय और स्थान में एक व्यक्ति हूँ' की भावना ही विष है। एक तरह से, समय ही विष है। समय में सब कुछ समाप्त हो जाता है और नया जन्म लेता है, जो बारी-बारी से नष्ट हो जाता है। अपने आप को समय से मत जोड़ो, चिंता से यह मत पूछो: 'आगे क्या, आगे क्या?' समय से बाहर निकलो और उसे दुनिया को निगलते हुए देखो। कहो: 'ठीक है, समय का स्वभाव ही सब कुछ समाप्त करना है। होने दो। मुझे इससे कोई लेना-देना नहीं है। मैं ज्वलनशील नहीं हूँ, न ही मुझे ईंधन इकट्ठा करने की आवश्यकता है।'
प्रश्न: क्या गवाह उन चीजों के बिना हो सकता है जिनकी गवाही देनी है?
एम: देखने के लिए हमेशा कुछ न कुछ होता है। अगर कोई चीज़ नहीं, तो उसकी अनुपस्थिति। देखना स्वाभाविक है और इसमें कोई समस्या नहीं है। समस्या है अत्यधिक रुचि, जो आत्म-पहचान की ओर ले जाती है। आप जिस भी चीज़ में लीन हो जाते हैं, उसे ही वास्तविक मान लेते हैं।
प्रश्न: क्या 'मैं हूँ' वास्तविक है या अवास्तविक? क्या 'मैं हूँ' साक्षी है? क्या साक्षी वास्तविक है या अवास्तविक?
एम: जो शुद्ध, मिलावट रहित और अनासक्त है, वही वास्तविक है। जो दूषित, मिश्रित, आश्रित और क्षणभंगुर है, वही अवास्तविक है। शब्दों से भ्रमित न हों—एक शब्द अनेक और यहाँ तक कि विरोधाभासी अर्थ भी व्यक्त कर सकता है। वह 'मैं' जो सुख की खोज करता है और दुख से दूर भागता है, वह झूठा है; वह 'मैं' जो सुख और दुख को अविभाज्य देखता है, वही सही देखता है। जो साक्षी अपने अनुभव में लीन रहता है, वही व्यक्ति है; जो साक्षी तटस्थ, अविचलित और अप्रभावित रहता है, वही वास्तविकता का रक्षक है, वह बिंदु है जहाँ अव्यक्त में निहित चेतना, प्रकट से संपर्क करती है। साक्षी के बिना ब्रह्मांड का अस्तित्व नहीं है, ब्रह्मांड के बिना साक्षी का अस्तित्व नहीं है। प्रश्न: समय दुनिया को निगल जाता है। समय का साक्षी कौन है?
एम: वह जो समय से परे है - जिसका नाम नहीं लिया जा सकता। एक सुलगता हुआ अंगारा, जब तेज़ी से गोल-गोल घूमता है, तो एक चमकते हुए वृत्त के रूप में दिखाई देता है। जब गति रुक जाती है, तो अंगारा वहीं रह जाता है। इसी प्रकार, गतिमान 'मैं' संसार की रचना करता है। शांत 'मैं' परम सत्ता बन जाता है। आप एक ऐसे व्यक्ति की तरह हैं जो बिजली की टॉर्च लेकर एक गैलरी में घूम रहा है। आप केवल वही देख सकते हैं जो टॉर्च की रोशनी के भीतर है। बाकी सब अंधेरे में है।
प्रश्न: यदि मैं दुनिया की कल्पना करूँ, तो मुझे इसे बदलने में सक्षम होना चाहिए।

एम: बिल्कुल, आप कर सकते हैं। लेकिन आपको इससे अपना जुड़ाव खत्म करना होगा और इससे आगे बढ़ना होगा। तभी आपके पास विनाश और पुनर्निर्माण की शक्ति होगी।
प्रश्न: मैं बस स्वतंत्र होना चाहता हूँ।
एम: आपको दो बातें जाननी चाहिए: आपको किससे मुक्त होना है और कौन सी चीज आपको बांधे रखती है।
प्रश्न: आप ब्रह्मांड को नष्ट क्यों करना चाहते हैं?

एम: मुझे ब्रह्मांड से कोई लेना-देना नहीं है। चाहे वह हो या न हो, इतना ही काफी है कि मैं खुद को जानता हूँ।
प्रश्न: यदि आप संसार से परे हैं, तो आप संसार के लिए किसी काम के नहीं हैं।
एम: अपने अस्तित्व पर दया करो, उस संसार पर नहीं जो अस्तित्वहीन है! सपने में लीन होकर तुम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए हो।
प्रश्न: दुनिया के बिना प्रेम के लिए कोई जगह नहीं है।
एम: बिलकुल सही। ये सभी गुण; अस्तित्व, चेतना, प्रेम और सौंदर्य, संसार में मौजूद वास्तविकता के प्रतिबिंब हैं। वास्तविकता के बिना प्रतिबिंब नहीं। प्रश्न: दुनिया मनचाही चीजों और लोगों से भरी पड़ी है। मैं इसकी गैर-मौजूदगी की कल्पना कैसे कर सकता हूँ?
एम: जो चीज़ें आप चाहते हैं, उन्हें आप पर छोड़ दें। अपनी इच्छा की धारा को लेने से देने की ओर मोड़ें। देने और बाँटने का जुनून स्वाभाविक रूप से आपके मन से बाहरी दुनिया और देने के विचार को भी मिटा देगा। केवल प्रेम की शुद्ध चमक ही शेष रहेगी, जो देने और लेने से परे होगी।
प्रश्न: प्रेम में द्वैत अवश्य होता है, प्रेमी और प्रेमिका।
एम: प्रेम में तो एक भी नहीं होता, तो दो कैसे हो सकते हैं? प्रेम तो भेद करने से इनकार करना है, भेदभाव करने से इनकार करना है। एकता के बारे में सोचने से पहले, द्वैत का सृजन करना आवश्यक है। जब आप सचमुच प्रेम करते हैं, तो आप 'मैं तुमसे प्रेम करता/करती हूँ' नहीं कहते; जहाँ विचार होता है, वहाँ द्वैत होता है।
प्रश्न: आखिर ऐसी क्या बात है जो मुझे बार-बार भारत खींच लाती है? क्या यह सिर्फ यहाँ के अपेक्षाकृत सस्ते जीवन के कारण है? न ही यहाँ के रंगीन और विविध अनुभवों के कारण। कोई और भी महत्वपूर्ण कारण होना चाहिए।
एम: इसमें आध्यात्मिक पहलू भी शामिल है। भारत में बाहरी और आंतरिक का विभाजन कम है। यहाँ आंतरिक भावनाओं को बाहरी रूप में व्यक्त करना आसान है। एकीकरण आसान है। समाज इतना दमनकारी नहीं है।
प्रश्न: जी हां, पश्चिम में तो सब कुछ तमस और रजस पर ही आधारित है। भारत में सत्व, सामंजस्य और संतुलन अधिक महत्वपूर्ण है।
एम: क्या आप गुणों से परे नहीं जा सकते? सत्व को क्यों चुनते हैं? आप जैसे हैं वैसे ही रहें, जहाँ भी हों, गुणों की चिंता न करें।
प्रश्न: मुझमें इतनी ताकत नहीं है।
एम: इससे बस यही पता चलता है कि भारत में आपको कुछ खास हासिल नहीं हुआ। जो आपके पास सच में है, उसे आप खो नहीं सकते। अगर आप आत्म-विश्वास से परिपूर्ण होते, तो स्थान परिवर्तन का आप पर कोई असर नहीं पड़ता।
प्रश्न: भारत में आध्यात्मिक जीवन आसान है। पश्चिम में ऐसा नहीं है। वहां व्यक्ति को अपने परिवेश के अनुरूप ढलना बहुत अधिक पड़ता है।

एम: आप अपना वातावरण स्वयं क्यों नहीं बनाते? दुनिया का आप पर उतना ही प्रभाव होता है जितना आप उसे देते हैं। विद्रोह करो। द्वैत से परे जाओ, पूरब और पश्चिम के बीच कोई भेद मत करो।
प्रश्न: जब कोई व्यक्ति स्वयं को अत्यंत आध्यात्मिकताहीन वातावरण में पाता है तो वह क्या कर सकता है?
एम: कुछ मत करो। जैसे हो वैसे ही रहो। अलग रहो। दूर देखो।
प्रश्न: घर में झगड़े हो सकते हैं। माता-पिता शायद ही कभी समझते हैं। एम: जब आप अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, तो आपको कोई समस्या नहीं रहती। आप अपने माता-पिता को प्रसन्न करें या न करें, शादी करें या न करें, खूब पैसा कमाएँ या न कमाएँ; आपके लिए सब एक समान है। बस परिस्थितियों के अनुसार कार्य करें, लेकिन हर स्थिति में तथ्यों और वास्तविकता से अवगत रहें।
प्रश्न: क्या यह बहुत उच्च स्तर की स्थिति नहीं है?
एम: अरे नहीं, यह तो सामान्य अवस्था है। आप इसे उच्च अवस्था इसलिए कहते हैं क्योंकि आप इससे डरते हैं। पहले भय से मुक्त हो जाइए। देखिए कि डरने की कोई बात ही नहीं है। निर्भयता ही परम सत्य का द्वार है।
प्रश्न: कोई भी प्रयास मुझे निर्भीक नहीं बना सकता।
एम: निडरता अपने आप आ जाती है, जब आपको यह एहसास होता है कि डरने की कोई बात ही नहीं है। जब आप किसी भीड़ भरी सड़क पर चलते हैं, तो आप लोगों को बस अनदेखा कर देते हैं। कुछ को आप देखते हैं, कुछ पर बस एक नज़र डालते हैं, लेकिन आप रुकते नहीं हैं। रुकना ही तो रुकावट पैदा करता है। चलते रहिए! नामों और आकृतियों की परवाह मत कीजिए, उनसे लगाव मत रखिए; लगाव ही आपकी गुलामी है।
प्रश्न: अगर कोई पुरुष मेरे चेहरे पर थप्पड़ मारे तो मुझे क्या करना चाहिए?
एम: आप अपने स्वभाव के अनुसार प्रतिक्रिया देंगे, चाहे वह जन्मजात हो या अर्जित।
प्रश्न: क्या यह अपरिहार्य है? क्या मैं, क्या दुनिया, इस स्थिति में बने रहने के लिए अभिशप्त हैं?
एम: एक जौहरी जो किसी आभूषण को नया रूप देना चाहता है, पहले उसे पिघलाकर बेढंगे सोने में बदल देता है। उसी प्रकार, किसी नए नाम और रूप के प्रकट होने से पहले व्यक्ति को अपनी मूल अवस्था में लौटना पड़ता है। नवीकरण के लिए मृत्यु आवश्यक है।
प्रश्न: आप हमेशा सीमाओं से परे जाने, एकांत और अकेलेपन की आवश्यकता पर जोर देते हैं। आप शायद ही कभी 'सही' और 'गलत' शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसा क्यों है?
एम: स्वयं होना सही है, स्वयं न होना गलत है। बाकी सब कुछ सशर्त है। आप सही और गलत को अलग करने के लिए उत्सुक हैं, क्योंकि आपको कार्य करने के लिए किसी आधार की आवश्यकता है। आप हमेशा कुछ न कुछ करने के पीछे पड़े रहते हैं। लेकिन, व्यक्तिगत रूप से प्रेरित, मूल्यों के किसी पैमाने पर आधारित, किसी परिणाम को लक्षित करने वाला कार्य निष्क्रियता से भी बदतर है, क्योंकि इसके फल हमेशा कड़वे होते हैं।
प्रश्न: क्या जागरूकता और प्रेम एक ही हैं?
एम: बिलकुल। चेतना गतिशील है, प्रेम अस्तित्व है। चेतना ही प्रेम की क्रिया है। मन स्वयं ही असंख्य संभावनाओं को साकार कर सकता है, परन्तु

प्रेम से प्रेरित हुए बिना उनका कोई मूल्य नहीं। प्रेम ही सृजन का आधार है। इसके बिना केवल अराजकता है।
प्रश्न: जागरूकता में क्रिया कहाँ होती है?
एम: आप तो बिल्कुल ही क्रियाशील हैं! जब तक कोई हलचल, बेचैनी या उथल-पुथल न हो, उसे क्रिया नहीं कहते। अराजकता तो सिर्फ हलचल है। सच्ची क्रिया विस्थापन नहीं करती, बल्कि रूपांतरण करती है। स्थान परिवर्तन मात्र परिवहन है; हृदय परिवर्तन ही क्रिया है। बस याद रखिए, जो कुछ भी प्रत्यक्ष है, वह वास्तविक नहीं है। गतिविधि क्रिया नहीं है। क्रिया छिपी हुई, अज्ञात और अज्ञेय है। आप केवल उसका फल ही जान सकते हैं।
प्रश्न: क्या ईश्वर सर्वकर्ता नहीं है?
एम: आप बाहरी कर्ता को क्यों लाते हैं? संसार स्वयं से ही पुनरुत्पादित होता है। यह एक अंतहीन प्रक्रिया है, क्षणभंगुर से क्षणभंगुर का जन्म। यह आपका अहंकार है जो आपको यह सोचने पर मजबूर करता है कि कोई कर्ता होना चाहिए। आप अपने ही स्वरूप में एक ईश्वर की रचना करते हैं, चाहे वह स्वरूप कितना भी निराशाजनक क्यों न हो। अपने मन के पर्दे के माध्यम से आप एक संसार और उसे कारण और उद्देश्य देने के लिए एक ईश्वर की कल्पना करते हैं। यह सब कल्पना है - इससे बाहर निकलिए।
प्रश्न: दुनिया को विशुद्ध रूप से मानसिक रूप में देखना कितना मुश्किल है! इसकी मूर्त वास्तविकता बहुत ही विश्वसनीय प्रतीत होती है।
एम: यही तो कल्पना का रहस्य है, कि यह इतनी वास्तविक प्रतीत होती है। आप अविवाहित हों या विवाहित, साधु हों या गृहस्थ; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्या आप अपनी कल्पना के गुलाम हैं या नहीं? आप जो भी निर्णय लें, जो भी काम करें, वह हमेशा कल्पना पर आधारित होगा, उन मान्यताओं पर आधारित होगा जो तथ्यों का रूप धारण कर लेती हैं।
प्रश्न: मैं आपके सामने बैठा हूँ। इसमें कल्पना का क्या अंश है?
एम: यह सब कुछ। यहां तक कि अंतरिक्ष और समय भी काल्पनिक हैं।
प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि मेरा अस्तित्व ही नहीं है?
एम: मेरा भी कोई अस्तित्व नहीं है। सारा अस्तित्व काल्पनिक है।
प्रश्न: क्या अत्यधिक कल्पनाशील होना सही है?
एम: शुद्ध सत्ता, जो सर्वव्यापी और सर्वव्यापी है, वह सीमित अस्तित्व नहीं है। सभी सीमाएँ काल्पनिक हैं, केवल असीमित ही वास्तविक है।
प्रश्न: जब आप मुझे देखते हैं, तो आपको क्या दिखाई देता है?
एम: मुझे लगता है कि आप खुद को वैसा ही समझ रहे हैं जैसा आप हैं।
प्रश्न: मेरे जैसे बहुत से लोग हैं। फिर भी, हर कोई एक दूसरे से अलग है। एम: सभी प्रक्षेपणों की समग्रता को ही महा-माया, यानी महान भ्रम कहा जाता है।
प्रश्न: लेकिन जब आप खुद को देखते हैं, तो आपको क्या दिखाई देता है?
एम: यह इस बात पर निर्भर करता है कि मैं कैसे देखता हूँ। जब मैं मन के माध्यम से देखता हूँ, तो मुझे अनगिनत लोग दिखाई देते हैं। जब मैं मन से परे देखता हूँ, तो मुझे साक्षी दिखाई देता है। साक्षी से परे शून्यता और मौन की अनंत तीव्रता है।
प्रश्न: लोगों से कैसे व्यवहार करें?
एम: योजनाएँ क्यों बनानी हैं और किसलिए? ऐसे प्रश्न चिंता दर्शाते हैं। रिश्ते एक सजीव वस्तु हैं। अपने अंतर्मन से शांति बनाए रखें, और आप सबके साथ शांति से रह पाएंगे।

यह समझें कि आप घटनाओं के स्वामी नहीं हैं, तकनीकी मामलों को छोड़कर आप भविष्य को नियंत्रित नहीं कर सकते। मानवीय संबंध योजनाबद्ध नहीं हो सकते, वे अत्यंत समृद्ध और विविध हैं। बस समझदार और दयालु बनें, स्वार्थ से मुक्त रहें।
प्रश्न: निश्चित रूप से, मैं घटित होने वाली घटनाओं का स्वामी नहीं हूँ।
बल्कि उनका दास हूँ।
एम: न तो स्वामी बनो, न ही दास। तटस्थ रहो।
प्रश्न: क्या इसका अर्थ कार्रवाई से बचना है?
एम: आप क्रिया से बच नहीं सकते। यह तो होती ही है, बाकी सब चीजों की तरह।
प्रश्न: मैं अपने कार्यों को तो निश्चित रूप से नियंत्रित कर सकता हूँ।
एम: कोशिश करो। तुम्हें जल्द ही पता चल जाएगा कि तुम्हें वही करना है जो ज़रूरी है।
प्रश्न: मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता हूँ।
एम: आप अपनी इच्छा को तभी जान पाते हैं जब आप उस पर अमल कर चुके होते हैं।
प्रश्न: मुझे अपनी इच्छाएं, किए गए विकल्प, लिए गए निर्णय याद हैं और मैं उन्हीं के अनुसार कार्य करता हूं।
एम: तो फिर आपकी याददाश्त फैसला करती है, आप नहीं।
प्रश्न: इसमें मेरी क्या भूमिका है?
एम: आप इस पर ध्यान देकर इसे संभव बनाते हैं।
प्रश्न: क्या स्वतंत्र इच्छा जैसी कोई चीज नहीं है? क्या मुझे इच्छा करने की स्वतंत्रता नहीं है?
एम: ओह नहीं, आपको इच्छा करने के लिए विवश किया जाता है। हिंदू धर्म में स्वतंत्र इच्छा का विचार ही अस्तित्वहीन है, इसलिए इसके लिए कोई शब्द ही नहीं है। इच्छा का अर्थ है प्रतिबद्धता, आसक्ति, बंधन।
प्रश्न: मुझे अपनी सीमाएं चुनने की स्वतंत्रता है।
एम: पहले आपको स्वतंत्र होना होगा। संसार में स्वतंत्र होने के लिए संसार से मुक्त होना आवश्यक है। अन्यथा आपका अतीत आपके भविष्य का निर्णय करेगा। जो हो चुका है और जो होना है, उसके बीच आप फंसे रहेंगे। इसे नियति या कर्म कहिए, लेकिन कभी भी स्वतंत्रता मत कहिए। पहले अपने वास्तविक स्वरूप में लौटें और फिर प्रेम भाव से कार्य करें।
प्रश्न: प्रकट रूप में ही अप्रकट की छाप क्या है?
एम: ऐसा कुछ नहीं है। जिस क्षण आप अव्यक्त की छाप खोजना शुरू करते हैं, प्रकट विलीन हो जाता है। यदि आप अव्यक्त को मन से समझने का प्रयास करते हैं, तो आप तुरंत मन से परे चले जाते हैं, जैसे लकड़ी की छड़ी से आग को हिलाने पर छड़ी जल जाती है। प्रकट की खोज के लिए मन का प्रयोग करें। उस चूजे की तरह बनो जो अंडे के छिलके को चोंच मारता है। छिलके के बाहर के जीवन के बारे में सोचना उसके लिए व्यर्थ होता, लेकिन छिलके को चोंच मारने से छिलका अंदर से टूट जाता है और चूजा मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार, मन की अंतर्विरोधाभास और निरर्थकता की खोज और पर्दाफाश करके मन को भीतर से तोड़ो।
प्रश्न: अपने खोल को तोड़ने की यह तीव्र इच्छा कहाँ से उत्पन्न होती है? एम: अप्रकट से।

73. मन की मृत्यु ही ज्ञान का जन्म है।

प्रश्नकर्ता: अपने वास्तविक स्वरूप को जानने से पहले क्या व्यक्ति का होना आवश्यक नहीं है? क्या अहंकार का कोई महत्व नहीं है?
महाराज: व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। वह अपने ही मामलों में गहराई से लीन रहता है और अपने वास्तविक स्वरूप से पूरी तरह अनभिज्ञ रहता है। जब तक साक्षी चेतना व्यक्ति पर प्रभाव डालना शुरू नहीं करती और वह अवलोकन का विषय नहीं बल्कि अवलोकन की वस्तु नहीं बन जाता, तब तक आत्मज्ञान संभव नहीं है। साक्षी ही आत्मज्ञान को वांछनीय और प्राप्य बनाता है।
प्रश्न: जीवन में एक ऐसा मोड़ आता है जब व्यक्ति स्वयं साक्षी बन जाता है। एम: ओह, नहीं। व्यक्ति स्वयं साक्षी नहीं बन जाएगा। यह ठंडी मोमबत्ती से समय के साथ जलने की उम्मीद करने जैसा है। जब तक जागरूकता की लौ उसे स्पर्श नहीं करती, व्यक्ति अज्ञान के अंधकार में सदा के लिए रह सकता है।
प्रश्न: मोमबत्ती कौन जलाता है?
एम: गुरु। उनके वचन, उनकी उपस्थिति। भारत में अक्सर मंत्र ही सर्वप्रधान होता है। एक बार मोमबत्ती जल उठी तो उसकी लौ उसे भस्म कर देगी।
प्रश्न: यह मंत्र इतना प्रभावी क्यों है?
एम: मंत्र का निरंतर जाप करना कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए नहीं करता। इससे व्यक्ति को कोई लाभ नहीं होता। ठीक वैसे ही जैसे मोमबत्ती जलने से बढ़ती नहीं है।
प्रश्न: क्या व्यक्ति स्वयं ही स्वयं के प्रति जागरूक हो सकता है?
एम: जी हाँ, कभी-कभी अत्यधिक पीड़ा के फलस्वरूप ऐसा होता है। गुरु आपको अंतहीन पीड़ा से बचाना चाहते हैं। यही उनकी कृपा है। भले ही कोई प्रत्यक्ष गुरु प्रकट न हो, फिर भी सद्गुरु, यानी आंतरिक गुरु, हमेशा मौजूद रहते हैं, जो भीतर से मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करते हैं। 'बाहरी' और 'आंतरिक' शब्द केवल शरीर के संदर्भ में हैं; वास्तव में सब एक ही है, बाह्य तो केवल आंतरिक का ही प्रतिबिंब है। जागरूकता मानो किसी उच्च आयाम से आती है। प्रश्न: चिंगारी निकलने से पहले और बाद में क्या अंतर होता है?
एम: चिंगारी जलने से पहले, अंतर को समझने वाला कोई साक्षी नहीं होता। व्यक्ति सचेत तो हो सकता है, लेकिन उसे अपनी चेतना का एहसास नहीं होता। वह पूरी तरह से अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों में लीन रहता है। उसके भीतर का अंधकार उसी की देन है। जब अंधकार पर प्रश्न उठाया जाता है, तो वह विलीन हो जाता है। प्रश्न उठाने की इच्छा गुरु द्वारा ही उत्पन्न की जाती है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति और साक्षी के बीच का अंतर अज्ञान और स्वयं को जानने के अंतर के समान है। चेतना में देखा जाने वाला संसार चेतना के स्वरूप का होता है, जब उसमें सामंजस्य (सत्त्व) होता है; परन्तु जब कर्म और अकर्म (रजस और तमस) प्रकट होते हैं, तो वे भ्रम और विकृति उत्पन्न करते हैं और आप असत्य को सत्य के रूप में देखते हैं।
प्रश्न: गुरु के आगमन के लिए व्यक्ति स्वयं को तैयार करने के लिए क्या कर सकता है?
एम: तैयार रहने की इच्छा ही इस बात का प्रतीक है कि गुरु आ चुके हैं और लौ प्रज्वलित हो चुकी है। यह एक शब्द मात्र हो सकता है, या किसी पुस्तक का एक पृष्ठ; गुरु की कृपा रहस्यमय ढंग से कार्य करती है।
प्रश्न: क्या स्व-तैयारी जैसी कोई चीज नहीं होती? हम योग साधना के बारे में इतना कुछ सुनते हैं?

एम: साधना करने वाला व्यक्ति नहीं होता। व्यक्ति अंत तक बेचैन और प्रतिरोध में रहता है। साक्षी ही उस व्यक्ति पर, उसके सभी भ्रमों पर, भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य पर कार्य करता है।
प्रश्न: हम कैसे जान सकते हैं कि आप जो कहते हैं वह सत्य है? यद्यपि यह अपने आप में पूर्ण है और आंतरिक विरोधाभासों से मुक्त है, हम यह कैसे जान सकते हैं कि यह उर्वर कल्पना की उपज नहीं है, जिसे निरंतर दोहराव से पोषित और समृद्ध किया गया है?
एम: सत्य का प्रमाण श्रोता पर पड़ने वाले उसके प्रभाव में निहित है। प्रश्न: शब्दों का बहुत गहरा प्रभाव हो सकता है। शब्दों को सुनने या दोहराने से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की समाधि अवस्थाओं का अनुभव कर सकता है। श्रोता के अनुभव कृत्रिम हो सकते हैं और इन्हें प्रमाण नहीं माना जा सकता।
एम: प्रभाव का अनुभव होना ही आवश्यक नहीं है। यह चरित्र में, प्रेरणा में, लोगों से और स्वयं से संबंधों में परिवर्तन हो सकता है। शब्दों, औषधियों या किसी अन्य इंद्रियजन्य या मानसिक माध्यम से उत्पन्न होने वाली समाधि और दृष्टियाँ अस्थायी और अनिश्चित होती हैं। यहाँ जो कहा गया है, वह अटल और शाश्वत है। और इसका प्रमाण श्रोता में, उसके संपूर्ण अस्तित्व में होने वाले गहरे और स्थायी परिवर्तनों में निहित है। वह इस पर संदेह नहीं कर सकता, जब तक कि वह अपने अस्तित्व पर ही संदेह न करे, जो कि अकल्पनीय है। जब मेरा अनुभव आपका भी अनुभव बन जाता है, तो इससे बेहतर प्रमाण और क्या हो सकता है?
प्रश्न: अनुभवकर्ता स्वयं अपने अनुभव का प्रमाण है।
एम: बिलकुल, लेकिन अनुभवकर्ता को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। 'मैं हूं, और मैं जानता हूं कि मैं हूं'। आप और प्रमाण नहीं मांग सकते।
प्रश्न: क्या चीजों का सच्चा ज्ञान संभव है?
एम: सापेक्षतः - हाँ। पूर्णतः - कोई वस्तु नहीं है। यह जानना कि कुछ भी नहीं है, सच्चा ज्ञान है।
प्रश्न: सापेक्ष और निरपेक्ष के बीच क्या संबंध है?
एम: वे बिल्कुल एक जैसे हैं।
प्रश्न: किस दृष्टिकोण से वे समान हैं?
एम: जब शब्द बोले जाते हैं, तो मौन छा जाता है। जब सापेक्ष समाप्त हो जाता है, तो निरपेक्ष शेष रह जाता है। क्या शब्दों के बोले जाने से पहले का मौन, बाद के मौन से भिन्न है? मौन एक है और उसके बिना शब्द सुनाई नहीं दे सकते। यह हमेशा मौजूद रहता है - शब्दों के पीछे। अपना ध्यान शब्दों से हटाकर मौन पर केंद्रित करें, और आप इसे सुन सकेंगे। मन अनुभव के लिए तरसता है, जिसकी स्मृति को वह ज्ञान मान लेता है। ज्ञानी सभी अनुभवों से परे है और उसकी स्मृति अतीत से रहित है। वह किसी भी विशेष चीज़ से पूरी तरह असंबंधित है। लेकिन मन सूत्रों और परिभाषाओं के लिए तरसता है, हमेशा वास्तविकता को शाब्दिक रूप देने के लिए उत्सुक रहता है। वह हर चीज़ का एक विचार चाहता है, क्योंकि विचारों के बिना मन का अस्तित्व नहीं है। वास्तविकता मूलतः अकेली है, लेकिन मन उसे अकेला नहीं छोड़ता - और इसके बजाय अवास्तविक से जुड़ जाता है। और फिर भी मन बस यही कर सकता है - अवास्तविक को अवास्तविक के रूप में खोजना।
प्रश्न: और वास्तविकता को वास्तविकता के रूप में देखना?

एम: वास्तविकता को देखने जैसी कोई अवस्था नहीं होती। कौन क्या देखेगा? आप केवल वास्तविकता ही हो सकते हैं—जो आप वैसे भी हैं। समस्या केवल मानसिक है। झूठे विचारों को त्याग दें, बस इतना ही। सच्चे विचारों की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे विचार हैं ही नहीं।
प्रश्न: तो फिर हमें वास्तविक की खोज करने के लिए क्यों प्रोत्साहित किया जाता है?
एम: मन का कोई उद्देश्य होना चाहिए। उसे असत्य से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु बदले में कुछ देने का वादा किया जाता है। वास्तव में, उद्देश्य की कोई आवश्यकता नहीं है। असत्य से मुक्त होना अपने आप में अच्छा है, इसके लिए किसी पुरस्कार की आवश्यकता नहीं है। यह ठीक वैसे ही है जैसे पवित्र होना - जो अपने आप में ही एक पुरस्कार है।
प्रश्न: क्या आत्मज्ञान ही पुरस्कार नहीं है?
एम: आत्मज्ञान का पुरस्कार है व्यक्तिगत अहंकार से मुक्ति। आप ज्ञाता को नहीं जान सकते, क्योंकि आप स्वयं ज्ञाता हैं। जानने की वास्तविकता ही ज्ञाता की सत्यता सिद्ध करती है। इसके अलावा किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। ज्ञात को जानने वाला अज्ञेय है। जैसे प्रकाश को केवल रंगों में ही जाना जा सकता है, वैसे ही ज्ञाता को ज्ञान में ही जाना जा सकता है।
प्रश्न: क्या ज्ञाता केवल एक अनुमान है?
एम: आप अपने शरीर, मन और भावनाओं को जानते हैं। क्या आप केवल अनुमान पर आधारित हैं?
प्रश्न: मैं दूसरों के लिए एक अनुमान हूं, लेकिन अपने लिए नहीं।
एम: मैं भी ऐसा ही हूँ। आपके लिए यह एक अनुमान है, लेकिन मेरे लिए नहीं। मैं स्वयं को अपने होने से ही जानता हूँ। जैसे आप स्वयं को पुरुष होने से ही जानते हैं। आप स्वयं को बार-बार यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं समझते कि आप पुरुष हैं। आप तभी अपनी मानवता का दावा करते हैं जब उस पर सवाल उठाया जाता है। इसी प्रकार, मैं जानता हूँ कि मैं सर्वस्व हूँ। मुझे बार-बार यह दोहराने की ज़रूरत नहीं है: 'मैं सर्वस्व हूँ, मैं सर्वस्व हूँ'। मैं तभी विरोध करता हूँ जब आप मुझे एक विशिष्ट व्यक्ति, एक विशिष्ट इकाई के रूप में देखते हैं। जैसे आप हर समय पुरुष हैं, वैसे ही मैं भी हर समय वही हूँ जो मैं हूँ। आप जो भी हैं, जो अपरिवर्तनीय हैं, वह निर्विवाद है।
प्रश्न: जब मैं आपसे पूछता हूँ कि आपको कैसे पता चलता है कि आप ज्ञानी हैं, तो आप उत्तर देते हैं: 'मुझे अपने भीतर कोई इच्छा नहीं होती। क्या यह इसका प्रमाण नहीं है?'
एम: अगर मुझमें इच्छाएं भरी होतीं, तो भी मैं वही होता जो मैं हूं। प्रश्न: मैं, इच्छाओं से भरा हुआ, और तुम, इच्छाओं से भरे हुए; क्या फर्क होगा?
एम: आप अपनी इच्छाओं से खुद को जोड़ लेते हैं और उनके गुलाम बन जाते हैं। मेरे लिए इच्छाएँ अन्य चीजों के बीच की वस्तुएँ मात्र हैं, मानसिक आकाश में मात्र बादल हैं, और मुझे उन पर अमल करने की कोई बाध्यता महसूस नहीं होती।
प्रश्न: ज्ञाता और उसका ज्ञान, क्या वे एक हैं या दो?
एम: वे दोनों ही हैं। ज्ञाता अप्रकट है, ज्ञाता प्रकट है। ज्ञाता सदा गतिशील रहता है, परिवर्तनशील है, उसका अपना कोई आकार नहीं, कोई निश्चित निवास स्थान नहीं। ज्ञाता समस्त ज्ञान का अविचल आधार है; दोनों को एक-

दूसरे की आवश्यकता है, परन्तु वास्तविकता उससे परे है। ज्ञानी को जाना नहीं जा सकता, क्योंकि जानने योग्य कोई है ही नहीं। जब कोई व्यक्ति होता है, तो आप उसके बारे में कुछ कह सकते हैं, परन्तु जब किसी विशेष से आत्म-पहचान न हो, तो क्या कहा जा सकता है? आप ज्ञानी को कुछ भी बता सकते हैं; उसका प्रश्न सदा यही होगा: 'आप किसके बारे में बात कर रहे हैं? ऐसा कोई व्यक्ति है ही नहीं।' जिस प्रकार आप ब्रह्मांड के बारे में कुछ नहीं कह सकते क्योंकि उसमें सब कुछ समाहित है, उसी प्रकार ज्ञानी के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह सर्वस्व है और फिर भी कुछ भी विशेष नहीं है। आपको अपनी तस्वीर टांगने के लिए एक हुक की आवश्यकता होती है; जब हुक न हो, तो तस्वीर किस पर टंगी? किसी वस्तु का स्थान निर्धारित करने के लिए आपको स्थान की आवश्यकता होती है, किसी घटना को स्थापित करने के लिए आपको समय की आवश्यकता होती है; परन्तु काल और स्थान से परे सभी प्रकार के नियंत्रण से परे है। यह सब कुछ बोधगम्य बनाता है, फिर भी स्वयं बोध से परे है। मन अपने से परे की चीज़ों को नहीं जान सकता, परन्तु मन अपने से परे की चीज़ों से जाना जाता है। ज्ञानी न तो जन्म को जानता है और न ही मृत्यु को; उसके लिए अस्तित्व और गैर-अस्तित्व एक समान हैं।
प्रश्न: जब आपका शरीर मर जाता है, तो आप बने रहते हैं।
एम: कुछ भी नहीं मरता। शरीर तो बस एक कल्पना है। ऐसी कोई चीज नहीं है। प्रश्न: एक और सदी बीतने से पहले, आप अपने आस-पास के सभी लोगों के लिए मृत हो जाएंगे। आपके शरीर को फूलों से ढका जाएगा, फिर जलाया जाएगा और राख बिखेर दी जाएगी। यह हमारा अनुभव होगा। आपका क्या होगा?
एम: समय का अंत होगा। इसे महामृत्यु कहा जाता है।
प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि ब्रह्मांड और उसमें मौजूद सभी चीजें समाप्त हो जाएंगी?
एम: ब्रह्मांड आपका व्यक्तिगत अनुभव है। इस पर कैसे प्रभाव पड़ सकता है? मान लीजिए आप दो घंटे से व्याख्यान दे रहे हैं; व्याख्यान समाप्त होने पर वह कहाँ चला जाता है? वह मौन में विलीन हो जाता है, जिसमें व्याख्यान का आरंभ, मध्य और अंत सब समाहित होते हैं। समय थम गया है, वह था, पर अब नहीं है। बोलने से भरे जीवन के बाद का मौन और मौन से भरे जीवन के बाद का मौन एक ही मौन है। अमरता 'मैं हूँ' की भावना से मुक्ति है। फिर भी यह विनाश नहीं है। इसके विपरीत, यह एक ऐसी अवस्था है जो आपकी कल्पना से कहीं अधिक वास्तविक, सजग और आनंदमय है। केवल आत्म-चेतना ही समाप्त हो जाती है।
प्रश्न: मन की महान मृत्यु शरीर की 'छोटी मृत्यु' के साथ क्यों मेल खाती है? एम: ऐसा नहीं है! आप मानसिक उथल-पुथल से मुक्त हुए सौ बार मर सकते हैं। या फिर आप अपने शरीर को बचाए रख सकते हैं और केवल मन की मृत्यु का अनुभव कर सकते हैं। मन की मृत्यु ही ज्ञान का जन्म है।
प्रश्न: वह व्यक्ति चला जाता है और केवल गवाह ही रह जाता है।
एम: कौन यह कहने के लिए शेष रह जाता है: 'मैं साक्षी हूँ'? जब 'मैं हूँ' ही नहीं है, तो साक्षी कहाँ है? कालातीत अवस्था में शरण लेने के लिए कोई स्व ही नहीं है।
पार्सल ले जाने वाला व्यक्ति उसे खोने के डर से चिंतित रहता है—वह पार्सल के प्रति सजग रहता है। 'मैं हूँ' की भावना को संजोने वाला व्यक्ति आत्म-सजग रहता है। ज्ञानी किसी भी चीज़ से जुड़ा नहीं रहता और उसे सजग नहीं कहा जा सकता। फिर भी वह अचेतन नहीं होता। वह चेतना का सार है। हम उसे आकाश में

लिपटा हुआ दिगंबर, नग्न, सभी रूपों से परे कहते हैं। उसका कोई नाम या रूप नहीं है, फिर भी वह एकमात्र ऐसा है जो वास्तव में विद्यमान है।
प्रश्न: मुझे यह समझ नहीं आ रहा है।
एम: कौन कर सकता है? दिमाग की भी सीमाएँ होती हैं। यह आपको ज्ञान की चरम सीमाओं तक ले जाने और अज्ञात की विशालता का सामना कराने के लिए ही काफी है। उसमें गोता लगाना तो आप पर निर्भर है।
प्रश्न: गवाह के बारे में क्या? क्या वह वास्तविक है या अवास्तविक?
एम: यह दोनों है। भ्रम का अंतिम अंश, वास्तविकता का पहला स्पर्श। यह कहना कि 'मैं केवल साक्षी हूँ' असत्य और सत्य दोनों है: असत्य इसलिए क्योंकि इसमें 'मैं हूँ' का प्रयोग है, सत्य इसलिए क्योंकि इसमें साक्षी का प्रयोग है। बेहतर है यह कहना कि 'साक्ष्य मौजूद है'। जिस क्षण आप कहते हैं: 'मैं हूँ', संपूर्ण ब्रह्मांड अपने सृष्टिकर्ता सहित अस्तित्व में आ जाता है। प्रश्न: एक और प्रश्न: क्या हम व्यक्ति और आत्मा को दो भाइयों, छोटे और बड़े, के रूप में देख सकते हैं? छोटा भाई शरारती और स्वार्थी, असभ्य और बेचैन है, जबकि बड़ा भाई बुद्धिमान और दयालु, समझदार और विचारशील है, और शरीर की चेतना और उसकी इच्छाओं और भय से मुक्त है। बड़ा भाई छोटे को जानता है, लेकिन छोटा भाई बड़े से अनभिज्ञ है और स्वयं को पूर्णतः अकेला समझता है। गुरु आकर छोटे भाई से कहते हैं: 'तुम अकेले नहीं हो, तुम एक बहुत अच्छे परिवार से आए हो, तुम्हारा भाई एक बहुत ही असाधारण व्यक्ति है, बुद्धिमान और दयालु है, और वह तुमसे बहुत प्रेम करता है। उसे याद करो, उसके बारे में सोचो, उसे पाओ, उसकी सेवा करो, और तुम उसके साथ एक हो जाओगे।' अब प्रश्न यह है कि क्या हमारे भीतर दो चीजें हैं, व्यक्तिगत और वैयक्तिक, झूठा स्व और सच्चा स्व, या यह केवल एक उपमा है?
एम: यह दोनों है। ये दो प्रतीत होते हैं, लेकिन जांच करने पर एक ही पाए जाते हैं। द्वैत तभी तक बना रहता है जब तक इस पर प्रश्न न उठाया जाए। त्रिमूर्ति: मन, आत्मा और अव्यक्त (व्यक्ति, व्यक्त, अव्यक्त), जब गहराई से देखा जाता है, तो एकता बन जाता है। ये केवल अनुभव करने के तरीके हैं: आसक्ति, अनासक्ति और पारलौकिकता।
प्रश्न: आपका यह मानना कि हम स्वप्न अवस्था में हैं, आपके तर्क को अचूक बना देता है। हम चाहे जो भी आपत्ति उठाएं, आप उसे नकार देते हैं। आपसे बहस करना असंभव है!
एम: चर्चा करने की इच्छा भी महज़ इच्छा ही है। जानने की इच्छा, शक्ति पाने की इच्छा, यहाँ तक कि अस्तित्व की इच्छा भी केवल इच्छाएँ ही हैं। हर कोई होना चाहता है, जीवित रहना चाहता है, आगे बढ़ना चाहता है, क्योंकि कोई भी स्वयं के बारे में निश्चित नहीं है। लेकिन हर कोई अमर है। शरीर को अपना मानकर आप स्वयं को नश्वर बना लेते हैं।
प्रश्न: चूंकि आपको आजादी मिल गई है, तो क्या आप मुझे भी थोड़ी सी आजादी नहीं देंगे?
एम: थोड़ा क्यों? पूरा ले लो। ले लो, यह तो लेने के लिए ही है। लेकिन तुम आज़ादी से डरते हो!
प्रश्न: स्वामी रामदास को भी इसी तरह की एक प्रार्थना का सामना करना पड़ा। एक दिन कुछ भक्त उनके चारों ओर जमा हो गए और मुक्ति की प्रार्थना करने लगे। रामदास मुस्कुराते हुए उनकी बातें सुनते रहे, फिर अचानक गंभीर हो गए और बोले: तुम्हें यह यहीं, इसी वक्त, पूर्ण और शाश्वत मुक्ति मिल सकती है।
जिसे भी यह चाहिए, आगे आओ। कोई नहीं हिला। उन्होंने तीन बार यह प्रस्ताव

दोहराया। किसी ने स्वीकार नहीं किया। फिर उन्होंने कहा: 'प्रस्ताव वापस लिया जाता है।'
एम: आसक्ति साहस को नष्ट कर देती है। देने वाला हमेशा देने के लिए तत्पर रहता है। लेने वाला अनुपस्थित रहता है। स्वतंत्रता का अर्थ है त्याग करना। लोग सब कुछ त्यागने की परवाह ही नहीं करते। वे नहीं जानते कि सीमित ही अनंत की कीमत है, जैसे मृत्यु अमरता की कीमत है। आध्यात्मिक परिपक्वता सब कुछ त्यागने की तत्परता में निहित है। त्याग करना पहला कदम है। लेकिन वास्तविक त्याग यह अहसास करना है कि त्यागने के लिए कुछ भी नहीं है, क्योंकि कुछ भी आपका अपना नहीं है। यह गहरी नींद की तरह है - जब आप सो जाते हैं तो आप अपना बिस्तर नहीं छोड़ते - आप बस उसे भूल जाते हैं।

74. सत्य यहीं और अभी मौजूद है

प्रश्नकर्ता: मेरा प्रश्न यह है: सत्य का प्रमाण क्या है? हर धर्म, चाहे वह आध्यात्मिक हो या राजनीतिक, दार्शनिक हो या नैतिक, के अनुयायी इस बात से आश्वस्त होते हैं कि उनका धर्म ही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है, और वे अपने इस अटूट विश्वास को ही सत्य का प्रमाण मान लेते हैं। वे कहते हैं, 'मैं आश्वस्त हूँ, इसलिए यह सत्य ही होगा।' मुझे लगता है कि कोई भी दर्शन या धर्म, कोई भी सिद्धांत या विचारधारा, चाहे वह कितनी भी पूर्ण, आंतरिक विरोधाभासों से मुक्त और भावनात्मक रूप से आकर्षक क्यों न हो, अपने सत्य का प्रमाण नहीं हो सकती। वे मनुष्य के कपड़ों की तरह हैं, जो समय और परिस्थितियों के साथ बदलते रहते हैं और फैशन के चलन का अनुसरण करते हैं। क्या कोई ऐसा धर्म या दर्शन हो सकता है जो सत्य हो और किसी की आस्था पर निर्भर न हो? क्या शास्त्रों पर भी निर्भर हो सकता है, क्योंकि वे भी किसी के विश्वास पर निर्भर होते हैं? क्या कोई ऐसा सत्य है जो विश्वास पर निर्भर न हो, जो व्यक्तिपरक न हो?
महाराज: विज्ञान के बारे में क्या?
प्रश्न: विज्ञान एक चक्रीय प्रक्रिया है, यह वहीं समाप्त होती है जहाँ से शुरू होती है, इंद्रियों से। यह अनुभव से संबंधित है, और अनुभव व्यक्तिपरक होता है। दो व्यक्तियों का अनुभव एक जैसा नहीं हो सकता, भले ही वे इसे एक ही शब्दों में व्यक्त करें।
एम: आपको मन से परे सत्य की खोज करनी होगी।
प्रश्न: महोदय, मैं समाधि की अवस्थाओं से ऊब चुका हूँ। कोई भी औषधि सस्ते और शीघ्रता से समाधि की अवस्था ला सकती है। यहाँ तक कि श्वास या मानसिक अभ्यासों से प्राप्त होने वाली पारंपरिक समाधियाँ भी कुछ खास अलग नहीं हैं। ऑक्सीजन समाधियाँ होती हैं, कार्बन डाइऑक्साइड समाधियाँ होती हैं और स्वयं द्वारा उत्पन्न समाधियाँ भी होती हैं, जो किसी सूत्र या विचारों की श्रृंखला के दोहराव से प्राप्त होती हैं। एकरसता नींद लाने वाली होती है। मैं समाधि को, चाहे वह कितनी भी गौरवशाली क्यों न हो, सत्य के प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता।
एम: समाधि अनुभव से परे है। यह एक गुणहीन अवस्था है।
प्रश्न: अनुभव का अभाव असावधानी के कारण होता है। ध्यान देने पर यह फिर से प्रकट हो जाता है। आँखें बंद करने से प्रकाश का अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता। नकारात्मक अवस्थाओं को वास्तविकता का बोध कराना व्यर्थ है। निषेध में ही एक सकारात्मकता निहित होती है।

एम: एक तरह से आप सही हैं। लेकिन क्या आप यह नहीं समझते कि आप सत्य का प्रमाण तो मांग रहे हैं, लेकिन यह नहीं बता रहे कि आपके मन में सत्य क्या है और कौन सा प्रमाण आपको संतुष्ट करेगा? आप किसी भी बात को सिद्ध कर सकते हैं, बशर्ते आप अपने प्रमाण पर भरोसा करें। लेकिन कौन साबित करेगा कि आपका प्रमाण सत्य है? मैं आसानी से आपको यह स्वीकार करने पर मजबूर कर सकता हूँ कि आप केवल इतना जानते हैं कि आपका अस्तित्व है - कि आप ही किसी भी बात का एकमात्र प्रमाण हैं। लेकिन मैं मात्र अस्तित्व को वास्तविकता के समान नहीं मानता। अस्तित्व क्षणिक है, समय और स्थान में हमेशा मौजूद रहता है, जबकि वास्तविकता अपरिवर्तनीय और सर्वव्यापी है।
प्रश्न: महोदय, मुझे नहीं पता कि सत्य क्या है और उसे कौन सिद्ध कर सकता है। मुझे मेरे भरोसे मत छोड़िए। मेरे पास कोई संसाधन नहीं हैं। यहाँ सत्य को जानने वाले आप हैं, मैं नहीं।
एम: आप सत्य के प्रमाण के रूप में गवाही को अस्वीकार करते हैं: दूसरों के अनुभव आपके लिए कोई मायने नहीं रखते, आप असंख्य स्वतंत्र गवाहों के सहमतिपूर्ण कथनों से निकाले गए सभी निष्कर्षों को नकारते हैं; तो अब आपको ही बताना होगा कि आपको कौन सा प्रमाण संतुष्ट करेगा, वैध प्रमाण की आपकी कसौटी क्या है?
प्रश्न: सच कहूं तो, मुझे नहीं पता कि किसी बात को प्रमाण कैसे माना जाता है।
एम: क्या आपका अपना अनुभव भी नहीं?
प्रश्न: न तो मेरा अनुभव, न ही मेरा अस्तित्व। ये सब मेरी चेतना पर निर्भर करते हैं।
एम: और आपका सचेत होना किस पर निर्भर करता है?
प्रश्न: मुझे नहीं पता। पहले मैं कहता था: मेरे शरीर पर; अब मैं देख सकता हूँ कि शरीर गौण है, प्राथमिक नहीं, और इसे अस्तित्व के प्रमाण के रूप में नहीं माना जा सकता।
एम: मुझे खुशी है कि आपने 'मैं शरीर हूँ' के विचार को त्याग दिया है, जो त्रुटि और पीड़ा का मुख्य स्रोत है। क्यू: मैंने इसे बौद्धिक रूप से त्याग दिया है, लेकिन एक विशिष्ट व्यक्ति होने का बोध अभी भी मेरे साथ है। मैं कह सकता हूँ: 'मैं हूँ', लेकिन मैं क्या हूँ, यह मैं नहीं कह सकता। मैं जानता हूँ कि मेरा अस्तित्व है, लेकिन मुझे नहीं पता कि क्या अस्तित्व में है। मैं इसे चाहे जिस तरह से कहूँ, मुझे अज्ञात का सामना करना पड़ता है।
एम: आपका अस्तित्व ही वास्तविक है।
प्रश्न: निश्चित रूप से, हम एक ही बात नहीं कर रहे हैं। मैं कोई अमूर्त प्राणी नहीं हूँ। मैं एक व्यक्ति हूँ, सीमित और अपनी सीमाओं से अवगत। मैं एक तथ्य हूँ, लेकिन एक अत्यंत अस्थिर तथ्य। एक व्यक्ति के रूप में अपने क्षणिक अस्तित्व पर मैं कुछ भी निर्मित नहीं कर सकता।
एम: आपके शब्द आपकी बुद्धिमत्ता से कहीं अधिक बुद्धिमान हैं! एक व्यक्ति के रूप में आपका अस्तित्व क्षणभंगुर है। लेकिन क्या आप केवल एक व्यक्ति हैं? क्या आप वास्तव में एक व्यक्ति हैं?
प्रश्न: मैं इसका उत्तर कैसे दूँ? मेरी बोध-बोध केवल यही सिद्ध करता है कि मैं हूँ; यह मुझसे स्वतंत्र किसी भी चीज़ को सिद्ध नहीं करता। मैं सापेक्ष हूँ, सापेक्ष का प्राणी भी और सृष्टिकर्ता भी। परम सत्य का परम प्रमाण क्या है, कहाँ है? क्या मात्र 'मैं हूँ' की अनुभूति ही वास्तविकता का प्रमाण हो सकती है?

एम: बिलकुल नहीं। 'मैं हूँ' और 'दुनिया है' संबंधित और सशर्त हैं। ये मन की नामों और आकृतियों को प्रोजेक्ट करने की प्रवृत्ति के कारण हैं।
प्रश्न: नाम, आकार, विचार और विश्वास, लेकिन सत्य नहीं। अगर आप न होते, तो मैं सत्य समेत हर चीज़ की सापेक्षता को स्वीकार कर लेता और अनुमानों के सहारे जीना सीख लेता। लेकिन फिर मैं आपसे मिलता हूँ और आपको परम सत्ता के बारे में बात करते हुए सुनता हूँ, जो मेरी पहुँच में है और साथ ही अत्यंत वांछनीय भी है। शांति, आनंद, शाश्वतता, अमरता जैसे शब्द मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं, मानो वे दर्द और भय से मुक्ति प्रदान करते हों। मेरी सहज प्रवृत्तियाँ - सुख की चाह और जिज्ञासा - जागृत हो उठती हैं और मैं उस क्षेत्र का अन्वेषण करने लगता हूँ जिसे आपने खोला है। सब कुछ अत्यंत आकर्षक लगता है और स्वाभाविक रूप से मैं पूछता हूँ। क्या यह प्राप्त करने योग्य है? क्या यह वास्तविक है?
एम: आप उस बच्चे की तरह हैं जो कहता है: साबित करो कि चीनी मीठी है, तभी मैं इसे खाऊंगा। मिठास का प्रमाण मुंह में होता है, चीनी में नहीं। यह जानने के लिए कि यह मीठी है, आपको इसे चखना होगा, कोई दूसरा तरीका नहीं है। बेशक, आप पहले पूछते हैं: क्या यह चीनी है? क्या यह मीठी है? और आप तब तक मेरी बात मानते हैं जब तक आप इसे चख नहीं लेते। तभी सारे संदेह दूर होते हैं और आपका ज्ञान प्रत्यक्ष और अचूक हो जाता है। मैं आपसे मुझ पर विश्वास करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। बस शुरुआत में मुझ पर पर्याप्त भरोसा करें। हर कदम खुद को साबित या गलत साबित करता है। ऐसा लगता है कि आप सत्य के प्रमाण को सत्य से पहले देखना चाहते हैं। और प्रमाण का प्रमाण क्या होगा? देखिए, आप एक ही रास्ते पर पीछे जा रहे हैं। इससे बचने के लिए आपको प्रमाण मांगना बंद करना होगा और कुछ पल के लिए किसी चीज को सत्य मान लेना होगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह क्या है। यह ईश्वर हो सकता है, या मैं, या आप स्वयं। हर मामले में आप किसी अज्ञात चीज या व्यक्ति को सत्य मान लेते हैं। अब, यदि आप अपने द्वारा स्वीकार किए गए सत्य पर क्षण भर के लिए भी अमल करते हैं, तो बहुत जल्द आप अगले चरण तक पहुँच जाएँगे। यह अंधेरे में पेड़ पर चढ़ने जैसा है - आप अगली शाखा को तभी पकड़ सकते हैं जब आप पिछली शाखा पर बैठे हों। विज्ञान में इसे प्रायोगिक विधि कहते हैं। किसी सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए आप उन निर्देशों के अनुसार प्रयोग करते हैं जो आपसे पहले प्रयोग कर चुके लोगों ने छोड़े हैं। आध्यात्मिक खोज में प्रयोगों की इस श्रृंखला को योग कहते हैं।
प्रश्न: योग के इतने सारे तरीके हैं, इनमें से किसे चुनें?
एम: बेशक, हर ज्ञानी वही मार्ग सुझाएगा जो उसे सबसे अच्छी तरह से आता है और जिसके माध्यम से उसने स्वयं सफलता प्राप्त की है। लेकिन उनमें से अधिकांश बहुत उदार होते हैं और जिज्ञासु की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी सलाह देते हैं। सभी मार्ग मन की शुद्धि की ओर ले जाते हैं। अशुद्ध मन सत्य के लिए अपारदर्शी होता है; शुद्ध मन पारदर्शी होता है। सत्य को उसके माध्यम से आसानी से और स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
प्रश्न: मुझे खेद है, लेकिन मैं अपनी समस्या को ठीक से व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं सत्य के प्रमाण के बारे में पूछ रहा हूँ और मुझे उसे प्राप्त करने के तरीके बताए जा रहे हैं। मान लीजिए कि मैं उन तरीकों का पालन करता हूँ और किसी अद्भुत और वांछनीय अवस्था को प्राप्त कर लेता हूँ, तो मुझे कैसे पता चलेगा कि मेरी अवस्था सच्ची है? हर धर्म आस्था से शुरू होता है और किसी न किसी परमानंद का वादा करता है। क्या वह परमानंद वास्तविक है, या

आस्था का परिणाम? क्योंकि, यदि वह एक कृत्रिम अवस्था है, तो मुझे उससे कोई वास्ता नहीं है। उदाहरण के लिए, ईसाई धर्म कहता है: यीशु तुम्हारा उद्धारकर्ता है, विश्वास करो और पाप से मुक्ति पाओ। जब मैं किसी पापी ईसाई से पूछता हूँ कि मसीह में आस्था होने के बावजूद उसे पाप से मुक्ति क्यों नहीं मिली, तो वह उत्तर देता है: मेरी आस्था परिपूर्ण नहीं है। हम फिर से उसी दुष्चक्र में फँस गए हैं - परिपूर्ण आस्था के बिना मुक्ति नहीं, मुक्ति के बिना परिपूर्ण आस्था नहीं, इसलिए मुक्ति नहीं। ऐसी शर्तें थोपी जाती हैं जिन्हें पूरा करना असंभव है और फिर हमें उन्हें पूरा न करने के लिए दोषी ठहराया जाता है।
एम: आपको यह अहसास नहीं है कि आपकी वर्तमान जागृत अवस्था अज्ञान की अवस्था है। सत्य के प्रमाण के बारे में आपका प्रश्न वास्तविकता के अज्ञान से उत्पन्न हुआ है। आप चेतना में, 'मैं हूँ' के बिंदु पर, अपनी इंद्रियों और मानसिक अवस्थाओं से संपर्क कर रहे हैं, जबकि वास्तविकता मध्यस्थ नहीं है, संपर्क नहीं है, अनुभव नहीं है। आप द्वैत को इतना सहज मान रहे हैं कि आप उसे नोटिस भी नहीं करते, जबकि मेरे लिए विविधता और भिन्नता अलगाव पैदा नहीं करती। आप वास्तविकता को नाम और रूपों से अलग मानते हैं, जबकि मेरे लिए नाम और रूप वास्तविकता की निरंतर परिवर्तनशील अभिव्यक्तियाँ हैं, उससे अलग नहीं। आप सत्य का प्रमाण मांगते हैं, जबकि मेरे लिए संपूर्ण अस्तित्व ही प्रमाण है। आप अस्तित्व को सत्ता से और सत्ता को वास्तविकता से अलग करते हैं, जबकि मेरे लिए यह सब एक है। आप अपनी जागृत अवस्था के सत्य के प्रति चाहे जितने भी आश्वस्त हों, आप इसे स्थायी और अपरिवर्तनीय होने का दावा नहीं करते, जैसा कि मैं अपनी अवस्था के बारे में बात करते समय करता हूँ। फिर भी मुझे हम दोनों में कोई अंतर नहीं दिखता, सिवाय इसके कि आप चीजों की कल्पना कर रहे हैं, जबकि मैं नहीं।
प्रश्न: पहले तो आप मुझे सत्य के बारे में पूछने से ही अयोग्य ठहराते हैं, फिर मुझ पर कल्पनाशीलता का आरोप लगाते हैं! जो आपके लिए कल्पना है, वही मेरे लिए वास्तविकता है।
एम: जब तक आप जांच-पड़ताल नहीं कर लेते, तब तक। मैं आप पर किसी बात का आरोप नहीं लगा रहा हूँ। मैं बस आपसे समझदारी से सवाल करने को कह रहा हूँ। जिस सत्य को आप नहीं जानते, उसके प्रमाण खोजने के बजाय, उन प्रमाणों पर गौर करें जो आपके पास हैं और जिनके आधार पर आप जानते हैं। आपको पता चलेगा कि आप कुछ भी निश्चित रूप से नहीं जानते - आप सुनी-सुनाई बातों पर भरोसा करते हैं। सत्य जानने के लिए आपको स्वयं अनुभव करना होगा।
प्रश्न: मुझे समाधि और अन्य किसी भी प्रकार की समाधि अवस्था से अत्यंत भय लगता है, चाहे उसका कारण कुछ भी हो। शराब, धूम्रपान, बुखार, नशा, साँस लेना, गाना, काँपना, नाचना, घूमना, प्रार्थना करना, यौन संबंध या उपवास, मंत्रोच्चार या कोई भी ऐसी व्याकुलता मुझे मेरी जागृत अवस्था से बाहर निकाल सकती है और मुझे एक ऐसा अनुभव दे सकती है जो अपरिचित होने के कारण असाधारण होता है। लेकिन जब कारण समाप्त हो जाता है, तो प्रभाव भी मिट जाता है और केवल एक स्मृति शेष रह जाती है, जो सताती तो है लेकिन धीरे-धीरे धुंधली हो जाती है।
आइए हम सभी साधनों और उनके परिणामों का त्याग कर दें, क्योंकि परिणाम साधनों से बंधे होते हैं; आइए हम इस प्रश्न को नए सिरे से पूछें; क्या सत्य को पाया जा सकता है?

एम: सत्य का निवास स्थान कहाँ है जहाँ आप उसकी खोज में जा सकते हैं? और आपको कैसे पता चलेगा कि आपने उसे पा लिया है? आप उसे परखने के लिए कौन सा मापदंड साथ रखते हैं? आप अपने शुरुआती प्रश्न पर लौट आए हैं: सत्य का प्रमाण क्या है? प्रश्न में ही कुछ गड़बड़ होनी चाहिए, क्योंकि आप इसे बार-बार दोहराते हैं। आप सत्य के प्रमाण क्यों पूछते हैं? क्या इसलिए नहीं कि आप सत्य को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानते और आपको धोखा दिए जाने का डर है? आप सोचते हैं कि सत्य वह वस्तु है जिसका नाम 'सत्य' है और इसे पाना तभी लाभप्रद है जब यह वास्तविक हो। इसीलिए आपको ठगे जाने का डर है। आप सत्य की खोज में लगे हैं, लेकिन आपको व्यापारियों पर भरोसा नहीं है। आप जालसाजी और नकल से डरते हैं। प्रश्न: मुझे धोखा खाने से डर नहीं लगता। मुझे खुद को धोखा देने से डर लगता है।
एम: लेकिन आप अपने सच्चे इरादों से अनजान रहकर खुद को धोखा दे रहे हैं। आप सत्य की खोज कर रहे हैं, लेकिन वास्तव में आप केवल आराम चाहते हैं, जो हमेशा के लिए बना रहे। अब, कुछ भी, मन की कोई भी अवस्था, हमेशा के लिए नहीं टिक सकती। समय और स्थान की हमेशा एक सीमा होती है, क्योंकि समय और स्थान स्वयं सीमित हैं। और शाश्वतता में 'हमेशा के लिए' शब्द का कोई अर्थ नहीं है। यही बात 'सत्य के प्रमाण' पर भी लागू होती है। अद्वैत के क्षेत्र में सब कुछ पूर्ण है, उसका अपना प्रमाण, अर्थ और उद्देश्य है। जहाँ सब एक है, वहाँ किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है। आप सोचते हैं कि स्थायित्व ही सत्य का प्रमाण है, कि जो अधिक समय तक रहता है वह किसी तरह अधिक सत्य है। समय सत्य का मापदंड बन जाता है। और चूंकि समय मन में है, इसलिए मन ही निर्णायक बन जाता है और सत्य के प्रमाण की खोज अपने भीतर ही करता है - एक ऐसा कार्य जो पूरी तरह से असंभव और निराशाजनक है!
प्रश्न: महोदय, यदि आप कहें कि कुछ भी सत्य नहीं है, सब कुछ सापेक्ष है, तो मैं आपसे सहमत होऊंगा। लेकिन आप सत्य, वास्तविकता, पूर्ण ज्ञान को मानते हैं, इसलिए मैं पूछता हूं: यह क्या है और आप इसे कैसे जानते हैं? और ऐसी क्या बात होगी जो मुझे यह कहने पर मजबूर करेगी कि हां, महाराज सही थे?
एम: आप प्रमाण, गवाही, प्रमाण की आवश्यकता से चिपके हुए हैं। आप अब भी सोचते हैं कि सत्य को इंगित करके यह बताना आवश्यक है: 'देखो, सत्य यहाँ है'। ऐसा नहीं है। सत्य किसी प्रयास का परिणाम नहीं है, किसी मार्ग का अंत नहीं है। यह यहीं और अभी, इसकी लालसा और खोज में ही निहित है। यह मन और शरीर से भी अधिक निकट है, 'मैं हूँ' की भावना से भी अधिक निकट है। आप इसे नहीं देख पाते क्योंकि आप स्वयं से बहुत दूर, अपने अंतर्मन से बाहर देख रहे हैं। आपने सत्य को वस्तुनिष्ठ बना दिया है और अपने मानक प्रमाणों और परीक्षणों पर अड़े हुए हैं, जो केवल वस्तुओं और विचारों पर ही लागू होते हैं। प्रश्न: आपकी बातों से मुझे बस यही समझ आ रहा है कि सत्य मेरी समझ से परे है और मैं इस बारे में बात करने के योग्य नहीं हूं।
एम: आप न केवल योग्य हैं, बल्कि आप स्वयं सत्य हैं। केवल आप ही असत्य को सत्य समझ बैठे हैं।
प्रश्न: आपका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि: सत्य के प्रमाण मत मांगो। केवल असत्य पर ध्यान केंद्रित करो।
एम: सत्य की खोज असत्य को पहचानने में निहित है। आप वह जान सकते हैं जो नहीं है। जो है, वह आप ही हो सकते हैं। ज्ञान ज्ञात के सापेक्ष होता है। एक प्रकार से यह अज्ञान का प्रतिरूप है। जहाँ अज्ञान नहीं है, वहाँ ज्ञान की क्या आवश्यकता? स्वयं में न तो अज्ञान का कोई अस्तित्व है और न ही ज्ञान

का। वे केवल मन की अवस्थाएँ हैं, जो कि चेतना की गति का एक आभास मात्र है, जो अपने सार में अपरिवर्तनीय है।
प्रश्न: क्या सत्य मन के दायरे में है या उससे परे है?
एम: यह न तो यह है और न ही वह, यह दोनों है। इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।
प्रश्न: मैं हमेशा यही सुनता रहता हूँ - अवर्णनीय (अनिर्वाचनीय)। इससे मेरी बुद्धि नहीं बढ़ती।
एम: यह सच है कि यह अक्सर घोर अज्ञानता को छुपाता है। मन अपनी ही बनाई शर्तों पर काम कर सकता है, वह इससे आगे नहीं जा सकता। जो न तो इंद्रियों से संबंधित है और न ही मन से, और जिसके बिना न तो इंद्रियों का अस्तित्व हो सकता है और न ही मन का, वह इन दोनों में समाहित नहीं हो सकता। यह समझें कि मन की अपनी सीमाएं हैं; उनसे आगे जाने के लिए आपको मौन धारण करना होगा। प्रश्न: क्या हम कह सकते हैं कि क्रिया सत्य का प्रमाण है? इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, लेकिन इसे प्रदर्शित किया जा सकता है।
एम: न तो क्रिया, न ही निष्क्रियता। यह दोनों से परे है।
प्रश्न: क्या कोई व्यक्ति कभी कह सकता है: 'हाँ, यह सच है'? या वह केवल असत्य को नकारने तक ही सीमित है? दूसरे शब्दों में, क्या सत्य केवल निषेध है? या क्या कोई ऐसा क्षण आता है जब वह अभिकथन बन जाता है?
एम: सत्य का वर्णन नहीं किया जा सकता, लेकिन इसका अनुभव किया जा सकता है। प्रश्न: अनुभव व्यक्तिपरक होता है, इसे साझा नहीं किया जा सकता। आपके अनुभव से मैं वहीं रह जाता हूँ जहाँ मैं हूँ।
एम: सत्य का अनुभव किया जा सकता है, लेकिन यह मात्र अनुभव नहीं है। मैं इसे जानता हूँ और इसे व्यक्त कर सकता हूँ, लेकिन केवल तभी जब आप इसे ग्रहण करने के लिए तैयार हों। तैयार होने का अर्थ है कि आपको इसके अलावा और कुछ नहीं चाहिए।
प्रश्न: मैं इच्छाओं और भय से भरा हुआ हूँ। क्या इसका अर्थ यह है कि मैं सत्य के योग्य नहीं हूँ?
एम: सत्य अच्छे व्यवहार का इनाम नहीं है, न ही किसी परीक्षा में उत्तीर्ण होने का पुरस्कार। इसे लाया नहीं जा सकता। यह सर्वोपरि, अजन्मा, प्राचीन स्रोत है। आप इसके योग्य हैं क्योंकि आप हैं। सत्य को अर्जित करने के लिए आपको किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं है। यह आपका अपना है। बस इसके पीछे भागना बंद करो। स्थिर रहो, शांत रहो।
प्रश्न: महोदय, यदि आप शरीर को स्थिर और मन को शांत रखना चाहते हैं, तो मुझे बताइए कि यह कैसे संभव है। आत्म-जागरूकता में मैं देखता हूँ कि शरीर और मन मेरे वश से परे कारणों से संचालित होते हैं। वंशानुक्रम और परिवेश मुझ पर पूर्णतः हावी हैं। सर्वशक्तिमान 'मैं', ब्रह्मांड का निर्माता, किसी औषधि से अस्थायी रूप से या विष की एक बूंद से स्थायी रूप से नष्ट हो सकता है। एम: फिर से, आप स्वयं को शरीर मान लेते हैं।
प्रश्न: यदि मैं हड्डियों, मांस और रक्त से बने इस शरीर को 'मैं' न मानकर त्याग दूं, तब भी मेरे भीतर विचारों, भावनाओं, स्मृतियों और कल्पनाओं से बना सूक्ष्म शरीर शेष रहता है। यदि मैं इन्हें भी 'मैं' न मानकर त्याग दूं, तब भी मेरे भीतर चेतना शेष रहती है, जो कि एक प्रकार का शरीर ही है।
एम: आप बिलकुल सही हैं, लेकिन आपको यहीं रुकने की ज़रूरत नहीं है। इससे आगे बढ़ें। न तो चेतना, न ही उसके केंद्र में स्थित 'मैं' आप हैं। आपका सच्चा

अस्तित्व पूरी तरह से आत्म-जागरूकता से रहित है, जो किसी भी चीज़ से, चाहे वह स्थूल हो, सूक्ष्म हो या पारलौकिक, आत्म-पहचान से पूरी तरह मुक्त है।
प्रश्न: मैं स्वयं को परे होने की कल्पना कर सकता हूँ। लेकिन मेरे पास इसका क्या प्रमाण है? अस्तित्व में होने के लिए, मुझे कोई न कोई होना चाहिए। एम: बात बिल्कुल उलट है। अस्तित्व में रहने के लिए, आपको कोई नहीं होना चाहिए। खुद को कुछ या कोई समझना, मृत्यु और नरक के समान है।
प्रश्न: मैंने पढ़ा है कि प्राचीन मिस्र में लोगों को कुछ रहस्यमय अनुष्ठानों में शामिल किया जाता था, जहाँ मादक पदार्थों या मंत्रों के प्रभाव से वे अपने शरीर से विमुख हो जाते थे और वास्तव में बाहर खड़े होकर अपने ही लेटे हुए शरीर को देख सकते थे। इसका उद्देश्य उन्हें मृत्यु के बाद के जीवन की वास्तविकता के प्रति आश्वस्त करना और उनके मन में अपने अंतिम भाग्य के प्रति गहरी चिंता उत्पन्न करना था, जो राज्य और मंदिर के लिए अत्यंत लाभदायक था। शरीर के स्वामी के साथ आत्म-पहचान बनी रहती थी। एम: शरीर भोजन से बना है, जैसे मन विचारों से। उन्हें वैसे ही देखें जैसे वे हैं। अनासक्ति, जब स्वाभाविक और सहज हो, तो मुक्ति है। आपको यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि आप क्या हैं। इतना जानना ही काफी है कि आप क्या नहीं हैं। आप वास्तव में क्या हैं, यह आप कभी नहीं जान पाएंगे, क्योंकि हर खोज विजय प्राप्त करने के लिए नए आयाम खोलती है। अज्ञात की कोई सीमा नहीं है। प्रश्न: क्या इसका अर्थ हमेशा के लिए अज्ञानता है?
एम: इसका अर्थ है कि अज्ञान कभी था ही नहीं। सत्य खोज में निहित है, खोजे गए परिणाम में नहीं। और खोज का न कोई आरंभ है, न कोई अंत। सीमाओं पर प्रश्न उठाओ, उनसे आगे बढ़ो, अपने लिए असंभव लगने वाले कार्य निर्धारित करो - यही मार्ग है।

75. शांति और मौन में ही विकास होता है।

प्रश्नकर्ता: भारतीय परंपरा हमें बताती है कि गुरु अपरिहार्य हैं। वे किसलिए अपरिहार्य हैं? एक माँ बच्चे को शरीर देने के लिए अपरिहार्य है, लेकिन आत्मा नहीं देती। उसकी भूमिका सीमित है। गुरु के मामले में क्या स्थिति है? क्या उनकी भूमिका भी सीमित है, और यदि हाँ, तो किस हद तक? या वे सर्वमान्य रूप से, यहाँ तक कि पूर्णतः अपरिहार्य हैं?
महाराज: हृदय में शांतिपूर्वक और शाश्वत रूप से प्रकाशित होने वाला अंतर्मन का प्रकाश ही वास्तविक गुरु है। बाकी सभी तो केवल मार्ग दिखाते हैं।
प्रश्न: मुझे आंतरिक गुरु से कोई सरोकार नहीं है, केवल मार्गदर्शक गुरु से मतलब है। कुछ लोग मानते हैं कि गुरु के बिना योग संभव नहीं है। वे हमेशा सही गुरु की खोज में लगे रहते हैं, एक गुरु से दूसरे गुरु को बदलते रहते हैं। ऐसे गुरुओं का क्या महत्व है?
एम: वे अस्थायी, समयबद्ध गुरु होते हैं। वे जीवन के हर क्षेत्र में पाए जाते हैं। किसी भी ज्ञान या कौशल को प्राप्त करने के लिए उनकी आवश्यकता होती है।
प्रश्न: माँ का रिश्ता जीवन भर का होता है, जन्म से शुरू होकर मृत्यु पर समाप्त होता है। वह हमेशा के लिए नहीं होती।

एम: इसी प्रकार, समयबद्ध गुरु भी शाश्वत नहीं होते। वे अपना उद्देश्य पूरा करते हैं और अपना स्थान अगले गुरु को सौंप देते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है और इसमें कोई दोष नहीं है।
प्रश्न: क्या हर प्रकार के ज्ञान या कौशल के लिए मुझे अलग गुरु की आवश्यकता होती है?
एम: इन मामलों में कोई नियम नहीं हो सकता, सिवाय एक के कि 'बाहरी क्षणभंगुर है, आंतरिक - स्थायी और अपरिवर्तनीय', हालांकि दिखने और कार्य करने में हमेशा नया होता है।
प्रश्न: आंतरिक और बाह्य गुरुओं के बीच क्या संबंध है?
एम: बाहरी, आंतरिक का प्रतिनिधित्व करता है, आंतरिक, बाहरी को स्वीकार करता है - कुछ समय के लिए।
प्रश्न: यह प्रयास किसका है?
एम: बेशक, शिष्य का ही दायित्व होता है। बाहरी गुरु निर्देश देते हैं, आंतरिक गुरु शक्ति प्रदान करते हैं; सचेत होकर उनका पालन करना शिष्य का ही काम है। शिष्य की इच्छाशक्ति, बुद्धि और ऊर्जा के बिना बाहरी गुरु असहाय हो जाते हैं। आंतरिक गुरु अपने अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। अज्ञानता और गलत राहों से संकट उत्पन्न होता है और शिष्य को अपनी दुर्दशा का बोध होता है। बुद्धिमान वही है जो किसी आघात की प्रतीक्षा नहीं करता, जो अत्यंत कठोर हो सकता है।
प्रश्न: क्या यह खतरा है?
एम: यह धमकी नहीं, चेतावनी है। आंतरिक गुरु अहिंसा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होते। वे कभी-कभी काफी हिंसक भी हो सकते हैं, यहाँ तक कि कुटिल या विकृत व्यक्तित्व को नष्ट करने तक। जीवन और सुख की तरह दुख और मृत्यु भी उनके कार्य के साधन हैं। केवल द्वैत में ही अहिंसा एकता का नियम बन जाती है।
प्रश्न: क्या किसी को अपने आप से डरना चाहिए?
एम: डरने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि आत्मा का इरादा अच्छा होता है... लेकिन इसे गंभीरता से लेना चाहिए। यह ध्यान और आज्ञापालन की मांग करती है; जब इसे अनसुना किया जाता है, तो यह समझाने की बजाय ज़बरदस्ती करने लगती है, क्योंकि जब तक यह इंतज़ार कर सकती है, तब तक इसे नकारा नहीं जा सकता। समस्या गुरु में नहीं है, चाहे वह आंतरिक हो या बाह्य। गुरु तो हमेशा उपलब्ध हैं। कमी परिपक्व शिष्य में है। जब कोई व्यक्ति तैयार ही न हो, तो क्या किया जा सकता है?
प्रश्न: तैयार हैं या इच्छुक हैं?
एम: दोनों। बात एक ही है। भारत में हम इसे अधिकारी कहते हैं। इसका अर्थ है सक्षम और हकदार दोनों।
प्रश्न: क्या बाहरी गुरु दीक्षा प्रदान कर सकते हैं?
एम: वह हर तरह की दीक्षा दे सकता है, लेकिन वास्तविकता की दीक्षा भीतर से ही आनी चाहिए।
प्रश्न: अंतिम दीक्षा कौन देता है?
एम: यह स्वयं प्रदत्त है।
प्रश्न: मुझे लगता है हम एक ही बात को बार-बार दोहरा रहे हैं। आख़िरकार, मैं तो केवल एक ही स्व को जानता हूँ, वर्तमान, अनुभवजन्य स्व। आंतरिक या उच्चतर स्व तो केवल एक विचार है जिसे समझाने और प्रोत्साहित करने के लिए गढ़ा गया है। हम इसकी स्वतंत्र सत्ता की बात करते हैं। जबकि ऐसा नहीं है।

एम: बाहरी और आंतरिक, दोनों ही स्व काल्पनिक हैं। 'मैं' होने की ज़िद को दूर करने के लिए एक और 'अति-मैं' की ज़िद की ज़रूरत होती है, ठीक वैसे ही जैसे एक काँटे को निकालने के लिए दूसरे काँटे की या एक ज़हर को बेअसर करने के लिए दूसरे ज़हर की ज़रूरत होती है। हर दावे के लिए खंडन ज़रूरी है, लेकिन यह सिर्फ़ पहला कदम है। अगला कदम इन दोनों से आगे बढ़ना है।
प्रश्न: मैं समझता हूँ कि बाहरी गुरु की आवश्यकता इसलिए है ताकि वह मेरा ध्यान स्वयं की ओर और स्वयं में सुधार लाने की तत्काल आवश्यकता की ओर आकर्षित कर सके। मैं यह भी समझता हूँ कि मुझमें किसी भी गहरे परिवर्तन के मामले में वह कितना असहाय है। लेकिन यहाँ आप सद्गुरु, आंतरिक गुरु, आदिहीन, अपरिवर्तनीय, अस्तित्व का मूल, अटल प्रतिज्ञा, निश्चित लक्ष्य की बात करते हैं। क्या वह एक अवधारणा है या एक वास्तविकता?
एम: वही एकमात्र वास्तविकता है। बाकी सब देह-बुद्धि द्वारा काल के चेहरे पर डाली गई छाया मात्र है। बेशक, छाया भी वास्तविकता से संबंधित होती है, लेकिन वह स्वयं वास्तविक नहीं होती।
प्रश्न: मैं ही एकमात्र वास्तविकता हूँ जिसे मैं जानता हूँ। सद्गुरु तब तक विद्यमान रहते हैं जब तक मैं उनके बारे में सोचता हूँ। वास्तविकता को उनकी ओर मोड़ने से मुझे क्या लाभ होता है?
एम: तुम्हारा नुकसान ही तुम्हारा फायदा है। जब परछाई सिर्फ परछाई ही रह जाती है, तो तुम उसका पीछा करना छोड़ देते हो। तुम पीछे मुड़कर देखते हो और सूरज को पाते हो जो हर समय तुम्हारे पीछे ही था!
प्रश्न: क्या आंतरिक गुरु भी शिक्षा देते हैं?
एम: वह इस विश्वास को प्रदान करता है कि आप शाश्वत, अपरिवर्तनीय, वास्तविकता-चेतना-प्रेम हैं, जो सभी दिखावों के भीतर और परे मौजूद हैं। प्रश्न: केवल दृढ़ विश्वास ही पर्याप्त नहीं है। निश्चितता होनी चाहिए। एम: बिलकुल सही। लेकिन इस मामले में निश्चितता साहस का रूप ले लेती है। डर पूरी तरह से खत्म हो जाता है। निर्भीकता की यह अवस्था इतनी नई है, फिर भी इतनी गहराई से महसूस की जाती है कि इसे नकारा नहीं जा सकता। यह अपने बच्चे से प्यार करने जैसा है। भला इस पर कौन शक कर सकता है?
प्रश्न: हमें आध्यात्मिक प्रयासों में प्रगति के बारे में सुनने को मिलता है। आप किस प्रकार की प्रगति की कल्पना करते हैं?
एम: जब आप प्रगति से आगे बढ़ जाएंगे, तभी आपको पता चलेगा कि प्रगति क्या है।
प्रश्न: हमें प्रगति कैसे मिलती है?
एम: मौन ही मुख्य कारक है। शांति और मौन में ही विकास होता है।
प्रश्न: मन अत्यंत बेचैन है। इसे शांत करने का क्या उपाय है?
एम: गुरु पर भरोसा रखें। मेरा ही उदाहरण लीजिए। मेरे गुरु ने मुझे 'मैं हूं' की भावना पर ध्यान केंद्रित करने और किसी और चीज पर ध्यान न देने का आदेश दिया। मैंने बस आज्ञा का पालन किया। मैंने किसी विशेष श्वास अभ्यास, ध्यान या शास्त्रों के अध्ययन का अनुसरण नहीं किया। चाहे कुछ भी हो जाए, मैं अपना ध्यान उससे हटाकर 'मैं हूं' की भावना पर केंद्रित कर लेता था, यह सुनने में बहुत सरल, यहां तक कि असभ्य भी लग सकता है। ऐसा करने का मेरा एकमात्र कारण यही था कि मेरे गुरु ने मुझे ऐसा करने को कहा था। फिर भी यह कारगर साबित हुआ! आज्ञापालन सभी इच्छाओं और भयों का शक्तिशाली समाधान है।

मन को व्यस्त रखने वाली हर चीज से मुंह मोड़ लें; जो भी काम पूरा करना हो, करें, लेकिन नई जिम्मेदारियों से बचें; खुद को खाली रखें, हमेशा उपलब्ध रहें, अनचाहे आने वाले किसी भी अवसर का विरोध न करें।
अंत में आप एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ आप किसी भी चीज़ से आसक्ति नहीं रखते, आनंदमय अनासक्ति की स्थिति में होते हैं, और एक ऐसी आंतरिक शांति और स्वतंत्रता की स्थिति में होते हैं जिसका वर्णन करना असंभव है, फिर भी वह आश्चर्यजनक रूप से वास्तविक है।
प्रश्न: जब कोई सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति लगन से योग का अभ्यास करता है, तो क्या उसका आंतरिक गुरु उसका मार्गदर्शन और सहायता करता है या उसे अपने हाल पर छोड़ देता है, और वह केवल परिणाम की प्रतीक्षा करता रहता है? एम: सब कुछ अपने आप होता है। न तो साधक कुछ करता है, न ही गुरु। चीजें जैसी होती हैं वैसी ही घटित होती हैं; दोष या प्रशंसा बाद में, कर्तापन का बोध प्रकट होने के बाद ही दी जाती है।
प्रश्न: यह तो कितना विचित्र है! निश्चय ही कर्म से पहले कर्म आता है।
एम: बात इसके उलट है; कर्म तो एक तथ्य है, लेकिन कर्ता मात्र एक अवधारणा है। आपकी भाषा ही यह दर्शाती है कि कर्म तो निश्चित है, पर कर्ता संदिग्ध; जिम्मेदारी दूसरों पर डालना एक ऐसा खेल है जो केवल मनुष्यों में ही पाया जाता है। किसी भी घटना के घटित होने के लिए आवश्यक अनगिनत कारकों को देखते हुए, यही मानना पड़ता है कि हर चीज, चाहे कितनी भी दूर हो, हर चीज के लिए जिम्मेदार है। कर्ता होना 'मैं' और 'मेरा' के भ्रम से जन्मा एक मिथक है। प्रश्न: यह भ्रम कितना शक्तिशाली है?
एम: इसमें कोई शक नहीं, क्योंकि यह वास्तविकता पर आधारित है।
प्रश्न: इसमें वास्तविक क्या है?
एम: जो कुछ भी अवास्तविक है, उसे पहचान कर और अस्वीकार करके पता लगाओ। प्रश्न: आध्यात्मिक साधना में अंतर्मन की भूमिका मुझे अच्छी तरह समझ नहीं आई है। प्रयास कौन करता है? क्या यह बाह्य मन है, या अंतर्मन?
एम: आपने प्रयास, आंतरिक, बाह्य, स्व आदि जैसे शब्द गढ़े हैं और उन्हें वास्तविकता पर थोपने का प्रयास कर रहे हैं। चीज़ें जैसी हैं वैसी ही हैं, लेकिन हम उन्हें अपनी भाषा की संरचना द्वारा निर्धारित एक सांचे में ढालना चाहते हैं। यह आदत इतनी प्रबल है कि हम उस वास्तविकता को नकार देते हैं जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। हम यह मानने से ही इनकार कर देते हैं कि शब्द मात्र प्रतीक हैं, जो परंपरा और आदत के द्वारा बार-बार होने वाले अनुभवों से जुड़े होते हैं।
प्रश्न: आध्यात्मिक पुस्तकों का क्या महत्व है?
एम: ये अज्ञानता को दूर करने में सहायक होते हैं। शुरुआत में तो ये उपयोगी होते हैं, लेकिन अंत में बाधा बन जाते हैं। इन्हें कब त्यागना है, यह जानना जरूरी है।
प्रश्न: आत्मा और सत्व के बीच, आत्मा और सार्वभौमिक सामंजस्य के बीच क्या संबंध है?
एम: जैसे सूर्य और उसकी किरणों के बीच का संबंध। सामंजस्य और सौंदर्य, समझ और स्नेह, ये सभी वास्तविकता की अभिव्यक्तियाँ हैं। यह क्रियाशील वास्तविकता है, पदार्थ पर आत्मा का प्रभाव है। तमस भ्रम पैदा करता है, रजस विकृति उत्पन्न करता है, सत्व सामंजस्य स्थापित करता है। सत्व के परिपक्व होने पर सभी इच्छाएँ और भय समाप्त हो जाते हैं। वास्तविक स्वरूप मन में बिना किसी विकृति के प्रतिबिंबित होता है। पदार्थ का उद्धार होता है,

आत्मा का प्रकटीकरण होता है। दोनों एक के रूप में दिखाई देते हैं। वे हमेशा से एक थे, लेकिन अपूर्ण मन ने उन्हें दो के रूप में देखा। मन की पूर्णता ही मनुष्य का कार्य है, क्योंकि पदार्थ और आत्मा मन में ही मिलते हैं।
प्रश्न: मैं एक दरवाजे के सामने खड़े व्यक्ति की तरह महसूस कर रहा हूँ। मुझे पता है कि दरवाजा खुला है, लेकिन उस पर इच्छा और भय के कुत्ते पहरा दे रहे हैं। मुझे क्या करना चाहिए?
एम: शिक्षक की बात मानो और कुत्तों का सामना करो। ऐसा व्यवहार करो मानो वे वहाँ हों ही नहीं। फिर से, आज्ञापालन ही सर्वोपरि है। स्वतंत्रता आज्ञापालन से ही प्राप्त होती है। जेल से भागने के लिए, अपनी रिहाई के लिए काम करने वालों द्वारा भेजे गए निर्देशों का बिना किसी प्रश्न के पालन करना आवश्यक है।
प्रश्न: गुरु के वचन, मात्र सुनने मात्र से, अधिक प्रभावशाली नहीं होते। उनका पालन करने के लिए आस्था आवश्यक है। ऐसी आस्था कैसे उत्पन्न होती है? एम: जब समय आता है, तब आस्था आती है। हर चीज़ समय पर होती है। गुरु हमेशा देने के लिए तैयार रहते हैं, लेकिन कोई लेने वाला नहीं होता।
प्रश्न: जी हां, श्री रमण महर्षि कहा करते थे: गुरु तो बहुत हैं, लेकिन शिष्य कहां हैं?
एम: खैर, समय के साथ सब कुछ हो जाता है। सब ठीक हो जाएगा, एक भी जीव नष्ट नहीं होगा।
प्रश्न: मुझे बौद्धिक समझ को आत्म-साक्षात्कार मान लेने से बहुत डर लगता है। मैं सत्य को जाने बिना भी उसकी बात कर सकता हूँ, और बिना एक शब्द कहे भी उसे जान सकता हूँ।
मुझे पता है कि ये बातचीत प्रकाशित होने वाली हैं। पाठक पर इनका क्या प्रभाव पड़ेगा?
एम: ध्यानपूर्वक और विचारशील पाठक के मन में ये शब्द परिपक्व होकर फूल और फल देंगे। सत्य पर आधारित शब्द, यदि पूर्णतः परखे गए हों, तो अपनी शक्ति रखते हैं।

76. यह जानना कि आप नहीं जानते, सच्चा ज्ञान है।
महाराज: शरीर है। शरीर के भीतर एक प्रेक्षक प्रतीत होता है और बाहर एक अवलोकन के अधीन संसार। प्रेक्षक और उसका अवलोकन, साथ ही अवलोकन किया जा रहा संसार, सब एक साथ प्रकट और लुप्त होते हैं। इन सबसे परे शून्य है। यह शून्य सबके लिए एक है।
प्रश्नकर्ता: आपकी बात सरल लगती है, लेकिन हर कोई ऐसा नहीं कहेगा। आप ही हैं, और केवल आप ही हैं, जो तीनों और उनसे परे शून्य की बात करते हैं। मैं तो केवल संसार को देखता हूँ, जिसमें सब कुछ समाहित है।
एम: क्या 'मैं हूँ' भी?
प्रश्न: यहाँ तक कि 'मैं हूँ' भी। 'मैं हूँ' का अस्तित्व इसलिए है क्योंकि संसार का अस्तित्व है।
एम: और दुनिया इसलिए मौजूद है क्योंकि 'मैं हूं' मौजूद है।
प्रश्न: जी हाँ, यह दोनों तरफ से लागू होता है। मैं इन दोनों को अलग नहीं कर सकता, न ही इनसे आगे बढ़ सकता हूँ। मैं किसी बात को तब तक 'है' नहीं कह सकता जब तक मैं उसका अनुभव न कर लूँ, और न ही मैं किसी बात को तब तक 'नहीं है' कह

सकता जब तक मैं उसका अनुभव न कर लूँ। आप किस बात का अनुभव करते हैं जिससे आप इतने विश्वास के साथ बोलते हैं?
एम: मैं स्वयं को उसी रूप में जानता हूँ जैसा मैं हूँ—काल से परे, स्थान से परे, कारण से परे। आप अन्य बातों में लीन होने के कारण इसे नहीं जानते। प्रश्न: मैं इतना मग्न क्यों हूँ?
एम: क्योंकि आप इसमें रुचि रखते हैं।
प्रश्न: मुझे किस बात में रुचि है?
एम: दर्द का डर, सुख की चाह। सुख दर्द का अंत है और दर्द सुख का अंत। ये एक अंतहीन चक्र में घूमते रहते हैं। इस दुष्चक्र का तब तक अध्ययन करो जब तक तुम इससे बाहर न निकल जाओ।
प्रश्न: क्या मुझे आगे बढ़ने के लिए आपकी कृपा की आवश्यकता नहीं है? एम: आपकी आंतरिक वास्तविकता की कृपा शाश्वत रूप से आपके साथ है। कृपा के लिए आपका निवेदन ही इसका प्रमाण है। मेरी कृपा की चिंता न करें, बल्कि जो कहा गया है उसे करें। कर्म ही लगन का प्रमाण है, कृपा की अपेक्षा नहीं। प्रश्न: मुझे किस बात को लेकर गंभीर होना चाहिए?
एम: अपने ध्यान के दायरे में आने वाली हर चीज़ की गहनता से जांच करें। अभ्यास से आपका दायरा विस्तृत होगा और जांच गहरी होती जाएगी, जब तक कि यह सहज और असीमित न हो जाए।
प्रश्न: क्या आप आत्मज्ञान को अभ्यास का परिणाम नहीं मान रहे हैं? अभ्यास भौतिक अस्तित्व की सीमाओं के भीतर ही संचालित होता है। यह असीम को कैसे जन्म दे सकता है?
एम: बेशक, अभ्यास और ज्ञान के बीच कोई कारण-कार्य संबंध नहीं हो सकता। लेकिन ज्ञान के मार्ग में आने वाली बाधाएं अभ्यास से बहुत प्रभावित होती हैं।
प्रश्न: इसमें क्या-क्या बाधाएं हैं?
एम: गलत विचार और इच्छाएँ गलत कार्यों की ओर ले जाती हैं, जिससे मन और शरीर में क्षय और कमजोरी उत्पन्न होती है। असत्य का पता लगाकर उसे त्याग देने से वह अवरोध दूर हो जाता है जो सत्य को मन में प्रवेश करने से रोकता है। प्रश्न: मैं मन की दो अवस्थाओं में अंतर कर सकता हूँ: 'मैं हूँ' और 'संसार है'; ये दोनों एक साथ उत्पन्न होती हैं और एक साथ समाप्त होती हैं। लोग कहते हैं: 'मैं हूँ, क्योंकि संसार है'। आप कहते प्रतीत होते हैं: 'संसार है, क्योंकि मैं हूँ'। इनमें से कौन सा सत्य है?
एम: दोनों में से कोई नहीं। अंतरिक्ष और समय में दोनों एक ही अवस्था हैं। उससे परे, कालातीत अवस्था है।
प्रश्न: समय और शाश्वतता के बीच क्या संबंध है?
एम: शाश्वत समय को जानता है, समय शाश्वत को नहीं जानता। समस्त चेतना समय में समाहित है और उसके लिए शाश्वत अचेतन प्रतीत होता है। फिर भी, यही चेतना को संभव बनाता है। प्रकाश अंधकार में चमकता है। प्रकाश में अंधकार दिखाई नहीं देता। या, आप इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं - प्रकाश के अनंत सागर में, चेतना के बादल दिखाई देते हैं - अंधकारमय और सीमित, विपरीतता से बोधगम्य। ये शब्द किसी अत्यंत सरल, फिर भी पूर्णतः अवर्णनीय बात को व्यक्त करने के मात्र प्रयास हैं।
प्रश्न: शब्दों को पार करने के लिए एक सेतु का काम करना चाहिए।
एम: शब्द मन की अवस्था को दर्शाता है, वास्तविकता को नहीं। नदी, उसके दोनों किनारे, उस पर बना पुल—ये सब मन में ही हैं। केवल शब्द आपको मन से परे नहीं

ले जा सकते। सत्य की तीव्र खोज या गुरु में पूर्ण आस्था होनी चाहिए। मेरा विश्वास कीजिए, न कोई लक्ष्य है, न ही उसे प्राप्त करने का कोई मार्ग। आप ही मार्ग और लक्ष्य हैं, स्वयं के सिवा और कुछ नहीं है जिसे प्राप्त करना हो। आपको केवल समझने की आवश्यकता है और समझना ही मन का विकास है। वृक्ष बारहमासी होता है, लेकिन फूल और फल मौसम के अनुसार लगते हैं। ऋतुएँ बदलती हैं, पर वृक्ष नहीं। आप ही वृक्ष हैं। आपने अतीत में अनगिनत शाखाएँ और पत्तियाँ उगाई हैं और भविष्य में भी उगा सकते हैं—फिर भी आप बने रहते हैं। आपको यह नहीं जानना है कि क्या था, क्या होगा, बल्कि यह जानना है कि क्या है। आपकी इच्छा ही ब्रह्मांड का सृजन करती है। संसार को अपनी रचना समझिए और मुक्त हो जाइए।
प्रश्न: आप कहते हैं कि दुनिया प्रेम की संतान है। जब मैं इस दुनिया में व्याप्त भयावहता, युद्धों, यातना शिविरों, अमानवीय शोषणों को जानता हूँ, तो मैं इसे अपनी रचना कैसे मान सकता हूँ? मेरी क्षमताएँ चाहे कितनी भी सीमित क्यों न हों, मैं इतनी क्रूर दुनिया का निर्माण नहीं कर सकता था। एम: पता लगाओ कि यह क्रूर संसार किसे दिखाई देता है, और तुम्हें पता चल जाएगा कि यह इतना क्रूर क्यों लगता है। तुम्हारे प्रश्न बिल्कुल जायज़ हैं, लेकिन जब तक तुम यह नहीं जानोगे कि यह संसार किसका है, तब तक इनका उत्तर नहीं दिया जा सकता। किसी वस्तु का अर्थ जानने के लिए उसके रचयिता से पूछना आवश्यक है। मैं तुमसे कह रहा हूँ: तुम जिस संसार में रहते हो, उसके रचयिता तुम ही हो - केवल तुम ही इसे बदल सकते हो, या इसे नष्ट कर सकते हो। प्रश्न: आप कैसे कह सकते हैं कि मैंने दुनिया बनाई है? मैं तो इसे मुश्किल से ही जानता हूँ।
एम: जब आप स्वयं को जान लेते हैं, तो संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे आप न जान सकें। जब आप स्वयं को शरीर मानकर संसार को भौतिक वस्तुओं के संग्रह के रूप में देखते हैं, तो संसार मन के सागर के समान प्रतीत होता है। जब आप स्वयं को यथार्थ रूप में जान लेते हैं, तो संसार स्वयं के समान प्रतीत होता है।
प्रश्न: यह सब सुनने में तो बहुत सुंदर लगता है, लेकिन मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देता। दुनिया में इतना दुख क्यों है?
एम: यदि आप केवल दर्शक बनकर अलग-थलग खड़े रहेंगे, तो आपको कष्ट नहीं होगा। आप दुनिया को एक तमाशे के रूप में देखेंगे। वास्तव में एक बेहद मनोरंजक तमाशा।
प्रश्न: ओह, नहीं! मैं इस लीला सिद्धांत को स्वीकार नहीं करूँगा। पीड़ा अत्यंत तीव्र और सर्वव्यापी है। पीड़ा के तमाशे से मनोरंजन करना कितना विकृत है! आप मुझे कैसा क्रूर ईश्वर दिखा रहे हैं!
एम: दुख का कारण देखने वाले का देखी जाने वाली वस्तु से एकात्म हो जाना है। इसी से इच्छा का जन्म होता है और इच्छा के साथ अंधाधुंध कर्म, परिणामों की परवाह किए बिना। अपने चारों ओर देखो और तुम्हें पता चलेगा - दुख मनुष्य द्वारा निर्मित है।
प्रश्न: यदि कोई व्यक्ति केवल अपने ही दुख का कारण बनता, तो मैं आपसे सहमत होता। लेकिन अपनी मूर्खता में वह दूसरों को भी कष्ट देता है। एक स्वप्नद्रष्टा का अपना निजी दुःस्वप्न होता है और उससे केवल वही पीड़ित होता है। लेकिन वह किस प्रकार का स्वप्न है जो दूसरों के जीवन में तबाही मचाता है?

एम: वर्णन अनेक और विरोधाभासी हैं। वास्तविकता सरल है - सब एक है, सामंजस्य शाश्वत नियम है, कोई भी कष्ट देने के लिए बाध्य नहीं करता। शब्द तभी विफल हो जाते हैं जब आप वर्णन और व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।
प्रश्न: मुझे याद है गांधीजी ने एक बार मुझसे कहा था कि आत्मा अहिंसा के नियम से बंधी नहीं है। आत्मा को अपनी अभिव्यक्तियों को सही करने के लिए उन पर पीड़ा थोपने की स्वतंत्रता है।
एम: द्वैत के स्तर पर तो ऐसा हो सकता है, लेकिन वास्तविकता में केवल स्रोत ही है, जो स्वयं अंधकारमय है और सब कुछ प्रकाशित करता है। अगोचर होते हुए भी यह अनुभूति उत्पन्न करता है। अनसुना होते हुए भी यह अनुभूति उत्पन्न करता है। अकल्पनीय होते हुए भी यह विचार उत्पन्न करता है। अस्तित्वहीन होते हुए भी यह अस्तित्व को जन्म देता है। यह गति का अचल आधार है। एक बार आप वहाँ पहुँच जाते हैं, तो आप हर जगह सहज महसूस करते हैं।
प्रश्न: यदि मैं वही हूँ, तो मेरे जन्म का कारण क्या है?
एम: अतीत की अधूरी इच्छाओं की स्मृति ऊर्जा को जकड़ लेती है, जो एक व्यक्ति के रूप में प्रकट होती है। जब यह ऊर्जा समाप्त हो जाती है, तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। अधूरी इच्छाएँ अगले जन्म में भी बनी रहती हैं। शरीर के साथ आत्म-पहचान से नई-नई इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं और इनका कोई अंत नहीं होता, जब तक कि बंधन की इस प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से न समझ लिया जाए। स्पष्टता ही मुक्ति का मार्ग है, क्योंकि इच्छा का त्याग तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसके कारण और परिणाम स्पष्ट रूप से न समझ लिए जाएँ। मैं यह नहीं कहता कि वही व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है। वह मरता है और हमेशा के लिए मर जाता है। लेकिन उसकी स्मृतियाँ, उसकी इच्छाएँ और भय बने रहते हैं। वे एक नए व्यक्ति के लिए ऊर्जा प्रदान करते हैं। यथार्थ इसमें कोई भूमिका नहीं निभाता, बल्कि प्रकाश देकर इसे संभव बनाता है।
प्रश्न: मेरी समस्या यह है। जैसा कि मैं देख सकता हूँ, प्रत्येक अनुभव अपने आप में एक वास्तविकता है। यह मौजूद है - अनुभव किया गया है। जिस क्षण मैं इस पर प्रश्न उठाता हूँ और पूछता हूँ कि यह किसके साथ घटित होता है, कौन प्रेक्षक है इत्यादि, अनुभव समाप्त हो जाता है और मैं केवल इसकी स्मृति का ही अध्ययन कर पाता हूँ। मैं वर्तमान क्षण - वर्तमान - का अध्ययन नहीं कर पाता। मेरी जागरूकता अतीत की है, वर्तमान की नहीं। जब मैं जागरूक होता हूँ, तो मैं वास्तव में वर्तमान में नहीं, बल्कि केवल अतीत में जीता हूँ। क्या वास्तव में वर्तमान की जागरूकता हो सकती है?
एम: आप जिस चीज़ का वर्णन कर रहे हैं, वह जागरूकता बिल्कुल नहीं है, बल्कि केवल अनुभव के बारे में सोचना है। सच्ची जागरूकता (समविद) शुद्ध साक्षी की अवस्था है, जिसमें देखी जा रही घटना के बारे में कुछ भी करने का ज़रा भी प्रयास नहीं किया जाता। आपके विचार और भावनाएँ, शब्द और कर्म भी घटना का हिस्सा हो सकते हैं; आप स्पष्टता और समझ के पूर्ण प्रकाश में सब कुछ निश्चिंत होकर देखते हैं। आप ठीक-ठीक समझते हैं कि क्या हो रहा है, क्योंकि यह आपको प्रभावित नहीं करता। यह ठंडेपन और अलगाव का रवैया लग सकता है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। एक बार जब आप इस अवस्था में आ जाते हैं, तो आप पाएंगे कि आप जो कुछ भी देखते हैं, उससे प्रेम करते हैं, चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। यह निःसंकल्पित प्रेम ही जागरूकता की कसौटी है। यदि यह नहीं है, तो आप केवल कुछ व्यक्तिगत कारणों से रुचि रखते हैं।
प्रश्न: जब तक सुख और दुख मौजूद हैं, तब तक व्यक्ति की रुचि बनी रहेगी।

एम: और जब तक कोई सचेत रहता है, तब तक सुख और दुख का अनुभव होता रहेगा। चेतना के स्तर पर सुख और दुख से लड़ना संभव नहीं है। इनसे परे जाने के लिए चेतना से परे जाना होगा, जो तभी संभव है जब आप चेतना को अपने भीतर नहीं, बल्कि अपने साथ घटित होने वाली किसी बाहरी, पराई, आरोपित वस्तु के रूप में देखें। तब अचानक आप चेतना से मुक्त हो जाते हैं, सचमुच अकेले हो जाते हैं, बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के। और यही आपकी सच्ची अवस्था है। चेतना एक खुजलीदार दाने की तरह है जो आपको खुजलाने पर मजबूर करती है। बेशक, आप चेतना से बाहर नहीं निकल सकते, क्योंकि बाहर निकलने का विचार ही चेतना में निहित है। लेकिन यदि आप अपनी चेतना को एक प्रकार के बुखार के रूप में देखना सीख लें, जो व्यक्तिगत और निजी है, जिसमें आप एक चूजे की तरह अपने खोल में बंद हैं, तो इसी दृष्टिकोण से वह संकट उत्पन्न होगा जो खोल को तोड़ देगा। प्रश्न: बुद्ध ने कहा था कि जीवन दुखमय है।
एम: उनका मतलब यही रहा होगा कि सभी चेतना पीड़ादायक होती है, जो कि स्पष्ट है।
प्रश्न: क्या मृत्यु मुक्ति प्रदान करती है?
एम: जो व्यक्ति स्वयं को जन्मा हुआ मानता है, वह मृत्यु से बहुत भयभीत होता है। वहीं दूसरी ओर, जो व्यक्ति स्वयं को सही मायने में जानता है, उसके लिए मृत्यु एक सुखद घटना है।
प्रश्न: हिंदू परंपरा कहती है कि दुख भाग्य का परिणाम है और भाग्य कर्मों के फल स्वरूप ही मिलता है। प्राकृतिक और मानव निर्मित भीषण आपदाओं, बाढ़, भूकंप, युद्ध और क्रांतियों को देखिए। क्या हम यह सोचने का साहस कर सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पापों के कारण भोगता है, जिनके बारे में उसे कोई जानकारी नहीं होती? क्या अरबों लोग जो भोग रहे हैं, वे सभी अपराधी हैं जिन्हें न्यायसंगत दंड दिया जा रहा है?
एम: क्या हमें केवल अपने पापों के लिए ही कष्ट भोगना चाहिए? क्या हम सचमुच अलग हैं? जीवन के इस विशाल सागर में हम दूसरों के पापों के लिए कष्ट भोगते हैं और अपने पापों के लिए दूसरों को भी कष्ट देते हैं। बेशक, संतुलन का नियम सर्वोपरि है और अंत में हिसाब बराबर हो जाता है। लेकिन जब तक जीवन रहता है, हम एक दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं।
प्रश्न: जी हाँ, जैसा कि कवि कहते हैं: 'कोई भी मनुष्य अकेला नहीं है'।
एम: हर अनुभव के मूल में आत्मा और उस अनुभव में उसकी रुचि होती है। इसे इच्छा कहो, इसे प्रेम कहो - शब्दों का कोई महत्व नहीं है।
प्रश्न: क्या मैं पीड़ा की कामना कर सकता हूँ? क्या मैं जानबूझकर पीड़ा मांग सकता हूँ? क्या मैं उस व्यक्ति की तरह नहीं हूँ जिसने अच्छी नींद की उम्मीद में अपने लिए मुलायम बिस्तर बनाया, लेकिन फिर उसे एक बुरा सपना आया और वह सपने में करवटें बदलता और चीखता रहा? निश्चित रूप से, यह प्रेम नहीं है जो बुरे सपने पैदा करता है।
एम: सभी दुख स्वार्थपूर्ण अलगाव, संकीर्णता और लोभ के कारण उत्पन्न होते हैं। जब दुख का कारण पहचान लिया जाता है और उसे दूर कर दिया जाता है, तो दुख समाप्त हो जाता है।
प्रश्न: मैं अपने दुख के कारणों को दूर कर सकता हूँ, लेकिन दूसरों को कष्ट भोगना पड़ेगा।
एम: दुख को समझने के लिए आपको सुख और दुख से परे जाना होगा। आपकी अपनी इच्छाएँ और भय आपको दूसरों को समझने और उनकी मदद करने से रोकते हैं।
वास्तव में, कोई दूसरा नहीं है, और स्वयं की मदद करके आप सभी की मदद करते

हैं। यदि आप मानवता के दुखों के प्रति गंभीर हैं, तो आपको मदद के एकमात्र साधन - स्वयं को - परिपूर्ण करना होगा।
प्रश्न: आप बार-बार कहते हैं कि मैं इस संसार का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारक हूँ, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हूँ। जब मैं आपकी बातों पर विचार करता हूँ, तो मैं स्वयं से पूछता हूँ: 'मेरे संसार में इतनी बुराई क्यों है?'
एम: कोई बुराई नहीं है, कोई दुख नहीं है; जीने का आनंद ही सर्वोपरि है। देखो, कैसे सब कुछ जीवन से जुड़ा है, अस्तित्व कितना प्यारा है।
प्रश्न: मेरे मन की स्क्रीन पर छवियां एक के बाद एक अंतहीन क्रम में घटती रहती हैं। मुझमें कुछ भी स्थायी नहीं है।
एम: ज़रा खुद को गौर से देखो। पर्दा तो वहीं है— वो बदलता नहीं। रोशनी स्थिर रहती है। बस बीच में चलने वाली फिल्म ही हिलती रहती है और तस्वीरें दिखाती है। तुम इस फिल्म को भाग्य (प्रारब्ध) कह सकते हो।
प्रश्न: भाग्य का निर्माण कौन करता है?
एम: अज्ञान ही अपरिहार्यता का कारण है।
प्रश्न: किस बात की अज्ञानता?
एम: मुख्य रूप से स्वयं का अज्ञान। साथ ही, चीजों की वास्तविक प्रकृति, उनके कारणों और परिणामों का अज्ञान। आप बिना समझे चारों ओर देखते हैं और दिखावे को वास्तविकता मान लेते हैं। आपको लगता है कि आप दुनिया और खुद को जानते हैं - लेकिन यह केवल आपका अज्ञान ही है जो आपको यह कहने पर मजबूर करता है: मैं जानता हूँ। इस बात को स्वीकार करने से शुरुआत करें कि आप नहीं जानते और वहीं से आगे बढ़ें।
अज्ञानता का अंत करने से बढ़कर दुनिया की मदद करने का और कोई तरीका नहीं है। फिर, दुनिया की मदद करने के लिए आपको कुछ विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। आपका अस्तित्व ही एक मदद है, चाहे आप कुछ करें या न करें।
प्रश्न: अज्ञान को कैसे जाना जा सकता है? अज्ञान को जानने के लिए ज्ञान का होना आवश्यक है।
एम: बिलकुल सही। 'मैं अज्ञानी हूँ' यह स्वीकार करना ही ज्ञान की शुरुआत है। अज्ञानी व्यक्ति अपने अज्ञान से अनभिज्ञ होता है। आप कह सकते हैं कि अज्ञान का अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि जिस क्षण वह प्रकट होता है, उसी क्षण लुप्त हो जाता है। इसलिए, आप इसे अचेतनता या अंधापन कह सकते हैं। आप अपने आस-पास और अपने भीतर जो कुछ भी देखते हैं, वह सब कुछ ऐसा है जिसे आप नहीं जानते और नहीं समझते, यहाँ तक कि यह जाने बिना कि आप नहीं जानते और नहीं समझते। यह जानना कि आप नहीं जानते और नहीं समझते, सच्चा ज्ञान है, एक विनम्र हृदय का ज्ञान।
प्रश्न: जी हाँ, ईसा मसीह ने कहा था: धन्य हैं वे जो आत्मा में गरीब हैं... एम: आप इसे जैसे चाहें वैसे कहें; असलियत यह है कि ज्ञान केवल अज्ञान का ही होता है। आप जानते हैं कि आप नहीं जानते।
प्रश्न: क्या अज्ञानता कभी समाप्त होगी?
एम: न जानने में क्या बुराई है? सब कुछ जानना ज़रूरी नहीं है। जितना जानना ज़रूरी है, उतना जानना ही काफी है। बाकी सब अपने आप सुलझ जाएगा, आपको पता भी नहीं चलेगा कि कैसे। ज़रूरी यह है कि आपका अवचेतन मन चेतन मन के विरुद्ध काम न करे, सभी स्तरों पर सामंजस्य बना रहे। जानना इतना ज़रूरी नहीं है।

प्रश्न: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आपकी बात सही है। लेकिन जब दूसरों को जानने की बात आती है, दुनिया को जानने की बात आती है, तो यह जानना कि मैं नहीं जानता, ज्यादा मददगार नहीं होता।
एम: एक बार जब आप आंतरिक रूप से एकीकृत हो जाते हैं, तो बाहरी ज्ञान स्वतः ही आपके पास आ जाता है। जीवन के हर क्षण में आप जानते हैं कि आपको क्या जानना चाहिए। सार्वभौमिक मन के सागर में सारा ज्ञान समाहित है; यह आपकी मांग पर उपलब्ध है। हो सकता है कि आपको इसमें से अधिकांश जानने की कभी आवश्यकता ही न पड़े - लेकिन यह फिर भी आपका ही है।
ज्ञान की तरह ही शक्ति के साथ भी होता है।
जो भी आपको लगता है कि करना ज़रूरी है, वह निश्चित रूप से हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ईश्वर ही इस ब्रह्मांड के प्रबंधन का कार्य करता है; लेकिन उसे किसी की सहायता पाकर प्रसन्नता होती है। जब सहायक निस्वार्थ और बुद्धिमान होता है, तो ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ उसके नियंत्रण में होती हैं।
प्रश्न: क्या प्रकृति की अंध शक्तियां भी?
एम: कोई भी शक्ति अंधा नहीं होता। चेतना ही शक्ति है। जो करना आवश्यक है, उसके प्रति जागरूक रहें और वह हो जाएगा। बस सतर्क और शांत रहें। जब आप अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं और अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, तो आपका अस्तित्व सभी के लिए आशीर्वाद बन जाता है। आप शायद न जानते हों, न ही दुनिया जानेगी, फिर भी आपकी मदद का प्रकाश फैलता है। दुनिया में ऐसे लोग हैं जो सभी राजनेताओं और परोपकारियों से कहीं अधिक अच्छा काम करते हैं। वे बिना किसी इरादे या ज्ञान के प्रकाश और शांति का संचार करते हैं। जब दूसरे उन्हें उनके द्वारा किए गए चमत्कारों के बारे में बताते हैं, तो वे भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। फिर भी, किसी भी चीज़ को अपना न मानते हुए, वे न तो घमंडी होते हैं और न ही प्रसिद्धि की लालसा रखते हैं। वे अपने लिए कुछ भी नहीं चाहते, यहाँ तक कि दूसरों की मदद करने का आनंद भी नहीं, यह जानते हुए कि ईश्वर अच्छा है और वे शांति में हैं।

77. 'मैं' और 'मेरा' भ्रामक धारणाएँ हैं।

प्रश्नकर्ता: मुझे अपने परिवार और संपत्ति से बहुत लगाव है। मैं इस लगाव को कैसे दूर कर सकता हूँ?
महाराज: यह आसक्ति 'मैं' और 'मेरा' की भावना के साथ ही उत्पन्न होती है। इन शब्दों का सही अर्थ जान लीजिए, और आप सभी बंधनों से मुक्त हो जाएंगे। आपका मन समय में विलीन है। एक के बाद एक सभी घटनाएँ आपके साथ घटित होती हैं और उनकी स्मृति बनी रहती है। इसमें कोई बुराई नहीं है। समस्या तभी उत्पन्न होती है जब अतीत के सुख-दुखों की स्मृति - जो सभी सजीव जीवन के लिए आवश्यक हैं - एक सहज प्रतिक्रिया के रूप में बनी रहती है और व्यवहार पर हावी हो जाती है। यह सहज प्रतिक्रिया 'मैं' का रूप धारण कर लेती है और शरीर और मन का उपयोग अपने उद्देश्यों के लिए करती है, जो हमेशा सुख की खोज या पीड़ा से मुक्ति की ओर ही केंद्रित रहते हैं। जब आप 'मैं' को उसके वास्तविक स्वरूप में पहचान लेंगे, जो इच्छाओं और भयों का एक समूह है, और 'मेरा' की भावना को, जो पीड़ा से बचने और सुख प्राप्त करने के उद्देश्य से आवश्यक सभी चीजों और लोगों को समाहित करती है, तब आप देखेंगे कि 'मैं' और 'मेरा' झूठे विचार हैं, जिनका वास्तविकता में कोई आधार नहीं है। मन द्वारा निर्मित, वे अपने

निर्माता पर तब तक शासन करते हैं जब तक वे सत्य बने रहते हैं; प्रश्न किए जाने पर वे विलीन हो जाते हैं।
'मैं' और 'मेरा' का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता, इसलिए उन्हें एक सहारे की आवश्यकता होती है जो उन्हें शरीर में मिलता है। शरीर ही उनका संदर्भ बिंदु बन जाता है। जब आप 'मेरे' पति और 'मेरे' बच्चों की बात करते हैं, तो आपका तात्पर्य शरीर के पति और शरीर के बच्चों से होता है। शरीर होने के विचार को त्याग दें और इस प्रश्न का सामना करें: मैं कौन हूँ? तुरंत ही एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी जो वास्तविकता को वापस लाएगी, या यों कहें कि मन को वास्तविकता तक ले जाएगी। बस, आपको डरना नहीं है।
प्रश्न: मुझे किस बात से डरना चाहिए?
एम: वास्तविकता के लिए 'मैं' और 'मेरा' के विचार समाप्त होने चाहिए। यदि आप उन्हें समाप्त होने देंगे, तो वे समाप्त हो जाएँगे। तब आपकी सामान्य स्वाभाविक अवस्था पुनः प्रकट हो जाएगी, जिसमें आप न तो शरीर हैं, न मन, न 'मैं' हैं, न 'मेरा', बल्कि एक बिल्कुल अलग अवस्था में हैं। यह अस्तित्व की शुद्ध जागरूकता है, जिसमें न यह है, न वह है, न किसी विशेष या सामान्य रूप से किसी भी चीज़ से आत्म-पहचान है। चेतना के उस शुद्ध प्रकाश में कुछ भी नहीं है, शून्यता का विचार भी नहीं। वहाँ केवल प्रकाश है।
प्रश्न: कुछ लोग ऐसे हैं जिनसे मैं प्यार करता हूँ। क्या मुझे उन्हें छोड़ देना चाहिए?
एम: आपको बस उन पर अपनी पकड़ ढीली करनी है। बाकी सब उन पर निर्भर करता है। वे आपमें रुचि खो सकते हैं, या नहीं भी खो सकते हैं।
प्रश्न: वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? क्या वे मेरे अपने नहीं हैं?
एम: वे आपके शरीर के हैं, आपके अपने नहीं। या, बेहतर होगा कि कहें, ऐसा कोई नहीं है जो आपका अपना न हो।
प्रश्न: और मेरी संपत्ति का क्या होगा?
एम: जब 'खदान' नहीं रह जाती, तो आपकी संपत्ति कहाँ जाती है?
प्रश्न: कृपया मुझे बताएं, क्या 'मैं' को खोने से मुझे सब कुछ खोना पड़ेगा? एम: आप चाहें या न चाहें, इससे आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आपका नुकसान किसी और का फायदा होगा। आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।
प्रश्न: यदि मैं ध्यान न दूं, तो मैं सब कुछ खो दूंगा!
एम: जब आपके पास कुछ नहीं होता तो आपको कोई समस्या नहीं होती।
प्रश्न: मेरे सामने जीवित रहने की समस्या है।
एम: यह शरीर की समस्या है और यह खाने-पीने और सोने से अपने आप ठीक हो जाएगी।
सबके लिए पर्याप्त है, बशर्ते सब मिलकर उपयोग करें।
प्रश्न: हमारा समाज हड़पने पर आधारित है, साझा करने पर नहीं।
एम: साझा करने से इसमें बदलाव आएगा।
प्रश्न: मुझे साझा करने का मन नहीं है। वैसे भी, मेरे पास जो कुछ भी है, उस पर इतना टैक्स लग रहा है कि मुझे उसे बेचना पड़ रहा है।
एम: यह स्वैच्छिक साझेदारी के समान नहीं है। समाज में बदलाव ज़बरदस्ती से नहीं आएगा। इसके लिए हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है। यह समझें कि कुछ भी आपका अपना नहीं है, सब कुछ सबका है। तभी समाज में बदलाव आएगा।
प्रश्न: एक व्यक्ति की समझ से दुनिया को ज्यादा फायदा नहीं होगा।
एम: जिस दुनिया में आप रहते हैं, उस पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। यह एक स्वस्थ और खुशहाल दुनिया होगी, जो प्रकाशमान होगी, संवाद स्थापित करेगी, बढ़ेगी और फैलेगी। सच्चे हृदय की शक्ति असीम होती है।

प्रश्न: कृपया हमें और अधिक जानकारी दें।
एम: बोलना मेरा शौक नहीं है। कभी मैं बोलता हूँ, कभी नहीं। मेरा बोलना या न बोलना, परिस्थिति पर निर्भर करता है, मुझ पर नहीं। जब बोलने की ज़रूरत होती है, तो मैं खुद को बोलते हुए सुनता हूँ। किसी और परिस्थिति में शायद मैं खुद को बोलते हुए न सुनूँ। मेरे लिए सब एक समान है। चाहे मैं बोलूँ या न बोलूँ, मेरे अस्तित्व का प्रकाश और प्रेम अप्रभावित रहता है, न ही मेरे वश में। वे हैं, और मैं जानता हूँ कि वे हैं। एक सुखद जागरूकता है, लेकिन कोई प्रसन्न व्यक्ति नहीं है। बेशक, पहचान का बोध है, लेकिन यह स्मृति की पहचान है, जैसे हमेशा मौजूद स्क्रीन पर चित्रों की एक श्रृंखला की पहचान। प्रकाश और स्क्रीन के बिना कोई चित्र नहीं हो सकता। चित्र को स्क्रीन पर प्रकाश के खेल के रूप में जानना, इस विचार से मुक्ति दिलाता है कि चित्र वास्तविक है। आपको बस इतना समझना है कि आप स्वयं से प्रेम करते हैं और स्वयं आपसे प्रेम करता है, और 'मैं हूँ' का बोध आप दोनों के बीच की कड़ी है, स्पष्ट विविधता के बावजूद पहचान का प्रतीक है। 'मैं हूँ' को भीतर और बाहर, वास्तविकता और दिखावे के बीच प्रेम के प्रतीक के रूप में देखें। जैसे सपने में सब कुछ अलग होता है, सिवाय 'मैं' की भावना के, जो आपको यह कहने में सक्षम बनाती है कि 'मैंने सपना देखा', वैसे ही 'मैं हूँ' की भावना आपको यह कहने में सक्षम बनाती है कि 'मैं फिर से अपने वास्तविक स्वरूप में हूँ'। मैं कुछ नहीं करता, न ही मुझ पर कुछ किया जाता है। मैं जो हूँ वही हूँ और कोई भी चीज़ मुझे प्रभावित नहीं कर सकती। मैं हर चीज़ पर निर्भर प्रतीत होता हूँ, लेकिन वास्तव में सब कुछ मुझ पर निर्भर है।
प्रश्न: आप यह कैसे कह सकते हैं कि आप कुछ नहीं करते? क्या आप मुझसे बात नहीं कर रहे हैं?
एम: मुझे ऐसा महसूस नहीं हो रहा कि मैं बोल रहा हूँ। बस बातचीत चल रही है, और कुछ नहीं।
प्रश्न: मैं बोलता हूँ।
एम: क्या आप ऐसा करते हैं? आप खुद को बोलते हुए सुनते हैं और कहते हैं: मैं बोलता हूँ।
प्रश्न: हर कोई कहता है: 'मैं काम करता हूँ, मैं आता हूँ, मैं जाता हूँ'। एम: मुझे आपकी भाषा की परंपराओं से कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन वे वास्तविकता को विकृत और नष्ट कर देती हैं। इसे कहने का अधिक सटीक तरीका यह होता: 'बातचीत होती है, काम होता है, आना-जाना होता है।' किसी भी घटना के घटित होने के लिए संपूर्ण ब्रह्मांड का समकालिक होना आवश्यक है। यह मानना गलत है कि कोई विशेष चीज़ किसी घटना का कारण बन सकती है। हर कारण सार्वभौमिक है। आपका शरीर भी संपूर्ण ब्रह्मांड के योगदान के बिना अस्तित्व में नहीं आ सकता। मैं भली-भांति जानता हूँ कि घटनाएँ इसलिए घटित होती हैं क्योंकि संसार ऐसा ही है। घटनाओं के क्रम को प्रभावित करने के लिए मुझे संसार में एक नया कारक लाना होगा और वह कारक केवल मैं स्वयं हो सकता हूँ, मुझमें केंद्रित प्रेम और समझ की शक्ति।
जब शरीर का जन्म होता है, तो उस पर अनेकों घटनाएँ घटित होती हैं और आप उनमें भाग लेते हैं, क्योंकि आप स्वयं को शरीर ही समझते हैं। आप सिनेमाघर में बैठे उस व्यक्ति के समान हैं, जो फिल्म देखकर हँसता और रोता है, जबकि वह भली-भांति जानता है कि वह हर समय अपनी सीट पर बैठा है और फिल्म तो केवल प्रकाश का खेल है। ध्यान को स्क्रीन से हटाकर स्वयं पर केंद्रित करने से यह भ्रम टूट जाता है। जब शरीर का अंत होता है, तो आपका वर्तमान जीवन -

शारीरिक और मानसिक घटनाओं का क्रम - समाप्त हो जाता है। यह अभी भी समाप्त हो सकता है - शरीर की मृत्यु की प्रतीक्षा किए बिना - बस ध्यान को अपने भीतर केंद्रित करके वहीं बनाए रखना पर्याप्त है। सब कुछ ऐसा घटित होता है मानो कोई रहस्यमयी शक्ति हो जो सब कुछ सृजित और संचालित करती हो। यह जान लें कि आप संचालक नहीं, केवल प्रेक्षक हैं, और आपको शांति प्राप्त हो जाएगी। प्रश्न: क्या वह शक्ति मुझसे अलग है?
एम: बिलकुल नहीं। लेकिन आपको पहले तटस्थ दर्शक बनना होगा। तभी आप सार्वभौमिक प्रेमी और कर्ता के रूप में अपने पूर्ण अस्तित्व को जान पाएंगे। जब तक आप किसी विशेष व्यक्तित्व की उलझनों में फंसे रहेंगे, तब तक आप उससे परे कुछ नहीं देख पाएंगे। लेकिन अंततः आप यह जान जाएंगे कि आप न तो विशिष्ट हैं और न ही सार्वभौमिक, आप दोनों से परे हैं। जैसे पेंसिल की छोटी सी नोक अनगिनत चित्र बना सकती है, वैसे ही चेतना का आयामहीन बिंदु विशाल ब्रह्मांड की सामग्री को चित्रित करता है। उस बिंदु को खोजें और मुक्त हो जाएं।
प्रश्न: मैं इस दुनिया की रचना किससे करता हूँ?
एम: अपनी ही यादों से। जब तक आप स्वयं को सृष्टिकर्ता के रूप में नहीं पहचानते, आपका संसार सीमित और दोहराव वाला रहेगा। एक बार जब आप अपने अतीत से आत्म-पहचान से परे चले जाते हैं, तो आप सामंजस्य और सौंदर्य से परिपूर्ण एक नया संसार रचने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं। या फिर आप अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे, बस बने रहते हैं।
प्रश्न: अगर मैं अपनी यादों को जाने दूं तो मेरे पास क्या बचेगा?
एम: कुछ भी नहीं बचेगा।
प्रश्न: मुझे डर है।
एम: जब तक आप स्वतंत्रता और उसके आशीर्वाद का अनुभव नहीं कर लेते, तब तक आपको डर लगेगा। बेशक, शरीर को पहचानने और निर्देशित करने के लिए कुछ स्मृतियों की आवश्यकता होती है और ऐसी स्मृतियाँ बनी रहती हैं, लेकिन शरीर से कोई लगाव नहीं रह जाता; यह अब इच्छा या भय का आधार नहीं रहता। यह सब समझना और अभ्यास करना बहुत कठिन नहीं है, लेकिन आपको इसमें रुचि होनी चाहिए। रुचि के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।
यह देखकर कि आप आसक्ति से बंधे स्मृतियों के एक समूह हैं, बाहर निकलकर बाहर से देखें। आप शायद पहली बार कुछ ऐसा अनुभव करेंगे जो स्मृति नहीं है। आप अपने ही कामों में व्यस्त रहने वाले व्यक्ति नहीं रह जाते। अंततः आपको शांति प्राप्त होती है। आप यह महसूस करते हैं कि संसार में कभी कुछ गलत नहीं था - गलती केवल आपकी थी और अब सब कुछ समाप्त हो गया है। आप फिर कभी अज्ञान से उत्पन्न इच्छाओं के जाल में नहीं फँसेंगे।

78. समस्त ज्ञान अज्ञान है

प्रश्नकर्ता: क्या हमें आपसे यह अनुरोध करने की अनुमति है कि आप हमें अपनी इस उपलब्धि का तरीका बताएं?
महाराज: मेरे मामले में यह बहुत सरल और सहज था। मेरे गुरु ने अपनी मृत्यु से पहले मुझसे कहा: विश्वास करो, तुम ही परम सत्य हो। मेरी बातों पर संदेह मत करो, मेरा अविश्वास मत करो। मैं तुम्हें सत्य बता रहा हूँ - इस पर अमल करो। मैं उनकी बातें नहीं भूल सका और न भूलने के कारण ही मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ।

प्रश्न: लेकिन आप वास्तव में क्या कर रहे थे?
एम: कुछ खास नहीं। मैंने अपना जीवन जिया, अपना काम किया, अपने परिवार की देखभाल की, और हर खाली पल मैं अपने गुरु और उनके वचनों को याद करने में बिताता था। उनका जल्द ही देहांत हो गया और मेरे पास सहारा लेने के लिए केवल उनकी यादें ही बची थीं। यही काफी था।
प्रश्न: यह आपके गुरु की कृपा और शक्ति ही रही होगी।
एम: उनके शब्द सत्य थे, इसलिए वे सत्य हो गए। सत्य शब्द हमेशा सत्य होते हैं। मेरे गुरु ने कुछ नहीं किया; उनके शब्द सत्य थे, इसलिए उन्होंने अपना प्रभाव दिखाया। मैंने जो कुछ भी किया, वह मेरे भीतर से आया, बिना मांगे और अप्रत्याशित रूप से।
प्रश्न: क्या गुरु ने स्वयं भाग लिए बिना ही एक प्रक्रिया शुरू कर दी?
एम: आप इसे जैसे चाहें वैसे समझ लें। चीजें अपने आप घटित होती हैं - कौन बता सकता है क्यों और कैसे? मैंने जानबूझकर कुछ नहीं किया। सब कुछ अपने आप हुआ
- खुद को मुक्त करने की इच्छा, अकेले रहने की इच्छा, अंतर्मन की इच्छा। प्रश्न: आपने बिल्कुल भी प्रयास नहीं किया?
एम: कुछ नहीं। मानो या न मानो, मुझे यह जानने की कोई उत्सुकता भी नहीं थी। उन्होंने बस इतना कहा कि मैं परमपिता हूँ और फिर उनका निधन हो गया। मैं उन पर अविश्वास कर ही नहीं सका। बाकी सब अपने आप हो गया। मैंने अपने आप में बदलाव महसूस किया - बस इतना ही। वास्तव में, मैं चकित था। लेकिन उनके शब्दों को परखने की इच्छा मेरे मन में जाग उठी। मुझे इतना यकीन था कि वे झूठ बोल ही नहीं सकते, कि मुझे लगा कि या तो मैं उनके शब्दों का पूरा अर्थ समझ लूँगा या मर जाऊँगा। मैं दृढ़ निश्चयी था, पर समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ। मैं घंटों उनके और उनके आश्वासन के बारे में सोचता रहता, बहस नहीं करता, बस उनकी कही बातों को याद करता रहता।
प्रश्न: फिर आपके साथ क्या हुआ? आपको कैसे पता चला कि आप ही सर्वोच्च हैं? एम: मुझे किसी ने आकर नहीं बताया। न ही मुझे अंतर्मन से ऐसा महसूस हुआ। वास्तव में, शुरुआत में जब मैं प्रयास कर रहा था, तभी मुझे कुछ विचित्र अनुभव होने लगे; प्रकाश दिखाई देने लगे, आवाजें सुनाई देने लगीं, देवी- देवताओं से मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर मिला। एक बार गुरु ने मुझसे कहा: 'तुम ही परम सत्य हो', तब मुझे दर्शन और समाधि की अवस्थाएँ आना बंद हो गईं और मैं अत्यंत शांत और सरल हो गया। मैंने पाया कि मेरी इच्छाएँ और ज्ञान धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं, यहाँ तक कि मैं अत्यंत आश्चर्य से कह सका: 'मैं कुछ नहीं जानता, मुझे कुछ नहीं चाहिए।'
प्रश्न: क्या आप वास्तव में इच्छा और ज्ञान से मुक्त थे, या आपने अपने गुरु द्वारा दी गई छवि के अनुसार एक ज्ञानी होने का ढोंग किया?
एम: मुझे कोई छवि नहीं दी गई थी, न ही मेरे पास कोई छवि थी। मेरे गुरु ने मुझे कभी नहीं बताया कि मुझे क्या उम्मीद करनी चाहिए।
प्रश्न: आपके साथ और भी कई चीज़ें घटित हो सकती हैं। क्या आप अपनी यात्रा के अंत पर हैं?
एम: कोई यात्रा थी ही नहीं। मैं वही हूँ जो हमेशा से था।
प्रश्न: आपको किस परम सत्य तक पहुंचना था?
एम: मुझे धोखा नहीं दिया गया, बस इतना ही। मैं एक दुनिया बनाता था और उसमें जीव-जंतु बसाता था - अब मैं ऐसा नहीं करता।
प्रश्न: तो आप कहाँ रहते हैं?

एम: अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे, चेतना से परे, उस शून्य में। यह शून्य ही पूर्णता है; मुझ पर दया मत करो। यह उस व्यक्ति के समान है जो कहता है: 'मैंने अपना काम कर लिया है, अब कुछ करने को नहीं बचा है।'
प्रश्न: आप अपनी अनुभूति की एक निश्चित तिथि बता रहे हैं। इसका मतलब है कि उस तिथि को आपके साथ कुछ घटित हुआ था। क्या घटित हुआ था?
एम: मन ने घटनाओं का सृजन करना बंद कर दिया। प्राचीन और निरंतर खोज रुक गई - मुझे कुछ नहीं चाहिए था, कुछ भी उम्मीद नहीं थी - मैंने किसी भी चीज़ को अपना नहीं माना। प्रयास करने के लिए कोई 'मैं' नहीं बचा था। यहाँ तक कि मात्र 'मैं हूँ' भी लुप्त हो गया। एक और बात जो मैंने देखी, वह यह थी कि मैंने अपनी सभी अभ्यस्त निश्चितताओं को खो दिया। पहले मैं बहुत सी चीजों के बारे में आश्वस्त था, अब मैं किसी भी चीज के बारे में आश्वस्त नहीं हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि न जानने से मैंने कुछ भी नहीं खोया है, क्योंकि मेरा सारा ज्ञान झूठा था। मेरा न जानना ही इस तथ्य का ज्ञान था कि सारा ज्ञान अज्ञान है, कि 'मैं नहीं जानता' ही एकमात्र सत्य कथन है जो मन कह सकता है। 'मेरा जन्म हुआ' के विचार को लें। आप इसे सत्य मान सकते हैं। यह सत्य नहीं है। आपका कभी जन्म नहीं हुआ, न ही आप कभी मरेंगे। यह विचार है जिसका जन्म हुआ है और जो मरेगा, आप नहीं। इसके साथ स्वयं को जोड़कर आप नश्वर हो गए। जैसे सिनेमा में सब कुछ प्रकाशमय होता है, वैसे ही चेतना विशाल संसार बन जाती है। ध्यान से देखें, और आप पाएंगे कि सभी नाम और रूप चेतना के सागर पर क्षणभंगुर लहरों के समान हैं, और केवल चेतना को ही चेतना कहा जा सकता है, न कि उसके रूपांतरणों को।
चेतना की विशालता में एक प्रकाश प्रकट होता है, एक छोटा सा बिंदु जो तेजी से गति करता है और आकृतियों, विचारों और भावनाओं, अवधारणाओं और विचारों को उकेरता है, जैसे कलम कागज पर लिखती है। और जो स्याही निशान छोड़ती है, वह स्मृति है। आप वह छोटा सा बिंदु हैं और आपकी गति से संसार का निरंतर पुनर्निर्माण होता रहता है। गतिहीन हो जाओ, तो संसार का अस्तित्व नहीं रहेगा। भीतर देखो और तुम पाओगे कि प्रकाश का वह बिंदु शरीर में व्याप्त प्रकाश की विशालता का प्रतिबिंब है, जैसे 'मैं हूं' की भावना। केवल प्रकाश है, बाकी सब कुछ आभास मात्र है।
प्रश्न: क्या आप उस रोशनी को जानते हैं? क्या आपने उसे देखा है?
एम: मन को यह अंधकार के समान प्रतीत होता है। इसे केवल इसके प्रतिबिंबों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। दिन के उजाले में सब कुछ दिखाई देता है - सिवाय दिन के उजाले के।
प्रश्न: क्या मुझे यह समझना होगा कि हमारे दिमाग एक जैसे हैं?
एम: यह कैसे हो सकता है? तुम्हारा अपना निजी मन है, जो यादों से बुना हुआ है, इच्छाओं और भय से बंधा हुआ है। मेरा अपना कोई मन नहीं है; मुझे जो कुछ जानने की आवश्यकता होती है, वह ब्रह्मांड मेरे सामने लाता है, जैसे वह मुझे भोजन प्रदान करता है।
प्रश्न: क्या आप वह सब जानते हैं जो आप जानना चाहते हैं?
एम: मुझे कुछ भी जानने की इच्छा नहीं है। लेकिन जो कुछ मुझे जानना आवश्यक है, वह मैं जान लेता हूँ।
प्रश्न: क्या यह ज्ञान आपको भीतर से प्राप्त होता है या बाहर से?
एम: यह बात लागू नहीं होती। मेरा अंतर्मन बाहर है और मेरा बाह्यमन भीतर है। मुझे आपसे इस समय आवश्यक ज्ञान मिल सकता है, लेकिन आप मुझसे अलग नहीं हैं।
प्रश्न: तुरिया क्या है, यह चौथा राज्य जिसके बारे में हम सुनते हैं?

एम: संसार को दिशा देने वाले प्रकाश के बिंदु के रूप में होना ही तुरिया है। स्वयं प्रकाश के रूप में होना ही तुरियातीत है। लेकिन जब वास्तविकता इतनी निकट हो तो नामों का क्या उपयोग?
प्रश्न: क्या आपकी स्थिति में कोई सुधार हुआ है? जब आप अपने कल के स्वयं की तुलना आज के स्वयं से करते हैं, तो क्या आपको अपने आप में कोई परिवर्तन या प्रगति दिखाई देती है? क्या वास्तविकता के प्रति आपकी दृष्टि व्यापक और गहन हुई है?
एम: वास्तविकता अचल है, फिर भी निरंतर गतिमान है। यह एक विशाल नदी के समान है - बहती है, फिर भी विद्यमान रहती है - शाश्वत रूप से। जो बहता है वह नदी अपने तल और किनारों के साथ नहीं, बल्कि उसका जल है, ठीक उसी प्रकार सत्व गुण, सार्वभौमिक सामंजस्य, अंधकार और निराशा की शक्तियों, तमस और रजस के विरुद्ध अपना खेल खेलता है। सत्व में सदा परिवर्तन और प्रगति होती है, रजस में परिवर्तन और पतन होता है, जबकि तमस अराजकता का प्रतीक है। तीनों गुण शाश्वत रूप से एक दूसरे के विरुद्ध खेलते रहते हैं - यह एक सत्य है और सत्य से कोई विवाद नहीं हो सकता।
प्रश्न: क्या मुझे हमेशा तमस से सुस्त और रजस से बेचैन रहना चाहिए? सत्व के बारे में क्या?
एम: सत्व आपके वास्तविक स्वरूप का प्रकाश है। आप इसे मन और उसके अनेक लोकों से परे, हमेशा पा सकते हैं। लेकिन यदि आप एक संसार चाहते हैं, तो आपको तीनों गुणों को अविभाज्य मानना होगा - पदार्थ - ऊर्जा - जीवन - सार में एक, रूप में भिन्न। वे चेतना में आपस में मिल जाते हैं और प्रवाहित होते हैं। समय और स्थान में शाश्वत प्रवाह है, जन्म और मृत्यु का चक्र है, उन्नति, वापसी, फिर उन्नति, फिर वापसी - स्पष्ट रूप से बिना आरंभ और बिना अंत के; वास्तविकता कालातीत, अपरिवर्तनीय, देहहीन, मनहीन चेतना है, यही आनंद है। प्रश्न: मैं समझता हूँ कि आपके अनुसार, सब कुछ चेतना की अवस्था है। दुनिया वस्तुओं से भरी है - रेत का एक कण भी वस्तु है, ग्रह भी वस्तु है। इनका चेतना से क्या संबंध है?
एम: जहाँ चेतना नहीं पहुँचती, वहाँ पदार्थ का जन्म होता है। वस्तु एक ऐसा स्वरूप है जिसे हम समझ नहीं पाए हैं। यह बदलती नहीं, यह सदा एक समान रहती है, यह अपने आप ही विद्यमान प्रतीत होती है—कुछ विचित्र और पराया। बेशक यह चित्त, चेतना में विद्यमान है, परन्तु अपनी स्पष्ट अपरिवर्तनीयता के कारण बाह्य प्रतीत होती है। वस्तुओं का आधार स्मृति में है—स्मृति के बिना कोई पहचान नहीं होगी। सृजन—चिंतन—अस्वीकृति: ब्रह्मा—विष्णु— शिव: यही शाश्वत प्रक्रिया है। समस्त वस्तुएँ इसी द्वारा संचालित होती हैं।
प्रश्न: क्या इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है?
एम: मैं और कुछ नहीं कर रहा हूँ, बस मुक्ति का मार्ग दिखा रहा हूँ। समझ लो कि एक में तीनों समाहित हैं और तुम ही वह एक हो, और तुम संसारिक प्रक्रिया से मुक्त हो जाओगे।
प्रश्न: तब मेरी चेतना का क्या होता है?
एम: सृजन के चरण के बाद, परीक्षण और चिंतन का चरण आता है और अंत में, त्याग और विस्मरण का चरण आता है। चेतना बनी रहती है, लेकिन सुप्त, शांत अवस्था में।
प्रश्न: क्या पहचान की स्थिति बनी रहती है?

एम: पहचान की अवस्था वास्तविकता में अंतर्निहित है और कभी क्षीण नहीं होती। परन्तु पहचान न तो क्षणभंगुर व्यक्तित्व (व्यक्ति) है, न ही कर्मबद्ध वैयक्तिकता (व्यक्त)। यह वह है जो तब शेष रहता है जब सभी आत्म-पहचान को झूठा मानकर त्याग दिया जाता है - शुद्ध चेतना, वह बोध जो सर्वस्व है, या जो हो सकता है। चेतना आरंभ में भी शुद्ध है और अंत में भी शुद्ध; इसके बीच में यह कल्पना से दूषित हो जाती है, जो सृष्टि का मूल है। चेतना सदा एक समान रहती है। इसे यथावत जानना ही बोध और शाश्वत शांति है। प्रश्न: क्या 'मैं हूं' की भावना वास्तविक है या अवास्तविक?
एम: दोनों। 'मैं यह हूँ, मैं वह हूँ' कहना अवास्तविक है। 'मैं न तो यह हूँ, न ही वह हूँ' कहना वास्तविक है।
जानने वाला ज्ञात के साथ आता-जाता है और क्षणभंगुर होता है; लेकिन जो यह जानता है कि वह नहीं जानता, जो स्मृति और प्रत्याशा से मुक्त है, वह कालातीत है।
प्रश्न: क्या 'मैं हूँ' स्वयं ही साक्षी है, या वे अलग-अलग हैं?
एम: एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता। फिर भी वे एक नहीं हैं। यह फूल और उसके रंग की तरह है। फूल के बिना कोई रंग नहीं; रंग के बिना फूल अदृश्य रहता है। इसके परे प्रकाश है जो फूल के संपर्क में आने पर रंग उत्पन्न करता है। यह जान लो कि तुम्हारा सच्चा स्वरूप केवल शुद्ध प्रकाश है, और अनुभव करने वाला और अनुभव किया जाने वाला दोनों साथ-साथ आते-जाते हैं। जो इन दोनों को संभव बनाता है, और फिर भी न तो यह है और न ही वह, वही तुम्हारा वास्तविक अस्तित्व है, जिसका अर्थ है 'यह' या 'वह' न होना, बल्कि अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की शुद्ध जागरूकता होना। जब जागरूकता स्वयं पर केंद्रित होती है, तो अज्ञान का बोध होता है। जब यह बाहर की ओर केंद्रित होती है, तो जानने योग्य चीजें अस्तित्व में आती हैं। यह कहना कि 'मैं स्वयं को जानता हूँ' विरोधाभास है, क्योंकि जो 'ज्ञात' है वह 'मैं' नहीं हो सकता।
प्रश्न: यदि आत्मा सदा अज्ञात है, तो आत्मसाक्षात्कार में क्या अनुभव होता है?
एम: यह जानना कि ज्ञात न तो मैं हूँ और न ही मेरा, यही पर्याप्त मुक्ति है। स्मृतियों और आदतों के समूह से आत्म-पहचान से मुक्ति, अस्तित्व की अनंत ऊंचाइयों, उसकी अक्षय रचनात्मकता और पूर्ण पारगमन के प्रति विस्मय की अवस्था, चेतना के प्रत्येक रूप की मायावीता और क्षणभंगुरता की अनुभूति से उत्पन्न परम निर्भयता - ये सब एक गहरे और अक्षय स्रोत से उत्पन्न होते हैं। स्रोत को स्रोत के रूप में, रूप को रूप के रूप में, और स्वयं को केवल स्रोत के रूप में जानना ही आत्म-साक्षात्कार है।
प्रश्न: गवाह किस पक्ष का है? क्या वह वास्तविक है या अवास्तविक?
एम: कोई यह नहीं कह सकता: 'मैं साक्षी हूँ'। 'मैं हूँ' हमेशा साक्षी होता है। अनासक्त जागरूकता की अवस्था ही साक्षी-चेतना है, 'दर्पण-मन' है। यह अपने विषय के साथ उदय और अस्त होती है, इसलिए यह पूर्णतः वास्तविक नहीं है। इसका विषय चाहे जो भी हो, यह एक समान ही रहती है, अतः यह वास्तविक भी है। यह वास्तविक और अवास्तविक दोनों का अंश है, और इसलिए इन दोनों के बीच सेतु का काम करती है।
प्रश्न: यदि सब कुछ केवल 'मैं हूँ' के साथ ही घटित होता है, यदि 'मैं हूँ' ज्ञात है, ज्ञाता है और स्वयं ज्ञान है, तो साक्षी क्या करता है? उसका क्या उपयोग है?
एम: इससे कुछ नहीं होता और यह बिल्कुल भी उपयोगी नहीं है।

प्रश्न: तो फिर हम इसके बारे में बात क्यों करते हैं?
एम: क्योंकि यह वहाँ है। पुल का एक ही उद्देश्य है - पार करना। पुल पर घर नहीं बनाए जाते। 'मैं' चीजों को देखता है, साक्षी उनके आर-पार देखता है। वह उन्हें वैसे ही देखता है जैसे वे हैं - अवास्तविक और क्षणभंगुर। 'मैं नहीं, मेरा नहीं' कहना साक्षी का काम है।
प्रश्न: क्या यह प्रकट (सगुण) है जिसके द्वारा अप्रकट (निर्गुण) का प्रतिनिधित्व किया जाता है?
एम: जो प्रकट नहीं है, उसका प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता। कोई भी प्रकट वस्तु अप्रकट का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती।
प्रश्न: तो फिर आप इसके बारे में बात क्यों करते हैं?
एम: क्योंकि यह मेरी जन्मभूमि है।

79. व्यक्ति, साक्षी और सर्वोच्च सत्ता

प्रश्नकर्ता: हमारा नशा करने का लंबा इतिहास रहा है, अधिकतर चेतना को विस्तार देने वाले नशे। इनसे हमें चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव हुआ, ऊँच-नीच दोनों, और यह विश्वास भी हुआ कि नशा भरोसेमंद नहीं है, ज़्यादा से ज़्यादा क्षणिक है और कम से कम शरीर और व्यक्तित्व के लिए विनाशकारी है। हम चेतना और पारलौकिकता के विकास के बेहतर साधनों की तलाश में हैं। हम चाहते हैं कि हमारी खोज के फल हमारे साथ रहें और हमारे जीवन को समृद्ध करें, न कि धुंधली यादों और निराशाजनक पछतावे में बदल जाएँ। यदि आध्यात्मिक से हमारा तात्पर्य आत्म-अन्वेषण और विकास है, तो भारत आने का हमारा उद्देश्य निश्चित रूप से आध्यात्मिक है। खुशहाल हिप्पी युग बीत चुका है; अब हम गंभीर हैं और आगे बढ़ रहे हैं। हम जानते हैं कि वास्तविकता मौजूद है, लेकिन हम नहीं जानते कि उसे कैसे खोजें और थामे रखें। हमें समझाने की ज़रूरत नहीं, केवल मार्गदर्शन चाहिए। क्या आप हमारी मदद कर सकते हैं?
महाराज: आपको सहायता की आवश्यकता नहीं है, केवल सलाह की आवश्यकता है। आप जो खोज रहे हैं वह पहले से ही आपके भीतर है। मेरा ही उदाहरण लीजिए। मैंने आत्मज्ञान के लिए कुछ नहीं किया। मेरे गुरु ने मुझे बताया कि वास्तविकता मेरे भीतर है; मैंने भीतर देखा और उसे वहीं पाया, ठीक वैसे ही जैसे मेरे गुरु ने बताया था। वास्तविकता को देखना उतना ही सरल है जितना दर्पण में अपना चेहरा देखना। केवल दर्पण का स्पष्ट और सत्य होना आवश्यक है। इच्छाओं और भय से मुक्त, विचारों और मतों से रहित, सभी स्तरों पर स्पष्ट मन ही वास्तविकता को प्रतिबिंबित कर सकता है। स्पष्ट और शांत रहिए - सजग और अनासक्त रहिए, बाकी सब अपने आप हो जाएगा।
प्रश्न: सत्य को जानने से पहले आपको अपना मन शांत और स्थिर करना पड़ा। आपने यह कैसे किया?
एम: मैंने कुछ नहीं किया। यह बस हो गया। मैं अपना जीवन जी रही थी, अपने परिवार की जरूरतों का ख्याल रख रही थी। मेरे गुरु ने भी ऐसा नहीं किया। यह बस हो गया, जैसा उन्होंने कहा था।
प्रश्न: चीजें यूं ही नहीं हो जातीं। हर चीज का कोई न कोई कारण जरूर होता है।
एम: जो कुछ भी घटित होता है, वह सब कुछ घटित होने का कारण है। कारण असंख्य हैं; एकमात्र कारण का विचार एक भ्रम है।

प्रश्न: आप कुछ विशेष अभ्यास कर रहे होंगे - जैसे ध्यान या योग। आप यह कैसे कह सकते हैं कि आत्मज्ञान अपने आप प्राप्त हो जाएगा?
एम: कुछ खास नहीं। मैंने बस अपनी जिंदगी जी।
प्रश्न: मैं तो चकित हूँ!
एम: मैं भी ऐसा ही सोचता था। लेकिन आश्चर्य की क्या बात थी? मेरे गुरु के वचन सच हो गए। तो क्या हुआ? वे मुझे मुझसे भी बेहतर जानते थे, बस इतना ही। कारण क्यों खोजें? शुरुआत में मैं 'मैं हूं' की भावना पर थोड़ा ध्यान और समय दे रहा था, लेकिन बस शुरुआत में ही। मेरे गुरु के देहांत के तुरंत बाद, मैं जीता रहा। उनके वचन सत्य सिद्ध हुए। बस इतना ही। यह सब एक ही प्रक्रिया है। आप चीजों को समय के अनुसार अलग-अलग करके उनके कारण खोजने लगते हैं। प्रश्न: आप अभी क्या काम कर रहे हैं?
एम: आप होने और करने को एक समान समझते हैं। ऐसा नहीं है। मन और शरीर गति करते हैं, बदलते हैं और दूसरे मनों और शरीरों को भी गति और परिवर्तन के लिए प्रेरित करते हैं, और इसी को क्रिया कहते हैं। मैं देखता हूँ कि क्रिया का स्वभाव ही आगे क्रिया उत्पन्न करना है, जैसे आग जलती रहती है। मैं न तो स्वयं कोई क्रिया करता हूँ और न ही दूसरों को क्रिया करने के लिए प्रेरित करता हूँ; मैं समय से परे, जो कुछ भी घटित हो रहा है, उससे अवगत हूँ। प्रश्न: क्या यह आपके विचार में है, या दूसरों के विचार में भी?
एम: केवल एक ही मन है, जो विचारों से भरा रहता है; 'मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, यह मेरा है, वह मेरा है'। मैं मन नहीं हूँ, न कभी था, न कभी होऊँगा।
प्रश्न: मन की उत्पत्ति कैसे हुई?
एम: दुनिया पदार्थ, ऊर्जा और बुद्धि से बनी है। ये अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। इच्छा और कल्पना दुनिया का निर्माण करते हैं और बुद्धि इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करती है जिससे सद्भाव और शांति का भाव उत्पन्न होता है। मेरे लिए यह सब घटित होता है; मैं जागरूक हूँ, फिर भी अप्रभावित। प्रश्न: आप जागरूक होते हुए भी अप्रभावित नहीं रह सकते। यह विरोधाभास है। अनुभूति परिवर्तनशील होती है। एक बार किसी अनुभूति का अनुभव हो जाने पर, स्मृति आपको पूर्व अवस्था में लौटने नहीं देती।
एम: जी हां, जो कुछ स्मृति में दर्ज हो जाता है उसे आसानी से मिटाया नहीं जा सकता। लेकिन ऐसा किया जा सकता है और वास्तव में मैं ऐसा लगातार करता रहता हूं। जैसे कोई पक्षी अपने पंख फैलाकर उड़ता है, वैसे ही मैं अपने पीछे कोई निशान नहीं छोड़ता।
प्रश्न: क्या इसमें गवाह का नाम और प्रारूप शामिल है, या यह इनसे परे है? एम: साक्षी मात्र चेतना का एक बिंदु है। इसका कोई नाम या रूप नहीं है। यह ओस की बूंद में सूर्य के प्रतिबिंब के समान है। ओस की बूंद का नाम और रूप होता है, लेकिन प्रकाश का वह छोटा सा बिंदु सूर्य के कारण बनता है। बूंद की स्पष्टता और चिकनाई एक आवश्यक शर्त है, लेकिन अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इसी प्रकार, मन की स्पष्टता और शांति वास्तविकता के प्रतिबिंब के मन में प्रकट होने के लिए आवश्यक हैं, लेकिन अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। इसके परे भी वास्तविकता का अस्तित्व होना चाहिए। क्योंकि वास्तविकता कालविहीन रूप से विद्यमान है, इसलिए आवश्यक शर्तों पर जोर दिया जा रहा है। प्रश्न: क्या ऐसा हो सकता है कि मन बिल्कुल शांत हो, फिर भी कोई विचार न आए? एम: नियति पर विचार करना आवश्यक है। अवचेतन मन नियति के वश में है, वास्तव में वही नियति है। शायद प्रतीक्षा करनी पड़े। लेकिन नियति का बोझ कितना भी भारी क्यों न हो, धैर्य और आत्म-संयम से उसे उठाया जा सकता है। ईमानदारी और

पवित्रता बाधाओं को दूर करती हैं और वास्तविकता का दर्शन मन में प्रकट होता है।
प्रश्न: आत्म-नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जाए? मैं तो बहुत ही कमजोर दिमाग का हूँ!
एम: सबसे पहले यह समझ लो कि तुम वह व्यक्ति नहीं हो जो तुम खुद को समझते हो। तुम जो खुद को समझते हो, वह महज़ एक कल्पना या भ्रम है। तुम्हारे कोई माता- पिता नहीं हैं, तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है और न ही तुम्हारी मृत्यु होगी। या तो मेरी बात पर विश्वास करो, या अध्ययन और खोज के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचो। पूर्ण आस्था का मार्ग त्वरित है, दूसरा धीमा लेकिन स्थिर है। दोनों को कर्म में परखा जाना चाहिए। जो तुम्हें सत्य लगता है, उस पर अमल करो - यही सत्य का मार्ग है।
प्रश्न: क्या सत्य को जानने की योग्यता और नियति एक ही हैं?
एम: जी हाँ, दोनों ही अवचेतन में हैं। चेतन पुण्य मात्र अहंकार है। चेतना में हमेशा बाधाएँ होती हैं; जब कोई बाधा नहीं होती, तो व्यक्ति उससे आगे निकल जाता है।
प्रश्न: क्या यह समझ कि मैं शरीर नहीं हूँ, मुझे आत्म-संयम के लिए आवश्यक चरित्र की शक्ति प्रदान करेगी?
एम: जब आपको यह पता चल जाता है कि आप न तो शरीर हैं और न ही मन, तो आप इनसे प्रभावित नहीं होंगे। आप सत्य का अनुसरण करेंगे, चाहे वह आपको कहीं भी ले जाए, और जो भी करना आवश्यक हो, वह करेंगे, चाहे उसकी कितनी भी कीमत चुकानी पड़े।
प्रश्न: क्या आत्म-साक्षात्कार के लिए कर्म आवश्यक है?
एम: ज्ञान प्राप्ति के लिए समझ आवश्यक है। कर्म तो केवल संयोगवश है। स्थिर समझ वाला व्यक्ति कर्म से विमुख नहीं होता। कर्म ही सत्य की कसौटी है। प्रश्न: क्या परीक्षणों की आवश्यकता है?
एम: अगर आप लगातार खुद को परखते नहीं रहेंगे, तो आप वास्तविकता और कल्पना के बीच अंतर नहीं कर पाएंगे। अवलोकन और गहन तर्क कुछ हद तक मदद करते हैं, लेकिन वास्तविकता विरोधाभासी होती है। आपको कैसे पता चलेगा कि आपने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जब तक आप अपने विचारों और भावनाओं, शब्दों और कार्यों पर ध्यान नहीं देते और अपने भीतर होने वाले उन परिवर्तनों पर आश्चर्य नहीं करते जो आपको पता ही नहीं चलता कि क्यों और कैसे हो रहे हैं? ये परिवर्तन इतने आश्चर्यजनक होते हैं कि आप जान जाते हैं कि ये वास्तविक हैं। जो पहले से अनुमान लगाया जाता है और जिसकी उम्मीद की जाती है, वह शायद ही कभी सच होता है।
प्रश्न: व्यक्ति का अस्तित्व कैसे होता है?
एम: ठीक वैसे ही जैसे शरीर द्वारा प्रकाश को अवरुद्ध करने पर परछाई बनती है, वैसे ही व्यक्ति का उदय तब होता है जब 'मैं ही शरीर हूँ' की भावना से शुद्ध आत्म-जागरूकता बाधित हो जाती है। और जैसे परछाई ज़मीन की बनावट के अनुसार अपना आकार और स्थान बदलती है, वैसे ही व्यक्ति नियति के अनुसार आनंदित और दुखी, विश्राम और परिश्रम, प्राप्ति और हानि का अनुभव करता है। जब शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो व्यक्ति पूरी तरह से विलीन हो जाता है, फिर कभी वापस नहीं आता, केवल साक्षी और महान अज्ञात ही शेष रह जाते हैं।
साक्षी वह है जो कहता है 'मैं जानता हूँ'। व्यक्ति कहता है 'मैं करता हूँ'।
अब, 'मैं जानता हूँ' कहना असत्य नहीं है - यह केवल सीमित है। लेकिन 'मैं करता

हूँ' कहना पूरी तरह से असत्य है, क्योंकि कोई भी करने वाला नहीं है; सब कुछ अपने आप होता है, जिसमें कर्ता होने का विचार भी शामिल है।
प्रश्न: तो फिर क्रिया क्या है?
एम: ब्रह्मांड क्रिया से परिपूर्ण है, परन्तु कोई कर्ता नहीं है। असंख्य छोटे-बड़े और अत्यंत बड़े व्यक्ति हैं, जो स्वयं को तुल्य मानकर क्रियाशील समझते हैं, परन्तु इससे यह तथ्य नहीं बदलता कि कर्म का संसार (महादकाश) एक संपूर्ण इकाई है जिसमें सब कुछ एक दूसरे पर निर्भर है और एक दूसरे को प्रभावित करता है। तारे हमें गहराई से प्रभावित करते हैं और हम तारों को प्रभावित करते हैं। कर्म से हटकर चेतना की ओर लौटें, कर्म को शरीर और मन पर छोड़ दें; यह उनका क्षेत्र है। शुद्ध साक्षी बने रहें, यहाँ तक कि साक्षी भाव भी परम सत्ता में विलीन हो जाए।
कल्पना कीजिए घने जंगल की, जिसमें भारी-भरकम लकड़ियाँ हैं। उसी लकड़ी से एक तख्ता बनाया जाता है और उस पर लिखने के लिए एक छोटी पेंसिल रखी जाती है। साक्षी उस लिखावट को पढ़ता है और जानता है कि पेंसिल और तख्ता जंगल से दूर से ही संबंधित हैं, लेकिन लिखावट का उससे कोई लेना-देना नहीं है। यह पूरी तरह से उस पर आरोपित है और इसके गायब होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। व्यक्तित्व के मिट जाने के बाद हमेशा एक गहरी राहत का अहसास होता है, मानो कोई भारी बोझ उतर गया हो।
प्रश्न: जब आप कहते हैं कि मैं साक्षी से परे की अवस्था में हूँ, तो वह कौन सा अनुभव है जिसके कारण आप ऐसा कहते हैं? यह केवल साक्षी होने की अवस्था से किस प्रकार भिन्न है?
एम: यह छपे हुए कपड़े को धोने जैसा है। पहले डिज़ाइन धुंधला होता है, फिर पृष्ठभूमि और अंत में कपड़ा बिल्कुल सफेद रह जाता है। व्यक्तित्व की जगह साक्षी ले लेता है, फिर साक्षी चला जाता है और शुद्ध चेतना शेष रह जाती है। कपड़ा शुरू में सफेद था और अंत में भी सफेद ही है; पैटर्न और रंग बस कुछ समय के लिए ही बने रहे।
प्रश्न: क्या जागरूकता की वस्तु के बिना जागरूकता हो सकती है?
एम: किसी वस्तु के प्रति जागरूकता को हम साक्षी भाव कहते हैं। जब इच्छा या भय के कारण वस्तु से आत्म-पहचान भी हो जाती है, तो ऐसी अवस्था को व्यक्ति कहते हैं। वास्तव में, एक ही अवस्था है; आत्म-पहचान से विकृत होने पर इसे व्यक्ति कहते हैं, अस्तित्व की भावना से रंगे होने पर यह साक्षी भाव है; और जब यह रंगहीन और असीम होती है, तो इसे परम सत्ता कहते हैं।
प्रश्न: मैं हमेशा बेचैन, तरसता हुआ, आशावान, खोजता हुआ, पाता हुआ, आनंदित, त्यागता हुआ और फिर से खोजता हुआ महसूस करता हूँ। आखिर वह क्या है जो मुझे इस तरह उत्तेजित रखता है?
एम: आप अनजाने में ही सही, स्वयं की खोज में हैं। आप प्रेम के योग्य, पूर्णतः प्रेम करने योग्य की तलाश में हैं। अज्ञानता के कारण आप इसे विरोधाभासों और विसंगतियों से भरी दुनिया में खोज रहे हैं। जब आप इसे अपने भीतर पा लेंगे, तो आपकी खोज पूरी हो जाएगी।
प्रश्न: इस दुखमय संसार से हमें हमेशा जूझना पड़ेगा।
एम: पहले से मत सोचो। तुम्हें पता नहीं है। यह सच है कि सभी अभिव्यक्तियाँ विपरीतताओं में निहित हैं। सुख और दुख, अच्छा और बुरा, ऊँच-नीच, उन्नति और पतन, विश्राम और संघर्ष - ये सब एक साथ आते-जाते रहते हैं - और जब तक संसार है, तब तक इसके विरोधाभास बने रहेंगे। पूर्ण सामंजस्य, आनंद और सौंदर्य के क्षण भी हो सकते हैं, लेकिन केवल थोड़े समय के लिए। जो परिपूर्ण है, वह

समस्त पूर्णता के स्रोत में लौट जाता है और विपरीतताएँ अपना खेल जारी रखती हैं।
प्रश्न: मैं पूर्णता कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?
एम: शांत रहो। संसार में अपना काम करो, लेकिन मन में शांत रहो। तब सब कुछ तुम्हें स्वयं प्राप्त हो जाएगा। आत्मज्ञान के लिए अपने कर्मों पर निर्भर मत रहो। इससे दूसरों को लाभ हो सकता है, लेकिन तुम्हें नहीं। तुम्हारी आशा मन और हृदय को शांत रखने में निहित है। आत्मज्ञानी लोग अत्यंत शांत होते हैं।

80. जागरूकता प्रश्नकर्ता: क्या आत्म-साक्षात्कार में समय लगता है, या समय आत्म-साक्षात्कार में सहायक नहीं होता? क्या आत्म-साक्षात्कार केवल समय का विषय है, या यह समय के अलावा अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है? महाराज: इंतज़ार करना व्यर्थ है। समय के भरोसे समस्याओं का हल ढूंढना आत्म-भ्रम है। भविष्य अपने आप में अतीत को दोहराता है। परिवर्तन केवल अभी हो सकता है, भविष्य में कभी नहीं।
प्रश्न: परिवर्तन किस कारण से आता है?
एम: बदलाव की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझें। बस इतना ही।
प्रश्न: क्या आत्म-साक्षात्कार भौतिक जगत में होता है, या उससे परे? क्या यह एक ऐसा अनुभव नहीं है जो इसके घटित होने के लिए शरीर और मन पर निर्भर करता है?
एम: सभी अनुभव मायावी, सीमित और क्षणिक होते हैं। अनुभव से कुछ भी अपेक्षा न रखें। आत्मज्ञान स्वयं में कोई अनुभव नहीं है, यद्यपि यह अनुभवों के एक नए आयाम की ओर ले जा सकता है। फिर भी, नए अनुभव, चाहे कितने भी रोचक क्यों न हों, पुराने अनुभवों से अधिक वास्तविक नहीं होते। निश्चित रूप से आत्मज्ञान कोई नया अनुभव नहीं है। यह प्रत्येक अनुभव में मौजूद कालातीत तत्व की खोज है। यह जागरूकता ही है जो अनुभव को संभव बनाती है। जैसे सभी रंगों में प्रकाश ही रंगहीन तत्व है, वैसे ही प्रत्येक अनुभव में जागरूकता मौजूद होती है, फिर भी वह अनुभव नहीं है।
प्रश्न: यदि जागरूकता एक अनुभव नहीं है, तो इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
एम: जागरूकता तो हमेशा मौजूद रहती है। इसे महसूस करने की आवश्यकता नहीं है। मन के द्वार खोल दो, और वह प्रकाश से भर उठेगा।
प्रश्न: पदार्थ क्या है?
एम: जो बात आप नहीं समझते वह है पदार्थ।
प्रश्न: विज्ञान पदार्थ को समझता है।
एम: विज्ञान केवल हमारी अज्ञानता की सीमाओं को आगे बढ़ाता है।
प्रश्न: और प्रकृति क्या है?
एम: सभी सचेत अनुभवों का सार ही प्रकृति है। एक सचेत आत्मा के रूप में आप प्रकृति का हिस्सा हैं। जागरूकता के रूप में आप उससे परे हैं। प्रकृति को मात्र चेतना के रूप में देखना ही जागरूकता है।
प्रश्न: क्या जागरूकता के भी स्तर होते हैं?
एम: चेतना में स्तर होते हैं, लेकिन जागरूकता में नहीं। यह एक इकाई है, समरूप है। मन में इसका प्रतिबिंब प्रेम और समझ है। समझ में स्पष्टता और प्रेम में तीव्रता के स्तर होते हैं, लेकिन उनके स्रोत में नहीं। स्रोत

सरल और एकल है, लेकिन इसके वरदान अनंत हैं। केवल वरदानों को स्रोत न समझें।
स्वयं को स्रोत के रूप में पहचानें, नदी के रूप में नहीं; बस इतना ही।
प्रश्न: मैं भी नदी हूँ।
एम: बिल्कुल, आप हैं। एक 'मैं' के रूप में आप शरीर के किनारों के बीच बहने वाली नदी हैं। लेकिन आप स्रोत, सागर और आकाश के बादल भी हैं। जहाँ भी जीवन और चेतना है, आप हैं। सबसे छोटे से भी छोटे, सबसे बड़े से भी बड़े, आप हैं, जबकि बाकी सब कुछ प्रकट होता है।
प्रश्न: क्या अस्तित्व की भावना और जीने की भावना एक ही हैं या भिन्न हैं? एम: स्थान में एकरूपता एक को जन्म देती है, समय में निरंतरता दूसरे को जन्म देती है।
प्रश्न: आपने एक बार कहा था कि देखने वाला, देखने की वस्तु और देखी जाने वाली वस्तु एक ही चीज हैं, तीन नहीं। मेरे लिए ये तीनों अलग-अलग हैं। मुझे आपकी बातों पर कोई संदेह नहीं है, बस समझ नहीं आ रहा।
एम: ध्यान से देखें तो आपको पता चलेगा कि देखने वाला और देखा जाने वाला, दोनों तभी प्रकट होते हैं जब देखना होता है। ये देखने के गुण हैं। जब आप कहते हैं 'मैं इसे देख रहा हूँ', तो 'मैं हूँ' और 'यह' देखने के साथ ही आते हैं, पहले नहीं। न तो अदृश्य 'यह' हो सकता है और न ही अदृश्य 'मैं हूँ'।
प्रश्न: मैं कह सकता हूँ: 'मैं नहीं देखता'।
एम: 'मैं यह देख रहा हूँ' अब 'मैं अपने न देखने को देख रहा हूँ' या 'मैं अँधेरा देख रहा हूँ' बन गया है। देखना तो बना रहता है। त्रिविधता में: ज्ञात, जानना और जानने वाला, केवल जानना ही एक तथ्य है। 'मैं हूँ' और 'यह' संदिग्ध हैं। कौन जानता है? क्या ज्ञात है? निश्चितता का कोई अंश नहीं है, सिवाय इसके कि जानना है।
प्रश्न: मुझे अपने ज्ञान पर तो पूरा भरोसा है, लेकिन ज्ञानदाता पर क्यों नहीं?
एम: जानना, आपके वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिंब है, साथ ही आपका अस्तित्व और प्रेम भी। जानने वाला और जाना हुआ, ये दोनों ही मन द्वारा निर्मित होते हैं। मन का स्वभाव ही है कि वह विषय-वस्तु द्वैत का सृजन करता है, जबकि वास्तव में ऐसा कोई द्वैत नहीं होता।
प्रश्न: इच्छा और भय का कारण क्या है?
एम: ज़ाहिर है, बीते हुए सुख-दुखों की यादें। इसमें कोई रहस्य नहीं है। संघर्ष तभी उत्पन्न होता है जब इच्छा और भय एक ही वस्तु से संबंधित हों। प्रश्न: स्मृति को कैसे समाप्त किया जाए?
एम: यह न तो आवश्यक है, न ही संभव। यह समझें कि सब कुछ चेतना में घटित होता है और आप ही चेतना की जड़, स्रोत और आधार हैं। संसार अनुभवों का एक क्रम मात्र है और आप ही उन्हें चेतन बनाते हैं, फिर भी सभी अनुभवों से परे रहते हैं। यह ऊष्मा, लौ और जलती हुई लकड़ी के समान है। ऊष्मा लौ को बनाए रखती है, लौ लकड़ी को भस्म कर देती है। ऊष्मा के बिना न तो लौ होगी और न ही ईंधन। इसी प्रकार, जागरूकता के बिना न तो चेतना होगी और न ही जीवन, जो पदार्थ को चेतना के वाहन में परिवर्तित करता है।
प्रश्न: आपका मानना है कि मेरे बिना संसार का अस्तित्व नहीं होगा, और संसार तथा संसार के बारे में मेरा ज्ञान एक ही है। विज्ञान इससे बिलकुल अलग निष्कर्ष पर पहुँचा है: संसार एक ठोस और निरंतर इकाई के रूप में विद्यमान है, जबकि मैं तंत्रिका तंत्र के जैविक विकास का एक उप-उत्पाद हूँ, जो मुख्य रूप से चेतना का केंद्र नहीं, बल्कि एक व्यक्ति और प्रजाति के रूप में

अस्तित्व बनाए रखने का एक तंत्र है। आपका दृष्टिकोण पूरी तरह से व्यक्तिपरक है, जबकि विज्ञान हर चीज़ का वस्तुनिष्ठ रूप से वर्णन करने का प्रयास करता है। क्या यह विरोधाभास अपरिहार्य है?
एम: भ्रम स्पष्ट है और केवल शाब्दिक है। जो है सो है। यह न तो व्यक्तिपरक है और न ही वस्तुनिष्ठ। पदार्थ और मन अलग-अलग नहीं हैं, वे एक ही ऊर्जा के पहलू हैं। मन को पदार्थ के एक कार्य के रूप में देखें तो विज्ञान मिलता है; पदार्थ को मन के उत्पाद के रूप में देखें तो धर्म मिलता है।
प्रश्न: लेकिन सत्य क्या है? पहले मन आता है या पदार्थ?
एम: इनमें से कोई भी पहले नहीं आता, क्योंकि कोई भी अकेला प्रकट नहीं होता। पदार्थ आकार है, मन नाम है। ये दोनों मिलकर संसार का निर्माण करते हैं।
सर्वव्यापी और उससे परे है वास्तविकता, शुद्ध अस्तित्व, चेतना, आनंद, आपका मूल तत्व।
प्रश्न: मैं केवल चेतना की धारा को जानता हूँ, घटनाओं का एक अंतहीन सिलसिला। समय की नदी निरंतर बहती रहती है, जो निरंतर लाती और ले जाती है। भविष्य का अतीत में रूपांतरण निरंतर चलता रहता है।
एम: क्या आप अपनी भाषा के शिकार नहीं हैं? आप समय के प्रवाह के बारे में ऐसे बात करते हैं मानो आप स्थिर हों। लेकिन जो घटनाएँ आपने कल देखीं, उन्हें कोई और कल देख सकता है। गति में आप हैं, समय नहीं। गतिहीन हो जाइए और समय भी रुक जाएगा।
प्रश्न: समय के रुकने का क्या अर्थ है?
एम: अतीत और भविष्य शाश्वत वर्तमान में विलीन हो जाएंगे।
प्रश्न: लेकिन वास्तविक अनुभव में इसका क्या अर्थ है? आपको कैसे पता चलता है कि आपके लिए समय रुक गया है?
एम: इसका मतलब यह हो सकता है कि अतीत और भविष्य का अब कोई महत्व नहीं रह गया है। इसका यह भी मतलब हो सकता है कि जो कुछ हुआ है और जो कुछ होगा, वह एक खुली किताब बन जाएगा जिसे इच्छानुसार पढ़ा जा सकता है।
प्रश्न: मैं एक प्रकार की ब्रह्मांडीय स्मृति की कल्पना कर सकता हूँ, जिसे कुछ प्रशिक्षण से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन भविष्य को कैसे जाना जा सकता है? अप्रत्याशित तो अपरिहार्य है।
एम: एक स्तर पर जो अप्रत्याशित लगता है, वही उच्च स्तर से देखने पर निश्चित रूप से घटित हो सकता है। अंततः, हम मन की सीमाओं के भीतर ही हैं। वास्तविकता में कुछ भी घटित नहीं होता, न अतीत है न भविष्य; सब कुछ प्रकट होता है और कुछ भी अस्तित्व में नहीं है।
प्रश्न: कुछ भी नहीं होने का क्या अर्थ है? क्या आप एकदम खाली हो जाते हैं, या सो जाते हैं? या आप दुनिया को विलीन कर देते हैं और हम सबको तब तक निष्क्रिय रखते हैं, जब तक कि आपके अगले विचार की झलक से हम फिर से जीवित न हो जाएं?
एम: ओह, नहीं, यह इतना बुरा नहीं है। मन और पदार्थ की दुनिया, नामों और आकृतियों की दुनिया, तो चलती रहती है, लेकिन इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह एक परछाई की तरह है। यह हमेशा मेरे साथ रहती है—मैं जहाँ भी जाता हूँ, यह मेरा पीछा करती है, लेकिन मुझे किसी भी तरह से रोकती नहीं है। यह अनुभवों की दुनिया बनी रहती है, लेकिन इसमें इच्छाओं और भय से जुड़े नाम और आकृतियाँ नहीं हैं। ये अनुभव गुणहीन, शुद्ध अनुभव हैं, अगर मैं ऐसा कहूँ तो। बेहतर शब्द न होने के कारण मैं इन्हें अनुभव कहता हूँ। ये समुद्र की

सतह पर उठने वाली लहरों की तरह हैं, जो हमेशा मौजूद रहती हैं, लेकिन उसकी शांति को प्रभावित नहीं करतीं।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि कोई अनुभव नामहीन, रूपहीन, अपरिभाषित हो सकता है?
एम: आरंभ में सभी अनुभव ऐसे ही होते हैं। केवल इच्छा और भय, जो स्मृति से उत्पन्न होते हैं, ही उन्हें नाम और रूप देते हैं और उन्हें अन्य अनुभवों से अलग करते हैं। यह एक सचेतन अनुभव नहीं है, क्योंकि यह अन्य अनुभवों के विपरीत नहीं है, फिर भी यह एक अनुभव ही है।
प्रश्न: यदि यह सचेत नहीं है, तो इसके बारे में बात क्यों करें?
एम: आपके अधिकांश अनुभव अचेतन हैं। सचेतन अनुभव बहुत कम हैं। आप इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं क्योंकि आपके लिए केवल सचेतन अनुभव ही मायने रखते हैं। अपने अचेतन मन के प्रति जागरूक बनें।
प्रश्न: क्या कोई व्यक्ति अवचेतन मन के प्रति जागरूक हो सकता है? यह कैसे किया जाता है?
एम: इच्छा और भय ही वे कारक हैं जो भ्रम और विकृति उत्पन्न करते हैं। जब मन इनसे मुक्त हो जाता है, तब अवचेतन मन तक पहुंच संभव हो पाती है।
प्रश्न: क्या इसका मतलब यह है कि अचेतन मन चेतन मन बन जाता है?
एम: बात तो इसके बिल्कुल उलट है। चेतन मन अचेतन मन के साथ एक हो जाता है। भेद समाप्त हो जाता है, चाहे आप इसे किसी भी तरह से देखें।
प्रश्न: मैं असमंजस में हूँ। कोई व्यक्ति सचेत होते हुए भी अचेतन कैसे हो सकता है?
एम: जागरूकता केवल चेतना तक सीमित नहीं है। यह हर चीज़ का हिस्सा है। चेतना द्वैत की है। जागरूकता में द्वैत नहीं है। यह शुद्ध ज्ञान का एक ही खंड है। उसी प्रकार हम शुद्ध सत्ता और शुद्ध सृष्टि की बात कर सकते हैं - नामहीन, रूपहीन, मौन और फिर भी पूर्णतः वास्तविक, शक्तिशाली, प्रभावशाली। उनका अवर्णनीय होना उन पर ज़रा भी असर नहीं डालता। जब तक वे अचेतन हैं, वे सारगर्भित हैं। चेतन मन मौलिक रूप से बदल नहीं सकता, वह केवल रूपांतरित हो सकता है। किसी भी चीज़ को बदलने के लिए मृत्यु, अंधकार और विघटन से गुज़रना पड़ता है। सोने के आभूषणों को पिघलाकर ही नया रूप दिया जा सकता है। जो मरना नहीं चाहता, उसका पुनर्जन्म नहीं हो सकता।
प्रश्न: शरीर की मृत्यु के अलावा, मृत्यु कैसे होती है?
एम: अलगाव, उदासीनता, त्याग करना ही मृत्यु है। पूर्ण जीवन जीने के लिए मृत्यु आवश्यक है; हर अंत एक नई शुरुआत का सूत्रपात करता है। दूसरी ओर, यह भी समझ लें कि केवल मृत ही मर सकते हैं, जीवित नहीं। जो आपके भीतर जीवित है, वह अमर है।
प्रश्न: इच्छा को ऊर्जा कहाँ से मिलती है?
एम: इसका नाम और आकार स्मृति से लिया गया है। ऊर्जा स्रोत से प्रवाहित होती है।
प्रश्न: कुछ इच्छाएँ तो सरासर गलत होती हैं। गलत इच्छाएँ किसी दिव्य स्रोत से कैसे उत्पन्न हो सकती हैं?
एम: स्रोत न तो सही है और न ही गलत। न ही इच्छा अपने आप में सही या गलत है। यह केवल सुख की प्राप्ति का प्रयास है। अपने आप को एक नन्हे से शरीर से जोड़ लेने पर आप खोया हुआ महसूस करते हैं और उस परिपूर्णता और पूर्णता की खोज में बेचैन हो जाते हैं जिसे आप सुख कहते हैं।
प्रश्न: मैंने इसे कब खोया? मेरे पास यह कभी था ही नहीं।

एम: यह आपके पास आज सुबह जागने से पहले ही था। अपनी चेतना से परे जाओ, और आपको यह मिल जाएगा।
प्रश्न: मैं इससे आगे कैसे बढ़ सकता हूँ?
एम: तुम्हें पहले से ही पता है; कर लो।
प्रश्न: आप यही कह रहे हैं। मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता।
एम: फिर भी मैं दोहराता हूँ - तुम जानते हो। करो। उससे आगे बढ़ो, अपनी सामान्य, स्वाभाविक, सर्वोच्च अवस्था में लौट जाओ।
प्रश्न: मैं असमंजस में हूँ।
एम: आंख में एक कण चला जाए तो ऐसा लगता है जैसे आप अंधे हो गए हों। उसे धोकर देखें।
प्रश्न: मैं देखता तो हूँ! मुझे केवल अँधेरा ही दिखाई देता है।
एम: उस कण को हटा दो और तुम्हारी आँखें प्रकाश से भर जाएँगी। प्रकाश वहीं है - प्रतीक्षा कर रहा है। आँखें वहीं हैं - तैयार हैं। जो अंधकार तुम देख रहे हो, वह उस छोटे से कण की मात्र छाया है। उसे हटा दो और अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आओ।

81. भय का मूल कारण

महाराज: आप कहाँ से आए हैं?
प्रश्नकर्ता: मैं संयुक्त राज्य अमेरिका से हूँ, लेकिन ज्यादातर यूरोप में रहता हूँ। मैं हाल ही में भारत आया हूँ। मैं ऋषिकेश में दो आश्रमों में था। मुझे ध्यान और श्वास क्रिया सिखाई गई।
एम: आप वहां कितने समय तक रहे?
प्रश्न: एक जगह आठ दिन, दूसरी जगह छह दिन। मैं वहाँ खुश नहीं था और मैंने छोड़ दिया। फिर तीन सप्ताह तक मैं तिब्बती लामाओं के साथ रहा। लेकिन वे सभी नियमों और रीति-रिवाजों में ही उलझे रहे।
एम: और इन सबका कुल परिणाम क्या रहा?
प्रश्न: ऊर्जा में निश्चित रूप से वृद्धि हुई। लेकिन ऋषिकेश जाने से पहले, मैंने दक्षिण भारत के पुदुक्कोट्टई स्थित एक प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में उपवास और आहार का पालन किया। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है।
एम: शायद बेहतर स्वास्थ्य के कारण ऊर्जा की उपलब्धता अधिक थी।
प्रश्न: मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप मेरे शरीर के विभिन्न हिस्सों में कुछ अग्नि प्रज्वलित होने लगी और मुझे उन जगहों पर मंत्रोच्चार और आवाजें सुनाई देने लगीं जहाँ वास्तव में कोई आवाज नहीं थी।
एम: और अब आप क्या चाहते हैं?
प्रश्न: आखिर हम सब किस चीज की तलाश में हैं? कोई सत्य, कोई आंतरिक निश्चितता, कोई वास्तविक सुख। आत्म-साक्षात्कार के विभिन्न मतों में जागरूकता की इतनी चर्चा होती है कि अंततः यह धारणा बन जाती है कि जागरूकता ही सर्वोच्च वास्तविकता है। क्या ऐसा है? शरीर की देखभाल मस्तिष्क करता है, मस्तिष्क चेतना से प्रकाशित होता है; जागरूकता चेतना की निगरानी करती है; क्या जागरूकता से परे भी कुछ है?
एम: आपको कैसे पता चलता है कि आप जागरूक हैं?
प्रश्न: मुझे ऐसा ही महसूस होता है। मैं इसे किसी और तरह से व्यक्त नहीं कर सकता।

एम: जब आप मस्तिष्क से लेकर चेतना और जागरूकता तक सावधानीपूर्वक इसका अनुसरण करते हैं, तो आप पाते हैं कि द्वैत का बोध बना रहता है। जागरूकता से परे जाने पर, अद्वैत की अवस्था आती है, जिसमें कोई संज्ञान नहीं होता, केवल शुद्ध अस्तित्व होता है, जिसे अस्तित्वहीनता भी कहा जा सकता है, यदि अस्तित्व से आपका तात्पर्य किसी विशिष्ट वस्तु का अस्तित्व है।
प्रश्न: जिसे आप शुद्ध अस्तित्व कहते हैं, क्या वह सार्वभौमिक अस्तित्व है, क्या वह सब कुछ है?
एम: हर चीज़ में विशिष्टताओं का संग्रह निहित होता है। शुद्ध अस्तित्व में विशिष्टता का विचार ही अनुपस्थित होता है।
प्रश्न: क्या शुद्ध अस्तित्व और विशिष्ट अस्तित्व के बीच कोई संबंध है? एम: जो है और जो मात्र प्रतीत होता है, उनके बीच क्या संबंध हो सकता है? क्या सागर और उसकी लहरों के बीच कोई संबंध है? यथार्थ, असत्य को प्रकट करता है और उसे लुप्त कर देता है। क्षणभंगुर क्षणों का क्रम समय का भ्रम पैदा करता है, परन्तु शुद्ध अस्तित्व की कालातीत वास्तविकता गति में नहीं है, क्योंकि हर गति के लिए एक स्थिर पृष्ठभूमि आवश्यक होती है। यह स्वयं ही पृष्ठभूमि है। एक बार जब आप इसे अपने भीतर पा लेते हैं, तो आप जान जाते हैं कि आपने उस स्वतंत्र अस्तित्व को कभी नहीं खोया, जो सभी विभाजनों और विच्छेदों से मुक्त है। परन्तु इसे चेतना में मत खोजो, यह वहाँ नहीं मिलेगा। इसे कहीं भी मत खोजो, क्योंकि कुछ भी इसे समाहित नहीं करता। इसके विपरीत, यह सब कुछ समाहित करता है और सब कुछ प्रकट करता है। यह उस दिन के प्रकाश के समान है जो सब कुछ दृश्यमान बनाता है, जबकि स्वयं अदृश्य रहता है।
प्रश्न: महोदय, आपके यह कहने का क्या लाभ है कि वास्तविकता चेतना में नहीं पाई जा सकती? मैं इसे और कहाँ खोजूँ? आप इसे कैसे समझते हैं?
एम: यह बहुत सरल है। अगर मैं आपसे पूछूं कि आपके मुंह का स्वाद कैसा है, तो आप बस इतना ही कह पाएंगे: यह न मीठा है, न कड़वा, न खट्टा, न कसैला; यह वह है जो इन सभी स्वादों के न रहने पर शेष रहता है। इसी प्रकार, जब सभी भेद और प्रतिक्रियाएं समाप्त हो जाती हैं, तो जो शेष रहता है वह वास्तविकता है, सरल और ठोस।
प्रश्न: मैं बस इतना ही समझ पा रहा हूँ कि मैं एक अनादि भ्रम के चंगुल में फंसा हुआ हूँ। और मुझे समझ नहीं आ रहा कि इसका अंत कैसे हो सकता है। अगर हो सकता तो बहुत पहले ही हो चुका होता। मुझे अतीत में उतने ही अवसर मिले होंगे जितने भविष्य में मिलेंगे। जो नहीं हो सकता, वह हो ही नहीं सकता। या, अगर हो भी जाए, तो वह टिक नहीं सकता। इन अनगिनत लाखों वर्षों के बाद हमारी यह दयनीय स्थिति, अधिक से अधिक, अंततः विनाश का वादा करती है, या इससे भी बदतर, एक अंतहीन और अर्थहीन पुनरावृत्ति का खतरा पैदा करती है।
एम: आपके पास क्या प्रमाण है कि आपकी वर्तमान स्थिति अनादि और अनंत है? जन्म से पहले आप कैसे थे? मृत्यु के बाद आप कैसे होंगे? और अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में आप कितना जानते हैं? क्या आप यह भी नहीं जानते कि आज सुबह जागने से पहले आपकी क्या स्थिति थी? आप अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में बहुत कम जानते हैं और उसी से आप हर समय और हर जगह के लिए निष्कर्ष निकाल लेते हैं। हो सकता है आप सिर्फ सपना देख रहे हों और अपने सपने को शाश्वत मान रहे हों।

प्रश्न: इसे सपना कहने से स्थिति नहीं बदल जाती। मैं अपना प्रश्न दोहराता हूँ: मेरे अतीत की अनंतता जिसे पूरा नहीं कर सकी, अब कौन सी आशा शेष है? मेरा भविष्य मेरे अतीत से अलग क्यों होना चाहिए?
एम: अपनी उत्तेजित अवस्था में, तुम अतीत और भविष्य की कल्पना करते हो और उन्हें वास्तविक मान लेते हो। वास्तव में, तुम केवल अपने वर्तमान क्षण को जानते हो। काल्पनिक अतीत और भविष्य पर सवाल उठाने के बजाय, वर्तमान की पड़ताल क्यों न करो? तुम्हारा वर्तमान न तो अनादि है और न ही अनंत। यह पल भर में बीत जाता है। ध्यान से देखो कि यह कहाँ से आता है और कहाँ जाता है। तुम जल्द ही इसके पीछे छिपी शाश्वत वास्तविकता को जान जाओगे।
प्रश्न: मैंने इसे पहले क्यों नहीं किया?
एम: जिस प्रकार प्रत्येक लहर सागर में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक क्षण अपने स्रोत पर लौट आता है। आत्मज्ञान स्रोत को खोजने और वहीं स्थिर रहने में निहित है।
प्रश्न: इसकी खोज कौन करता है?
एम: मन ही खोज करता है।
प्रश्न: क्या इससे उत्तर मिलते हैं?
एम: इसे लगता है कि इसके सामने कोई सवाल नहीं है, किसी जवाब की जरूरत नहीं है।
प्रश्न: जन्म लेना एक तथ्य है। मृत्यु एक और तथ्य है। ये दोनों तथ्य साक्षी को किस रूप में दिखाई देते हैं?
एम: एक बच्चे का जन्म हुआ; एक आदमी की मृत्यु हो गई - ये सब समय के साथ घटित होने वाली घटनाएं हैं।
प्रश्न: क्या साक्षी भाव में कोई प्रगति हुई है? क्या जागरूकता का विकास हुआ है?
एम: जब जागरूकता की रोशनी किसी वस्तु पर केंद्रित होती है, तो उसमें अनेक परिवर्तन आ सकते हैं, लेकिन परिवर्तन वस्तु में होता है, न कि प्रकाश में। पौधे सूर्य के प्रकाश में उगते हैं, लेकिन सूर्य नहीं उगता। शरीर और साक्षी दोनों ही अपने आप में स्थिर होते हैं, लेकिन जब मन में उन्हें एक साथ लाया जाता है, तो दोनों गतिशील प्रतीत होते हैं।
प्रश्न: जी हाँ, मैं देख सकता हूँ कि जो गतिमान और परिवर्तित होता है वह केवल 'मैं हूँ' ही है। क्या 'मैं हूँ' की वास्तव में कोई आवश्यकता है?
एम: इसकी किसे ज़रूरत है? यह तो अभी मौजूद है। इसकी शुरुआत हुई थी, इसका अंत भी होगा।
प्रश्न: जब ‘मैं हूँ’ का भाव समाप्त हो जाता है तो क्या शेष रहता है?
एम: जो आता-जाता नहीं, वह बना रहता है। यह लालची मन ही है जो प्रगति और पूर्णता की ओर विकास के विचार पैदा करता है। यह व्यवस्था को भंग करता है और उसकी बात करता है, विनाश करता है और सुरक्षा की तलाश करता है।
प्रश्न: क्या भाग्य में, कर्म में कोई प्रगति होती है?
एम: कर्म तो बस अव्यक्त ऊर्जाओं, अपूर्ण इच्छाओं और अनसुलझे भयों का भंडार है। यह भंडार नई इच्छाओं और भयों से निरंतर भरता रहता है। ऐसा हमेशा के लिए नहीं होता। अपने भयों के मूल कारण को समझो - स्वयं से अलगाव; और इच्छाओं के मूल कारण को समझो - आत्म-साक्षात्कार की लालसा, और तुम्हारा कर्म सपने की तरह घुल जाएगा। पृथ्वी और स्वर्ग के बीच जीवन चलता रहता है। कुछ भी नहीं बदलता, केवल शरीर बढ़ते और नष्ट होते हैं।
प्रश्न: व्यक्ति और गवाह के बीच क्या संबंध है?

एम: उनके बीच कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे एक ही हैं। उन्हें अलग मत करो और न ही संबंध खोजने की कोशिश करो।
प्रश्न: यदि देखने वाला और देखा जाने वाला एक ही हैं, तो अलगाव कैसे हुआ? एम: नामों और रूपों से मोहित होकर, जो अपने स्वभाव से ही विशिष्ट और विविध हैं, आप प्राकृतिक को पहचानते हैं और एकरूपता को अलग करते हैं। दुनिया विविधता से भरपूर है, लेकिन आपका अजीब और भयभीत महसूस करना गलतफहमी के कारण है। खतरा शरीर को है, आपको नहीं।
प्रश्न: मैं देख सकता हूँ कि मूलभूत जैविक चिंता, यानी भागने की प्रवृत्ति, अनेक रूप धारण करती है और मेरे विचारों और भावनाओं को विकृत कर देती है। लेकिन यह चिंता उत्पन्न कैसे हुई?
एम: यह 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से उत्पन्न मानसिक अवस्था है। इसे इसके विपरीत 'मैं शरीर नहीं हूँ' की धारणा से दूर किया जा सकता है। दोनों ही धारणाएँ गलत हैं, लेकिन एक दूसरी को दूर करती है। यह समझें कि कोई भी विचार आपका अपना नहीं है, वे सभी बाहर से आते हैं। आपको स्वयं ही सब कुछ सोचना होगा, स्वयं को अपने ध्यान का विषय बनाना होगा। स्वयं को समझने का प्रयास ही योग है। योगी बनें, अपना जीवन इसमें समर्पित करें, चिंतन करें, आश्चर्य करें, खोज करें, जब तक आप त्रुटि की जड़ और त्रुटि से परे सत्य तक न पहुँच जाएँ।
प्रश्न: ध्यान में कौन ध्यान करता है, व्यक्ति या साक्षी?
ध्यान चेतना की उच्च अवस्थाओं में प्रवेश करने और अंततः उससे परे जाने का एक सचेत प्रयास है। ध्यान की कला, ध्यान को सूक्ष्मतम स्तरों की ओर ले जाने की कला है, साथ ही उन स्तरों पर भी अपनी पकड़ बनाए रखना है जिन्हें हमने पीछे छोड़ दिया है। एक तरह से यह मृत्यु को वश में करने जैसा है। इसकी शुरुआत निम्नतम स्तरों से होती है: सामाजिक परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज और आदतें; भौतिक परिवेश, शरीर की मुद्रा और श्वास, इंद्रियाँ, उनकी संवेदनाएँ और बोध; मन, उसके विचार और भावनाएँ; जब तक कि व्यक्तित्व की संपूर्ण संरचना को समझकर दृढ़ता से धारण न कर लिया जाए। ध्यान की अंतिम अवस्था तब प्राप्त होती है जब पहचान की भावना 'मैं अमुक हूँ', 'मैं हूँ', 'मैं केवल साक्षी हूँ', 'वहाँ है', सभी विचारों से परे जाकर निराकार शुद्ध सत्ता में समा जाती है। लेकिन ध्यान करते समय आपको ऊर्जावान होना चाहिए। यह निश्चित रूप से अंशकालिक कार्य नहीं है। अपनी रुचियों और गतिविधियों को केवल उन्हीं तक सीमित रखें जो आपके और आपके आश्रितों की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए आवश्यक हैं। अपनी सारी ऊर्जा और समय उस दीवार को तोड़ने में लगाएं जो आपके दिमाग ने आपके चारों ओर खड़ी कर रखी है। यकीन मानिए, आपको पछतावा नहीं होगा। प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि मेरा अनुभव सार्वभौमिक है?
एम: ध्यान के अंत में सब कुछ प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात हो जाता है, किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जैसे सागर की प्रत्येक बूँद में सागर का स्वाद समाया होता है, वैसे ही प्रत्येक क्षण में अनंत काल का स्वाद होता है। परिभाषाएँ और विवरण आगे की खोज के लिए उपयोगी प्रेरणा के रूप में अपना स्थान रखते हैं, लेकिन आपको उनसे परे जाकर उस चीज़ में प्रवेश करना होगा जो अपरिभाषित और अवर्णनीय है, सिवाय नकारात्मक शब्दों के।
अंततः, सार्वभौमिकता और शाश्वतता भी मात्र अवधारणाएँ हैं, स्थान और समय की सीमाओं के विपरीत। वास्तविकता न तो कोई अवधारणा है, न ही किसी अवधारणा की अभिव्यक्ति। इसका अवधारणाओं से कोई संबंध नहीं है। अपने मन पर ध्यान दें, इसकी विकृतियों और अशुद्धियों को दूर करें। एक बार जब आप अपने आप का अनुभव

कर लेंगे, तो आप इसे हर जगह और हर समय पाएंगे। इसलिए, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि आप इसे प्राप्त करें। एक बार जब आप इसे जान लेंगे, तो आप इसे कभी नहीं खोएंगे।
लेकिन आपको गहन, यहां तक कि कठिन ध्यान के माध्यम से स्वयं को यह अवसर देना होगा।
प्रश्न: आप मुझसे वास्तव में क्या करवाना चाहते हैं?
एम: अपने हृदय और मन को 'मैं' के चिंतन में लगाएँ, यह क्या है, कैसा है, इसका स्रोत क्या है, इसका जीवन क्या है, इसका अर्थ क्या है। यह कुआँ खोदने के समान है। आप पानी के अलावा सब कुछ त्याग देते हैं, जब तक कि आप जीवनदायी स्रोत तक नहीं पहुँच जाते।
प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं सही दिशा में आगे बढ़ रहा हूँ?
एम: कार्य के प्रति आपकी लगन, स्पष्टता और समर्पण में हुई प्रगति के माध्यम से।
प्रश्न: हम यूरोपीय लोगों के लिए चुप रहना बहुत मुश्किल है। दुनिया हमारे साथ बहुत कुछ कर रही है।
एम: ओह, नहीं, आप भी सपने देखने वाले हैं। हम सिर्फ अपने सपनों के विषय में भिन्न हैं। आप भविष्य में पूर्णता की तलाश में हैं। हम वर्तमान में ही उसे पाने के लिए तत्पर हैं। केवल सीमित ही पूर्णता की ओर अग्रसर है। असीमित तो पहले से ही परिपूर्ण है। आप परिपूर्ण हैं, बस आपको इसका एहसास नहीं है। स्वयं को जानना सीखें और आप अद्भुत चीजों को खोज लेंगे।
आपको जिस चीज की जरूरत है, वह सब आपके भीतर ही मौजूद है, बस आपको स्वयं के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव रखना होगा। आत्म-निंदा और आत्म-अविश्वास गंभीर गलतियाँ हैं। दर्द से लगातार दूर भागना और सुख की खोज करना आपके स्वयं के प्रति प्रेम का प्रतीक है। मैं आपसे बस यही विनती करता हूँ: स्वयं के प्रति प्रेम को परिपूर्ण बनाइए। स्वयं को किसी भी चीज से वंचित न कीजिए
- स्वयं को अनंत और शाश्वतता से जोड़िए और जानिए कि आपको इनकी आवश्यकता नहीं है; आप इन सबसे परे हैं।

82. पूर्णता यहीं और अभी मौजूद है।

प्रश्नकर्ता: युद्ध जारी है। इस पर आपका क्या दृष्टिकोण है?
महाराज: किसी न किसी स्थान पर, किसी न किसी रूप में, युद्ध तो हमेशा चलता ही रहता है। क्या कभी ऐसा समय था जब युद्ध न होता हो? कुछ लोग कहते हैं कि यह ईश्वर की इच्छा है। कुछ लोग कहते हैं कि यह ईश्वर का खेल है। कहने का दूसरा अर्थ यह है कि युद्ध अपरिहार्य हैं और इसके लिए कोई जिम्मेदार नहीं है। प्रश्न: लेकिन आपका अपना दृष्टिकोण क्या है?
एम: मुझ पर दूसरों के विचार क्यों थोपे जा रहे हैं? मेरा अपना कोई विचार नहीं है।
सवाल: इस भयानक और निरर्थक नरसंहार के लिए कोई न कोई तो जिम्मेदार होगा ही। लोग इतनी आसानी से एक-दूसरे को क्यों मार डालते हैं?
एम: अपने भीतर ही समस्या की जड़ खोजें। 'मैं' और 'मेरा' की भावनाएँ ही सभी संघर्षों का मूल कारण हैं। इनसे मुक्त हो जाओ, और संघर्षों से मुक्ति मिल जाएगी।
प्रश्न: मेरे संघर्ष से बाहर होने से क्या फर्क पड़ता है? इससे युद्ध पर कोई असर नहीं पड़ेगा। अगर मैं युद्ध का कारण हूँ, तो मैं नष्ट होने के लिए

तैयार हूँ। फिर भी, यह तर्कसंगत है कि मेरे जैसे हज़ारों लोगों के गायब हो जाने से युद्ध नहीं रुकेंगे। युद्ध न तो मेरे जन्म से शुरू हुए और न ही मेरी मृत्यु से समाप्त होंगे। मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ। तो कौन है?
एम: संघर्ष और कलह जीवन का अभिन्न अंग हैं। आप यह जानने की कोशिश क्यों नहीं करते कि इस जीवन के लिए कौन जिम्मेदार है?
प्रश्न: आप ऐसा क्यों कहते हैं कि अस्तित्व और संघर्ष अविभाज्य हैं? क्या संघर्ष के बिना अस्तित्व संभव नहीं है? मुझे स्वयं होने के लिए दूसरों से लड़ने की आवश्यकता नहीं है।
एम: तुम एक अलग शरीर-मन, एक विशिष्ट नाम और रूप के रूप में अपने अस्तित्व के लिए लगातार दूसरों से लड़ते रहते हो। जीने के लिए तुम्हें विनाश करना होगा। जिस क्षण तुम्हारा जन्म हुआ, तुमने अपने परिवेश के साथ एक युद्ध शुरू कर दिया - एक निर्मम, परस्पर विनाश का युद्ध, जब तक कि मृत्यु तुम्हें मुक्त नहीं कर देती।
प्रश्न: मेरा प्रश्न अनुत्तरित रह गया है। आप तो बस वही बता रहे हैं जो मैं जानता हूँ—जीवन और उसके दुख। लेकिन इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है, आप यह नहीं बताते। जब मैं आपसे और पूछता हूँ, तो आप दोष भगवान पर, कर्म पर, या मेरे लोभ और भय पर डाल देते हैं—जिससे और भी प्रश्न उठते हैं। मुझे इसका अंतिम उत्तर दीजिए।
एम: अंतिम उत्तर यही है: कुछ भी नहीं है। सब कुछ सार्वभौमिक चेतना के क्षेत्र में क्षणिक रूप से प्रकट होता है; नाम और रूप के रूप में निरंतरता केवल एक मानसिक रचना है, जिसे आसानी से दूर किया जा सकता है।
प्रश्न: मैं तात्कालिक, क्षणिक और प्रत्यक्ष घटना के बारे में पूछ रहा हूँ। यहाँ सैनिकों द्वारा मारे गए एक बच्चे की तस्वीर है। यह एक तथ्य है - जो आपके सामने है। आप इसे नकार नहीं सकते। अब, इस बच्चे की मृत्यु के लिए कौन जिम्मेदार है?
एम: कोई नहीं और सब। दुनिया वही है जो इसमें समाहित है और हर चीज दूसरी चीजों को प्रभावित करती है। हम सब मिलकर बच्चे को मारते हैं और हम सब उसके साथ मर जाते हैं। हर घटना के अनगिनत कारण होते हैं और अनगिनत परिणाम उत्पन्न होते हैं। हिसाब-किताब रखना व्यर्थ है, क्योंकि कुछ भी पता नहीं लगाया जा सकता।
प्रश्न: आपके लोग कर्म और प्रतिफल की बात करते हैं।
एम: यह महज एक मोटा-मोटा अनुमान है: वास्तविकता में हम सभी एक दूसरे के निर्माता और प्राणी हैं, एक दूसरे के बोझ का कारण बनते हैं और उसे वहन करते हैं।
प्रश्न: तो क्या निर्दोष को दोषी के लिए भुगतना पड़ता है?
एम: अपनी अज्ञानता में हम निर्दोष हैं; अपने कर्मों में हम दोषी हैं। हम अनजाने में पाप करते हैं और बिना समझे भोगते हैं। हमारी एकमात्र आशा है: रुकना, देखना, समझना और स्मृति के जाल से बाहर निकलना। क्योंकि स्मृति कल्पना को पोषित करती है और कल्पना इच्छा और भय को जन्म देती है।
प्रश्न: मैं कल्पना क्यों करता हूँ?
एम: चेतना का प्रकाश स्मृति की परत से होकर गुजरता है और आपके मस्तिष्क पर चित्र बनाता है। आपके मस्तिष्क की अपूर्ण और अव्यवस्थित स्थिति के कारण, आप जो कुछ भी अनुभव करते हैं वह विकृत और पसंद-नापसंद की भावनाओं से रंगा हुआ होता है। अपने चिंतन को व्यवस्थित और भावनात्मक पूर्वाग्रहों से

मुक्त करें, और आप लोगों और वस्तुओं को स्पष्टता और उदारता के साथ उनके वास्तविक स्वरूप में देख पाएंगे।
जन्म, जीवन और मृत्यु का साक्षी एक ही है। यह दर्द और प्रेम का साक्षी है। क्योंकि सीमित और वियोगी जीवन दुखमय होते हुए भी हम उससे प्रेम करते हैं। हम उससे प्रेम भी करते हैं और घृणा भी। हम लड़ते हैं, मारते हैं, जीवन और संपत्ति का विनाश करते हैं, फिर भी हम स्नेही और आत्म-त्यागी होते हैं। हम बच्चे का कोमल पालन-पोषण करते हैं और उसे अनाथ भी कर देते हैं। हमारा जीवन विरोधाभासों से भरा है। फिर भी हम इससे जुड़े रहते हैं। यही जुड़ाव हर चीज की जड़ है। फिर भी, यह पूरी तरह सतही है। हम किसी चीज या किसी व्यक्ति को पूरी ताकत से थामे रहते हैं और अगले ही पल उसे भूल जाते हैं; ठीक वैसे ही जैसे कोई बच्चा मिट्टी के खिलौने बनाता है और उन्हें हल्के मन से छोड़ देता है। उन्हें छू लो - वे गुस्से से चिल्लाएंगे, बच्चे का ध्यान भटकाओ और वह उन्हें भूल जाएगा। क्योंकि हमारा जीवन अभी है, और उसका प्रेम भी अभी है। हमें विविधता पसंद है, दर्द और सुख का खेल, हम विरोधाभासों से मोहित होते हैं। इसके लिए हमें विपरीतताओं और उनके स्पष्ट अलगाव की आवश्यकता होती है। हम कुछ समय के लिए इनका आनंद लेते हैं, फिर थक जाते हैं और शुद्ध अस्तित्व की शांति और मौन की लालसा करने लगते हैं। ब्रह्मांडीय हृदय निरंतर धड़कता रहता है। मैं साक्षी भी हूँ और हृदय भी।
प्रश्न: मुझे तस्वीर तो दिख रही है, लेकिन चित्रकार कौन है? इस भयानक और फिर भी मनमोहक अनुभव के लिए कौन जिम्मेदार है?
एम: चित्रकार चित्र में मौजूद है। आप चित्रकार को चित्र से अलग करके उसे ढूँढ़ें। अलग मत कीजिए और झूठे सवाल मत पूछिए। चीज़ें जैसी हैं वैसी ही हैं और कोई विशेष व्यक्ति ज़िम्मेदार नहीं है। व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का विचार कर्म के भ्रम से उपजा है। 'किसी ने तो किया ही होगा, कोई तो ज़िम्मेदार है'। आज का समाज, अपने कानूनों और रीति-रिवाजों के ढांचे के साथ, एक अलग और ज़िम्मेदार व्यक्ति के विचार पर आधारित है, लेकिन समाज का यही एकमात्र रूप नहीं है। अन्य रूप भी हो सकते हैं, जहाँ अलगाव की भावना कमज़ोर हो और ज़िम्मेदारी फैली हुई हो।
प्रश्न: क्या व्यक्तित्व की कमजोर समझ वाला व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार के निकट है?
एम: एक छोटे बच्चे का उदाहरण लीजिए। 'मैं कौन हूँ' की भावना अभी विकसित नहीं हुई है, व्यक्तित्व अभी प्रारंभिक अवस्था में है। आत्मज्ञान में बाधाएँ कम हैं, लेकिन जागरूकता की शक्ति और स्पष्टता, उसकी व्यापकता और गहराई का अभाव है। वर्षों के दौरान जागरूकता मजबूत होगी, लेकिन साथ ही अंतर्निहित व्यक्तित्व भी उभर कर सामने आएगा और स्थिति को जटिल बना देगा। जैसे लकड़ी जितनी कठोर होती है, लौ उतनी ही तीव्र होती है, वैसे ही व्यक्तित्व जितना मजबूत होता है, उसके विघटन से उत्पन्न प्रकाश उतना ही उज्ज्वल होता है। प्रश्न: क्या आपको कोई समस्या नहीं है?
एम: मुझे समस्याएं हैं। मैंने आपको पहले ही बता दिया है। नाम और रूप के साथ अस्तित्व में होना दर्दनाक है, फिर भी मुझे यह पसंद है।
प्रश्न: लेकिन आपको तो सब कुछ पसंद है!
एम: अस्तित्व में सब कुछ समाहित है। मेरा मूल स्वभाव ही प्रेम करना है; यहां तक कि पीड़ादायक भी प्रेम करने योग्य है।
प्रश्न: इससे दर्द कम नहीं होता। असीमित अवस्था में ही क्यों न बने रहें?

एम: यह खोज की सहज प्रवृत्ति है, अज्ञात के प्रति प्रेम है, जो मुझे अस्तित्व में लाता है। अस्तित्व का स्वभाव ही विकास में रोमांच देखना है, ठीक वैसे ही जैसे विकास का स्वभाव ही अस्तित्व में शांति खोजना है। अस्तित्व और विकास का यह परिवर्तन अपरिहार्य है; लेकिन मेरा घर इससे परे है।
प्रश्न: क्या आपका घर ईश्वर में है?
एम: किसी ईश्वर से प्रेम करना और उसकी पूजा करना भी अज्ञानता है। मेरा घर सभी धारणाओं से परे है, चाहे वे कितनी भी उदात्त क्यों न हों।
प्रश्न: लेकिन ईश्वर कोई अवधारणा नहीं है! यह अस्तित्व से परे की वास्तविकता है।
एम: आप अपनी पसंद का कोई भी शब्द इस्तेमाल कर सकते हैं। आप जो भी सोचें, मैं उससे परे हूँ।
प्रश्न: जब आप अपने घर को जान लेते हैं, तो उसमें क्यों नहीं रहते? आपको उससे बाहर क्या ले जाता है?
एम: सामूहिक अस्तित्व के प्रति प्रेम से ही मनुष्य जन्म लेता है और जन्म लेने के बाद नियति से जुड़ जाता है। नियति और विकास एक दूसरे से अविभाज्य हैं। विशिष्ट बनने की इच्छा ही मनुष्य को उसके संपूर्ण अतीत और भविष्य के साथ एक व्यक्ति बना देती है। किसी महान व्यक्ति को देखिए, वह कितना अद्भुत था! फिर भी उसका जीवन कितना कष्टमय था और उसके फल कितने सीमित थे। मनुष्य का व्यक्तित्व कितना पूर्णतः आश्रित है और उसका संसार कितना उदासीन है। फिर भी हम उससे प्रेम करते हैं और उसकी तुच्छता के कारण ही उसकी रक्षा करते हैं।
प्रश्न: युद्ध चल रहा है और चारों ओर अफरा-तफरी मची है। आपको एक भोजन केंद्र का कार्यभार संभालने के लिए कहा गया है। आपको सभी आवश्यक सामग्रियां दी गई हैं, बस काम पूरा करना बाकी है। क्या आप इसे अस्वीकार करेंगे?
एम: मेरे लिए काम करना और न करना एक ही बात है। मैं ज़िम्मेदारी ले भी सकता हूँ और नहीं भी। हो सकता है कि मुझसे ज़्यादा काबिल लोग हों, जैसे पेशेवर खानपान करने वाले। लेकिन मेरा नज़रिया अलग है। मैं मृत्यु को विपत्ति नहीं मानता, जैसे मैं किसी बच्चे के जन्म पर खुश नहीं होता। बच्चा मुसीबतों का कारण बनता है, जबकि मृत व्यक्ति मुसीबतों से मुक्त होता है। जीवन से लगाव दुख से लगाव है। हम उसी चीज़ से प्यार करते हैं जो हमें पीड़ा देती है। यही हमारा स्वभाव है।
मेरे लिए मृत्यु का क्षण भय का नहीं, बल्कि उल्लास का क्षण होगा। मैं जन्म के समय रोया था और हंसते-हंसते मरूंगा।
प्रश्न: मृत्यु के समय चेतना में क्या परिवर्तन होता है?
एम: आप क्या बदलाव की उम्मीद करते हैं? फिल्म का प्रदर्शन समाप्त होने पर सब कुछ वैसा ही रहता है जैसा शुरू में था। अगर आपको याद हो तो, आपके जन्म से पहले की स्थिति ही मृत्यु के बाद की स्थिति होगी।
प्रश्न: मुझे कुछ याद नहीं है।
एम: क्योंकि आपने कभी कोशिश ही नहीं की। यह तो बस मन को एकाग्र करने की बात है। बेशक, इसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: आप समाज सेवा में भाग क्यों नहीं लेते?
एम: लेकिन मैं तो हर समय बस यही करता रहता हूँ! और आप मुझसे किस तरह का समाज सेवा कार्य करवाना चाहते हैं? टुकड़ों में काम करना मेरे बस की बात नहीं।

मेरा रुख स्पष्ट है: पहले पैदा करो, फिर बांटो, पहले खुद खाओ, पहले दो, पहले खुद के बारे में सोचो, फिर दूसरों के बारे में। केवल निस्वार्थ, मिल-बांटकर चलने वाला समाज ही स्थिर और सुखी हो सकता है। यही एकमात्र व्यावहारिक समाधान है। अगर आप इसे नहीं चाहते तो विरोध कीजिए।
प्रश्न: यह सब गुणों का मामला है। जहाँ तमस और रजस प्रबल होते हैं, वहाँ युद्ध अवश्य होता है। जहाँ सत्व का प्रभुत्व होता है, वहाँ शांति होती है। एम: आप इसे चाहे जैसे भी कहें, बात वही है। समाज उद्देश्यों पर आधारित होता है। अगर आप सद्भावना को आधार बना लें, तो आपको विशेष सामाजिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।
प्रश्न: दुनिया बेहतर हो रही है।
एम: दुनिया के पास बेहतर होने के लिए बहुत समय था, फिर भी ऐसा नहीं हुआ। भविष्य के लिए क्या उम्मीद है? बेशक, सद्भाव और शांति के दौर आए हैं और आएंगे, जब सत्व का बोलबाला था, लेकिन चीजें अपनी ही पूर्णता से नष्ट हो जाती हैं। एक परिपूर्ण समाज स्वाभाविक रूप से स्थिर होता है और इसलिए वह गतिहीन होकर पतन की ओर जाता है। शिखर से सभी रास्ते नीचे की ओर जाते हैं। समाज मनुष्यों की तरह होते हैं - वे जन्म लेते हैं, सापेक्षिक पूर्णता के एक बिंदु तक विकसित होते हैं और फिर क्षय होकर मर जाते हैं।
प्रश्न: क्या ऐसी कोई अवस्था नहीं है जो पूर्ण रूप से परिपूर्ण हो और कभी नष्ट न हो?
एम: जिसका आरंभ होता है, उसका अंत भी अवश्य होता है। शाश्वत में सब कुछ परिपूर्ण है, यहीं और अभी।
प्रश्न: लेकिन क्या हम समय के साथ शाश्वतता तक पहुँच पाएंगे?
एम: उचित समय आने पर हम आरंभिक बिंदु पर लौट आएंगे। समय हमें समय से बाहर नहीं निकाल सकता, जैसे अंतरिक्ष हमें अंतरिक्ष से बाहर नहीं निकाल सकता। प्रतीक्षा करने से केवल प्रतीक्षा ही मिलती है। पूर्णता यहीं और अभी है, भविष्य में नहीं, चाहे वह निकट हो या दूर। रहस्य कर्म में है - यहीं और अभी। आपका व्यवहार ही आपको स्वयं से अंधा कर देता है। आप स्वयं को जो भी समझते हों, उसे भूल जाइए और ऐसे कार्य कीजिए जैसे आप पूर्णतः परिपूर्ण हों - पूर्णता के बारे में आपका जो भी विचार हो। आपको केवल साहस की आवश्यकता है। प्रश्न: मुझे ऐसा साहस कहाँ से मिलेगा?
एम: बेशक, अपने भीतर। अपने अंदर झाँकें।
प्रश्न: आपकी कृपा से मदद मिलेगी
एम: मेरी कृपा अब तुमसे कह रही है: अपने भीतर देखो। तुम्हारे पास जो कुछ भी चाहिए, वह सब है। उसका उपयोग करो। अपनी समझ के अनुसार व्यवहार करो, जो तुम्हें उचित लगे वही करो। गलतियों से मत डरो; तुम उन्हें हमेशा सुधार सकते हो, केवल इरादे मायने रखते हैं। चीजों का स्वरूप तुम्हारे वश में नहीं है; तुम्हारे कार्यों के उद्देश्य तुम्हारे वश में हैं।
प्रश्न: अपूर्णता से उत्पन्न कर्म पूर्णता की ओर कैसे ले जा सकता है?
एम: कर्म से पूर्णता प्राप्त नहीं होती; पूर्णता कर्म में ही प्रकट होती है। जब तक आप अपने भावों से अपना मूल्यांकन करते हैं, तब तक उन पर पूरा ध्यान दें; जब आप अपने अस्तित्व को जान लेंगे, तब आपका व्यवहार स्वतः ही परिपूर्ण हो जाएगा।
प्रश्न: यदि मैं शाश्वत रूप से परिपूर्ण हूँ, तो मेरा जन्म ही क्यों हुआ? इस जीवन का उद्देश्य क्या है?

एम: यह ऐसा ही है जैसे यह पूछना कि सोने को आभूषण बनाने से क्या लाभ होता है? आभूषण को सोने का रंग और सुंदरता मिल जाती है; सोना समृद्ध नहीं होता। इसी प्रकार, क्रिया में व्यक्त वास्तविकता क्रिया को अर्थपूर्ण और सुंदर बनाती है।
प्रश्न: वास्तविक को अपनी अभिव्यक्तियों से क्या लाभ होता है?
एम: इससे क्या लाभ हो सकता है? कुछ भी नहीं। लेकिन प्रेम का स्वभाव ही है स्वयं को व्यक्त करना, स्वयं को पुष्ट करना और कठिनाइयों पर विजय पाना। एक बार जब आप यह समझ जाएंगे कि संसार प्रेम का ही साकार रूप है, तो आप इसे बिल्कुल अलग नजरिए से देखेंगे। लेकिन सबसे पहले दुख के प्रति आपका दृष्टिकोण बदलना चाहिए। दुख मूलतः ध्यान आकर्षित करने का एक आह्वान है, जो स्वयं प्रेम की एक गति है। सुख से अधिक, प्रेम विकास चाहता है, चेतना और अस्तित्व का विस्तार और गहनता चाहता है। जो भी बाधा डालता है, वह पीड़ा का कारण बनता है, और प्रेम पीड़ा से पीछे नहीं हटता। सत्व, वह ऊर्जा जो धर्म और व्यवस्थित विकास के लिए कार्य करती है, उसे अवरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए। अवरोध होने पर वह अपने ही विरुद्ध हो जाती है और विनाशकारी बन जाती है। जब भी प्रेम को रोका जाता है और दुख को फैलने दिया जाता है, तो युद्ध अपरिहार्य हो जाता है। अपने पड़ोसी के दुख के प्रति हमारी उदासीनता हमारे दरवाजे पर दुख लाती है।

83. सच्चा गुरु

प्रश्नकर्ता: आपने कुछ दिन पहले कहा था कि आपकी अनुभूति का मूल आपके गुरु पर विश्वास था। उन्होंने आपको आश्वस्त किया कि आप पहले से ही परम सत्य हैं और इसमें कुछ भी अतिरिक्त करने की आवश्यकता नहीं है। आपने उन पर विश्वास किया और बिना किसी प्रयास या कठिन परिश्रम के इसे वहीं छोड़ दिया। अब मेरा प्रश्न यह है: क्या गुरु पर विश्वास के बिना आपको अनुभूति होती? आख़िरकार, आप जो हैं, वही हैं, चाहे आपका मन विश्वास करे या न करे; क्या संदेह गुरु के वचनों के प्रभाव को बाधित करके उन्हें निष्प्रभावी बना देता?
महाराज: आपने सही कहा है—उन्हें कुछ समय के लिए निष्क्रिय कर दिया जाता। प्रश्न: और गुरु के शब्दों में निहित ऊर्जा या शक्ति का क्या होगा?
एम: यह अव्यक्त, अप्रकट ही रहेगा। लेकिन पूरा प्रश्न एक गलतफहमी पर आधारित है। गुरु, शिष्य, उनके बीच का प्रेम और विश्वास, ये एक ही तथ्य हैं, अनेक स्वतंत्र तथ्य नहीं। प्रत्येक दूसरे का अंश है। प्रेम और विश्वास के बिना न गुरु होता, न शिष्य, और न ही उनके बीच कोई संबंध। यह बिजली का दीपक जलाने के लिए स्विच दबाने जैसा है। दीपक, तार, स्विच, ट्रांसफार्मर, ट्रांसमिशन लाइनें और विद्युत केंद्र मिलकर एक इकाई बनाते हैं, तभी प्रकाश मिलता है। इनमें से कोई एक भी तत्व अनुपस्थित हो तो प्रकाश नहीं होगा। अविभाज्य को अलग नहीं करना चाहिए। शब्द तथ्यों का निर्माण नहीं करते; वे या तो उनका वर्णन करते हैं या उन्हें विकृत कर देते हैं। तथ्य हमेशा अशाब्दिक होता है।
प्रश्न: मुझे अब भी समझ नहीं आया; क्या गुरु का वचन अधूरा रह सकता है या वह हमेशा सत्य सिद्ध होगा? उत्तर: ज्ञानी पुरुष के वचन कभी अपना उद्देश्य नहीं चूकते। वे उचित परिस्थितियों के उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करते हैं, जिसमें कुछ समय लग सकता है, और यह स्वाभाविक है, क्योंकि बोने का भी समय होता है और काटने का भी। लेकिन गुरु का वचन एक ऐसा बीज है जो कभी नष्ट

नहीं होता। बेशक, गुरु वास्तविक होना चाहिए, जो शरीर और मन से परे हो, चेतना से परे हो, स्थान और समय से परे हो, द्वैत और एकता से परे हो, समझ और वर्णन से परे हो। वे भले लोग जिन्होंने बहुत कुछ पढ़ा है और जिनके पास कहने के लिए बहुत कुछ है, वे आपको कई उपयोगी बातें सिखा सकते हैं, लेकिन वे वास्तविक गुरु नहीं हैं जिनके वचन हमेशा सत्य सिद्ध होते हैं। वे आपको यह भी कह सकते हैं कि आप स्वयं परम सत्य हैं, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? प्रश्न: फिर भी, यदि किसी कारणवश मैं उन पर भरोसा कर लूं और उनकी बात मान लूं, तो क्या नुकसान मेरा ही होगा?
एम: यदि आप विश्वास करने और आज्ञा मानने में सक्षम हैं, तो आपको जल्द ही अपना सच्चा गुरु मिल जाएगा, या यूं कहें कि वह आपको ढूंढ लेगा।
प्रश्न: क्या आत्मज्ञानी प्रत्येक व्यक्ति गुरु बन जाता है, या क्या कोई व्यक्ति दूसरों को वास्तविकता तक ले जाने की क्षमता के बिना भी वास्तविकता का ज्ञाता हो सकता है?
एम: यदि आप जानते हैं कि आप क्या सिखा रहे हैं, तो आप वही सिखा सकते हैं जो आप जानते हैं। यहाँ द्रष्टात्व और अध्यापन एक ही हैं। परन्तु परम सत्य इन दोनों से परे है। स्वयंभू गुरु परिपक्वता और परिश्रम, गुणों और उपलब्धियों, भाग्य और कृपा की बातें करते हैं; ये सब मात्र मानसिक रचनाएँ हैं, एक आसक्त मन की कल्पनाएँ हैं। सहायता करने के बजाय, ये बाधा उत्पन्न करते हैं।
प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि किसका अनुसरण करना है और किस पर भरोसा नहीं करना है?
एम: जब तक आपको पूरी तरह से यकीन न हो जाए, तब तक किसी पर भी अविश्वास करें। सच्चा गुरु कभी आपको अपमानित नहीं करेगा, न ही आपको स्वयं से विमुख करेगा। वह आपको लगातार आपकी अंतर्निहित पूर्णता की याद दिलाएगा और आपको अपने भीतर खोज करने के लिए प्रोत्साहित करेगा। वह जानता है कि आपको किसी चीज की जरूरत नहीं है, यहां तक कि उसकी भी नहीं, और वह आपको यह याद दिलाने से कभी नहीं थकता। लेकिन स्वयंभू गुरु अपने शिष्यों की अपेक्षा स्वयं की अधिक चिंता करता है।
प्रश्न: आपने कहा कि वास्तविकता, वास्तविक के ज्ञान और शिक्षा से परे है। क्या वास्तविकता का ज्ञान ही सर्वोच्च नहीं है और शिक्षा ही उसकी प्राप्ति का प्रमाण नहीं है?
एम: वास्तविक ज्ञान, या आत्मज्ञान, मन की एक अवस्था है। दूसरों को सिखाना द्वैत में एक गतिविधि है। ये दोनों केवल मन से संबंधित हैं; सत्व भी एक गुण है।
प्रश्न: तो फिर वास्तविक क्या है?
एम: जो मन को अवास्तविक और वास्तविक दोनों रूपों में जानता है, जो अज्ञान और ज्ञान को मन की अवस्थाओं के रूप में जानता है, वही वास्तविक है। जब आपको कंकड़-पत्थर में मिले हीरे दिए जाते हैं, तो आप या तो हीरों को पहचान नहीं पाते या उन्हें पा लेते हैं। देखना ही मायने रखता है। देखने की शक्ति के बिना कंकड़ का धूसरपन और हीरे की सुंदरता कहाँ है? ज्ञात मात्र एक आकृति है और ज्ञान मात्र एक नाम है। ज्ञात मात्र मन की एक अवस्था है। वास्तविक तो उससे परे है।
प्रश्न: निश्चित रूप से, वस्तुनिष्ठ ज्ञान और वस्तुओं के विचार तथा आत्मज्ञान एक ही चीज नहीं हैं। एक के लिए मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, दूसरे के लिए नहीं।

एम: चर्चा के उद्देश्य से आप शब्दों को व्यवस्थित कर सकते हैं और उन्हें अर्थ दे सकते हैं, लेकिन सच्चाई यही है कि सारा ज्ञान अज्ञान का ही एक रूप है। सबसे सटीक नक्शा भी आखिर कागज ही होता है। सारा ज्ञान स्मृति में समाया होता है; यह मात्र पहचान है, जबकि वास्तविकता ज्ञाता और ज्ञाता के द्वैत से परे है।
प्रश्न: तो फिर वास्तविकता को किस आधार पर जाना जाता है?
एम: आपकी भाषा कितनी भ्रामक है! आप अनजाने में यह मान लेते हैं कि वास्तविकता को ज्ञान के माध्यम से भी समझा जा सकता है। और फिर आप वास्तविकता से परे एक ज्ञाता को भी इसमें शामिल कर लेते हैं! यह समझें कि अस्तित्व में रहने के लिए वास्तविकता का ज्ञात होना आवश्यक नहीं है। अज्ञान और ज्ञान मन में होते हैं, वास्तविकता में नहीं।
प्रश्न: यदि यथार्थ का ज्ञान जैसी कोई चीज ही नहीं है, तो मैं उस तक कैसे पहुँचूँ?
एम: जो चीज़ आपके पास पहले से मौजूद है, उसे पाने के लिए हाथ बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। हाथ बढ़ाने से ही आप उसे खो देते हैं। यह सोच छोड़ दें कि आपने उसे नहीं पाया है और मन की सारी उलझनें हटाकर, उसे यहीं और अभी, प्रत्यक्ष अनुभूति के केंद्र में आने दें।
प्रश्न: जब सब कुछ खत्म हो जाता है, तो क्या बचता है?
एम: शून्यता बनी रहती है, जागरूकता बनी रहती है, चेतन आत्मा का शुद्ध प्रकाश बना रहता है। यह ऐसा ही है जैसे यह पूछना कि जब कमरे से सारा फर्नीचर हटा दिया जाए तो क्या बचता है? एक बहुत ही उपयोगी कमरा बचता है। और जब दीवारें भी गिरा दी जाएं, तब भी स्थान बना रहता है। स्थान और समय से परे वास्तविकता का वर्तमान क्षण है।
प्रश्न: क्या गवाह वहीं रहेगा?
एम: जब तक चेतना है, उसका साक्षी भी मौजूद है। दोनों एक साथ प्रकट होते हैं और एक साथ लुप्त हो जाते हैं।
प्रश्न: यदि गवाह भी अस्थाई है, तो उसे इतना महत्व क्यों दिया जाता है? एम: सिर्फ ज्ञात के जादू को तोड़ने के लिए, उस भ्रम को तोड़ने के लिए कि केवल प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकने वाली चीजें ही वास्तविक हैं।
प्रश्न: प्रत्यक्ष अनुभव प्राथमिक है, साक्षी द्वितीयक।
एम: यही मूल बात है। जब तक आप मानते रहेंगे कि केवल बाह्य संसार ही वास्तविक है, तब तक आप उसके दास बने रहेंगे। मुक्त होने के लिए, आपका ध्यान 'मैं हूँ', साक्षी की ओर केंद्रित होना चाहिए। बेशक, ज्ञाता और ज्ञाता एक ही हैं, दो नहीं, लेकिन ज्ञाता के बंधन को तोड़ने के लिए ज्ञाता को प्राथमिकता देनी होगी। दोनों में से कोई भी प्राथमिक नहीं है, दोनों ही उस अवर्णनीय अनुभव की स्मृति में प्रतिबिंबित हैं, जो सदा नया और सदा वर्तमान है, जिसका अनुवाद नहीं किया जा सकता, जो मन से भी तीव्र है।
प्रश्न: महोदय, मैं एक विनम्र साधक हूँ, मुक्ति की खोज में एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटक रहा हूँ। मेरा मन अस्वस्थ है, इच्छाओं से जल रहा है, भय से जकड़ा हुआ है। मेरे दिन पीड़ा से लाल और ऊब से धूसर होकर बीत रहे हैं। मेरी उम्र बढ़ रही है, मेरा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है, मेरा भविष्य अंधकारमय और भयावह है। इस गति से तो मैं दुख में ही जीऊँगा और निराशा में ही मरूँगा। क्या मेरे लिए कोई आशा है? या मैं बहुत देर से आया हूँ?
एम: आपमें कोई खामी नहीं है, लेकिन आपके अपने बारे में विचार पूरी तरह गलत हैं। इच्छा, भय और पीड़ा आप नहीं हैं, बल्कि परिस्थितियाँ और प्रभाव आपके

शरीर पर बने उस व्यक्ति के कारण हैं। आप वह व्यक्ति नहीं हैं। यह बात आपके मन में स्पष्ट रूप से बैठ जानी चाहिए और इसे कभी नहीं भूलना चाहिए।
सामान्यतः इसके लिए लंबे समय तक साधना, वर्षों की तपस्या और ध्यान की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: मेरा मन कमजोर और अस्थिर है। मुझमें साधना करने की न तो शक्ति है और न ही दृढ़ता। मेरी स्थिति निराशाजनक है।
एम: एक तरह से आपका मामला बेहद आशाजनक है। साधना का एक विकल्प है, और वह है विश्वास। यदि आप सार्थक खोज से उत्पन्न दृढ़ विश्वास प्राप्त नहीं कर सकते, तो मेरी उस खोज का लाभ उठाएँ, जिसे मैं आपके साथ साझा करने के लिए अत्यंत उत्सुक हूँ। मैं पूर्ण स्पष्टता से देख सकता हूँ कि आप कभी भी वास्तविकता से विमुख नहीं हुए हैं, न हैं, और न होंगे; आप यहाँ और अभी पूर्णता की परिपूर्णता हैं और कोई भी आपको आपकी विरासत, आपके स्वरूप से वंचित नहीं कर सकता। आप मुझसे किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं हैं, केवल आप इसे नहीं जानते। आप नहीं जानते कि आप क्या हैं और इसलिए आप स्वयं को वह समझते हैं जो आप नहीं हैं। इसीलिए इच्छाएँ, भय और घोर निराशा उत्पन्न होती है। और इनसे बचने के लिए आप निरर्थक गतिविधियों में लिप्त रहते हैं।
मुझ पर भरोसा रखो और इसी भरोसे के साथ जीवन व्यतीत करो। मैं तुम्हें गुमराह नहीं करूँगा। तुम संसार और उसके सृष्टिकर्ता से परे, चेतना और उसके साक्षी से परे, समस्त कथनों और खंडनों से परे, परम सत्य हो। इसे याद रखो, इस पर विचार करो, इस पर अमल करो। अलगाव की भावना को त्याग दो, सब में स्वयं को देखो और उसी के अनुरूप कार्य करो। कर्म से आनंद आएगा और आनंद से दृढ़ विश्वास। आख़िरकार, तुम दुःख में होने के कारण ही स्वयं पर संदेह करते हो। सुख, जो स्वाभाविक, सहज और स्थायी होता है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। या तो वह होता है, या नहीं होता। एक बार जब तुम उस शांति, प्रेम और सुख का अनुभव करने लगोगे, जिसके लिए किसी बाहरी कारण की आवश्यकता नहीं होती, तो तुम्हारे सारे संदेह दूर हो जाएँगे। बस मैंने जो कहा है उसे थाम लो और उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करो।
प्रश्न: क्या आप मुझसे स्मृति के सहारे जीने के लिए कह रहे हैं?
एम: तुम वैसे भी यादों के सहारे जी रहे हो। मैं बस तुमसे यह कह रहा हूँ कि पुरानी यादों को मेरी कही बातों की याद से बदल दो। जैसे तुम पुरानी यादों के आधार पर कार्य कर रहे थे, वैसे ही नई यादों के आधार पर कार्य करो। डरो मत। कुछ समय तक पुरानी और नई यादों के बीच संघर्ष अवश्य रहेगा, लेकिन यदि तुम दृढ़ता से नई यादों का साथ दोगे, तो यह संघर्ष शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा और तुम सहजता से स्वयं को प्रकट कर पाओगे, उस अवस्था को पाओगे जहाँ तुम भ्रम से उत्पन्न इच्छाओं और भयों से भ्रमित नहीं होगे।
प्रश्न: कई गुरुओं में कृपा के प्रतीक के रूप में अपने शिष्यों को वस्तुएँ देने की आदत होती है—जैसे कि सिर पर ओढ़ने वाला कपड़ा, छड़ी, भिक्षापात्र या वस्त्र, इस प्रकार वे अपने शिष्यों के आत्म-साक्षात्कार को संप्रेषित या पुष्ट करते हैं। मुझे ऐसी प्रथाओं में कोई मूल्य नहीं दिखता। इससे आत्म-साक्षात्कार नहीं, बल्कि आत्म-महत्व का संचार होता है। किसी ऐसी बात को सुनने का क्या लाभ जो सुनने में तो बहुत अच्छी लगे, लेकिन सच न हो? एक ओर आप मुझे कई स्वघोषित गुरुओं से सावधान कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर आप चाहते हैं कि मैं आप पर विश्वास करूँ। आप स्वयं को अपवाद क्यों बताते हैं?
एम: मैं तुमसे मुझ पर भरोसा करने के लिए नहीं कहता। मेरे शब्दों पर भरोसा करो और उन्हें याद रखो, मैं तुम्हारी खुशी चाहता हूँ, अपनी नहीं। उन लोगों

पर भरोसा मत करो जो तुम्हारे और तुम्हारे सच्चे स्वरूप के बीच दूरी पैदा करते हैं और खुद को मध्यस्थ बताते हैं। मैं ऐसा कुछ नहीं करता। मैं कोई वादा भी नहीं करता। मैं बस इतना कहता हूँ: अगर तुम मेरे शब्दों पर भरोसा करोगे और उन्हें परखोगे, तो तुम खुद जान जाओगे कि वे कितने सत्य हैं। अगर तुम आगे बढ़ने से पहले सबूत मांगोगे, तो मैं बस इतना ही कह सकता हूँ: मैं ही सबूत हूँ। मैंने अपने गुरु के शब्दों पर भरोसा किया और उन्हें अपने मन में रखा और मैंने पाया कि वे सही थे, कि मैं अनंत वास्तविकता था, हूँ और रहूँगा, जो सब कुछ समाहित करता है, सब कुछ पार करता है।
जैसा कि आपने कहा, आपके पास लंबे अभ्यास के लिए न तो समय है और न ही ऊर्जा। मैं आपको एक विकल्प सुझाता हूँ। विश्वास पर मेरे शब्दों को स्वीकार करें और एक नया जीवन जिएं, या दुख में जिएं और मर जाएं।
प्रश्न: यह सच होने के लिए बहुत अच्छा लगता है।
एम: सलाह की सरलता से गुमराह मत होइए। भोले-भाले और सीधे-सादे लोगों पर भरोसा करने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। यह जानना कि आप अपने मन के कैदी हैं, कि आप अपनी ही बनाई हुई काल्पनिक दुनिया में जी रहे हैं, यही ज्ञान की शुरुआत है। इससे कुछ भी न चाहना, इसे पूरी तरह से त्यागने के लिए तैयार रहना, यही सच्ची लगन है। केवल ऐसी लगन, जो सच्ची निराशा से जन्मी हो, वही आपको मुझ पर भरोसा करने के लिए प्रेरित करेगी।
प्रश्न: क्या मैंने पर्याप्त कष्ट नहीं सहा है?
एम: दुख ने तुम्हें सुस्त बना दिया है, तुम उसकी भयावहता को देख नहीं पा रहे हो। तुम्हारा पहला काम है अपने भीतर और अपने आसपास के दुख को पहचानना; उसके बाद मुक्ति के लिए तीव्र लालसा रखना। यही तीव्र लालसा तुम्हें राह दिखाएगी; तुम्हें किसी और मार्गदर्शक की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: दुख ने मुझे सुस्त और यहां तक कि स्वयं के प्रति भी उदासीन बना दिया है।
एम: हो सकता है कि दुख नहीं, बल्कि आनंद ने तुम्हें सुस्त बना दिया हो।
इसकी जांच करो।
प्रश्न: कारण चाहे जो भी हो; मैं सुस्त हूँ। मुझमें न तो इच्छाशक्ति है और न ही ऊर्जा।
एम: ओह, नहीं। आपके पास पहले कदम के लिए पर्याप्त ऊर्जा है। और प्रत्येक कदम अगले कदम के लिए पर्याप्त ऊर्जा उत्पन्न करेगा। ऊर्जा आत्मविश्वास से आती है और आत्मविश्वास अनुभव से आता है।
प्रश्न: क्या गुरु बदलना सही है?
एम: बदलाव क्यों न हो? गुरु तो मील के पत्थर की तरह होते हैं? एक से दूसरे की ओर बढ़ना स्वाभाविक है। हर गुरु आपको दिशा और दूरी बताता है, जबकि सद्गुरु, शाश्वत गुरु, स्वयं मार्ग हैं। जब आप यह समझ जाते हैं कि मार्ग ही मंजिल है और आप हमेशा मार्ग पर हैं, किसी मंजिल तक पहुँचने के लिए नहीं, बल्कि उसकी सुंदरता और ज्ञान का आनंद लेने के लिए, तब जीवन एक कार्य नहीं रह जाता, बल्कि स्वाभाविक और सरल हो जाता है, अपने आप में एक परमानंद। प्रश्न: तो, पूजा-अर्चना, प्रार्थना, योगाभ्यास की कोई आवश्यकता नहीं है? एम: थोड़ी-बहुत नियमित सफाई, धुलाई और स्नान करने से कोई नुकसान नहीं होता। आत्म-जागरूकता आपको हर कदम पर बताती है कि क्या करने की आवश्यकता है। जब सब कुछ हो जाता है, तो मन शांत रहता है।
अब आप जागृत अवस्था में हैं, एक ऐसा व्यक्ति जिसका नाम और रूप है, सुख-दुख हैं। यह व्यक्ति आपके जन्म से पहले नहीं था, और न ही आपकी मृत्यु के बाद

रहेगा। इस व्यक्ति से संघर्ष करके इसे वह बनाने की कोशिश करने के बजाय जो यह नहीं है, क्यों न जागृत अवस्था से परे जाकर व्यक्तिगत जीवन को पूरी तरह से त्याग दें? इसका अर्थ व्यक्ति का अंत नहीं है; इसका अर्थ केवल उसे सही परिप्रेक्ष्य में देखना है।
प्रश्न: एक और प्रश्न। आपने कहा कि मेरे जन्म से पहले मैं वास्तविकता के शुद्ध स्वरूप के साथ एकरूप था; यदि ऐसा है, तो मेरे जन्म का निर्णय किसने लिया?
एम: असल में तुम्हारा जन्म कभी नहीं हुआ और न ही कभी तुम्हारी मृत्यु होगी। लेकिन अब तुम कल्पना करते हो कि तुम्हारा शरीर है और तुम पूछते हो कि इस अवस्था का कारण क्या है। भ्रम की सीमा में इसका उत्तर है: स्मृति से उत्पन्न इच्छा तुम्हें शरीर की ओर आकर्षित करती है और तुम्हें उसके साथ एक होने का एहसास कराती है। लेकिन यह केवल सापेक्षिक दृष्टि से ही सत्य है। वास्तव में, न तो कोई शरीर है और न ही कोई संसार जो उसे समाहित कर सके; केवल एक मानसिक अवस्था है, एक स्वप्न जैसी अवस्था, जिसे उसकी वास्तविकता पर प्रश्न उठाकर आसानी से दूर किया जा सकता है।
प्रश्न: आपके मरने के बाद, क्या आप फिर से आएंगे? यदि मैं काफी समय तक जीवित रहूं, तो क्या मैं आपसे फिर मिल पाऊंगा?
एम: आपके लिए शरीर वास्तविक है, मेरे लिए नहीं। जैसा आप मुझे देखते हैं, मैं केवल आपकी कल्पना में विद्यमान हूँ। निश्चित रूप से, जब भी आपको मेरी आवश्यकता होगी, आप मुझे फिर से देखेंगे। इससे मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ता, जैसे सूर्य पर सूर्योदय और सूर्यास्त का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर यह अवश्य ही उपस्थित होगा।
आप ज्ञान के लिए तड़पते हैं, मैं नहीं। मुझमें वह असुरक्षा की भावना नहीं है जो आपको जानने के लिए प्रेरित करती है। मैं जिज्ञासु हूँ, एक बच्चे की तरह। लेकिन ज्ञान में शरण लेने के लिए मेरे भीतर कोई चिंता नहीं है। इसलिए, मुझे इस बात की कोई फिक्र नहीं है कि मेरा पुनर्जन्म होगा या संसार कब तक चलेगा। ये सब भय से उत्पन्न प्रश्न हैं।

84. आपका लक्ष्य ही आपका गुरु है।

प्रश्नकर्ता: आप बता रहे थे कि बहुत से स्वघोषित गुरु हैं, लेकिन सच्चा गुरु मिलना बहुत मुश्किल है। बहुत से ज्ञानी खुद को आत्मज्ञानी समझते हैं, लेकिन उनके पास केवल किताबी ज्ञान और खुद को बहुत ऊँचा समझने का भाव होता है। कभी-कभी वे शिष्यों को प्रभावित करते हैं, यहाँ तक कि मोहित भी कर लेते हैं और उनका समय व्यर्थ की साधनाओं में बर्बाद करवा देते हैं। कुछ वर्षों बाद जब शिष्य आत्म-विश्लेषण करता है, तो उसे कोई परिवर्तन नहीं दिखता। जब वह अपने गुरु से शिकायत करता है, तो उसे वही घिसा-पिटा जवाब मिलता है कि उसने पर्याप्त प्रयास नहीं किया। दोष शिष्य के हृदय में आस्था और प्रेम की कमी पर डाला जाता है, जबकि वास्तव में दोष गुरु पर होता है, जिसका शिष्यों को स्वीकार करने और उनकी आशाएँ जगाने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे गुरुओं से स्वयं को कैसे बचाया जाए?
महाराज: दूसरों की इतनी चिंता क्यों? गुरु चाहे जो भी हो, यदि वह शुद्ध हृदय का हो और सद्भाव से कार्य करे, तो वह अपने शिष्यों को कोई हानि नहीं पहुँचाएगा। यदि प्रगति नहीं होती, तो दोष शिष्यों का है, उनकी आलस्य और

आत्म-संयम की कमी का। दूसरी ओर, यदि शिष्य गंभीर हो और बुद्धिमत्तापूर्वक और उत्साह से अपनी साधना में लगा रहे, तो उसे निश्चित रूप से एक अधिक योग्य गुरु मिलेगा, जो उसे आगे ले जाएगा। आपका प्रश्न तीन गलत धारणाओं से उपजा है: कि दूसरों की चिंता करना आवश्यक है; कि कोई दूसरे का मूल्यांकन कर सकता है; और कि शिष्य की प्रगति उसके गुरु का कर्तव्य और उत्तरदायित्व है। वास्तव में, गुरु की भूमिका केवल निर्देश देना और प्रोत्साहन देना है; शिष्य पूरी तरह से स्वयं के लिए उत्तरदायी है।
प्रश्न: हमें बताया जाता है कि गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण ही पर्याप्त है, बाकी सब गुरु ही कर देंगे।
एम: बेशक, जब पूर्ण समर्पण होता है, अतीत, वर्तमान और भविष्य, शारीरिक और आध्यात्मिक सुरक्षा और प्रतिष्ठा से जुड़ी सभी चिंताओं का पूर्ण त्याग हो जाता है, तब प्रेम और सौंदर्य से परिपूर्ण एक नए जीवन का जन्म होता है; तब गुरु का महत्व नहीं रह जाता, क्योंकि शिष्य आत्मरक्षा के कवच को तोड़ चुका होता है। पूर्ण समर्पण ही अपने आप में मुक्ति है।
प्रश्न: जब शिष्य और गुरु दोनों ही अयोग्य हों तो क्या होगा?
एम: अंततः सब ठीक हो जाएगा। आखिरकार, दोनों के वास्तविक स्वरूप पर उनके द्वारा कुछ समय के लिए निभाए जा रहे नाटक का कोई असर नहीं पड़ता। वे गंभीर हो जाएंगे, परिपक्व हो जाएंगे और रिश्ते के एक उच्च स्तर पर पहुंच जाएंगे। प्रश्न: या फिर वे अलग हो सकते हैं।
एम: हाँ, वे अलग हो सकते हैं। आख़िरकार, कोई भी रिश्ता हमेशा के लिए नहीं होता। द्वैत एक अस्थायी अवस्था है।
प्रश्न: क्या यह महज़ संयोग था कि मैं तुमसे मिली और क्या किसी और संयोग से हम अलग हो जाएँगे और फिर कभी नहीं मिलेंगे? या क्या तुमसे मिलना किसी ब्रह्मांडीय योजना का हिस्सा है, हमारे जीवन के महान नाटक का एक अंश है? एम: वास्तविकता का अर्थ होता है और अर्थपूर्णता का संबंध वास्तविकता से होता है। यदि हमारा रिश्ता आपके और मेरे लिए सार्थक है, तो यह आकस्मिक नहीं हो सकता। भविष्य वर्तमान को उतना ही प्रभावित करता है जितना अतीत। प्रश्न: मैं कैसे पता लगाऊं कि कौन असली संत है और कौन नहीं?
एम: आप ऐसा नहीं कर सकते, जब तक कि आपको मनुष्य के हृदय का स्पष्ट ज्ञान न हो। बाहरी दिखावट भ्रामक होती है। स्पष्ट दृष्टि के लिए आपका मन शुद्ध और अनासक्त होना चाहिए। जब तक आप स्वयं को भलीभांति नहीं जान लेते, तब तक आप दूसरे को कैसे जान सकते हैं? और जब आप स्वयं को जान लेते हैं - तो आप ही दूसरे के समान हो जाते हैं।
कुछ समय के लिए दूसरों को अकेला छोड़ दें और स्वयं का आत्मनिरीक्षण करें। अपने बारे में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो आप नहीं जानते—आप क्या हैं, आप कौन हैं, आपका जन्म कैसे हुआ, आप अभी क्या कर रहे हैं और क्यों, आप कहाँ जा रहे हैं, आपके जीवन, आपकी मृत्यु, आपके भविष्य का अर्थ और उद्देश्य क्या है? क्या आपका कोई अतीत है, क्या आपका कोई भविष्य है? आपका संपूर्ण अस्तित्व सुख और शांति के लिए प्रयासरत है, फिर भी आप अशांति और दुःख में क्यों जी रहे हैं? ये गंभीर प्रश्न हैं और इन पर पहले ध्यान देना आवश्यक है। आपको यह जानने की न तो आवश्यकता है और न ही समय कि कौन ज्ञानी है और कौन नहीं?
प्रश्न: मुझे अपने गुरु का चयन सही ढंग से करना चाहिए।
एम: सही व्यक्ति बनो, सही गुरु तुम्हें अवश्य मिल जाएगा।
प्रश्न: आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं: सही गुरु को कैसे खोजें?

एम: लेकिन मैंने आपके सवाल का जवाब दे दिया है। गुरु की तलाश मत करो, उसके बारे में सोचो भी मत। अपने लक्ष्य को ही अपना गुरु बनाओ। आखिर गुरु तो सिर्फ एक साधन है, लक्ष्य नहीं। वह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि आप उससे क्या अपेक्षा रखते हैं। अब, आप क्या अपेक्षा रखते हैं? प्रश्न: उनकी कृपा से मुझे सुखी, शक्तिशाली और शांतिवान बनाया जाएगा। एम: कैसी महत्वाकांक्षाएँ! समय और स्थान की सीमाओं में बंधा हुआ, मात्र शरीर-मन का एक प्राणी, जन्म और मृत्यु के बीच पीड़ा की एक तड़प, कैसे सुखी हो सकता है? सुख की उत्पत्ति की परिस्थितियाँ ही उसे असंभव बना देती हैं। शांति, शक्ति, सुख, ये कभी व्यक्तिगत अवस्थाएँ नहीं होतीं, कोई भी 'मेरी शांति' या 'मेरी शक्ति' नहीं कह सकता - क्योंकि 'मेरी' शब्द विशिष्टता को दर्शाता है, जो नाजुक और असुरक्षित है।
प्रश्न: मैं केवल अपने सीमित अस्तित्व को ही जानता हूँ; इसके अलावा और कुछ नहीं है।
एम: बिलकुल नहीं, आप ऐसा नहीं कह सकते। गहरी नींद में आप किसी बंधन में नहीं होते। आप सोने के लिए कितने तैयार और इच्छुक होते हैं, सोते समय आप कितने शांत, स्वतंत्र और खुश होते हैं!
प्रश्न: मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता।
एम: इसे नकारात्मक रूप से समझिए। सोते समय आपको न तो दर्द होता है, न ही आप बंधे होते हैं, और न ही बेचैन होते हैं।
प्रश्न: मैं आपकी बात समझ गया। जागते समय, मुझे पता होता है कि मैं हूँ, लेकिन खुश नहीं होता; सोते समय मैं होता हूँ, खुश होता हूँ, लेकिन मुझे इसका एहसास नहीं होता। मुझे बस इतना जानना है कि मैं स्वतंत्र और खुश हूँ। एम: बिलकुल सही। अब, अपने भीतर जाइए, एक ऐसी अवस्था में जो जागृत अवस्था से मिलती-जुलती हो, जिसमें आप स्वयं के प्रति सजग हों, परन्तु संसार के प्रति नहीं। उस अवस्था में आप बिना किसी संदेह के जान जाएँगे कि आपके अस्तित्व के मूल में आप स्वतंत्र और सुखी हैं। समस्या बस इतनी है कि आप अनुभवों के आदी हैं और अपनी यादों को संजो कर रखते हैं। वास्तव में, बात इसके उलट है; जो याद किया जाता है वह कभी वास्तविक नहीं होता; वास्तविक तो वर्तमान है। प्रश्न: मैं ये सब बातें मौखिक रूप से तो समझ लेता हूँ, पर ये मेरे भीतर समाहित नहीं हो पातीं। ये मेरे मन में एक चित्र मात्र बनकर रह जाती हैं। क्या गुरु का कार्य इस चित्र को जीवंत करना नहीं है?
एम: फिर से, बात बिल्कुल उलट है। चित्र सजीव है; मन निर्जीव है। जैसे मन शब्दों और छवियों से बना है, वैसे ही मन में दिखने वाला हर प्रतिबिंब भी। यह वास्तविकता को शब्दों से ढक देता है और फिर शिकायत करता है। आप कहते हैं कि चमत्कार करने के लिए गुरु की आवश्यकता है। आप केवल शब्दों से खेल रहे हैं। गुरु और शिष्य एक ही हैं, जैसे मोमबत्ती और उसकी लौ। जब तक शिष्य गंभीर न हो, उसे शिष्य नहीं कहा जा सकता। जब तक गुरु पूर्णतः प्रेम और आत्म-समर्पण से परिपूर्ण न हो, उसे गुरु नहीं कहा जा सकता। केवल वास्तविकता ही वास्तविकता को जन्म देती है, असत्य नहीं।
प्रश्न: मुझे पता है कि मैं झूठा हूँ। मुझे सच्चा कौन बनाएगा?
एम: आपके कहे हुए शब्द ही काफी हैं। 'मैं देख सकता हूँ कि मैं झूठा हूँ' इस वाक्य में ही आपको मुक्ति दिलाने के लिए सब कुछ समाहित है। इस पर मनन कीजिए, गहराई से विचार कीजिए, इसकी जड़ तक जाइए; यह अपना असर दिखाएगा।
शक्ति शब्द में है, व्यक्ति में नहीं।

प्रश्न: मैं आपकी बात पूरी तरह समझ नहीं पा रहा हूँ। एक ओर आप कहते हैं कि गुरु की आवश्यकता है; दूसरी ओर कहते हैं कि गुरु केवल सलाह दे सकते हैं, प्रयास तो मुझे ही करना है। कृपया स्पष्ट रूप से बताएं - क्या गुरु के बिना आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, या सच्चे गुरु की खोज अनिवार्य है? एम: सबसे ज़रूरी है सच्चे शिष्य को पाना। यकीन मानिए, सच्चा शिष्य बहुत दुर्लभ होता है, क्योंकि वह पल भर में ही गुरु की ज़रूरत से ऊपर उठ जाता है और अपने आप को पा लेता है। यह समझने में समय बर्बाद न करें कि आपको जो सलाह मिल रही है, वह केवल ज्ञान पर आधारित है या फिर वास्तविक अनुभव पर! बस उसका निष्ठापूर्वक पालन करें। अगर ज़रूरत होगी, तो जीवन आपको दूसरा गुरु देगा। या फिर आपको सभी बाहरी मार्गदर्शन से वंचित करके आपके अपने ज्ञान के भरोसे छोड़ देगा। यह समझना बहुत ज़रूरी है कि शिक्षा ही मायने रखती है, व्यक्ति या गुरु नहीं। आपको एक पत्र मिलता है जो आपको हंसाता या रुलाता है। यह डाकिया नहीं करता। गुरु तो बस आपको आपके वास्तविक स्वरूप के बारे में खुशखबरी सुनाते हैं और आपको उस तक वापस जाने का रास्ता दिखाते हैं। एक तरह से गुरु ही उसके संदेशवाहक हैं। कई संदेशवाहक होंगे, लेकिन संदेश एक ही है: आप जो हैं, वही बनें। या आप इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं: जब तक आप स्वयं को नहीं जान लेते, तब तक आप यह नहीं जान सकते कि आपका असली गुरु कौन है। जब आप स्वयं को जान लेते हैं, तो आप पाते हैं कि आपके सभी गुरुओं ने आपके ज्ञानोदय में योगदान दिया है। आपकी अनुभूति ही इस बात का प्रमाण है कि आपके गुरु वास्तविक थे। इसलिए, उन्हें वैसे ही स्वीकार करें जैसे वे हैं, उनकी हर बात को पूरी लगन और उत्साह से मानें और अपने हृदय पर भरोसा रखें कि यदि कुछ गलत हो तो वह आपको आगाह करेगा। यदि मन में संदेह उत्पन्न हो तो उससे लड़ें नहीं। जो निर्विवाद है, उसी पर टिके रहें और संदेह को छोड़ दें।
प्रश्न: मेरे एक गुरु हैं और मैं उनसे बहुत प्रेम करता हूँ। लेकिन क्या वे मेरे सच्चे गुरु हैं, यह मुझे नहीं पता।
एम: खुद पर ध्यान दें। अगर आप खुद में बदलाव और विकास देखती हैं, तो इसका मतलब है कि आपको सही साथी मिल गया है। वह सुंदर हो या बदसूरत, सुखद हो या अप्रिय, आपकी चापलूसी करे या डांटे; आंतरिक विकास के एक महत्वपूर्ण तथ्य के अलावा और कुछ मायने नहीं रखता। अगर आप ऐसा नहीं देखतीं, तो वह आपका दोस्त तो हो सकता है, लेकिन आपका गुरु नहीं।
प्रश्न: जब मैं किसी पढ़े-लिखे यूरोपीय व्यक्ति से मिलता हूँ और उससे किसी गुरु और उनकी शिक्षाओं के बारे में बात करता हूँ, तो उसकी प्रतिक्रिया होती है: 'ऐसा बकवास सिखाने वाला आदमी पागल ही होगा।' मैं उसे क्या कहूँ? एम: उसे उसके आत्म-बोध से परिचित कराओ। उसे दिखाओ कि वह स्वयं को कितना कम जानता है, कैसे वह अपने बारे में कही गई सबसे बेतुकी बातों को भी परम सत्य मान लेता है। उसे बताया जाता है कि वह शरीर है, जन्म लिया है, मरेगा, माता- पिता हैं, कर्तव्य हैं, दूसरों की पसंद को पसंद करना और दूसरों के भय को सहना सीखता है। पूरी तरह से वंशानुक्रम और समाज का वश में, वह स्मृति के सहारे जीता है और आदतों के अनुसार कार्य करता है। स्वयं से और अपने सच्चे हितों से अनभिज्ञ, वह झूठे लक्ष्यों का पीछा करता है और हमेशा निराश रहता है। उसका जीवन और मृत्यु अर्थहीन और पीड़ादायक हैं, और उसे कोई रास्ता नज़र नहीं आता। फिर उसे बताओ कि उसके लिए एक रास्ता है, जो उसकी पहुँच में ही है, विचारों के किसी दूसरे समूह में परिवर्तित होना नहीं, बल्कि जीवन के सभी विचारों और तौर-तरीकों से मुक्ति। उसे गुरुओं और शिष्यों के बारे में

मत बताओ - यह सोचने का तरीका उसके लिए नहीं है। उसका मार्ग आंतरिक है, वह एक आंतरिक प्रेरणा से प्रेरित है और एक आंतरिक प्रकाश द्वारा निर्देशित है। उसे विद्रोह करने के लिए प्रेरित करो और वह प्रतिक्रिया देगा। उसे यह समझाने की कोशिश मत करो कि फलां व्यक्ति ज्ञानी है और उसे गुरु के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जब तक उसे खुद पर भरोसा नहीं होगा, तब तक वह दूसरों पर भरोसा नहीं कर सकता। और भरोसा अनुभव के साथ ही आएगा।
प्रश्न: कितनी अजीब बात है! मैं गुरु के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता।
एम: यह स्वभाव की बात है। आप भी सही हैं। आपके लिए भगवान की स्तुति करना ही काफी है। आपको आत्मज्ञान की इच्छा रखने या साधना करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान का नाम ही आपके लिए पर्याप्त है। उसी से अपना जीवन यापन करें। प्रश्न: कुछ शब्दों का यह निरंतर दोहराव, क्या यह एक प्रकार का पागलपन नहीं है?
एम: यह पागलपन है, लेकिन यह जानबूझकर किया गया पागलपन है। हर तरह की पुनरावृत्ति तमस है, लेकिन ईश्वर के नाम का जाप करना अपने उच्च उद्देश्य के कारण सत्व-तमस है। सत्व की उपस्थिति के कारण, तमस क्षीण हो जाएगा और पूर्ण वैराग्य, अनासक्ति, त्याग, अलगाव और अपरिवर्तनशीलता का रूप धारण कर लेगा। तमस वह मजबूत आधार बन जाता है जिस पर एक संतुलित जीवन जिया जा सकता है।
प्रश्न: क्या अपरिवर्तनीय वस्तु का भी अंत होता है?
एम: परिवर्तन ही मृत्यु है। जो अपरिवर्तनीय है, वह न तो जीवित है और न ही मृत; वह जीवन और मृत्यु का शाश्वत साक्षी है। आप उसे मृत नहीं कह सकते, क्योंकि वह सजग है। न ही आप उसे सजीव कह सकते हैं, क्योंकि वह बदलता नहीं है। वह बिल्कुल आपके टेप-रिकॉर्डर की तरह है। वह रिकॉर्ड करता है, वह पुनरुत्पादित करता है - सब कुछ अपने आप। आप केवल सुनते हैं। इसी प्रकार, मैं जो कुछ भी घटित होता है, उसे देखता हूँ, जिसमें आपसे मेरी बातचीत भी शामिल है। मैं नहीं बोलता, शब्द मेरे मन में आते हैं और फिर मैं उन्हें सुनता हूँ।
प्रश्न: क्या यह सबके साथ ऐसा नहीं होता?
एम: किसने मना किया? लेकिन आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आप सोचते हैं, आप बोलते हैं, जबकि मेरे लिए सोचना और बोलना दो अलग-अलग बातें हैं।
प्रश्न: विचार करने के लिए दो स्थितियाँ हैं। या तो मुझे गुरु मिल गया है, या नहीं मिला है। दोनों ही स्थितियों में सही कार्य क्या है?
एम: आप कभी भी गुरुविहीन नहीं होते, क्योंकि वे आपके हृदय में शाश्वत रूप से विद्यमान हैं। कभी-कभी वे स्वयं को प्रकट करते हैं और आपके जीवन में एक उत्थानकारी और सुधारक कारक के रूप में, एक माँ, एक पत्नी, एक शिक्षक के रूप में आते हैं; या वे धर्म और पूर्णता की ओर एक आंतरिक प्रेरणा के रूप में बने रहते हैं। आपको बस उनका पालन करना है और जो वे आपसे कहते हैं उसे करना है। वे आपसे जो चाहते हैं वह सरल है: आत्म-जागरूकता, आत्म-संयम और आत्म-समर्पण सीखें। यह कठिन लग सकता है, लेकिन यदि आप गंभीर हैं तो यह आसान है। और यदि आप गंभीर नहीं हैं तो यह बिल्कुल असंभव है। गंभीरता आवश्यक और पर्याप्त दोनों है। गंभीरता के आगे सब कुछ झुक जाता है।
प्रश्न: किसी व्यक्ति में गंभीरता कैसे आती है?
एम: करुणा ही गंभीरता की बुनियाद है। स्वयं के प्रति और दूसरों के प्रति करुणा, जो स्वयं के और दूसरों के कष्टों से उत्पन्न होती है।

प्रश्न: क्या मुझे गंभीर होने के लिए कष्ट सहना पड़ेगा?
एम: यदि आप संवेदनशील हैं और दूसरों के दुख को समझते हैं, जैसा कि बुद्ध ने किया था, तो आपको इसकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन यदि आप निर्दयी और दयाहीन हैं, तो आपका अपना दुख आपको अनिवार्य प्रश्न पूछने पर मजबूर कर देगा। प्रश्न: मैं कष्ट भोग रहा हूँ, पर उतना नहीं जितना सहना चाहिए। जीवन अप्रिय है, पर सहनीय है। मेरे छोटे-छोटे सुख मेरे छोटे-मोटे कष्टों की भरपाई कर देते हैं और कुल मिलाकर मैं अपने परिचित अधिकांश लोगों से बेहतर स्थिति में हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी स्थिति नाजुक है, कि किसी भी क्षण कोई विपत्ति मुझ पर आ सकती है। क्या मुझे सत्य की राह पर चलने के लिए किसी संकट का इंतजार करना चाहिए?
एम: जिस क्षण आपको अपनी नाजुक स्थिति का एहसास हुआ, आप सचेत हो गए। अब, सचेत रहें, ध्यान दें, पूछताछ करें, जांच करें, अपने मन और शरीर की गलतियों को पहचानें और उन्हें त्याग दें।
प्रश्न: ऊर्जा कहाँ से आएगी? मैं तो जलते हुए घर में फंसे लकवाग्रस्त व्यक्ति की तरह हूँ।
एम: यहां तक कि लकवाग्रस्त लोग भी कभी-कभी खतरे के क्षण में अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं! लेकिन आप लकवाग्रस्त नहीं हैं, आप बस ऐसा सोचते हैं। पहला कदम उठाइए और आप अपनी मंजिल की ओर बढ़ जाएंगे।
प्रश्न: मुझे ऐसा लगता है कि शरीर पर मेरी पकड़ इतनी मजबूत है कि मैं इस विचार को छोड़ ही नहीं सकता कि मैं ही शरीर हूँ। जब तक शरीर रहेगा, यह विचार मुझसे जुड़ा रहेगा। कुछ लोग मानते हैं कि जीवित रहते हुए किसी भी प्रकार का अहसास संभव नहीं है और मैं उनसे सहमत प्रतीत होता हूँ।
एम: सहमत या असहमत होने से पहले, शरीर की अवधारणा की ही पड़ताल क्यों न करें? क्या मन शरीर में प्रकट होता है या शरीर मन में? ‘मैं-शरीर हूँ’ की अवधारणा को समझने के लिए निश्चित रूप से मन का होना आवश्यक है। मन के बिना शरीर ‘मेरा शरीर’ नहीं हो सकता। जब मन निष्क्रिय होता है, तब ‘मेरा शरीर’ हमेशा अनुपस्थित रहता है। जब मन विचारों और भावनाओं में गहराई से लीन होता है, तब भी यह अनुपस्थित रहता है। एक बार जब आप यह समझ लेते हैं कि शरीर मन पर, मन चेतना पर और चेतना जागरूकता पर निर्भर है, न कि इसका उल्टा, तो मृत्यु तक आत्म-साक्षात्कार की प्रतीक्षा करने के आपके प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। ऐसा नहीं है कि आपको पहले ‘मैं-शरीर हूँ’ की अवधारणा से मुक्त होना होगा और फिर आत्म-साक्षात्कार करना होगा। यह निश्चित रूप से इसके विपरीत है - आप असत्य से चिपके रहते हैं, क्योंकि आप सत्य को नहीं जानते। आत्म-साक्षात्कार के लिए पूर्णता नहीं, बल्कि गंभीरता आवश्यक है। सद्गुण और शक्तियाँ आत्म-साक्षात्कार के साथ आती हैं, उससे पहले नहीं।

85. ‘मैं हूँ’: समस्त अनुभवों का आधार
प्रश्नकर्ता: मैंने आपको अपने बारे में ऐसे कथन कहते सुना है जैसे: 'मैं कालातीत हूँ, गुणों से परे अपरिवर्तनीय हूँ', इत्यादि। आपको ये बातें कैसे पता हैं? और आप ऐसा क्यों कहते हैं?
महाराज: मैं केवल 'मैं हूँ' की उत्पत्ति से पहले की अवस्था का वर्णन करने का प्रयास कर रहा हूँ, लेकिन वह अवस्था स्वयं मन और भाषा से परे होने के कारण अवर्णनीय है।
प्रश्न: ‘मैं हूँ’ समस्त अनुभवों का आधार है। आप जिस बात का वर्णन करने का प्रयास कर रहे हैं, वह भी एक अनुभव ही होगा, सीमित और क्षणभंगुर। आप स्वयं

को अपरिवर्तनीय बताते हैं। मुझे इस शब्द की ध्वनि सुनाई देती है, मुझे इसका शब्दकोशीय अर्थ याद है, लेकिन अपरिवर्तनीय होने का अनुभव मुझे नहीं होता। मैं इस अवरोध को कैसे पार कर सकता हूँ और व्यक्तिगत रूप से, गहराई से, अपरिवर्तनीय होने का अर्थ जान सकता हूँ?
एम: शब्द स्वयं ही सेतु है। इसे याद रखें, इस पर विचार करें, इसका अन्वेषण करें, इसके चारों ओर घूमें, इसे हर दिशा से देखें, इसमें पूरी लगन से गोता लगाएँ: सभी विलंबों और निराशाओं को सहन करें, जब तक कि अचानक मन शब्द से दूर होकर, शब्द से परे की वास्तविकता की ओर मुड़ न जाए। यह किसी व्यक्ति को केवल उसका नाम जानकर खोजने के प्रयास के समान है। एक दिन आता है जब आपकी खोज आपको उस व्यक्ति तक ले जाती है और नाम ही वास्तविकता बन जाता है। शब्द मूल्यवान हैं, क्योंकि शब्द और उसके अर्थ के बीच एक कड़ी होती है और यदि कोई व्यक्ति शब्द का गहन अध्ययन करे, तो वह अवधारणा से परे जाकर उसके मूल में निहित अनुभव तक पहुँच जाता है। वास्तव में, शब्दों से परे जाने के ऐसे बार-बार किए जाने वाले प्रयास ही ध्यान कहलाते हैं। साधना मौखिक से अशाब्दिक की ओर जाने का एक निरंतर प्रयास मात्र है। यह कार्य असंभव प्रतीत होता है, जब तक कि अचानक सब कुछ स्पष्ट, सरल और आश्चर्यजनक रूप से आसान न हो जाए। लेकिन, जब तक आप अपने वर्तमान जीवन जीने के तरीके में रुचि रखते हैं, तब तक आप अज्ञात में अंतिम छलांग लगाने से कतराते रहेंगे।
प्रश्न: मुझे अज्ञात में रुचि क्यों होनी चाहिए? अज्ञात का क्या उपयोग है? एम: बिलकुल भी उपयोगी नहीं। लेकिन यह जानना ज़रूरी है कि आपको ज्ञात की संकीर्ण सीमाओं में क्या बांधे रखता है। ज्ञात का पूर्ण और सही ज्ञान ही आपको अज्ञात की ओर ले जाता है। आप इसे उपयोग और लाभ के रूप में नहीं सोच सकते; पूर्णतः अनासक्त होना, सभी स्वार्थपरक विचारों से परे होना, मुक्ति की एक अनिवार्य अवस्था है। आप इसे मृत्यु कह सकते हैं; मेरे लिए यह जीवन का सबसे सार्थक और गहन रूप है, क्योंकि मैं जीवन की समग्रता और परिपूर्णता के साथ एक हो जाता हूँ - गहनता, सार्थकता, सामंजस्य; और क्या चाहिए?
प्रश्न: इससे अधिक की आवश्यकता नहीं है, बेशक। लेकिन आप जानने योग्य बातों की बात कर रहे हैं।
एम: अज्ञात के बारे में केवल मौन ही बोलता है। मन केवल उसी के बारे में बात कर सकता है जिसे वह जानता है। यदि आप ज्ञात का गहन अध्ययन करें, तो वह विलीन हो जाता है और केवल अज्ञात ही शेष रह जाता है। लेकिन कल्पना और रुचि की पहली चिंगारी के साथ ही अज्ञात धुंधला जाता है और ज्ञात सामने आ जाता है। ज्ञात, परिवर्तनशील, वही है जिसके साथ आप जीते हैं - अपरिवर्तनीय आपके किसी काम का नहीं है। जब आप परिवर्तनशील से तृप्त हो जाते हैं और अपरिवर्तनीय की लालसा करते हैं, तभी आप पलटने और उस स्थिति में कदम रखने के लिए तैयार होते हैं जिसे मन के स्तर से देखने पर शून्यता और अंधकार कहा जा सकता है। क्योंकि मन को सार और विविधता की लालसा होती है, जबकि वास्तविकता मन के लिए सारहीन और अपरिवर्तनीय है।
प्रश्न: मुझे तो यह मौत जैसा लग रहा है।
एम: हाँ, बिल्कुल। यह सर्वव्यापी, सर्वविजयी और शब्दों से परे तीव्र है। कोई भी साधारण मस्तिष्क इसे सहन किए बिना चकनाचूर हो जाता है; इसीलिए साधना की परम आवश्यकता है। एक बुद्धिमान और आध्यात्मिक प्राणी के रूप में अस्तित्व के लिए शरीर की पवित्रता, मन की स्पष्टता, अहिंसा और निस्वार्थता आवश्यक हैं।
प्रश्न: क्या वास्तविकता में कोई सत्ताएं मौजूद हैं?

एम: पहचान ही वास्तविकता है, वास्तविकता ही पहचान है। वास्तविकता निराकार पिंड या शब्दहीन अराजकता नहीं है। यह शक्तिशाली, सजग और आनंदमय है; इसके सामने तुम्हारा जीवन सूर्य के सामने मोमबत्ती के समान है।
प्रश्न: ईश्वर की कृपा और अपने गुरु के मार्गदर्शन से आपने सभी इच्छाओं और भय को त्यागकर स्थिर अवस्था प्राप्त कर ली। मेरा प्रश्न सरल है - आपको कैसे पता चला कि आपकी अवस्था स्थिर है?
एम: केवल परिवर्तनशील चीजों के बारे में ही सोचा और बात की जा सकती है। अपरिवर्तनीय चीजों को केवल मौन में ही महसूस किया जा सकता है। एक बार महसूस हो जाने पर, यह परिवर्तनशील चीजों को गहराई से प्रभावित करेगा, जबकि स्वयं अप्रभावित रहेगा।
प्रश्न: आपको कैसे पता चलता है कि आप ही गवाह हैं?
एम: मुझे नहीं पता, मैं हूँ। मैं हूँ, क्योंकि हर चीज़ को अस्तित्व में रहने के लिए प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है।
प्रश्न: किसी बात के अस्तित्व को सुनी-सुनाई बातों के आधार पर भी स्वीकार किया जा सकता है।
एम: फिर भी, अंततः प्रत्यक्ष गवाह की आवश्यकता महसूस होती है। प्रत्यक्ष अनुभव, भले ही व्यक्तिगत और वास्तविक न हो, कम से कम संभव और व्यावहारिक तो होना ही चाहिए। प्रत्यक्ष अनुभव ही अंतिम प्रमाण है।
प्रश्न: अनुभव गलत और भ्रामक हो सकता है।
एम: बिलकुल, लेकिन अनुभव का तथ्य नहीं। अनुभव चाहे जैसा भी हो, सत्य हो या असत्य, उसके घटित होने के तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। यह स्वयं ही प्रमाण है। अपने आप को ध्यान से देखें और आप पाएंगे कि चेतना की विषयवस्तु चाहे जो भी हो, उसका साक्षी होना विषयवस्तु पर निर्भर नहीं करता। जागरूकता स्वयं ही है और घटना के साथ नहीं बदलती। घटना सुखद हो या अप्रिय, छोटी हो या बड़ी, जागरूकता एक ही रहती है। शुद्ध जागरूकता की विशिष्ट प्रकृति, उसकी स्वाभाविक आत्म-पहचान, जिसमें आत्म-चेतना का जरा भी अंश नहीं होता, पर ध्यान दें और उसकी जड़ तक जाएं, तो आप शीघ्र ही यह जान जाएंगे कि जागरूकता ही आपका सच्चा स्वरूप है और जिस भी चीज के बारे में आप जागरूक हैं, उसे आप अपना नहीं कह सकते।
प्रश्न: क्या चेतना और उसकी विषयवस्तु एक ही नहीं हैं?
एम: चेतना आकाश में बादल की तरह है और पानी की बूंदें उसकी सामग्री हैं। बादल को दिखाई देने के लिए सूर्य की आवश्यकता होती है, और चेतना को जागरूकता में केंद्रित होने की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: क्या जागरूकता चेतना का ही एक रूप नहीं है?
एम: जब किसी विषयवस्तु को बिना पसंद-नापसंद के देखा जाता है, तो उसकी चेतना ही जागरूकता होती है। फिर भी, चेतना में प्रतिबिंबित जागरूकता और चेतना से परे शुद्ध जागरूकता में अंतर होता है। प्रतिबिंबित जागरूकता, यानी 'मैं जागरूक हूँ' का भाव साक्षी होता है, जबकि शुद्ध जागरूकता वास्तविकता का सार है। पानी की एक बूंद में सूर्य का प्रतिबिंब सूर्य का प्रतिबिंब तो है, लेकिन स्वयं सूर्य नहीं। चेतना में प्रतिबिंबित जागरूकता (जो साक्षी है) और शुद्ध जागरूकता के बीच एक खाई है, जिसे मन पार नहीं कर सकता।
प्रश्न: क्या यह देखने के नजरिए पर निर्भर नहीं करता? दिमाग कहता है कि अंतर है। दिल कहता है कि कोई अंतर नहीं है।

एम: बिल्कुल, कोई अंतर नहीं है। वास्तविक, अवास्तविक में भी वास्तविक को देखता है। मन ही अवास्तविक का सृजन करता है और मन ही असत्य को असत्य के रूप में देखता है।
प्रश्न: मुझे यह समझ में आया कि असत्य को असत्य के रूप में देखने के बाद ही वास्तविकता का अनुभव होता है।
एम: वास्तविकता का कोई अनुभव नहीं होता। वास्तविकता अनुभव से परे है। सभी अनुभव मन में होते हैं। वास्तविकता को जानने का एकमात्र तरीका वास्तविक होना है।
प्रश्न: यदि वास्तविकता शब्दों और मन से परे है, तो हम इसके बारे में इतनी बातें क्यों करते हैं?
एम: बेशक, इसके आनंद के लिए। असलियत तो परम आनंद है। इसके बारे में बात करना भी खुशी है।
प्रश्न: मैंने सुना है कि आप अविचल और आनंदमय की बात कर रहे हैं। इन शब्दों का प्रयोग करते समय आपके मन में क्या भाव है?
एम: मेरे मन में कुछ नहीं है। जैसे आप शब्द सुनते हैं, वैसे ही मैं भी सुनता हूँ। जिस शक्ति के कारण सब कुछ घटित होता है, वही शक्ति इन शब्दों को भी घटित करती है।
प्रश्न: लेकिन आप बोल रहे हैं, मैं नहीं।
एम: आपको ऐसा ही प्रतीत होता है। मेरी समझ में, दो शरीर-मन प्रतीकात्मक ध्वनियों का आदान-प्रदान करते हैं। वास्तविकता में कुछ नहीं होता। प्रश्न: महोदय, सुनिए। मैं आपके पास इसलिए आया हूँ क्योंकि मैं संकट में हूँ। मैं एक बेचारा हूँ जो इस दुनिया में खो गया हूँ जिसे मैं समझ नहीं पाता। मुझे प्रकृति से डर लगता है जो चाहती है कि मैं बढ़ूँ, संतान उत्पन्न करूँ और मर जाऊँ। जब मैं उससे इन सब का अर्थ और उद्देश्य पूछता हूँ, तो वह कोई उत्तर नहीं देती। मैं आपके पास इसलिए आया हूँ क्योंकि मुझे बताया गया है कि आप दयालु और बुद्धिमान हैं। आप परिवर्तनशील को असत्य और क्षणभंगुर बताते हैं और यह मैं समझ सकता हूँ। लेकिन जब आप अपरिवर्तनीय की बात करते हैं, तो मैं खो जाता हूँ। 'न यह, न वह, ज्ञान से परे, निष्फल' - इन सब की बात क्यों? क्या इनका अस्तित्व है, या ये केवल एक अवधारणा है, परिवर्तनशील का शाब्दिक विलोम?
एम: हाँ, बस यही है। लेकिन तुम्हारी वर्तमान स्थिति में इसका कोई उपयोग नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे तुम्हारे बिस्तर के पास रखा पानी का गिलास तुम्हारे किसी काम का नहीं, जब तुम सपने में देखते हो कि तुम रेगिस्तान में प्यास से मर रहे हो। मैं तुम्हें जगाने की कोशिश कर रहा हूँ, चाहे तुम्हारा सपना कुछ भी हो।
प्रश्न: कृपया मुझे यह मत कहिए कि मैं सपना देख रहा हूँ और जल्द ही जाग जाऊँगा। काश ऐसा होता। लेकिन मैं जागा हुआ हूँ और दर्द में हूँ। आप दर्द रहित अवस्था की बात करते हैं, लेकिन साथ ही यह भी कहते हैं कि मेरी वर्तमान स्थिति में यह संभव नहीं है। मैं असहाय महसूस कर रहा हूँ।
एम: निराश मत होइए। मैं बस इतना कह रहा हूँ कि अटल और आनंदमय को पाने के लिए आपको परिवर्तनशील और कष्टदायी चीजों से अपना लगाव छोड़ना होगा। आप अपनी खुशी को लेकर चिंतित हैं और मैं आपको बता रहा हूँ कि ऐसी कोई चीज नहीं होती। खुशी कभी आपकी अपनी नहीं होती, यह वहाँ होती है जहाँ 'मैं' नहीं होता। मैं यह नहीं कह रहा कि यह आपकी पहुँच से बाहर है; आपको बस अपने आप से परे देखना है, और आपको यह मिल जाएगी।

प्रश्न: यदि मुझे स्वयं से परे जाना है, तो मुझे सबसे पहले 'मैं हूं' का विचार क्यों आया?
एम: वृत्त बनाने के लिए मन को एक केंद्र की आवश्यकता होती है। वृत्त बड़ा होता जाता है और हर वृद्धि के साथ 'मैं हूं' की भावना में परिवर्तन आता है। जो व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित करता है, एक योगी, वह एक सर्पिल रेखा खींचेगा, फिर भी केंद्र बना रहेगा, चाहे सर्पिल रेखा कितनी भी विशाल क्यों न हो। एक दिन ऐसा आता है जब संपूर्ण प्रयास निष्फल प्रतीत होता है और उसे त्याग दिया जाता है। केंद्र बिंदु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और ब्रह्मांड ही केंद्र बन जाता है।
प्रश्न: हां, शायद। लेकिन अब मैं क्या करूं?
एम: अपने निरंतर बदलते जीवन को ध्यानपूर्वक देखें, अपने कार्यों के पीछे छिपे उद्देश्यों की गहराई से पड़ताल करें और जल्द ही आप अपने अंदर के उस खोल को फोड़ पाएंगे जिसमें आप घिरे हुए हैं। एक सुंदर प्राणी को विकसित होने के लिए खोल की आवश्यकता होती है, लेकिन एक दिन ऐसा आता है जब उस खोल को तोड़ना ही पड़ता है। यदि ऐसा नहीं किया गया, तो दुख और मृत्यु का सामना करना पड़ेगा।
प्रश्न: क्या आपका मतलब यह है कि अगर मैं योग नहीं अपनाता, तो मेरा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा?
एम: गुरु हैं जो आपकी सहायता के लिए आएंगे। तब तक अपने जीवन के प्रवाह को निहारते रहें; यदि आपकी जागरूकता गहरी और स्थिर हो, और हमेशा स्रोत की ओर उन्मुख रहे, तो यह धीरे-धीरे धारा के विपरीत दिशा में बढ़ती जाएगी और अचानक स्वयं स्रोत बन जाएगी। अपने मन को नहीं, अपनी चेतना को कार्य में लगाएं। मन इस कार्य के लिए उपयुक्त साधन नहीं है। शाश्वतता को केवल शाश्वतता के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। आपका शरीर और आपका मन दोनों समय के अधीन हैं; केवल चेतना ही शाश्वत है, वर्तमान क्षण में भी। चेतना में आप तथ्यों का सामना कर रहे हैं और वास्तविकता तथ्यों से प्रेम करती है। प्रश्न: आप मुझे नियंत्रित करने के लिए पूरी तरह से मेरी चेतना पर निर्भर हैं, न कि गुरु और ईश्वर पर।
एम: ईश्वर शरीर और मन देता है और गुरु उन्हें उपयोग करने का तरीका दिखाता है। लेकिन मूल स्रोत में लौटना आपका स्वयं का कर्तव्य है।
प्रश्न: भगवान ने मुझे बनाया है, वही मेरी देखभाल करेंगे।
एम: असंख्य देवता हैं, प्रत्येक अपने-अपने ब्रह्मांड में विद्यमान है। वे शाश्वत रूप से सृजन और पुनर्निर्माण करते रहते हैं। क्या आप उनके उद्धार की प्रतीक्षा करेंगे? आपको जो मुक्ति चाहिए वह पहले से ही आपकी पहुँच में है। इसका उपयोग करें। अपने ज्ञान की गहराई तक छानबीन करें और आप अपने अस्तित्व की अज्ञात परतों तक पहुँच जाएँगे। और आगे बढ़ें, तो आपके भीतर अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होंगी और सब कुछ चकनाचूर हो जाएगा।
प्रश्न: क्या इसका मतलब मृत्यु है?
एम: इसका मतलब है जीवन—आखिरकार।

86. अज्ञात ही वास्तविक प्रश्नकर्ता का घर है: गुरु कौन है और सर्वोच्च गुरु कौन है?
महाराज: आपके चेतन मन में जो कुछ भी घटित होता है, वही आपका गुरु है। और चेतन मन से परे शुद्ध चेतना ही परम गुरु है।
प्रश्न: मेरे गुरु श्री बाबा जी हैं। उनके बारे में आपकी क्या राय है?

एम: ये कैसा सवाल है! मुंबई के स्थान से पूछा जाता है कि पुणे के स्थान के बारे में उसकी क्या राय है। नाम अलग हैं, लेकिन स्थान नहीं। 'बाबाजी' शब्द तो बस एक संबोधन है। इस पते के नीचे कौन रहता है? जब आप मुसीबत में होते हैं, तभी सवाल पूछते हैं। पता लगाइए कि कौन किसे और कैसे परेशान कर रहा है। प्रश्न: मैं समझता हूँ कि हर किसी पर इसे साकार करने का दायित्व है। क्या यह उसका कर्तव्य है, या उसका भाग्य?
एम: अहसास इस तथ्य का है कि आप एक व्यक्ति नहीं हैं। इसलिए, जिसका भाग्य लुप्त होना है, उसका कर्तव्य यह नहीं हो सकता। उसका भाग्य तो उस व्यक्ति का कर्तव्य है जो स्वयं को वह व्यक्ति समझता है। यह पता लगाएँ कि वह कौन है और वह काल्पनिक व्यक्ति विलीन हो जाएगा। मुक्ति किसी न किसी चीज़ से मुक्ति है। आपको किससे मुक्त होना है? स्पष्ट रूप से, आपको उस व्यक्ति से मुक्त होना होगा जिसे आप स्वयं मानते हैं, क्योंकि स्वयं के बारे में आपकी धारणा ही आपको बंधन में रखती है।
प्रश्न: उस व्यक्ति को कैसे हटाया जाता है?
एम: दृढ़ संकल्प से। यह समझो कि इसे जाना ही होगा और इसे जाने की इच्छा करो
- यदि तुम इसके लिए गंभीर हो तो यह अवश्य चला जाएगा। कोई न कोई, कोई भी, तुम्हें बताएगा कि तुम शुद्ध चेतना हो, शरीर-मन नहीं। इसे एक संभावना के रूप में स्वीकार करो और गंभीरता से इसकी जांच करो। तुम पा सकते हो कि ऐसा नहीं है, कि तुम अंतरिक्ष और समय में बंधे हुए व्यक्ति नहीं हो। सोचो इससे कितना फर्क पड़ेगा!
प्रश्न: यदि मैं व्यक्ति नहीं हूँ, तो मैं क्या हूँ?
एम: गीला कपड़ा जब तक गीला रहता है, तब तक उसका रूप, स्पर्श और गंध अलग होती है। सूखने पर वह फिर से सामान्य कपड़ा बन जाता है। पानी उससे निकल चुका होता है और कौन बता सकता है कि वह गीला था? आपका वास्तविक स्वरूप वैसा नहीं है जैसा आप दिखते हैं। व्यक्ति होने का विचार छोड़ दीजिए, बस इतना ही। आपको किसी भी तरह से वह बनने की आवश्यकता नहीं है जो आप हैं। एक आपकी पहचान है और एक वह व्यक्ति है जो उस पर आरोपित है। आप केवल उस व्यक्ति को जानते हैं, वह पहचान - जो कि व्यक्ति नहीं है - आप नहीं जानते, क्योंकि आपने कभी संदेह नहीं किया, कभी स्वयं से यह महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं पूछा - 'मैं कौन हूँ?' पहचान उस व्यक्ति की साक्षी है और साधना में सतही और परिवर्तनशील व्यक्ति से ध्यान हटाकर उस अविचल और सदा विद्यमान साक्षी पर केंद्रित करना शामिल है।
प्रश्न: मुझे ‘मैं कौन हूँ’ यह प्रश्न इतना आकर्षित क्यों नहीं करता? मैं अपना समय संतों की मधुर संगति में बिताना पसंद करता हूँ।
एम: अपने भीतर लीन रहना भी एक पवित्र संगति है। यदि आपको दुख और उससे मुक्ति की समस्या नहीं है, तो आपको आत्म-जांच के लिए आवश्यक ऊर्जा और दृढ़ता नहीं मिलेगी। आप संकट को कृत्रिम रूप से उत्पन्न नहीं कर सकते। यह वास्तविक होना चाहिए।
प्रश्न: वास्तविक संकट कैसे उत्पन्न होता है?
एम: यह हर पल होता है, लेकिन आप उतने सतर्क नहीं हैं। आपके पड़ोसी के चेहरे पर उदासी की छाया, जीवन का अथाह और सर्वव्यापी दुख आपके जीवन का एक निरंतर हिस्सा है, लेकिन आप इस पर ध्यान देने से इनकार करते हैं। आप खुद भी दुख सहते हैं और दूसरों को भी दुख सहते देखते हैं, लेकिन आप कोई प्रतिक्रिया नहीं देते।

प्रश्न: आपकी बात सही है, लेकिन मैं इसके बारे में क्या कर सकता हूँ? स्थिति वास्तव में ऐसी ही है। मेरी लाचारी और उदासीनता भी इसका एक हिस्सा हैं।
एम: काफी है। खुद को स्थिर भाव से देखो—बस इतना ही काफी है। जो दरवाज़ा तुम्हें अंदर बंद रखता है, वही तुम्हें बाहर भी निकालता है। 'मैं' ही वह दरवाज़ा है। तब तक वहीं डटे रहो जब तक वह खुल न जाए। असल में, वह दरवाज़ा खुला ही है, बस तुम वहाँ नहीं हो। तुम उन काल्पनिक दरवाज़ों पर इंतज़ार कर रहे हो, जो कभी खुलेंगे ही नहीं।
प्रश्न: हममें से कई लोगों ने कभी न कभी, किसी न किसी हद तक, नशीली दवाओं का सेवन किया है। कुछ लोगों ने हमें चेतना के उच्च स्तर तक पहुँचने के लिए नशीली दवाओं का सेवन करने की सलाह दी। वहीं कुछ अन्य लोगों ने इसी उद्देश्य से भरपूर यौन संबंध बनाने की सलाह दी। इस विषय पर आपकी क्या राय है?
एम: बेशक, जो दवा आपके दिमाग पर असर डाल सकती है, वह आपके मन पर भी असर डाल सकती है और आपको वे सभी अजीबोगरीब अनुभव दे सकती है जिनका वादा किया गया था। लेकिन उन सभी दवाओं के सामने क्या हैं वो दवा जिसने आपको ये सबसे असामान्य अनुभव दिया है - जन्म से ही दुख और भय में जीना, खुशी की तलाश करना, जो या तो मिलती नहीं या टिकती नहीं। आपको इस दवा की प्रकृति की जांच करनी चाहिए और इसका इलाज ढूंढना चाहिए।
जन्म, जीवन, मृत्यु—ये सब एक ही हैं। इनके कारणों का पता लगाइए। आपके जन्म से पहले ही आप पर नशा चढ़ा हुआ था। वह किस प्रकार का नशा था? आप अपने आप को सभी रोगों से मुक्त कर सकते हैं, लेकिन यदि आप अभी भी उस मूल नशे के प्रभाव में हैं, तो सतही उपचारों का क्या लाभ?
प्रश्न: क्या पुनर्जन्म का कारण कर्म ही नहीं है?
एम: आप नाम बदल सकते हैं, लेकिन सच्चाई वही रहेगी। जिस नशे को आप कर्म या भाग्य कहते हैं, वह क्या है? इसने आपको वह बना दिया है जो आप नहीं हैं। यह क्या है, और क्या आप इससे मुक्त हो सकते हैं? आगे बढ़ने से पहले, आपको कम से कम एक व्यावहारिक सिद्धांत के रूप में यह स्वीकार करना होगा कि आप वह नहीं हैं जो आप दिखते हैं, कि आप किसी नशे के प्रभाव में हैं। तभी आपमें लक्षणों की जांच करने और उनके मूल कारण को खोजने की इच्छा और धैर्य उत्पन्न होगा। एक गुरु आपसे केवल इतना ही कह सकता है: 'मेरे प्रिय, आप अपने बारे में पूरी तरह से गलत हैं। आप वह व्यक्ति नहीं हैं जो आप खुद को समझते हैं।' किसी पर भरोसा न करें, यहां तक कि खुद पर भी नहीं। खोजिए, पता लगाइए, हर धारणा को दूर कीजिए और अस्वीकार कीजिए जब तक आप जीवनदायी जल और सत्य की चट्टान तक न पहुंच जाएं। जब तक आप इस नशे से मुक्त नहीं हो जाते, आपके सभी धर्म और विज्ञान, प्रार्थनाएं और योग आपके लिए व्यर्थ हैं, क्योंकि एक गलती पर आधारित होने के कारण, वे इसे और मजबूत करते हैं। लेकिन अगर आप इस विचार पर कायम रहें कि आप न तो शरीर हैं, न मन, यहाँ तक कि इनके साक्षी भी नहीं, बल्कि इनसे कहीं परे हैं, तो आपका मन स्पष्टता से भर उठेगा, आपकी इच्छाएँ पवित्रता से, आपके कर्म परोपकार से और यह आंतरिक शुद्धि आपको एक दूसरे लोक में ले जाएगी, सत्य और निर्भीक प्रेम के लोक में। अपनी पुरानी भावनाओं और विचारों का विरोध करें; खुद से कहते रहें: 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता; मैं ऐसा नहीं हूँ, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है, मैं इसे नहीं चाहता', और एक दिन ज़रूर आएगा जब त्रुटि और निराशा की पूरी संरचना ढह जाएगी और एक नए जीवन के लिए ज़मीन तैयार हो जाएगी। आख़िरकार, आपको याद रखना चाहिए कि स्वयं से जुड़ी

आपकी सारी चिंताएँ केवल जागते समय और आंशिक रूप से आपके सपनों में ही होती हैं; नींद में सब कुछ एक तरफ़ रख दिया जाता है और भुला दिया जाता है। यह दर्शाता है कि आपका जागता जीवन कितना कम महत्वपूर्ण है, यहाँ तक कि आपके लिए भी, कि केवल लेट जाना और आँखें बंद कर लेना ही इसे समाप्त कर सकता है। हर बार जब आप सोने जाते हैं तो आप जागने की ज़रा भी निश्चितता के बिना ऐसा करते हैं और फिर भी आप जोखिम स्वीकार करते हैं।
प्रश्न: सोते समय आप सचेत रहते हैं या अचेत?
एम: मैं सचेत रहता हूँ, लेकिन इस बात से सचेत नहीं कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति हूँ।
प्रश्न: क्या आप हमें आत्म-साक्षात्कार के अनुभव का संक्षिप्त विवरण दे सकते हैं?
एम: इसे पूरा ले लो! यह तुम्हारे लिए उपलब्ध है। लेकिन तुम मांगते नहीं हो। मांगते भी हो, तो लेते नहीं हो। पता लगाओ कि तुम्हें लेने से क्या रोक रहा है।
प्रश्न: मुझे पता है कि क्या बाधा है - मेरा अहंकार।
एम: तो फिर अपने अहंकार में मग्न रहो - मुझे अकेला छोड़ दो। जब तक तुम अपने दिमाग में कैद हो, मेरी स्थिति तुम्हारी समझ से परे है।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मेरे पास पूछने के लिए और कोई प्रश्न नहीं हैं।
एम: अगर तुम सचमुच अपने अहंकार से लड़ रहे होते, तो तुमने और भी बहुत सारे सवाल पूछे होते। तुम्हारे पास सवालों की कमी है क्योंकि तुम्हें वास्तव में कोई दिलचस्पी नहीं है। फिलहाल तुम सुख-दुख के सिद्धांत से प्रेरित हो, जो कि अहंकार है। तुम अहंकार के साथ बह रहे हो, उससे लड़ नहीं रहे हो। तुम्हें इस बात का एहसास भी नहीं है कि तुम व्यक्तिगत विचारों से कितने बुरी तरह प्रभावित हो चुके हो। मनुष्य को हमेशा अपने आप से विद्रोह करना चाहिए, क्योंकि अहंकार, टेढ़े दर्पण की तरह, चीजों को संकुचित और विकृत कर देता है। यह सबसे बुरा अत्याचारी है, यह तुम पर पूरी तरह हावी हो जाता है। प्रश्न: जब कोई ‘मैं’ ही स्वतंत्र न हो तो क्या होगा?
एम: दुनिया एक बड़ी मुसीबत से मुक्त हो गई है। काफी है।
प्रश्न: किसके लिए अच्छा है?
एम: सबके लिए अच्छा है। यह सड़क पर फैली रस्सी की तरह है, जो यातायात को रोक देती है। बस, यह मौजूद है, मात्र पहचान के रूप में, जरूरत पड़ने पर उपयोगी। अहंकार से मुक्ति आत्म-अन्वेषण का फल है।
प्रश्न: एक समय ऐसा था जब मैं स्वयं से बहुत असंतुष्ट था। अब मुझे मेरे गुरु मिल गए हैं और मैंने स्वयं को पूरी तरह से उनके चरणों में समर्पित कर दिया है, जिसके बाद मुझे शांति प्राप्त हुई है।
एम: अगर आप अपने दैनिक जीवन पर गौर करेंगे तो पाएंगे कि आपने कुछ भी समर्पित नहीं किया है। आपने बस ‘समर्पण’ शब्द को अपनी शब्दावली में जोड़ लिया है और अपने गुरु को अपनी समस्याओं का आधार बना लिया है। सच्चा समर्पण का अर्थ है कुछ न करना, जब तक कि आपके गुरु आपको ऐसा करने के लिए प्रेरित न करें। आप एक तरह से किनारे हट जाते हैं और अपने गुरु को अपना जीवन जीने देते हैं। आप बस देखते हैं और आश्चर्य करते हैं कि वे कितनी आसानी से उन समस्याओं का समाधान कर देते हैं जो आपको असंभव लगती थीं।
प्रश्न: मैं यहाँ बैठा हूँ और मुझे यह कमरा, यहाँ के लोग दिखाई दे रहे हैं। आपको भी देख रहा हूँ। आपकी तरफ से यह कैसा दिखता है? आपको क्या दिखाई देता है?

एम: कुछ नहीं। मैं देखता हूँ, लेकिन मैं किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित छवियाँ बनाकर नहीं देखता। मैं वर्णन नहीं करता, न ही मूल्यांकन करता हूँ। मैं देखता हूँ, मैं तुम्हें देखता हूँ, लेकिन न तो मेरा दृष्टिकोण और न ही मेरी राय मेरी दृष्टि को धुंधला करती है। और जब मैं अपनी नज़रें हटा लेता हूँ, तो मेरा मन स्मृति को ठहरने नहीं देता; यह तुरंत मुक्त और अगले अनुभव के लिए तरोताज़ा हो जाता है।
प्रश्न: मैं यहाँ बैठकर आपको देख रहा हूँ, और इस घटना को समय और स्थान के संदर्भ में परिभाषित नहीं कर पा रहा हूँ। ज्ञान के इस संचार में कुछ शाश्वत और सार्वभौमिक तत्व निहित है। दस हजार वर्ष पहले हो या बाद में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता - यह घटना स्वयं कालातीत है।
एम: मनुष्य युगों-युगों तक अधिक नहीं बदलता। मानवीय समस्याएँ वही रहती हैं और उनके समाधान भी वही रहते हैं। ज्ञान के हस्तांतरण के बारे में आपकी जागरूकता यह दर्शाती है कि ज्ञान का हस्तांतरण अभी तक नहीं हुआ है। जब वह ज्ञान आपके पास होता है, तब आप उसके प्रति सचेत नहीं रहते। जो वास्तव में आपका अपना है, उसके प्रति आप सचेत नहीं हैं। जिसके प्रति आप सचेत हैं, वह न तो आप हैं और न ही आपका। आपकी शक्ति है देखने की, न कि वह जो आप देखते हैं। चेतन मन को मनुष्य का संपूर्ण स्वरूप मान लेना एक त्रुटि है। मनुष्य अचेतन, चेतन और अतिचेतन है, लेकिन आप मनुष्य नहीं हैं। सिनेमा स्क्रीन, प्रकाश और देखने की शक्ति, सब कुछ आपका है, लेकिन चित्र आप नहीं हैं। प्रश्न: क्या मुझे गुरु की खोज करनी चाहिए, या मुझे उसी के साथ रहना चाहिए जिसे मैंने पाया है?
एम: प्रश्न से ही स्पष्ट है कि आपको अभी तक अपना गुरु नहीं मिला है। जब तक आपको आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, आप एक गुरु से दूसरे गुरु की ओर भटकते रहेंगे, लेकिन जब आप स्वयं को पा लेंगे, तब खोज समाप्त हो जाएगी। गुरु एक मील का पत्थर है। यात्रा के दौरान आप कई मील के पत्थर पार करते हैं। जब आप अपने गंतव्य पर पहुँच जाते हैं, तब केवल अंतिम मील का पत्थर ही मायने रखता है। वास्तव में, हर मील का पत्थर अपने समय पर महत्वपूर्ण था और अब कोई भी महत्वपूर्ण नहीं है।
प्रश्न: आप गुरु को महत्व नहीं देते प्रतीत होते। वे तो महज़ अन्य घटनाओं में से एक हैं।
एम: हर घटना मायने रखती है, लेकिन कोई भी निर्णायक नहीं है। रास्ते में हर कदम आपको मंज़िल तक पहुँचाने में मदद करता है, और हर कदम उतना ही ज़रूरी है जितना कि दूसरा, क्योंकि हर कदम उठाना ज़रूरी है, आप उसे छोड़ नहीं सकते। अगर आप कदम उठाने से इनकार करते हैं, तो आप अटक जाएंगे!
प्रश्न: सब लोग गुरु की महिमा का गुणगान करते हैं, जबकि आप उनकी तुलना एक मील के पत्थर से करते हैं। क्या हमें गुरु की आवश्यकता नहीं है?
एम: क्या हमें किसी मील के पत्थर की ज़रूरत नहीं है? हाँ और ना। हाँ, अगर हम अनिश्चित हैं, ना, अगर हम अपना रास्ता जानते हैं। एक बार जब हम खुद पर यकीन कर लेते हैं, तो गुरु की ज़रूरत नहीं रह जाती, सिवाय तकनीकी अर्थों में। आख़िरकार, आपका दिमाग एक उपकरण है, और आपको इसका इस्तेमाल करना आना चाहिए। जैसे आपको अपने शरीर के उपयोग सिखाए जाते हैं, वैसे ही आपको अपने दिमाग का उपयोग करना आना चाहिए।
प्रश्न: अपने दिमाग का उपयोग करना सीखने से मुझे क्या लाभ होगा?
एम: इससे आपको इच्छा और भय से मुक्ति मिलती है, जो पूरी तरह से मन के गलत उपयोग के कारण उत्पन्न होते हैं। केवल मानसिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है।

ज्ञात आकस्मिक है, अज्ञात ही वास्तविकता का घर है। ज्ञात में जीना बंधन है, अज्ञात में जीना मुक्ति है।
प्रश्न: मैंने समझा है कि सभी आध्यात्मिक साधना में व्यक्तिगत अहंकार का उन्मूलन शामिल है। ऐसी साधना के लिए दृढ़ संकल्प और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए आवश्यक निष्ठा और ऊर्जा कहाँ से प्राप्त करें?
एम: क्या आपको यह ज्ञान बुद्धिमानों की संगति में मिलता है?
प्रश्न: मुझे कैसे पता चलेगा कि कौन बुद्धिमान है और कौन केवल चतुर है? एम: अगर आपके इरादे नेक हैं, अगर आप सिर्फ सच्चाई की तलाश करते हैं, तो आपको सही लोग मिल जाएंगे। उन्हें ढूंढना आसान है, मुश्किल है उन पर भरोसा करना और उनकी सलाह और मार्गदर्शन का पूरा फायदा उठाना।

प्रश्न: क्या आध्यात्मिक साधना के लिए जागृत अवस्था, नींद की अवस्था से अधिक महत्वपूर्ण है?
एम: कुल मिलाकर हम जागृत अवस्था को ज़रूरत से ज़्यादा महत्व देते हैं। नींद के बिना जागृत अवस्था संभव नहीं है; नींद के बिना व्यक्ति पागल हो जाता है या मर जाता है; जागृत चेतना को इतना महत्व क्यों देना चाहिए, जो स्पष्ट रूप से अवचेतन पर निर्भर है? हमारी आध्यात्मिक साधना में न केवल चेतन बल्कि अवचेतन का भी ध्यान रखना चाहिए।
प्रश्न: अवचेतन मन पर ध्यान कैसे दिया जाता है?
एम: ‘मैं हूँ’ को अपने ध्यान के केंद्र में रखें, याद रखें कि आप हैं, निरंतर स्वयं को देखें और आपका अचेतन मन बिना किसी विशेष प्रयास के चेतन मन में प्रवाहित होने लगेगा। गलत इच्छाएँ और भय, झूठे विचार, सामाजिक अवरोध चेतन मन के साथ इसके मुक्त अंतर्संबंध को अवरुद्ध और बाधित कर रहे हैं। एक बार मुक्त होकर मिल जाने पर, दोनों एक हो जाते हैं और एक सर्वस्व बन जाता है। व्यक्ति साक्षी में विलीन हो जाता है, साक्षी चेतना में, चेतना शुद्ध अस्तित्व में, फिर भी पहचान नहीं खोती, केवल उसकी सीमाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह रूपांतरित हो जाता है और वास्तविक आत्मा, सद्गुरु, शाश्वत मित्र और मार्गदर्शक बन जाता है। आप पूजा से इसके पास नहीं पहुँच सकते। कोई भी बाहरी गतिविधि आंतरिक आत्मा तक नहीं पहुँच सकती; पूजा और प्रार्थनाएँ केवल सतही रह जाती हैं; गहन ध्यान के लिए आवश्यक है, नींद, स्वप्न और जागृति की अवस्थाओं से परे जाने का प्रयास। आरंभ में प्रयास अनियमित होते हैं, फिर वे अधिक बार होते हैं, नियमित हो जाते हैं, फिर निरंतर और तीव्र हो जाते हैं, जब तक कि सभी बाधाओं पर विजय प्राप्त न हो जाए।
प्रश्न: किन बातों में बाधाएँ हैं?
एम: स्वयं को भूल जाना।
प्रश्न: यदि पूजा और प्रार्थनाएँ निष्प्रभावी हैं तो आप प्रतिदिन गीत और संगीत के साथ अपने गुरु की प्रतिमा की पूजा क्यों करते हैं?
एम: जो लोग ऐसा चाहते हैं, वे ऐसा करते हैं। मुझे दखल देने में कोई फायदा नहीं दिखता।
प्रश्न: लेकिन आप इसमें भाग लेते हैं।
एम: हाँ, ऐसा ही लगता है। लेकिन मेरे बारे में इतनी चिंता क्यों? अपना सारा ध्यान इस प्रश्न पर केंद्रित करो: 'वह क्या है जो मुझे सचेत करता है?', जब तक कि तुम्हारा मन स्वयं प्रश्न न बन जाए और किसी और चीज़ के बारे में सोच ही न सके।

प्रश्न: सब लोग मुझे ध्यान करने के लिए कह रहे हैं। मुझे ध्यान में कोई रुचि नहीं है, जबकि मेरी कई अन्य चीजों में रुचि है; कुछ चीजें तो मुझे बहुत चाहिए और मेरा मन उन्हीं की ओर जाता है; ध्यान करने के मेरे प्रयास बहुत ही आधे-अधूरे हैं। मुझे क्या करना चाहिए?
एम: अपने आप से पूछें: ‘यह सब किसके साथ होता है?’ हर चीज़ को अपने भीतर झाँकने का अवसर समझें। जागरूकता की तीव्रता से बाधाओं को जलाकर अपना मार्ग रोशन करें। जब आप किसी इच्छा या भय का अनुभव करते हैं, तो वह इच्छा या भय गलत नहीं है जिसे दूर करना होगा, बल्कि वह व्यक्ति गलत है जो इच्छा और भय उत्पन्न करता है। उन इच्छाओं और भयों से लड़ने का कोई फायदा नहीं है जो पूरी तरह से स्वाभाविक और उचित हो सकते हैं; यह वह व्यक्ति है जो उनसे प्रभावित होता है, जो अतीत और भविष्य की गलतियों का कारण है। उस व्यक्ति का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए और उसकी असत्यता को देखा जाना चाहिए; तब उसका आप पर प्रभाव समाप्त हो जाएगा। आखिरकार, हर बार जब आप सोते हैं तो वह प्रभाव कम हो जाता है। गहरी नींद में आप आत्म-जागरूक नहीं होते, फिर भी आप जीवित होते हैं। जब आप जीवित और सचेत होते हैं, लेकिन आत्म-जागरूक नहीं होते, तो आप अब व्यक्ति नहीं रह जाते। जागते समय आप मानो मंच पर एक भूमिका निभा रहे होते हैं, लेकिन नाटक समाप्त होने पर आप क्या होते हैं? आप वही होते हैं जो आप हैं; नाटक शुरू होने से पहले आप जो थे, नाटक समाप्त होने पर भी आप वही रहते हैं। अपने आप को जीवन के मंच पर अभिनय करते हुए देखें। प्रदर्शन शानदार हो सकता है या भद्दा, लेकिन आप उसमें शामिल नहीं हैं, आप केवल उसे देख रहे हैं; रुचि और सहानुभूति के साथ, निश्चित रूप से, लेकिन हर समय यह ध्यान में रखते हुए कि आप केवल देख रहे हैं जबकि नाटक - जीवन - चल रहा है।
प्रश्न: आप हमेशा वास्तविकता के संज्ञानात्मक पहलू पर जोर देते हैं। आप स्नेह का जिक्र शायद ही कभी करते हैं, और क्या कभी करेंगे?
एम: इच्छाशक्ति, स्नेह, आनंद, प्रयास और सुख इतने गहरे व्यक्तिगत बोध से ग्रसित हैं कि उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यात्रा के आरंभ में जिस स्पष्टता और शुद्धि की आवश्यकता होती है, वह केवल जागरूकता ही दे सकती है। प्रेम और इच्छाशक्ति का भी अपना समय आएगा, लेकिन इसके लिए आधार तैयार करना आवश्यक है। जागरूकता का सूर्य पहले उदय होना चाहिए - बाकी सब कुछ बाद में प्रकट होगा।

87. मन को शांत रखो, और तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा।

प्रश्नकर्ता: एक बार मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। न मैं था, न संसार, केवल प्रकाश था - भीतर और बाहर - और असीम शांति थी। यह चार दिनों तक चला और फिर मैं सामान्य चेतना में लौट आया।
अब मुझे ऐसा लगता है कि मैं जो कुछ भी जानता हूँ, वह केवल एक ढाँचा है, जो निर्माणाधीन इमारत को ढक कर छिपाए हुए है। वास्तुकार, डिज़ाइन, योजनाएँ, उद्देश्य - मुझे कुछ भी नहीं पता; कुछ गतिविधियाँ चल रही हैं, कुछ घटित हो रहा है; बस इतना ही मैं कह सकता हूँ। मैं उस ढाँचे की तरह हूँ, कुछ बहुत ही नाजुक और क्षणभंगुर; जब इमारत तैयार हो जाएगी, तो ढाँचा हटा दिया जाएगा। 'मैं हूँ' और 'मैं क्या हूँ' का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि इमारत के तैयार होते ही, 'मैं' स्वतः ही चला जाएगा, अपने बारे में कोई प्रश्न छोड़े बिना।

महाराज: क्या आप इन सब बातों से अनभिज्ञ हैं? क्या जागरूकता ही स्थिर कारक नहीं है?
प्रश्न: मेरी स्थायित्व और पहचान की भावना स्मृति पर आधारित है, जो इतनी क्षणभंगुर और अविश्वसनीय है। मुझे हाल के अतीत की भी कितनी कम बातें याद हैं! मैंने एक जीवन जी लिया है, और अब मेरे पास क्या बचा है? घटनाओं का एक संग्रह, जो ज़्यादा से ज़्यादा एक छोटी कहानी जैसा है।
एम: यह सब आपकी चेतना के भीतर घटित होता है।
प्रश्न: भीतर और बाहर। दिन में - भीतर; रात में - बाहर। चेतना ही सब कुछ नहीं है। इसकी पहुँच से परे भी बहुत सी चीजें घटित होती हैं। यह कहना कि जिस चीज के प्रति मैं सचेत नहीं हूँ, उसका अस्तित्व ही नहीं है, सरासर गलत है।
एम: आपकी बात तर्कसंगत है, लेकिन वास्तव में आप केवल वही जानते हैं जो आपकी चेतना में है। आप जिस बात का दावा करते हैं वह चेतन अनुभव से परे अस्तित्व में है, वह अनुमान है।
प्रश्न: यह अनुमान लगाया जा सकता है, फिर भी यह इंद्रियों द्वारा अनुभव किए जाने वाले अनुभव से कहीं अधिक वास्तविक है।
एम: सावधान रहो। जैसे ही तुम बोलना शुरू करते हो, तुम शब्दों, विचारों, अवधारणाओं और अमूर्तताओं का एक ऐसा संसार बना देते हो, जो आपस में गुंथे हुए और एक-दूसरे पर निर्भर हैं, जो एक दूसरे को अद्भुत ढंग से उत्पन्न करते हैं, सहारा देते हैं और समझाते हैं, फिर भी सार या तत्व से रहित, केवल मन की रचनाएँ हैं। शब्द शब्दों को जन्म देते हैं, वास्तविकता मौन है।
प्रश्न: जब आप बोलते हैं, तो मैं आपको सुन पाता हूँ। क्या यह सच नहीं है? एम: जो आप सुनते हैं वह एक तथ्य है। जो आप सुनते हैं वह तथ्य नहीं है। तथ्य का अनुभव किया जा सकता है, और उस अर्थ में शब्द की ध्वनि और उससे उत्पन्न होने वाली मानसिक हलचल का अनुभव किया जाता है। इसके पीछे कोई अन्य वास्तविकता नहीं है। इसका अर्थ विशुद्ध रूप से पारंपरिक है, जिसे याद रखा जाना चाहिए; भाषा को अभ्यास के बिना आसानी से भुलाया जा सकता है। प्रश्न: यदि शब्दों में कोई वास्तविकता नहीं है तो बोलने का क्या लाभ? एम: वे पारस्परिक संचार के अपने सीमित उद्देश्य को पूरा करते हैं। शब्द तथ्यों को व्यक्त नहीं करते, बल्कि उनका संकेत देते हैं। एक बार जब आप व्यक्ति से परे हो जाते हैं, तो शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं होती। प्रश्न: मुझे व्यक्ति से परे क्या ले जा सकता है? चेतना से परे कैसे जाया जा सकता है?
एम: शब्द और प्रश्न मन से उत्पन्न होते हैं और आपको वहीं बांधे रखते हैं। मन से परे जाने के लिए, आपको मौन और स्थिर रहना होगा। शांति और मौन, मौन और शांति - यही परे जाने का मार्ग है। प्रश्न पूछना बंद करो।
प्रश्न: एक बार जब मैं प्रश्न पूछना बंद कर दूं, तो मुझे क्या करना चाहिए? एम: आप इंतजार करने और देखने के अलावा और क्या कर सकते हैं?
प्रश्न: मुझे किस बात का इंतजार करना चाहिए?
एम: आपके अस्तित्व का केंद्र चेतना में प्रकट हो। तीनों अवस्थाएँ - सोना, सपने देखना और जागना - सभी चेतना में हैं, जो प्रकट है; जिसे आप अचेतन कहते हैं, वह भी समय के साथ प्रकट होगा; चेतना से परे अव्यक्त है। और इन सबसे परे, और सब में व्याप्त, अस्तित्व का हृदय है जो निरंतर धड़कता रहता है - प्रकट-अव्यक्त; प्रकट-अव्यक्त (सगुण-निर्गुण)।
प्रश्न: शाब्दिक रूप से तो यह ठीक लगता है। मैं स्वयं को अस्तित्व के बीज के रूप में, चेतना के एक बिंदु के रूप में, अपने 'मैं हूँ' के बोध के साथ

स्पंदित होते हुए, बारी-बारी से प्रकट और लुप्त होते हुए देख सकता हूँ। लेकिन इसे एक तथ्य के रूप में साकार करने के लिए, उस अपरिवर्तनीय, शब्दहीन वास्तविकता में प्रवेश करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?
एम: तुम कुछ नहीं कर सकते। समय ने जो कुछ किया है, समय ही उसे मिटा देगा। प्रश्न: फिर योग का अभ्यास करने और वास्तविकता की खोज करने के लिए ये सब आग्रह क्यों? ये मुझे सशक्त और जिम्मेदार महसूस कराते हैं, जबकि वास्तव में समय ही सब कुछ तय करता है।
एम: योग का यही अंतिम लक्ष्य है - स्वतंत्रता का अहसास। जो कुछ भी घटित होता है, वह मन में और मन पर ही घटित होता है, न कि 'मैं' के स्रोत पर। एक बार जब आप यह अहसास कर लेते हैं कि सब कुछ स्वतः ही घटित होता है (चाहे इसे भाग्य कहें, ईश्वर की इच्छा कहें या महज़ संयोग), तो आप केवल साक्षी बनकर रह जाते हैं, समझते और आनंद लेते हैं, लेकिन विचलित नहीं होते।
प्रश्न: यदि मैं शब्दों पर विश्वास करना पूरी तरह से छोड़ दूं, तो मेरी क्या स्थिति होगी?
एम: विश्वास करने का भी एक समय होता है और अविश्वास करने का भी। समय को अपना काम करने दो, चिंता क्यों करें?
सवाल: मुझे किसी न किसी तरह अपने आसपास होने वाली घटनाओं के लिए जिम्मेदार महसूस होता है।
एम: आप केवल उसी चीज़ के लिए ज़िम्मेदार हैं जिसे आप बदल सकते हैं। आप केवल अपना दृष्टिकोण बदल सकते हैं। यही आपकी ज़िम्मेदारी है।
प्रश्न: आप मुझे दूसरों के दुखों के प्रति उदासीन रहने की सलाह दे रहे हैं! एम: ऐसा नहीं है कि आप उदासीन हैं। मानव जाति के सभी कष्ट आपको अपना अगला भोजन ग्रहण करने से नहीं रोकते। साक्षी उदासीन नहीं होता। वह पूर्ण समझ और करुणा का प्रतीक होता है। केवल साक्षी बनकर ही आप दूसरों की सहायता कर सकते हैं।
प्रश्न: मैंने अपना पूरा जीवन शब्दों के बीच बिताया है। मैंने अरबों शब्द सुने और पढ़े हैं। क्या इससे मुझे कोई लाभ हुआ? बिलकुल नहीं!
एम: मन भाषा को आकार देता है और भाषा मन को। दोनों उपकरण हैं, इनका उपयोग करें, दुरुपयोग न करें। शब्द आपको केवल अपनी सीमा तक ही ले जा सकते हैं; उससे आगे जाने के लिए, आपको उन्हें त्यागना होगा। केवल मौन साक्षी बनकर रहें।
प्रश्न: मैं कैसे कर सकता हूँ? दुनिया मुझे बहुत परेशान करती है।
एम: ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम खुद को इतना बड़ा समझते हो कि दुनिया से प्रभावित हो सको। ऐसा नहीं है। तुम इतने छोटे हो कि कोई भी चीज़ तुम्हें बांध नहीं सकती। तुम्हारा मन उलझता है, तुम नहीं। खुद को वैसे ही जानो जैसे तुम हो - चेतना का एक छोटा सा बिंदु, आयामहीन और कालातीत। तुम पेंसिल की नोक की तरह हो - तुम्हारे स्पर्श मात्र से ही मन दुनिया की अपनी तस्वीर बना लेता है। तुम अकेले और सरल हो - तस्वीर जटिल और विस्तृत है। तस्वीर से गुमराह मत हो - उस छोटे से बिंदु के प्रति सचेत रहो - जो तस्वीर में हर जगह मौजूद है।
जो है, वह न भी हो सकता है; जो नहीं है, वह अस्तित्व में आ सकता है; लेकिन जो न तो है और न ही नहीं है, बल्कि जिस पर अस्तित्व और गैर-अस्तित्व निर्भर करते हैं, वह अजेय है; स्वयं को इच्छा और भय का कारण जानो, जो स्वयं इन दोनों से मुक्त है।
प्रश्न: मैं भय का कारण कैसे हूँ?

एम: सब कुछ आप पर निर्भर करता है। यह संसार आपके ही विवेक से अस्तित्व में है। यदि आप इसकी वास्तविकता में विश्वास छोड़ दें, तो यह स्वप्न की तरह क्षीण हो जाएगा। समय पहाड़ों को भी गिरा सकता है; और आप तो उससे भी कहीं अधिक, जो समय के शाश्वत स्रोत हैं। क्योंकि स्मृति और अपेक्षा के बिना समय का अस्तित्व ही नहीं है।
प्रश्न: क्या ‘मैं हूँ’ ही परम सत्ता है?
एम: इससे पहले कि आप 'मैं हूं' कह सकें, आपको वहां मौजूद होना होगा। अस्तित्व का मतलब आत्म-जागरूकता नहीं है। आपको अस्तित्व को जानने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जानने के लिए आपको अस्तित्व में होना आवश्यक है। प्रश्न: महोदय, मैं शब्दों के सागर में डूब रहा हूँ! मैं देख सकता हूँ कि सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि शब्द किस प्रकार एक साथ रखे गए हैं, लेकिन उन्हें अर्थपूर्ण ढंग से जोड़ने वाला कोई तो होना ही चाहिए। शब्दों को बेतरतीब ढंग से चुनने से रामायण, महाभारत और भागवत जैसी रचनाएँ कभी नहीं हो सकतीं। आकस्मिक उत्पत्ति का सिद्धांत मान्य नहीं है। अर्थपूर्णता का स्रोत इससे परे होना चाहिए। वह कौन सी शक्ति है जो अराजकता से व्यवस्था उत्पन्न करती है? जीना, होने से कहीं अधिक है, और चेतना, जीने से कहीं अधिक है। सचेत सजीव कौन है?
एम: आपके प्रश्न में ही उत्तर निहित है: एक सचेत प्राणी सचेत प्राणी ही होता है। ये शब्द बिल्कुल सटीक हैं, लेकिन आप इनका पूर्ण अर्थ नहीं समझ पा रहे हैं। 'होना', 'जीवित रहना', 'सचेत रहना' जैसे शब्दों के अर्थ को गहराई से समझें, और आप सवालों के बीच उलझना बंद कर देंगे, जिनके जवाब आपको नहीं मिल रहे। यह समझें कि आप अपने बारे में कोई सार्थक प्रश्न नहीं पूछ सकते, क्योंकि आप यह नहीं जानते कि आप किसके बारे में पूछ रहे हैं। 'मैं कौन हूँ?' प्रश्न में 'मैं' अज्ञात है और प्रश्न को इस प्रकार भी कहा जा सकता है: "मैं नहीं जानता कि 'मैं' से मेरा क्या तात्पर्य है।" आप क्या हैं, यह आपको स्वयं पता लगाना होगा। मैं केवल इतना बता सकता हूँ कि आप क्या नहीं हैं। आप संसार के नहीं हैं, आप संसार में भी नहीं हैं। संसार का अस्तित्व नहीं है, केवल आप ही हैं। आप अपने मन में संसार का निर्माण एक सपने की तरह करते हैं। जिस प्रकार आप सपने को स्वयं से अलग नहीं कर सकते, उसी प्रकार आपका कोई बाहरी संसार भी स्वयं से स्वतंत्र नहीं हो सकता। आप स्वतंत्र हैं, संसार नहीं। अपने द्वारा निर्मित संसार से मत डरिए। सपने में सुख और वास्तविकता की खोज करना छोड़ दीजिए, और आप जाग उठेंगे। आपको 'क्यों' और 'कैसे' जानने की आवश्यकता नहीं है, प्रश्नों का कोई अंत नहीं है। सभी इच्छाओं का त्याग करें, अपने मन को शांत रखें और आपको स्वयं ही उत्तर मिल जाएगा।

88. मन द्वारा प्राप्त ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता: क्या आप जागने, सपने देखने और सोने की तीनों अवस्थाओं का अनुभव ठीक उसी तरह करते हैं जैसे हम करते हैं, या किसी और तरह से?
महाराज: मेरे लिए ये तीनों अवस्थाएँ नींद के समान हैं। मेरी जाग्रत अवस्था इनसे परे है। जब मैं तुम्हें देखता हूँ, तो तुम सब सोते हुए प्रतीत होते हो, मानो अपने ही शब्दों के सपने देख रहे हो। मैं सचेत हूँ, क्योंकि मैं कुछ भी कल्पना नहीं करता। यह समाधि नहीं है, जो कि एक प्रकार की नींद ही होती है। यह मन से अप्रभावित, अतीत और भविष्य से मुक्त एक अवस्था मात्र है। तुम्हारे मामले में यह इच्छा और भय, स्मृतियों और आशाओं से विकृत है; मेरे

मामले में यह जैसी है वैसी ही है - सामान्य। मनुष्य होना ही नींद में होना है।
प्रश्न: शरीर और शुद्ध चेतना के बीच 'अंतर्मुखी अंग', अंतःकरण, 'सूक्ष्म शरीर', 'मानसिक शरीर', चाहे जो भी नाम हो, स्थित है। जिस प्रकार घूमता हुआ दर्पण सूर्य के प्रकाश को अनेक प्रकार की धारियों और रंगों में बदल देता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर प्रकाशमान आत्मा के सरल प्रकाश को एक विविधतापूर्ण संसार में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार मैंने आपकी शिक्षा को समझ लिया है। जो बात मुझे समझ में नहीं आ रही है, वह यह है कि यह सूक्ष्म शरीर मूल रूप से कैसे उत्पन्न हुआ?
एम: यह ‘मैं हूँ’ की अवधारणा के उदय के साथ उत्पन्न होता है। दोनों एक ही हैं।
प्रश्न: ‘मैं हूँ’ कैसे प्रकट हुआ?
एम: आपकी दुनिया में हर चीज़ का आरंभ और अंत होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं है, तो आप उसे शाश्वत कहते हैं। मेरे विचार में आरंभ या अंत जैसी कोई चीज़ नहीं है - ये सब समय से संबंधित हैं। कालातीत अस्तित्व पूरी तरह से वर्तमान में ही मौजूद होता है।
प्रश्न: अंतःकरण, या ‘सूक्ष्म शरीर’, क्या यह वास्तविक है या अवास्तविक? एम: यह क्षणिक है। जब मौजूद होता है तब वास्तविक, समाप्त होने पर अवास्तविक।
प्रश्न: किस प्रकार की वास्तविकता? क्या यह क्षणिक है?
एम: इसे अनुभवजन्य, वास्तविक या तथ्यात्मक कहिए। यह तात्कालिक अनुभव की वास्तविकता है, यहीं और अभी, जिसे नकारा नहीं जा सकता। आप वर्णन और अर्थ पर प्रश्न उठा सकते हैं, लेकिन घटना पर नहीं। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व बारी- बारी से आते हैं और उनकी वास्तविकता क्षणिक होती है। अपरिवर्तनशील वास्तविकता स्थान और समय से परे है। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की क्षणभंगुरता को महसूस कीजिए और दोनों से मुक्त हो जाइए।
प्रश्न: वस्तुएँ क्षणभंगुर हो सकती हैं, फिर भी वे अंतहीन पुनरावृति में हमारे साथ बनी रहती हैं।
एम: इच्छाएँ प्रबल होती हैं। इच्छा ही पुनरावृत्ति का कारण बनती है। जहाँ इच्छा न हो, वहाँ पुनरावृत्ति नहीं होती।
प्रश्न: भय के बारे में क्या?
एम: इच्छा अतीत की होती है, भय भविष्य का। अतीत के कष्टों की स्मृति और उनके पुनरावर्तन का भय भविष्य के प्रति चिंता पैदा करता है।
प्रश्न: अज्ञात का भय भी होता है।
एम: जिसने कष्ट नहीं सहा, उसे डर नहीं लगता।
प्रश्न: क्या हम भय के लिए अभिशप्त हैं?
एम: जब तक हम भय को व्यक्तिगत अस्तित्व की छाया के रूप में स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक हम भयभीत होते रहेंगे। सभी व्यक्तिगत समीकरणों को त्याग दें और आप भय से मुक्त हो जाएंगे। यह कठिन नहीं है। इच्छा का ह्रास स्वतः ही हो जाता है जब इच्छा को झूठा मान लिया जाता है। आपको इच्छा से संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं है। अंततः, यह सुख की एक तीव्र इच्छा है, जो दुख के रहते स्वाभाविक है। बस यह समझें कि आपकी इच्छाओं में सुख नहीं है।
प्रश्न: हम सुख से ही संतुष्ट हो जाते हैं।
एम: हर सुख के साथ दुख जुड़ा होता है। जल्द ही आपको पता चल जाता है कि एक के बिना दूसरा नहीं मिल सकता।

प्रश्न: एक अनुभवकर्ता होता है और एक उसका अनुभव। इन दोनों के बीच संबंध किसने स्थापित किया?
एम: इसे किसी ने नहीं बनाया। यह स्वयं है। दोनों एक हैं।
प्रश्न: मुझे लगता है कि इसमें कहीं न कहीं कोई गड़बड़ी है, लेकिन मुझे नहीं पता कि कहाँ।
एम: असल समस्या आपके दिमाग में है, जो वहां द्वैत देखने पर जोर देता है जहां कोई द्वैत नहीं है।
प्रश्न: जब मैं आपको सुन रहा होता हूँ, तो मेरा सारा ध्यान वर्तमान क्षण पर केंद्रित होता है और मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेरे मन में कोई प्रश्न नहीं है।
एम: आप वास्तविकता को तभी जान सकते हैं जब आप आश्चर्यचकित हों।
प्रश्न: मुझे यह समझ में आ रहा है कि चिंता और भय का कारण स्मृति है। स्मृति को समाप्त करने के क्या उपाय हैं?
एम: साधनों की बात मत करो, कोई साधन नहीं हैं। जो तुम्हें असत्य लगता है, वह विलीन हो जाता है। भ्रम का स्वभाव ही है कि जाँच करने पर वह विलीन हो जाता है। बस जाँच करो। तुम असत्य को नष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि तुम उसे लगातार सृजित कर रहे हो। उससे दूर रहो, उसे अनदेखा करो, उससे परे जाओ, और वह अपने आप समाप्त हो जाएगा।
प्रश्न: ईसा मसीह बुराई को नजरअंदाज करने और बच्चे जैसा व्यवहार करने की बात भी करते हैं।
एम: वास्तविकता सभी के लिए समान है। केवल असत्य ही व्यक्तिगत होता है। प्रश्न: साधकों को देखकर और उनके जीवन के सिद्धांतों का अध्ययन करके मुझे पता चलता है कि उन्होंने भौतिक इच्छाओं की जगह आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं को अपना लिया है। आपके कथन से तो ऐसा लगता है मानो 'आध्यात्मिक' और 'महत्वाकांक्षा' शब्द एक-दूसरे के विपरीत हैं। यदि 'आध्यात्मिकता' का अर्थ महत्वाकांक्षा से मुक्ति है, तो साधक को आगे बढ़ने की प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? योगी मुक्ति की इच्छा को आवश्यक मानते हैं। क्या यह महत्वाकांक्षा का सर्वोच्च रूप नहीं है?
एम: महत्वाकांक्षा व्यक्तिगत होती है, मुक्ति व्यक्तिगतता से विमुखता है। मुक्ति में महत्वाकांक्षा का विषय और लक्ष्य दोनों ही नहीं रह जाते। लगन अपने प्रयासों के फल की लालसा नहीं है। यह रुचि के आंतरिक बदलाव की अभिव्यक्ति है जो झूठे, अनावश्यक और व्यक्तिगत से दूर हट जाती है। प्रश्न: आपने हमें कुछ दिन पहले बताया था कि आत्मज्ञान से पहले हम पूर्णता का सपना भी नहीं देख सकते, क्योंकि पूर्णता का स्रोत आत्मा है, मन नहीं। यदि मोक्ष के लिए सद्गुणों में उत्कृष्टता आवश्यक नहीं है, तो फिर क्या आवश्यक है?
एम: मुक्ति किसी कुशल तरीके से अपनाए गए साधनों का परिणाम नहीं है, न ही परिस्थितियों का। यह कारण-कार्य प्रक्रिया से परे है। कोई भी इसे विवश नहीं कर सकता, कोई भी इसे रोक नहीं सकता।
प्रश्न: तो फिर हम अभी और यहीं स्वतंत्र क्यों नहीं हैं?
एम: लेकिन हम 'अभी और यहीं' स्वतंत्र हैं। बंधन की कल्पना केवल हमारा मन ही करता है।
प्रश्न: कल्पना का अंत किस बात से होगा?
एम: आप इसे समाप्त क्यों करना चाहेंगे? एक बार जब आप अपने मन और उसकी चमत्कारी शक्तियों को जान लेते हैं, और उसमें व्याप्त विषैले तत्वों - एक

अलग-थलग व्यक्ति होने के विचार - को दूर कर देते हैं, तो आप उसे उन चीजों के बीच अपना काम करने के लिए छोड़ देते हैं जिनके लिए वह उपयुक्त है। मन को उसके अपने स्थान पर और अपने काम में लगाए रखना ही मन की मुक्ति है। प्रश्न: मन का कार्य क्या है?
एम: मन हृदय की पत्नी है और संसार उनका घर है - जिसे उज्ज्वल और सुखी बनाए रखना चाहिए।
प्रश्न: मुझे अभी तक यह समझ नहीं आया है कि यदि मुक्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं है, तो यह यहीं और अभी क्यों नहीं हो जाती।
एम: आपकी मुक्ति के रास्ते में कोई बाधा नहीं है और यह यहीं और अभी हो सकती है, सिवाय इसके कि आप अन्य चीजों में अधिक रुचि रखते हैं। और आप अपनी रुचियों से लड़ नहीं सकते। आपको उनके साथ चलना होगा, उन्हें समझना होगा और देखना होगा कि वे मात्र निर्णय और आकलन की त्रुटियाँ साबित होती हैं। प्रश्न: क्या किसी महान और पवित्र व्यक्ति के साथ रहने से मुझे लाभ नहीं होगा?
एम: महान और पवित्र लोग हमेशा आपके आस-पास होते हैं, लेकिन आप उन्हें पहचान नहीं पाते। आपको कैसे पता चलेगा कि कौन महान और पवित्र है? सुनी-सुनाई बातों से? क्या आप इन मामलों में दूसरों पर, या खुद पर भी भरोसा कर सकते हैं? आपको पूरी तरह से आश्वस्त करने के लिए, केवल प्रशंसा या क्षणिक उत्साह से कहीं अधिक की आवश्यकता है। आप किसी महान और पवित्र पुरुष या महिला से मिल सकते हैं और लंबे समय तक अपने सौभाग्य को जान भी नहीं पाएंगे। एक महान व्यक्ति का शिशु पुत्र कई वर्षों तक अपने पिता की महानता को नहीं जान पाता। आपको महानता को पहचानने और अपने हृदय को पवित्रता के लिए शुद्ध करने के लिए परिपक्व होना होगा। अन्यथा आप अपना समय और धन व्यर्थ ही व्यतीत करेंगे और जीवन के अवसरों से भी वंचित रह जाएंगे। आपके मित्रों में अच्छे लोग हैं - आप उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। संतों के पीछे भागना मात्र एक और खेल है। इसके बजाय, स्वयं को याद रखें और अपने दैनिक जीवन का निरंतर अवलोकन करें। गंभीर रहें, और आप असावधानी और कल्पना के बंधनों को तोड़ने में सफल होंगे।
प्रश्न: क्या आप चाहते हैं कि मैं यह सारा संघर्ष अकेले ही करूं?
एम: आप कभी अकेले नहीं हैं। ऐसी शक्तियाँ और सत्ताएँ हैं जो हर समय पूरी निष्ठा से आपकी सेवा करती हैं। आप उन्हें महसूस कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते हैं, फिर भी वे वास्तविक और सक्रिय हैं। जब आप यह जान लेते हैं कि सब कुछ आपके मन में है और आप मन से परे हैं, कि आप वास्तव में अकेले हैं; तब सब कुछ आप ही हैं।
प्रश्न: सर्वज्ञता क्या है? क्या ईश्वर सर्वज्ञ है? क्या आप सर्वज्ञ हैं? हम अक्सर 'सार्वभौमिक साक्षी' शब्द सुनते हैं। इसका क्या अर्थ है? क्या आत्म-साक्षात्कार सर्वज्ञता का स्रोत है? या यह किसी विशेष प्रशिक्षण का विषय है?
एम: ज्ञान में पूरी तरह से रुचि खो देने से सर्वज्ञता प्राप्त होती है। यह तो बस सही समय पर, त्रुटिरहित कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है। अंततः, कार्य के लिए ज्ञान आवश्यक है और यदि आप सही ढंग से, सहजता से, बिना चेतना को शामिल किए कार्य करते हैं, तो यह और भी बेहतर है। प्रश्न: क्या कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मन को जान सकता है?
एम: सबसे पहले अपने मन को जानो। इसमें संपूर्ण ब्रह्मांड समाहित है और बहुत जगह भी बची है!

प्रश्न: आपका सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि जागृत अवस्था, स्वप्न और स्वप्नहीन नींद से मूलतः भिन्न नहीं है। तीनों अवस्थाएँ मूलतः शरीर के साथ गलत आत्म-पहचान का मामला हैं। शायद यह सच हो, लेकिन मुझे लगता है कि यह पूर्ण सत्य नहीं है।
एम: सत्य को जानने का प्रयास मत करो, क्योंकि मन से प्राप्त ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं होता। परन्तु तुम असत्य को जान सकते हो—जो तुम्हें असत्य से मुक्त करने के लिए पर्याप्त है। यह सोचना कि तुम सत्य को जानते हो, खतरनाक है, क्योंकि यह तुम्हें मन के बंधन में जकड़ कर रखता है। जब तुम नहीं जानते, तभी तुम खोज करने के लिए स्वतंत्र होते हो। और बिना खोज के मोक्ष संभव नहीं, क्योंकि खोज न करना ही बंधन का मूल कारण है।
प्रश्न: आप कहते हैं कि संसार का भ्रम 'मैं हूँ' की भावना से शुरू होता है, लेकिन जब मैं 'मैं हूँ' की भावना के उद्गम के बारे में पूछता हूँ, तो आप उत्तर देते हैं कि इसका कोई उद्गम नहीं है, क्योंकि जाँच करने पर यह विलीन हो जाती है। जिस पर संसार का निर्माण किया जा सके, वह मात्र भ्रम नहीं हो सकता। 'मैं हूँ' ही एकमात्र अपरिवर्तनीय तत्व है जिसके प्रति मैं सचेत हूँ; यह असत्य कैसे हो सकता है?
एम: यह 'मैं' नहीं है जो गलत है, बल्कि वह है जो आप स्वयं को मानते हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि आप वह नहीं हैं जो आप स्वयं को मानते हैं। तर्क हो या न हो, आप इस स्पष्ट सत्य को नकार नहीं सकते। आप वह कुछ भी नहीं हैं जिसके बारे में आप सचेत हैं। अपने मन में निर्मित संरचना को तोड़ने के लिए लगन से प्रयास करें। मन ने जो किया है, उसे मन को ही मिटाना होगा।
प्रश्न: आप वर्तमान क्षण को नकार नहीं सकते, चाहे मन हो या न हो। जो अभी है, वही है। आप दिखावे पर सवाल उठा सकते हैं, लेकिन वास्तविकता पर नहीं। वास्तविकता की जड़ क्या है?
एम: ‘मैं हूँ’ समस्त स्वरूप का मूल है और घटनाओं के उस क्रम में एक स्थायी कड़ी है जिसे हम जीवन कहते हैं; लेकिन मैं ‘मैं हूँ’ से परे भी हूँ। प्रश्न: मैंने देखा है कि आत्मज्ञानी लोग अक्सर अपनी अवस्था का वर्णन अपने धर्म से लिए गए शब्दों में करते हैं। आप हिंदू हैं, इसलिए आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की बात करते हैं और हिंदू दृष्टिकोण और प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। कृपया हमें बताएं, आपके शब्दों के पीछे क्या अनुभव है? वे किस वास्तविकता की ओर इशारा करते हैं?
एम: यह मेरे बात करने का तरीका है, एक भाषा जो मुझे सिखाई गई है।
प्रश्न: लेकिन इस भाषा के पीछे क्या रहस्य है?
एम: मैं इसे शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ, सिवाय उन्हें नकारने के? इसलिए, मैं समयहीन, स्थानहीन, कारणहीन जैसे शब्दों का प्रयोग करता हूँ। ये भी शब्द ही हैं, परन्तु अर्थहीन होने के कारण ये मेरे उद्देश्य के लिए उपयुक्त हैं।
प्रश्न: यदि वे अर्थहीन हैं, तो उनका उपयोग क्यों करें?
एम: क्योंकि आप उन जगहों पर शब्दों का इस्तेमाल करना चाहते हैं जहां शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: मैं आपकी बात समझ गया। आपने एक बार फिर मेरा प्रश्न ही छीन लिया!

89. आध्यात्मिक जीवन में प्रगति

प्रश्नकर्ता: हम इंग्लैंड की दो लड़कियां हैं, जो भारत घूमने आई हैं। हमें योग के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है और हम यहां इसलिए आए हैं क्योंकि हमें बताया गया था कि भारतीय जीवन में आध्यात्मिक गुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
महाराज: आपका स्वागत है। यहाँ आपको कुछ भी नया नहीं मिलेगा। हम जो काम कर रहे हैं वह शाश्वत है। दस हजार साल पहले भी यही था। सदियाँ बीतती जाती हैं, लेकिन मानवीय समस्या नहीं बदलती - दुख की समस्या और दुख का निवारण। प्रश्न: कुछ दिन पहले सात विदेशी युवक कुछ रातों के लिए ठहरने की जगह माँगने आए थे। वे अपने गुरु से मिलने आए थे, जो मुंबई में प्रवचन दे रहे थे। मेरी उनसे मुलाकात हुई – वे बहुत ही मिलनसार और कुशल युवक हैं – देखने में तो वे बेहद व्यावहारिक और कर्मठ लगते हैं, लेकिन उनके आसपास शांति और मौन का भाव व्याप्त है। उनकी शिक्षा पारंपरिक है, जिसमें कर्म योग, निस्वार्थ कर्म, गुरु की सेवा आदि पर जोर दिया जाता है। गीता की तरह वे कहते हैं कि निस्वार्थ कर्म से मोक्ष प्राप्त होता है। उनके पास कई महत्वाकांक्षी योजनाएँ हैं: वे ऐसे कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना चाहते हैं जो कई देशों में आध्यात्मिक केंद्र स्थापित करेंगे। ऐसा लगता है कि वे उन्हें न केवल अधिकार देते हैं, बल्कि अपने नाम पर कार्य करने की शक्ति भी प्रदान करते हैं।
एम: जी हां, शक्ति का संचरण जैसी कोई चीज होती है।
प्रश्न: जब मैं उनके साथ था, तो मुझे एक अजीब सा अहसास हुआ जैसे मैं अदृश्य हो गया हूँ। भक्तों ने अपने गुरु के प्रति समर्पण में मुझे भी समर्पित कर दिया! मैंने उनके लिए जो कुछ भी किया, वह उनके गुरु का ही कार्य था और मुझे महज़ एक साधन मात्र समझा गया। मैं तो बस एक ऐसे नल की तरह था जिसे बाएँ या दाएँ घुमाया जा सके। कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं था। उन्होंने मुझे अपने धर्म में परिवर्तित करने का थोड़ा प्रयास किया; जैसे ही उन्हें प्रतिरोध महसूस हुआ, उन्होंने मुझे अपनी नज़रों से ओझल कर दिया। यहाँ तक कि वे आपस में भी बहुत जुड़े हुए नहीं दिखे; गुरु के प्रति उनकी साझा रुचि ही उन्हें एक साथ जोड़े रखती थी। मुझे यह बहुत ही ठंडा, लगभग अमानवीय लगा। स्वयं को ईश्वर के हाथों का साधन समझना एक बात है; लेकिन 'सब कुछ ईश्वर है' कहकर सारा ध्यान और सम्मान न मिलना क्रूरता की हद तक उदासीनता की ओर ले जा सकता है। आख़िरकार, सभी युद्ध 'ईश्वर के नाम पर' ही लड़े जाते हैं। मानव जाति का संपूर्ण इतिहास 'पवित्र युद्धों' की एक श्रृंखला है। युद्ध में व्यक्ति इतना निर्वैयक्तिक कभी नहीं होता!
एम: ज़िद करना, विरोध करना, ये सब अस्तित्व की इच्छा में समाहित हैं। अस्तित्व की इच्छा को हटा दें तो क्या शेष रह जाता है? अस्तित्व और गैर-अस्तित्व का संबंध अंतरिक्ष और समय में किसी चीज़ से है; यहाँ और अभी, वहाँ और तब, जो फिर से मन में ही निहित हैं। मन एक अनुमान का खेल खेलता है; यह हमेशा अनिश्चित, चिंताग्रस्त और बेचैन रहता है। आप किसी देवता या गुरु के मात्र साधन के रूप में माने जाने से नाराज़ होते हैं और एक व्यक्ति के रूप में माने जाने पर ज़ोर देते हैं, क्योंकि आप अपने अस्तित्व के बारे में निश्चित नहीं हैं और व्यक्तित्व के आराम और आश्वासन को छोड़ना नहीं चाहते। आप शायद वह न हों जो आप स्वयं को मानते हैं, लेकिन यह आपको निरंतरता प्रदान करता है, आपका भविष्य वर्तमान में प्रवाहित होता है और बिना किसी झटके के अतीत बन जाता है। व्यक्तिगत अस्तित्व से वंचित होना भयावह है,

लेकिन आपको इसका सामना करना होगा और जीवन की समग्रता के साथ अपनी पहचान खोजनी होगी। तब यह समस्या नहीं रह जाती कि कौन किसका उपयोग कर रहा है। प्रश्न: मुझे जो भी ध्यान मिला, वह मुझे उनके धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास था। जब मैंने विरोध किया, तो उन्होंने मुझमें सारी रुचि खो दी। एम: कोई व्यक्ति धर्मांतरण से या संयोगवश शिष्य नहीं बन जाता। आमतौर पर एक प्राचीन संबंध होता है, जो कई जन्मों तक कायम रहता है और प्रेम और विश्वास के रूप में विकसित होता है, जिसके बिना शिष्यत्व संभव नहीं है।
प्रश्न: आपने शिक्षक बनने का निर्णय क्यों लिया?
एम: मुझे ऐसा कहलाने मात्र से ही मैं ऐसा बन गया। मैं कौन हूँ जो सिखाऊँ और किसे? मैं जो हूँ, तुम वही हो, और तुम जो हो—मैं वही हूँ। 'मैं हूँ' हम सब में समान है; 'मैं हूँ' से परे प्रकाश और प्रेम की असीमता है। हम उसे देख नहीं पाते क्योंकि हम कहीं और देखते रहते हैं; मैं केवल आकाश की ओर इशारा कर सकता हूँ; तारे को देखना तुम्हारा स्वयं का कार्य है। कुछ लोगों को तारा देखने में अधिक समय लगता है, कुछ को कम; यह उनकी दृष्टि की स्पष्टता और खोज में उनकी लगन पर निर्भर करता है। ये दोनों चीजें उन्हें स्वयं ही सीखनी होंगी—मैं केवल प्रोत्साहन दे सकता हूँ।
प्रश्न: शिष्य बनने पर मुझसे क्या अपेक्षा की जाती है?
एम: प्रत्येक शिक्षक की अपनी विधि होती है, जो आमतौर पर उनके गुरु की शिक्षाओं और स्वयं के अनुभव पर आधारित होती है, और उनकी अपनी शब्दावली भी होती है। इसी ढांचे के भीतर शिष्य के व्यक्तित्व के अनुरूप समायोजन किए जाते हैं। शिष्य को चिंतन और जिज्ञासा की पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है और उसे मन भर प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उसे अपने गुरु की योग्यता और सामर्थ्य के प्रति पूर्ण रूप से आश्वस्त होना चाहिए, अन्यथा उसका विश्वास पूर्ण नहीं होगा और न ही उसका कर्म संपूर्ण होगा। आपके भीतर का परम सत्य ही आपको आपके परे के परम सत्य तक ले जाता है - परम सत्य, प्रेम और निस्वार्थता आत्म-साक्षात्कार के निर्णायक कारक हैं। लगन से इन्हें प्राप्त किया जा सकता है।
प्रश्न: मुझे पता है कि शिष्य बनने के लिए व्यक्ति को अपने परिवार और संपत्ति का त्याग करना पड़ता है।
एम: यह गुरु के अनुसार भिन्न होता है। कुछ गुरु अपने परिपक्व शिष्यों से संन्यासी बनने की अपेक्षा रखते हैं; कुछ पारिवारिक जीवन और कर्तव्यों को प्रोत्साहित करते हैं। अधिकांश गुरु आदर्श पारिवारिक जीवन को त्याग से अधिक कठिन मानते हैं, जो अधिक परिपक्व और संतुलित व्यक्तित्व के लिए उपयुक्त है। प्रारंभिक अवस्था में संन्यासी जीवन का अनुशासन उचित हो सकता है। इसलिए, हिंदू संस्कृति में 25 वर्ष की आयु तक के छात्रों से भिक्षुओं की तरह जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा की जाती है - निर्धनता, पवित्रता और आज्ञाकारिता का पालन करते हुए - ताकि उन्हें वैवाहिक जीवन की कठिनाइयों और प्रलोभनों का सामना करने में सक्षम चरित्र निर्माण का अवसर मिल सके। प्रश्न: इस कमरे में मौजूद लोग कौन हैं? क्या वे आपके शिष्य हैं?
एम: उनसे पूछिए। शिष्यता मौखिक रूप से नहीं, बल्कि अपने अंतर्मन की गहन मौन अवस्था में विकसित होती है। शिष्यता अपनी इच्छा से नहीं बनती; यह इच्छाशक्ति से अधिक नियति का विषय है। गुरु कौन है, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता - सभी आपका भला चाहते हैं। महत्वपूर्ण है शिष्य - उसकी ईमानदारी और लगन। सही शिष्य को हमेशा सही गुरु मिल जाता है।

प्रश्न: मैं एक योग्य और स्नेही शिक्षक के मार्गदर्शन में सत्य की खोज में समर्पित जीवन की सुंदरता और आनंद को देख सकता हूँ। दुर्भाग्यवश, हमें इंग्लैंड लौटना होगा।
एम: दूरी मायने नहीं रखती। अगर आपकी इच्छाएं प्रबल और सच्ची हैं, तो वे आपके जीवन को उनकी पूर्ति के लिए ढाल लेंगी। अपना बीज बोएं और उसे ऋतुओं पर छोड़ दें।
प्रश्न: आध्यात्मिक जीवन में प्रगति के संकेत क्या हैं?
एम: चिंता से मुक्ति; सहजता और आनंद की अनुभूति; आंतरिक शांति और बाह्य ऊर्जा का प्रचुर अनुभव।
प्रश्न: आपको यह कैसे मिला?
एम: मुझे यह सब अपने गुरु की पवित्र उपस्थिति में मिला - मैंने खुद कुछ नहीं किया। उन्होंने मुझे शांत रहने को कहा - और मैंने वैसा ही किया - जितना मैं कर सकता था।
प्रश्न: क्या आपकी उपस्थिति उनकी जितनी ही प्रभावशाली है?
एम: मुझे कैसे पता चलेगा? मेरे लिए तो बस उनकी ही उपस्थिति है। अगर आप मेरे साथ हैं, तो आप उनके साथ हैं।
प्रश्न: प्रत्येक गुरु मुझे अपने गुरु के पास भेजेंगे। शुरुआत कहाँ से करें?
एम: ब्रह्मांड में एक शक्ति है जो ज्ञान और मुक्ति के लिए काम करती है। हम इसे सदाशिव कहते हैं, जो मनुष्य के हृदय में सदा विद्यमान रहते हैं। यह एकता का कारक है। एकता मुक्ति दिलाती है। स्वतंत्रता एकजुट करती है। अंततः कुछ भी मेरा या तुम्हारा नहीं है - सब कुछ हमारा है। बस अपने आप से एक हो जाओ और तुम सब के साथ एक हो जाओगे, पूरे ब्रह्मांड में अपना स्थान पाओगे।
प्रश्न: आपका मतलब यह है कि ये सभी गौरव केवल 'मैं हूं' की भावना पर ध्यान केंद्रित करने से ही प्राप्त हो जाएंगे?
एम: सरल चीज़ें ही निश्चित होती हैं, जटिल चीज़ें नहीं। पता नहीं क्यों, लोग सरल, आसान और हमेशा उपलब्ध चीज़ों पर भरोसा नहीं करते। क्यों न आप मेरी बात को ईमानदारी से आजमा कर देखें? यह देखने में भले ही छोटा और मामूली लगे, लेकिन यह एक बीज की तरह है जो एक विशाल वृक्ष बन जाता है। खुद को एक मौका दें!
प्रश्न: मैं यहाँ इतने सारे लोगों को चुपचाप बैठे देख रहा हूँ। वे यहाँ किसलिए आए हैं?
एम: स्वयं से मिलने के लिए। घर पर दुनिया का बोझ उन पर बहुत ज्यादा रहता है। यहाँ उन्हें कोई चीज परेशान नहीं करती; उन्हें अपनी रोजमर्रा की चिंताओं से दूर होकर अपने भीतर के सार से जुड़ने का मौका मिलता है। प्रश्न: आत्म-जागरूकता के प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम क्या है?
एम: प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। जागरूकता हमेशा आपके साथ रहती है। जिस तरह आप बाहरी दुनिया पर ध्यान देते हैं, उसी तरह आंतरिक दुनिया पर भी ध्यान दें। किसी नई या विशेष प्रकार की जागरूकता की आवश्यकता नहीं है। प्रश्न: क्या आप लोगों की व्यक्तिगत रूप से मदद करते हैं?
एम: लोग अपनी समस्याओं पर चर्चा करने आते हैं। जाहिर है, उन्हें कुछ मदद मिलती है, वरना वे आते ही नहीं।
प्रश्न: क्या लोगों से बातचीत हमेशा सार्वजनिक रूप से होती है, या आप उनसे निजी तौर पर भी बात करेंगे?

एम: यह उनकी इच्छा के अनुसार है। व्यक्तिगत रूप से, मैं सार्वजनिक और निजी में कोई अंतर नहीं करता।
प्रश्न: क्या आप हमेशा उपलब्ध रहते हैं, या आपके पास करने के लिए अन्य काम भी हैं?
एम: मैं हमेशा उपलब्ध हूं, लेकिन सुबह और देर दोपहर का समय सबसे सुविधाजनक होता है।
प्रश्न: मैं समझता हूं कि आध्यात्मिक शिक्षक के कार्य से बढ़कर कोई कार्य नहीं है।
एम: मकसद सबसे ज्यादा मायने रखता है।

90. अपने आप को समर्पित हो जाओ

प्रश्नकर्ता: मेरा जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था, और मैंने पिछले चौदह महीने श्री रामनाश्रम में बिताए हैं; अब मैं वापस अमेरिका जा रहा हूँ जहाँ मेरी माँ मेरा इंतज़ार कर रही हैं।
महाराज: आपकी क्या योजनाएँ हैं?
प्रश्न: मैं नर्स के रूप में योग्यता प्राप्त कर सकती हूं, या फिर शादी करके बच्चे पैदा कर सकती हूं।
एम: आपको शादी करने की इच्छा क्यों होती है?
प्रश्न: आध्यात्मिक आश्रय प्रदान करना मेरे विचार से समाज सेवा का सर्वोच्च रूप है। लेकिन, निश्चित रूप से, जीवन इसे अलग रूप दे सकता है। मैं हर परिस्थिति के लिए तैयार हूँ।
एम: श्री रमणाश्रम में बिताए इन चौदह महीनों ने आपको क्या दिया? जब आप वहां पहुंचे थे, तब आप जैसे थे, उससे अब आप किस तरह बदल गए हैं?
प्रश्न: मुझे अब डर नहीं लगता। मुझे कुछ शांति मिली है।
एम: यह किस प्रकार की शांति है? क्या यह मनचाही चीज़ पाने की शांति है, या फिर जो चीज़ आपके पास नहीं है उसे न चाहने की शांति है?
प्रश्न: मुझे लगता है, दोनों ही बातें थीं। यह बिल्कुल भी आसान नहीं था। आश्रम भले ही बहुत शांतिपूर्ण जगह है, लेकिन अंदर से मैं बहुत पीड़ा में था।
एम: जब आपको यह एहसास हो जाता है कि आंतरिक और बाहरी के बीच का अंतर केवल मन में ही होता है, तो आप डरना बंद कर देते हैं।
प्रश्न: ऐसी अनुभूति मेरे साथ आती-जाती रहती है। मैं अभी तक पूर्णता की अपरिवर्तनशीलता तक नहीं पहुंचा हूँ।
एम: जब तक आप ऐसा मानते हैं, तब तक आपको अपनी साधना जारी रखनी चाहिए, ताकि अपूर्णता के झूठे विचार को दूर किया जा सके। साधना पूर्वाग्रहों को दूर करती है। जब आप स्वयं को अंतरिक्ष और समय में एक बिंदु से भी छोटा, इतना छोटा जिसे काटा नहीं जा सकता और इतना क्षणभंगुर जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता, तब और केवल तभी, सभी भय दूर हो जाते हैं। जब आप सुई की नोक से भी छोटे होते हैं, तब सुई आपको भेद नहीं सकती - आप सुई को भेद देते हैं!
प्रश्न: जी हाँ, कभी-कभी मुझे ऐसा ही महसूस होता है – अदम्य। मैं निडर से भी कहीं अधिक हूँ – मैं स्वयं निडरता हूँ।
एम: आपको आश्रम जाने की प्रेरणा कहाँ से मिली?
प्रश्न: मेरा प्रेम संबंध दुखद रहा और मैंने बहुत कष्ट झेला। न शराब से मुझे कोई राहत मिली, न ही नशे से। मैं भटक रहा था और तभी मुझे योग पर कुछ

किताबें मिलीं। एक किताब से दूसरी किताब पढ़ते-पढ़ते, एक सुराग से दूसरे सुराग मिलते-मिलते, मैं रामनाश्रम तक पहुंचा।
एम: अगर वही त्रासदी आपके साथ दोबारा घटित हो, तो क्या आप अपनी वर्तमान मानसिक स्थिति को देखते हुए उतना ही कष्ट सहेंगे?
प्रश्न: ओह नहीं, मैं खुद को दोबारा कष्ट नहीं सहने दूँगा। मैं आत्महत्या कर लूँगा।
एम: तो आपको मरने से डर नहीं लगता!
प्रश्न: मुझे मृत्यु से नहीं, बल्कि मरने से डर लगता है। मुझे लगता है कि मरने की प्रक्रिया दर्दनाक और भयावह होगी।
एम: आपको कैसे पता? ऐसा होना ज़रूरी नहीं है। यह सुंदर और शांतिपूर्ण भी हो सकता है। एक बार जब आपको यह पता चल जाता है कि मृत्यु शरीर की होती है, आपकी नहीं, तो आप बस अपने शरीर को एक त्यागे हुए वस्त्र की तरह गिरते हुए देखते रहते हैं।
प्रश्न: मुझे पूरी तरह से पता है कि मृत्यु का मेरा भय आशंका के कारण है, न कि ज्ञान के कारण।
एम: हर पल इंसान मरते हैं, मृत्यु का भय और पीड़ा दुनिया पर एक बादल की तरह छाई रहती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आप भी भयभीत हैं। लेकिन जब आपको यह पता चल जाता है कि केवल शरीर मरता है, स्मृति की निरंतरता और उसमें प्रतिबिंबित 'मैं हूं' की भावना नहीं, तो आपका भय समाप्त हो जाता है। प्रश्न: अच्छा, तो चलिए मर कर देखते हैं।
एम: ध्यान दीजिए और आप पाएंगे कि जन्म और मृत्यु एक ही हैं, जीवन अस्तित्व और गैर-अस्तित्व के बीच स्पंदित होता है, और पूर्णता के लिए दोनों एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं। आप मरने के लिए जन्म लेते हैं और पुनर्जन्म के लिए मरते हैं।
प्रश्न: क्या अलगाव प्रक्रिया को नहीं रोक देता?
एम: अनासक्ति से भय तो दूर हो जाता है, लेकिन वास्तविकता नहीं।
प्रश्न: क्या मुझे पुनर्जन्म लेने के लिए विवश होना पड़ेगा? कितना भयानक! एम: कोई बाध्यता नहीं है। आपको जो चाहिए वो मिल जाता है। आप अपनी योजनाएँ खुद बनाते हैं और उन्हें पूरा करते हैं।
प्रश्न: क्या हम स्वयं को कष्ट भोगने के लिए अभिशप्त कर रहे हैं?
एम: हम खोजबीन से सीखते हैं, और खोजबीन के लिए अनुभव आवश्यक है। हम अक्सर वही दोहराते हैं जो हमें समझ नहीं आता। यदि हम संवेदनशील और बुद्धिमान हैं, तो हमें कष्ट नहीं सहना पड़ता। पीड़ा ध्यान देने का संकेत है और लापरवाही का दंड भी। बुद्धिमानी और करुणा से भरा कार्य ही एकमात्र उपाय है।
प्रश्न: मेरी बुद्धि में वृद्धि हो गई है, इसलिए मैं दोबारा पीड़ा सहन नहीं कर सकता। आत्महत्या में क्या बुराई है?
एम: अगर इससे समस्या हल हो जाती है तो कोई बुराई नहीं है। लेकिन अगर समस्या हल न हो तो क्या? बाहरी कारणों से होने वाला कष्ट—जैसे कोई दर्दनाक और लाइलाज बीमारी या असहनीय विपत्ति—कुछ हद तक मुक्ति का कारण बन सकता है, लेकिन जहाँ बुद्धि और करुणा का अभाव हो, वहाँ आत्महत्या से कोई सहायता नहीं मिलती। मूर्खतापूर्ण मृत्यु का अर्थ है पुनर्जन्म में मूर्खता। इसके अलावा कर्म का भी प्रश्न है। सहनशीलता आमतौर पर सबसे बुद्धिमानी भरा मार्ग है।
प्रश्न: क्या किसी को कितनी भी तीव्र और निराशाजनक पीड़ा सहनी चाहिए?

एम: सहनशीलता एक चीज है और असहाय पीड़ा दूसरी। सहनशीलता सार्थक और फलदायी होती है, जबकि पीड़ा व्यर्थ है।
प्रश्न: कर्म के बारे में चिंता क्यों करें? वह तो वैसे भी अपना हिसाब खुद ही कर लेता है।
एम: हमारे अधिकांश कर्म सामूहिक होते हैं। हम दूसरों के पापों का फल भोगते हैं, जैसे दूसरे हमारे पापों का। मानवता एक है। इस तथ्य से अनभिज्ञता इसे नहीं बदल सकती। हम स्वयं कहीं अधिक सुखी हो सकते थे, यदि हम दूसरों के कष्टों के प्रति उदासीन न होते।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं पहले से कहीं अधिक प्रतिक्रियाशील हो गया हूँ।
एम: अच्छा। जब आप यह कहती हैं, तो आपके मन में क्या है? क्या आप स्वयं को, एक महिला शरीर के भीतर एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में, दर्शाती हैं? प्रश्न: शरीर है, करुणा है, स्मृति है और अनेक चीजें और मनोवृत्तियाँ हैं; सामूहिक रूप से इन्हें एक व्यक्ति कहा जा सकता है।
एम: क्या इसमें 'मैं हूं' का विचार भी शामिल है?
प्रश्न: 'मैं हूं' एक टोकरी की तरह है जिसमें वे सभी चीजें समाहित होती हैं जो एक व्यक्ति को बनाती हैं।
एम: या, यूँ कहें कि यह वह विलो की लकड़ी है जिससे टोकरी बुनी जाती है। जब आप खुद को एक महिला के रूप में देखती हैं, तो क्या आपका मतलब यह है कि आप एक महिला हैं, या आपके शरीर को स्त्री के रूप में वर्णित किया जाता है? प्रश्न: यह मेरे मूड पर निर्भर करता है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं केवल जागरूकता का केंद्र हूं।
एम: या, जागरूकता का एक सागर। लेकिन क्या ऐसे क्षण भी होते हैं जब आप न तो पुरुष होते हैं और न ही स्त्री, न ही आकस्मिक, बल्कि परिस्थितियों और स्थितियों से उत्पन्न होने वाले क्षण।
प्रश्न: जी हाँ, हैं, लेकिन मुझे इसके बारे में बात करने में शर्म आती है। एम: आपको बस एक संकेत ही मिल जाएगा। इससे ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं है।
प्रश्न: क्या मुझे आपकी उपस्थिति में धूम्रपान करने की अनुमति है? मुझे पता है कि किसी ऋषि के सामने धूम्रपान करना उचित नहीं माना जाता है, और विशेष रूप से महिलाओं के लिए तो बिल्कुल भी नहीं।
एम: बिल्कुल, सिगरेट पियो, किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। हम समझते हैं। प्रश्न: मुझे ठंडा होने की जरूरत महसूस हो रही है।
एम: अमेरिकियों और यूरोपियों के साथ अक्सर ऐसा ही होता है। साधना के एक दौर के बाद वे ऊर्जा से भर जाते हैं और उसे बाहर निकालने का रास्ता खोजने लगते हैं। वे समुदाय बनाते हैं, योग शिक्षक बनते हैं, शादी करते हैं, किताबें लिखते हैं - चुप रहने और अपनी ऊर्जा को भीतर की ओर मोड़ने के अलावा वे कुछ भी करते हैं, ताकि उस असीम शक्ति के स्रोत को खोज सकें और उसे नियंत्रित करने की कला सीख सकें।
प्रश्न: मैं स्वीकार करता हूं कि अब मैं वापस जाकर एक बहुत ही सक्रिय जीवन जीना चाहता हूं, क्योंकि मैं ऊर्जा से भरपूर महसूस करता हूं।

एम: आप जो चाहें कर सकते हैं, बशर्ते आप स्वयं को शरीर और मन न समझें। यह शरीर और उससे जुड़ी हर चीज़ को पूरी तरह त्यागने का प्रश्न नहीं है, बल्कि

यह स्पष्ट समझ का प्रश्न है कि आप शरीर नहीं हैं। एक प्रकार का अलगाव, भावनात्मक रूप से उदासीन रहना।
प्रश्न: मैं समझती हूँ आप क्या कहना चाहते हैं। लगभग चार साल पहले मैं भी भौतिक सुख-सुविधाओं को नकारने के दौर से गुज़री थी; मैं अपने लिए कपड़े नहीं खरीदती थी, सादा भोजन खाती थी, और नंगी तख्तियों पर सोती थी। असल बात तो अभावों को स्वीकार करना है, न कि असुविधा। अब मुझे एहसास हो गया है कि जीवन को जैसा है वैसा ही स्वीकार करना और उससे मिलने वाली हर चीज़ से प्यार करना ही सबसे अच्छा है। जो भी आएगा, मैं उसे खुशी-खुशी स्वीकार करूंगी और उसका भरपूर लाभ उठाऊंगी। अगर मैं कुछ बच्चों को जीवन और सच्ची संस्कृति दे सकूँ, तो भी काफी है; हालाँकि मेरा दिल हर बच्चे के लिए धड़कता है, पर मैं सभी तक नहीं पहुँच सकती।
एम: आप तभी विवाहित और माँ होती हैं जब आप पुरुष-स्त्री के प्रति सचेत होती हैं। जब आप स्वयं को शरीर नहीं मानतीं, तब शरीर का पारिवारिक जीवन, चाहे वह कितना भी गहन और रोचक क्यों न हो, केवल मन के पर्दे पर एक नाटक के रूप में दिखाई देता है, जिसमें जागरूकता का प्रकाश ही एकमात्र वास्तविकता होती है।
प्रश्न: आप जागरूकता को ही एकमात्र वास्तविक क्यों मानते हैं? क्या जागरूकता का विषय भी, जब तक वह बनी रहती है, वास्तविक नहीं होता?
एम: लेकिन यह स्थायी नहीं है! क्षणिक वास्तविकता गौण है; यह शाश्वत पर निर्भर करती है।
प्रश्न: क्या आपका मतलब निरंतर से है, या स्थायी से?
एम: अस्तित्व में कोई निरंतरता नहीं हो सकती। निरंतरता का अर्थ है भूतकाल, वर्तमान और भविष्य में एकरूपता। ऐसी कोई एकरूपता संभव नहीं है, क्योंकि पहचान के साधन ही अस्थिर और परिवर्तनशील होते हैं। निरंतरता, स्थायित्व, ये सब स्मृति द्वारा निर्मित भ्रम हैं, मात्र मानसिक कल्पनाएँ हैं जहाँ कोई स्वरूप हो ही नहीं सकता; अस्थायी या स्थायी, शरीर या मन, पुरुष या स्त्री, इन सभी विचारों को त्याग दो; क्या शेष रह जाता है? जब सभी भेद-विभाजन त्याग दिए जाते हैं, तो मन की अवस्था क्या होती है? मैं भेदों को त्यागने की बात नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि उनके बिना कोई अभिव्यक्ति नहीं है।
प्रश्न: जब मैं वियोग नहीं करता, तो मुझे सुख और शांति का अनुभव होता है। लेकिन किसी न किसी कारणवश मैं बार-बार अपना संतुलन खो बैठता हूँ और बाहरी वस्तुओं में सुख की तलाश करने लगता हूँ। मेरी आंतरिक शांति स्थिर क्यों नहीं रहती, यह मेरी समझ से परे है।
एम: आखिरकार, शांति भी मन की ही एक अवस्था है।
प्रश्न: मन से परे मौन है। इसके बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।
एम: हाँ, मौन के बारे में सारी बातें महज़ शोर हैं।
प्रश्न: हम सांसारिक सुख की तलाश क्यों करते हैं, जबकि हमने अपने भीतर की स्वाभाविक और सहज खुशी का अनुभव कर लिया होता है?
एम: जब मन शरीर की सेवा में लगा रहता है, तो सुख खो जाता है। उसे पुनः प्राप्त करने के लिए वह सुख की खोज करता है। प्रसन्न रहने की इच्छा स्वाभाविक है, परन्तु सुख प्राप्त करने के साधन भ्रामक, अविश्वसनीय और सच्चे सुख के लिए विनाशकारी होते हैं।
प्रश्न: क्या आनंद लेना हमेशा गलत होता है?

एम: शरीर और मन की सही स्थिति और उपयोग अत्यंत सुखद होता है। सुख की खोज करना ही गलत है। स्वयं को प्रसन्न करने का प्रयास न करें, बल्कि अपनी प्रसन्नता की खोज पर ही प्रश्न उठाएं। आप प्रसन्न नहीं हैं, इसीलिए प्रसन्न होना चाहते हैं। पता लगाएं कि आप दुखी क्यों हैं। प्रसन्न न होने के कारण आप सुख में आनंद खोजते हैं; सुख दुख लाता है, इसलिए आप उसे सांसारिक कहते हैं; फिर आप किसी अन्य सुख की लालसा करते हैं, जो दुख रहित हो, जिसे आप दैवीय कहते हैं। वास्तव में, सुख केवल दुख से राहत है। प्रसन्नता सांसारिक और अलौकिक दोनों है, जो कुछ भी घटित होता है, उसके भीतर और उससे परे भी है। कोई भेद न करें, जो अविभाज्य है उसे अलग न करें और स्वयं को जीवन से अलग न करें।
प्रश्न: अब मैं आपको कितना अच्छे से समझ पा रही हूँ! रामनाश्रम में आने से पहले मैं अंतरात्मा के बोझ तले दबी रहती थी, हमेशा खुद का ही मूल्यांकन करती रहती थी। अब मैं पूरी तरह से शांत हूँ, खुद को जैसी हूँ वैसी ही स्वीकार करती हूँ। जब मैं अमेरिका लौटूँगी, तो जीवन को भगवान की कृपा मानकर, जैसा भी आएगा, स्वीकार करूँगी और कड़वे-मीठे दोनों पलों का आनंद लूँगी। आश्रम में मैंने यही सीखा है - भगवान पर भरोसा करना। पहले मैं ऐसी नहीं थी। मैं भरोसा नहीं कर पाती थी।
एम: भगवान पर भरोसा करना स्वयं पर भरोसा करना है। यह जान लें कि जो कुछ भी घटित होता है, वह आपके साथ, आपके द्वारा, आपके माध्यम से घटित होता है; आप ही अपने द्वारा अनुभव की जाने वाली हर चीज के रचयिता, भोक्ता और संहारक हैं; और आप भयभीत नहीं होंगे। भयभीत न होकर आप दुखी नहीं होंगे, न ही सुख की खोज करेंगे।
आपके मन के दर्पण में तरह-तरह की तस्वीरें प्रकट होती हैं और लुप्त हो जाती हैं। यह जानते हुए कि ये पूरी तरह से आपकी अपनी रचनाएँ हैं, उन्हें चुपचाप आते-जाते देखें, सतर्क रहें, लेकिन विचलित न हों। मौन अवलोकन का यही भाव योग का आधार है। आप तस्वीर देखते हैं, लेकिन आप तस्वीर नहीं हैं।
प्रश्न: मुझे मृत्यु का विचार भयभीत करता है क्योंकि मैं पुनर्जन्म नहीं लेना चाहता। मैं जानता हूँ कि कोई मुझे विवश नहीं करता, फिर भी अधूरी इच्छाओं का दबाव इतना प्रबल है कि शायद मैं इसका विरोध न कर पाऊँ।
एम: प्रतिरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। जो जन्म लेता है और पुनर्जन्म लेता है, वह तुम नहीं हो। इसे होने दो, इसे होते हुए देखो।
प्रश्न: तो फिर चिंता करने की क्या आवश्यकता है?
एम: लेकिन आप चिंतित हैं! और जब तक यह तस्वीर आपके सत्य, प्रेम और सौंदर्य की भावना से मेल नहीं खाती, तब तक आप चिंतित रहेंगे। सामंजस्य और शांति की इच्छा अटूट है। लेकिन एक बार जब यह पूरी हो जाती है, तो चिंता समाप्त हो जाती है और भौतिक जीवन सहज और ध्यान से परे हो जाता है। तब, शरीर में भी आपका जन्म नहीं होता। आपके लिए शरीर का होना या न होना एक समान है। आप एक ऐसे बिंदु पर पहुँच जाते हैं जहाँ आपका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। शरीर के बिना, आपको मारा नहीं जा सकता; संपत्ति के बिना, आपको लूटा नहीं जा सकता; मन के बिना, आपको धोखा नहीं दिया जा सकता। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कोई इच्छा या भय हावी हो सके। जब तक आप में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, तब तक और क्या मायने रखता है?
प्रश्न: मुझे किसी तरह मरने का विचार पसंद नहीं है।

एम: ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम बहुत जवान हो। जितना तुम खुद को जानोगे, उतना ही तुम्हारा डर कम होगा। बेशक, मरने की पीड़ा देखना कभी सुखद नहीं होता, लेकिन मरने वाला व्यक्ति शायद ही कभी होश में होता है।
प्रश्न: क्या वह होश में वापस आ जाता है?
एम: यह बिल्कुल नींद की तरह है। कुछ समय के लिए व्यक्ति का ध्यान भटक जाता है और फिर वापस लौट आता है।
प्रश्न: क्या यह वही व्यक्ति है?
एम: मनुष्य परिस्थितियों का प्राणी होने के नाते, उनके साथ-साथ स्वाभाविक रूप से बदलता रहता है, ठीक वैसे ही जैसे ईंधन के साथ लौ बदलती है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, जिससे समय और स्थान का निर्माण होता है। प्रश्न: खैर, भगवान मेरा ख्याल रखेंगे। मैं सब कुछ उन पर छोड़ सकता हूँ। एम: ईश्वर में आस्था भी तो मार्ग का एक पड़ाव मात्र है। अंततः आप सब कुछ त्याग देते हैं, क्योंकि आप एक ऐसी सरल अनुभूति तक पहुँच जाते हैं जिसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है।
प्रश्न: मैं अभी शुरुआत कर रहा हूँ। आरंभ में मुझमें कोई आस्था नहीं थी, कोई भरोसा नहीं था; मुझे चीजों को होने देने से डर लगता था। दुनिया मुझे बहुत खतरनाक और शत्रुतापूर्ण लगती थी। अब, कम से कम मैं गुरु या ईश्वर पर भरोसा करने की बात तो कर सकता हूँ। मुझे आगे बढ़ने दीजिए। मुझ पर दबाव मत डालिए। मुझे अपनी गति से आगे बढ़ने दीजिए।
एम: आप आगे बढ़िए। लेकिन आप नहीं बढ़ रहे हैं। आप अभी भी पुरुष और स्त्री, बूढ़े और जवान, जीवन और मृत्यु के विचारों में फंसे हुए हैं। आगे बढ़िए, इनसे परे जाइए। जिस चीज को पहचान लिया जाता है, वह उस चीज से परे हो जाती है।
प्रश्न: महोदय, मैं जहाँ भी जाता हूँ, लोग मुझमें कमियाँ निकालना और मुझे उकसाना अपना कर्तव्य समझ लेते हैं। मैं इस आध्यात्मिक भाग्य-प्रसंग से तंग आ चुका हूँ। मेरे वर्तमान में ऐसा क्या दोष है कि इसे भविष्य के लिए कुर्बान कर दिया जाए, चाहे वह कितना भी शानदार क्यों न हो? आप कहते हैं कि वास्तविकता वर्तमान में है। मुझे यही चाहिए। मैं अपनी प्रतिष्ठा और उसके भविष्य को लेकर हमेशा चिंतित नहीं रहना चाहता। मैं अधिक और बेहतर की तलाश में नहीं भागना चाहता। मुझे जो मेरे पास है, उससे प्यार करने दीजिए।
एम: आप बिल्कुल सही कह रहे हैं; कर लीजिए। बस ईमानदार रहिए – जो आपको पसंद है, उससे प्यार कीजिए – ज्यादा कोशिश और तनाव मत लीजिए।
प्रश्न: इसे ही मैं गुरु के प्रति समर्पण कहता हूँ।
एम: बाहरी रूप क्यों धारण करें? अपने आप के प्रति समर्पित हो जाओ, क्योंकि हर चीज उसी की अभिव्यक्ति है।

91. सुख और खुशी

प्रश्नकर्ता: मेरे एक मित्र, लगभग पच्चीस वर्ष के एक युवक को बताया गया कि वह एक लाइलाज हृदय रोग से पीड़ित है। उसने मुझे पत्र लिखकर कहा कि वह धीमी मृत्यु के बजाय आत्महत्या करना पसंद करेगा। मैंने उसे उत्तर दिया कि पश्चिमी चिकित्सा से लाइलाज बीमारी का इलाज किसी और तरीके से संभव है। योग में ऐसी शक्तियां हैं जो मानव शरीर में लगभग तुरंत परिवर्तन ला सकती हैं। बार-बार उपवास करने के प्रभाव भी चमत्कारिक प्रतीत होते हैं। मैंने उसे

लिखा कि उसे मरने की जल्दी नहीं करनी चाहिए; बल्कि अन्य तरीकों को आजमा कर देखना चाहिए।
मुंबई से कुछ ही दूरी पर एक योगी रहते हैं जिनके पास कुछ चमत्कारी शक्तियां हैं। उन्होंने शरीर को नियंत्रित करने वाली प्राणिक शक्तियों पर महारत हासिल की है। मैं उनके कुछ शिष्यों से मिला और मैंने अपने मित्र का पत्र और फोटो योगी को भेज दिया। देखते हैं आगे क्या होता है।
महाराज: जी हाँ, चमत्कार अक्सर होते रहते हैं। लेकिन जीने की इच्छा होनी चाहिए। इसके बिना चमत्कार नहीं होंगे।
प्रश्न: क्या ऐसी इच्छा उत्पन्न की जा सकती है?
एम: सतही इच्छा, हाँ। लेकिन यह समय के साथ खत्म हो जाएगी। मूल रूप से, कोई भी किसी दूसरे को जीने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। इसके अलावा, ऐसी संस्कृतियाँ भी थीं जिनमें आत्महत्या को मान्यता प्राप्त और सम्मानजनक स्थान दिया जाता था।
प्रश्न: क्या किसी व्यक्ति के लिए अपनी स्वाभाविक जीवन अवधि को पूरा करना अनिवार्य नहीं है?
एम: स्वाभाविक रूप से—स्वाभाविक रूप से—आसान—हाँ। लेकिन रोग और पीड़ा स्वाभाविक नहीं हैं। जो भी हो, उसे अटूट धैर्य से सहने में महान गुण है, लेकिन निरर्थक यातना और अपमान को अस्वीकार करने में भी गरिमा है। प्रश्न: मुझे एक सिद्ध द्वारा लिखित पुस्तक मिली। उसमें उन्होंने अपने अनेक विचित्र, यहाँ तक कि आश्चर्यजनक अनुभवों का वर्णन किया है। उनके अनुसार, सच्चे साधक का मार्ग अपने गुरु से मिलने और तन-मन-मन से उनके प्रति समर्पित होने पर समाप्त होता है। इसके बाद गुरु शिष्य के जीवन की हर छोटी से छोटी घटना के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण कर लेते हैं, जब तक कि दोनों एक न हो जाएँ। इसे एकात्मता के माध्यम से प्राप्त ज्ञान कहा जा सकता है। शिष्य एक ऐसी शक्ति के वश में हो जाता है जिसे वह न तो नियंत्रित कर सकता है और न ही उसका विरोध कर सकता है, और वह आँधी में पत्ते की तरह असहाय महसूस करता है। उसे पागलपन और मृत्यु से बचाने वाली एकमात्र चीज उसके गुरु के प्रेम और शक्ति में उसका विश्वास है।
एम: प्रत्येक शिक्षक अपने स्वयं के अनुभव के अनुसार शिक्षा देता है। अनुभव विश्वास से आकार लेता है और विश्वास अनुभव से। गुरु भी शिष्य द्वारा अपने स्वरूप में ढल जाता है। शिष्य ही गुरु को महान बनाता है। जब गुरु को एक मुक्तिदायक शक्ति का माध्यम माना जाता है, जो भीतर और बाहर दोनों ओर से कार्य करती है, तो पूर्ण समर्पण स्वाभाविक और सहज हो जाता है। जैसे दर्द से व्याकुल व्यक्ति स्वयं को पूरी तरह से सर्जन के हाथों में सौंप देता है, वैसे ही शिष्य भी बिना किसी संकोच के स्वयं को अपने गुरु के हवाले कर देता है। जब सहायता की तीव्र आवश्यकता महसूस हो, तो सहायता मांगना स्वाभाविक है। लेकिन गुरु चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसे शिष्य पर अपनी इच्छा नहीं थोपनी चाहिए। दूसरी ओर, जो शिष्य अविश्वास करता है और संकोच करता है, वह अपने गुरु की कोई गलती न होने के बावजूद अपूर्ण ही रह जाता है। प्रश्न: फिर क्या होता है?
एम: जीवन तब सिखाता है जब बाकी सब कुछ विफल हो जाता है। लेकिन जीवन के सबक सीखने में लंबा समय लगता है। विश्वास और आज्ञापालन से बहुत सी देरी और परेशानियों से बचा जा सकता है। लेकिन ऐसा विश्वास तभी आता है जब उदासीनता और बेचैनी की जगह स्पष्टता और शांति आ जाती है। जो व्यक्ति स्वयं को कमतर समझता है, वह न तो स्वयं पर और न ही किसी और पर विश्वास कर सकता है। इसलिए,

आरंभ में गुरु शिष्य को उसकी उच्च उत्पत्ति, नेक स्वभाव और गौरवशाली भविष्य के बारे में आश्वस्त करने का भरसक प्रयास करता है। वह उसे कुछ संतों के अनुभवों के साथ-साथ अपने स्वयं के अनुभव भी सुनाता है, जिससे शिष्य में स्वयं पर और अपनी असीम संभावनाओं पर विश्वास पैदा होता है। जब आत्मविश्वास और गुरु पर भरोसा एक साथ आते हैं, तो शिष्य के चरित्र और जीवन में तीव्र और दूरगामी परिवर्तन हो सकते हैं।
प्रश्न: हो सकता है मैं बदलाव न चाहूँ। मेरा जीवन जैसा है वैसा ही काफी अच्छा है।
एम: आप ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि आपने अपने जीवन की पीड़ा को नहीं देखा है। आप उस बच्चे की तरह हैं जो मुंह में लॉलीपॉप लिए सो रहा हो। आप शायद पल भर के लिए स्वार्थी होकर खुश हो जाएं, लेकिन दुख की सार्वभौमिकता को समझने के लिए इंसानों के चेहरों को ध्यान से देखना ही काफी है। आपकी अपनी खुशी भी इतनी नाजुक और क्षणभंगुर है, जैसे किसी बैंक दुर्घटना या पेट के अल्सर के आगे कुछ भी हो सकता है। यह बस एक पल की राहत है, दो दुखों के बीच का एक छोटा सा अंतराल। सच्ची खुशी नाजुक नहीं होती, क्योंकि वह परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती।
प्रश्न: क्या आप अपने निजी अनुभव के आधार पर बोल रहे हैं? क्या आप भी बहुत दुखी हैं?
एम: मुझे निजी तौर पर कोई समस्या नहीं है। लेकिन दुनिया ऐसे प्राणियों से भरी पड़ी है जिनका जीवन भय और लालसा के बीच फंसा हुआ है। वे कसाईखाने ले जाए जा रहे मवेशियों की तरह हैं, उछलते-कूदते, बेफिक्र और खुश, फिर भी एक घंटे के भीतर मर कर खा जाते हैं और उनकी खाल उतार दी जाती है।
आप कहते हैं कि आप खुश हैं। क्या आप सचमुच खुश हैं, या आप सिर्फ खुद को यकीन दिलाने की कोशिश कर रहे हैं? निडर होकर खुद को देखें और आपको तुरंत एहसास होगा कि आपकी खुशी परिस्थितियों और स्थितियों पर निर्भर करती है, इसलिए यह क्षणिक है, वास्तविक नहीं। सच्ची खुशी भीतर से आती है।
प्रश्न: तुम्हारी खुशी से मुझे क्या लाभ है? इससे मुझे खुशी नहीं मिलती। एम: आप बस मांगने भर से यह सब और इससे भी अधिक पा सकते हैं। लेकिन आप मांगते नहीं हैं; लगता है आपको इसकी चाहत ही नहीं है।
प्रश्न: आप ऐसा क्यों कहते हैं? मैं खुश रहना चाहता हूँ।
एम: तुम सुख-सुविधाओं में ही संतुष्ट हो। तुम्हारे भीतर खुशी के लिए कोई जगह नहीं है। अपना प्याला खाली करो और उसे साफ करो। वरना वह भर नहीं सकता।
दूसरे तुम्हें सुख दे सकते हैं, लेकिन खुशी कभी नहीं।
प्रश्न: सुखद घटनाओं की एक श्रृंखला ही काफी है।
एम: अंततः इसका अंत पीड़ा में होता है, यदि आपदा में नहीं तो। आखिर योग है क्या, सिवाय भीतर से स्थायी सुख की खोज करने के?
प्रश्न: आप केवल पूर्वी क्षेत्र के बारे में ही बता सकते हैं। पश्चिमी क्षेत्र में परिस्थितियाँ भिन्न हैं और आपकी बात वहाँ लागू नहीं होती। एम: दुख और भय में पूरब और पश्चिम का कोई भेद नहीं होता। समस्या सार्वभौमिक है - दुख और दुख का निवारण। दुख का कारण आश्रितता है और स्वतंत्रता ही उसका उपाय है। योग आत्म-बोध के माध्यम से आत्म-मुक्ति का विज्ञान और कला है। प्रश्न: मुझे नहीं लगता कि मैं योग के लिए उपयुक्त हूं।
एम: तुम और किस काम के हो? तुम्हारा आना-जाना, सुख की खोज, प्रेम और घृणा— ये सब दर्शाता है कि तुम अपनी सीमाओं से जूझ रहे हो, चाहे वो सीमाएँ तुमने खुद बनाई हों या स्वीकार की हों। अपनी अज्ञानता में तुम गलतियाँ करते हो

और खुद को और दूसरों को दुख पहुँचाते हो, लेकिन ये प्रेरणा तो है ही, जिसे नकारा नहीं जा सकता। वही प्रेरणा जो जन्म, सुख और मृत्यु की तलाश करती है, ज्ञान और मुक्ति की भी तलाश करेगी। ये रुई के लट्ठों में लगी आग की चिंगारी की तरह है। तुम्हें शायद पता न हो, लेकिन देर-सवेर जहाज़ आग की लपटों में घिर जाएगा। मुक्ति एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और अंततः अपरिहार्य है। लेकिन इसे अभी अपने जीवन में लाना तुम्हारे बस में है।
प्रश्न: तो फिर दुनिया में इतने कम स्वतंत्र लोग क्यों हैं?
एम: जंगल में एक समय में केवल कुछ ही पेड़ पूरी तरह से खिले होते हैं, फिर भी हर पेड़ का अपना समय आता है।
एक दिन आपकी शारीरिक और मानसिक क्षमता समाप्त हो जाएगी। तब आप क्या करेंगे? निराशा में डूब जाएंगे? ठीक है, निराशा में डूब जाइए। निराशा से थककर आप सवाल करने लगेंगे। उस क्षण आप सचेत योग के लिए तैयार होंगे। प्रश्न: मुझे यह सब खोज और चिंतन अत्यंत अस्वाभाविक लगता है।
एम: तुम्हारा स्वभाव जन्मजात अपंग जैसा है। तुम्हें शायद इसका एहसास न हो, लेकिन इससे तुम सामान्य नहीं बन जाते। स्वाभाविक या सामान्य होने का क्या अर्थ है, यह तुम नहीं जानते, और न ही तुम्हें यह पता है कि तुम नहीं जानते। इस समय आप दिशाहीन हैं और इसलिए खतरे में हैं, क्योंकि दिशाहीन व्यक्ति के साथ किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है। बेहतर होगा कि आप जागें और अपनी स्थिति का जायजा लें। आप जानते हैं कि आप कौन हैं। लेकिन आप वास्तव में क्या हैं, यह आप नहीं जानते। पता लगाएँ कि आप वास्तव में क्या हैं। प्रश्न: दुनिया में इतना दुख क्यों है?
एम: स्वार्थ ही दुख का कारण है। इसके अलावा कोई और कारण नहीं है।
प्रश्न: मुझे समझ में आया कि सीमितता में ही दुख अंतर्निहित होता है।
एम: मतभेद और भेदभाव दुख का कारण नहीं हैं। विविधता में एकता स्वाभाविक और अच्छी बात है। वास्तविक दुख तो अलगाव और स्वार्थ से ही उत्पन्न होता है।

92. 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से आगे बढ़ें

प्रश्नकर्ता: हम जानवरों की तरह व्यर्थ के कामों में इधर-उधर भागते रहते हैं और इसका कोई अंत नहीं दिखता। क्या इससे निकलने का कोई रास्ता है? महाराज: आपको अनेक मार्ग बताए जाएँगे जो आपको घुमा-फिराकर वहीं वापस ले आएँगे जहाँ से आपने शुरुआत की थी। सबसे पहले यह समझ लें कि आपकी समस्या केवल जागृत अवस्था में ही है, कि चाहे वह कितनी भी पीड़ादायक क्यों न हो, सोते समय आप उसे पूरी तरह भूल सकते हैं। जब आप जागते हैं तो आप सचेत होते हैं; जब आप सोते हैं तो आप केवल जीवित होते हैं। चेतना और जीवन - आप दोनों को ईश्वर कह सकते हैं; परन्तु आप इन दोनों से परे हैं, ईश्वर से परे, अस्तित्व और गैर-अस्तित्व से परे। जो चीज आपको स्वयं को सर्वस्व और सर्वस्व से परे जानने से रोकती है, वह स्मृति पर आधारित मन है। जब तक आप इस पर भरोसा करते हैं, तब तक यह आप पर हावी रहता है; इससे संघर्ष न करें; बस इसे अनदेखा कर दें। ध्यान न देने पर यह धीमा हो जाएगा और अपनी कार्यप्रणाली प्रकट करेगा। एक बार जब आप इसके स्वरूप और उद्देश्य को जान लेंगे, तो आप इसे काल्पनिक समस्याएँ उत्पन्न करने की अनुमति नहीं देंगे।
प्रश्न: निश्चित रूप से, सभी समस्याएं काल्पनिक नहीं होतीं। वास्तविक समस्याएं भी होती हैं।

एम: ऐसी कौन सी समस्याएँ हो सकती हैं जिन्हें मन ने उत्पन्न न किया हो? जीवन और मृत्यु समस्याएँ उत्पन्न नहीं करते; सुख-दुख आते-जाते रहते हैं, अनुभव किए जाते हैं और भुला दिए जाते हैं। स्मृति और प्रत्याशा ही प्राप्ति या टालने की समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, जो पसंद-नापसंद से रंगी होती हैं। सत्य और प्रेम मनुष्य का वास्तविक स्वभाव है और मन और हृदय इसकी अभिव्यक्ति के साधन हैं।
प्रश्न: मन को वश में कैसे किया जाए? और उस हृदय को कैसे नियंत्रित किया जाए जिसे यह नहीं पता कि वह क्या चाहता है?
एम: वे अंधेरे में काम नहीं कर सकते। उन्हें सही ढंग से कार्य करने के लिए शुद्ध चेतना के प्रकाश की आवश्यकता होती है। नियंत्रण के सभी प्रयास उन्हें केवल स्मृति के अधीन कर देंगे। स्मृति एक अच्छी सेवक तो है, लेकिन एक बुरी स्वामी। यह खोज को प्रभावी रूप से रोकती है। वास्तविकता में प्रयास का कोई स्थान नहीं है। शरीर के साथ आत्म-पहचान के कारण उत्पन्न स्वार्थ ही मुख्य समस्या है और अन्य सभी समस्याओं का कारण है। और स्वार्थ को प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता, केवल इसके कारणों और प्रभावों की स्पष्ट समझ से ही दूर किया जा सकता है। प्रयास असंगत इच्छाओं के बीच संघर्ष का संकेत है। उन्हें वैसे ही देखा जाना चाहिए जैसे वे हैं - तभी वे समाप्त हो जाती हैं।
प्रश्न: और क्या शेष रहता है?
एम: जो बदल नहीं सकता, वह बना रहता है। महान शांति, गहरा मौन, वास्तविकता की छिपी हुई सुंदरता बनी रहती है। हालाँकि इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, यह आपके स्वयं अनुभव करने की प्रतीक्षा कर रहा है।
प्रश्न: क्या आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य और उपयुक्त होना आवश्यक नहीं है? हमारा स्वभाव मूल रूप से पशुवत है। जब तक हम इस पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक हम वास्तविकता के उदय की आशा कैसे कर सकते हैं?
एम: जानवर को अकेला छोड़ दो। उसे रहने दो। बस याद रखो कि तुम क्या हो। दिन की हर घटना का उपयोग यह याद दिलाने के लिए करो कि तुम्हारे बिना, साक्षी स्वरूप, न तो जानवर है और न ही ईश्वर। समझ लो कि तुम ही हो, हर चीज का सार और तत्व। और अपनी समझ पर अडिग रहो।
प्रश्न: क्या केवल समझ ही पर्याप्त है? क्या मुझे और अधिक ठोस प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है?
एम: प्रमाणों की वैधता का निर्णय आपकी समझ पर निर्भर करेगा। लेकिन आपके स्वयं के अस्तित्व से अधिक ठोस प्रमाण और क्या हो सकता है? आप जहाँ भी जाते हैं, आप स्वयं को पाते हैं। समय में आप चाहे जितनी दूर चले जाएँ, आप वहाँ मौजूद होते हैं।
प्रश्न: जाहिर है, मैं सर्वव्यापी और शाश्वत नहीं हूँ। मैं केवल यहीं और अभी हूँ।
एम: ठीक है। 'यहाँ' सर्वत्र व्याप्त है और 'वर्तमान' सदास्थाई है। 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से परे जाइए और आप पाएंगे कि समय और स्थान आप में विद्यमान हैं, आप समय और स्थान में नहीं। एक बार जब आप इसे समझ लेंगे, तो आत्मज्ञान की राह में आने वाली मुख्य बाधा दूर हो जाएगी।
प्रश्न: वह कौन सी अनुभूति है जो समझ से परे है?
एम: कल्पना कीजिए एक घने जंगल में बाघों की भरमार है और आप एक मजबूत स्टील के पिंजरे में बंद हैं। यह जानते हुए कि पिंजरा आपकी पूरी तरह से रक्षा कर

रहा है, आप निडर होकर बाघों को देखते हैं। फिर आप देखते हैं कि पिंजरे में बंद बाघ जंगल में घूम रहे हैं। अंत में - पिंजरा गायब हो जाता है और आप बाघों की सवारी करते हैं!
प्रश्न: मैंने हाल ही में मुंबई में आयोजित एक सामूहिक ध्यान सत्र में भाग लिया और प्रतिभागियों की तल्लीनता और आत्म-समर्पण की भावना देखी। लोग ऐसी चीजों के लिए क्यों जाते हैं?
एम: ये सब बेचैन मन की उपज हैं जो संवेदनाओं की तलाश में भटक रहे लोगों को संतुष्ट करने के लिए बनाई गई हैं। इनमें से कुछ अवचेतन मन को दबी हुई यादों और इच्छाओं को बाहर निकालने में मदद करती हैं और इस हद तक राहत प्रदान करती हैं। लेकिन अंततः ये अभ्यासकर्ता को उसी स्थिति में छोड़ देती हैं - या उससे भी बदतर।
प्रश्न: मैंने हाल ही में एक योगी की ध्यान साधना के अनुभवों पर लिखी एक पुस्तक पढ़ी है। यह दर्शनों, ध्वनियों, रंगों और धुनों से भरपूर है; सचमुच एक अद्भुत प्रदर्शन और बेहद मनोरंजक अनुभव! अंत में वे सब लुप्त हो गए और केवल पूर्ण निर्भयता का भाव शेष रह गया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं - जो व्यक्ति इन सभी अनुभवों से निर्भय होकर गुजरा हो, उसे किसी चीज से डरने की जरूरत ही नहीं! फिर भी मैं सोच रहा था कि ऐसी पुस्तक मेरे लिए किस काम की है?
एम: शायद इसका कोई फायदा नहीं, क्योंकि यह आपको आकर्षित नहीं करता। दूसरों को शायद यह पसंद आए। हर इंसान में भिन्नता होती है। लेकिन सभी को अपने अस्तित्व की सच्चाई का सामना करना पड़ता है। 'मैं हूं' परम सत्य है; 'मैं कौन हूं?' वह परम प्रश्न है जिसका उत्तर हर किसी को खोजना ही होगा। प्रश्न: क्या उत्तर वही रहेगा?
एम: सार में समान, अभिव्यक्ति में भिन्न।
प्रत्येक साधक अपने लिए उपयुक्त विधि को अपनाता है या स्वयं आविष्कार करता है, उसे पूर्ण लगन और प्रयास से अपने जीवन में उतारता है, अपने स्वभाव और अपेक्षाओं के अनुरूप परिणाम प्राप्त करता है, उन्हें शब्दों के संग्रह में पिरोता है, एक प्रणाली का निर्माण करता है, एक परंपरा स्थापित करता है और दूसरों को अपने 'योग विद्यालय' में प्रवेश देना शुरू करता है। यह सब स्मृति और कल्पना पर आधारित है। ऐसा कोई विद्यालय न तो व्यर्थ है और न ही अपरिहार्य; प्रत्येक विद्यालय एक ऐसे बिंदु तक प्रगति कर सकता है, जहाँ आगे की प्रगति के लिए प्रगति की सभी इच्छाओं का त्याग करना आवश्यक हो जाता है। तब सभी विद्यालयों का त्याग कर दिया जाता है, सभी प्रयास समाप्त हो जाते हैं; एकांत और अंधकार में वह विशाल कदम उठाया जाता है जो अज्ञान और भय को हमेशा के लिए समाप्त कर देता है।
लेकिन सच्चा शिक्षक अपने शिष्य को विचारों, भावनाओं और कार्यों के एक निर्धारित दायरे में कैद नहीं करेगा; इसके विपरीत, वह धैर्यपूर्वक उसे सभी विचारों और व्यवहार के निर्धारित मानदंडों से मुक्त होने, सतर्क और गंभीर रहने और जीवन उसे जहाँ भी ले जाए, उसके साथ चलने की आवश्यकता दिखाएगा, न कि आनंद लेने या कष्ट सहने के लिए, बल्कि समझने और सीखने के लिए।
सही गुरु के मार्गदर्शन में शिष्य को याद करना और आज्ञा मानना नहीं, बल्कि सीखना सिखाया जाता है। सत्संग, जो श्रेष्ठ गुरुओं की संगति है, किसी को ढालता नहीं, बल्कि मुक्ति प्रदान करता है। उन सभी चीजों से सावधान रहें जो आपको आश्रित बनाती हैं। तथाकथित 'गुरु के प्रति समर्पण' में से अधिकांश का अंत निराशा में होता है, या कहें तो त्रासदी में। सौभाग्य से, एक सच्चा

साधक समय के साथ स्वयं को इस बंधन से मुक्त कर लेता है और अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता है।
प्रश्न: निःसंदेह, आत्मसमर्पण का अपना महत्व है।
एम: आत्म-समर्पण का अर्थ है स्व-चिंताओं का पूर्ण त्याग। यह किया नहीं जा सकता, यह तब होता है जब आप अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं। मौखिक आत्म-समर्पण, भले ही उसमें भावनाएँ शामिल हों, का कोई विशेष महत्व नहीं होता और तनाव में वह टूट जाता है। अधिक से अधिक यह एक आकांक्षा को दर्शाता है, वास्तविकता को नहीं।
प्रश्न: ऋग्वेद में आदि योग का उल्लेख है, जो प्रज्ञा और प्राण के मिलन से बनता है। मेरी समझ से इसका अर्थ है ज्ञान और जीवन का मिलन। क्या आप कहेंगे कि इसका अर्थ धर्म और कर्म, यानी सद्गुण और कर्म का मिलन भी है?
एम: हाँ, धार्मिकता से आपका तात्पर्य अपने वास्तविक स्वभाव के साथ सामंजस्य स्थापित करना है और कर्म से - केवल निस्वार्थ और इच्छा रहित कर्म करना है।
अधि योग में जीवन ही गुरु है और मन शिष्य। मन जीवन पर ध्यान देता है, वह आदेश नहीं देता। जीवन सहज और स्वाभाविक रूप से बहता है और मन उसके सुचारू प्रवाह में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।
प्रश्न: क्या जीवन अपने मूल स्वरूप में ही दोहराव वाला नहीं है? क्या जीवन का अनुसरण करने से ठहराव नहीं आ जाएगा?
एम: जीवन अपने आप में अत्यंत रचनात्मक है। एक बीज समय के साथ जंगल बन जाता है। मन एक वनपाल की तरह है - अस्तित्व की अपार ऊर्जा की रक्षा और उसे नियंत्रित करता है।
प्रश्न: मन द्वारा जीवन की सेवा के रूप में देखा जाने वाला अधि योग एक पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था है। हर कोई अपनी सर्वोत्तम क्षमता और ज्ञान के अनुसार जीवन जीने में लगा रहता है, हर कोई एक ही गुरु का शिष्य होता है। एम: आप ऐसा कह सकते हैं। यह संभव है—संभावित रूप से। लेकिन जब तक जीवन से प्रेम और विश्वास न किया जाए, उसे उत्साह और उमंग के साथ न जिया जाए, तब तक योग की बात करना व्यर्थ होगा, जो चेतना की गति है, कर्म में जागरूकता है। प्रश्न: एक बार मैंने चट्टानों के बीच से बहती एक पर्वतीय धारा को देखा।
प्रत्येक चट्टान पर हलचल अलग-अलग थी, चट्टान के आकार और आकृति के अनुसार। क्या प्रत्येक व्यक्ति मात्र एक शरीर पर होने वाली हलचल नहीं है, जबकि जीवन एक और शाश्वत है?
एम: हलचल और पानी अलग-अलग नहीं हैं। हलचल ही आपको पानी का एहसास कराती है। चेतना हमेशा गति और परिवर्तन से जुड़ी होती है। अपरिवर्तनीय चेतना जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। अपरिवर्तनीयता चेतना को तुरंत मिटा देती है। बाहरी या आंतरिक संवेदनाओं से वंचित व्यक्ति खाली हो जाता है, या चेतना और अचेतना से परे जन्म और मृत्यु रहित अवस्था में चला जाता है। चेतना का जन्म तभी होता है जब आत्मा और पदार्थ एक साथ आते हैं।
प्रश्न: क्या वे एक हैं या दो?
एम: यह आपके द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों पर निर्भर करता है: वे एक, दो या तीन हो सकते हैं। जांच करने पर तीन दो बन जाते हैं और दो एक। चेहरे की छवि का उदाहरण लीजिए। इनमें से कोई भी दो तीसरे की उपस्थिति को दर्शाते हैं, जो इन दोनों को जोड़ता है। साधना में आप तीन को दो के रूप में देखते हैं, जब तक कि आप दो को एक के रूप में महसूस नहीं कर लेते। जब तक आप संसार में लीन रहते

हैं, आप स्वयं को नहीं जान पाते: स्वयं को जानने के लिए, संसार से अपना ध्यान हटाकर अपने भीतर लगाएं।
प्रश्न: मैं दुनिया को नष्ट नहीं कर सकता।
एम: इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। बस इतना समझ लीजिए कि जो दिखता है वो असलियत नहीं है। जाँच-पड़ताल करने पर बाहरी दिखावे का पर्दाफाश हो जाएगा और असलियत सामने आ जाएगी। घर से बाहर निकलने के लिए उसे जलाने की ज़रूरत नहीं है। बस बाहर निकल जाइए। घर तभी जेल बनता है जब आप आज़ादी से आ-जा नहीं सकते। मैं सहजता से और स्वाभाविक रूप से चेतना में आता-जाता हूँ, इसलिए मेरे लिए दुनिया घर है, जेल नहीं।
प्रश्न: लेकिन अंततः क्या दुनिया का अस्तित्व है, या इसका अस्तित्व ही नहीं है?
एम: जो कुछ आप देखते हैं, वह आपके स्वयं के सिवा कुछ नहीं है। आप इसे चाहे जो नाम दें, इससे सच्चाई नहीं बदलती। नियति के पर्दे पर आपका अपना प्रकाश ही चित्र बनाता है। आप ही दर्शक हैं, प्रकाश हैं, चित्र हैं और पर्दा हैं। नियति का पर्दा (प्रारब्ध) भी स्वयं द्वारा चुना और स्वयं द्वारा निर्धारित है। आत्मा एक खेल है और बाधाओं को पार करने में आनंद लेती है। कार्य जितना कठिन होता है, आत्म-साक्षात्कार उतना ही गहरा और व्यापक होता है।

93. मनुष्य कर्ता नहीं है

प्रश्नकर्ता: जीवन के आरंभ से ही मुझे अपूर्णता का बोध सताता रहा है। स्कूल से लेकर कॉलेज, नौकरी, विवाह और समृद्धि तक, मैंने यही सोचा कि अगली चीज़ मुझे शांति देगी, पर शांति नहीं मिली। वर्षों बीतने के साथ-साथ यह अपूर्णता का बोध बढ़ता ही जा रहा है।
महाराज: जब तक शरीर और शरीर से जुड़ाव की भावना बनी रहेगी, निराशा अपरिहार्य है। जब आप स्वयं को शरीर से पूर्णतः भिन्न और अलग जान लेंगे, तभी आपको 'मैं ही शरीर हूँ' की धारणा से जुड़े भय और लालसा के मिश्रण से मुक्ति मिलेगी। केवल भय को शांत करने और इच्छाओं को संतुष्ट करने से वह खालीपन दूर नहीं होगा जिससे आप छुटकारा पाना चाहते हैं; केवल आत्मज्ञान ही आपकी सहायता कर सकता है। आत्मज्ञान से मेरा तात्पर्य उस ज्ञान से है जो आप नहीं हैं। ऐसा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और वह पूर्ण है; परन्तु आप क्या हैं, इस खोज का कोई अंत नहीं है। जितना अधिक आप खोजेंगे, उतना ही अधिक खोजे जाने की संभावना रहेगी।
प्रश्न: इसके लिए हमें अलग माता-पिता और अलग स्कूलों में पढ़ना होगा, एक अलग समाज में रहना होगा।
एम: आप अपनी परिस्थितियों को नहीं बदल सकते, लेकिन आप अपना दृष्टिकोण बदल सकते हैं। आपको अनावश्यक चीजों से लगाव रखने की आवश्यकता नहीं है। केवल आवश्यक ही अच्छा है। शांति केवल आवश्यक चीजों में ही निहित है।
प्रश्न: मैं सत्य की खोज कर रहा हूँ, शांति की नहीं।
एम: जब तक आप शांत नहीं होंगे, तब तक आप सत्य को नहीं देख पाएंगे। सही बोध के लिए शांत मन आवश्यक है, जो आत्म-साक्षात्कार के लिए अनिवार्य है।
प्रश्न: मेरे पास करने के लिए बहुत कुछ है। मैं अपने दिमाग को शांत नहीं रख सकता।

एम: यह आपके इस भ्रम के कारण है कि आप ही कर्ता हैं। वास्तव में, चीजें आपके साथ घटित होती हैं, आप उन्हें नहीं करते।
प्रश्न: यदि मैं घटनाओं को यूं ही घटित होने दूं, तो मैं कैसे सुनिश्चित कर सकता हूं कि वे मेरे अनुसार ही घटित होंगी? निश्चित रूप से मुझे उन्हें अपनी इच्छा के अनुरूप ढालना होगा।
एम: आपकी इच्छा, उसकी पूर्ति या अपूर्णता, बस आपके साथ घटित होती है। आप इनमें से किसी को भी नहीं बदल सकते। आप भले ही यह मानते हों कि आप प्रयास करते हैं, मेहनत करते हैं और संघर्ष करते हैं। लेकिन असल में, यह सब बस घटित होता है, जिसमें आपके कर्मों का फल भी शामिल है। कुछ भी आपके द्वारा या आपके लिए नहीं है। सब कुछ सिनेमा स्क्रीन पर प्रदर्शित तस्वीर में है, प्रकाश में कुछ भी नहीं, जिसमें आप स्वयं को जो समझते हैं, वह भी शामिल है। आप केवल प्रकाश हैं।
प्रश्न: यदि मैं केवल प्रकाश ही हूँ, तो मैं इसे कैसे भूल गया?
एम: तुम भूले नहीं हो। स्क्रीन पर दिख रही तस्वीर में ही तुम भूलते हो और फिर याद करते हो। बाघ बनने का सपना देखने से तुम कभी भी मनुष्य होना नहीं छोड़ते। उसी प्रकार तुम शुद्ध प्रकाश हो जो स्क्रीन पर एक तस्वीर के रूप में प्रकट होता है और उसी में विलीन हो जाता है।
प्रश्न: जब सब कुछ होता ही रहता है, तो मुझे चिंता क्यों करनी चाहिए?
एम: बिल्कुल सही। स्वतंत्रता का अर्थ है चिंता से मुक्ति। जब आपको यह एहसास हो जाए कि आप परिणामों को प्रभावित नहीं कर सकते, तो अपनी इच्छाओं और भय पर ध्यान न दें। उन्हें आने-जाने दें। उनमें रुचि और ध्यान न दें। प्रश्न: यदि मैं घटित होने वाली घटनाओं पर ध्यान देना बंद कर दूं, तो मुझे किस सिद्धांत पर जीना चाहिए?
एम: यह फिर से वही सवाल है: 'अगर मैं सपने देखना बंद कर दूं तो मैं क्या करूंगा?' रुकिए और देखिए। आपको चिंता करने की ज़रूरत नहीं है: 'आगे क्या?' अगला चरण हमेशा होता है। जीवन न शुरू होता है और न ही खत्म: यह स्थिर है - यह गतिशील है, क्षणिक है - यह स्थायी है। प्रकाश कभी समाप्त नहीं हो सकता, चाहे वह अनगिनत चित्र ही क्यों न बनाए। इसी प्रकार जीवन प्रत्येक आकृति को पूर्णतः भर देता है और आकृति के विलीन होने पर अपने स्रोत में लौट जाता है। प्रश्न: यदि जीवन इतना अद्भुत है, तो अज्ञानता कैसे हो सकती है?
एम: आप रोगी को देखे बिना ही बीमारी का इलाज करना चाहते हैं! अज्ञान के बारे में पूछने से पहले, पहले यह पता क्यों नहीं लगाते कि अज्ञानी कौन है? जब आप कहते हैं कि आप अज्ञानी हैं, तो आप यह नहीं जानते कि आपने अपने विचारों और भावनाओं की वास्तविक स्थिति पर अज्ञान की अवधारणा थोप दी है। जैसे ही वे उत्पन्न हों, उनका विश्लेषण करें, उन पर पूरा ध्यान दें और आप पाएंगे कि अज्ञान जैसी कोई चीज नहीं है, केवल असावधानी है। केवल उसी बात पर ध्यान दें जो आपको परेशान करती है। आखिरकार, चिंता मानसिक पीड़ा है और पीड़ा हमेशा ध्यान आकर्षित करने का संकेत होती है। जिस क्षण आप ध्यान देते हैं, ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और अज्ञान का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा करने के बजाय, यह पता लगाएं कि प्रश्न कौन पूछ रहा है और उसे ऐसा करने के लिए क्या प्रेरित करता है। आप जल्द ही पाएंगे कि यह मन है, जो पीड़ा के भय से प्रेरित होकर प्रश्न पूछता है। और भय में स्मृति और प्रत्याशा, अतीत और भविष्य दोनों होते हैं। ध्यान आपको वर्तमान में, अभी में वापस लाता है, और

अभी में उपस्थिति एक ऐसी अवस्था है जो हमेशा मौजूद रहती है, लेकिन शायद ही कभी ध्यान दिया जाता है।
प्रश्न: आप साधना को केवल ध्यान तक सीमित कर रहे हैं। अन्य शिक्षक संपूर्ण, कठिन और समय लेने वाले पाठ्यक्रम कैसे सिखाते हैं?
एम: गुरु आमतौर पर उन्हीं साधनाओं का उपदेश देते हैं जिनसे वे स्वयं अपने लक्ष्य तक पहुँचे हों, चाहे उनका लक्ष्य कुछ भी हो। यह स्वाभाविक है, क्योंकि वे अपनी साधना को भली-भांति जानते हैं। मुझे अपने 'मैं' के भाव पर ध्यान केंद्रित करना सिखाया गया था और मैंने इसे अत्यंत प्रभावी पाया। इसलिए, मैं इस पर पूर्ण विश्वास के साथ विचार कर सकता हूँ। परन्तु अक्सर लोग अपने शरीर, मस्तिष्क और मन को इतना विकृत, भ्रष्ट और कमजोर करके आते हैं कि निराकार ध्यान की अवस्था उनके लिए अथाह हो जाती है। ऐसे मामलों में, गंभीरता का कोई सरल संकेत उपयुक्त होता है। किसी मंत्र का जाप करना या किसी चित्र को निहारना उनके शरीर और मन को गहन और प्रत्यक्ष खोज के लिए तैयार कर सकता है। अंततः, गंभीरता ही अपरिहार्य है, निर्णायक कारक है। साधना केवल एक पात्र है और इसे गंभीरता से परिपूर्ण होना चाहिए, जो कर्म में प्रेम ही है। क्योंकि प्रेम के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। प्रश्न: हम केवल स्वयं से प्रेम करते हैं।
एम: अगर ऐसा होता, तो कितना शानदार होता! अपने आप से समझदारी से प्रेम करो और तुम पूर्णता के शिखर पर पहुँच जाओगे। हर कोई अपने शरीर से प्रेम करता है, लेकिन बहुत कम लोग अपने वास्तविक अस्तित्व से प्रेम करते हैं।
प्रश्न: क्या मेरे वास्तविक अस्तित्व को मेरे प्रेम की आवश्यकता है? एम: आपका वास्तविक अस्तित्व स्वयं प्रेम है और आपके अनेक प्रेम उस समय की स्थिति के अनुसार प्रेम के ही प्रतिबिंब हैं।
प्रश्न: हम स्वार्थी हैं, हम केवल आत्मप्रेम जानते हैं।
एम: शुरुआत के लिए इतना काफी है। आप अपने लिए शुभकामनाएं जरूर दें। गहराई से सोचें और समझें कि वास्तव में आपके लिए क्या अच्छा है और उसे पाने के लिए पूरी लगन से प्रयास करें। बहुत जल्द आप पाएंगे कि जो सच है वही आपके लिए एकमात्र अच्छा है।
प्रश्न: फिर भी मुझे समझ नहीं आता कि विभिन्न गुरु जटिल और कठिन साधनाओं को क्यों निर्धारित करने पर जोर देते हैं। क्या उन्हें इससे बेहतर ज्ञान नहीं है?
एम: मायने यह नहीं रखता कि आप क्या करते हैं, बल्कि यह मायने रखता है कि आप क्या करना बंद कर देते हैं। साधना शुरू करने वाले लोग इतने उत्तेजित और बेचैन होते हैं कि उन्हें अपने मार्ग पर बने रहने के लिए बहुत व्यस्त रहना पड़ता है। एक नियमित दिनचर्या उनके लिए अच्छी होती है। कुछ समय बाद वे शांत हो जाते हैं और प्रयास से विमुख हो जाते हैं। शांति और मौन में 'मैं' का आवरण घुल जाता है और भीतरी और बाह्य एक हो जाते हैं। सच्ची साधना सहज होती है।
प्रश्न: मुझे कभी-कभी ऐसा महसूस होता है कि अंतरिक्ष ही मेरा शरीर है।
एम: जब आप 'मैं यह शरीर हूँ' के भ्रम में बंधे होते हैं, तो आप अंतरिक्ष में एक बिंदु और समय में एक क्षण मात्र होते हैं। जब शरीर से आत्म-पहचान समाप्त हो जाती है, तो सारा अंतरिक्ष और समय आपके मन में समा जाता है, जो चेतना की एक हल्की सी लहर मात्र है, जो प्रकृति में प्रतिबिंबित जागरूकता है। जागरूकता और पदार्थ शुद्ध अस्तित्व के सक्रिय और निष्क्रिय पहलू हैं, जो दोनों में और दोनों से परे है। अंतरिक्ष और समय सार्वभौमिक अस्तित्व का

शरीर और मन हैं। मेरा अनुभव यह है कि अंतरिक्ष और समय में जो कुछ भी घटित होता है, वह मुझ पर घटित होता है, प्रत्येक अनुभव मेरा अनुभव है, प्रत्येक रूप मेरा रूप है। मैं स्वयं को जो समझता हूँ, वह मेरा शरीर बन जाता है और उस शरीर पर जो कुछ भी घटित होता है, वह मेरा मन बन जाता है। लेकिन ब्रह्मांड के मूल में शुद्ध जागरूकता है, जो अंतरिक्ष और समय से परे, यहीं और अभी विद्यमान है। इसे अपना वास्तविक अस्तित्व समझें और उसी के अनुसार कार्य करें।
प्रश्न: मेरे स्वयं के स्वरूप से क्या फर्क पड़ेगा? कर्म तो परिस्थितियों के अनुसार ही होते हैं।
एम: अज्ञानी व्यक्ति पर परिस्थितियाँ और स्थितियाँ हावी होती हैं। सत्य का ज्ञाता विवश नहीं होता। वह केवल प्रेम के नियम का पालन करता है।

94. आप अंतरिक्ष और समय से परे हैं
प्रश्नकर्ता: आप बार-बार कहते हैं कि मेरा कभी जन्म नहीं हुआ और न ही मेरी मृत्यु होगी। यदि ऐसा है, तो मैं इस दुनिया को एक ऐसी दुनिया के रूप में कैसे देखता हूँ जिसका जन्म हुआ है और जिसका निश्चित रूप से अंत होगा? महाराज: आप ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि आपने कभी इस विश्वास पर सवाल नहीं उठाया कि आप शरीर हैं, जो स्पष्ट रूप से जन्म लेता है और मर जाता है। जीवित रहते हुए, यह इतना ध्यान आकर्षित करता है और मोहित करता है कि व्यक्ति शायद ही कभी अपने वास्तविक स्वरूप को जान पाता है। यह समुद्र की सतह को देखकर उसके नीचे की विशालता को पूरी तरह भूल जाने जैसा है। संसार तो मन की सतह मात्र है और मन अनंत है। जिन्हें हम विचार कहते हैं, वे तो बस मन की लहरें हैं। जब मन शांत होता है, तो वह वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है। जब वह पूरी तरह स्थिर हो जाता है, तो वह विलीन हो जाता है और केवल वास्तविकता ही शेष रह जाती है। यह वास्तविकता इतनी ठोस, इतनी वास्तविक, मन और पदार्थ से कहीं अधिक मूर्त है कि इसके सामने हीरा भी मक्खन जैसा कोमल लगता है। यह सर्वोत्कृष्ट वास्तविकता संसार को स्वप्निल, धुंधला और महत्वहीन बना देती है।
प्रश्न: इस दुनिया में इतना दुख-तकलीफ है, फिर भी आप इसे कैसे अप्रासंगिक मान सकते हैं? कितनी बेरहमी है!
एम: निर्दयी तुम हो, मैं नहीं। अगर तुम्हारी दुनिया इतनी दुखमय है, तो कुछ करो; लालच या आलस्य से इसे और मत बढ़ाओ। मैं तुम्हारी स्वप्निल दुनिया से बंधा हुआ नहीं हूँ। मेरी दुनिया में दुख, इच्छा और भय के बीज नहीं बोए जाते और दुख पनपता नहीं है। मेरी दुनिया विरोधाभासों से मुक्त है, परस्पर भिन्न विसंगतियों से मुक्त है; सामंजस्य व्याप्त है; इसकी शांति चट्टान की तरह है; यह शांति और मौन ही मेरा शरीर है।
प्रश्न: आपकी बातें सुनकर मुझे बुद्ध के धर्मकाया की याद आ गई।
एम: शायद। हमें शब्दावली में उलझने की ज़रूरत नहीं है। बस उस व्यक्ति को देखें जिसे आप अपने मन में देखते हैं, उसे उस दुनिया का हिस्सा समझें जिसे आप अपने मन में बोध करते हैं, और मन को बाहर से देखें, क्योंकि आप मन नहीं हैं। आखिरकार, आपकी एकमात्र समस्या है अपने बोध से अत्यधिक आत्म-पहचान करना। इस आदत को छोड़ दें, याद रखें कि आप वह नहीं हैं जो आप बोध करते हैं, अपनी सतर्कता और तटस्थता की शक्ति का उपयोग करें। हर जीवित चीज़ में स्वयं को देखें और आपका व्यवहार आपके दृष्टिकोण को व्यक्त करेगा। एक बार जब आप यह समझ जाते हैं कि इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे आप अपना कह सकें,

एम: सुख चीजों पर निर्भर करता है, खुशी नहीं।
प्रश्न: यदि खुशी स्वतंत्र है, तो हम हमेशा खुश क्यों नहीं रहते?
एम: जब तक हम यह मानते रहेंगे कि खुश रहने के लिए हमें चीजों की जरूरत है, तब तक हम यह भी मानते रहेंगे कि उनके अभाव में हम दुखी ही रहेंगे। मन हमेशा अपनी मान्यताओं के अनुसार ही ढलता है। इसलिए यह समझना जरूरी है कि खुशी पाने के लिए किसी तरह के प्रलोभन की जरूरत नहीं है; बल्कि इसके विपरीत, सुख एक भटकाव और परेशानी है, क्योंकि यह केवल इस गलत धारणा को बढ़ाता है कि खुश रहने के लिए चीजों का होना और उन्हें करना जरूरी है, जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल उलट है।
लेकिन खुशी की बात ही क्यों करें? खुशी का ख्याल तो तभी आता है जब आप दुखी होते हैं। जो व्यक्ति कहता है, 'अब मैं खुश हूँ', वह दो दुखों के बीच फंसा हुआ है - अतीत और भविष्य। यह खुशी तो बस दर्द से राहत मिलने से पैदा हुई उत्तेजना है। सच्ची खुशी तो पूरी तरह से आत्म-जागरूकता से रहित होती है। इसे सबसे अच्छे तरीके से नकारात्मक रूप में व्यक्त किया जा सकता है: 'मुझमें कोई कमी नहीं है। मुझे किसी बात की चिंता नहीं है।' आखिरकार, सारी साधना का अंतिम उद्देश्य उस मुकाम तक पहुंचना है, जब यह विश्वास, केवल शब्दों तक सीमित न रहकर, वास्तविक और निरंतर अनुभव पर आधारित हो। प्रश्न: कौन सा अनुभव?
एम: खालीपन का अनुभव, यादों और अपेक्षाओं से मुक्त होना; यह खुले स्थानों की खुशी, युवावस्था की खुशी, चीजों को करने, खोज करने और रोमांच के लिए भरपूर समय और ऊर्जा होने जैसा है।
प्रश्न: अब क्या खोजना बाकी है?
एम: ईश्वर के महान मन और हृदय में यथार्थ रूप में विद्यमान ब्रह्मांड और उसकी विशालता। अस्तित्व का अर्थ और उद्देश्य, दुख का रहस्य, अज्ञान से जीवन का उद्धार।
प्रश्न: यदि प्रसन्न रहना भय और चिंता से मुक्त होने के समान है, तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि कष्टों का अभाव ही प्रसन्नता का कारण है?
एम: अनुपस्थिति, अस्तित्वहीनता की अवस्था कारण नहीं हो सकती; इस धारणा में कारण का पूर्व-अस्तित्व निहित है। आपकी स्वाभाविक अवस्था, जिसमें कुछ भी विद्यमान नहीं है, उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकती; कारण स्मृति की महान और रहस्यमय शक्ति में छिपे हैं। परन्तु आपका सच्चा घर शून्यता में है, समस्त सार के खालीपन में है।
प्रश्न: खालीपन और शून्यता—कितना भयानक!
एम: सोते समय आप इसका सबसे प्रसन्नतापूर्वक सामना करते हैं! स्वयं जागृत अवस्था में नींद का अनुभव करें और आप पाएंगे कि यह आपके वास्तविक स्वभाव के साथ पूर्ण सामंजस्य में है। शब्द केवल आपको एक आशय दे सकते हैं और आशय अनुभव नहीं होता। मैं बस इतना ही कह सकता हूँ कि सच्ची खुशी का कोई कारण नहीं होता और जिसका कोई कारण नहीं होता वह अटल होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सुख की तरह प्रत्यक्ष है। जो प्रत्यक्ष है वह दुख और सुख है; दुःख से मुक्ति की अवस्था का वर्णन केवल नकारात्मक रूप से किया जा सकता है। इसे प्रत्यक्ष रूप से जानने के लिए आपको कारण-कार्य संबंध और समय के बंधन में जकड़े मन से परे जाना होगा।
प्रश्न: यदि खुशी चेतना से उत्पन्न नहीं होती और चेतना खुशी से उत्पन्न नहीं होती, तो इन दोनों के बीच क्या संबंध है?

एम: चेतना परिस्थितियों और स्थितियों का परिणाम है, उन पर निर्भर करती है और उनके साथ बदलती रहती है। जो स्वतंत्र, अजन्मा, कालातीत और अपरिवर्तनीय है, फिर भी सदा नया और ताजा है, वह मन से परे है। जब मन इसके बारे में सोचता है, तो मन विलीन हो जाता है और केवल सुख ही शेष रह जाता है।
प्रश्न: जब सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो शून्यता ही शेष रह जाती है।
एम: कुछ के बिना कुछ कैसे हो सकता है? कुछ नहीं तो केवल एक विचार है, यह किसी चीज़ की स्मृति पर निर्भर करता है। शुद्ध अस्तित्व, अस्तित्व से पूरी तरह स्वतंत्र है, जिसे परिभाषित और वर्णित किया जा सकता है।
प्रश्न: कृपया हमें बताएं; क्या मन से परे चेतना का विस्तार होता है, या यह मन के साथ ही समाप्त हो जाती है?
एम: चेतना आती-जाती रहती है, लेकिन जागरूकता अविचल रूप से चमकती रहती है। प्रश्न: जागरूकता में कौन जागरूक होता है?
एम: जब कोई व्यक्ति होता है, तो चेतना भी होती है। 'मैं हूँ', मन और चेतना एक ही अवस्था को दर्शाते हैं। यदि आप कहते हैं 'मैं जागरूक हूँ', तो इसका अर्थ केवल यह है: 'मैं जागरूक होने के बारे में सोचने के प्रति सचेत हूँ'।
जागरूकता में 'मैं हूँ' जैसी कोई अवस्था नहीं होती।
प्रश्न: गवाही देने के बारे में क्या?
एम: साक्षी भाव मन का होता है। साक्षी, देखे जाने वाले के साथ चलता है। अद्वैत की अवस्था में सभी प्रकार का वियोग समाप्त हो जाता है।
प्रश्न: आपका क्या कहना है? क्या आप जागरूकता बनाए रखते हैं?
एम: 'मैं यह शरीर हूँ, यह मन हूँ, यह स्मृतियों की श्रृंखला हूँ, यह इच्छाओं और भय का समूह हूँ' वाली भावना तो लुप्त हो जाती है, लेकिन जिसे आप पहचान कह सकते हैं, वह बनी रहती है। यह मुझे आवश्यकता पड़ने पर एक व्यक्ति बनने में सक्षम बनाती है। प्रेम अपनी आवश्यकताएँ स्वयं उत्पन्न करता है, यहाँ तक कि एक व्यक्ति बनने की आवश्यकता भी।
प्रश्न: ऐसा कहा जाता है कि वास्तविकता स्वयं को अस्तित्व, चेतना और आनंद के रूप में प्रकट करती है। क्या ये निरपेक्ष हैं या सापेक्ष?
एम: वे एक दूसरे के सापेक्ष हैं और एक दूसरे पर निर्भर हैं। वास्तविकता अपनी अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र है।
प्रश्न: वास्तविकता और उसकी अभिव्यक्तियों के बीच क्या संबंध है?
एम: कोई संबंध नहीं। वास्तव में सब कुछ वास्तविक और एकसमान है। जैसा कि हम कहते हैं, सगुण और निर्गुण परब्रह्म में एक हैं। केवल परम सत्ता ही है। गतिमान अवस्था में वह सगुण है, स्थिर अवस्था में वह निर्गुण है। लेकिन केवल मन ही गतिमान या अगतिमान होता है। वास्तविकता परे है, आप परे हैं। एक बार जब आप यह समझ लेते हैं कि जो कुछ भी प्रत्यक्ष या कल्पनीय है, वह आप स्वयं नहीं हो सकते, तो आप अपनी कल्पनाओं से मुक्त हो जाते हैं। हर चीज को इच्छा से उत्पन्न कल्पना के रूप में देखना आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक है। हम ध्यान की कमी से वास्तविकता को खो देते हैं और कल्पना की अधिकता से असत्य का निर्माण करते हैं।
इन चीजों में आपको अपना पूरा मन और दिमाग लगाना होगा और बार-बार इनके बारे में सोचना होगा। यह खाना पकाने जैसा है। खाना तैयार होने से पहले उसे कुछ देर आग पर रखना पड़ता है।
प्रश्न: क्या मैं भाग्य, अपने कर्मों के वश में नहीं हूँ? मैं इसके विरुद्ध क्या कर सकता हूँ? मैं जो हूँ और जो करता हूँ, वह पूर्वनिर्धारित है। यहाँ

तक कि मेरी तथाकथित स्वतंत्र इच्छा भी पूर्वनिर्धारित है; केवल मैं ही इससे अनभिज्ञ हूँ और स्वयं को स्वतंत्र समझता हूँ।
एम: फिर से, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसे कैसे देखते हैं। अज्ञान बुखार की तरह है - यह आपको ऐसी चीजें दिखाता है जो वास्तव में नहीं हैं। कर्म ईश्वर द्वारा निर्धारित उपचार है। इसे स्वीकार करें और निर्देशों का ईमानदारी से पालन करें, आप ठीक हो जाएंगे। एक रोगी ठीक होने के बाद अस्पताल से छुट्टी पा लेता है। तुरंत चुनाव और कर्म की स्वतंत्रता पर जोर देने से केवल स्वास्थ्य लाभ में देरी होगी। अपने भाग्य को स्वीकार करें और उसे पूरा करें - यही भाग्य से मुक्ति का सबसे छोटा रास्ता है, हालांकि प्रेम और उसकी बाध्यताओं से नहीं। इच्छा और भय से कर्म करना बंधन है, प्रेम से कर्म करना स्वतंत्रता है।

95. जीवन को जैसा है वैसा ही स्वीकार करें

प्रश्नकर्ता: मैं पिछले साल यहाँ आया था। अब मैं फिर से आपके सामने हूँ। मुझे यहाँ आने की प्रेरणा कहाँ से मिली, यह मैं वास्तव में नहीं जानता, लेकिन किसी तरह मैं आपको भूल नहीं पा रहा हूँ।
महाराज: कुछ लोग भूल जाते हैं, कुछ नहीं भूलते, यह उनके भाग्य पर निर्भर करता है, जिसे आप चाहें तो संयोग कह सकते हैं।
प्रश्न: संयोग और नियति में मूलभूत अंतर होता है।
एम: यह तो सिर्फ तुम्हारे दिमाग में है। असल में, तुम्हें यह भी नहीं पता कि किस चीज का क्या कारण होता है? भाग्य तो सिर्फ तुम्हारी अज्ञानता को छुपाने वाला एक शब्द है। संयोग एक और शब्द है।
प्रश्न: क्या कारणों और परिणामों के ज्ञान के बिना स्वतंत्रता संभव है? एम: कारण और परिणाम संख्या और विविधता में अनंत हैं। हर चीज दूसरी चीज को प्रभावित करती है। इस ब्रह्मांड में, जब एक चीज बदलती है, तो सब कुछ बदल जाता है। इसीलिए मनुष्य में स्वयं को बदलकर दुनिया को बदलने की अपार शक्ति है।
प्रश्न: आपके स्वयं के शब्दों के अनुसार, आप अपने गुरु की कृपा से लगभग चालीस वर्ष पहले पूरी तरह से बदल गए थे। फिर भी दुनिया वैसी ही बनी हुई है जैसी पहले थी।
एम: मेरी दुनिया पूरी तरह बदल गई है। तुम्हारी दुनिया वैसी ही है, क्योंकि तुम नहीं बदले हो।
प्रश्न: आपके बदलाव का मुझ पर कोई असर क्यों नहीं पड़ा?
एम: क्योंकि हमारे बीच कोई संवाद नहीं था। अपने आप को मुझसे अलग मत समझो, और हम तुरंत एक ही अवस्था में भागीदार हो जाएंगे।
प्रश्न: मेरी संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ संपत्ति है जिसे मैं बेचकर हिमालय में कुछ जमीन खरीदना चाहता हूँ। मैं वहाँ एक घर बनाऊँगा, बगीचा लगाऊँगा, दो-तीन गायें पालूँगा और शांति से जीवन व्यतीत करूँगा। लोग कहते हैं कि संपत्ति और शांति एक साथ नहीं चल सकते, और मुझे तुरंत अधिकारियों, पड़ोसियों और चोरों से परेशानी होने लगेगी। क्या यह अपरिहार्य है?
एम: कम से कम आप यह उम्मीद कर सकते हैं कि आपके घर में लगातार मेहमानों का तांता लगा रहेगा और आपका घर एक खुला और मुफ्त अतिथिगृह बन जाएगा। बेहतर होगा कि आप अपने जीवन को जैसा है वैसा ही स्वीकार करें, घर जाएं और अपनी

पत्नी की प्यार और देखभाल करें। किसी और को आपकी ज़रूरत नहीं है। आपकी शोहरत के सपने आपको और भी मुसीबत में डाल देंगे।
प्रश्न: मैं यश की खोज नहीं करता। मैं वास्तविकता की खोज करता हूँ।
एम: इसके लिए आपको एक सुव्यवस्थित और शांत जीवन, मन की शांति और असीम लगन की आवश्यकता है। हर पल जो कुछ भी आपको बिना मांगे प्राप्त होता है, वह ईश्वर की ओर से आता है और यदि आप उसका पूर्ण उपयोग करें तो वह निश्चित रूप से आपकी सहायता करेगा। केवल वही चीज़ें जो आप अपनी कल्पना और इच्छा से प्रेरित होकर प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, आपको कष्ट देती हैं। प्रश्न: क्या नियति और कृपा एक ही चीज़ हैं?
एम: बिलकुल। जीवन को जैसा है वैसा ही स्वीकार करो, और तुम्हें यह एक आशीर्वाद लगेगा।
प्रश्न: मैं अपना जीवन तो स्वीकार कर सकता हूँ। लेकिन दूसरों को जिस तरह का जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है, उसे मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? एम: तुम इसे फिर भी स्वीकार कर रहे हो। दूसरों के दुख तुम्हारे सुखों में बाधा नहीं डालते। यदि तुम सचमुच दयालु होते, तो तुमने बहुत पहले ही स्वार्थ त्याग दिया होता और उस अवस्था में प्रवेश कर लिया होता जहाँ से तुम वास्तव में दूसरों की सहायता कर सकते हो।
प्रश्न: यदि मेरे पास एक बड़ा घर और पर्याप्त भूमि हो, तो मैं एक आश्रम बना सकता हूँ, जिसमें व्यक्तिगत कमरे, साझा ध्यान कक्ष, भोजनालय, पुस्तकालय, कार्यालय आदि होंगे।
एम: आश्रम बनाए नहीं जाते, वे अपने आप बनते हैं। आप उन्हें न तो शुरू कर सकते हैं और न ही रोक सकते हैं, जैसे आप किसी नदी को न तो शुरू कर सकते हैं और न ही रोक सकते हैं। एक सफल आश्रम के निर्माण में कई कारक शामिल होते हैं और आपकी आंतरिक परिपक्वता उनमें से केवल एक है। बेशक, यदि आप अपने वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, तो आप जो भी करेंगे वह राख हो जाएगा। आप किसी गुरु की नकल करके बच नहीं सकते। हर तरह का पाखंड विनाश में परिणत होता है।
प्रश्न: संत बनने से पहले ही संत जैसा व्यवहार करने में क्या हर्ज है?
एम: संतत्व का अभ्यास करना एक साधना है। यह बिल्कुल ठीक है, बशर्ते इससे कोई पुण्य का दावा न किया जाए।
प्रश्न: बिना कोशिश किए मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं आश्रम शुरू करने में सक्षम हूं या नहीं?
एम: जब तक आप स्वयं को जीवन की धारा से अलग एक व्यक्ति, एक शरीर और एक मन मानते रहेंगे, जिसकी अपनी इच्छा हो, जो अपने लक्ष्य का पीछा करता हो, तब तक आप केवल सतही जीवन जी रहे हैं और आपका हर काम क्षणिक और महत्वहीन होगा, मानो अहंकार की आग को हवा देने वाला एक तिनका मात्र हो। वास्तविक प्राप्ति से पहले आपको अपना वास्तविक मूल्य सिद्ध करना होगा। आपका मूल्य क्या है? प्रश्न: मैं इसे किस मापदंड से मापूं?
एम: अपने मन की बातों पर गौर करो। तुम जैसा सोचते हो, वैसे ही बन जाते हो। क्या तुम अपना ज़्यादातर समय अपने नन्हे-मुन्ने और उसकी रोज़मर्रा की ज़रूरतों में ही व्यस्त नहीं रहते?
नियमित ध्यान का महत्व यह है कि यह आपको दैनिक दिनचर्या की नीरसता से दूर ले जाता है और आपको याद दिलाता है कि आप वह नहीं हैं जो आप स्वयं को समझते हैं। लेकिन केवल याद रखना ही पर्याप्त नहीं है - दृढ़ विश्वास के साथ-साथ

कर्म भी आवश्यक है। उस धनी व्यक्ति की तरह मत बनो जिसने विस्तृत वसीयत तो बना ली है, लेकिन मरने से इनकार करता है।
प्रश्न: क्या क्रमिक विकास जीवन का नियम नहीं है?
एम: ओह, नहीं। तैयारी तो धीरे-धीरे होती है, लेकिन बदलाव अचानक और पूरी तरह से होता है। धीरे-धीरे होने वाला बदलाव आपको चेतना के नए स्तर तक नहीं ले जाता। इसके लिए आपको त्यागने का साहस चाहिए।
प्रश्न: मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें साहस की कमी है।
एम: ऐसा इसलिए है क्योंकि आप पूरी तरह से आश्वस्त नहीं हैं। पूर्ण विश्वास इच्छा और साहस दोनों को जन्म देता है। और ध्यान समझ के माध्यम से विश्वास प्राप्त करने की कला है। ध्यान में आप प्राप्त शिक्षा पर उसके सभी पहलुओं पर बार-बार विचार करते हैं, जब तक कि स्पष्टता से आत्मविश्वास उत्पन्न न हो जाए और आत्मविश्वास के साथ ही कर्म भी उत्पन्न हो। विश्वास और कर्म अविभाज्य हैं। यदि कर्म विश्वास के बाद नहीं होता है, तो अपने विश्वासों की जांच करें, स्वयं को साहस की कमी का दोष न दें। आत्म-निंदा आपको कहीं नहीं ले जाएगी। स्पष्टता और भावनात्मक सहमति के बिना इच्छाशक्ति का क्या लाभ?
प्रश्न: भावनात्मक सहमति से आपका क्या तात्पर्य है? क्या मुझे अपनी इच्छाओं के विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए?
एम: आप अपनी इच्छाओं के विरुद्ध कार्य नहीं करेंगे। स्पष्टता ही पर्याप्त नहीं है। ऊर्जा प्रेम से आती है - कार्य करने के लिए प्रेम आवश्यक है - चाहे आपका प्रेम किसी भी रूप और उद्देश्य का हो। स्पष्टता और परोपकार के बिना साहस विनाशकारी होता है। युद्ध में शामिल लोग अक्सर अद्भुत साहस दिखाते हैं, लेकिन इससे क्या लाभ?
प्रश्न: मुझे स्पष्ट रूप से यह महसूस होता है कि मैं बस एक बगीचे में घर चाहता हूँ जहाँ मैं शांति से रह सकूँ। मुझे अपनी इस इच्छा पर अमल क्यों नहीं करना चाहिए?
एम: बिल्कुल, काम करो। लेकिन अपरिहार्य, अप्रत्याशित को मत भूलना। बारिश के बिना तुम्हारा बगीचा फलेगा-फूलेगा नहीं। साहसिक कार्य के लिए साहस की आवश्यकता होती है।
प्रश्न: मुझे हिम्मत जुटाने के लिए समय चाहिए, मुझ पर दबाव मत डालो। मुझे कार्रवाई के लिए तैयार होने दो।
एम: पूरा दृष्टिकोण ही गलत है। विलंबित कार्य, परित्याग के समान है। अन्य कार्यों के लिए शायद और अवसर मिलें, लेकिन वर्तमान क्षण खो गया है - हमेशा के लिए खो गया है। सारी तैयारी भविष्य के लिए होती है - आप वर्तमान के लिए तैयारी नहीं कर सकते।
प्रश्न: भविष्य की तैयारी करने में क्या बुराई है?
एम: वर्तमान में कार्य करने में आपकी तैयारियों से कोई खास मदद नहीं मिलती। स्पष्टता वर्तमान में है, कार्य वर्तमान में है। तैयार होने के बारे में सोचना कार्य में बाधा डालता है। और कार्य ही वास्तविकता की कसौटी है।
प्रश्न: क्या तब भी जब हम बिना दृढ़ विश्वास के कार्य करते हैं?
एम: आप कर्म के बिना नहीं रह सकते, और प्रत्येक कर्म के पीछे कोई न कोई भय या इच्छा छिपी होती है। अंततः, आप जो कुछ भी करते हैं, वह इस विश्वास पर आधारित होता है कि संसार वास्तविक है और आपसे स्वतंत्र है। यदि आप इसके विपरीत आश्वस्त होते, तो आपका व्यवहार बिलकुल भिन्न होता।

प्रश्न: मेरी मान्यताओं में कुछ भी गलत नहीं है; मेरे कार्य परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं।
एम: दूसरे शब्दों में, आप अपनी परिस्थितियों की वास्तविकता, उस दुनिया की वास्तविकता के प्रति आश्वस्त हैं जिसमें आप रहते हैं। दुनिया की उत्पत्ति का पता लगाएँ और आप पाएँगे कि दुनिया के अस्तित्व में आने से पहले आप थे और दुनिया के न रहने पर भी आप बने रहेंगे। अपने शाश्वत अस्तित्व को खोजें और आपके कर्म इसकी गवाही देंगे। क्या आपने इसे पाया?
प्रश्न: नहीं, मैंने नहीं किया।
एम: तो फिर आपको और क्या करना है? निःसंदेह, यही सबसे ज़रूरी काम है। आप स्वयं को हर चीज़ से स्वतंत्र तब तक नहीं देख सकते जब तक आप सब कुछ त्यागकर, बिना किसी सहारे और बिना किसी पहचान के न रह जाएँ। एक बार जब आप स्वयं को जान लेते हैं, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप क्या करते हैं, लेकिन अपनी स्वतंत्रता को साकार करने के लिए, आपको उन सभी चीज़ों को त्यागकर उसकी परीक्षा लेनी होगी जिन पर आप निर्भर थे। आत्मज्ञानी व्यक्ति निरपेक्षता के स्तर पर रहता है; उसका ज्ञान, प्रेम और साहस पूर्ण होता है, उसमें कुछ भी सापेक्ष नहीं होता। इसलिए उसे और भी कठिन परीक्षाओं से गुज़रकर स्वयं को सिद्ध करना होगा, और भी कठिन चुनौतियों का सामना करना होगा। परीक्षक, परीक्षार्थी और परीक्षा की व्यवस्था, सब कुछ भीतर ही है; यह एक आंतरिक नाटक है जिसमें कोई भी भागीदार नहीं हो सकता।
प्रश्न: क्रूस पर चढ़ाना, मृत्यु और पुनरुत्थान - ये विषय तो हमारे लिए परिचित हैं! मैंने इनके बारे में अनगिनत बार पढ़ा, सुना और बात की है, लेकिन इन्हें करने में मैं खुद को असमर्थ पाता हूँ।
एम: शांत रहो, अविचलित रहो, और ज्ञान और शक्ति अपने आप आ जाएँगे। लालसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हृदय और मन की शांति में प्रतीक्षा करो। शांत रहना बहुत आसान है, लेकिन इच्छाशक्ति दुर्लभ है। तुम लोग रातोंरात महापुरुष बनना चाहते हो। महत्वाकांक्षा से रहित, किसी भी इच्छा से रहित, निर्भीक, असुरक्षित, अनिश्चित और अकेले रहो, जीवन को उसके घटित होने के रूप में पूरी तरह से स्वीकार करो, इस स्वार्थी विश्वास के बिना कि सब कुछ तुम्हें सुख या लाभ, भौतिक या तथाकथित आध्यात्मिक, प्रदान करेगा।
प्रश्न: मैं आपकी बात का जवाब तो देता हूँ, लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा कि यह कैसे किया जाता है।
एम: अगर आपको पता है कि इसे कैसे करना है, तो आप इसे नहीं करेंगे। हर कोशिश छोड़ दो, बस मौजूद रहो; प्रयास मत करो, संघर्ष मत करो, हर सहारे को छोड़ दो, अस्तित्व की अंधी अनुभूति को थामे रहो, बाकी सब कुछ त्याग दो। यही काफी है। प्रश्न: यह ब्रश कैसे किया जाता है? मैं जितना ज्यादा ब्रश करता हूँ, उतना ही ज्यादा यह सतह पर आता है।
एम: ध्यान न दो, चीजों को आने-जाने दो। इच्छाएँ और विचार भी वस्तुएँ ही हैं। उन्हें अनदेखा करो। अनादि काल से घटनाओं की धूल तुम्हारे मन के निर्मल दर्पण को ढके हुए थी, जिससे तुम्हें केवल स्मृतियाँ ही दिखाई दे रही थीं। धूल जमने से पहले ही उसे झाड़ दो; इससे पुरानी परतें खुल जाएँगी और तुम्हारे मन का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाएगा। यह सब बहुत सरल और अपेक्षाकृत आसान है; बस लगन और धैर्य रखो। वैराग्य, अनासक्ति, इच्छा और भय से मुक्ति, स्वार्थ से पूरी तरह मुक्त, मात्र जागरूकता—स्मृति और अपेक्षा से मुक्त—यह मन की वह अवस्था है जिसमें खोज संभव है। अंततः, मुक्ति तो खोज करने की स्वतंत्रता ही है।

96. यादों और अपेक्षाओं को त्याग दें

प्रश्नकर्ता: मैं जन्म से अमेरिकी हूँ और पिछले एक वर्ष से मध्य प्रदेश के एक आश्रम में रहकर योग के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन कर रहा हूँ। हमारे एक शिक्षक थे, जिनके गुरु, महान शिवानंद सरस्वती के शिष्य, मुंगेर में रहते हैं। मैं रामनाश्रम में भी रहा। मुंबई में रहते हुए मैंने गोयनका द्वारा संचालित बर्मी ध्यान का एक गहन पाठ्यक्रम किया। फिर भी मुझे शांति नहीं मिली। आत्म-नियंत्रण और दैनिक अनुशासन में सुधार हुआ है, लेकिन बस इतना ही। मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि किस कारण से क्या हुआ। मैंने कई पवित्र स्थानों का दर्शन किया। प्रत्येक स्थान का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा, यह मैं नहीं कह सकता।
महाराज: अच्छे परिणाम अवश्य मिलेंगे, चाहे देर से ही सही। क्या आपको श्री रामनाश्रम में कुछ निर्देश मिले थे?
प्रश्न: जी हाँ, कुछ अंग्रेज लोग मुझे सिखा रहे थे और साथ ही वहाँ स्थायी रूप से रहने वाला ज्ञान योग का एक भारतीय अनुयायी भी मुझे पाठ पढ़ा रहा था। एम: आपकी क्या योजनाएँ हैं?
प्रश्न: वीजा संबंधी दिक्कतों के कारण मुझे अमेरिका लौटना पड़ रहा है। मैं बीएससी की पढ़ाई पूरी करना चाहता हूं, प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करना चाहता हूं और इसे अपना पेशा बनाना चाहता हूं।
एम: निस्संदेह, यह एक अच्छा पेशा है।
प्रश्न: क्या हर कीमत पर योग के मार्ग पर चलने में कोई खतरा है?
एम: क्या घर में आग लगने पर माचिस की तीली खतरनाक होती है? सत्य की खोज सबसे खतरनाक कार्य है, क्योंकि यह उस दुनिया को नष्ट कर देगी जिसमें आप रहते हैं। लेकिन यदि आपका उद्देश्य सत्य और जीवन के प्रति प्रेम है, तो आपको डरने की आवश्यकता नहीं है।
प्रश्न: मुझे अपने ही मन से डर लगता है। यह बहुत अस्थिर है!
एम: आपके मन के दर्पण में छवियां प्रकट होती हैं और लुप्त हो जाती हैं। दर्पण बना रहता है। स्थिर में स्थिर, परिवर्तनशील में अपरिवर्तनीय, तब तक पहचानना सीखें जब तक आप यह न जान लें कि सभी भेद केवल दिखावटी हैं और एकता एक वास्तविकता है। यह मूल पहचान - आप इसे ईश्वर, ब्रह्म या प्रकृति कह सकते हैं, शब्दों का कोई महत्व नहीं है - केवल यह अहसास है कि सब एक है। जब आप प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न आत्मविश्वास के साथ कह सकते हैं: 'मैं संसार हूं, संसार मैं हूं', तो आप एक ओर इच्छा और भय से मुक्त हो जाते हैं और दूसरी ओर संसार के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी हो जाते हैं। मानव जाति का निरर्थक दुख ही आपकी एकमात्र चिंता बन जाता है।
प्रश्न: तो क्या ज्ञानी को भी समस्याएं होती हैं?
एम: हाँ, लेकिन अब वे उसकी अपनी रचना नहीं हैं। उसका दुख अपराधबोध से दूषित नहीं है। दूसरों के पापों के लिए दुख भोगने में कोई बुराई नहीं है। आपका ईसाई धर्म इसी पर आधारित है।
प्रश्न: क्या सभी दुख स्वयं द्वारा ही उत्पन्न नहीं होते?
एम: हाँ, जब तक इसे उत्पन्न करने के लिए एक अलग स्व मौजूद है। अंत में आप जान जाते हैं कि कोई पाप नहीं, कोई अपराधबोध नहीं, कोई दंड नहीं, केवल जीवन अपने अनंत परिवर्तनों में है। व्यक्तिगत 'मैं' के विघटन के साथ ही

व्यक्तिगत पीड़ा भी लुप्त हो जाती है। जो शेष रह जाता है वह करुणा का गहरा दुख और अनावश्यक पीड़ा का भय है।
प्रश्न: क्या इस पूरी योजना में कुछ अनावश्यक है?
एम: कुछ भी अनिवार्य नहीं है, कुछ भी अपरिहार्य नहीं है। आदत और वासना अंधा कर देती हैं और गुमराह कर देती हैं। करुणामय जागरूकता उपचार करती है और मुक्ति दिलाती है। हम कुछ नहीं कर सकते, हम केवल चीजों को उनके स्वभावानुसार घटित होने दे सकते हैं।
प्रश्न: क्या आप पूर्ण निष्क्रियता का समर्थन करते हैं?
एम: स्पष्टता और परोपकार ही कर्म हैं। प्रेम आलसी नहीं होता और स्पष्टता ही दिशा दिखाती है। कर्म की चिंता न करो, अपने मन और हृदय का ध्यान रखो। मूर्खता और स्वार्थ ही एकमात्र बुराई हैं।
प्रश्न: भगवान के नाम का जाप करना बेहतर है या ध्यान करना?
एम: बार-बार अभ्यास करने से आपकी श्वास स्थिर होगी। गहरी और शांत श्वास लेने से ऊर्जा में वृद्धि होगी, जिसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ेगा और मन को शुद्ध, स्थिर और ध्यान के लिए उपयुक्त बनाने में मदद मिलेगी। ऊर्जा के बिना कुछ भी संभव नहीं है, इसलिए इसकी रक्षा और वृद्धि का महत्व है। आसन और श्वास योग का अभिन्न अंग हैं, क्योंकि शरीर स्वस्थ और नियंत्रण में होना चाहिए, लेकिन शरीर पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करना अपने उद्देश्य को ही विफल कर देता है, क्योंकि आरंभ में मन ही सर्वोपरि है। जब मन शांत हो जाता है और आंतरिक शांति (चिदाकाश) को विचलित नहीं करता, तब शरीर को एक नया अर्थ प्राप्त होता है और उसका रूपांतरण आवश्यक और संभव हो जाता है।
[चित्र]
प्रश्न: मैं पूरे भारत में घूम रहा हूँ, कई गुरुओं से मिल रहा हूँ और थोड़ी- थोड़ी मात्रा में कई योग पद्धतियों को सीख रहा हूँ। क्या हर चीज का थोड़ा- थोड़ा अनुभव करना ठीक है?
एम: नहीं, यह तो बस एक परिचय है। आप एक ऐसे व्यक्ति से मिलेंगे जो आपको अपना रास्ता खोजने में मदद करेगा।

प्रश्न: मुझे लगता है कि मेरी पसंद का गुरु मेरा सच्चा गुरु नहीं हो सकता। सच्चा गुरु तो तभी हो सकता है जब वह अप्रत्याशित रूप से आए और इतना आकर्षक हो कि उसका विरोध करना असंभव हो।
एम: पहले से अनुमान न लगाना ही सबसे अच्छा है। आपकी प्रतिक्रिया ही निर्णायक होती है।
प्रश्न: क्या मैं अपने उत्तरों का स्वामी हूँ?
एम: अभी विवेक और वैराग्य का अभ्यास करने से उचित समय पर फल अवश्य प्राप्त होंगे। यदि जड़ें स्वस्थ और अच्छी तरह से सींची हुई हों, तो फल निश्चित रूप से मीठे होंगे। पवित्र रहो, सतर्क रहो, तैयार रहो।
प्रश्न: क्या तपस्या और प्रायश्चित के कोई फायदे हैं?
एम: जीवन के सभी उतार-चढ़ावों का सामना करना ही पर्याप्त तपस्या है! आपको मुसीबतें पैदा करने की ज़रूरत नहीं है। जीवन में जो भी आए, उसका प्रसन्नतापूर्वक सामना करना ही पर्याप्त तपस्या है।
प्रश्न: बलिदान के बारे में क्या?
एम: जो भी आपके पास है, उसे स्वेच्छा से और खुशी-खुशी जरूरतमंदों के साथ साझा करें - खुद पर अत्याचार करने का बहाना न बनाएं।
प्रश्न: आत्मसमर्पण क्या है?

एम: जो भी हो, उसे स्वीकार करो।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं अपने पैरों पर खड़े होने के लिए बहुत कमजोर हूँ। मुझे गुरु और अच्छे लोगों की पवित्र संगति की आवश्यकता है। समभाव मेरे बस की बात नहीं है। जो कुछ भी होता है, उसे स्वीकार करना मुझे डराता है। अमेरिका लौटने के विचार से ही मुझे भय लगता है।
एम: वापस जाओ और अपने अवसरों का भरपूर लाभ उठाओ। पहले बीएससी की डिग्री हासिल करो। प्राकृतिक चिकित्सा की पढ़ाई के लिए तुम कभी भी भारत लौट सकते हो।
प्रश्न: मुझे अमेरिका में मौजूद अवसरों की पूरी जानकारी है। मुझे वहां के अकेलेपन से डर लगता है।
एम: आपके पास हमेशा आपका अपना ही साथ है - आपको अकेलापन महसूस करने की ज़रूरत नहीं है। भारत में भी इससे अलग होकर आप अकेलापन महसूस करेंगे। सारी खुशी आत्म-संतोष से ही मिलती है। आत्म-संतोष को बनाए रखें, और अमेरिका लौटने के बाद, अपने हृदय में विद्यमान उस गौरवशाली वास्तविकता के विरुद्ध कुछ भी न करें, और आप सुखी रहेंगे। लेकिन आपको आत्म-संतोष की खोज करनी होगी और उसे पाकर उसी के साथ बने रहना होगा।
प्रश्न: क्या पूर्ण एकांतवास से कोई लाभ होगा?
एम: यह आपके स्वभाव पर निर्भर करता है। आप दूसरों के साथ और दूसरों के लिए काम कर सकते हैं, सतर्क और मिलनसार रह सकते हैं, और एकांत की तुलना में अधिक पूर्ण विकास कर सकते हैं, क्योंकि एकांत आपको सुस्त बना सकता है या आपके मन की अंतहीन बकबक के वश में छोड़ सकता है। यह मत सोचिए कि आप प्रयास से बदल सकते हैं। हिंसा, चाहे वह स्वयं के विरुद्ध ही क्यों न हो, जैसे कि तपस्या और प्रायश्चित, निष्फल ही रहेगी।
प्रश्न: क्या यह पता लगाने का कोई तरीका नहीं है कि कौन आत्मज्ञानी है और कौन नहीं?

एम: आपका एकमात्र प्रमाण आप स्वयं में है। यदि आप स्वयं को सोने में परिवर्तित होते हुए पाते हैं, तो यह इस बात का संकेत होगा कि आपने पारस पत्थर को छू लिया है। उस व्यक्ति के साथ रहें और देखें कि आप पर क्या प्रभाव पड़ता है। दूसरों से न पूछें। उनका व्यक्ति आपका गुरु न हो। एक गुरु अपने सार में सार्वभौमिक हो सकता है, लेकिन अपने भावों में नहीं। वह क्रोधित, लालची या अपने आश्रम या परिवार के प्रति अत्यधिक चिंतित दिखाई दे सकता है, और आप बाहरी दिखावे से भ्रमित हो सकते हैं, जबकि अन्य नहीं। प्रश्न: क्या मुझे आंतरिक और बाहरी दोनों रूपों में सर्वांगीण पूर्णता की अपेक्षा करने का अधिकार नहीं है?
एम: आंतरिक रूप से तो हाँ। लेकिन बाहरी पूर्णता परिस्थितियों पर, शरीर की स्थिति पर, व्यक्तिगत और सामाजिक स्थिति पर, और अन्य अनगिनत कारकों पर निर्भर करती है।
प्रश्न: मुझे एक ज्ञानी से मिलने के लिए कहा गया था ताकि मैं उनसे ज्ञान प्राप्ति की कला सीख सकूँ, लेकिन अब मुझे बताया जा रहा है कि यह पूरी विधि ही गलत है, कि मैं किसी ज्ञानी को खोज नहीं सकता, और न ही उचित साधनों से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह सब बहुत उलझन भरा है!
एम: यह सब वास्तविकता के प्रति आपकी पूर्ण गलतफहमी के कारण है। आपका मन मूल्यांकन और प्राप्ति की आदतों में डूबा हुआ है और यह स्वीकार नहीं करता कि अतुलनीय और अप्राप्य चीजें आपके हृदय में अनंत काल से मान्यता की

प्रतीक्षा कर रही हैं। आपको बस इतना करना है कि सभी यादों और अपेक्षाओं को त्याग दें। बस अपने आप को पूर्ण नग्नता और शून्यता में तैयार रखें। प्रश्न: यह परित्याग कौन करेगा?
एम: ईश्वर ही सब कुछ कर देगा। बस त्याग की आवश्यकता को समझो। विरोध मत करो, अपने आप को जो समझते हो, उससे चिपके मत रहो। क्योंकि तुम स्वयं को एक व्यक्ति समझते हो, इसलिए ज्ञानी को भी एक व्यक्ति ही समझते हो, बस थोड़ा अलग, अधिक जानकार और अधिक शक्तिशाली। तुम कह सकते हो कि वह शाश्वत रूप से सचेत और प्रसन्न है, लेकिन यह पूर्ण सत्य को व्यक्त नहीं करता। परिभाषाओं और वर्णनों पर भरोसा मत करो - वे घोर भ्रामक हैं।
प्रश्न: जब तक मुझे यह नहीं बताया जाता कि क्या करना है और कैसे करना है, तब तक मैं असमंजस में रहता हूँ।
एम: आप निःसंकोच खो जाने का अनुभव करें! जब तक आप स्वयं को सक्षम और आत्मविश्वासी समझते रहेंगे, वास्तविकता आपकी पहुँच से परे रहेगी। जब तक आप आंतरिक रोमांच को जीवन का एक हिस्सा नहीं मानेंगे, तब तक आपको कोई नई खोज नहीं मिलेगी।
प्रश्न: किस चीज की खोज?
एम: आपके अस्तित्व के केंद्र का, जो सभी दिशाओं, सभी साधनों और सभी लक्ष्यों से मुक्त है।
प्रश्न: क्या आप सब कुछ बनना चाहते हैं, सब कुछ जानना चाहते हैं, सब कुछ पाना चाहते हैं?
एम: कुछ भी मत बनो, कुछ भी मत जानो, कुछ भी मत रखो। यही जीने लायक एकमात्र जीवन है, यही पाने लायक एकमात्र खुशी है।
प्रश्न: मैं मानता हूँ कि यह लक्ष्य मेरी समझ से परे है। कम से कम मुझे रास्ता तो बता दीजिए।
एम: आपको अपना रास्ता खुद ढूंढना होगा। जब तक आप इसे खुद नहीं ढूंढेंगे, यह आपका अपना रास्ता नहीं होगा और आपको कहीं नहीं ले जाएगा। आपने जो सच्चाई पाई है, उसे पूरी ईमानदारी से जिएं - जो थोड़ा बहुत आपने समझा है, उस पर अमल करें। ईमानदारी ही आपको सफलता दिलाएगी, न कि चतुराई - चाहे आपकी हो या किसी और की।
प्रश्न: मुझे गलतियों से डर लगता है। मैंने बहुत सी चीजें आजमाईं - लेकिन किसी से भी कोई फायदा नहीं हुआ।
एम: आपने अपना बहुत कम योगदान दिया, आप केवल जिज्ञासु थे, गंभीर नहीं।
प्रश्न: मुझे इससे बेहतर कुछ नहीं पता।
एम: कम से कम इतना तो आप जानते हैं। इन्हें सतही समझकर, अपने अनुभवों को महत्व न दें, और समाप्त होते ही उन्हें भूल जाएं। एक स्वच्छ, निस्वार्थ जीवन जिएं, बस इतना ही।
प्रश्न: क्या नैतिकता इतनी महत्वपूर्ण है?
एम: धोखा मत दो, किसी को चोट मत पहुँचाओ—क्या ये ज़रूरी नहीं है? सबसे बढ़कर, तुम्हें आंतरिक शांति चाहिए—जिसके लिए भीतरी और बाहरी दुनिया में सामंजस्य ज़रूरी है। जिस पर विश्वास हो, वही करो और जो करो, उस पर विश्वास रखो। बाकी सब ऊर्जा और समय की बर्बादी है।

97. मन और संसार अलग-अलग नहीं हैं

प्रश्नकर्ता: मुझे यहाँ कई संतों की तस्वीरें दिख रही हैं और मुझे बताया गया है कि वे आपके आध्यात्मिक पूर्वज हैं। वे कौन हैं और यह सब कैसे शुरू हुआ?
महाराज: हम सब मिलकर 'नौ गुरु' कहलाते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार, हमारे प्रथम गुरु ऋषि दत्तात्रेय थे, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव की त्रिमूर्ति के महान अवतार थे। नौ गुरु (नवनाथ) भी पौराणिक हैं।
प्रश्न: उनकी शिक्षण पद्धति की विशेषता क्या है?
एम: सिद्धांत और व्यवहार दोनों में इसकी सरलता।
प्रश्न: नवनाथ कैसे बना जाता है? दीक्षा द्वारा या वंशानुक्रम द्वारा? एम: दोनों में से कोई नहीं। नवनाथ परंपरा, 'नौ गुरुओं' की परंपरा, एक नदी की तरह है - यह वास्तविकता के सागर में बहती है और जो भी इसमें प्रवेश करता है वह इसके साथ बह जाता है।
प्रश्न: क्या इसका अर्थ यह है कि इसे उसी परंपरा से संबंधित किसी जीवित गुरु द्वारा स्वीकार किया गया है?
एम: जो लोग 'मैं' पर ध्यान केंद्रित करने की साधना करते हैं, वे उन लोगों से जुड़ाव महसूस कर सकते हैं जिन्होंने इसी साधना का अनुसरण किया है और सफलता प्राप्त की है। वे अपने इस जुड़ाव को नवनाथ कहकर व्यक्त करने का निर्णय ले सकते हैं। इससे उन्हें एक स्थापित परंपरा का हिस्सा होने का सुख मिलता है। प्रश्न: क्या उन्हें शामिल होने से किसी प्रकार का लाभ मिलता है?
एम: सत्संग का दायरा, यानी 'संतों का समूह', समय बीतने के साथ-साथ संख्या में बढ़ता जाता है।
प्रश्न: क्या इससे उन्हें शक्ति और अनुग्रह का ऐसा स्रोत प्राप्त हो जाता है जिससे वे अन्यथा वंचित रह जाते?
एम: शक्ति और कृपा सभी के लिए उपलब्ध हैं, बस उन्हें पाने की इच्छा होनी चाहिए। स्वयं को कोई विशेष नाम देना सहायक नहीं होता। आप स्वयं को किसी भी नाम से पुकारें—जब तक आप अपने प्रति पूरी तरह सजग हैं, आत्मज्ञान में संचित सभी बाधाएँ अपने आप दूर हो जाएँगी।
प्रश्न: यदि मुझे आपकी शिक्षा पसंद आए और मैं आपका मार्गदर्शन स्वीकार कर लूं, तो क्या मैं स्वयं को नवनाथ कह सकता हूं?
एम: शब्दों के प्रति आसक्ति रखने वाले अपने मन को शांत करो! नाम से तुम्हारा नाम नहीं बदलेगा। ज़्यादा से ज़्यादा, यह तुम्हें सही व्यवहार करने की याद दिला सकता है। गुरुओं और उनके शिष्यों की एक श्रृंखला चलती रहती है, जो आगे चलकर और शिष्यों को प्रशिक्षित करते हैं और इस तरह परंपरा चलती रहती है। लेकिन परंपरा का निरंतर प्रवाह अनौपचारिक और स्वैच्छिक होता है। यह एक पारिवारिक नाम की तरह है, लेकिन यहाँ परिवार आध्यात्मिक है।
प्रश्न: क्या संप्रदाय में शामिल होने के लिए आत्मज्ञान होना आवश्यक है? एम: नवनाथ संप्रदाय केवल एक परंपरा है, शिक्षण और अभ्यास का एक तरीका है। यह चेतना के किसी स्तर को नहीं दर्शाता। यदि आप नवनाथ संप्रदाय के किसी शिक्षक को अपना गुरु स्वीकार करते हैं, तो आप उनके संप्रदाय में शामिल हो जाते हैं। आमतौर पर आपको उनकी कृपा का एक संकेत मिलता है - एक नज़र, एक स्पर्श, या एक शब्द, कभी-कभी एक जीवंत सपना या एक प्रबल स्मृति। कभी-कभी कृपा का एकमात्र संकेत चरित्र और व्यवहार में एक महत्वपूर्ण और तीव्र परिवर्तन होता है।

प्रश्न: मैं आपको कुछ वर्षों से जानता हूँ और आपसे नियमित रूप से मिलता हूँ। आपका ख्याल हमेशा मेरे मन में रहता है। क्या इससे मैं आपके संप्रदाय का सदस्य बन जाता हूँ?
एम: आपका जुड़ाव आपकी अपनी भावना और दृढ़ विश्वास पर निर्भर करता है। अंततः, यह सब मौखिक और औपचारिक है। वास्तविकता में न तो गुरु है, न शिष्य, न सिद्धांत है, न अभ्यास, न अज्ञान है, न ज्ञान। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप स्वयं को क्या मानते हैं। स्वयं को सही ढंग से जानो। आत्मज्ञान का कोई विकल्प नहीं है।
प्रश्न: मुझे क्या प्रमाण मिलेगा कि मैं खुद को सही ढंग से जानता हूँ?
एम: आपको किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यह अनुभव अद्वितीय और स्पष्ट है। जब कुछ हद तक बाधाएं दूर हो जाएंगी, तो यह आपको अचानक ही समझ आ जाएगा। यह एक घिसी हुई रस्सी के टूटने जैसा है। आपका काम बस उसके रेशों को सुलझाना है। टूटना तो तय है। इसे टाला जा सकता है, लेकिन रोका नहीं जा सकता। प्रश्न: कारणता के आपके खंडन से मैं भ्रमित हूँ। क्या इसका अर्थ यह है कि संसार की वर्तमान स्थिति के लिए कोई भी जिम्मेदार नहीं है?
एम: ज़िम्मेदारी का विचार आपके मन में है। आप सोचते हैं कि जो कुछ भी घटित होता है, उसके लिए कोई न कोई या कुछ तो पूरी तरह से ज़िम्मेदार होना चाहिए। एक बहु-ब्रह्मांड और एक एकल कारण के बीच विरोधाभास है। या तो एक गलत है या दूसरा। या दोनों। जैसा कि मैं समझता हूँ, यह सब दिवास्वप्न है। विचारों में कोई वास्तविकता नहीं होती। सच तो यह है कि आपके बिना न तो ब्रह्मांड और न ही उसका कारण अस्तित्व में आ सकता था।
प्रश्न: मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि मैं ब्रह्मांड का प्राणी हूं या निर्माता।
एम: 'मैं हूं' एक शाश्वत सत्य है, जबकि 'मैं सृजित हूं' एक विचार है। न तो ईश्वर और न ही ब्रह्मांड ने आपको यह बताने के लिए कोई संदेश भेजा है कि उन्होंने आपको सृजित किया है। कारण-कार्य के विचार से ग्रस्त मन सृष्टि का आविष्कार करता है और फिर सोचता है, 'सृजनकर्ता कौन है?' मन स्वयं ही सृजनकर्ता है। लेकिन यह भी पूरी तरह सच नहीं है, क्योंकि सृजित और उसका सृजनकर्ता एक ही हैं। मन और संसार अलग-अलग नहीं हैं। यह समझें कि जिसे आप संसार समझते हैं, वह आपका अपना मन ही है।
प्रश्न: क्या मन से परे या मन के बाहर कोई दुनिया है?
एम: सारा स्थान और समय मन में समाहित है। आप अतिमानसिक जगत को कहाँ स्थापित करेंगे? मन के अनेक स्तर हैं और प्रत्येक स्तर अपना-अपना स्वरूप प्रस्तुत करता है, फिर भी सभी मन में ही समाहित हैं और मन द्वारा ही निर्मित हैं। प्रश्न: पाप के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है? आप किसी पापी को, चाहे वह आंतरिक हो या बाहरी, कानून तोड़ने वाले को किस दृष्टि से देखते हैं? क्या आप चाहते हैं कि वह सुधर जाए या आप उस पर केवल दया करते हैं? या फिर, उसके पापों के कारण आप उसके प्रति उदासीन हैं?
एम: मैं न तो पापी को जानता हूँ, न ही पापी को। आपका भेद और मूल्यांकन मुझे बाध्य नहीं करते। हर कोई अपने स्वभाव के अनुसार व्यवहार करता है। इसमें कुछ नहीं किया जा सकता, न ही इस पर पछतावा करने की आवश्यकता है।
प्रश्न: दूसरों को कष्ट सहना पड़ता है।
एम: जीवन से जीवन चलता है। प्रकृति में यह प्रक्रिया अनिवार्य है, समाज में यह स्वैच्छिक होनी चाहिए। त्याग के बिना जीवन संभव नहीं है। पापी त्याग

करने से इनकार करता है और मृत्यु को आमंत्रित करता है। यही सत्य है, और इसके लिए निंदा या दया का कोई कारण नहीं है।
प्रश्न: जब आप किसी व्यक्ति को पाप में डूबा हुआ देखते हैं, तो निश्चित रूप से आपको कम से कम दया तो आती ही होगी।
एम: हां, मुझे लगता है कि मैं वही आदमी हूं और उसके पाप मेरे पाप हैं। प्रश्न: ठीक है, और आगे क्या?
एम: मेरे उसके साथ एक हो जाने से वह मेरे साथ एक हो जाता है। यह कोई सचेत प्रक्रिया नहीं है, यह स्वतः ही घटित होती है। हममें से कोई भी इसे रोक नहीं सकता। जो परिवर्तन आवश्यक है, वह तो वैसे भी हो जाएगा; स्वयं को यथावत, यहीं और अभी जानना ही पर्याप्त है। अपने मन का गहन और व्यवस्थित अध्ययन ही योग है।
प्रश्न: पाप द्वारा गढ़ी गई नियति की जंजीरों का क्या होगा?
एम: जब अज्ञान, जो पाप की जननी है, का विघटन हो जाता है, तो नियति, जो पुनः पाप करने की विवशता है, का अंत हो जाता है।
प्रश्न: प्रतिशोध लेना बाकी है।
एम: अज्ञान का अंत होते ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। तब चीजें जैसी हैं वैसी ही दिखाई देती हैं और वे अच्छी होती हैं।
प्रश्न: यदि कोई पापी, कानून तोड़ने वाला व्यक्ति आपके सामने आकर आपकी कृपा की भीख मांगे, तो आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी?
एम: उसे वही मिलेगा जो वह मांगेगा।
प्रश्न: एक बेहद बुरा आदमी होने के बावजूद?
एम: मैं किसी बुरे व्यक्ति को नहीं जानता, मैं केवल स्वयं को जानता हूँ। मुझे न संत दिखते हैं, न पापी, केवल जीवित प्राणी। मैं कृपा बाँटता नहीं हूँ। मैं कुछ भी ऐसा नहीं दे सकता या मना कर सकता जो आपके पास पहले से ही समान मात्रा में न हो। बस अपनी संपदाओं के प्रति सजग रहें और उनका पूरा उपयोग करें। जब तक आप यह सोचते रहेंगे कि आपको मेरी कृपा की आवश्यकता है, आप मेरे द्वार पर भीख माँगते रहेंगे।
आपसे कृपा की भीख मांगना उतना ही निरर्थक होगा! हम अलग नहीं हैं, वास्तविकता एक समान है।
प्रश्न: एक माँ आपके पास अपनी दुखभरी कहानी लेकर आती है। उसका इकलौता बेटा नशे और यौन शोषण का शिकार हो गया है और उसकी हालत बद से बदतर होती जा रही है। वह आपसे दया की भीख मांग रही है। आपका क्या उत्तर होगा?
एम: शायद मैं खुद को उससे यह कहते हुए सुनूँगी कि सब ठीक हो जाएगा। प्रश्न: बस इतना ही?
एम: बस इतना ही। आप और क्या उम्मीद करते हैं?
प्रश्न: लेकिन क्या उस महिला का बेटा बदलेगा?
एम: वह ऐसा कर भी सकता है और नहीं भी।
प्रश्न: आपके आसपास इकट्ठा होने वाले और आपको कई वर्षों से जानने वाले लोग मानते हैं कि जब आप कहते हैं 'सब ठीक हो जाएगा', तो हमेशा वैसा ही होता है जैसा आप कहते हैं।
एम: आप यह भी कह सकते हैं कि माँ के दिल ने ही बच्चे की जान बचाई। हर चीज़ के अनगिनत कारण होते हैं।
प्रश्न: मुझे बताया गया है कि जो व्यक्ति अपने लिए कुछ नहीं चाहता, वह सर्वशक्तिमान होता है। संपूर्ण ब्रह्मांड उसके अधीन होता है।

एम: अगर आपको ऐसा विश्वास है, तो उस पर अमल कीजिए। अपनी हर निजी इच्छा का त्याग कीजिए और इस तरह बचाई गई शक्ति का उपयोग दुनिया को बदलने के लिए कीजिए!
प्रश्न: क्या सभी बुद्ध और ऋषि दुनिया को बदलने में सफल नहीं हुए हैं? एम: संसार परिवर्तन के आगे नहीं झुकता। अपने स्वभाव से ही यह पीड़ादायक और क्षणभंगुर है। इसे यथावत देखो और अपने आप को सभी इच्छाओं और भय से मुक्त करो। जब संसार तुम्हें बांधकर नहीं रखता, तब यह आनंद और सौंदर्य का निवास स्थान बन जाता है। तुम संसार में तभी सुखी रह सकते हो जब तुम इससे मुक्त हो जाओ।
प्रश्न: क्या सही है और क्या गलत है?
एम: सामान्यतः, जो दुख का कारण बनता है वह गलत है और जो उसे दूर करता है वह सही है। शरीर और मन सीमित और इसलिए असुरक्षित हैं; उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता होती है जिससे भय उत्पन्न होता है। जब तक आप स्वयं को उनसे जोड़ते रहेंगे, आप दुख भोगते रहेंगे; अपनी स्वतंत्रता को पहचानें और सुखी रहें। मैं आपको बताता हूँ, यही सुख का रहस्य है। यह मानना कि आप सुख के लिए वस्तुओं और लोगों पर निर्भर हैं, अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान के कारण है; यह जानना कि आपको आत्मज्ञान के अलावा सुखी रहने के लिए किसी चीज की आवश्यकता नहीं है, बुद्धिमत्ता है।
प्रश्न: पहले क्या आता है, अस्तित्व या इच्छा?
एम: चेतना में 'अस्तित्व' जागृत होने के साथ ही, आपके मन में 'आप क्या हैं' और 'आपको क्या होना चाहिए' के विचार उत्पन्न होते हैं। इससे इच्छा और कर्म उत्पन्न होते हैं और 'अस्तित्व' की प्रक्रिया शुरू होती है। 'अस्तित्व' का, जाहिर तौर पर, न कोई आरंभ है और न कोई अंत, क्योंकि यह हर क्षण पुनः आरंभ होता है। कल्पना और इच्छा के समाप्त होने पर, 'अस्तित्व' समाप्त हो जाता है और 'यह या वह' का अस्तित्व शुद्ध अस्तित्व में विलीन हो जाता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है।
दुनिया आपको इतनी वास्तविक लगती है, क्योंकि आप इसके बारे में लगातार सोचते रहते हैं; इसके बारे में सोचना बंद कर दीजिए और यह धुंधली सी होकर गायब हो जाएगी। आपको यह भूलने की ज़रूरत नहीं है; जब इच्छा और भय समाप्त हो जाते हैं, तो बंधन भी समाप्त हो जाता है। यह भावनात्मक जुड़ाव, पसंद-नापसंद का वह स्वरूप जिसे हम चरित्र और स्वभाव कहते हैं, वही बंधन पैदा करता है। प्रश्न: इच्छा और भय के बिना कर्म करने की प्रेरणा क्या हो सकती है?
एम: नहीं, जब तक कि आप जीवन, धर्म और सौंदर्य के प्रति प्रेम को ही पर्याप्त प्रेरणा न मान लें। इच्छा और भय से मुक्ति से मत डरिए। यह आपको ऐसा जीवन जीने में सक्षम बनाती है जो आपके अब तक के जीवन से इतना अलग, इतना गहन और रोचक है कि वास्तव में, सब कुछ खोकर आप सब कुछ पा लेते हैं।
प्रश्न: चूंकि आप अपनी आध्यात्मिक वंशावली ऋषि दत्तात्रेय से जोड़ते हैं, तो क्या हमारा यह मानना सही है कि आप और आपके सभी पूर्वज ऋषि के पुनर्जन्म हैं?
एम: आप जो चाहें विश्वास कर सकते हैं और यदि आप अपने विश्वास पर अमल करेंगे, तो आपको उसका फल मिलेगा; लेकिन मेरे लिए इसका कोई महत्व नहीं है। मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ और यही मेरे लिए पर्याप्त है। मुझे किसी से भी, चाहे वह कितना भी महान क्यों न हो, खुद को जोड़ने की कोई इच्छा नहीं है। न ही मुझे मिथकों को सत्य मानने की आवश्यकता महसूस होती है। मेरी रुचि केवल अज्ञान और अज्ञान से मुक्ति में है। गुरु का उचित कार्य अपने शिष्यों के

हृदय और मन से अज्ञान को दूर करना है। एक बार शिष्य समझ जाए, तो उसके लिए आगे की कार्रवाई करना उसका कर्तव्य है। कोई भी दूसरे के लिए कार्य नहीं कर सकता। और यदि वह सही ढंग से कार्य नहीं करता है, तो इसका अर्थ केवल यह है कि वह समझ नहीं पाया है और गुरु का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है।
प्रश्न: क्या कुछ ऐसे मामले भी नहीं होंगे जिनमें कोई उम्मीद न हो?
एम: कोई भी निराश नहीं है। बाधाओं को दूर किया जा सकता है। जीवन जिसे ठीक नहीं कर सकता, मृत्यु उसे समाप्त कर देगी, लेकिन गुरु कभी असफल नहीं हो सकते।
प्रश्न: आपको यह आश्वासन किस बात से मिलता है?
एम: गुरु और मनुष्य की आंतरिक वास्तविकता वास्तव में एक ही हैं और एक ही लक्ष्य की ओर मिलकर काम करते हैं - मन का उद्धार और मुक्ति। वे कभी असफल नहीं हो सकते। उनके रास्ते में आने वाली बाधाओं से ही वे अपने सेतु बनाते हैं। चेतना संपूर्ण अस्तित्व नहीं है - ऐसे अन्य स्तर भी हैं जिन पर मनुष्य कहीं अधिक सहयोगात्मक है। गुरु सभी स्तरों पर विद्यमान हैं और उनकी ऊर्जा और धैर्य अक्षय हैं।
प्रश्न: आप मुझे बार-बार कह रहे हैं कि मैं सपना देख रहा हूँ और अब जागने का समय आ गया है। ऐसा क्यों हो रहा है कि महाराज, जो मेरे सपनों में आए हैं, मुझे जगाने में सफल नहीं हुए हैं? वे बार-बार आग्रह करते हैं और याद दिलाते हैं, लेकिन सपना जारी रहता है।
एम: असल में आप यह समझ ही नहीं पाए हैं कि आप सपना देख रहे हैं। यही बंधन का सार है - वास्तविक और अवास्तविक का मिश्रण। आपकी वर्तमान स्थिति में केवल 'मैं हूँ' की भावना ही वास्तविकता को दर्शाती है; 'मैं क्या हूँ' और 'मैं कैसा हूँ' ये सब भाग्य या संयोग से उत्पन्न भ्रम हैं।
प्रश्न: यह सपना कब शुरू हुआ?
एम: यह अनादि प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में यह केवल वर्तमान क्षण है। पल-पल आप इसे नवीकृत कर रहे हैं। एक बार जब आपको एहसास हो जाएगा कि आप सपना देख रहे हैं, तो आप जाग जाएंगे। लेकिन आप नहीं देख पाते, क्योंकि आप चाहते हैं कि सपना चलता रहे। एक दिन ऐसा आएगा जब आप पूरे मन और हृदय से सपने के अंत की कामना करेंगे और कोई भी कीमत चुकाने को तैयार होंगे; वह कीमत होगी वैराग्य और अनासक्ति, सपने में रुचि का अभाव।
प्रश्न: मैं कितना असहाय हूँ। जब तक जीवन का सपना कायम है, मैं उसे कायम रखना चाहता हूँ। जब तक मैं उसे कायम रखना चाहता हूँ, वह कायम रहेगा।
एम: इसे जारी रखने की चाह रखना अनिवार्य नहीं है। अपनी स्थिति को स्पष्ट रूप से देखें, यही स्पष्टता आपको इससे मुक्ति दिलाएगी।
प्रश्न: जब तक मैं तुम्हारे साथ होता हूँ, तुम्हारी कही हर बात मुझे स्पष्ट लगती है; लेकिन जैसे ही मैं तुमसे दूर होता हूँ, मैं बेचैन और चिंतित होकर इधर-उधर भागने लगता हूँ।
एम: आपको मुझसे दूर रहने की ज़रूरत नहीं है, कम से कम अपने मन में तो नहीं। लेकिन आपका मन तो संसार के कल्याण के लिए तत्पर है!
प्रश्न: दुनिया मुसीबतों से भरी है, इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मेरा मन भी उनसे भरा हुआ है।
एम: क्या कभी ऐसी दुनिया थी जिसमें कोई मुसीबतें न हों? आपका अस्तित्व दूसरों के प्रति हिंसा पर निर्भर करता है। आपका शरीर ही एक युद्धक्षेत्र है, जो मृतकों और मरणासन्न लोगों से भरा पड़ा है। अस्तित्व का अर्थ ही हिंसा है।

प्रश्न: शरीर के रूप में – हाँ। मनुष्य के रूप में – बिलकुल नहीं। मानवता के लिए अहिंसा जीवन का नियम है और हिंसा मृत्यु का।
एम: प्रकृति में अहिंसा का अंश बहुत कम है।
प्रश्न: ईश्वर और प्रकृति मनुष्य नहीं हैं और उन्हें मानवीय होना आवश्यक नहीं है। मैं केवल मनुष्य से संबंधित हूं। मनुष्य होने के लिए मुझे पूर्णतः करुणामय होना चाहिए।
एम: क्या आपको इस बात का एहसास है कि जब तक आपको अपनी जान की रक्षा करनी है, तब तक आपको हिंसक होना ही पड़ेगा?
प्रश्न: हाँ, मैं करता हूँ। सच्चा इंसान होने के लिए मुझे निस्वार्थ होना चाहिए। जब तक मैं स्वार्थी हूँ, मैं अमानव हूँ, केवल एक मानवरूपी प्राणी हूँ।
एम: तो, हम सब अमानव हैं और केवल कुछ ही मनुष्य हैं। चाहे कुछ हों या बहुत से, यह फिर से 'स्पष्टता और परोपकार' ही हैं जो हमें मनुष्य बनाते हैं। अमानव - 'मानवरूपी' - तमस और रजस से ग्रस्त होते हैं और मनुष्य सत्व से। स्पष्टता और परोपकार सत्व है क्योंकि यह मन और कर्म को प्रभावित करता है। लेकिन वास्तविकता सत्व से परे है। जब से मैं आपको जानता हूँ, आप हमेशा दुनिया की मदद करने के लिए तत्पर रहते हैं। आपने कितनी मदद की?
प्रश्न: बिलकुल नहीं। न तो दुनिया बदली है, न मैं। लेकिन दुनिया दुख झेल रही है और मैं भी उसके साथ दुख झेल रहा हूँ। दुख से लड़ना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। और सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और धर्म, दुख के विरुद्ध विद्रोह के सिवा और क्या हैं? बुराई और बुराई का अंत - क्या यही आपकी मुख्य चिंता नहीं है? आप इसे अज्ञान कह सकते हैं - बात एक ही है।
एम: खैर, शब्दों का कोई महत्व नहीं है, न ही इस बात का कि आप अभी किस रूप में हैं। नाम और रूप निरंतर बदलते रहते हैं। अपने आप को परिवर्तनशील मन का अपरिवर्तनशील साक्षी समझें। इतना ही काफी है।

98. आत्म-पहचान से मुक्ति

महाराज: क्या आप ज़मीन पर बैठ सकते हैं? क्या आपको तकिए की ज़रूरत है? क्या आपके कोई सवाल हैं? वैसे तो आपको सवाल पूछने की ज़रूरत नहीं है, आप शांत भी रह सकते हैं। बस शांत रहना ही ज़रूरी है। आपको कुछ भी पूछने या करने की ज़रूरत नहीं है। भारत में समय बिताने का यह आलसी तरीका बहुत सम्मानित है। इसका मतलब है कि आप फिलहाल 'आगे क्या होगा' की चिंता से मुक्त हैं। जब आप जल्दबाजी में नहीं होते और मन चिंताओं से मुक्त होता है, तो वह शांत हो जाता है और उस शांति में कुछ ऐसा सुनाई दे सकता है जो आम तौर पर इतना सूक्ष्म और सूक्ष्म होता है कि उसे समझना मुश्किल होता है। देखने के लिए मन का खुला और शांत होना ज़रूरी है। यहाँ हम अपने मन को उस सही स्थिति में लाने की कोशिश कर रहे हैं जिससे हम वास्तविकता को समझ सकें।
प्रश्नकर्ता: हम चिंताओं को दूर करना कैसे सीख सकते हैं?
एम: आपको अपनी चिंताओं की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। बस शांत रहें। चुप रहने की कोशिश न करें; चुप रहने को कोई काम न समझें। चुप रहने को लेकर बेचैन न हों, खुश रहने को लेकर दुखी न हों। बस इस बात से अवगत रहें कि आप हैं और अवगत बने रहें - यह न कहें: 'हाँ, मैं हूँ; आगे क्या?' 'मैं हूँ' में 'आगे' जैसा कुछ नहीं है। यह एक शाश्वत अवस्था है।

प्रश्न: यदि यह एक शाश्वत अवस्था है, तो यह किसी भी तरह से स्वयं को प्रकट करेगी।
एम: आप जो हैं, वही हैं, शाश्वत, लेकिन जब तक आप इसे जानते और इस पर अमल नहीं करते, तब तक इसका क्या लाभ? आपका भिक्षापात्र भले ही शुद्ध सोने का हो, लेकिन जब तक आप इसे नहीं जानते, तब तक आप कंगाल हैं। आपको अपने भीतर के मूल्य को जानना होगा, उस पर भरोसा करना होगा और इच्छा और भय के दैनिक त्याग में इसे व्यक्त करना होगा।
प्रश्न: यदि मैं स्वयं को जान लूँ, तो क्या मैं इच्छा और भय नहीं रखूँगा? एम: नए दृष्टिकोण के बावजूद, कुछ समय तक मानसिक आदतें बनी रह सकती हैं, जैसे कि अतीत की याद और भविष्य के डर की भावना। जब आप जान जाते हैं कि ये केवल मन की बातें हैं, तो आप इनसे आगे बढ़ सकते हैं। जब तक आपके मन में अपने बारे में तरह-तरह के विचार हैं, आप खुद को इन्हीं विचारों के धुंध में ही जानते हैं; खुद को वैसे ही जानने के लिए जैसे आप हैं, सभी विचारों को त्याग दें। आप शुद्ध पानी के स्वाद की कल्पना नहीं कर सकते, आप उसे सभी स्वादों को त्यागकर ही जान सकते हैं।
जब तक आपको अपनी वर्तमान जीवनशैली में रुचि रहेगी, आप उसे नहीं छोड़ेंगे। जब तक आप परिचित चीजों से चिपके रहेंगे, तब तक आपको कोई नई खोज नहीं मिल सकती। जीवन के अथाह दुख को पूरी तरह से समझने और उसके विरुद्ध विद्रोह करने पर ही आपको उससे बाहर निकलने का रास्ता मिल सकता है।
प्रश्न: अब मुझे समझ में आ रहा है कि भारत के शाश्वत जीवन का रहस्य अस्तित्व के इन आयामों में निहित है, जिनका भारत हमेशा से संरक्षक रहा है। एम: यह एक खुला रहस्य है और इसे साझा करने के इच्छुक और तैयार लोग हमेशा से रहे हैं। शिक्षक तो बहुत हैं, लेकिन निडर शिष्य बहुत कम हैं।
प्रश्न: मैं सीखने के लिए पूरी तरह इच्छुक हूं।
एम: केवल शब्द सीखना पर्याप्त नहीं है। आप सिद्धांत तो जान सकते हैं, लेकिन स्वयं को अस्तित्व, प्रेम और आनंद के निराकार और असीमित केंद्र के रूप में वास्तविक अनुभव किए बिना, मात्र शाब्दिक ज्ञान निष्फल है।
प्रश्न: तो फिर मुझे क्या करना चाहिए?
एम: बस होने की कोशिश करो, बस होने की। सबसे महत्वपूर्ण शब्द है 'कोशिश'। प्रतिदिन पर्याप्त समय निकालें, शांत बैठकर कोशिश करने के लिए, बस कोशिश करने के लिए, अपने व्यक्तित्व से परे जाने की, उसकी लतों और सनक से। यह मत पूछो कि कैसे, इसे समझाया नहीं जा सकता। बस तब तक कोशिश करते रहो जब तक सफलता न मिल जाए। यदि आप दृढ़ रहेंगे, तो असफलता नहीं हो सकती। सबसे महत्वपूर्ण है ईमानदारी, लगन; आप शायद अपने वर्तमान स्वरूप से ऊब चुके होंगे, अब आपको यादों और आदतों के इस अनावश्यक बंधन से मुक्त होने की तत्काल आवश्यकता महसूस हो रही होगी। अनावश्यक चीजों के विरुद्ध यह निरंतर प्रतिरोध ही सफलता का रहस्य है।
आखिरकार, आप अपने जीवन के हर पल वही हैं जो आप हैं, लेकिन आप इसके प्रति कभी सचेत नहीं होते, सिवाय शायद नींद से जागने के क्षण के। आपको बस अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है, एक शाब्दिक कथन के रूप में नहीं, बल्कि एक शाश्वत तथ्य के रूप में। अपने अस्तित्व की जागरूकता ही आपको अपने वास्तविक स्वरूप से परिचित कराएगी। यह सब बहुत सरल है। सबसे पहले, अपने आप से निरंतर संपर्क स्थापित करें, हर समय अपने साथ रहें। आत्म-जागरूकता में ही सभी आशीर्वाद प्रवाहित होते हैं। अवलोकन और सचेत चेतना के केंद्र के रूप में शुरुआत करें और कर्म में प्रेम के केंद्र के रूप में

विकसित हों। 'मैं हूँ' एक छोटा सा बीज है जो एक विशाल वृक्ष में विकसित होगा
- बिल्कुल स्वाभाविक रूप से, बिना किसी प्रयास के।
प्रश्न: मुझे अपने भीतर बहुत बुराई दिखाई देती है। क्या मुझे इसे बदलना नहीं चाहिए?
एम: बुराई असावधानी की छाया है। आत्मजागरूकता के प्रकाश में यह मुरझाकर गिर जाएगी।
दूसरों पर निर्भरता व्यर्थ है, क्योंकि जो दूसरे दे सकते हैं, वही छीन भी लेते हैं। शुरुआत में जो आपका अपना है, अंत में वही आपका रहेगा। केवल अपने भीतर से ही मार्गदर्शन लें, और तब भी सभी पुरानी यादों को निथार लें, क्योंकि वे आपको गुमराह कर सकती हैं। भले ही आप तरीकों और साधनों से पूरी तरह अनभिज्ञ हों, शांत रहें और अपने भीतर देखें; मार्गदर्शन अवश्य मिलेगा। आपको कभी भी यह जानने की आवश्यकता नहीं होगी कि आपका अगला कदम क्या होना चाहिए। समस्या यह है कि आप उससे कतरा सकते हैं। गुरु अपने अनुभव और सफलता के कारण आपको साहस प्रदान करने के लिए मौजूद हैं। लेकिन केवल वही जो आप अपनी जागरूकता और अपने प्रयासों से खोजेंगे, आपके लिए स्थायी रूप से उपयोगी होगा।
याद रखें, आप जो कुछ भी अनुभव करते हैं वह आपका अपना नहीं है। बाहर से आपको कोई मूल्यवान चीज़ नहीं मिल सकती; केवल आपकी अपनी भावना और समझ ही मायने रखती है और सच्चाई प्रकट करती है। सुने या पढ़े गए शब्द केवल आपके मन में चित्र बनाते हैं, लेकिन आप कोई मानसिक चित्र नहीं हैं। आप उस चित्र के पीछे और उससे परे, अनुभव और क्रिया की शक्ति हैं।
प्रश्न: आप मुझे स्वार्थी होने की हद तक अहंकारी बनने की सलाह दे रहे हैं। क्या मुझे दूसरों के प्रति अपनी रुचि को भी नहीं छोड़ना चाहिए?
एम: दूसरों में आपकी रुचि अहंकारपूर्ण, आत्म-केंद्रित और स्वार्थी है। आप दूसरों को व्यक्ति के रूप में नहीं देखते, बल्कि केवल इस हद तक देखते हैं कि वे आपकी स्वयं की छवि को समृद्ध या उत्कृष्ट बनाते हैं। और स्वार्थ की पराकाष्ठा केवल अपने शरीर की रक्षा, संरक्षण और वृद्धि की चिंता करना है। शरीर से मेरा तात्पर्य वह सब कुछ है जो आपके नाम और रूप से संबंधित है - आपका परिवार, गोत्र, देश, जाति आदि। अपने नाम और रूप से आसक्त होना स्वार्थ है। जो व्यक्ति यह जानता है कि वह न तो शरीर है और न ही मन, वह स्वार्थी नहीं हो सकता, क्योंकि उसके पास स्वार्थ करने के लिए कुछ भी नहीं है। या, आप कह सकते हैं, वह अपने संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से 'स्वार्थी' होता है; सबका कल्याण ही उसका अपना कल्याण है। 'मैं ही संसार हूँ, संसार ही मैं हूँ' की भावना स्वाभाविक हो जाती है; एक बार यह स्थापित हो जाए, तो स्वार्थी होने का कोई रास्ता ही नहीं बचता। स्वार्थी होने का अर्थ है संपूर्ण के विरुद्ध अंश के लिए लोभ करना, अधिग्रहण करना और संचय करना।
प्रश्न: कोई व्यक्ति विरासत, विवाह या मात्र अच्छे भाग्य के कारण कई संपत्तियों से समृद्ध हो सकता है।
एम: अगर आप इसे थामे नहीं रखेंगे, तो यह आपसे छीन लिया जाएगा।
प्रश्न: क्या आप अपनी वर्तमान स्थिति में किसी दूसरे व्यक्ति को एक व्यक्ति के रूप में प्रेम कर सकते हैं?
एम: मैं दूसरा व्यक्ति हूँ, दूसरा व्यक्ति मैं ही हूँ; नाम और रूप में हम भिन्न हैं, लेकिन कोई अलगाव नहीं है। हमारे अस्तित्व के मूल में हम एक हैं। प्रश्न: क्या ऐसा तब नहीं होता जब लोगों के बीच प्रेम होता है?

एम: हाँ, ऐसा है, लेकिन उन्हें इसका एहसास नहीं है। वे आकर्षण महसूस करते हैं, लेकिन इसका कारण नहीं जानते।
प्रश्न: प्रेम चयनात्मक क्यों होता है?
एम: प्रेम चयनात्मक नहीं होता, इच्छा चयनात्मक होती है। प्रेम में कोई अजनबी नहीं होता। जब स्वार्थ का केंद्र समाप्त हो जाता है, तो सुख की सभी इच्छाएँ और दुख का भय समाप्त हो जाते हैं; व्यक्ति को खुश रहने में कोई रुचि नहीं रहती; सुख से परे शुद्ध तीव्रता, अक्षय ऊर्जा, शाश्वत स्रोत से मिलने वाला परमानंद होता है।
प्रश्न: क्या मुझे सही और गलत की समस्या को स्वयं हल करके शुरुआत नहीं करनी चाहिए?
एम: जो सुखद होता है उसे लोग अच्छा मानते हैं और जो कष्टदायक होता है उसे लोग बुरा मानते हैं।
प्रश्न: जी हाँ, हम जैसे आम लोगों के साथ तो ऐसा ही होता है। लेकिन एकता के स्तर पर आपके लिए क्या मायने रखता है? आपके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा?
एम: जो चीज़ दुख बढ़ाती है वह बुरी है और जो चीज़ उसे दूर करती है वह अच्छी है।
प्रश्न: तो क्या आप स्वयं दुख को अच्छाई मानने से इनकार करते हैं? कुछ धर्म ऐसे भी हैं जिनमें दुख को अच्छा और श्रेष्ठ माना जाता है।
एम: कर्म, या नियति, एक लाभकारी नियम की अभिव्यक्ति है: संतुलन, सामंजस्य और एकता की ओर सार्वभौमिक प्रवृत्ति। हर क्षण, जो कुछ भी घटित होता है, वह सर्वोत्तम ही होता है। यह पीड़ादायक और कुरूप लग सकता है, एक कड़वी और अर्थहीन पीड़ा, फिर भी अतीत और भविष्य को ध्यान में रखते हुए, यह सर्वोत्तम ही है, क्योंकि यही एक विकट परिस्थिति से निकलने का एकमात्र रास्ता है। प्रश्न: क्या व्यक्ति को केवल अपने पापों के लिए ही भोगना पड़ता है?
एम: व्यक्ति अपने आप को जैसा समझता है, उसी के अनुसार दुख भोगता है। यदि आप मानवता के साथ एकरूपता का अनुभव करते हैं, तो आप मानवता के साथ दुख भोगते हैं।
प्रश्न: और चूंकि आप पीड़ितों के साथ एक होने का दावा करते हैं, इसलिए आपके कष्टों की कोई समय या स्थान सीमा नहीं है!
एम: अस्तित्व ही पीड़ा है। मेरी आत्म-पहचान का दायरा जितना संकरा होता है, इच्छा और भय के कारण होने वाली पीड़ा उतनी ही तीव्र होती जाती है। प्रश्न: ईसाई धर्म दुख को शुद्ध करने वाला और उदात्त बनाने वाला मानता है, जबकि हिंदू धर्म इसे घृणा की दृष्टि से देखता है।
एम: ईसाई धर्म शब्दों को जोड़ने का एक तरीका है और हिंदू धर्म दूसरा। वास्तविकता शब्दों से परे, अवर्णनीय, प्रत्यक्ष अनुभव से परे, और मन पर विस्फोटक प्रभाव डालने वाली होती है। जब कुछ और नहीं चाहिए होता, तब यह आसानी से प्राप्त हो जाती है। कल्पना से निर्मित और इच्छा से पोषित अंतर्मन।
प्रश्न: क्या ऐसा कोई कष्ट नहीं हो सकता जो आवश्यक और अच्छा हो?
एम: आकस्मिक या अनजाने में होने वाला दर्द अपरिहार्य और क्षणिक होता है; जानबूझकर पहुंचाया गया दर्द, चाहे वह कितने भी अच्छे इरादों से क्यों न पहुंचाया गया हो, अर्थहीन और क्रूर होता है।
प्रश्न: क्या आप अपराध को दंडित नहीं करेंगे?

एम: सजा तो बस कानूनी रूप से वैध अपराध है। प्रतिशोध के बजाय रोकथाम पर आधारित समाज में अपराध बहुत कम होंगे। कुछ अपवादों को चिकित्सकीय रूप से अस्वस्थ मानसिक और शारीरिक मानकर उनका इलाज किया जाएगा।
प्रश्न: ऐसा लगता है कि आपको धर्म से कोई खास मतलब नहीं है।
एम: धर्म क्या है? आकाश में एक बादल। मैं आकाश में रहता हूँ, बादलों में नहीं, जो शब्दों का एक समूह मात्र हैं। शब्दों को हटा दें तो क्या बचता है? सत्य बचता है। मेरा घर उस अपरिवर्तनीय अवस्था में है, जो विपरीत तत्वों के निरंतर सामंजस्य और एकीकरण की स्थिति प्रतीत होती है। लोग यहाँ ऐसी अवस्था के वास्तविक अस्तित्व, उसके उद्भव में आने वाली बाधाओं और एक बार उसे समझ लेने के बाद, चेतना में उसे स्थिर करने की कला सीखने आते हैं, ताकि समझ और जीवन के बीच कोई टकराव न रहे। यह अवस्था स्वयं मन से परे है और इसे सीखने की आवश्यकता नहीं है। मन केवल बाधाओं पर ध्यान केंद्रित कर सकता है; बाधा को बाधा के रूप में देखना प्रभावी होता है, क्योंकि यह मन का मन पर प्रभाव होता है। शुरुआत से शुरू करें: इस तथ्य पर ध्यान दें कि आप हैं। आप कभी भी 'मैं नहीं था' नहीं कह सकते, आप केवल इतना कह सकते हैं: 'मुझे याद नहीं है'। आप जानते हैं कि स्मृति कितनी अविश्वसनीय होती है। स्वीकार करें कि तुच्छ व्यक्तिगत मामलों में उलझे रहने के कारण आप भूल गए हैं कि आप क्या हैं; ज्ञात को मिटाकर खोई हुई स्मृति को वापस लाने का प्रयास करें। आपको यह नहीं बताया जा सकता कि क्या होगा, और न ही यह वांछनीय है; प्रत्याशा भ्रम पैदा करती है। आंतरिक खोज में अनपेक्षित अपरिहार्य है; खोज हमेशा कल्पना से परे होती है। जिस प्रकार एक अजन्मा बच्चा जन्म के बाद के जीवन को नहीं जान सकता, क्योंकि उसके मन में कोई ऐसी छवि नहीं होती जिससे वह सही चित्र बना सके, उसी प्रकार मन वास्तविक को अवास्तविक के संदर्भ में नहीं समझ सकता, सिवाय निषेध के: 'यह नहीं, वह नहीं'। अवास्तविक को वास्तविक मान लेना ही बाधा है; असत्य को असत्य के रूप में देखना और असत्य को त्याग देना ही वास्तविकता को जन्म देता है। पूर्ण स्पष्टता, अपार प्रेम, पूर्ण निर्भीकता की अवस्थाएँ; ये वर्तमान में मात्र शब्द हैं, रंगहीन रूपरेखाएँ हैं, जो भविष्य की ओर संकेत करती हैं। आप एक अंधे व्यक्ति की तरह हैं जो ऑपरेशन के बाद देखने की उम्मीद कर रहा है - बशर्ते आप ऑपरेशन से न कतराएँ! मैं जिस अवस्था में हूँ, शब्दों का कोई महत्व नहीं है। न ही शब्दों की कोई आसक्ति है। केवल तथ्य ही मायने रखते हैं।
प्रश्न: शब्दों के बिना कोई धर्म नहीं हो सकता।
एम: लिखित धर्म महज शब्दों का ढेर हैं। धर्म अपना असली रूप कर्मों में, मौन कर्मों में प्रकट करते हैं। मनुष्य किस बात पर विश्वास करता है, यह जानने के लिए उसके कार्यों को देखें। अधिकांश लोगों के लिए अपने शरीर और मन की सेवा ही उनका धर्म है। उनके मन में धार्मिक विचार तो हो सकते हैं, लेकिन वे उन पर अमल नहीं करते। वे उनसे खेलते हैं, अक्सर उन्हें बहुत पसंद करते हैं, लेकिन उन पर अमल नहीं करते।
प्रश्न: संवाद के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है।
एम: सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए - हाँ। लेकिन लोगों के बीच वास्तविक संवाद मौखिक नहीं होता। संबंध स्थापित करने और बनाए रखने के लिए प्रत्यक्ष क्रिया में व्यक्त स्नेहपूर्ण जागरूकता आवश्यक है। मायने यह नहीं रखता कि आप क्या कहते हैं, बल्कि यह मायने रखता है कि आप क्या करते हैं। शब्द मन द्वारा निर्मित होते हैं और केवल मन के स्तर पर ही अर्थपूर्ण होते हैं। 'रोटी' शब्द: न तो आप इसे खा सकते हैं और न ही इससे जीवन यापन कर

सकते हैं; यह केवल एक विचार व्यक्त करता है। इसका अर्थ वास्तविक रूप से खाने पर ही समझ में आता है। इसी अर्थ में मैं आपसे कह रहा हूँ कि सामान्य अवस्था मौखिक नहीं होती। मैं कह सकता हूँ कि यह कर्म में व्यक्त बुद्धिमान प्रेम है, लेकिन ये शब्द तब तक कुछ खास अर्थ नहीं रखते जब तक आप उन्हें उनकी पूर्णता और सुंदरता में अनुभव न कर लें।
शब्दों की उपयोगिता सीमित है, लेकिन हम उन पर कोई सीमा नहीं लगाते और खुद को विनाश के कगार पर ले आते हैं। हमारे महान विचार नीच कर्मों से संतुलित हो जाते हैं। हम ईश्वर, सत्य और प्रेम की बात करते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव के बजाय हमारे पास परिभाषाएँ होती हैं। कर्म को विस्तृत और गहरा करने के बजाय हम अपनी परिभाषाओं को गढ़ते हैं। और हम यह सोचते हैं कि हम जानते हैं कि हम क्या परिभाषित कर सकते हैं!
प्रश्न: शब्दों के अलावा किसी अन्य माध्यम से अनुभव को कैसे व्यक्त किया जा सकता है?
एम: अनुभव को शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह कर्म से प्राप्त होता है। जो व्यक्ति अपने अनुभव में गहन होता है, वह आत्मविश्वास और साहस से परिपूर्ण होता है। अन्य लोग भी कर्म करते हैं और कर्म से उत्पन्न अनुभव प्राप्त करते हैं। मौखिक शिक्षा उपयोगी होती है; यह मन को संचित विचारों से मुक्त होने के लिए तैयार करती है।
मानसिक परिपक्वता उस अवस्था तक पहुँच जाती है जब बाह्य किसी भी चीज़ का कोई मूल्य नहीं रह जाता और हृदय सब कुछ त्यागने के लिए तैयार हो जाता है। तब वास्तविकता को अवसर मिलता है और वह उसे ग्रहण कर लेती है। यदि कोई विलंब होता है, तो वह मन की देखने या त्यागने की अनिच्छा के कारण होता है। प्रश्न: क्या हम सच में पूरी तरह से अकेले हैं?
एम: ओह, नहीं, हम नहीं हैं। जिनके पास है, वे दे सकते हैं। और ऐसे देने वाले बहुत हैं। यह संसार स्वयं एक अनमोल उपहार है, जिसे प्रेमपूर्ण बलिदान से बनाए रखा जाता है। लेकिन सही प्राप्तकर्ता, बुद्धिमान और विनम्र, बहुत कम हैं। 'मांगो और तुम्हें दिया जाएगा' शाश्वत नियम है।
आपने कितने ही शब्द सीखे हैं, कितने ही बोले हैं। आप सब कुछ जानते हैं, लेकिन आप स्वयं को नहीं जानते। क्योंकि आत्मा को शब्दों से नहीं जाना जा सकता— केवल प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि ही उसे प्रकट कर सकती है। अपने भीतर देखो, अपने भीतर खोजो।
प्रश्न: शब्दों को छोड़ना बहुत मुश्किल है। हमारा मानसिक जीवन शब्दों की एक निरंतर धारा है।
एम: यह आसान या मुश्किल का मामला नहीं है। आपके पास कोई विकल्प नहीं है। या तो आप कोशिश करें या न करें। यह आप पर निर्भर है।
प्रश्न: मैंने कई बार कोशिश की और असफल रहा।
एम: फिर से कोशिश करो। अगर तुम कोशिश करते रहोगे, तो कुछ हो सकता है। लेकिन अगर नहीं करोगे, तो अटक जाओगे। हो सकता है तुम्हें सही शब्द पता हों, धर्मग्रंथों के उद्धरण दो, चर्चाओं में माहिर हो, फिर भी तुम खोखले ही रहो।
या हो सकता है तुम शांत और विनम्र हो, बिल्कुल साधारण से, फिर भी प्रेम और गहरी बुद्धि से भरपूर।

99. जिसे अनुभव किया जा रहा है, वह स्वयं अनुभवकर्ता नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता: मैं विभिन्न योग पद्धतियों का अध्ययन करने के लिए जगह-जगह घूम रहा हूँ, लेकिन यह तय नहीं कर पा रहा हूँ कि मेरे लिए सबसे उपयुक्त कौन सी पद्धति है। किसी योग्य व्यक्ति के परामर्श से मुझे बहुत खुशी होगी। फिलहाल, इस खोज के चलते मैं सत्य की खोज के विचार से ही ऊब गया हूँ। यह मुझे न तो उपयोगी लगता है और न ही कष्टदायक। जीवन जैसा है वैसा ही आनंददायक है और इसे और बेहतर बनाने का मुझे कोई उद्देश्य नहीं दिखता।
महाराज: आप अपनी संतुष्टि में रहना चाहें तो रह सकते हैं, लेकिन क्या आप रह पाएंगे? जवानी, जोश, धन—ये सब आपकी उम्मीद से कहीं जल्दी बीत जाएंगे। अब तक आपने जिस दुःख से खुद को दूर रखा है, वो आपका पीछा करेगा। अगर आप दुःख से मुक्ति पाना चाहते हैं, तो आपको उससे आधा रास्ता तय करके उसे स्वीकार करना होगा। अपनी आदतों और व्यसनों को त्याग दें, सादा और संयमित जीवन जिएं, किसी भी जीव को दुख न पहुंचाएं; यही योग का आधार है। सत्य को पाने के लिए आपको अपने दैनिक कार्यों में भी वास्तविक होना होगा; सत्य की खोज में छल की कोई गुंजाइश नहीं है। आप कहते हैं कि आपको अपना जीवन आनंददायक लगता है। शायद अभी के लिए ऐसा है। लेकिन कौन इसका आनंद लेता है?
प्रश्न: मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं न तो आनंद लेने वाले को जानता हूँ और न ही आनंदित होने वाले को। मैं केवल आनंद को जानता हूँ।
एम: बिलकुल सही। लेकिन आनंद मन की एक अवस्था है—यह आता-जाता रहता है। इसकी क्षणभंगुरता ही इसे अनुभव करने योग्य बनाती है। जो चीज़ नहीं बदलती, उसके प्रति आप सचेत नहीं हो सकते। सारी चेतना परिवर्तन की चेतना है। लेकिन परिवर्तन की अनुभूति के लिए क्या एक अपरिवर्तनीय पृष्ठभूमि का होना आवश्यक नहीं है?
प्रश्न: बिलकुल नहीं। पिछली स्थिति की स्मृति, वर्तमान स्थिति की वास्तविकता की तुलना में, परिवर्तन का अनुभव कराती है।
एम: स्मरण और वास्तविकता के बीच एक मूलभूत अंतर है जिसे पल-पल देखा जा सकता है। किसी भी समय वास्तविकता, स्मरण के समान नहीं होती। दोनों में अंतर केवल तीव्रता का नहीं, बल्कि प्रकार का भी होता है। वास्तविकता निर्विवाद रूप से स्पष्ट होती है। इच्छाशक्ति या कल्पना के किसी भी प्रयास से आप इन दोनों को एक दूसरे के स्थान पर नहीं रख सकते। अब, वह कौन सी बात है जो वास्तविकता को यह अनूठा गुण प्रदान करती है?
प्रश्न: जो वास्तविक है वह यथार्थ है, जबकि जो याद किया जाता है उसके बारे में काफी अनिश्चितता होती है।
एम: बिलकुल सही, लेकिन क्यों? एक क्षण पहले जो याद किया गया था, वही वास्तविकता थी, एक क्षण में वही वास्तविकता याद की जाने लगेगी। वास्तविकता को क्या चीज़ अद्वितीय बनाती है? ज़ाहिर है, यह आपकी वर्तमान उपस्थिति की अनुभूति है। स्मृति और प्रत्याशा में यह स्पष्ट अनुभूति होती है कि यह अवलोकन के अधीन एक मानसिक अवस्था है, जबकि वास्तविकता में मुख्य रूप से उपस्थिति और जागरूकता की अनुभूति होती है।
प्रश्न: जी हाँ, मैं समझ गया। जागरूकता ही वास्तविक और स्मृति में अंतर पैदा करती है। व्यक्ति अतीत या भविष्य के बारे में सोचता है, लेकिन वह वर्तमान में मौजूद रहता है।
एम: आप जहाँ भी जाएँ, वर्तमान क्षण का बोध हमेशा आपके साथ रहता है। इसका अर्थ है कि आप स्थान और समय से स्वतंत्र हैं, स्थान और समय आप में समाहित हैं, आप उनमें नहीं। शरीर के साथ आपका आत्म-पहचान, जो निश्चित रूप से स्थान

और समय में सीमित है, आपको परिमितता का बोध कराता है। वास्तव में आप अनंत और शाश्वत हैं।
प्रश्न: मैं अपने इस अनंत और शाश्वत स्वरूप को कैसे जानूँ?
एम: जिस आत्म को आप जानना चाहते हैं, क्या वह कोई दूसरा आत्म है? क्या आप अनेक आत्मों से मिलकर बने हैं? निश्चित रूप से, केवल एक ही आत्म है और वह आप ही हैं। आप जो हैं, वही एकमात्र आत्म है। अपने बारे में अपनी गलत धारणाओं को दूर कीजिए और त्याग दीजिए, और आप स्वयं को उसके संपूर्ण स्वरूप में पा लेंगे। आत्मज्ञान में बाधा केवल आपका मन ही है।
प्रश्न: मैं मन से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ? और क्या मानवीय स्तर पर मन के बिना जीवन संभव है?
एम: मन जैसी कोई चीज नहीं होती। विचार होते हैं, और उनमें से कुछ गलत होते हैं। गलत विचारों को त्याग दो, क्योंकि वे झूठे हैं और स्वयं को देखने में बाधा डालते हैं।
प्रश्न: कौन से विचार गलत हैं और कौन से सही हैं?
एम: दावे आमतौर पर गलत होते हैं और खंडन सही।
प्रश्न: सब कुछ नकार कर जीना संभव नहीं है!
एम: केवल अस्वीकार करने से ही जीवन संभव है। अभिकथन बंधन है। प्रश्न करना और अस्वीकार करना आवश्यक है। यही विद्रोह का सार है और विद्रोह के बिना स्वतंत्रता संभव नहीं है।
कोई दूसरा या उच्चतर स्व नहीं है जिसकी खोज करनी हो। आप ही सर्वोच्च स्व हैं, बस अपने बारे में जो झूठे विचार हैं उन्हें त्याग दें। आस्था और तर्क दोनों ही आपको बताते हैं कि आप न तो शरीर हैं, न उसकी इच्छाएँ और भय, न ही मन और उसके मनगढ़ंत विचार, न ही वह भूमिका जो समाज आप पर थोपता है, न ही वह व्यक्ति जो आपको होना चाहिए। झूठे विचारों को त्याग दें, सत्य स्वयं प्रकट हो जाएगा।
आप कहते हैं कि आप स्वयं को जानना चाहते हैं। आप स्वयं ही हैं - आप अपने स्वरूप के सिवा कुछ और नहीं हो सकते। क्या जानना और होना अलग-अलग बातें हैं? आप अपने मन से जो कुछ भी जान सकते हैं, वह मन का है, आपका नहीं; अपने बारे में आप केवल इतना ही कह सकते हैं: 'मैं हूँ, मैं सजग हूँ, मुझे यह अच्छा लगता है'।
प्रश्न: मुझे जीवित रहना एक पीड़ादायक अवस्था लगती है।
एम: तुम जीवित नहीं हो सकते, क्योंकि तुम स्वयं जीवन हो। दुख तो तुम्हें नहीं, बल्कि उस व्यक्ति को भोगना पड़ता है जिसे तुम स्वयं समझते हो। इसे जागरूकता में विलीन कर दो। यह मात्र स्मृतियों और आदतों का एक समूह है।
असत्य की जागरूकता से अपने वास्तविक स्वरूप की जागरूकता तक एक खाई है, जिसे तुम शुद्ध जागरूकता की कला में निपुणता प्राप्त करने के बाद आसानी से पार कर लोगे।
प्रश्न: मुझे बस इतना पता है कि मैं खुद को नहीं जानता।
एम: आपको कैसे पता है कि आप स्वयं को नहीं जानते? आपकी प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि आपको बताती है कि आप स्वयं को पहले जानते हैं, क्योंकि आपके अस्तित्व के बिना कुछ भी आपके लिए अस्तित्व में नहीं है। आप कल्पना करते हैं कि आप स्वयं को नहीं जानते, क्योंकि आप स्वयं का वर्णन नहीं कर सकते। आप हमेशा कह सकते हैं: 'मैं जानता हूँ कि मैं हूँ' और आप 'मैं नहीं हूँ' इस कथन को असत्य मानकर अस्वीकार कर देंगे। लेकिन जिसका वर्णन किया जा सकता है वह आपका 'स्व' नहीं हो सकता, और आप जो हैं उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आप

स्वयं को केवल स्वयं होकर ही जान सकते हैं, बिना किसी आत्म-परिभाषा या आत्म-वर्णन के। एक बार जब आप समझ जाते हैं कि आप कुछ भी प्रत्यक्ष या कल्पनीय नहीं हैं, कि चेतना के क्षेत्र में जो कुछ भी प्रकट होता है वह आपका 'स्व' नहीं हो सकता, तो आप स्वयं को सभी आत्म-पहचान के उन्मूलन में लगा देंगे, क्योंकि यही एकमात्र मार्ग है जो आपको स्वयं की गहन अनुभूति तक ले जा सकता है। आप सचमुच अस्वीकृति के माध्यम से प्रगति करते हैं - एक रॉकेट की तरह। यह जानना कि आप न तो शरीर में हैं और न ही मन में, यद्यपि दोनों के प्रति सजग हैं, अपने आप में आत्मज्ञान है।
प्रश्न: यदि मैं न तो शरीर हूँ और न ही मन, तो मैं उनके प्रति कैसे सजग हूँ? मैं किसी ऐसी चीज़ को कैसे अनुभव कर सकता हूँ जो मुझसे बिल्कुल भिन्न है? एम: 'कुछ भी मैं नहीं हूँ,' पहला कदम है। 'सब कुछ मैं हूँ,' अगला कदम है। दोनों ही इस विचार पर आधारित हैं: 'एक संसार है'। जब इसे भी त्याग दिया जाता है, तो आप वही रह जाते हैं जो आप हैं - अद्वैत आत्मा। आप यहीं और अभी हैं, लेकिन स्वयं के बारे में आपके झूठे विचारों के कारण आपकी दृष्टि बाधित हो जाती है।
प्रश्न: मैं मानता हूँ कि मैं हूँ, मैं था, मैं रहूँगा; कम से कम जन्म से मृत्यु तक। मुझे अपने अस्तित्व पर, यहाँ और अभी, कोई संदेह नहीं है। लेकिन मुझे लगता है कि यह पर्याप्त नहीं है। मेरे जीवन में आनंद की कमी है, जो आंतरिक और बाह्य के बीच सामंजस्य से उत्पन्न होता है। यदि मैं अकेला हूँ और संसार केवल एक आवरण है, तो फिर असामंजस्य क्यों है?
एम: तुम असामंजस्य पैदा करते हो और फिर शिकायत करते हो! जब तुम इच्छा और भय से भरे होते हो, और अपनी भावनाओं से जुड़ जाते हो, तो तुम दुख और बंधन पैदा करते हो। जब तुम प्रेम और बुद्धि से सृजन करते हो, और अपने सृजनों से अनासक्त रहते हो, तो परिणाम सामंजस्य और शांति होता है। लेकिन तुम्हारे मन की स्थिति चाहे जो भी हो, वह तुम पर किस प्रकार प्रतिबिंबित होती है? केवल अपने मन से तुम्हारा जुड़ाव ही तुम्हें सुखी या दुखी बनाता है। अपने मन की गुलामी के विरुद्ध विद्रोह करो, अपने बंधनों को स्वयं निर्मित मानो और आसक्ति और घृणा की जंजीरों को तोड़ दो। स्वतंत्रता के अपने लक्ष्य को ध्यान में रखो, जब तक कि तुम्हें यह अहसास न हो जाए कि तुम पहले से ही स्वतंत्र हो, कि स्वतंत्रता दूर भविष्य में कष्टदायी प्रयासों से अर्जित करने वाली कोई वस्तु नहीं है, बल्कि शाश्वत रूप से अपनी है, जिसका उपयोग किया जाना चाहिए! मुक्ति कोई प्राप्ति नहीं है, बल्कि साहस की बात है, यह विश्वास करने का साहस कि तुम पहले से ही स्वतंत्र हो और उस पर अमल करो। प्रश्न: यदि मैं अपनी मर्जी से काम करूंगा, तो मुझे कष्ट भोगना पड़ेगा। एम: फिर भी, आप स्वतंत्र हैं। आपके कार्यों के परिणाम उस समाज और उसकी परंपराओं पर निर्भर करेंगे जिसमें आप रहते हैं।
प्रश्न: मैं लापरवाही से काम कर सकता हूँ।
एम: साहस के साथ-साथ ज्ञान, करुणा और कर्मठता भी उत्पन्न होगी। आपको पता होगा कि क्या करना है और आप जो भी करेंगे वह सबके लिए अच्छा होगा।
प्रश्न: मुझे ऐसा लगता है कि मेरे विभिन्न पहलू आपस में ही युद्धरत हैं और मुझमें शांति नहीं है। स्वतंत्रता और साहस, ज्ञान और करुणा कहाँ हैं? मेरे कर्म तो मेरे भीतर की खाई को और गहरा कर देते हैं।
एम: यह सब इसलिए है क्योंकि आप खुद को कोई और या कुछ समझते हैं। रुकिए, देखिए, जांच कीजिए, सही सवाल पूछिए, सही निष्कर्ष पर पहुंचिए और उन पर अमल करने का साहस रखिए और देखिए क्या होता है। शुरुआती कदम आपके लिए मुश्किलें

खड़ी कर सकते हैं, लेकिन जल्द ही सब शांत हो जाएगा और शांति और आनंद छा जाएगा। आप अपने बारे में बहुत कुछ जानते हैं, लेकिन जानने वाले को नहीं जानते। पता लगाइए कि आप कौन हैं, ज्ञात के ज्ञाता। अपने भीतर ध्यान से झांकिए, याद रखिए कि जिसे देखा जा रहा है वह देखने वाला नहीं हो सकता। आप जो कुछ भी देखते हैं, सुनते हैं या सोचते हैं, याद रखिए - आप वह नहीं हैं जो घटित होता है, आप वह हैं जिसके साथ वह घटित होता है। 'मैं हूं' की भावना में गहराई से उतरिए और आप निश्चित रूप से पाएंगे कि देखने का केंद्र सार्वभौमिक है, उतना ही सार्वभौमिक जितना कि वह प्रकाश जो दुनिया को रोशन करता है। ब्रह्मांड में जो कुछ भी होता है, वह आप पर घटित होता है, मौन साक्षी पर। दूसरी ओर, जो कुछ भी किया जाता है, वह आप द्वारा किया जाता है, सार्वभौमिक और अक्षय ऊर्जा पर।
प्रश्न: यह सुनकर निःसंदेह अत्यंत प्रसन्नता होती है कि व्यक्ति मौन साक्षी होने के साथ-साथ सार्वभौमिक ऊर्जा भी है। परन्तु मौखिक कथन से प्रत्यक्ष ज्ञान की ओर कैसे बढ़ा जाए? श्रवण ही ज्ञान नहीं है।
एम: किसी भी बात को प्रत्यक्ष, गैर-मौखिक रूप से जानने से पहले, आपको जानने वाले को जानना होगा। अब तक आपने मन को ही जानने वाला मान लिया था, लेकिन ऐसा नहीं है। मन आपको छवियों और विचारों से भर देता है, जो स्मृति में निशान छोड़ जाते हैं। आप स्मरण को ही ज्ञान समझ लेते हैं। सच्चा ज्ञान सदा ताजा, नया और अनपेक्षित होता है। यह भीतर से उत्पन्न होता है। जब आप जान जाते हैं कि आप क्या हैं, तो आप वही बन जाते हैं जो आप जानते हैं। जानने और होने के बीच कोई अंतर नहीं है।
प्रश्न: मैं मन की जांच केवल मन से ही कर सकता हूँ।
एम: अपने मन को जानने के लिए अपने मन का उपयोग अवश्य करें। यह पूरी तरह से जायज़ है और मन से परे जाने की सर्वोत्तम तैयारी भी है। होना, जानना और आनंद लेना आपका अपना है। सबसे पहले अपने अस्तित्व को महसूस करें। यह आसान है क्योंकि 'मैं हूँ' की भावना हमेशा आपके साथ रहती है। फिर स्वयं को ज्ञात से अलग, ज्ञात के रूप में जानें। एक बार जब आप स्वयं को शुद्ध अस्तित्व के रूप में जान लेते हैं, तो स्वतंत्रता का परमानंद आपका अपना हो जाता है। प्रश्न: यह कौन सा योग है?
एम: चिंता क्यों? यहाँ आने का कारण यह है कि आप अपने जीवन से, अपने शरीर और मन के जीवन से असंतुष्ट हैं। आप उन्हें नियंत्रित करके और किसी आदर्श के अनुरूप ढालकर सुधारने का प्रयास कर सकते हैं, या आप आत्म-पहचान के बंधन को पूरी तरह तोड़कर अपने शरीर और मन को ऐसी वस्तु के रूप में देख सकते हैं जो आपके किसी भी प्रकार के बंधन के बिना घटित होती है।
प्रश्न: क्या मैं संयम और अनुशासन के मार्ग को राज योग और अनासक्ति के मार्ग को ज्ञान योग कहूँ? और किसी आदर्श की पूजा को भक्ति योग कहूँ?
एम: अगर आपको अच्छा लगे तो। शब्द संकेत देते हैं, लेकिन व्याख्या नहीं करते। मैं जो सिखाता हूँ वह समझ के माध्यम से मुक्ति का प्राचीन और सरल मार्ग है। अपने मन को समझो और उस पर से उसकी पकड़ टूट जाएगी। मन गलत समझता है, गलत समझना उसका मूल स्वभाव है। सही समझ ही एकमात्र उपाय है, चाहे आप उसे कोई भी नाम दें। यह सबसे प्राचीन भी है और सबसे नवीनतम भी, क्योंकि यह मन को उसके वास्तविक स्वरूप में समझती है।
आप जो भी करें, उससे आपमें कोई बदलाव नहीं आएगा, क्योंकि आपको बदलाव की आवश्यकता ही नहीं है। आप अपने मन या शरीर को बदल सकते हैं, लेकिन हमेशा आपके बाहर की कोई चीज़ बदलती है, आप स्वयं नहीं। फिर बदलाव की ज़रूरत ही

क्या है? एक बार यह समझ लें कि न तो आपका शरीर, न आपका मन, और न ही आपकी चेतना आप हैं, और चेतना और अचेतना से परे अपने सच्चे स्वरूप में अकेले खड़े रहें। कोई भी प्रयास आपको वहाँ नहीं ले जा सकता, केवल समझ की स्पष्टता ही आपको वहाँ पहुँचा सकती है। अपनी गलतफहमियों को पहचानें और उन्हें त्याग दें, बस इतना ही। खोजने और पाने के लिए कुछ भी नहीं है, क्योंकि कुछ भी खोया नहीं है। शांत रहें और 'मैं हूँ' को देखें। वास्तविकता बस उसके पीछे है। शांत रहें, मौन रहें; यह प्रकट होगी, या यूँ कहें कि यह आपको अपने भीतर समा लेगी।
प्रश्न: क्या मुझे पहले अपने शरीर और मन से छुटकारा नहीं पाना चाहिए?
एम: आप ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि यह विचार ही आपको उनसे बांध देता है। बस समझें और अनदेखा करें।
प्रश्न: मैं अनदेखी करने में असमर्थ हूं, क्योंकि मैं एकीकृत नहीं हूं। एम: कल्पना कीजिए कि आप पूर्णतः एकीकृत हैं, आपके विचार और क्रिया पूर्णतः समन्वित हैं। इससे आपको क्या लाभ होगा? इससे आप स्वयं को शरीर या मन समझने की गलती से मुक्त नहीं होंगे। बस उन्हें सही ढंग से 'आप नहीं' के रूप में देखें, इतना ही।
प्रश्न: आप चाहते हैं कि मैं भूलना याद रखूं!
एम: हाँ, ऐसा ही लगता है। फिर भी, यह निराशाजनक नहीं है। आप इसे कर सकते हैं। बस पूरी लगन से जुट जाइए। आपका यह अंधा प्रयास आशाओं से भरा है। आपकी खोज ही सफलता की कुंजी है। आप असफल नहीं हो सकते।
प्रश्न: क्योंकि हम विघटित हैं, इसलिए हम कष्ट भोगते हैं।
एम: जब तक हमारे विचार और कर्म इच्छाओं और भय से प्रेरित रहेंगे, हम कष्ट भोगते रहेंगे। इनकी निरर्थकता को समझो, इनके द्वारा उत्पन्न खतरा और अराजकता अपने आप समाप्त हो जाएगी। स्वयं को सुधारने का प्रयास मत करो, बस सभी परिवर्तनों की निरर्थकता को समझो। परिवर्तनशील निरंतर बदलता रहता है, जबकि अपरिवर्तनशील प्रतीक्षा करता रहता है। परिवर्तनशील से यह अपेक्षा मत करो कि वह तुम्हें अपरिवर्तनशील तक ले जाएगा - ऐसा कभी नहीं हो सकता। केवल तभी जब परिवर्तन का विचार ही झूठा मानकर त्याग दिया जाए, तभी अपरिवर्तनशील अपने वास्तविक स्वरूप में आ सकता है।
प्रश्न: मैं जहाँ भी जाता हूँ, मुझे यही बताया जाता है कि मुझे वास्तविकता को देखने से पहले अपने भीतर गहरा परिवर्तन लाना होगा। स्वयं द्वारा किए गए इस सचेत परिवर्तन की प्रक्रिया को योग कहते हैं।
एम: सभी परिवर्तन केवल मन को प्रभावित करते हैं। आप जो हैं, उसे पाने के लिए आपको मन से परे, अपने भीतर की गहराई में जाना होगा। आप जिस मन को पीछे छोड़ते हैं, वह चाहे जैसा भी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बशर्ते आप उसे हमेशा के लिए पीछे छोड़ दें। लेकिन आत्म-साक्षात्कार के बिना यह संभव नहीं है।
प्रश्न: पहले क्या आता है—मन का त्याग या आत्म-साक्षात्कार?
एम: आत्म-साक्षात्कार सर्वोपरि है। मन स्वयं से परे नहीं जा सकता। उसे विस्फोटित होना होगा।
प्रश्न: विस्फोट से पहले कोई अन्वेषण नहीं किया गया?
एम: असली ताकत वास्तविकता से आती है। लेकिन इसके लिए अपना मन तैयार रखना ही बेहतर होगा। डर हमेशा इसे तब तक टाल सकता है, जब तक कोई दूसरा अवसर न आ जाए।
प्रश्न: मुझे लगा कि हमेशा एक संभावना रहती है।

एम: सैद्धांतिक रूप से - हाँ। व्यवहार में ऐसी स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए, जब आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक सभी कारक मौजूद हों। इससे आपको हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। 'मैं हूँ' की अवधारणा पर आपका चिंतन शीघ्र ही एक और अवसर उत्पन्न करेगा। क्योंकि दृष्टिकोण ही अवसर को आकर्षित करता है। आप जो कुछ भी जानते हैं वह सब सुनी-सुनाई बातें हैं। केवल 'मैं हूँ' प्रत्यक्ष है और उसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इस पर डटे रहें।

100. समझ स्वतंत्रता की ओर ले जाती है

प्रश्नकर्ता: दुनिया के कई देशों में जांच अधिकारी अपने शिकार से कबूलनामा निकलवाने और जरूरत पड़ने पर उसके व्यक्तित्व को बदलने के उद्देश्य से कुछ खास तरीके अपनाते हैं। शारीरिक और नैतिक रूप से प्रताड़ित करने और समझाने-बुझाने के ज़रिए पुराने व्यक्तित्व को तोड़कर उसकी जगह एक नया व्यक्तित्व स्थापित किया जाता है। जिस व्यक्ति से पूछताछ की जा रही है, उसे बार-बार यह कहा जाता है कि वह देश का दुश्मन और गद्दार है, जिससे एक दिन उसके भीतर कुछ टूट जाता है और वह पूरी तरह से आश्वस्त हो जाता है कि वह गद्दार, विद्रोही, पूरी तरह से घृणित और सबसे कड़ी सजा का हकदार है। इस प्रक्रिया को ब्रेनवाशिंग कहा जाता है।
मुझे यह बात समझ में आई कि धार्मिक और योगिक अभ्यास 'दिमाग धोने' के समान हैं। वही शारीरिक और मानसिक अभाव, एकांतवास, पाप का प्रबल बोध, निराशा और प्रायश्चित एवं रूपांतरण के द्वारा मुक्ति पाने की इच्छा, स्वयं की एक नई छवि अपनाना और उस छवि का अनुकरण करना। वही निर्धारित सूत्र दोहराना: 'ईश्वर अच्छा है; गुरु (पक्ष) जानता है; आस्था मुझे बचाएगी।' तथाकथित योगिक या धार्मिक अभ्यासों में भी यही प्रक्रिया अपनाई जाती है। मन को किसी विशेष विचार पर केंद्रित किया जाता है, अन्य सभी विचारों को त्याग दिया जाता है, और कठोर अनुशासन और कष्टदायी तपस्याओं द्वारा एकाग्रता को प्रबल बनाया जाता है। जीवन और सुख में भारी कीमत चुकानी पड़ती है, और बदले में जो मिलता है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। यह पूर्वनिर्धारित रूपांतरण, चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, धार्मिक हो या राजनीतिक, नैतिक हो या सामाजिक, वास्तविक और स्थायी प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसमें कृत्रिमता का भाव होता है।
महाराज: आप बिलकुल सही कह रहे हैं। इतनी कठिनाइयों से गुज़रने पर मन विचलित और स्थिर हो जाता है। उसकी स्थिति नाज़ुक हो जाती है; वह जो भी काम करता है, अंत में और भी गहरे बंधन में जकड़ जाता है।
प्रश्न: तो फिर साधनाओं का विधान क्यों किया गया है?
एम: जब तक आप अथक प्रयास नहीं करेंगे, तब तक आपको यह विश्वास नहीं होगा कि प्रयास व्यर्थ है। हमारा अहंकार इतना दृढ़ होता है कि जब तक उसे पूरी तरह से हतोत्साहित न किया जाए, तब तक वह हार नहीं मानता। मात्र शब्दों से विश्वास दिलाना पर्याप्त नहीं है। ठोस तथ्य ही आत्म-छवि की पूर्ण निरर्थकता को सिद्ध कर सकते हैं।
प्रश्न: दिमागी तौर पर हेरफेर करने वाला मुझे पागल कर देता है, और गुरु मुझे समझदार बना देता है। दोनों का प्रभाव एक जैसा है। फिर भी, मकसद और उद्देश्य पूरी तरह से अलग हैं। समानताएं शायद केवल शाब्दिक हैं।

एम: पीड़ा सहने के लिए आमंत्रित करना या विवश करना हिंसा को दर्शाता है, और हिंसा का फल कभी भी मीठा नहीं हो सकता।
जीवन में कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जो निश्चित रूप से कष्टदायी होती हैं, और आपको उन्हें सहजता से स्वीकार करना पड़ता है। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें आपने जानबूझकर या लापरवाही से उत्पन्न किया होता है। और इनसे आपको सबक सीखना चाहिए ताकि वे दोबारा न दोहराई जाएँ।
प्रश्न: ऐसा लगता है कि हमें कष्ट सहना ही होगा, ताकि हम दर्द पर काबू पाना सीख सकें।
एम: दर्द सहना ही पड़ता है। दर्द पर काबू पाना संभव नहीं है और इसके लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। भविष्य के लिए प्रशिक्षण लेना, दृष्टिकोण विकसित करना डर की निशानी है।
प्रश्न: एक बार जब मुझे दर्द का सामना करना आ जाता है, तो मैं उससे मुक्त हो जाता हूँ, उससे डरता नहीं हूँ, और इसलिए खुश रहता हूँ। यही एक कैदी के साथ होता है। वह अपने दंड को न्यायसंगत और उचित मानता है और जेल अधिकारियों और राज्य के साथ शांति में रहता है। सभी धर्म केवल स्वीकृति और समर्पण का उपदेश देते हैं। हमें दोषी मानने, दुनिया की सभी बुराइयों के लिए खुद को जिम्मेदार महसूस करने और खुद को उनका एकमात्र कारण बताने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। मेरी समस्या यह है: मुझे मस्तिष्क-धुलाई और साधना में बहुत अंतर नहीं दिखता, सिवाय इसके कि साधना में शारीरिक बंधन नहीं होते। दोनों में ही बाध्यकारी सुझाव का तत्व मौजूद है।
एम: जैसा कि आपने कहा, समानताएं सतही हैं। आपको उन पर बार-बार जोर देने की जरूरत नहीं है।
प्रश्न: महोदय, समानताएँ सतही नहीं हैं। मनुष्य एक जटिल प्राणी है और एक ही समय में अभियोक्ता और अभियुक्त, न्यायाधीश, जेलर और जल्लाद हो सकता है। 'स्वैच्छिक' साधना में स्वैच्छिकता बहुत कम होती है। व्यक्ति उन शक्तियों से प्रेरित होता है जो उसके ज्ञान और नियंत्रण से परे होती हैं। मैं अपने मानसिक चयापचय को शारीरिक चयापचय की तरह ही कम बदल सकता हूँ, सिवाय कष्टदायी और लंबे प्रयासों के - जो कि योग है। मैं बस इतना पूछना चाहता हूँ: क्या महाराज मुझसे सहमत हैं कि योग में हिंसा निहित है?
एम: मैं इस बात से सहमत हूँ कि योग, जैसा कि आपने बताया है, हिंसा का प्रतीक है, और मैं कभी भी किसी भी प्रकार की हिंसा का समर्थन नहीं करता। मेरा मार्ग पूरी तरह से अहिंसक है। मेरा मतलब बिल्कुल वही है जो मैं कहता हूँ: अहिंसक। आप स्वयं पता लगाएँ कि यह क्या है। मैं बस इतना कहता हूँ: यह अहिंसक है।
प्रश्न: मैं शब्दों का दुरुपयोग नहीं कर रहा हूँ। जब कोई गुरु मुझसे जीवन भर प्रतिदिन सोलह घंटे ध्यान करने को कहता है, तो मैं स्वयं को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाए बिना ऐसा नहीं कर सकता। क्या ऐसा गुरु सही है या गलत?
एम: कोई आपको प्रतिदिन सोलह घंटे ध्यान करने के लिए बाध्य नहीं करता, जब तक कि आपकी स्वयं की इच्छा न हो। यह केवल आपको यह बताने का एक तरीका है: 'स्वयं के साथ रहो, दूसरों के बीच मत खो जाओ'। गुरु प्रतीक्षा करेंगे, परन्तु मन अधीर है।
यह शिक्षक नहीं, बल्कि मन है जो हिंसक है और अपनी ही हिंसा से भयभीत भी है।
मन की बातें सापेक्ष होती हैं, उन्हें निरपेक्ष मान लेना गलती है।

प्रश्न: यदि मैं निष्क्रिय रहूँ तो कुछ भी नहीं बदलेगा। यदि मैं सक्रिय रहूँ तो मुझे हिंसक होना पड़ेगा। मैं ऐसा क्या कर सकता हूँ जो न तो निष्फल हो और न ही हिंसक?
एम: बिल्कुल, एक ऐसा तरीका है जो न तो हिंसक है और न ही निरर्थक, फिर भी अत्यंत प्रभावी है। बस अपने आप को वैसे ही देखें जैसे आप हैं, खुद को वैसे ही स्वीकार करें जैसे आप हैं और अपने अस्तित्व की गहराई में उतरें। हिंसा और अहिंसा दूसरों के प्रति आपके दृष्टिकोण को दर्शाती हैं; स्वयं के संबंध में स्वयं न तो हिंसक है और न ही अहिंसक, यह या तो स्वयं के प्रति सचेत है या अनभिज्ञ है। यदि वह स्वयं को जानता है, तो उसके सभी कार्य सही होंगे; यदि वह स्वयं को नहीं जानता, तो उसके सभी कार्य गलत होंगे।
प्रश्न: "मैं खुद को जैसा हूं वैसा ही जानता हूं" कहने का आपका क्या मतलब है?
एम: मन से पहले—मैं हूं। 'मैं हूं' मन का कोई विचार नहीं है; मन मुझ पर घटित होता है, मैं मन पर नहीं। और चूंकि समय और स्थान मन में हैं, इसलिए मैं समय और स्थान से परे, शाश्वत और सर्वव्यापी हूं।
प्रश्न: क्या आप सचमुच ऐसा कह रहे हैं? क्या आपका मतलब यह है कि आप हर जगह और हर समय मौजूद हैं?
एम: जी हाँ, मुझे लगता है। मेरे लिए यह उतना ही स्पष्ट है जितना आपके लिए आवागमन की स्वतंत्रता। कल्पना कीजिए एक पेड़ एक बंदर से पूछता है: 'क्या तुम सचमुच एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हो?' और बंदर कहता है: 'हाँ, मैं जा सकता हूँ।'
प्रश्न: क्या आप भी कारण-कार्य संबंध से मुक्त हैं? क्या आप चमत्कार कर सकते हैं?
एम: यह संसार स्वयं एक चमत्कार है। मैं चमत्कारों से परे हूँ - मैं बिल्कुल सामान्य हूँ। मेरे साथ सब कुछ अपने स्वाभाविक रूप से घटित होता है। मैं सृष्टि में हस्तक्षेप नहीं करता। जब सबसे बड़ा चमत्कार हर समय घटित हो रहा है, तो मेरे लिए छोटे-मोटे चमत्कारों का क्या उपयोग? आप जो कुछ भी देखते हैं, वह हमेशा आपका अपना अस्तित्व ही होता है। अपने भीतर और गहराई में उतरें, अपने भीतर खोज करें, आत्म-खोज में न तो हिंसा है और न ही अहिंसा। असत्य का नाश हिंसा नहीं है।
प्रश्न: जब मैं आत्म-जांच का अभ्यास करता हूं, या इस विचार के साथ अपने भीतर झांकता हूं कि इससे मुझे किसी न किसी रूप में लाभ होगा, तब भी मैं अपने वास्तविक स्वरूप से भाग रहा होता हूं।
एम: बिलकुल सही। सच्ची खोज हमेशा किसी चीज़ के बारे में जानने की होती है, न कि उससे बाहर निकलने की। जब मैं किसी चीज़ को पाने या उससे बचने के तरीके के बारे में खोज करता हूँ, तो मैं वास्तव में खोज नहीं कर रहा होता। किसी भी चीज़ को जानने के लिए मुझे उसे पूरी तरह से स्वीकार करना होगा। प्रश्न: हाँ, ईश्वर को जानने के लिए मुझे ईश्वर को स्वीकार करना होगा - कितना डरावना है!
एम: ईश्वर को स्वीकार करने से पहले, आपको स्वयं को स्वीकार करना होगा, जो और भी अधिक डरावना है। स्वयं को स्वीकार करने के पहले कदम बिल्कुल भी सुखद नहीं होते, क्योंकि जो दिखता है वह सुखद नहीं होता। आगे बढ़ने के लिए पूरे साहस की आवश्यकता होती है। मौन सहायक होता है। पूर्ण मौन में स्वयं को देखें, स्वयं का वर्णन न करें। उस अस्तित्व को देखें जिसे आप स्वयं मानते हैं और याद रखें - आप वह नहीं हैं जो आप देखते हैं। 'मैं यह नहीं हूँ - मैं

क्या हूँ?' यही आत्म-अन्वेषण की प्रक्रिया है। मुक्ति के अन्य कोई साधन नहीं हैं, सभी साधन विलंब करते हैं। दृढ़ता से उस चीज़ को अस्वीकार करें जो आप नहीं हैं, जब तक कि वास्तविक आत्मा अपने गौरवशाली शून्यता में, अपनी 'वस्तुहीनता' में प्रकट न हो जाए।
प्रश्न: दुनिया तेजी से और महत्वपूर्ण बदलावों से गुजर रही है। ये बदलाव अमेरिका में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, हालांकि अन्य देशों में भी हो रहे हैं। एक ओर अपराध बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर सच्ची धार्मिकता भी बढ़ रही है। नए समुदाय बन रहे हैं और उनमें से कुछ अत्यंत उच्च स्तर की सत्यनिष्ठा और सादगी का पालन कर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो बुराई अपनी ही सफलताओं से खुद को नष्ट कर रही है, जैसे आग अपने ईंधन को भस्म कर देती है, जबकि अच्छाई, जीवन की तरह, निरंतर बनी रहती है।
एम: जब तक आप घटनाओं को अच्छे और बुरे में विभाजित करते रहेंगे, तब तक आप सही हो सकते हैं। वास्तव में, अच्छाई अपने आप ही बुराई में बदल जाती है और बुराई अच्छाई में बदल जाती है।
प्रश्न: प्रेम के बारे में क्या?
एम: जब यह वासना में बदल जाता है, तो यह विनाशकारी हो जाता है।
प्रश्न: कामवासना क्या है?
एम: याद करना—कल्पना करना—पूर्वानुमान लगाना। यह संवेदी और शाब्दिक है। एक प्रकार की लत।
प्रश्न: क्या योग में ब्रह्मचर्य, यानी संयम, अनिवार्य है?
एम: संयम और दमन का जीवन योग नहीं है। मन को इच्छाओं से मुक्त और शांत होना चाहिए। यह समझ से आता है, दृढ़ संकल्प से नहीं, जो कि स्मृति का ही एक रूप है। समझदार मन इच्छाओं और भय से मुक्त होता है।
प्रश्न: मैं अपनी बात कैसे समझा सकता हूँ?
एम: ध्यान लगाकर, जिसका अर्थ है एकाग्रता से। अपनी समस्या के प्रति पूरी तरह जागरूक हो जाएं, उसे हर पहलू से देखें, समझें कि वह आपके जीवन को कैसे प्रभावित करती है। फिर उसे छोड़ दें। इससे अधिक आप कुछ नहीं कर सकते। प्रश्न: क्या इससे मुझे मुक्ति मिलेगी?
एम: आप उस समझ से मुक्त हैं जो आपने बना रखी है। स्वतंत्रता की बाहरी अभिव्यक्तियाँ प्रकट होने में समय लग सकता है, लेकिन वे पहले से ही मौजूद हैं। पूर्णता की अपेक्षा न करें। अभिव्यक्ति में कोई पूर्णता नहीं होती। बारीकियों का टकराव होना स्वाभाविक है। कोई भी समस्या पूरी तरह से हल नहीं होती, लेकिन आप उससे उस स्तर तक दूर हो सकते हैं जहाँ उसका कोई प्रभाव न हो।

101. ज्ञानी न तो पकड़ते हैं और न ही पकड़ते हैं

प्रश्नकर्ता: जब ज्ञानी को कोई कार्य करवाना होता है, तो वह कैसे आगे बढ़ता है? क्या वह योजना बनाता है, विवरणों पर निर्णय लेता है और उन्हें क्रियान्वित करता है?
महाराज: ज्ञानी किसी भी परिस्थिति को पूरी तरह समझ लेता है और तुरंत जान जाता है कि क्या करना है। बस इतना ही। बाकी सब अपने आप और काफी हद तक अचेतन रूप से घटित होता है। ज्ञानी का समस्त जगत से ऐसा एकात्मत्व होता है कि जैसे वह ब्रह्मांड के प्रति प्रतिक्रिया करता है, वैसे ही ब्रह्मांड भी उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। उसे पूर्ण विश्वास होता है कि एक बार

परिस्थिति का ज्ञान हो जाने पर, घटनाएँ उसके अनुरूप घटित होंगी। साधारण मनुष्य व्यक्तिगत रूप से चिंतित रहता है, वह अपने जोखिमों और अवसरों का आकलन करता है, जबकि ज्ञानी तटस्थ रहता है, इस बात से आश्वस्त कि सब कुछ अपने आप घटित होगा; और जो कुछ भी घटित होता है, वह अधिक मायने नहीं रखता, क्योंकि अंततः संतुलन और सामंजस्य की वापसी अपरिहार्य है। सार शांत है। प्रश्न: मैंने समझा है कि व्यक्तित्व एक भ्रम है, और सचेत अलगाव, पहचान खोए बिना, वास्तविकता से हमारा संपर्क बिंदु है। क्या आप कृपया मुझे बता सकते हैं - इस क्षण आप एक व्यक्ति हैं या एक आत्म-जागरूक पहचान?
एम: मैं दोनों हूँ। लेकिन वास्तविक स्व का वर्णन केवल व्यक्ति द्वारा दिए गए शब्दों में, यानी मैं जो नहीं हूँ, उसके संदर्भ में ही किया जा सकता है। आप व्यक्ति के बारे में जो कुछ भी बता सकते हैं, वह स्व नहीं है, और आप स्व के बारे में कुछ भी ऐसा नहीं बता सकते जो व्यक्ति को संदर्भित न करे; जैसा वह है, जैसा वह हो सकता है, जैसा उसे होना चाहिए। सभी गुण व्यक्तिगत होते हैं। वास्तविकता सभी गुणों से परे है।
प्रश्न: क्या आप कभी-कभी स्वयं होते हैं और कभी-कभी व्यक्ति होते हैं? एम: मैं कैसे हो सकता हूँ? मैं तो वही हूँ जो दूसरों को दिखाई देता हूँ। अपने लिए मैं चेतना का अनंत विस्तार हूँ जिसमें अनगिनत व्यक्ति निरंतर प्रकट होते और लुप्त होते रहते हैं।
प्रश्न: ऐसा कैसे होता है कि जो व्यक्ति आपको पूरी तरह से काल्पनिक लगता है, वह हमें वास्तविक प्रतीत होता है?
एम: तुम, आत्मा, समस्त अस्तित्व, चेतना और आनंद की जड़ होकर, जो कुछ भी अनुभव करते हो, उसमें अपनी वास्तविकता का संचार करते हो। वास्तविकता का यह संचार हमेशा वर्तमान क्षण में ही होता है, किसी और समय में नहीं, क्योंकि भूतकाल और भविष्य तो केवल मन में ही होते हैं। 'अस्तित्व' केवल वर्तमान क्षण पर ही लागू होता है।
प्रश्न: क्या अनंतकाल भी अंतहीन नहीं है?
एम: समय अनंत है, यद्यपि सीमित है, शाश्वतता वर्तमान क्षण में ही निहित है। हम इसे इसलिए चूक जाते हैं क्योंकि मन निरंतर अतीत और भविष्य के बीच घूमता रहता है। यह वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करने के लिए रुकता ही नहीं। यदि रुचि जागृत हो जाए तो यह अपेक्षाकृत आसानी से किया जा सकता है।
प्रश्न: किन चीजों में रुचि जागृत होती है?
एम: गंभीरता, परिपक्वता की निशानी।
प्रश्न: और परिपक्वता कैसे आती है?
एम: अपने मन को शांत और स्वच्छ रखकर, अपने जीवन के हर पल को पूरी जागरूकता के साथ जीकर, और अपनी इच्छाओं और भय को उत्पन्न होते ही परख कर और उन्हें दूर करके।
प्रश्न: क्या इस प्रकार की एकाग्रता संभव है?
एम: कोशिश करो। एक-एक कदम करके आगे बढ़ना आसान है। ऊर्जा लगन से ही उत्पन्न होती है।
प्रश्न: मुझे लगता है कि मैं पर्याप्त रूप से गंभीर नहीं हूँ।
एम: आत्म-विश्वासघात एक गंभीर समस्या है। यह कैंसर की तरह मन को सड़ा देता है। इसका उपाय चिंतन में स्पष्टता और ईमानदारी में निहित है। यह समझने का प्रयास करें कि आप भ्रमों की दुनिया में जी रहे हैं, उनका विश्लेषण करें और उनकी जड़ों को उजागर करें। ऐसा करने का प्रयास ही आपको दृढ़ निश्चयी बना देगा, क्योंकि सही प्रयास में ही आनंद है।

प्रश्न: इससे मुझे क्या लाभ होगा?
एम: अगर यह आपको अपनी पूर्णता की ओर नहीं ले जाता, तो यह आपको और कहाँ ले जा सकता है? एक बार जब आप वर्तमान में अच्छी तरह से स्थापित हो जाते हैं, तो आपके पास जाने के लिए और कोई जगह नहीं होती; आप जो हैं, उसे आप शाश्वत रूप से व्यक्त करते हैं।
प्रश्न: आप एक हैं या अनेक?
एम: मैं एक हूं, लेकिन अनेक के रूप में प्रकट होता हूं।
प्रश्न: आखिर ये प्रकट क्यों होते हैं?
एम: होना और सचेत रहना अच्छी बात है।
प्रश्न: जीवन दुखमय है।
एम: अज्ञान दुख का कारण बनता है। सुख ज्ञान से ही प्राप्त होता है।
प्रश्न: अज्ञानता कष्टदायी क्यों होनी चाहिए?
एम: यह सभी इच्छाओं और भय की जड़ है, जो पीड़ादायक अवस्थाएं हैं और अंतहीन गलतियों का स्रोत हैं।
प्रश्न: मैंने ऐसे लोगों को देखा है जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो चुका है, वे हंसते और रोते हैं। क्या इससे यह पता नहीं चलता कि वे इच्छा और भय से मुक्त नहीं हैं?
एम: वे परिस्थितियों के अनुसार हंसते-रोते हैं, लेकिन भीतर से वे शांत और स्पष्ट होते हैं, और अपनी सहज प्रतिक्रियाओं को तटस्थ भाव से देखते रहते हैं। बाहरी दिखावट भ्रामक होती है, और ज्ञानी के मामले में तो यह और भी अधिक सच है।
प्रश्न: मुझे आपकी बात समझ नहीं आई।
एम: मन समझ नहीं सकता, क्योंकि मन को ग्रहण करने और थामने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, जबकि ज्ञानी न तो ग्रहण करता है और न ही थामता है।
प्रश्न: मैं किस बात से जुड़ा हुआ हूँ, जिससे आप नहीं जुड़े हुए हैं?
एम: तुम स्मृतियों के प्राणी हो; कम से कम तुम स्वयं को ऐसा ही समझते हो। मैं पूरी तरह से अकल्पनीय हूँ। मैं वही हूँ जो मैं हूँ, किसी भी शारीरिक या मानसिक अवस्था से पहचाना नहीं जा सकता।
प्रश्न: एक दुर्घटना आपकी शांति भंग कर देगी।
एम: अजीब बात तो यह है कि ऐसा नहीं होता। मुझे खुद आश्चर्य होता है कि मैं जैसा हूँ वैसा ही रहता हूँ - शुद्ध चेतना, हर चीज़ के प्रति सजग।
प्रश्न: क्या मृत्यु के क्षण में भी?
एम: शरीर के मरने से मुझे क्या फर्क पड़ता है?
प्रश्न: क्या दुनिया से संपर्क करने के लिए इसकी आवश्यकता नहीं होती?
एम: मुझे दुनिया की ज़रूरत नहीं है। न ही मैं किसी दुनिया में हूँ। जिस दुनिया की आप कल्पना करते हैं, वह आपके अपने मन में है। मैं उसे आपकी आँखों और मन के ज़रिए देख सकता हूँ, लेकिन मैं पूरी तरह से जानता हूँ कि वह यादों का एक प्रक्षेपण है; वह वास्तविकता से केवल जागरूकता के बिंदु पर ही जुड़ती है, जो केवल वर्तमान क्षण में ही संभव है।
प्रश्न: हमारे बीच एकमात्र अंतर यही प्रतीत होता है कि जहाँ मैं लगातार कहता रहता हूँ कि मैं अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता, वहीं आप यह दावा करते हैं कि आप इसे भली-भांति जानते हैं; क्या हमारे बीच कोई और अंतर भी है? एम: हम दोनों में कोई अंतर नहीं है; न ही मैं यह कह सकता हूँ कि मैं स्वयं को जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा वर्णन या परिभाषा संभव नहीं है। मन की

असीम सीमाओं से परे एक विशालता है। वही विशालता मेरा घर है; वही विशालता मैं हूँ। और वही विशालता प्रेम भी है।
प्रश्न: आपको हर जगह प्रेम दिखाई देता है, जबकि मुझे घृणा और पीड़ा। मानव जाति का इतिहास व्यक्तिगत और सामूहिक हत्याओं का इतिहास है। कोई भी अन्य प्राणी हत्या करने में इतना आनंद नहीं लेता।
एम: अगर आप इसके पीछे के मकसद को समझेंगे, तो आपको प्यार मिलेगा, खुद से प्यार और अपनों से प्यार। लोग उसी चीज़ के लिए लड़ते हैं जिसे वे प्यार करते हैं।
प्रश्न: उनका प्यार निश्चित रूप से सच्चा होगा जब वे इसके लिए मरने को तैयार हैं।
एम: प्रेम असीम है। जो कुछ ही लोगों तक सीमित है, उसे प्रेम नहीं कहा जा सकता।
प्रश्न: क्या आप ऐसे असीम प्रेम को जानते हैं?
एम: हां, मैं करता हूँ।
प्रश्न: कैसा महसूस होता है?
एम: सभी को प्यार किया जा सकता है और सभी प्रेम के योग्य हैं। किसी को भी वर्जित नहीं किया गया है।
प्रश्न: क्या बदसूरत और अपराधी भी नहीं?
एम: सब कुछ मेरी चेतना में समाहित है; सब कुछ मेरा अपना है। पसंद-नापसंद के आधार पर खुद को बाँटना मूर्खता है। मैं इन दोनों से परे हूँ। मैं पराया नहीं हूँ।
प्रश्न: पसंद और नापसंद से मुक्त होना उदासीनता की अवस्था है।
एम: शुरुआत में ऐसा लग सकता है और महसूस हो सकता है। इस उदासीनता को बनाए रखें और यह एक सर्वव्यापी और व्यापक प्रेम में बदल जाएगी।
प्रश्न: जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब मन एक फूल और एक लौ की तरह खिल उठता है, लेकिन वे क्षण स्थायी नहीं होते और जीवन अपनी रोजमर्रा की नीरसता में लौट जाता है।
एम: जब हम ठोस चीज़ों से निपटते हैं, तो निरंतरता ही नियम है: निरंतरता का अनुभव नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं होती। चेतना में परिवर्तन निहित है, परिवर्तन के बाद परिवर्तन होता है, जब एक चीज़ या अवस्था समाप्त होती है और दूसरी शुरू होती है; जिसकी कोई सीमा नहीं होती, उसका सामान्य अर्थों में अनुभव नहीं किया जा सकता। व्यक्ति उसे जाने बिना ही अनुभव कर सकता है, लेकिन वह यह जान सकता है कि वह क्या नहीं है। यह निश्चित रूप से चेतना की संपूर्ण सामग्री नहीं है जो हमेशा गतिमान रहती है।
प्रश्न: यदि अचल को जाना नहीं जा सकता, तो उसकी प्राप्ति का अर्थ और उद्देश्य क्या है?
एम: अटल सत्य को साकार करने का अर्थ है अटल स्वयं बन जाना। और इसका उद्देश्य सभी जीवित प्राणियों का कल्याण करना है।
प्रश्न: जीवन गति है। गतिहीनता मृत्यु है। जीवन के लिए मृत्यु का क्या लाभ?
एम: मैं अचल होने की बात कर रहा हूँ, गतिहीनता की नहीं। मौन में आप अचल हो जाते हैं। आप एक ऐसी शक्ति बन जाते हैं जो सब कुछ सही कर देती है। इसमें बाहरी तौर पर तीव्र गतिविधि शामिल हो भी सकती है और नहीं भी, लेकिन मन गहरा और शांत रहता है।

प्रश्न: जब मैं अपने मन को देखता हूँ तो पाता हूँ कि यह हर समय बदलता रहता है, अनंत विविधता में एक के बाद एक मनोदशा बदलती रहती है, जबकि आप हमेशा एक ही प्रसन्न और दयालु मनोदशा में प्रतीत होते हैं।
एम: मनोदशाएँ मन की उपज होती हैं और इनका कोई महत्व नहीं है। अपने भीतर जाइए, अपनी चेतना की विषयवस्तु से मोहित होना छोड़ दीजिए। जब आप अपने वास्तविक अस्तित्व की गहरी परतों तक पहुँचेंगे, तो आप पाएंगे कि मन की सतही गतिविधियाँ आपको बहुत कम प्रभावित करती हैं।
प्रश्न: क्या खेल तो होगा ही?
एम: शांत मन मृत मन नहीं होता।
प्रश्न: चेतना हमेशा गतिमान रहती है—यह एक प्रत्यक्ष तथ्य है। स्थिर चेतना एक विरोधाभास है। जब आप शांत मन की बात करते हैं, तो वह क्या है? क्या मन और चेतना एक ही चीज़ नहीं हैं?
एम: हमें यह याद रखना चाहिए कि शब्दों का प्रयोग संदर्भ के अनुसार अनेक तरीकों से किया जाता है। वास्तव में, चेतन और अचेतन में बहुत कम अंतर है - वे मूलतः एक ही हैं। सजीव अवस्था गहरी नींद से इस मायने में भिन्न होती है कि सजीव की उपस्थिति में ही चेतना प्रकट होती है। जागरूकता की एक किरण हमारे मन के एक भाग को प्रकाशित करती है और वह भाग हमारा स्वप्न या जाग्रत चेतना बन जाता है, जबकि जागरूकता सजीव के रूप में प्रकट होती है। सजीव आमतौर पर केवल चेतना को ही जानता है। साधना में सजीव का पहले अपनी चेतना पर, फिर अपनी स्वयं की जागरूकता में स्वयं पर ध्यान केंद्रित करना शामिल है। आत्म-जागरूकता ही योग है।
प्रश्न: यदि जागरूकता सर्वव्यापी है, तो क्या एक अंधा व्यक्ति, एक बार आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद, देख सकता है?
एम: आप संवेदना को जागरूकता के साथ मिला रहे हैं। ज्ञानी स्वयं को उसी रूप में जानता है जैसा वह है। वह अपने शरीर की अक्षमता और मन की कई इंद्रिय-बोध क्षमताओं से वंचित होने से भी अवगत होता है। लेकिन दृष्टि की उपलब्धता या अनुपस्थिति से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
प्रश्न: मेरा प्रश्न अधिक विशिष्ट है; जब कोई अंधा व्यक्ति ज्ञानी बन जाता है तो क्या उसकी दृष्टि वापस आ जाती है या नहीं?
एम: जब तक उसकी आंखों और दिमाग का नवीनीकरण नहीं हो जाता, वह देख कैसे पाएगा?
प्रश्न: लेकिन क्या उनका नवीनीकरण होगा?
एम: ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी। यह सब भाग्य और कृपा पर निर्भर करता है। लेकिन ज्ञानी को सहज, इंद्रिय-रहित अनुभूति प्राप्त होती है, जिससे वह इंद्रियों के माध्यम के बिना ही चीजों को प्रत्यक्ष रूप से जान पाता है। वह प्रत्यक्ष और अवधारणात्मक सीमाओं से परे है, समय और स्थान, नाम और आकार की श्रेणियों से परे है। वह न तो स्वयं अनुभव किया जाने वाला है और न ही अनुभव करने वाला, बल्कि वह सरल और सार्वभौमिक तत्व है जो अनुभव को संभव बनाता है। वास्तविकता चेतना के भीतर है, लेकिन वह न तो चेतना है और न ही उसकी कोई सामग्री।
प्रश्न: क्या गलत है, संसार या संसार के बारे में मेरा ज्ञान?
एम: क्या आपके ज्ञान से परे भी कोई दुनिया है? क्या आप अपने ज्ञान से परे जा सकते हैं? आप एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर सकते हैं जो आपके ज्ञान से परे हो।

मन, लेकिन यह एक अवधारणा ही रहेगी, अप्रमाणित और अप्रमाणित। आपका अनुभव ही आपका प्रमाण है, और यह केवल आपके लिए ही मान्य है। आपका अनुभव और कौन कर सकता है, जब दूसरा व्यक्ति उतना ही वास्तविक है जितना वह आपके अनुभव में दिखाई देता है?
प्रश्न: क्या मैं सच में इतना अकेला हूँ?
एम: आप एक व्यक्ति के रूप में हैं। आपके वास्तविक अस्तित्व में संपूर्णता समाहित है।
प्रश्न: क्या आप उस दुनिया का हिस्सा हैं जिसे मैं चेतना में धारण करता हूँ, या आप स्वतंत्र हैं?
एम: जो तुम देखते हो वो तुम्हारा है और जो मैं देखता हूँ वो मेरा है। दोनों में बहुत कम समानता है।
प्रश्न: हमें जोड़ने वाला कोई न कोई सामान्य कारक अवश्य होना चाहिए।
एम: उभयनिष्ठ गुणनखंड ज्ञात करने के लिए आपको सभी भेदों का त्याग करना होगा। केवल सार्वभौमिक तत्व ही उभयनिष्ठ है।
प्रश्न: मुझे जो बात बेहद विचित्र लगती है, वह यह है कि जहाँ आप कहते हैं कि मैं मात्र अपनी यादों की उपज हूँ और मेरी क्षमताएँ अत्यंत सीमित हैं, वहीं मैं एक विशाल और समृद्ध संसार की रचना करता हूँ जिसमें सब कुछ समाहित है, जिसमें आप और आपकी शिक्षाएँ भी शामिल हैं। यह विशालता मेरी छोटी सी शख्सियत में कैसे समाहित हो जाती है, यह मेरी समझ से परे है। शायद आप मुझे पूरा सत्य बता रहे हैं, लेकिन मैं उसका केवल एक छोटा सा हिस्सा ही समझ पा रहा हूँ।
एम: फिर भी, यह एक सच्चाई है - छोटी परियोजनाएँ संपूर्ण का हिस्सा तो होती हैं, लेकिन उनमें संपूर्ण समाहित नहीं हो सकता। आपका संसार चाहे कितना भी विशाल और संपूर्ण क्यों न हो, वह आत्म-विरोधी, क्षणभंगुर और पूर्णतः भ्रामक है।
प्रश्न: यह भ्रमपूर्ण लग सकता है, फिर भी यह अद्भुत है। जब मैं देखता और सुनता हूँ, छूता, सूंघता और चखता हूँ, सोचता और महसूस करता हूँ, याद करता और कल्पना करता हूँ, तो मैं अपनी चमत्कारिक रचनात्मकता पर आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकता। मैं सूक्ष्मदर्शी या दूरबीन से देखता हूँ और चमत्कार देखता हूँ, मैं परमाणु के मार्ग का अनुसरण करता हूँ और तारों की सिसकियाँ सुनता हूँ। यदि मैं ही इन सबका एकमात्र निर्माता हूँ, तो मैं वास्तव में ईश्वर हूँ! लेकिन यदि मैं ईश्वर हूँ, तो मैं स्वयं को इतना छोटा और असहाय क्यों प्रतीत होता हूँ?
एम: तुम ईश्वर हो, लेकिन तुम्हें यह पता नहीं है।
प्रश्न: यदि मैं ईश्वर हूँ, तो मेरे द्वारा निर्मित संसार सत्य होना चाहिए।
एम: सार में यह सत्य है, पर दिखने में नहीं। इच्छाओं और भय से मुक्त हो जाओ, और तुरंत ही तुम्हारी दृष्टि स्पष्ट हो जाएगी और तुम सब कुछ यथार्थ देख पाओगे। या, तुम यह भी कह सकते हो कि सतगुण संसार का सृजन करता है, तमोगुण उसे छिपाता है और रजोगुण उसे विकृत करता है।
प्रश्न: इससे मुझे ज्यादा कुछ पता नहीं चलता, क्योंकि अगर मैं पूछूं कि गुण क्या हैं, तो उत्तर होगा: जो सृजन करता है, जो छिपाता है, जो विकृत करता है। तथ्य यही है कि मेरे साथ कुछ अविश्वसनीय घटित हुआ है, और मुझे समझ नहीं आ रहा कि क्या हुआ है, कैसे हुआ है और क्यों हुआ है।

एम: खैर, जिज्ञासा ही ज्ञान का उदय है। निरंतर और सतत रूप से जिज्ञासा बनाए रखना ही साधना है।
प्रश्न: मैं एक ऐसी दुनिया में हूँ जिसे मैं समझ नहीं पाता और इसलिए मुझे इससे डर लगता है। यह हर किसी का अनुभव है।
एम: तुमने स्वयं को संसार से अलग कर लिया है, इसलिए तुम्हें पीड़ा और भय होता है। अपनी गलती पहचानो और भय से मुक्त हो जाओ।
प्रश्न: आप मुझसे संसार त्यागने के लिए कह रहे हैं, जबकि मैं संसार में खुश रहना चाहता हूँ।
एम: अगर आप असंभव की मांग करेंगे, तो आपकी मदद कौन करेगा? सीमितता में सुख और दुख दोनों बारी-बारी से आते हैं। अगर आप सच्ची, अटल और अपरिवर्तनीय खुशी चाहते हैं, तो आपको इस दुनिया को, इसके सुख-दुखों के साथ, पीछे छोड़ देना होगा।
प्रश्न: यह कैसे किया जाता है?
एम: मात्र शारीरिक त्याग तो केवल गंभीरता का प्रतीक है, लेकिन केवल गंभीरता से मुक्ति नहीं मिलती। इसके लिए सचेत बोध, उत्सुक जिज्ञासा और गहन अन्वेषण से प्राप्त होने वाली समझ आवश्यक है। आपको पाप और दुःख से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास करना होगा।
प्रश्न: पाप क्या है?
एम: वो सब जो तुम्हें बांधता है।

परिशिष्ट-1: निसर्गा योग

श्री निसर्गदत्ता महाराज के साधारण से निवास में, बिजली की रोशनी और सड़क के यातायात के शोर के अलावा, यह जानना असंभव है कि आप मानव इतिहास के किस काल में हैं। उनके छोटे से कमरे में एक शाश्वतता का वातावरण है; चर्चा किए गए विषय शाश्वत हैं - सभी युगों के लिए प्रासंगिक; उनकी व्याख्या और विश्लेषण का तरीका भी शाश्वत है; शताब्दियाँ, सहस्राब्दियाँ और युग मिट जाते हैं और व्यक्ति अत्यंत प्राचीन तथा शाश्वत रूप से नवीन विषयों से रूबरू होता है।
दस हजार वर्ष पूर्व में जो चर्चाएँ और शिक्षाएँ दी जाती थीं, वे आज भी वैसी ही हैं। हमेशा ऐसे सचेत प्राणी रहेंगे जो अपनी चेतना के तथ्य पर आश्चर्य करेंगे और इसके कारण और उद्देश्य की खोज करेंगे। मैं कहाँ से आया हूँ? मैं कौन हूँ? मैं कहाँ जा रहा हूँ? ऐसे प्रश्नों का न कोई आरंभ है और न कोई अंत। और इनके उत्तर जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि समय और कालमापन दोनों में स्वयं को पूर्णतः समझे बिना, जीवन एक स्वप्न मात्र है, जो अज्ञात शक्तियों द्वारा हम पर थोपा गया है, ऐसे उद्देश्यों के लिए जिन्हें हम समझ नहीं सकते।
महाराज विद्वान नहीं हैं। उनकी सरल मराठी भाषा में विद्वत्ता झलकती है; वे किसी भी प्रकार के संदर्भ नहीं देते, शास्त्रों का उल्लेख भी वे शायद ही कभी करते हैं; भारत की समृद्ध आध्यात्मिक विरासत उनमें प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने के बजाय अंतर्निहित है। उनके लिए कभी कोई भव्य आश्रम नहीं बनाया गया और उनके अधिकांश अनुयायी साधारण मेहनतकश लोग हैं जो समय-समय पर उनके साथ एक घंटा बिताने के अवसर को संजो कर रखते हैं।
सादगी और विनम्रता उनके जीवन और शिक्षाओं के मूल तत्व हैं; शारीरिक और आंतरिक रूप से वे कभी भी अहंकार का भाव नहीं रखते; जिस सार पर वे चर्चा

करते हैं, उसे वे दूसरों में भी उतनी ही स्पष्टता से देखते हैं जितना स्वयं में। वे स्वीकार करते हैं कि यद्यपि वे स्वयं इससे अवगत हैं, अन्य अभी तक नहीं हैं, परन्तु यह अंतर क्षणिक है और इसका कोई विशेष महत्व नहीं है, सिवाय मन और उसकी निरंतर परिवर्तनशील विषयवस्तु के। जब उनसे उनके योग के बारे में पूछा जाता है, तो वे कहते हैं कि उनके पास देने के लिए कोई योग नहीं है, न ही कोई प्रणाली प्रतिपादित करनी है, न कोई धर्मशास्त्र, न ब्रह्मांड विज्ञान, न मनोविज्ञान और न ही कोई दर्शन। वे वास्तविक प्रकृति को जानते हैं - अपनी और अपने श्रोताओं की - और वे उसे प्रकट करते हैं। श्रोता उसे नहीं देख पाता क्योंकि वह स्पष्ट को सरलता और प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकता। वे जो कुछ भी जानते हैं, वह अपने मन से जानते हैं, जो इंद्रियों द्वारा प्रेरित होता है। उन्हें इस बात का जरा भी आशय नहीं है कि मन स्वयं एक इंद्रिय है।
महाराज का 'प्राकृतिक' योग, निसार्ग योग, आश्चर्यजनक रूप से सरल है - मन, जो सर्वव्यापी है, को अपने अस्तित्व को पहचानना और उसमें लीन होना चाहिए, न कि इस या उस, यहाँ या वहाँ, तब या अब के रूप में, बल्कि केवल कालातीत अस्तित्व के रूप में।
यह शाश्वत सत्ता जीवन और चेतना दोनों का स्रोत है। समय, स्थान और कारण के संदर्भ में यह सर्वशक्तिमान है, क्योंकि यह अकारण कारण है; सर्वव्यापी, शाश्वत, इस अर्थ में कि यह अनादि, अनंत और सर्वत्र विद्यमान है। अकारण होने के कारण यह स्वतंत्र है; सर्वव्यापी होने के कारण यह सब कुछ जानता है; अविभाजित होने के कारण यह आनंदित है। यह जीता है, प्रेम करता है और ब्रह्मांड को आकार देते और बदलते हुए अनंत आनंद लेता है। प्रत्येक मनुष्य में यह सत्ता है, प्रत्येक मनुष्य यही है, लेकिन सभी स्वयं को अपने वास्तविक स्वरूप में नहीं जानते, और इसलिए वे स्वयं को अपने शरीर के नाम और आकार तथा अपनी चेतना की सामग्री से जोड़ते हैं।
अपनी वास्तविकता के बारे में इस गलतफहमी को दूर करने का एकमात्र उपाय है अपने मन की कार्यप्रणाली को पूरी तरह से समझना और उसे आत्म-खोज का साधन बनाना। मन मूल रूप से जैविक अस्तित्व के संघर्ष में एक उपकरण था। इसे प्रकृति के नियमों और तरीकों को सीखना पड़ा, जो जीवन को उच्च स्तर तक ले जा सकते हैं। लेकिन, इस प्रक्रिया में मन ने प्रतीकात्मक चिंतन और संचार की कला, भाषा की कला और कौशल को प्राप्त कर लिया। शब्द महत्वपूर्ण हो गए। विचारों और अमूर्त अवधारणाओं ने वास्तविकता का रूप धारण कर लिया, अवधारणा ने वास्तविकता का स्थान ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य अब एक शाब्दिक दुनिया में रहता है, जो शब्दों से भरी हुई है और शब्दों द्वारा ही संचालित है।
स्पष्ट है कि वस्तुओं और व्यक्तियों से निपटने के लिए शब्द अत्यंत उपयोगी होते हैं। लेकिन वे हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाते हैं जो पूरी तरह से प्रतीकात्मक है और इसलिए अवास्तविक है। शाब्दिक मन के इस बंधन से निकलकर वास्तविकता में प्रवेश करने के लिए, व्यक्ति को अपना ध्यान शब्द से हटाकर उस वस्तु पर केंद्रित करना होगा जिसका वह संदर्भ देता है।
सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला और भावनाओं एवं विचारों से ओतप्रोत शब्द 'मैं' है। मन इसमें सब कुछ समाहित कर लेता है, शरीर से लेकर परम सत्ता तक। व्यवहार में यह एक प्रत्यक्ष, तात्कालिक और अत्यंत महत्वपूर्ण अनुभव का सूचक है। अस्तित्व में होना और यह जानना कि कोई अस्तित्व में है, सर्वोपरि है। और किसी भी चीज़ में रुचि तभी होती है जब वह व्यक्ति के चेतन अस्तित्व

से संबंधित हो, जो प्रत्येक इच्छा और भय का केंद्र बिंदु है। क्योंकि प्रत्येक इच्छा का अंतिम लक्ष्य अस्तित्व की इस भावना को बढ़ाना और तीव्र करना है, जबकि सभी भय अपने सार में आत्म-विनाश का भय है।
‘मैं’ की भावना को गहराई से समझना—जो अत्यंत वास्तविक और जीवंत है—और उसके स्रोत तक पहुंचना निसर्गा योग का मूल है। ‘मैं’ की भावना निरंतर नहीं होती, इसलिए इसका एक स्रोत होना चाहिए जिससे यह प्रवाहित होती है और जिसमें यह लौटती है। चेतन अस्तित्व के इस शाश्वत स्रोत को ही महाराज आत्म-स्वरूप, आत्म-अस्तित्व कहते हैं।
स्वयं के साथ सर्वोच्च एकात्मता को साकार करने की विधियों के बारे में महाराज का दृष्टिकोण विशिष्ट रूप से अस्पष्ट है। वे कहते हैं कि वास्तविकता तक पहुँचने का प्रत्येक व्यक्ति का अपना मार्ग है और कोई सामान्य नियम नहीं हो सकता। परन्तु, चाहे जिस मार्ग से भी पहुँचा जाए, वास्तविकता का द्वार ‘मैं हूँ’ की भावना ही है। ‘मैं हूँ’ के पूर्ण अर्थ को समझकर और उससे परे जाकर उसके स्रोत तक पहुँचने से ही व्यक्ति सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर सकता है, जो आदिम और परम भी है। आरंभ और अंत के बीच का अंतर केवल मन में निहित है। जब मन अंधकारमय या अशांत होता है, तो स्रोत का अनुभव नहीं होता। जब मन निर्मल और प्रकाशमय होता है, तो वह स्रोत का सटीक प्रतिबिंब बन जाता है। स्रोत सदा एक ही है - अंधकार और प्रकाश से परे, जीवन और मृत्यु से परे, चेतन और अचेतन से परे।
‘मैं हूँ’ की भावना पर ध्यान केंद्रित करना ही सरल, सहज और स्वाभाविक योग है, निसार्ग योग। इसमें कोई रहस्य या निर्भरता नहीं है; न ही किसी तैयारी की आवश्यकता है और न ही दीक्षा की। जो कोई भी सचेत प्राणी के रूप में अपने अस्तित्व से ही भ्रमित है और अपने मूल स्रोत को खोजना चाहता है, वह सर्वव्यापी ‘मैं हूँ’ की भावना को ग्रहण कर सकता है और धैर्यपूर्वक उस पर ध्यान केंद्रित कर सकता है, जब तक कि मन को ढकने वाले बादल छंट न जाएं और अस्तित्व का सार अपने पूर्ण वैभव में प्रकट न हो जाए।
निसार्ग योग का निरंतर अभ्यास करने और उसे पूर्णतः सिद्ध करने से व्यक्ति उस चीज़ के प्रति सचेत और सक्रिय हो जाता है जो वह हमेशा से अचेतन और निष्क्रिय रूप से था। इसमें कोई अंतर नहीं है - केवल शैली का अंतर है - सोने के एक टुकड़े और उससे बने एक भव्य आभूषण के बीच का अंतर। जीवन चलता रहता है, लेकिन यह सहज और स्वतंत्र, अर्थपूर्ण और सुखमय होता है।
महाराज इस स्वाभाविक, सहज अवस्था का अत्यंत स्पष्ट वर्णन करते हैं, परन्तु जिस प्रकार जन्म से अंधा व्यक्ति प्रकाश और रंगों की कल्पना नहीं कर सकता, उसी प्रकार अज्ञानी मन ऐसे वर्णनों को अर्थ नहीं दे पाता। वैराग्यपूर्ण प्रसन्नता, स्नेहपूर्ण अनासक्ति, कालहीनता और वस्तु एवं अस्तित्व की निरर्थकता जैसे भाव-भंगिमाएँ विचित्र प्रतीत होती हैं और कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं करतीं। सहजतः हम महसूस करते हैं कि इनमें गहरा अर्थ है, और ये हमारे भीतर अवर्णनीय के लिए एक विचित्र लालसा भी उत्पन्न करती हैं, जो भविष्य की एक झलक है, परन्तु बस इतना ही। जैसा कि महाराज कहते हैं: शब्द संकेत मात्र हैं, वे दिशा दिखाते हैं परन्तु हमारे साथ नहीं चलते। सत्य कर्म का फल है, शब्द तो केवल मार्ग दिखाते हैं।
मौरिस फ्राइडमैन

परिशिष्ट-2: नवनाथ संप्रदाय। हिंदू धर्म में अनेक संप्रदाय, मत और पंथ शामिल हैं, जिनमें से अधिकांश की उत्पत्ति प्राचीन काल में ही खो गई है।

नाथ संप्रदाय, जिसे बाद में नवनाथ संप्रदाय के नाम से जाना गया, उन्हीं में से एक है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस संप्रदाय की उत्पत्ति पौराणिक ऋषि दत्तात्रेय की शिक्षाओं से हुई, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पवित्र त्रिमूर्ति का संयुक्त अवतार माना जाता है। इस महान व्यक्तित्व की अद्वितीय आध्यात्मिक उपलब्धियों का उल्लेख भागवत पुराण, महाभारत और कुछ बाद के उपनिषदों में मिलता है। अन्य विद्वानों का मानना है कि यह हठ योग की एक शाखा है।
इसका उद्गम चाहे जो भी हो, नाथ संप्रदाय की शिक्षाएँ सदियों से जटिलता में डूबती जा रही हैं और भारत के विभिन्न भागों में अलग-अलग रूप धारण कर चुकी हैं। संप्रदाय के कुछ गुरु भक्ति पर बल देते हैं; कुछ ज्ञान पर; और कुछ योग पर, जो परम सत्ता से मिलन है। चौदहवीं शताब्दी में हमें महान हठयोगी स्वात्माराम स्वामी मिलते हैं, जो 'विभिन्न मतों से उत्पन्न अंधकार' पर शोक व्यक्त करते हैं और उसे दूर करने के लिए उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ हठयोगप्रदीपिका का दीपक प्रज्वलित किया।
कुछ विद्वान टीकाकारों के अनुसार, नाथ गुरु यह प्रतिपादित करते हैं कि संपूर्ण सृष्टि नाद (ध्वनि), जो दिव्य सिद्धांत है, और बिंदु (प्रकाश), जो भौतिक सिद्धांत है, से उत्पन्न हुई है, और वह परम वास्तविकता जिससे ये दोनों सिद्धांत उत्पन्न होते हैं, शिव हैं। उनके अनुसार, मोक्ष लय की प्रक्रिया के माध्यम से आत्मा का शिव में विलीन होना है, जो मानवीय अहंकार, यानी 'मैं' की भावना का विघटन है।
अपने भक्तों को दिए जाने वाले दैनिक निर्देशों में, नाथ गुरु अपने उपदेशों में विद्वानों द्वारा खोजे गए तत्वमीमांसा का उल्लेख बहुत कम करते हैं। वास्तव में उनका दृष्टिकोण पूरी तरह से गैर-तत्वमीमांसा, सरल और सीधा है। पवित्र भजनों और भक्ति गीतों का जाप तथा मूर्तियों की पूजा इस संप्रदाय की पारंपरिक विशेषता है, लेकिन इसकी शिक्षा इस बात पर बल देती है कि परम सत्य का अनुभव केवल हृदय के भीतर ही किया जा सकता है।
नाथ संप्रदाय को नवनाथ संप्रदाय के नाम से जाना जाने लगा, जब सुदूर अतीत में किसी समय, इस संप्रदाय के अनुयायियों ने अपने नौ प्रारंभिक गुरुओं को अपने पंथ के आदर्श के रूप में चुना। हालांकि, इन नौ गुरुओं के नामों पर सर्वसम्मति नहीं है। सबसे व्यापक रूप से स्वीकृत सूची इस प्रकार है:
1. Matsyendranath
2. Gorakhnath
3. Jalandharnath
4. Kantinath
5. Gahininath
6. Bhartrinath
7. Revananath
8. Charpatnath
9. Naganath
इन नौ गुरुओं में से गहनिनाथ और रेवननाथ के दक्षिण भारत में, विशेष रूप से महाराष्ट्र में, जहाँ से श्री निसर्गदत्ता महाराज संबंधित थे, बड़ी संख्या में अनुयायी थे। कहा जाता है कि रेवननाथ ने अपना एक उप-संप्रदाय स्थापित किया और कदाससिद्ध को अपना प्रमुख शिष्य और उत्तराधिकारी चुना। कदाससिद्ध ने लिंगजंगम महाराज और भाऊसाहिब महाराज को दीक्षा दी और उन्हें अपना आश्रम और अपने उपदेशों के प्रचार-प्रसार का कार्य सौंपा। भाऊसाहिब

महाराज ने बाद में इंचगेरी संप्रदाय की स्थापना की, जो पारंपरिक संप्रदाय के भीतर एक नया आंदोलन था। उनके शिष्यों में अंबुराव महाराज, गिरिमल्लेश्वर महाराज, सिद्धारमेश्वर महाराज और प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. आर. डी. रेनाडे शामिल थे। श्री निसर्गदत्ता महाराज सिद्धारमेश्वर महाराज के प्रत्यक्ष शिष्य और उत्तराधिकारी हैं।
यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यद्यपि श्री निसर्गदत्ता आधिकारिक तौर पर नवनाथ संप्रदाय की इंचगेरी शाखा के वर्तमान गुरु हैं, फिर भी वे अपने स्वयं के संप्रदाय सहित अन्य संप्रदायों, मतों और मतों को अधिक महत्व नहीं देते। नवनाथ संप्रदाय में शामिल होने की इच्छा रखने वाले एक प्रश्नकर्ता के उत्तर में उन्होंने कहा: "नवनाथ संप्रदाय केवल एक परंपरा है, शिक्षण और अभ्यास का एक तरीका है। यह चेतना के किसी स्तर को नहीं दर्शाता। यदि आप नवनाथ संप्रदाय के किसी शिक्षक को अपना गुरु स्वीकार करते हैं, तो आप उनके संप्रदाय में शामिल हो जाते हैं... आपका उनसे जुड़ाव आपकी अपनी भावना और दृढ़ विश्वास पर निर्भर करता है। अंततः यह सब मौखिक और औपचारिक है। वास्तव में न तो गुरु है, न शिष्य, न सिद्धांत है, न अभ्यास, न अज्ञान है, न ज्ञान। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि आप स्वयं को क्या मानते हैं। स्वयं को सही ढंग से जानो। आत्मज्ञान का कोई विकल्प नहीं है।"
नाथ संप्रदाय की शिक्षा साधक को मुक्ति का राजसी मार्ग प्रदान करती है, एक ऐसा मार्ग जिसमें भगवान शिव की जीवनी, नाथलिंगामृत में वर्णित भक्ति, ज्ञान, कर्म और ध्यान के चारों उपमार्ग शामिल हैं। नाथ संप्रदाय द्वारा दिखाया गया मार्ग सभी मार्गों में सर्वश्रेष्ठ है और प्रत्यक्ष मुक्ति की ओर ले जाता है।